श्री श्री माँ
आनन्दमयी

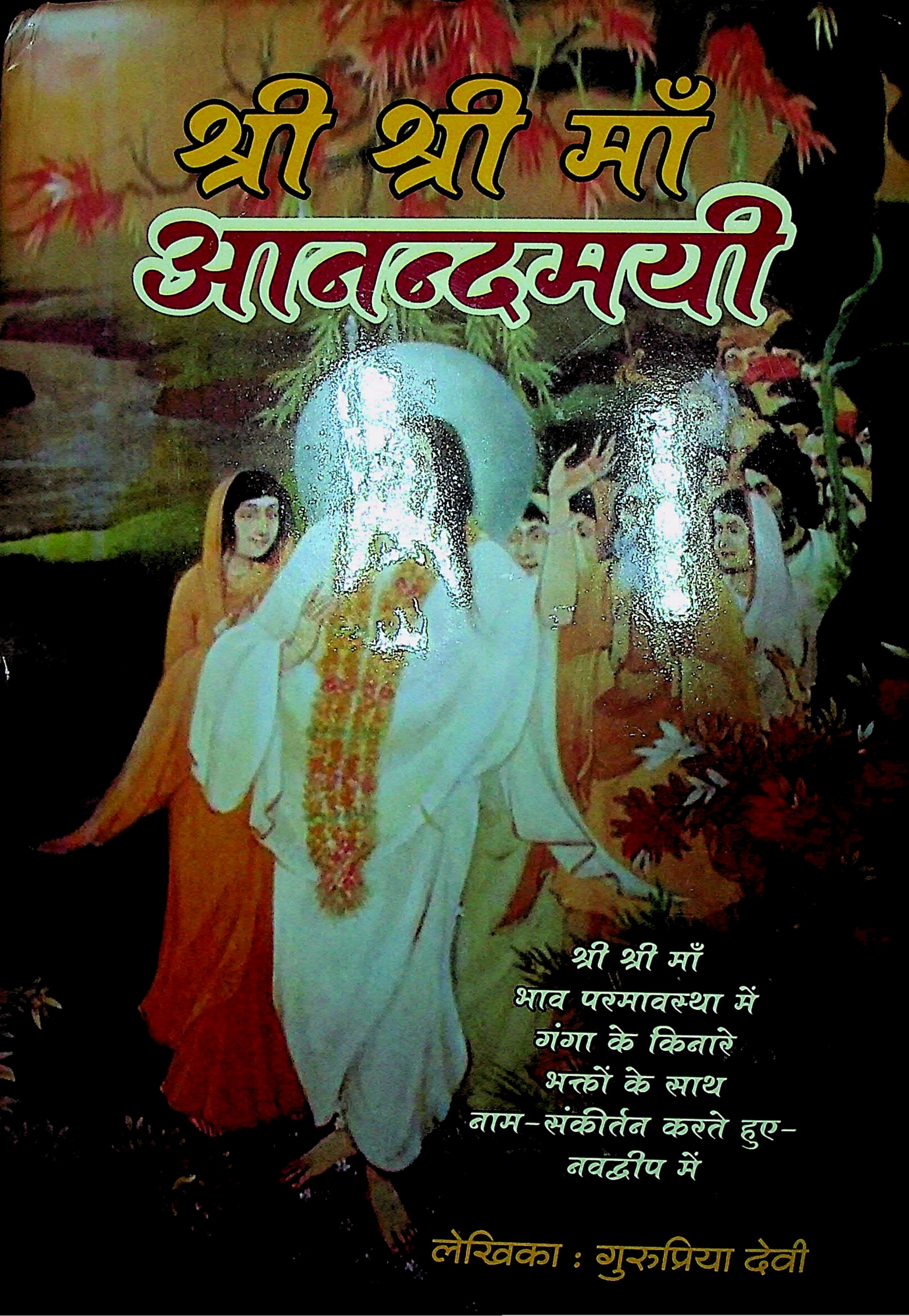

श्री श्री माँ
भाव परमावस्था में
गंगा के किनारे
भक्तों के साथ
नाम-संकीर्तन करते हुए-
नवद्वीप में

लेखिका : गुरुप्रिया देवी

श्री श्री माँ आनन्दमयी

भाग-2

लेखिका :
गुरुप्रिया देवी

श्री श्री आनन्द मयी संघ
ॐ माँ
मातृ शरण

श्री श्री माँ
आनन्दमयी

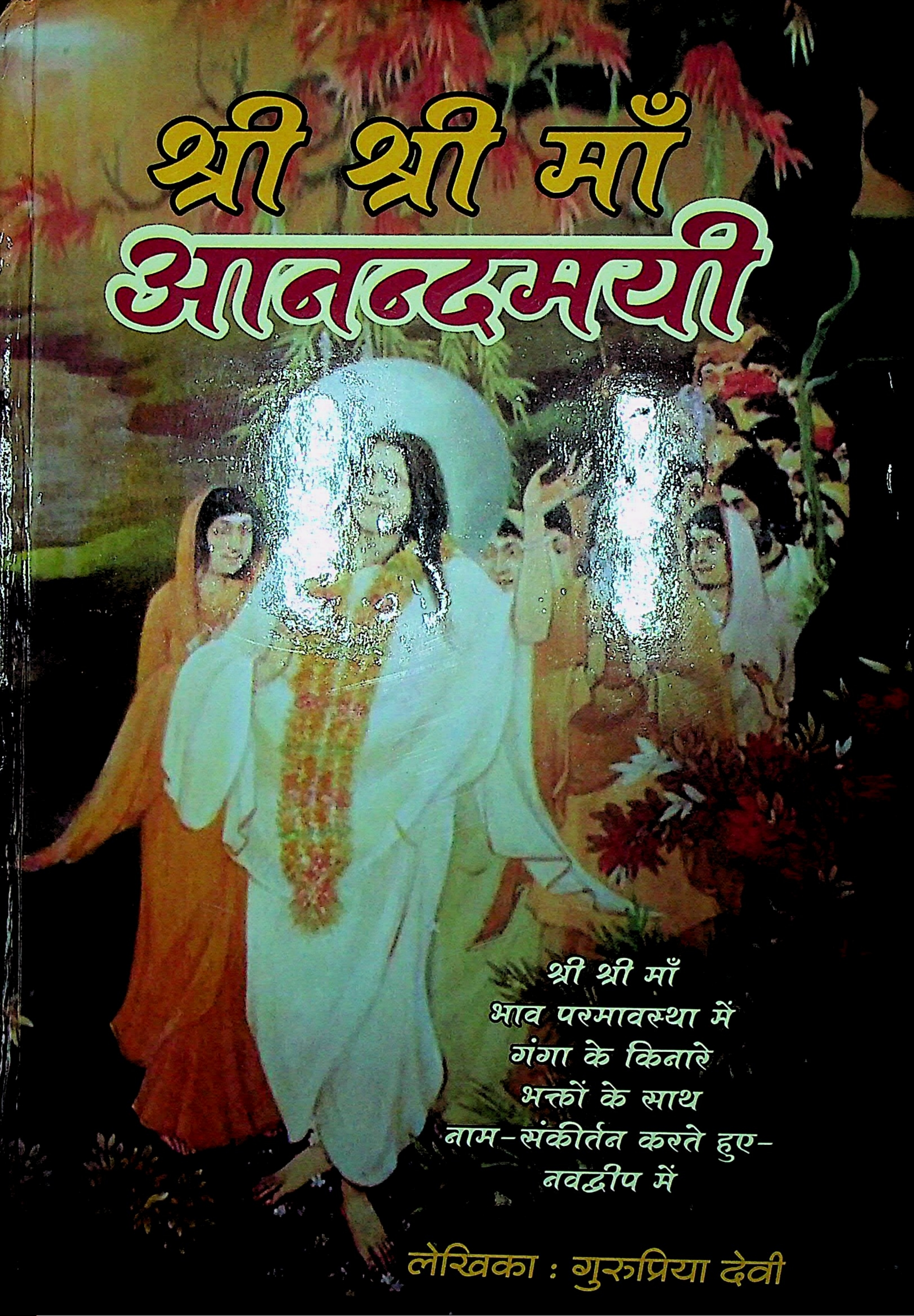

श्री श्री माँ
भाव परमावस्था में
गंगा के किनारे
भक्तों के साथ
नाम-संकीर्तन करते हुए-
नवद्वीप में

लेखिका : गुरुप्रिया देवी

श्रीश्री माँ आनन्दमयी

श्रीश्री आनन्द मयी संघ
ॐ माँ
मातृ शरणं

लेखिका :

गुरुप्रिया देवी

प्रकाशक :
श्री श्री आनन्दमयी संघ
कनखल, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

संस्करण : **चतुर्थ–2019** (भाग–2)

प्रतियाँ : **1100/-**

सहयोग राशि : **₹– 100/-**

मुद्रक :
प्रिंटिंग सेन्टर
चुरुकों का रास्ता, चौड़ा रास्ता, जयपुर– 302003
फोन : 0141-4112757, 97845 06600
E-mail : printingcentrejpr@gmail.com

✻ पुस्तक प्राप्ति स्थान ✻

1. **श्री श्री आनन्दमयी संघ**
श्री श्री माँ आनन्दमयी मार्ग, कनखल, हरिद्वार–249408, (उत्तराखण्ड)

2. **श्री श्री माँ आनन्दमयी स्मृति संग्रहालय**
मातृ निलयम्, आनन्द ज्योति पीठम् के सामने, श्री श्री माँ आनन्दमयी मार्ग,
कनखल, हरिद्वार–249408, भारत मो. : 09412158799

3. **प्रज्ञा साधना आध्यात्मिक पुस्तक केन्द्र**
ए–3, आर्य नगर, मुरलीपुरा, जयपुर–302039 (राज.)
दूरभाष : 9829547773, 0141-2233765
E-mail : pragya7sadhna@gmail.com

विषय-सूची

विषय **पृष्ठ संख्या**

पहला अध्याय 1–46

✻ कैलास यात्रा-गणई से बेनीनाग यात्रा ✻ माँ की आकर्षणी शक्ति ✻ डीडीहाट ✻ अस्कोट में राज-परिवार के द्वारा माँ की संवर्धना ✻ बलवाकोट रवाना ✻ बलवाकोट ✻ धारचूला ✻ धारचूला का इतिहास ✻ माँ पूर्ण जो हैं ✻ गंगा को माँ का कुर्ती दान ✻ सूक्ष्म-शरीरधारी माँ के पास आए ✻ यात्रा के पूर्व की घटना ✻ माँ की काली-मूर्ति ✻ माँ जगज्जननी हैं ✻ एक घटना ✻ यात्रा का आयोजन ✻ रूमादेवी ✻ पंगू ✻ सिरखा ✻ दीप्ती के रास्ते की बात ✻ मालपा, भयंकर मार्ग ✻ माँ की दूरदृष्टि ✻ बोधी का दुर्गम मार्ग ✻ बाबा भोलानाथ का उत्साह ✻ छाईलेक ✻ गर्ब्यांग ✻ तकलाकोट जाने का आयोजन ✻ रास्ते की दुर्गमता की बातें ✻ इष्ट-मन्त्र का जप करते हुए रास्ता-चलना ✻ कालापानी आगमन, लीपू पार होने का आयोजन ✻ लीपू का दृश्य ✻ रंगुंग ✻ दिन में तारा देखना ✻ मानसरोवर के मार्ग में डाकुओं के पंजे में ✻ मानसरोवर ✻ माँ ने पहले से ही सारी व्यवस्था की है ✻ राक्षस-ताल ✻ लामाओं का मन्दिर दर्शन ✻ बूँद ✻ धानकेना से परिक्रमा आरम्भ ✻ काले कुत्ते की घटना ✻ गौरीकुण्ड में आगमन और क्रिया-कर्म करना

दूसरा अध्याय 47–71

✻ कैलास से लौटना, लौटने के मार्ग में तालकोट ✻ लामाओं की गुफा में गमन ✻ लीपू पार कर कालापानी आगमन ✻ ज्योतिष रायजी की बीमारी से सभी चिन्तित ✻ धारचूला में अवस्थान ✻ रस्सी पकड़कर नदी पार होना ✻ माँ की मौन अवस्था, ज्योतिष राय महाशय की बीमारी में, सन्तान की बीमारी में माँ का जो स्वाभाविक भाव होता है माँ ने वही भाव अपनाया

तीसरा अध्याय 72–83

✽ कैलाश–यात्रा के अन्त में अल्मोड़ा लौटना ✽ माँ की एकदम उदासीन अवस्था ✽ भाईजी जीवन–मरण के सन्धि–स्थल में ✽ ज्योतष राय महाशय का माँ के चरणों में सिर रखकर महाप्रयाण

चौथा अध्याय 84–100

✽ स्व. ज्योतिष राय महाशय के महाप्रयाण के बाद माँ ✽ माँ का देहरादून गमन ✽ माँ काशीधाम में ✽ माँ के हाथ में क्रास, त्रिशूल और धनुषबाण के चिह्न ✽ श्री श्री माँ विन्ध्याचल में

पाँचवाँ अध्याय 101–161

✽ हरिद्वार में आकर माँ का दर्शन ✽ नर्मदा, व्यास और चन्दोद के मार्ग में ✽ हरिद्वार आकर मातृदर्शन और नर्मदा यात्रा ✽ नर्मदा तीर चन्दोद में विष्णु–मन्दिर गमन ✽ अवतारों के भीतर भाव का खेल ✽ माँ और भोलानाथजी की दीक्षा का विवरण ✽ "गुरु का आदेश बिना प्रतिवाद पालन करते चलो।"–कलियुग में नाम–साधन से ही सब कुछ होता है ✽ माँ स्वयं प्रयोजनरहित हैं, जो कुछ प्रकट होता है सब भक्तों के लिए ✽ नर्मदा भ्रमण और मन्दिरादि का विवरण ✽ व्यास में गमन ✽ अनुसूया देवी के मन्दिर में गमन ✽ अहमदाबाद आगमन ✽ स्थानीय भक्तों की गुजराती भाषा में माँ की उपदेश–वाणी छपाने की व्यवस्था ✽ गुरु की आवश्यकता ✽ अहमदाबाद से बड़ौदा रवाना ✽ माँ का पूर्व वृत्तान्त ✽ माँ का गंडूष का खेल ✽ पूर्व जन्म है या नहीं ✽ यदि ब्रह्म अज्ञेय हैं तो उन्हें कैसे जाना जाता है ✽ डाकोर में श्रीद्वारकानाथ के मन्दिर में अन्नकूट का विवरण ✽ बड़ौदा आगमन और श्रीकृष्ण–मन्दिर दर्शन ✽ एक मुसलमान के नमाज पढ़ते समय माँ के दर्शन की बात ✽ एक फ्रान्सीसी महिला का माँ के शरीर पर हीरे का जेवर धारण तथा उनमें ज्योति के स्फुरण का दर्शन ✽ एक दूसरी बंगाली महिला की माँ को श्रीकृष्ण रूप में देखने की प्रार्थना से दर्शन प्राप्ति ✽ कर्णाली में श्रीमनोहर–मुरलीधर के मन्दिर में आगमन ✽ रमणा–आश्रम का पूर्व वृत्तान्त ✽ रमणिकाश्रम दर्शन और उसका इतिहास ✽ भाईजी के संन्यास का विवरण ✽ रमणा स्थित काली–मूर्ति के अंग–भंग का प्रसंग ✽ अपनी आध्यात्मिक अवस्था का अच्छी तरह विचार करना

चाहिए ✽ श्री राधा-कृष्ण की लीला, अद्वैत का खेल ✽ माया का अर्थ है- मैं आया यानी जब तक मैं हूँ ✽“श्री शंकराचार्य के अद्वैतवाद की मीमांसा से हृदय को तृप्ति नहीं मिलती”- माँ का समाधान ✽ स्त्रियों के जनेऊ धारण की बात पहले किस प्रसंग में उठी थी उसका विवरण ✽ अल्प विपत्ति की सहायता से गम्भीर विपत्ति टाली जा सकती है ✽ एक घटना ✽ कर्णाली में श्री श्री माँ

छठा अध्याय 162–202

✽ श्री श्री माँ का तारापीठ आगमन ✽ भैरवी माँ ✽ माँ की साधना की बात, आसन-क्रिया-त्राटक ✽ शास्त्र-मत ✽ माँ की साधना की बात ✽ हृदय भगवान् का आसन ✽ आघात देते ही शक्ति जागती है ✽ माँ के स्तुति-मन्त्र कहाँ से आते हैं ✽ शास्त्र और शिष्य ✽ नानाजी के मृत्यु-समय माँ ✽ तारापीठ में माँ का विचित्र दर्शन ✽ माँ का अपना खयाल और हमारे भाव में भावित खयाल ✽ माँ का पढ़ना-लिखना, पहली पोथी और दूसरी पोथी ✽ माँ का ऋषि-भाव ✽ तारापीठ त्याग, माँ का नाम क्या हैं..घर कहाँ ✽ माँ के साथ भोला-अभय ✽ नानाजी का शरीर-त्याग ✽ काशी में अवस्थान ✽ माँ के मुख से नानाजी की बात ✽ माँ की साधना की बात ✽ ज्ञानपापी, काला नाग और विश्री मीठी हँसी ✽ कृष्ण-तत्त्व ✽ भीड़ से माँ को कष्ट नहीं ✽ नानाजी के अंतिम समय माँ का संध्यान ✽ देहरादून में भोलानाथजी का कीर्तन ✽ रायपुर में माँ को ज्वर ✽ हरिद्वार, ठाकुरदास बद्रीदास की धर्मशाला में ✽ माँ का प्रथम औषध-सेवन ✽ बालिका-रूप में रोग-मूर्ति ✽ कल्याण वन अखण्ड भावघन माँ ✽ डॉ. पन्त के सेवाश्रम जाने की घटना (माँ का दर्शन)

सातवाँ अध्याय 203–242

✽ सेवाश्रम में कीर्तन ✽ शारदा की सुन्दर अवस्था की बात ✽ मन की गति के अनुसार आसन और प्राणायाम स्वभाव से हो जाते हैं ✽ नाम करते समय डॉ. पन्त का विचित्र दर्शन ✽ एक लक्ष्य से चलो, हिसाब न लगाओ ✽ माँ को देखकर किसी को ईर्ष्या होने पर भी उसका कल्याण ही होगा ✽ सत्य वस्तु की चिन्ता से सत्य भाव ही खिल उठता है ✽ कल्याण वन की बात ✽ रोग रूप अतिथि को भी सहन करना, सेवा

करना ✻ माँ की इच्छा ✻ कृच्छ्र साधन की अवस्था खयाल आने से वैसी फोटो उठी ✻ आसन-प्राणायाम की उपकारिता ✻ पूर्व वृत्तान्त, शाहबाग ✻ अग्नि और जल का बोध नहीं ✻ माँ चिड़िया का चोंच मारा हुआ फल खा नहीं सकती, फिर कुत्ते की जूठन भी खाती हैं ✻ माँ के शरीर में परिवर्तन ✻ लावण्य के भाव की बात ✻ माँ के भाव की बात, जल या वायु देखकर उसी भाव में भावित ✻ लीला ✻ इच्छाशक्ति रहने से भाव का खेल नहीं होता ✻ ननी बाबू की लड़की को माँ की कुमारी-पूजा ✻ नोआद्दा ग्राम में माँ की चमत्कारिक अवस्था ✻ हृदय उन्हीं का आसन है ✻ साकार-निराकार की उपासना ✻ हरिद्वार में दिल्ली के भक्तों का नाम-कीर्तन ✻ कीर्तन का भाव, यथार्थ समाधि क्या है ✻ माँ की साधना की बात, देव-देवियों का आसन ✻ होली की पूर्णिमा को माँ के साथ रंग खेलना, भोलानाथजी का मातृभाव ✻ भोलानाथजी भी माँ के पुत्र हैं ✻ कीर्तन से माँ का शरीर अच्छा हुआ ✻ क्या भगवान् में दया है ✻ माँ की लीला ✻ अद्वैत भाव के साधकों की अवस्था की बात ✻ माँ के बचपन की बात, स्पर्श-सुख भोग ✻ माँ के विवाह का सम्बन्ध ✻ माँ और आश्रम ✻ मातृ-दर्शन में शंकरी माँ ✻ ढाका के आश्रम में काली माता का दरवाजा खोलने की बात पर माँ की आज्ञा ✻ गोला को जनेऊ देने की बात

आठवाँ अध्याय 243–277

✻ माँ की बात-माँ के पैरों और हाथों की छाप ✻ साधकों का स्तर ✻ माँ स्वेच्छा से कुछ नहीं करती, हो जाता है ✻ छाप देने के खेल के समय की घटना ✻ मातृ-सन्निधान में शिशिर राहा ✻ समाधि ✻ लीला ✻ समाधि की बात अव्यक्त है ✻ माँ के प्रणाम की विभिन्न अवस्थाएँ ✻ माँ के भीतर साधकों की विभिन्न अवस्थाओं का विकास ✻ भाव-समाधि ✻ भाव का आभास और स्थिति में भेद ✻ जाति-भेद ✻ संस्कार के अनुसार भाव का प्रकाश है ✻ गंगा-माता के द्वारा माँ के कपड़े, दरी आदि ग्रहण से माँ की रोग-मुक्ति ✻ कुम्भ-स्नान पर साधुओं की शोभायात्रा ✻ माँ के एक भाव से रहने पर भी शरीर में विविध भावों की क्रियाएँ होती जाती हैं ✻ दीक्षा न देने पर भी शक्ति-संचार किया जा सकता है ✻ क्या भगवान् हैं ✻ सुख-दुःख उन्हीं की लीला है ✻ छंद से स्तोत्रादि निकलकर छंद में

ही लय प्राप्त हो जाते हैं ✽ सुर अनन्त हैं ✽ साधकों में बाहरी अवस्था एक–सी होने पर भी भेद रह सकता है ✽ शिशु और साधक की उपमा ✽ अवतारों का पूर्वजन्म है या नहीं ✽ मुक्त पुरूषों का पुनर्जन्म ✽ निर्विकल्प के बाद की अवस्था ✽ एक घटना–आत्मा और परमात्मा में आँख–मिचौनी का खेल ✽ अपनी साधना की अवस्था, देव–देवियों का भाव ✽ किरणचाँद दरवेश ✽ साधना की अवस्था–मुद्रा, अंगन्यास–करन्यास ✽ दूसरे के मन का भाव समझना ✽ शैतान का अर्थ ✽ अखण्ड भावघन ✽ कुम्भ–स्नान

नवाँ अध्याय 278–315

✽ हरिद्वार त्याग तथा देहरादून आगमन ✽ देहरादून वापस ✽ श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग ✽ भोलानाथजी की अस्वस्थता ✽ कमला नेहरू की बात ✽ सूक्ष्म शरीरियों का आगमन ✽ नानीजी आदि को दूसरी जगह भेजना ✽ भोलानाथजी का महाप्रयाण–वैशाख 23, बंगाब्द 1345 (6 मई, सन् 1938 ई.) ✽ भोलानाथजी के संन्यास ग्रहण का इतिहास

दसवाँ अध्याय 316–459

✽ ढाका में माँ का उत्सव ✽ काली–मूर्ति की अंग हानि ✽ काली–मूर्ति की चिर समाधि ✽ चिर कुमारी माँ ✽ बेबी दीदी की बात ✽ माँ के शरीर में भक्तों के नाना भावों की प्रतिक्रिया ✽ माँ के भीतर कोई संकल्प–विकल्प नहीं है ✽ भोलानाथजी के बारे में विविध बातें ✽ भोलानाथजी के अन्तिम समय की बात ✽ सोलन में आगमन ✽ माँ के शरीर की बात ✽ माँ के मुख से अनेक पुरानी बातें ✽ सोलन में नाम–कीर्तन और माँ की भावावस्था ✽ नाम से ही माँ का शरीर स्वस्थ रहता है ✽ देहरादून आगमन ✽ भोलानाथजी की बात ✽ भोलानाथजी आदि की मृत्यु के समय माँ की उपस्थिति ✽ शाहबाग की कुछ विशेष बातें ✽ माँ के मुख से स्तोत्रादि का प्रकाश ✽ कामाख्या पहाड़ पर माँ के शरीर से अनेक ऋषि–मुनियों का प्रकाश ✽ आटपाड़ा की विविध बातें ✽ सूक्ष्म में माँ का शरीर नष्ट करने का प्रयास ✽ माँ के बचपन की बात ✽ डाण्डी वालों से माँ की विविध बातें ✽ माँ के मुँह से विविध उपदेश ✽ माँ के मुँह से पुरानी बातें ✽ माँ के मुख से विविध बातें ✽ निर्मल बाबू की मृत्यु की बात ✽ माँ के साथ विविध पुरानी बातें ✽ माँ के साथ विविध

आलोचनाएँ ✻ माँ के हाथ में सुगन्ध ✻ सुकुमार के सम्बन्ध में विविध बातें ✻ देहरादून में प्रत्यावर्तन ✻ माँ के शरीर के सम्बन्ध में विविध प्रसंग ✻ मन स्थिर करने का उपाय ✻ एकाएक हरिद्वार की यात्रा ✻ माँ के भीतर विविध भावों का खेल ✻ माँ के शरीर में अद्‌भुत क्रियादि ✻ रोग की मूर्ति का प्रकाश ✻ भोलानाथजी के देहत्याग की बात ✻ कन्याश्रम प्रतिष्ठा के प्रसंग में ✻ माँ के शरीर में क्रिया का प्रकाश ✻ जन्मस्थान खेवड़ा की ओर ✻ खेवड़ा में आश्रम-स्थापन का श्री गणेश ✻ इलाहाबाद में माँ ✻ विविध आध्यात्मिक प्रसंग ✻ कलकत्ता में माँ ✻ माँ के पास सुभाषचन्द्र ✻ ढाका में तीन रात्रि ✻ नवद्वीप होकर विन्ध्याचल गमन ✻ संसार के दुःख-कष्टों का माँ के ऊपर प्रभाव ✻ विन्ध्याचल में माँ की बान्धवी की बात ✻ काशी में गंगा पर नाव में अवस्थान ✻ सभी सम्प्रदायों पर माँ का सम भाव ✻ माँ के साथ कविराज गोपीनाथ की विविध बातें ✻ इलाहाबाद में माँ ✻ श्री अरविन्द और महर्षि रमण के साथ माँ की भेंट हुई है क्या ✻ वैद्यनाथ धाम की यात्रा

ग्यारहवाँ अध्याय 560–604

वैद्यनाथ धाम में श्री श्री माँ (बंगाब्द1345 सन्) ✻ श्री श्री माँ के श्रीमुख से सूर्य त्राटक की व्याख्या ✻ त्राटक कैसे होता था ✻ श्री श्री माँ के शरीर में क्रिया और पूजादि कैसे होता था ✻ मैं जो पूजा कर रही हूँ, मैं भी वही हूँ, सब कुछ है ✻ प्राणवायु स्थिर करने का उपाय ✻ असली मित्र वही है जो परमार्थ में सहायक बनता है ✻ अनन्त की कहानी अनन्त है ✻ वैद्यनाथ से प्रस्थान

विभिन्न स्थानों में श्री श्री माँ ✻ श्री श्री माँ इलाहाबाद में ✻ कैसे आत्म-उन्नति हो, यही उद्देश्य होना चाहिए ✻ साधुओं के भेद ✻ बड़ौदा में माँ ✻ भोलानाथ की दीक्षा की बातें ✻ देवीदास को लेकर परेशानी

✻ **व्यास में अज्ञात वास (अगहन-माघ)** ✻ चान्दोद की ओर ✻ व्यास में नर्मदा तट पर अज्ञात वास ✻ फलाहारी माँ से परिचय ✻ योगानन्द स्वामीजी के आश्रम में ✻ एक महिला का माँ को अलौकिक रूप से दर्शन करना ✻ फलाहारी माता का माँ में अपनी बेटी का रूप देखना ✻ कम्बल वाले बकरे को सूक्ष्म शरीर में देखना ✻ श्री श्री माँ की दीक्षा की बातें ✻ श्री श्री माँ के हाथों पर जलते हुए निशानों के कारण ✻

भोलानाथजी की आज्ञा से पर-पुरुषों का मुँह देखना बन्द ✲ बचपन की बातें ✲ श्री श्री माँ के शरीर में क्रियाएँ ✲ नाव पर माँ की पूजा ✲ श्री श्री माँ के निकट कोई भेद नहीं ✲ भोलानाथजी के साथ माँ का जीवन-यापन ✲ भोलानाथजी में विभिन्न भावों का जागृत होना ✲ श्री श्री माँ के प्रभाव से भोलानाथजी में जागतिक भाव का दूर हो जाना ✲ भोलानाथजी की वासना को माँ के द्वारा ग्रहण करना ✲ माँ में रोने का भाव ✲ ज्ञानचन्द दे का माँ को बहिन के स्थान पर माँ बनाना ✲ माँ के चरण-स्पर्श से मनोकामना की पूर्ति ✲ अभ्यास से मन पर विजय प्राप्त किया जा सकता है ✲ एक साधु की दृष्टि में माँ की संगति दुर्लभ है ✲ ज्योतिष बाबू के साथ देहरादून की बातें ✲ श्री श्री माँ का सूक्ष्म द्वारा परमहंसदेव के यहाँ जाना ✲ श्री श्री माँ की यमुनाबाई पर कृपा ✲ फलाहारी माता से परिहास करना ✲ क्रियादि के अनुभव ✲ लड़कियों को उपदेश देना ✲ उनका नाम श्वास के साथ मिलाये रहो ✲ महिलाओं को उपदेश देना ✲ यमुना बाई के यहाँ ✲ श्री श्री माँ के भाव से पूर्वाभास

विभिन्न स्थानों में श्री श्री माँ (माघ-फाल्गुन) ✲ श्री श्री माँ का अज्ञातवास ✲ माँ का अज्ञातवास काल समाप्त हुआ ✲ सभी के लिये एक मार्ग नहीं होता ✲ निवारण बाबू की लक्षाहुति में माँ का सहसा पहुँचना

विंध्याचल में श्री श्री माँ (फाल्गुन) ✲ गृहस्थी छोड़ देने के प्रश्न पर माँ का लोगों से प्रश्न करना ✲ कच्चा खाने के बदले पकाकर खाना चाहिए ✲ साधन-भजन द्वारा वासना के बीजों को नष्ट करना चाहिए ✲ स्वयं ही मार रही हूँ और स्वयं ही चोट महसूस कर रही हूँ ✲ रोग की मूर्ति उन्हीं की मूर्ति है ✲ रामराज माँझी पर माँ की कृपा ✲ क्रियाओं का प्रकाश अपने आप इस शरीर से हो जाता था ✲ त्राटक का लक्ष्य है बिन्दु को अन्तरबिन्दु में पाना ✲ अपनी शक्ति का सदुपयोग करो

विभिन्न स्थानों में माँ (चैत्र)

✲ श्री श्री माँ काशी की ओर ✲ श्री श्री माँ की बातें ✲ अपात्र पर कृपा करने का फल ✲ भक्तों द्वारा वासन्ती, अन्नपूर्णा और राम के रूप में श्री श्री माँ की पूजा ✲ कीर्तन के समय श्री श्री माँ के शरीर में क्रियाएँ ✲ ईश्वर है या नहीं ✲ देहरादून गमन ✲ अशरीरियों से बातचीत ✲ सूक्ष्म शरीर वाले हाल-चाल जानने आते हैं ✲ मन को विषय से विमुख करने

के लिये साधन-भजन करना चाहिए ✽ सूक्ष्म में शिशु के रूप में शिव-विष्णु का आगमन ✽ दीदी माँ को दीक्षा दी गयी-उनका नाम मुक्तानन्द गिरि हुआ ✽ माँ के निकट एक विदेशी का मन शून्य हुआ

बारहवाँ अध्याय 605–780

✽ श्री श्री माँ उत्तरकाशी में (बंगाब्द 1346 सन्) ✽ श्री श्री माँ दुर्गम गंगोत्री मार्ग की ओर ✽ माँ गंगोत्री में ✽ माँ उत्तरकाशी में ✽ माँ ढाका में ✽ श्री श्री माँ अपने जन्म-स्थान खेओड़ा में ✽ श्री श्री माँ सुलतानपुर ननिहाल में ✽ श्री श्री माँ कुमिल्ला में ✽ श्री श्री माँ चटगाँव में ✽ श्री श्री माँ विद्याकूट की ओर ✽ माँ कलकत्ता में ✽ माँ जमशेदपुर में ✽ माँ कलकत्ता में ✽ माँ देहरादून में ✽ माँ शिमला में ✽ माँ सोलन में ✽ श्री श्री माँ सुकेतराज के यहाँ ✽ माँ बैजनाथ में ✽ माँ बैजनाथ में तारानन्द स्वामी के यहाँ ✽ माँ काँगड़ा-ज्वालामुखी में ✽ श्री श्री माँ बरेली में ✽ श्री श्री माँ अल्मोड़ा में ✽ माँ बरेली में ✽ माँ विन्ध्याचल की ओर ✽ श्री श्री माँ विन्ध्याचल में ✽ माँ इलाहाबाद में ✽ माँ नवद्वीप में ✽ माँ अस्वस्थ हालत में कलकता और आगरपाड़ा में ✽ श्री माँ वृन्दावन में

✽ ✽ ✽

पहला अध्याय

कैलास यात्रा

ज्येष्ठ 30 रविवार, बंगाब्द 1344, 1937 ईस्वी– आज सुबह 8 बजे हम 'माँ' के साथ कैलास के लिये रवाना हुये। साथ के दूसरे लोग अलमोड़ा से नीचे लौट जायेंगे। माँ को छोड़ते समय सभी रोने लगे। कलकत्ता से नगेन दादा, दिल्ली से नरेन चौधरी सपरिवार आये थे, देहरादून से हरीराम और माणिक साथ ही थे – सभी लौट गये। 'माँ', मैं, भोलानाथजी, ज्योतिष दादा, स्वामी अखण्डानन्द, टुनू (प्राणकुमार बाबू का लड़का), दासू दादा और एक नौकर (केशवसिंह), रवाना हुये। पहाड़ी लड़की पार्वती भी हमारे साथ चली। 'माँ' के साथ जाने की इच्छा से वह अलमोड़ा में प्रतीक्षा कर रही थी।

दिन के 11 बजे हम 'बारछीना' नामक स्थान पर एक फारेस्ट बंगले में पहुँचे। बड़ा ही सुन्दर प्राकृतिक दृश्य था। वहाँ हम लोग जलपान करके तीसरे पहर 3 बजे तक विश्राम करते रहे। यह बंगला अलमोड़ा से 8 मील दूर स्थित है। वहाँ से रवाना होकर और भी साढ़े 5 मील दूर 'धौलछीना' में हम लोग शाम होने से पहले ही पहुँच गये। वहाँ रसोई और भोजन हुआ। रात डाक बंगले के बरामदे में ही बिताई। सोमवार 31 तारीख को भोर पाँच बजे फिर चलकर हम 11 मील दूर 'सेराघाट' पहुँचे।

'सेराघाट' की नदी के सामने बहुत से बड़े–बड़े पेड़ थे, हमने एक पेड़ के नीचे रसोई करके भोजन–पर्व समाप्त किया। उसके बाद पेड़ के नीचे ही लेटे रहे। धूप में पथ चलना कठिन था। 10–12 कुली बोझा लिये साथ चल रहे थे। 5 डाण्डियाँ आई थी। उनके साथ 25 कुली थे। पार्वती के साथ और भी एक महिला अपनी छोटी बच्ची और भाई को साथ लेकर चल रही थी। उनके साथ भी दो कुली थे। कुली पहुँचकर पेड़ के नीचे रोटी बना और खाकर सभी विश्राम करने लगे। 25 सेर से अधिक बोझा एक कुली ढो नहीं सकता। अलमोड़ा में टुनू के लिये घोड़ा नहीं मिला था– रास्ते से घोड़ा लिया जायेगा। एक डाण्डी खराब हो जाने से एक दूसरी डाण्डी 'सेराघाट' से ले ली गई।

जगह–जगह पर अभी तक एक–एक दुकान दिखाई पड़ती थी। उससे दाल, चावल, घी, नमक आदि ले लेते थे। सुना है आगे कोई दुकान नहीं मिलेगी। साथ में भी कुछ–कुछ खाने का सामान लाया गया था। सुना है कि गर्ब्यांग के ऊपर कुछ भी नहीं मिलेगा, इसलिये मेवा, मिसरी, काली मिर्च का चूर्ण, इमली, अचार आदि चीजें साथ लाई गई थी। बर्फ पर चलने के लिये ऐसी–ऐसी चीजें साथ रखने की आवश्यकता है– गर्म कपड़ा, चश्मा, वाटर–प्रूफ आदि साथ रखने पड़ते हैं। सुना है कि गर्ब्यांग के रास्ते में चलते–चलते कोई–कोई सिर में चक्कर आने के कारण बेहोश होकर गिर पड़ते हैं। इसलिये अलमोड़ा से एक महिला ने काली मिर्च, अमचूर तथा और भी कुछ चीजें मिलाकर चूर्ण बना दिया था। उन्होंने कहा था– इसे खाने से दिमाग अच्छा रहता है। सुना है कि गर्ब्यांग के ऊपर आग नहीं जलाई जा सकती, आटा, सत्तू आदि जल में घोलकर पीना पड़ता है, चीजों की कीमत भी अत्यधिक है।

आनन्द से सब लोग चल रहे थे परन्तु माँ, ज्योतिष दादा और मेरी तबियत अच्छी नहीं थी। आज भोलानाथजी कुछ दूर तक पैदल चल रहे थे। माँ तथा अखण्डानन्दजी भी कुछ–कुछ चले थे। ज्योतिष दादा और मैं डाण्डी में ही थे। हिमालय पर्वत के प्राकृतिक दृश्यों की बात मैं और क्या लिखूँ, बहुतों ने उनका विस्तृत वर्णन किया है। सम्भवत: इसी प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण ही ऐसा कठिन मार्ग भी लोग तय करने में समर्थ होते हैं। ऐसा मार्ग और उसमें माँ का साथ! माँ जब पहाड़ पर चलने लगती थी, डाण्डी में बैठी हुई मैं दूरी पर अपूर्व दृश्य देखती थी! माँ का रूप मानो फैल रहा है। बढ़ाकर नहीं लिख रही हूँ, हृदय ने जैसा अनुभव किया वही लिख दिया। माँ के सारे शरीर में एक महान् नि:संकोच भाव, सरल सुन्दर दृष्टि भली लग रही थी। सम्भवत: इसी कारण मैंने ऐसा मनोमुग्धकर दृश्य देखा। मैं नहीं समझ पाती कि माँ का रूप भी बढ़ रहा है या नहीं।

कलकत्ता से रामतारण बाबू (एडवोकेट) ने लिखा है। "बिड़ला मन्दिर में मैं दूर से ही माँ की मूर्ति देखा करता था – निराभरण किन्तु माँ कैसा अपूर्व सौन्दर्य फैलाकर बैठी हुई हैं। चारों ओर कितनी ही महिलायें कैसी सज–धजकर बैठी हुई हैं, किन्तु माँ के रूप के सामने सभी मलिन मालूम होती थी। माँ की हँसी, कभी मृदु, कभी उच्च, कैसी मधुर थी वह हँसी!

आज भी उसे सोच-सोचकर मैं सब कुछ भूल जाता हूँ।'' यथार्थ में ही माँ के चलने की भंगिमा ही कितनी सुन्दर है। यह केवल भक्तों की बात ही नहीं है। एक दिन भी जिसने माँ को देखा है वह भी यही कहेगा। मैं यह कहा करती थी – ''माँ, मानो तुम पहले से लम्बी हो गई हो।'' माँ हँसकर कहती थी– ''तुम्हारा भी कैसा कहना है, बूढ़ा होने पर कोई लम्बा होता है?'' माँ का शरीर अब कुछ मोटा हो गया है, ऊँचाई में भी ठीक लगता है, चेहरा मानो चमक रहा है। मैं कहा करती थी– ''माँ, तुम सूख गई हो, कुछ मोटी हो जाओ।'' माँ कहती–''अच्छा, देख लेना मैं अवश्य मोटी हो जाऊँगी।'' मोटी होकर कहती–''यह देखो, मैं मोटी हो गई।'' कई दिनों से मैं देख रही थी कि कुछ मोटी होने से माँ की चलने-फिरने में वैसी फुर्ती नहीं रही। इसलिये मैंने फिर कहा– ''नहीं माँ और मोटी न हो, अब जरा पतली हो जाओ।'' माँ एक दिन एक व्यक्ति से कह रही थी– ''अब मैं दुबली हो जाऊँगी, क्योंकि खुकुनी ने कहा है 'मोटी हो जाओ, मोटी हो जाओ'' इसलिये मैं मोटी हो गई। अब वही कह रही है कि अब जरा पतली होना अच्छा है। इसलिये अब थोड़ी दुबली होना होगा।'' मैं जानती हूँ कि वह अवश्य ही पतली हो जायेंगी। सभी माँ के इच्छाधीन हैं। यह उसी का प्रमाण मात्र है।

खैर, आज तीसरे पहर और भी कुछ खाकर, रात्रि के लिये किसी स्थान पर आश्रय लेना होगा। बदली छाई हुई थी, दिन के 3 बजे 7 मील दूर 'गणई' नामक स्थान के लिये हम लोग रवाना हुये। सन्ध्या के पूर्व ही वहाँ पहुँच गये। यहाँ भी एक डाक बँगले में हमने रात बिताई। यहाँ एक डाकखाना भी है। सभी लोग डाक बँगले में रह नहीं पाते। हम चिट्ठी लेकर आये थे। आते समय रास्ते में हमारी साथिन, 'गर्ब्यांग' की लड़की पार्वती ने एक घटना सुनाई, जो इस प्रकार है – लगभग 5 वर्ष पहले जब वह अपने गाँव में थी, एक दिन रात को उसने स्वप्न में देखा कि कुछ लोगों के साथ वह कहीं जा रही है। उन लोगों के चेहरे अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ते थे। माँ का चेहरा देखा था, मानो सफेद धोती पहने एक माताजी हैं। भोलानाथजी का चेहरा उनकी दृष्टि में साफ दिखाई पड़ा था। इस स्वप्न के देखने के अनन्तर वह शिक्षा के लिये अलमोड़ा आई थी। फिर 5 वर्ष के बाद शिक्षा समाप्त कर अब हमारे साथ अपने देश को चल रही है। गत बार जब पार्वती ने अलमोड़ा में हमें देखा था उसी समय भोलानाथजी को देखकर उसे अपने

स्वप्न की बात याद आई थी और इन्हीं के साथ कैलास जाने का निश्चय किया था। माँ भी विशेष रूप से इसी को हमारे साथ चलने के लिये कह गई थी। एक मास से वह हमारे साथ चलने के लिये प्रतीक्षा कर रही थी। कैसा आश्चर्यमय संयोग! गत बार उसने स्वप्न की बात नहीं बताई थी। इसी बार कही। माँ ने उस बात को सुनकर मुस्कुराते हुये कहा– ''स्वप्न की पूर्ति के लिये ही यह पढ़ने के लिये अलमोड़ा आई थी।'' यह स्थान भी कैसा मनोहर है।

यहाँ आते समय रास्ते में एक गृहस्थ ब्राह्मण ने पूछा– ''माताजी कहाँ हैं? माँ की डांडी दिखा देने पर उन्होंने माँ के चरणों में कुछ फूल और फल चढ़ाकर प्रणाम किया। रात को हमारे बँगले में वही ब्राह्मण माँ के लिये कुछ दूध और शाक लेकर पहुँचे। उनसे पूछा गया– ''आपने कैसे जाना कि माताजी आ रही हैं?'' उन्होंने उत्तर दिया– ''मैंने समाचार पत्र में देखा है कि माँ आनन्दमयी कैलास यात्रा को जा रही है। उसी दिन से मैं माँ के दर्शनों के लिये बाट जोह रहा हूँ। आज माँ के चरण दर्शन कर मैं धन्य हुआ।''

और भी न मालूम कितने भक्त इस अंचल में पड़े हुये हैं– कौन जाने? इसीलिये करुणामयी माँ बंग देश छोड़ इसी ओर खिंच आई हैं। अब देखती हूँ, कितने अल्प परिचय से ये लोग माँ को अपना समझकर सरल मन में 'देवी भगवती' के रूप में मान रहे हैं।

गणई से बेनीनाग यात्रा

आषाढ़ 1 मंगलवार– हम लोग सुबह 6 बजे 'गणई' से 'बेनीनाग' रवाना हुए। बेनीनाग 13 मील दूर था, वहाँ जल की सुविधा थी, इसलिये हमने वहीं खाना–पीना कर दोपहर को विश्राम लेने का निश्चय किया। एक बात लिखना मैं भूल गई– हमारी यात्रा के पूर्व दिन अलमोड़ा में नरेन बाबू की पत्नी ने माँ को एक लाल किनारी की रेशमी साड़ी पहनाकर, केश सँवारकर, फूल माला गले में डालकर फोटो खिंचवाई थी। बाद में कहा था– ''माँ, तुम्हारे सिर पर कपड़ा कभी नहीं देखा। आज सिर पर कपड़ा डालकर देखूँगी।'' माँ ने कहा– ''नहीं, जैसा चल रहा है, वैसा ही चलने दो।'' बाद में करुणामयी माँ ने शिवमन्दिर में जाकर सिर पर कपड़ा डाल खड़ी हो भक्त की मनोकामना पूर्ण की। रूप देखकर उपस्थित भक्तों ने माँ के चरणों पर

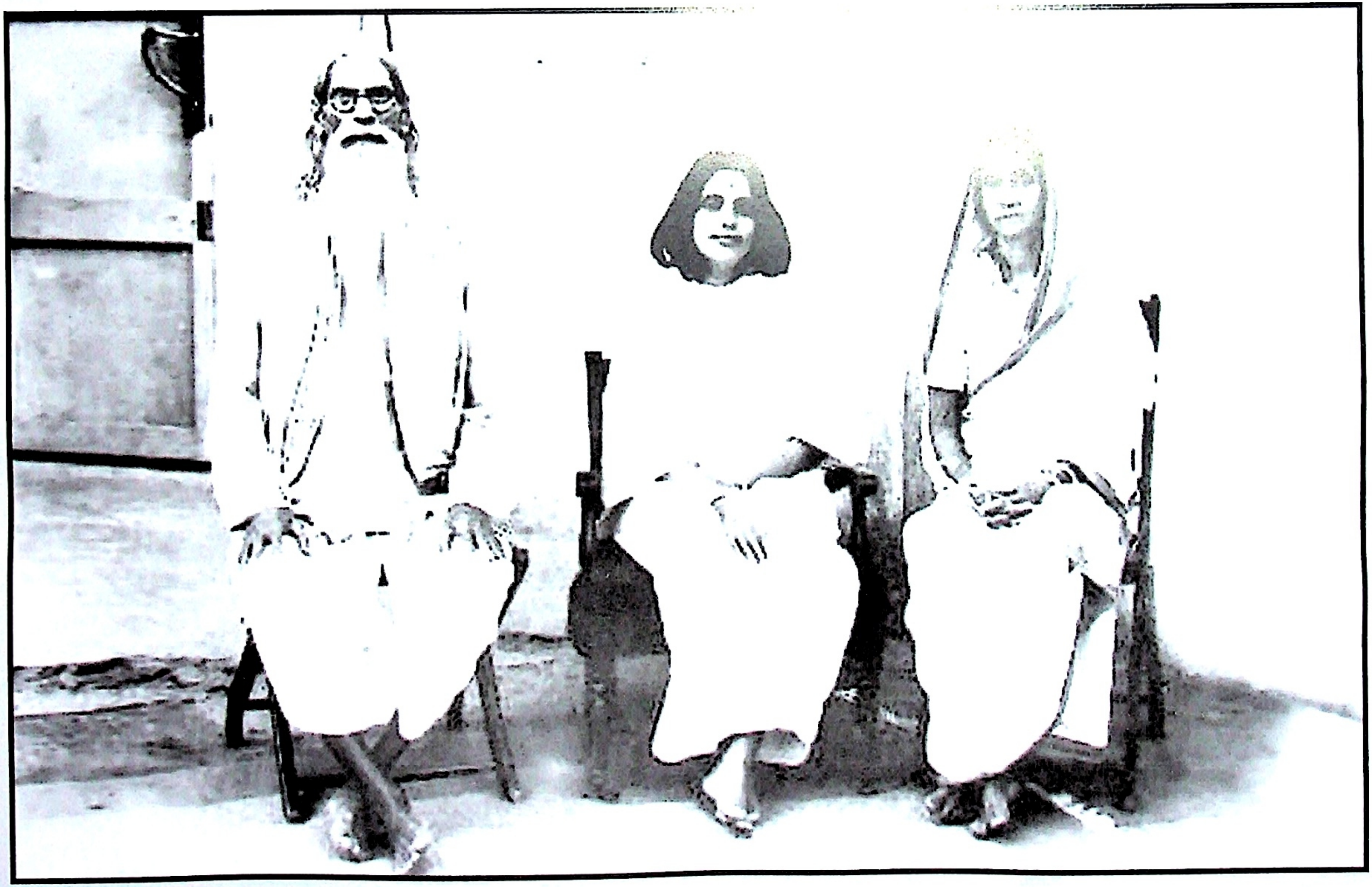

खेवड़ा में श्री श्री माँ अपने
जन्म–स्थान को इंगित करते हुए।

गुरूप्रिया दीदी
श्री श्री माँ को पुष्पाजंलि देते हुए।

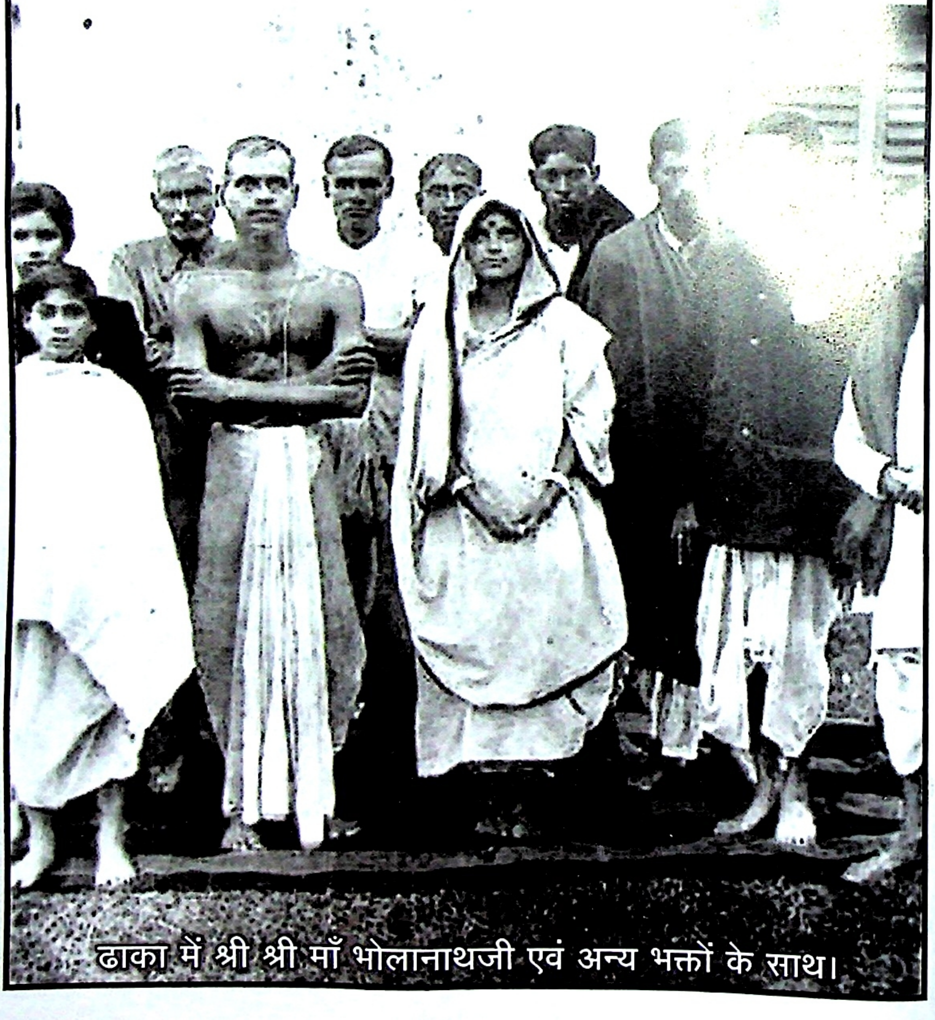

ढाका में श्री श्री माँ भोलानाथजी एवं अन्य भक्तों के साथ।

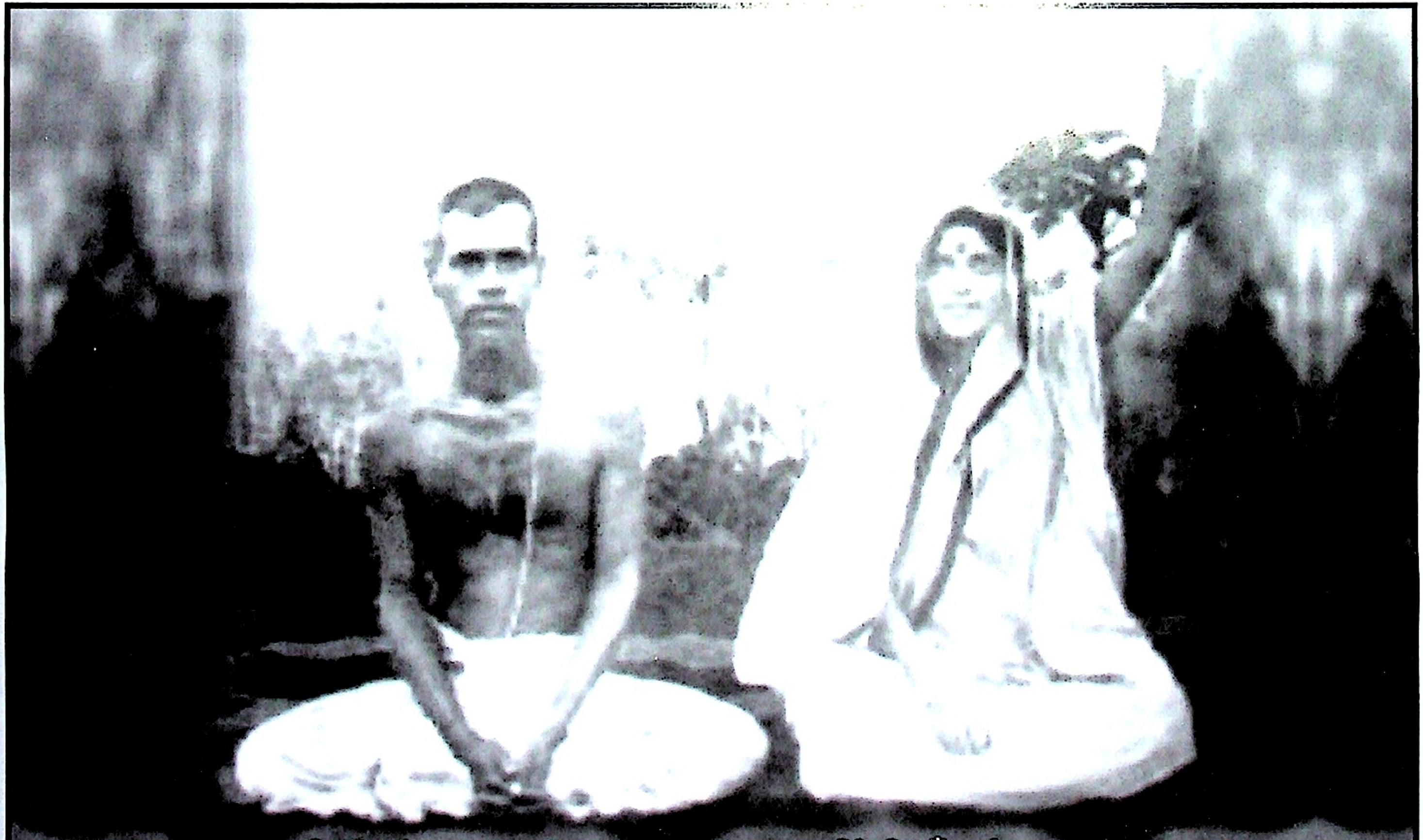

श्री श्री माँ प्रथम काली पूजा के अवसर पर मूर्ति की ऊँचाई बताते हुए।

श्री श्री माँ
गुरुप्रिया दीदी एवं अन्य भक्तों के साथ।

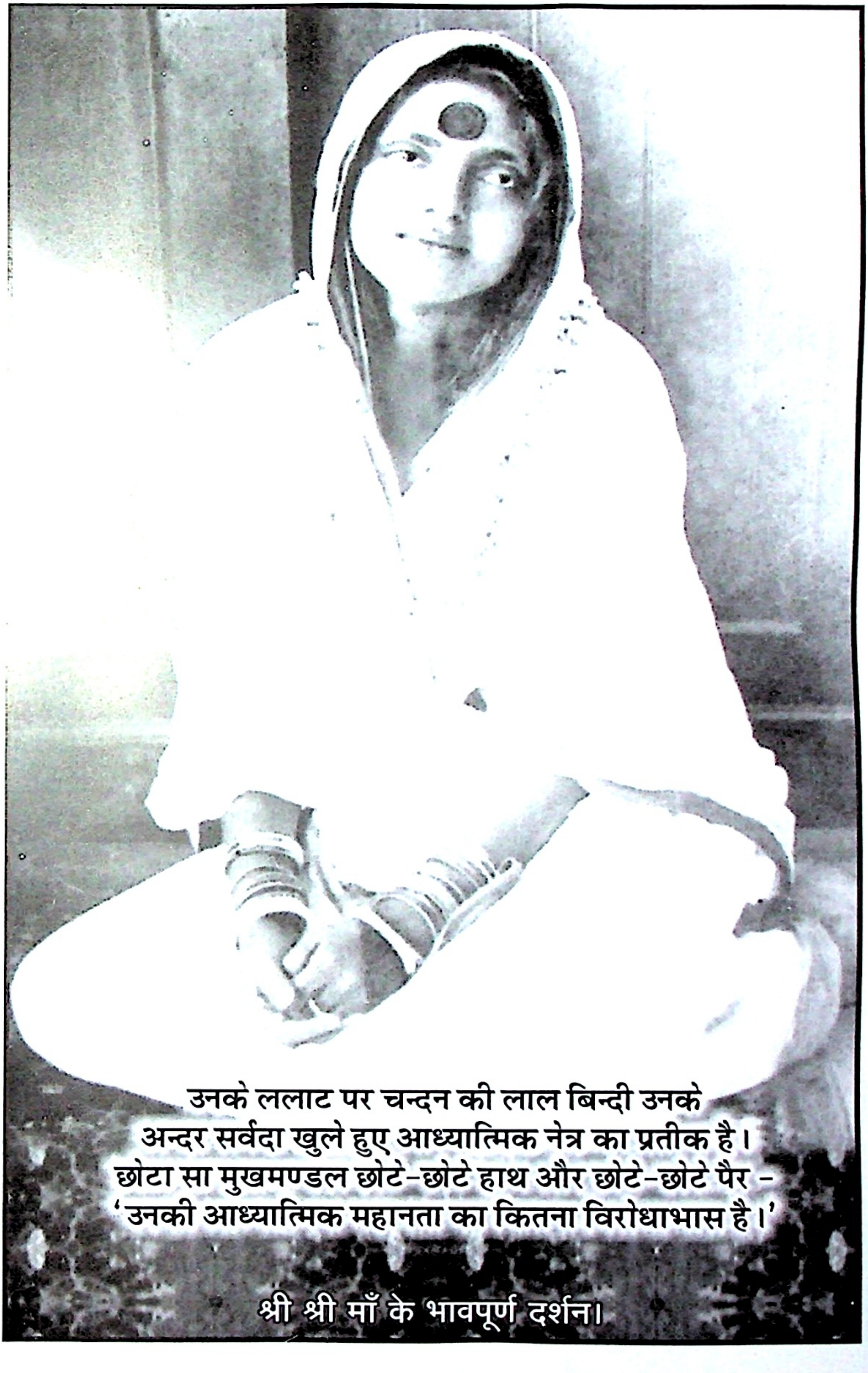

उनके ललाट पर चन्दन की लाल बिन्दी उनके
अन्दर सर्वदा खुले हुए आध्यात्मिक नेत्र का प्रतीक है।
छोटा सा मुखमण्डल छोटे-छोटे हाथ और छोटे-छोटे पैर -
'उनकी आध्यात्मिक महानता का कितना विरोधाभास है।'

श्री श्री माँ के भावपूर्ण दर्शन।

श्री श्री माँ का ध्यान मग्न अवस्था में
फोटो लेने पर श्री भाईजी का भी भाव दिग्दर्शन होना।

गिरकर प्रणाम किया। माँ ने कहा- ''कैसी दुलहिन सजाई है?'' नरेन बाबू ने कहा- ''यह क्या, माँ को भी क्या दुलहिन सजाया जा सकता है?'' रहस्यमयी फिर लजीली नव-वधू की तरह घूँघट खींचकर खड़ी हो गई। भक्त लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। आने के दिन भी नरेन बाबू ने माँ की फोटो ली।

दोपहर को बेनीनाग तक न जाकर 10 मील दूर 'रानी' नामक स्थान पर खाना-पीना करके 3 बजे हम बेनीनाग रवाना हुये। मार्ग बहुत चढ़ाई का था, सन्ध्या समय बेनीनाग पहुँचकर ऊपर डाक बँगले में न जाकर एक स्कूल के बरामदे में सब लोग पड़े रहे। यहीं रात बिताई गई। बहुत ही सुन्दर स्थान है। हमारे साथ के एक आदमी के सम्बन्धी यहाँ रहते हैं। उन्हीं के यहाँ से सबको निमन्त्रण आया। इस स्थान पर अच्छा बाजार है। स्कूल, दवाखाना आदि भी अच्छे हैं। अनेक लोग माँ के दर्शनों के लिये आये।

आषाढ़ 2, बुधवार–आज भोर साढ़े पाँच बजे हम लोग 10-11 मील दूर 'थाला' के लिये चल पड़े। रास्ते में 2-1 मील चलकर डांडी वाले सुस्ताया करते हैं, एक स्थान पर जाकर विश्राम करने लगे। हँसी-दिल्लगी में ज्योतिष दादा ने स्वामी अखण्डानन्दजी को हमारे दल के ''राजा' और अपने को 'युवराज' कहा। उसके बाद डांडी उठाकर जब फिर कुली लोग कुछ दूर चलकर दूसरे स्थान पर विश्राम करने के लिये बैठना चाहते थे तो दिखाई पड़ा कि स्वामीजी की डांडी एकाएक किसी पत्थर में टकराकर टूट गई है और सन्दूक की खरोंच से ज्योतिष दादा की जाँघ से खून निकल रहा है तथा कपड़ा भी फट गया है। उस समय रास्ते में बैठकर ही इस बात पर हँसी होने लगी। मैंने कहा- ''अपने को कर्त्ता मान लिया था, इसीलिये राजा और युवराज का इतनी-सी दूर आते ही यह हाल!'' माँ भी हँस पड़ी। ज्योतिष दादा हँसकर बोले- ''इस बात को तुम अपनी नोट बुक में लिखकर रखना।'' वास्तव में ही, सोचने पर इस बात का कुछ मूल्य है।

माँ की आकर्षणी शक्ति

अस्तु, थोड़ी दूर जाने पर ही एक पहाड़ी बुढ़िया को सिर पर कुछ लिये जाते हुये देखकर माँ ने उसे बुलाया - ''माताजी, कहाँ जा रही हो?'' बोझा सिर पर लिये हुये ही उसने जवाब दिया- ''उधर ही जा रही हूँ।''

इतना कहकर वह चली जा रही थी। हमारी डांडियों को रास्ते पर रखकर कुली सुस्ता रहे थे। बुढ़िया माँ की ओर निहारकर फिर और आगे नहीं बढ़ी। धीरे-धीरे माँ के पास आ बैठी। साथ में कई बच्चे भी थे। बुढ़िया की पौशाक देखकर मालूम होता था कि उसकी हालत अच्छी थी और चेहरा भी बुद्धिमती का सा था। धीरे-धीरे बुढ़िया माँ से अनेक तरह की बातें करने लगी। जब कुली डांडी उठाकर चलने लगे तो बुढ़िया खड़ी होकर बोली- "माँ तुम्हारी बातें कैसी मीठी लग रही थी, इसलिये जा न सकी और तुम्हारे पास आ बैठी। हम गरीब आदमी हैं तुम्हारे साथ क्या बातें कर सकती हूँ - तुम्हारी बात सुनने के लिये ही बैठ गई थी।" डांडियों के बहुत दूर चले आने पर भी दिखाई पड़ा कि बुढ़िया तब तक भी खड़ी होकर हमारी ओर एक-टक देख रही है।

आज 10 बजे 'थाला' पहुँचकर एक स्कूल के बरामदे में स्थान ले लिया। यहाँ भी डाकखाना आदि है। 'सेराघाट' में सरयू नदी दिखाई पड़ी थी और यहाँ गरजती हुई रामगंगा बह रही है। यह स्थान भी बहुत ही मनोरम है। पर्वतों के महान् दृश्यों से अपने आप हृदय में विशाल भाव जाग उठते थे। इस यात्रा में और कुछ फल हो या न हो पर्वतों के स्वाभाविक सौन्दर्य से हृदय में जो मुक्त और महान् स्थिर धीर भाव जाग उठता है उसकी तुलना नहीं है। कैसे सुन्दर वे प्राकृतिक दृश्य! जो लोग इस रास्ते से चले थे वे सभी मेरी इस बात की सत्यता स्वीकार करेंगे। भाषा से हृदय के उस भाव का प्रकाशन सम्भव नहीं है। जो हो, आज की रात हम यहाँ बितायेंगे यही निश्चय हुआ।

डीडीहाट

आषाढ़ 3, बृहस्पतिवार- आज भोर में हम लोग थाला से रवाना हुये। अभी भी यहाँ बहुत ही गर्मी मालूम हो रही थी, परन्तु रात में कम्बल ओढ़ना पड़ता था। जल ठंडा हो चला था। दो दिनों से ही जल बहुत ठंडा मिल रहा था। आज हम 10 मील दूर 'डीडीहाट' जाकर दोपहर को विश्राम करने बैठे। रास्ते में 'अस्कोट' के राजा के साथ भेंट हुई थी। उन लोगों ने भी 'दिनाजपुर' के राजा के साथ स्वामी ज्ञानानन्द आदि कैलास की यात्रा के लिये जा रहे थे, उनके मुख से माँ की कैलास-यात्रा का समाचार सुना था। रास्ते में वे माँ की खोज करते हुये आ रहे थे, बताया। माँ की चरण वन्दना

करके राजा ने अस्कोट में चिट्ठी लिखकर दे दी जिससे माँ को वहाँ जाकर कोई असुविधा न हो।

अस्कोट में राज परिवार के द्वारा माँ की संवर्धना

खाने-पीने के बाद हम 7 मील दूर 'अस्कोट' के लिये चल पड़े। सुना, वहाँ अच्छी धर्मशाला है। हम धर्मशाला में ही रहेंगे, ऐसा निश्चय हुआ। आज सुबह हम रास्ते में बारिश से बहुत भीग गये थे। अस्कोट के राजा के साथ टेहरी के राजा का सम्बन्ध है, सुना। पहाड़ी राजाओं में नियम-निष्ठा अत्यधिक है। यद्यपि टेहरी के राजा विलायत गये थे तो भी अपनी राजधानी में उन्हें आहार आदि विषयों में पूरा हिन्दूपन निभाना पड़ता है। अस्कोट के राजा भी हिन्दू आचार-विचार में कट्टर हैं। जब भी जहाँ जाते हैं, अपने देश का ब्राह्मण रसोईया लेकर जाते हैं। पूजा-पाठ भी बहुत करते है। सोलन के राजा को भी ऐसा ही देखा है। शुद्ध वस्त्र पहनकर खाते-पीते हैं। चेहरे से भी एक शुद्ध भाव का आभास मिलता है।

अस्तु, हम सन्ध्या समय अस्कोट आकर धर्मशाला में ठहर गये। राजा की चिट्ठी देखकर सभी आकर हमें क्या-क्या चीजें चाहिये, खबर लेने लगे। उन्होंने सबके भोजन का प्रबन्ध कर दिया। खबर पाकर थोड़ी देर में राजा की बहन तथा भाई, भावज और अन्य स्त्रियों को लेकर माँ के दर्शनों के लिये आये। पहाड़ की हवा से हम सब की कमजोरियाँ घट रही थी। स्वामीजी की डांडी की मरम्मत कर ली गई। रास्ते में दूसरी डांडी नहीं मिल सकती, कुली लोग बहुत ही थके हुये थे। गर्ब्यांग तक पहुँचना मुश्किल मालूम होने लगा। ये कुली 25 या 30 सेर से अधिक बोझा नहीं ढो सकते। हर कुली की मजदूरी रोज एक रुपया थी।

बलवाकोट रवाना

आषाढ़ 4, शुक्रवार- हमने आज सुबह अस्कोट में ही खाना-पीना करने का निश्चय किया। देखती हूँ रास्ते भर में माँ के आने की खबर बहुतों ने ही पाई है और वे माँ के दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मैंने हँसकर कहा- "माँ, तुम्हारे इतने अधिक लड़के-बच्चे इधर हैं तो तुम केवल बंगाल में ही क्यों बैठी रहोगी। शायद इसीलिये इधर खिंच आई हो।" राजा के पेशकार की पत्नी आदि बहुत-सी स्त्रियाँ फल-फूल लेकर माँ के दर्शनों के लिये

आई। रानी ने 10 बजे के करीब आदमी भेजकर माँ को राजभवन में बुलाया। वहाँ तरह-तरह की खाद्य वस्तुओं को लाकर माँ का भोग दिया। सुना कि राजा के जो भाई अलमोड़ा में रहते हैं उन्होंने चिट्ठी भेजी है कि माँ की खातिरदारी अच्छी तरह की जानी चाहिये।

आज राजभ्राताओं के अनुरोध से दोपहर को यहीं खाना-पीना करना तय हुआ। राजमहल से ही खाने-पीने की सारी चीजें आ गई। हम लोग खाना-पीना समाप्त कर दिन के एक बजे 10 मील दूर 'बलवाकोट' रवाना हुये। रास्तें में माँ को पेशकार अपने घर ले गये। वहाँ खूब आदर-सत्कार किया। पेशकार के घर के लोगों ने लौटते समय इसी रास्ते आने के लिये माँ से बहुत विनती की। रानी और राज्य के दूसरे लोग माँ के दर्शन पाकर बहुत ही प्रसन्नता प्रकट करने लगे। रानी साहिबा ने कहा- ''माँ, आपको घर में लाकर घर पवित्र कर लिया।'' पेशकार का एक लड़का भी अलमोड़ा रहता है। उसने भी घर पर चिट्ठी भेजकर सूचना दी थी - ''माँ जा रही हैं। उनका आदर-सत्कार अच्छी तरह करना चाहिये।'' इस कारण सभी माँ के दर्शनों के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे, बोले।

बारिश चल रही थी, गर्मी भी अधिक थी, खासकर आज धूप में चलने के कारण वह धूप बहुत ही तीव्र मालूम होने लगी। रामगंगा के बाद गौरीगंगा दिखाई पड़ी, बड़े वेग से बहने वाली नदी थी। आज 5 मील आने पर कालीगंगा दिखाई दी। गौरीगंगा और कालीगंगा का जो संगमस्थल है वही कैलास का 'गेट' (प्रवेश द्वार) कहलाता है। लोग यहाँ स्नान-दान करते हैं। रास्ते का कुछ अंश यहाँ वर्षा से टूट गया था। कुली भी हैरान थे, जल और दुकान की सुविधा के कारण हम हर समय डाक बँगले में नहीं जा रहे थे। अस्कोट में कपड़े की दुकान आदि भी थी। रानी ने अपनी डांडी माँ के लिये दे दी थी, माँ यहाँ से उसी डांडी में चली।

बलवाकोट

सन्ध्या के बाद हम 10 मील दूर बलवाकोट पहुँचे। परन्तु गलत रास्ते से आने के कारण ऊपर न जाकर नीचे आ जाने से रहने की कहीं जगह न मिली। पेड़ों के नीचे डांडियों के भीतर ही रात बिताने का प्रबन्ध किया गया। पार्वती, माँ के लिये एक छोटा तम्बू लाई थी। वही लगा दिया गया, कुछ

चीजें भी उसी में रखी गई। गाँव के मुखिया के लिये राजा की चिट्ठी थी, उसे पहाड़ पर से बुला लिया गया। उसने कहा– ''आप लोग गलत रास्ते से आये हैं, ऊपर हमारे गाँव के स्कूल में रहने की जगह थी।'' अब रात के अँधेरे में ऊपर जाना सम्भव नहीं था। गाँव के मुखिये ने थोड़ा गाय का दूध मँगवा दिया। हमारे सम्भलकर बैठते न बैठते ही बड़े जोर का आँधी–पानी शुरू हो गया। डांडियों के भीतर यथासम्भव हम सूखे रहे, माँ भी भीग गई क्योंकि इतनी अधिक बारिश में डांडी के भीतर भी अधिक सूखा रहना सम्भव नहीं था। रात भर मूसलाधार पानी पड़ता रहा। थोड़ा उजाला होने पर हम बारिश के भीतर ही रवाना हो गये। चीज–वस्तुयें सब छोड़ दी गई। बाद में जायेंगी। केवल हमारी 5 डांडियाँ चली आई।

धारचूला

पानी के कारण बहुत ही कष्ट हो रहा था। रास्ते में एक गाँव के भीतर कुछ दूध (रुपये में 2 सेर) पाकर सबने थोड़ा–थोड़ा पी लिया। बीच–बीच में रास्ता बहुत ही खराब था। नदी की तेज धार में पार होना सम्भव न हुआ, बहुत मुश्किल से कुलियों की पीठ पर सवार होकर हम नदी पार हुये। माँ की डांडी 5–7 आदमियों ने पकड़कर किसी तरह पार लगाई। मार्ग में और भी एक नदी पार करनी पड़ी। बारिश घट चली थी, थोड़ी धूप भी निकल आई। हम लोग वेला 11.30 बजे 'धारचूला' के डाक बँगले में पहुँचे। कम्बल वस्त्र आदि सुखाने के लिये धूप में डाल दिये गये। कुलियों के न पहुँचने के कारण खाने–पीने का कोई इन्तजाम न हो सका। पहाड़ी लड़की पार्वती बहुत मदद देने की चेष्टा कर रही थी।

धारचूला का इतिहास

धारचूला का इतिहास सुना कि– वेदव्यास जब कैलास से नीचे उतरे थे तब उन्होंने इन्हीं तीन पर्वतों की चोटियों पर हाँडी चढ़ाकर रसोई पकाई थी। तीन पर्वतों को चूल्हा बनाया था, इस कारण इसका नाम 'धारचूला' पड़ा। तीन पर्वत ठीक चूल्हें के रूप में ही सजाये हुये थे। यहाँ का गाँव काफी बड़ा था, काली गंगा का शब्द बहुत ही तीव्र था, मानो समुद्र का गर्जन हो। काली गंगा के किनारे–किनारे हम चल रहे थे। छोटे से डाक बंगले में आकर हम ठहर गये। चारों ओर बहुत से पर्वत–शिखर सिर ऊँचा किये खड़े

थे। अचल-अटल ऋषि की तरह मानो युग-युगान्त से विश्वपिता के ध्यान में मग्न हैं। बाहरी झंझावत उन्हें हिला भी नहीं सकते। पैर के नीचे नदी भी अपने प्रभु के ही गुणगान करती हुई चल रही थी। यहाँ आने पर अपने आप ही हृदय में एक गम्भीर भाव का उदय होता है।

माँ पूर्ण जो हैं

सामान आने पर खाना-पीना करते हुये 3 बज गये। आते समय रास्तें में शाक-भाजी जो कुछ मिली, लाये थे। सबने मिलकर आनन्द से उसी को खाया। इधर विशेष कुछ मिल नहीं सकता, इस कारण बहुत-सी चीजें जुटाकर लानी पड़ी थी। दुर्गम मार्ग से चलने में डर के अनेक कारण थे, इसलिये भी बहुत-सी जरूरी चीजें लाई गई थी। कलकत्ता से अलमोड़ा तक चीजें जुटा-जुटाकर लानी पड़ी थी। मैं तो हैरान थी, बहुत दिनों से सन्दूक-पिटारों का कारोबार नहीं था। इतनी चीजों का भी प्रयोजन न पड़ा था। इसलिये सारी चीजों को मैं संभाल नहीं पा रही थी। लड़के बाजार करते हुये बेदम हो रहे थे। जो जिस-जिस की जरूरत बतला रहा था वही चीज मंगवा ली जाती थी। खासकर माँ ही हमारे आवश्यक सामानों के बारे में जानती थी। वह ही आवश्यक चीजों की बात बतला रही थी। बाद में लोगों ने कहा भी था कि उन चीजों की बहुत ही आवश्यकता होगी। मैं जब चीजें संभालते-संभालते असमर्थ हो गई तब माँ (आने के पूर्व दिन) पास बैठकर सब बतलाने लगी। मैं भी उन्हीं के कथनानुसार चीजें संभालने लगी। थोड़ी देर बाद ही मालूम हुआ कि सारी चीजें संभाल ली गई हैं। मेरी माँ पूर्ण जो हैं, इसी कारण वह सभी काम सुन्दरता से कर सकती हैं। कोई भी चीज उनके त्याग या भोग की नहीं है। उनके सामने सभी काम बराबर हैं, किसी में कोई भेद नहीं हैं। इसलिये जब भी जो काम उपस्थित होता है वही अच्छे ढंग से करती जाती हैं।

गंगा को माँ का कुर्ती दान

अस्तु, खाने-पीने के बाद सन्ध्या के पहले माँ ज्योतिष दादा को साथ लेकर गंगा-किनारे टहलने गई। लौट आकर मुझसे उन्होंने कहा- ''खुकुनी, तुमने जो कुर्ती बना दी थी, उसे गंगा ले गई।'' मैं बोली- ''गंगा में फैंक दिया कहो, अच्छा किया।'' माँ का यह भाव नया नहीं, पहले भी कई बार

यह बात लिखी गई है कि जल में कुर्ती धोती फैंक देती हैं। कहने पर 'जल ले गया'- कहकर मधुर हँसी हँसती रहती। आज भी वही कर आई हैं, कहा- ''बहुत पहले से ही ऐसा खयाल हो रहा था, अब भी हुआ।''

रात को सारे कुलियों को विदा कर दिया गया। क्योंकि वे रोज एक-एक रुपया लेंगे और गर्ब्यांग जाकर जब बैठे रहेंगे, उस समय भी हर आदमी को रोज 10 आने के हिसाब से देना पड़ेगा। चलने से एक रुपया और बैठने से 10 आने यह हिसाब था। यहाँ के एक रायसाहब के पास नैनीताल से कृष्ण पन्तजी की और अस्कोट से राजा की चिट्ठी आई थी कि माँ का सारा प्रबन्ध अच्छी तरह कर दिया जाये। वे ही नये कुलियों का प्रबन्ध कर देंगे, उन्होंने कहा- ''आगे का रास्ता बहुत ही कठिन है और ये कुली भी बहुत तगड़े हैं।'' हमारे साथ के कुली थक गये थे। वे कल लौट जायेंगे, ऐसा निश्चय हुआ।

सूक्ष्म शरीरधारी माँ के पास आये

कल यहीं रहना होगा क्योंकि नये कुलियों को 7 मील दूर से बुलवाना होगा और फिर से हमारे सारे सामान तौलकर वे 35 सेर के हिसाब से लेंगे। सुना है कि यहाँ से गर्ब्यांग जाने का मार्ग बहुत ही खराब है। इसकी तुलना में अब तक का रास्ता अच्छा ही था। माँ के साथ हर बात में सबके दिन आनन्द से ही बीत रहे थे। रात के 12 बजे हम सो गये। शाम को दो धूप-बत्तियाँ माँ के पास जला दी गई थी। देहरादून के एक उस्तादजी (माँ के पूर्व-परिचित) आ पहुँचे थे। वह भी कैलास जायेंगे। कुछ समय तक उन्होंने गाना सुनाया, बेला बजाया। प्राय: सभी सो गये थे, मैं अभी लेटी ही थी (माँ के पास लेटी थी)- इतने में कपड़ा ओढ़े ही माँ ने आवाज दी- ''खुकुनी सो गई क्या?'' मैं झट उठ बैठी, बोली- ''क्यों बुलाया, माँ''? माँ बोली- ''और धूपबत्ती नहीं है क्या? जला दो और मेरे पास के जंगले को बन्द कर दो।'' मैंने वैसा ही किया, परन्तु माँ जिस प्रकार कपड़ा ओढ़े लेटी थी वैसे ही लेटी रही। मैंने धूपबत्ती जला दी, बोली- ''माँ, कोई आया है क्या?'' माँ ने उसी स्थिति में जवाब दिया ''हूँ''। और कोई बात न हुई। मैं भी कपड़ा ओढ़े लेट गई।

यात्रा के पूर्व की घटना

आषाढ़ 6, रविवार–आज माँ बहुत देर में उठी। बाद में गंगा किनारे चली गई। लौट आने पर मुँह धुलाकर मैंने उन्हें कुछ दूध पिला दिया। यहाँ पर गाय का दूध थोड़ा मिल गया। दूध पीकर माँ ज्योतिष दादा के साथ फिर गंगा–किनारे चली गई। मैं रसोई पकाने लगी। स्वामीजी अपने काम से बैठे। आज बेला करीब 11 बजे के समय माँ का भोग लगा। भोग के बाद सब लोगों ने प्रसाद पाया। उसके अनन्तर सब विश्राम के लिये लेट गये। मैं बरामदे में बैठी रही। चारों ओर के प्राकृतिक दृश्य मानो हृदय में एक गम्भीर भाव जगा देते थे, क्योंकि प्रकृति देवी की यहाँ बहुत ही गम्भीर मूर्ति है। आज वृष्टि नहीं थी पर आकाश मेघाच्छन्न था।

माँ की कालीमूर्ति

आज समय मिला, ज्येष्ठ 28 तारीख की अलमोड़ा की एक घटना लिख रही हूँ, जो इस प्रकार है – उस दिन रात में एकाएक मामूली बात से एक टोपी को लेकर बाबा भोलानाथजी माँ से बहुत नाराज हो गये। जब भोलानाथजी बहुत नाराज हो गये तब माँ हाथों से ताली बजाकर खिल–खिलाकर हँस पड़ी और एकाएक बाहर निकल गई। गोदावरी के साथ जाने के कारण दूसरों को बाहर जाने से मना कर गई। माँ की ऐसी स्थिति कभी–कभी दिखाई पड़ती थी। मैं बाहर न जाकर माँ के लिये उत्कण्ठा के कारण दरवाजे के पास से झाँककर ‘माँ किधर जा रही हैं’ देख रही थी। दूसरे ही क्षण माँ फिर घर आ गई। भोलानाथजी उस समय भी क्रोध के आवेश में थे और गुर्रा रहे थे। सहसा माँ उनके मुख के सामने हाथ ले जाकर खिल–खिलाकर हँसने और अपनी उँगलियों को घुमाने लगी। थोड़ी ही देर में जरा हटकर भोलानाथजी से बोली– ‘‘चुप–चुप, हर समय पागलपन’’। जिस भाव से और जिस मूर्ति से उन्होंने ऐसा व्यवहार किया उसे मैं भाषा से प्रकट नहीं कर सकती। टुनू (प्राणकुमार बाबू का लड़का) भोलानाथजी के पैर दबा रहा था। उसने बाद में कहा कि माँ की उस दिन एक भयानक मूर्ति देखकर डर से वह काँप रहा था। बरेली से द्वारकाप्रसादजी की पत्नी और भावज (नागपुर के डी.पी.एम.जी. की पत्नी) एक ओर बिछौने पर बैठी थी। उनकी दृष्टि भी माँ की आँखे पर पड़ी थी, वे भी डर से काँप रही थी। डी.पी.एम.जी. की

पत्नी ने कहा था– ''मैंने अपने पिता से बचपन में काली देवी की मूर्ति का वर्णन सुना था (इस देश की स्त्रियाँ काली देवी की खबर विशेष जानती नहीं हैं)। मैंने भी माँ की उस मूर्ति को देखा था।'' द्वारकाप्रसादजी की पत्नी ने कहा था– 'माँ जो जगन्माता हैं, वह आज की मूर्ति देखकर मैं समझ गई।'' दूसरे लोगों में किसने क्या देखा, बताया नहीं था। एक-एक आदमी ने एक-एक तरह का रूप देखा था।

इसके बाद ही एकाएक माँ फिर बाहर निकल गई। सबको बाहर जाने से मना कर दिया। रात में लगभग 11 बजे सब लोग चले गये, केवल हरीराम बैठा था। भोलानाथजी चुपचाप निःस्पन्द बैठे थे। माँ के निकल जाने पर वह भी एकाएक रास्ते में निकल पड़े। अभी तक उनमें कुछ क्रोध था। दासू बाबू के बाहर जाकर पकड़ने पर भोलानाथजी उनका हाथ छुड़ाकर निकल गये। बाद में नगेन बाबू आदि ने जाकर उन्हें पकड़ लिया। इधर माँ शायद पहले मन्दिर के आँगन में घूम रही थी। भोलानाथजी को बाहर जाते देखकर माँ बिजली की गति से उनकी बगल से आगे निकल गई। हम लोग पीछे-पीछे दौड़ते हुये जाकर भी उन्हें पकड़ न सके। परन्तु सबके कहने-सुनने पर भोलानाथजी लौट आये। हरीराम, स्वामीजी और मेरे द्वारा माँ को खोजते हुये निकट के एक ऊँचे मन्दिर के पास पहुँचने पर हरीराम कूदकर बरामदे में चढ़ गया। मैं सीढ़ी पर खड़ी रह गई, हरीराम ने जाकर देखा कि माँ टहल रही हैं। हरीराम को देखकर माँ ने कहा– ''तुम लोग यहाँ से चले जाओ और भोलानाथजी से जाकर कहो कि वह देश लौट जायें, नहीं तो मैं अभी कैलास रवाना हो जाऊँगी। बाद में वह सबको लेकर आवें।'' माँ की मूर्ति देख और उनका दृढ़ आदेश सुनकर भय से काँपता हुआ हरीराम उतर आया और मन्दिर में भोलानाथजी के पास पहुँचा, भोलानाथजी माँ की हर स्थिति से परिचित थे ही, इसलिये वह पहले ही घर में जाकर चादर तानकर लेट गये थे। हम लोग भी चुपचाप बैठे थे। इतनी रात तक माँ बाहर हैं देखकर स्वामीजी रास्ते में खड़े थे, जा भी नहीं सकते थे और रहना भी कठिन था– माँ की आज्ञा से यह अवस्था थी।

इतने में माँ मन्दिर से उतरकर जिस मन्दिर में हम लोग थे उसके आँगन में आई। स्वामीजी रास्ते में क्यों खड़े थे, पूछा। हम लोग भी भीतर-बाहर कर रहे थे, इसलिये मुझसे भी कहा– ''तुम लोग तो जानती हो तो क्यों

निकली? जल्दी कमरे में जाकर सो जाओ। मैं जब इच्छा होगी आऊँगी।'' हम लोग भीतर चले आये। सब लोग चुपचाप बैठे थे। जिन लोगों ने माँ की ऐसी मूर्ति देखी उनकी हालत जड़वत् प्रतीत होने लगी। भोलानाथजी की आज्ञा के सिवाय जो कुछ भी नहीं करती, हर समय जहाँ तक सम्भव हो भोलानाथजी के इच्छानुसार ही चलती फिरती हैं, इतने आदमियों तथा ऐसी परिस्थितियों के भीतर भी जिन लोगों ने उनका ऐसा भाव देखा है, आज वे माँ की ऐसी मूर्ति देखकर भय से, विस्मय से अभिभूत हो गए थे।

माँ जगज्जननी हैं

थोड़ी देर में माँ कमरे में आ गई, मानो कुछ भी नहीं हुआ है- इस ढंग से हँसते हुये घर में प्रविष्ट हुई और बोली- ''तुम लोग बैठे क्यों हो? क्या नींद नहीं आती?'' फिर कहा- ''क्या भोलानाथजी सो गये हैं?'' नरेन बाबू की पत्नी ने कहा- ''हाँ माँ, पिताजी सो गये हैं।'' माँ ने कहा- ''कभी नहीं, अच्छा देख तो आओ।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। नरेन बाबू की पत्नी तो सरलता की मूर्ति थी। नरेन बाबू भी वैसे ही थे। नरेन बाबू तो बच्चे की तरह माँ के साथ-साथ ही थे। द्वारकाप्रसाद की पत्नी और भावज से माँ ने हिन्दी में कहा-''तुम लोग भी चुपचाप क्यों बैठी हो? सोओगी नहीं?'' उन्होंने कहा-''सोऊँगी क्यों नहीं माँ!'' माँ ने कहा-''तो जल्दी सो जाओ।'' उन्होंने कहा-''माँ, आप जगज्जननी हैं।'' इतना कहकर उन्होंने हाथ जोड़े, फिर आकर माँ के चरणों में प्रणाम किया।

माँ का कुछ चंचल भाव बाहर प्रकट हो रहा था। थोड़ी देर में उठकर भीतर चली गई। मैं भी साथ-साथ गई। टुनू और माणिक के बिछौने के पास जाकर माँ बोली-''तुम लोग क्या कर रहे हो?'' वे भी उठकर माँ के पास आए। माँ धीरे-धीरे बोल रही थी-''कैसे क्या हो गया'' आदि। माँ एक भाव को सम्भाल रही थी, इसी कारण बाहर ऐसा चंचल भाव था, यह स्पष्ट मालूम हो रहा था। टुनू तथा द्वारकाप्रसाद की पत्नी और भावज की दृष्टि माँ की आँखों पर पड़ी थी शायद इसीलिए माँ की जो अवस्था उठ रही थी, वह एकाएक बन्द हो गई। माँ अपने को सम्भालकर पुनः बाहर निकल गई थी नहीं तो और भी क्या हो जाता, कौन जाने! भोलानाथजी दूसरे ही दिन कहने लगे कि वह किसी तरह कैलास नहीं जाएँगे। सुनकर माँ ने उसी समय हमसे

कहा–''ठहरो, मैं अपने गोपाल को शान्त कर आऊँ।'' इतना कहकर वह भोलानाथजी के पास जा बैठी और तरह–तरह की बातों से उनका दिल बहलाकर भोलानाथजी को कैलास–यात्रा के लिये राजी कर लिया। फिर वहाँ से दूध पीने के लिये आ गई। रहस्यमयी माँ की लीला की कमी नहीं थी।

फिर पहले की बात का अनुसरण कर रही हूँ। तीसरे पहर माँ उठकर बैठ गई। यहाँ भी नदी चौड़ी नहीं थी– इस पार, उस पार रस्सी टाँगकर बन्दर की तरह लटकते हुये पहाड़ी लोग नदी का पारा–पार करते हैं– देखने से हमें डर लगता था। अभ्यास से सब कुछ हो सकता है, यह उसी का एक उदाहरण है। हम आगामी कल सुबह यहाँ से रवाना होंगे। नये कुली यही से हमारे साथ चलेंगे। इसलिये यहाँ हमारी सारी चीजों को फिर से तौल लेना होगा। यहाँ से हर कुली 35 सेर के हिसाब से लेगा। कुलियों की मजदूरी रोज एक रुपया तय हुई। शुरू से यही हिसाब चल रहा है।

एक घटना

यहाँ एक घटना उल्लेख–योग्य है, जो इस प्रकार है– हम लोग सारी चीजों को खोलकर संभाल रहे थे– माँ को सामने बैठाकर उन्हीं के कहने के अनुसार टीन की पेटियों में चीजों को भरकर ले जाया जा रहा था। क्योंकि पहले ही कहा है कि माँ की सहायता के बिना ऐसे काम भी हम लोग ठीक तरह से नहीं कर पाते थे। माँ ने पास बैठकर एक बड़ी पेटी में चीजें रखवाई। बाद में उसे उठाकर लोगों ने कहा कि इससे कुछ चीजें निकाल लेनी होंगी। क्योंकि इसका वजन मन भर से ज्यादा हो गया है। माँ बाहर जा रही थी, मुस्कुराकर बोली– ''अच्छा 35 सेर तो लेगा! पाँच सेर ज्यादा हुआ है कहते हो।'' फिर जरा हँसकर बोली– ''कम भी हो सकता है।'' मैंने माँ की बात सुनकर एकाएक कहा– ''तुम जरा छू दो न माँ, फिर कम ही हो जायेगा।'' माँ हँसकर बोली– ''तुम्हारी भी कैसी बात है।'' इतना कहकर फिर मुस्कुराते हुए बोली– ''छूने की आवश्यकता नहीं है।'' यथार्थ में ही जब शाम को रायसाहब ने कुलियों को लाकर सब सामान तौलाया तब दिखाई पड़ा कि उस पेटी का वजन 34.50 सेर है।

यात्रा का आयोजन

शाम को माँ गंगा–किनारे टहलने गई। रायसाहब ने माँ के लिये पहाड़ी

केले भेज दिये थे। माँ की सुविधा के लिये वह यथासाध्य चेष्टा कर रहे थे। रात्रि के लगभग 12 बजे सोते समय माँ ने आकर पहले ज्योतिष दादा से और उसके बाद एक-एक कर दूसरे लोगों से पूछा- ''तुम लोगों ने कल रात को कुछ स्वप्न देखे थे।'' सभी ने 'न' कहा। तब माँ ने कहा- ''इतने दिनों के भीतर किसी से भेंट नहीं हुई। कल एक आदमी आया था।'' इस विषय में और कुछ बात नहीं हुई। यहाँ से हर डांडी के साथ 6 कुली दे दिये गये। क्योंकि सुना है कि आगे का रास्ता बहुत ही भयंकर है। बोझा ढोने के लिये 9 कुली थे। टुनू के लिये भी यहाँ से एक डांडी ले ली गई। सभी कहने लगे कि मैसूर के राजा के बाद और कोई इतने अधिक आदमियों को साथ लेकर कैलास नहीं गये थे। भारी आयोजन चल रहा था। सब कुलियों में एक मुखिया रहता है। उसे 'मेट' कहते हैं। रात के लगभग 12 बजे सब लोग सो गये। पार्वती लड़की हमारे साथ-साथ ही चल रही थी। उसका सरल अकपट व्यवहार उल्लेख-योग्य है। कभी तो वह छोटी बच्ची की तरह भोलानाथजी का हाथ दाबती थी, कभी रास्ते में डर जाने पर भोलानाथजी का हाथ पकड़ लेती थी। उमर लगभग 25-30 वर्ष होगी, परन्तु कुछ भी संकोच नहीं था। मानो कितने दिनों के आत्मीय हैं।

आषाढ़ 7, सोमवार- आज सुबह 7 बजे हम सब 10 मील दूर 'खेला' नामक स्थान के लिये चल पड़े। पथ बहुत ही दुर्गम था। माँ डांडी छोड़ हमें साथ लेकर पैदल चलने लगी क्योंकि डांडी में प्रतिक्षण गिर पड़ने का डर हो रहा था। माँ के साथ मैं पैदल चलकर कुछ आगे निकल आई। माँ एक चट्टान पर बैठकर गाना गाने लगी-

''फिरे चलो, फिरे चलो, आपन घरे।''
अर्थात् 'लौट चलो, लौट चलो, अपने घर।'

रूमादेवी

उस सुनसान स्थान पर माँ के मुख से ऐसा सुन्दर संगीत सुनकर मैं मुग्ध हो गई थी। सब लोगों के आने पर हम फिर चलने लगे। रास्ते में रूमादेवी से भेंट हो गई। वह यहाँ की एक प्रसिद्ध महिला हैं, जो **श्री श्री शारदा माँ** की शिष्या हैं। माँ का दर्शन कर वह बहुत ही प्रसन्न हुई। हमारे साथ-साथ वह 'खेला' तक आई। लगभग 1 बजे हम खेला पहुँचे। साथ-साथ काली-गंगा गरजती हुई बह रही थी, समुद्र की ओर दौड़ती हुई जा रही थी, उद्दाम नृत्य

करते हुये खिलखिलाकर हँसते-हँसते किसी बाधा-विघ्न की परवाह न कर समुद्र के साथ मिलने के लिये दौड़ती चली जा रही थी। ऐसा लगता था, मानो मनुष्य को इसी तरह भगवान् के साथ मिलने के लिये दौड़ते हुये जाने की शिक्षा देती चल रही थी।

रूमादेवी भी हमारे साथ-साथ 'खेला' में आई। यह संन्यासिनी हैं। इनका भाव बहुत शान्त है। इसी अंचल में इनका घर है। श्री श्री शारदा माँ के देहावसान के एक वर्ष पूर्व इन्होंने उनसे दीक्षा ली थी। 'खेला' में ही इनका आश्रम है। यह यात्रियों की बहुत सहायता करती हैं। सेवा ही उनके जीवन का ध्येय है। मैसूर के नारायण स्वामी और वह एक ही आश्रम में रहते हैं। नारायण स्वामी के अनेक भक्त हैं। अलमोड़ा के मिशन की बहुत-सी स्त्रियाँ नारायण स्वामी की भक्त हैं। पहाड़ी स्त्रियाँ अलमोड़ा जाते और घर लौटते समय प्राय: नारायण स्वामी या रूमादेवी के साथ आया-जाया करती हैं।

रूमादेवी की अवस्था लगभग 60 साल की है। इन्होंने बहुत समय तक माँ के पास बैठकर अपने जीवन की अनेक बातें बतलाई और हृदय में वास्तविक शान्ति प्राप्त कर सकें इस उद्देश्य से कुछ दिन माँ के संग रहने की इच्छा प्रकट की। रात को भी हमारी छोटी-सी धर्मशाला में यह पर्वतीय संन्यासिनी माँ के पास बैठी रही। बार-बार माँ के दर्शन-जनित आनन्द प्रकट करने लगी। बोली- 'मुझे ऐसा लग रहा है, वास्तव में अपनी माँ को पाने से जैसा आनन्द होता है आज मुझे वैसा ही आनन्द प्राप्त हो गया है। मानो जीवन में ऐसा आनन्द मैंने कभी नहीं पाया था।'' संन्ध्या के कुछ पहले और भी दो पहाड़ी स्त्रियाँ 'खेला' में आ पहुँची। इन्होंने अलमोड़ा में थोड़े समय के लिये माँ को देखा था। परन्तु उसी से उन स्त्रियों ने माँ को चिट्ठी लिखी थी और माँ के लिये धूपबत्तियाँ भेजी थी। मैट्रिक परीक्षा देकर वे घर आई थी, अब ट्रेनिंग के लिये जा रही हैं। माँ को देखकर दौड़ आई हैं। मानो बहुत दिनों का परिचय हो। माँ को उन्होंने पपड़ी खिलाई। सूजी या आटे को चीनी और मसाले में मिलाकर घी में भून लेते हैं। रास्ता चलते यहाँ के लोग इसे ही साथ रखते हैं। हम भी लाये हैं।

सन्ध्या समय माँ का एक चट्टान पर आसन बिछा दिया। माँ वहाँ सब को लेकर बैठी। आज भी रात के लगभग 12 बजे हम लोग सोये। माँ के निकट आशीर्वाद की प्रार्थना कर रूमादेवी अपने बिछौने में चली गई।

पंगू

आषाढ़ 8, मंगलवार– आज थोड़ा पानी बरस रहा था। रूमादेवी तथा दूसरी स्त्रियाँ अलमोड़ा चली गई। कह गई– ''माँ, पानी अधिक होने से रवाना न होइयेगा क्योंकि रास्ता बहुत खराब है। ऊपर से पत्थर गिरने का डर है।'' हम लोग कुछ देर ठहरकर 7 बजे चल पड़े। आज भी चढ़ाई कड़ी थी, परन्तु रास्ता अच्छा था। कुलियों को विश्राम देने के लिये माँ कुछ दूर तक पैदल चली। साथ-साथ हम लोग भी पैदल चलने लगे। रास्ता खराब रहने के कारण पत्थरों में टकराकर डांडियाँ टूटती जा रही थी। रास्ते में जहाँ-जहाँ बढ़ई मिले डांडियों की मरम्मत कर ली गई।

अब नदी हमारे साथ नहीं थी। उसकी आनन्द-ध्वनि बन्द हो गई थी। दो-तीन दिनों तक ठंड भी नहीं, गर्मी भी नहीं, ऐसा भाव चल रहा था। आज पार्वती देवी के ससुराल 'पंगू' नामक स्थान पर एक स्कूल के भीतर हम लोग ठहर गये। आँगन में ही रसोई का इन्तजाम होने लगा। पार्वती के घर से ही चावल-दाल आदि सारा सामान आया। पाँच मील आकर यहाँ हमने दोपहर को भोजन-पर्व समाप्त किया।

फिर 3 बजे हम लोग रवाना हुये। रास्ते में काफी ठंड पड़ने लगी। जितना ही आगे चलने लगे, ठंड उतनी ही अधिक बढ़ने लगी। चार बजे के समय माँ सहसा डांडी से उतरकर पैदल चलने लगी। साथ में दासू दादा भी थे। माँ के उतरते ही हम लोग भी उतर पड़ते थे। परन्तु अबकी बार हमें दिखाई नहीं पड़ा। दासू दादा के मुख से सुना कि रास्ते में एक पहाड़ी लड़का दो फूल लेकर माँ के पास आया और स्तुति पढ़ते हुये माँ के चरणों में फूल चढ़ाकर चला गया। माँ ने दासू दादा से कहा– ''देखा! इस देश के बच्चे कैसे सुन्दर हैं।''

'सिरखा'

हम लोगों ने 6 मील दूर 'सिरखा' नामक स्थान पर एक स्कूल के भीतर रात के लिये आश्रय लिया। गाँव के भीतर ही वह स्कूल था, इसलिये खाने-पीने की चीजें मिल गई। टुनू और दासू दादा के लिये ही रात को रसोई होती थी। आज यहाँ बहुत ही अधिक ठंड लग रही थी।

माँ आते ही लेट गई। कहा–''कुछ नहीं खाऊँगी।'' हम लोग भी लेट

गये। रात में बारिश शुरू हुई। रात्रि के लगभग 2.30 बजे बारिश इतनी बढ़ गई कि हमारे कम्बल आदि भीग जाने लगे। हम लोग स्कूल के बरामदे में थे। छातों की आड़ लगाकर हम बैठे रहे। बारिश कुछ कम होने पर हम फिर लेट गये।

आज दो-तीन दिनों से पर्वतों के शिखरों पर बरफ दिखाई पड़ रही थी। सूर्य के प्रकाश से बर्फ चमक रही थी। बहुत ही सुन्दर दृश्य था। अब तक बीच-बीच में कच्चे आम मिल रहे थे। उसी से मैं दाल पकाया करती थी। आज दो-तीन दिनों से आम दिखाई नहीं पड़ रहे थे और इतनी अधिक ठण्डक में आम का प्रयोजन भी नहीं था।

‘दीप्ति’ के रास्ते की बात

आषाढ़ 9, बुधवार– सुबह हम लोग फिर ‘दीप्ति’ के लिये रवाना हुये। यहाँ से 10-11 मील का रास्ता था। 9 बजे के समय एक स्थान पर बैठकर हम लोगों ने कुछ जलपान कर लिया। रास्ते में आज बड़े-बड़े जंगल दिखाई पड़े। दृश्य बहुत ही अपूर्व था और निस्तब्धता भी विराजमान थी।

‘धारचूला’ के बाद रोज 10-12 मील से अधिक चला नहीं जा सका था क्योंकि रास्ता बहुत ही चढ़ाई का था। हर डाण्डी के लिये 6 कुली लाये गये थे। चार आदमी ढोते और दो खाने का सामान ले जाते थे। बीच-बीच में कुली बदलकर उन बोझा वालों को डाण्डी ढोने में लगा दिया जाता था। बारिश हो जाने से रास्ता भीग गया था। रास्ते में जहाँ जो कुछ शाक आदि मिल जाया करते थे, उठा लिया जाता था क्योंकि आगे कोई तरकारी-भाजी नहीं मिलेगी। चीनी यहाँ रुपये में सवा सेर मिल रही थी।

हम लोग लगभग 1 बजे दीप्ति पहुँचे। गाय, बकरी आदि के रहने योग्य एक कमरा मिला जिसके एक अंश में एक दुकान थी। वह कमरा ही यहाँ की धर्मशाला थी। हम लोगों ने मोमजामा बिछाकर रात बिताने लायक स्थान कर लिया। रसोई पकाकर खाते-खाते शाम हो गई। सुना, आगामी कल का रास्ता और भी अधिक खराब होगा।

‘मालपा’, भयंकर मार्ग

आषाढ़ 10 बृहस्पतिवार– आज सुबह 6 बजे हम 7 मील दूर मालपा

नामक स्थान के लिये रवाना हुये। रास्ते की बात बहुत दिनों तक याद रहेगी। आज कोई डांडी पर सवार नहीं हुआ क्योंकि रास्ता इतना खराब था कि मनुष्य का चलना ही मुश्किल था। बहुत कष्ट से कुलियो का सहारा लेकर लगभग 1.30 बजे हम लोग मालपा पहुँचे।

रास्ते में झरने बहुत ही सुन्दर लग रहे थे परन्तु उन्हें देखकर मुग्ध होने लायक अवस्था हमारी न थी। हमारे पैर लड़खड़ा रहे थे। सिर पर तेज धूप थी। क्षण-क्षण पर गिर जाने का डर लग रहा था। पहाड़ी लोग ऊपर से पत्थर गिरने का भय दिखा रहे थे। ऐसी स्थिति में भी एक नया उपद्रव! बोझा लिये भेड़ों का दल चल रहा था। इतने तंग रास्ते में चढ़ाई-उतराई बहुत ही भयंकर मालूम हो रही थी। मरम्मत के न होने से रास्ता जहाँ-तहाँ टूट गया था। सुना है कि मैसूर के राजा 5 वर्ष पहले जब इसी रास्ते से कैलास गये थे, उस समय गवर्नमैन्ट ने रास्ते की मरम्मत करा दी थी। उसके बाद फिर मरम्मत नहीं हुई।

माँ की दूरदृष्टि

आज रास्ता चलते-चलते माँ बार-बार मुझसे कह रही थी-''बाबा की डांडी पर खयाल रखना।'' फिर चलते हुये बोली-''खुकुनी, तुम बाबा के साथ आओ, वह पिछड़ गये हैं।'' आज इतना सावधान होने की बात कहने का कारण क्या है मेरी समझ में नहीं आया। हर रोज ही तो बाबा की डांडी पिछड़ जाती है। अस्तु, थोड़ी देर के बाद ही एकाएक बगल के पत्थर से टकराकर माँ की डांडी गिर गयी। माँ को चोट नहीं लगी, किन्तु डांडी टूट गई। माँ ने तुरन्त कहा-''आज एक डांडी गिर जायेगी, यह मुझे मालूम था, इसीलिये तुम्हें होशियार रहने के लिये कहा था। अब मेरे ऊपर से गया, अच्छा ही हुआ।'' इसके बाद बाबा की डांडी में भी चोट लगी। परन्तु वह बच गये। मालपा में दुकान नहीं थी, कुछ भी नहीं मिला। केवल लकड़ी मिल गई। हम लोग दीप्ति से आटा आलू लाये थे। पकाकर खाने में शाम हो गई क्योंकि बाहर रसोई करनी पड़ी थी। हवा में आग जलाना ही कठिन था और खासकर आज हम लोग बहुत ही थके हुए थे।

आज जो कमरा हमें मिला वह दीप्ति के कमरे से भी गया-गुजरा था। बारिश के जल में भीगना पड़ेगा, इसीलिये किसी तरह उसी में रहने का

इन्तजाम किया गया। बकरी की विष्ठा और कूड़े से कमरा भरा हुआ था। सड़ी मिट्टी का कमरा था। यहाँ भी मोमजामा बिछाकर सोने का इन्तजाम किया गया। एक तरह के बहुत छोटे कीड़े हैं जिनका नाम पिस्सू है। पहाड़ों में ये पिस्सू बहुत ही दिक्कत करते हैं। इनके उपद्रव से रात में सोना कठिन था। यह कमरा भी पिस्सुओं से भरा हुआ था, क्या किया जाये, दूसरा उपाय भी तो नहीं था।

रास्ते के कष्ट के कारण माँ को थोड़ी सहायता देना भी कठिन मालूम हो रहा था, ऐसा ही दुर्गम मार्ग! ज्योतिष दादा की हालत भी खराब थी। केवल भोलानाथजी अच्छी तरह आये थे। उन्होंने कहा–''आज कुछ कष्ट ही नहीं हुआ।'' रात में थोड़ी बारिश हुई, किन्तु अधिक भीगना न पड़ा। सोते-सोते रात के 12 बज गये। मक्खियों का उत्पात बढ़ रहा था। जितना ही ऊपर हम लोग चढ़ रहे थे उतना ही उनका उत्पात बढता जाता था। रात में जाड़ा लगता था। पर दिन में विशेष ठंडक नहीं थी।

आषाढ़ 11, शुक्रवार– आज भी सुबह 6 बजे हम लोग रवाना हुये। आठ मील दूर 'बोधी' नामक स्थान पर जाकर खाना-पीना होगा, यही निश्चय हुआ। आज का रास्ता कल से कुछ अच्छा था किन्तु भयानक था, इसमें कोई सन्देह नहीं। पैर अकड़ रहे थे परन्तु चलना तो था ही। कहीं ठहरने का उपाय नहीं था।

'बोधी' का दुर्गम मार्ग

किसी-किसी स्थान पर कुलियों को पकड़-पकड़कर चलना पड़ता था। डांडी नहीं चलती थी। तो भी पहाड़ी कुली हमारी डांडियों को लेकर जिस तरह ऐसे दुर्गम मार्ग में चल रहे थे, यह भी एक आश्चर्य ही था। कैसा भयंकर रास्ता! मनुष्य पैदल चलने में ही डरता है और वे डांडियों में एक-एक आदमी को लेकर अनायास चलते जा रहे थे।

लगभग 11 बजे हम लोग 'बोधी' पहुँचे। वहाँ एक स्कूल में जगह लेकर पहाड़ के किनारे पत्थरों का चूल्हा बनाकर खाना पका लिया गया। कुछ दिनों से ऐसा ही क्रम चल रहा था। खाने-पीने के बाद वेला 3 बजे हम सब लोग रवाना हुये।

गर्ब्यांग अब 5 मील दूर रह गया था। हम लोग गर्ब्यांग के लिये चल

पड़े। रास्ता बहुत खराब न होने पर भी स्थान-स्थान पर डांडी से उतरना पड़ता था और इतनी चढ़ाई-उतराई थी कि कभी डांडी के साथ पैर ऊपर उठते जा रहे थे और सिर नीचे लटकते जा रहे थे और कभी सिर सीधे ऊपर उठ जाता था। खैर माँ की कृपा से सभी सकुशल रास्ता तय कर रहे थे। रास्ते में कभी-कभी डांडी गिर जाती थी, परन्तु उससे किसी को कोई चोट न लगी।

बाबा भोलानाथ का उत्साह

भोलानाथजी बहुत अच्छे थे। जरा भी नहीं रुके थे। वह आज ऐसे खराब रास्ते में एक बार ऊपर उठ जाते थे और फिर सबको देखने के लिये नीचे उतर आकर खबर लेते थे। पहाड़ी लोग कहते थे-''पिताजी की तरह कोई चल नहीं सकता।'' यथार्थ में ही वह बिना थके आनन्द से चल रहे थे। इन दो दिनों में वह डांडी में बहुत कम ही सवार हुये थे। उन्होंने कहा-''मेरे मन में जोश आया है।'' उन्हें देखने से वैसा ही मालूम होता था। मैं हँसकर कहती थी-''हमारे कैलासपति भोलानाथजी तो बहुत आनन्द से ही कैलास चल रहे हैं।''

छाईलेक

गर्ब्यांग के पास जाने पर प्राकृतिक दृश्य सुन्दर दिखाई पड़ा जो पहले कभी नहीं दिखाई पड़ा था। लौटने की इच्छा नहीं हो रही थी। गर्ब्यांग के पास ही 'छाईलेक' नामक स्थान था। समतल भूमि के बीच-बीच में छोटे-छोटे पहाड़ थे, चारों ओर मानो असीम अनन्त का मूर्त रूप प्रतीयमान हो रहा था। तरह-तरह के फूल खिले हुये थे। एक ने कहा था-''यह कैलासपति का सजाया हुआ फूल-बाग है।'' रास्ते में बर्फ मिली। स्थान-स्थान पर बर्फ पड़ी हुई थी। कड़ाके की सर्दी भी लग रही थी। रास्ते में एक कुली को एकाएक साँप ने काट लिया। माँ ने दो दिन पहले कहा था-एक काला साँप पहाड़ पर देखती हूँ। वह साँप भी काला ही था। भोलानाथजी और साथ के लोगों ने बहुत प्रयत्न किया। माँ ने उस कुली को एक तरह की घास चबाते रहने के लिये कहा। पैर फूल गये थे, मुँह से झाग निकल रहा था। भोलानाथजी और माँ के साथ-साथ उसे भी ऊपर लाया गया। अब तक विशेष कुछ नहीं हुआ। हम गर्ब्यांग में आकर एक स्कूल में ठहर गये,

क्योंकि डाक बंगला भरा हुआ था। वहाँ से बहुत से आदमी एक साथ दल बनाकर रवाना होते हैं, क्योंकि रास्ते में डाकुओं का भय है।

गर्ब्यांग

हमारे पहुँचते ही वहाँ के लोग आ पहुँचे। वे पहले ही से माँ के आने का समाचार पा गये थे। पार्वती का घर यहाँ से कुल डेढ मील दूर है। वह घर चली जायेगी। कुछ साधु भी माँ के साथ भेंट करने आये। उनमें कोई-कोई पूर्व-परिचित भी थे। यहाँ से घोड़े पर या चमरी गाय की पीठ पर सवार होकर जाना पड़ता है। सुना है कि रास्ता बहुत खराब न होने पर भी हवा इतनी हल्की है कि दम लेना भी मुश्किल हो जाता है। इस कारण डांडियाँ आगे नहीं जाती। खैर, रात के करीब 11 बजे हम सो गये। हमारी बहुत-सी चिट्ठियाँ यहाँ आकर जमा हुई थी। पोस्ट मास्टर ने उन्हें हमारे पास भेज दिया। हम दो-चार दिन यहाँ रहेंगे, ऐसा निश्चय हुआ।

आषाढ़ 12, शनिवार– आज चलना नहीं पड़ेगा, इसलिये सब लोग कुछ देर में उठे। कैलास-यात्रियों में कुछ लोग खबर पाकर माँ से मिलने आये। दाक्षिणात्य के एक इंजीनियर रामकृष्ण मिशन के साधुओं के साथ कैलास जा रहे थे। उन्होंने बहुत से फल लाकर माँ के चरणों में रखे। स्वामी ज्ञानानन्द रामकृष्ण मिशन के एक साधु थे। वे इससे पहले भी तीन बार कैलास आ चुके थे। इस बार वह दिनाजपुर के कुमार के साथ आये हैं। कुमार भी माँ से भेंट करने आये। सुबह का सारा समय इसी तरह बीत गया। यहाँ के एक सम्पन्न भद्र पुरुष नन्दराम बाबू अलमोड़ा से अपनी लड़की रुन्द्रादेवी के पत्र से माँ के आने की खबर पाकर आये हैं। फल-फूलों से उन्होंने भी माँ की पूजा की।

तकलाकोट जाने का आयोजन

सब लोग मिलकर हमारी कैलास-यात्रा के प्रबन्ध के विषय में बातें कर रहे थे। दिनाजपुर का दल, दाक्षिणात्य का दल तथा एक अन्य दल ने मिलकर आगामी कल रवाना होना निश्चित कर लिया। परन्तु उन्हें 55 घोड़े चाहिये। वह पास के जंगल में मिल जायेंगे, ऐसा सुना। अभी तक आकर पहुँचे नहीं थे। एक गाइड लेकर चलना होगा। खच्चर और चमरी गाय की पीठ पर ही माल जायेगा। हम सब घोड़े पर जायेंगे, ऐसा निश्चय हुआ। हर

घोड़े के लिये साढ़े उन्नीस रुपये देने पड़ेंगे। हमारे जाने-आने में 20-22 दिन लगेंगे। इसके सिवाय हर घोड़े का सईस रोज 12 आने के हिसाब से लेगा। बोझा वाले खच्चर के साथ जो आदमी जायेगा, वह रोज 8 आने के हिसाब से लेगा। गाइड भी 25 रुपये तथा एक घोड़े का खर्च लेगा। खाने-पीने का सारा सामान साथ ले जाना होगा। रास्ते में कुछ नहीं मिलेगा। परन्तु 'तकलाकोट' जाने पर कुछ मिल जायेगा। रास्ते में रहने के लिये कोई स्थान नहीं मिलेगा। इस कारण तम्बू साथ ले चलना होगा। हर तम्बू में 4 आदमी रह सकते हैं। तम्बू किराये पर ले जाने होंगे। घोड़ों के सईसों के लिये भी तम्बू का इन्तजाम हमें ही करना पड़ेगा। सभी सामान खच्चरों की पीठ पर जायेगा। ऐसे दुर्गम स्थान में जाने का आयोजन भी उसी के अनुसार ही करना होगा। चीनी, आलू इधर प्राय: नहीं मिलते। यहाँ कुछ मिल गये पर बहुत ही महंगे। मिट्टी का तेल एक बोतल 10 आने और चावल रुपये में 2 सेर, इसी तरह चीजों का यहाँ मूल्य था।

यात्रा के आयोजन की चिन्ता से हमें उन सब छोटी-मोटी बातों पर ध्यान देने का अवसर ही नहीं था। एक बहुत ही अनोखे ढंग की यात्रा थी। माँ को कुछ जुकाम हो गया, इसलिये और भी दो-एक दिन बाद हम लोग चलेंगे, ऐसे बातें हो रही थी। कल और परसों ये दो दिन चलने में बहुत कष्ट हुआ था। भोलानाथजी आनन्द से चल रहे थे। सुना, इस रास्ते में पिता भी पुत्र की खबर नहीं ले सकता। किन्तु भोलानाथजी जरा भी नहीं थके थे। बल्कि वह एक बार ऊपर उठकर फिर नीचे उतर आकर जिस ढंग से सबको चलाकर लेते जा रहे थे उसे देखकर मालूम होता था कि कोई ऐश्वरी शक्ति उनके भीतर आविर्भूत हुई है। नहीं तो इस तरह परिश्रम करना सम्भव नहीं था।

रास्ते की दुर्गमता की बातें

सुना, 18-19 दिनों में यहाँ से कैलास जाया-आया जा सकता है। परन्तु रास्ते में कुछ देर होना सम्भव है, इस कारण 20-22 दिनों का इन्तजाम कर लेना पड़ता है। यहाँ आटा रुपये में 4 सेर और घी 10 छटांक मिलता है। स्थानीय लोगों का स्वास्थ्य बहुत ही सुन्दर है। दोपहर को भोजन करके सभी विश्राम करने लगे। मैं बाहर आकर बैठ गई। चारों ओर का सुन्दर दृश्य बहुत ही रमणीक मालूम हो रहा था। मानो प्रकृति देवी शृंगार कर बैठी

हुई है। सभी कुछ सुन्दर लग रहा था। यह सौन्दर्य हृदय में एक महान् भाव जगा देता था। यहाँ कोई दुकान नहीं थी। परन्तु गृहस्थों के घरों में चावल, आटा, दाल, घी आदि मिल जाते थे। मक्खियों का उत्पात यहाँ बिल्कुल नहीं था। परन्तु गाँव बहुत ही गन्दा था। यहाँ एक तरह का ऊनी जूता मिल गया। नीचे रस्सी का तलुवा और ऊपर मोजा-सा एकदम घुटने तक पहुँचता था। इसी तरह का जूता पहनकर तिब्बती और भूटानी बर्फ पर चलते हैं। हम लोगों ने वैसा ही एक-एक जोड़ा जूता खरीद लिया।

देहरादून के एक परिचित ब्रह्मचारी भारती धारचूला में हमारे दल के साथ सम्मिलित हुये थे। यहाँ आने पर अत्यधिक शीत से उनकी छाती में दर्द और बुखार हो गया। रास्ते की तरह-तरह की कहानियाँ सुनाई पड़ रही थी। स्वामी ज्ञानानन्द 3-4 बार कैलास गये थे। उन्होंने कहा कि एक बार वह घोड़े पर से बेहोश होकर गिर पड़े थे। अनेक आशंकाजनक कहानियाँ और भी सुनने को मिली। अस्तु, माँ की जैसी इच्छा हो, वही होगा। हम माँ के साथ हैं। हमें डरने का कोई कारण नहीं है। माँ को कुछ जुकाम हो गया है। रात में आज कुछ जल्दी ही सब लोग सो गये।

इष्टमंत्र का जप करते हुए रास्ता चलना

आषाढ़ 13, रविवार– आज सुबह दिनाजपुर के कुमार माँ को प्रणाम करने आये। उन्होंने कहा-''दुर्गम पथ की यात्रा पर जा रहा हूँ, इसलिये आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ। आप आद्याशक्ति हैं, कुछ शक्ति दीजिये जिससे सकुशल यात्रा समाप्त कर लौट सकूँ। तरह-तरह के भय की बातें सुनाई पड़ रही हैं, इस कारण आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ। हम लोग आज ही रवाना हो रहे हैं।'' माँ ने हँसकर कहा-''एकमात्र भगवान् का ही भरोसा है। वही सब कुछ कर, करा रहे हैं। जो होना होगा, वही होगा। तुम केवल इष्टमंत्र का जप और स्मरण करते हुये रास्ता चलते जाओ।'' कुमार ने कहा-''अच्छी बात! आपके कथनानुसार मैं वैसा ही करूँगा। एक बार ढाका जाकर भी आपके दर्शन नहीं मिले थे। अब ऐसे विकट स्थान पर आपके दर्शन मिल गये। मेरा यह परम सौभाग्य है। देखूँ फिर कब आपके चरणों के दर्शन प्राप्त होते हैं।'' माँ को प्रणाम कर वह चले गये। उसके बाद उनके साथ के दूसरे संन्यासी तथा ज्ञानानन्द स्वामी सभी आकर माँ को प्रणाम करते हुये आशीर्वाद लेकर चले गये।

आज ही सभी जा रहे हैं। तीन-चार दल एक साथ चल रहे हैं। हमारे रवाना होने का दिन परसों मंगलवार निश्चित हुआ है। माँ का जुकाम कुछ और बढ़ गया। माँ कह रही थी-"तुम लोग ठीक रहो तो अच्छा।" माँ की अस्वस्थता से हमें कुछ अस्वस्ति मालूम हो रही थी।

यहाँ के लोग आकर हमारे जाने का परामर्श और प्रबन्ध करने लगे। गंगा के उस अनादि अनन्त सुर की ध्वनि अभी भी कानों में गूँज रही थी। यहाँ काली गंगा थी। हमारे साथ एक डांडी के लेने की बात हो रही थी। क्योंकि माँ उसमें जायेंगी अथवा यदि कोई बीमार हो जाए तो उसे उसी में सवार कराया जायेगा। यहाँ से एक डांडी के आने-जाने में 180 रुपये लगेंगे। इसके सिवाय डांडी के कुलियों के रहने के लिये एक तम्बू तथा उनके खाने-पीने की चीजों को ढोने के लिये एक घोड़ा लेना होगा। यही यहाँ का नियम है। दोपहर को खाने-पीने के बाद सब लोग जरा लेट गये। मैंने बाहर एक खुली जगह में डांडी के भीतर बैठकर दोपहर का समय बिता दिया। अलमोड़ा से हम 136 मील आये हैं। धारचूला से जो कुली आये थे वे हमें यहाँ पहुँचाकर ही लौट गये हैं। फिर लौटते समय धारचूला के रायसाहब को चिट्ठी देने से ही वह यथासम्भव कुली भेज देंगे। यहाँ बिठाये रखकर कुलियों को पैसा नहीं देना पड़ा। यहाँ खाने की चीजें इतनी महँगी हैं कि गरीबों का यहाँ रहना कठिन है। यहाँ के बाशिन्दों की बात अलग है क्योंकि उनके खेत, बाग आदि हैं, गाय, भेड़-बकरियाँ भी हैं। बाहर के लोगों को यहाँ आकर रहना बहुत ही व्यय साध्य है, इस कारण वे लोग लौट गये।

आज रात को पार्वती की माँ हमारे साथ भेंट करने आई। साथ में चावल, दाल, आटा आदि भी लायी और माँ के लिये एक जोड़ा तिब्बती जूता बर्फ पर चलने के लिये लायी। उन्होंने जो 'तपोवन'- आश्रम बनाने के लिये अस्कोट के राजा से लिया था, उसे माँ को देना चाहा। (यहीं रूमा देवी रहती थी) और इसी आशय का पत्र उन्होंने राजा को लिख भेजा। पार्वती और उसकी माता के विशेष आग्रह से निश्चय हुआ कि डेढ़ मील दूर पार्वती के गाँव (नेपाल राजा की राजधानी) में एक रात रहकर हम बुधवार को कैलास रवाना होंगे। आज भी सोने में रात के 12 बज गये।

आषाढ़ 14, सोमवार- आज सुबह धूप निकल आई। माँ हाथ-मुँह धोकर टहलने निकल गई। यहाँ धूप प्रायः दिखाई नहीं पड़ती थी। कुहासे से

हर समय अंधेरा छाया रहता था। आज धूप के निकलने से हम लोगों के शरीर में कुछ फुर्ती आ गई। यहाँ आने पर मुझे बहुत ही शीत लग रहा था। अस्तु, थोड़ी ही देर में बादल घिर आये, अंधेरा छा गया और पानी बरसने लगा। दिन भर पानी बरसता ही रहा। आज बहुत-सी पहाड़ी स्त्रियाँ तथा पुरुष दाल, चावल, घी आदि जो-जो चीजें कैलास के पथ पर चलने के लिये आवश्यक होंगी, उन्हें लेकर माँ के दर्शनों के लिये आये। चाँदी के पत्तर मंढ़े हुये लकड़ी के कटोरे आदि भी लाये। वे हिन्दी अच्छी तरह नहीं समझते थे। कुछ समय रहकर माँ को प्रणाम करते हुये वे लोग चले गये। यहाँ के एक सन्देलसिंह नामक स्थानीय व्यक्ति ही हमारे गाइड होकर साथ जायेंगे। सारा इन्तजाम वे ही लोग कर रहे थे। खच्चरों की पीठ पर जो माल जायेगा, सन्ध्या के पूर्व ही तौल लिया गया। हर खच्चर की पीठ पर डेढ़ मन माल लादने का ही नियम है; पर सुना, क्रमशः वे इसका किराया बढ़ाते जा रहे हैं। इस बात को स्वामी ज्ञानानन्द से सुना। जो हो, इंतजाम सब ठीक हो गया। हम आगामी कल सुबह पार्वती के घर जायेंगे। वहाँ उनके विशेष अनुरोध से एक रात रहकर बुधवार को सुबह हम लोग कैलास की यात्रा प्रारम्भ करेंगे। फिर नये ढंग से चीजों को सम्भालते हुए आज भी रात अधिक हो गई। यहाँ से 25 दिनों की खुराक ली जा रही है, क्योंकि रास्ते में कुछ भी नहीं मिलेगा। इतना अधिक सामान सम्भालते-बटोरते हमारा दिमाग चकराने लगा। कैसी भयंकर यात्रा!

आषाढ़ 15, मंगलवार– आज सुबह कुछ जलपान कर हम लोग दिन के 10 बजे पार्वती के घर की ओर चल पड़े। नदी पार होना पड़ता था। चारों ओर खेत थे, ऊपर चारों ओर पहाड़ों की चोटियों पर बर्फ थी। रास्ता चढाई-उतराई का था। माँ डांडी में और हम लोग पैदल चल रहे थे। पार्वती के घर जब हम पहुँचे तब हमारी अवस्था बहुत ही थकी-माँदी थी। तम्बू लगा रखे थे। हम लोग किसी तरह तम्बू में पहुँचकर कम्बल बिछाकर लेट गये। पार्वती की माँ आकर माँ को अपने घर की गाय के दूध के अलावा और भी कुछ चीजें खिला-पिला गई; हमारी रसोई के लिये सारी चीजें भी दे गई। सन्ध्या के पूर्व हमारा खाना-पीना खत्म हुआ। रात को काफी बारिश होने लगी। तम्बू के चारों ओर पानी आने लगा। खैर, किसी तरह रात बिताई गई।

आषाढ़ 16, बुधवार– आज हम लोग यहाँ से रवाना होंगे। खा-पीकर रवाना होना ही तय हुआ है। जल्दी-जल्दी रसोई और खाना-पीना समाप्त कर हम जाने का इन्तजाम करने लगे। इक्कीस घोड़े साथ जायेंगे। माँ के लिये डांडी जायेगी। सन्देलसिंह गाइड जायेंगे। उनका मेहनताना कुल मिलाकर 45 रुपये निश्चित हुआ है। हम लोग लगभग डेढ़ बजे सारा सामान फिर से तुलवा कर चल पड़े। आज का रास्ता बहुत ही भयंकर था। फिर हम लोग घोड़े पर सवार थे। प्रतिक्षण गिर पड़ने का डर हो रहा था। पत्थरों में ठोकरें खाते हुये घोड़े धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। थोड़ी देर बाद रास्ता कुछ अच्छा मालूम होने लगा। कुछ तो मैदान-सा और थोड़ा ऊँचा भी था। पत्थर कंकड़ों से भरा हुआ स्थान, किसी तरह का कोई रास्ता नहीं था। चारों ओर पर्वतों पर बर्फ जमी हुई थी। स्थान बिल्कुल सुनसान था। जहाँ तक दृष्टि जाती थी कहीं लोकालय का चिह्न मात्र भी नहीं दिखाई पड़ता था। स्थान बहुत ही उदास और गम्भीर प्रतीत हो रहा था। हम लोग धीरे-धीरे एक के पीछे एक घोड़े पर चल रहे थे। माँ की डांडी कुछ पिछड़ रही थी। रास्ता बहुत ही खराब था। इसलिये बीच-बीच में घोड़े से उतरना पड़ता था। कालीगंगा को पार करना पड़ा। चारों ओर के ऊँच-ऊँचे पहाड़ों में से जल का स्रोत निकलकर प्रबल वेग से नीचे की ओर जा रहा था। रास्ते में भी बीच-बीच में झरने पार करने पड़े। बर्फ पहाड़ की तरह ऊँची होकर रास्ते के किनारे-किनारे जमी पड़ी थी। शीत से हमारा सारा शरीर ठंडा होता जा रहा था। कालीगंगा के उस पार जाकर हम लोग नेपाल राज्य छोड़कर आगे बढ़ गये।

कालापानी आगमन

आज 7-8 मील दूर 'कालापानी' नामक स्थान पर पहुँचे। वहाँ हमारे 4 तम्बू लगा दिये गये। हम लोगों ने तम्बुओं के भीतर आश्रय लिया। रास्ते में कुछ भीगना भी पड़ा था। रात में भी पानी बरसता रहा। हम लोगों ने कुछ भी नहीं खाया। दासू और टुनू ने खिचड़ी खाई। केशवसिंह नौकर को भी कुछ हिस्सा मिला। किसी तरह खा-पीकर वे भी पड़ गये। गाइड ने कहा- ''आगामी कल यद्यपि 5 मील जाकर ही पड़ाव डालना होगा, रास्ता बहुत ही खराब है इसलिये खाना-पीना करके ही चलना होगा। चारों ओर कहीं कुछ भी नहीं था, तेज धार वाली नदी और विशाल पर्वत ही हमारे पड़ौसी थे। इस तरह रात बिताना शायद यही प्रथम था। जमीन भीगी हुई थी। इस

कारण भुटियों के मोटे-मोटे कम्बल (छोटके) लाये गये थे। हमने उन्हें नीचे बिछा लिया। जब हम मोमजामा का कोट और टोपी पहनकर पंजाबियों की तरह पाजामा लगाकर घोड़े की सवारी से आ रहे थे तो चारों ओर सुनसान था। यह भी एक तरह के विशेष ढंग की यात्रा थी। पौशाक भी नई, दृश्य भी नये और भाव भी नये थे।

आषाढ़ 17, बृहस्पतिवार– आज सुबह खाने-पीने का इन्तजाम करने में सभी लोग व्यस्त थे। कुल 5 मील ही आज चलना होगा किन्तु रास्ता बहुत ही खराब मिलेगा, इसलिये जल्दी-जल्दी रवाना होना होगा। लगभग 11 बजे हम लोग चल पड़े, आज चलते समय ही पानी बरसने लगा। परन्तु चारा ही क्या था। हम पानी के भीतर ही समयोपयोगी सज-धजकर भीगते हुए ही घोड़े पर रवाना हुये। माँ डांडी में थी। यों ही रास्ता खराब था, फिर पानी के बरसने से और खराब हो गया। प्राय: सईसों की सहायता लेकर ही चलना पड़ता था। यथार्थ में अब रास्ता नाम की कोई चीज यहाँ नहीं थी। सुना है यहाँ मार्ग में बकरियों को छोड़ देते हैं। वे ही रास्ता बताकर आदमियों को ले जाती हैं। स्थिति वैसी ही प्रतीत हुई। पहाड़ी लोग रास्ता बताकर ले जा रहे थे। बीच-बीच में तेज धार वाले झरने भी पार करने पड़े थे। सुनसान स्थान, जगह-जगह पर व्यापारियों की बकरी-भेड़ों के दल के साथ लोग तम्बू डालकर पड़े हुये थे। पानी क्रमश: तेज होने लगा। पहाड़ी कह रहे थे कि ऐसी तेज धार का पानी उन्होंने कभी नहीं देखा था। हम जानते थे कि माँ के साथ-साथ आँधी-पानी लगा ही रहेगा। माँ का कोई कार्य आरम्भ हो तो आँधी-पानी अनिवार्य था। हम लोग इस तीव्र शीत में पानी से तर हो गये। शरीर ठिठुर रहे थे। पैरों की हालत एकदम सुन्न थी। किसी तरह लगाम पकड़कर काठ के समान बैठे रहे। ऐसी स्थिति लिखकर समझाना सम्भव नहीं। केवल भुक्त-भोगी ही जानते हैं।

इसी तरह डेढ़ बजे हम पहाड़ के नीचे एक स्थान पर पहुँचे। सुना, यहीं आज हमारा पड़ाव लगेगा। पानी से सारा सामान भीग गया। किसी तरह गाइड ने आदमियों को लेकर 3-4 तम्बू हमारे लिये तान दिये। पार्वती देवी हमारे साथ ही चल रही थी। उसने सईसों की मदद से जो थोड़ी लकड़ी हम साथ लाये थे, उसी से एक घर में (पत्थर के टुकड़ों से सजाकर बकरी-भेड़ के रहने योग्य कुछ छोटे-छोटे घर थे उसमें) थोड़ी आग जलाई। हमारे में से कई लोग जाकर उस आग को घेरकर बैठ गये। ऐसा लगा मानो जान-में-जान

आ गई। कैसी जगह बैठे हैं उसे देखने का भी अवसर नहीं था। थोड़ी देर बाद पता लगा कि भेड़-बकरियों की विष्ठा से ही घर भरा हुआ है। दरवाजे के स्थान पर थोड़ी झरोखा-सी जगह रखी गई थी। सिर नीचे किये उसमें घुसना पड़ता था। दूसरे स्थान पर ऐसे घर में जाना ही असम्भव होता परन्तु ऐसी कड़ाके की सर्दी में उस मामूली आग के लोभ से मैं शाम तक वहीं बैठी रही। पानी नहीं रुका। तम्बू के भीतर थोड़ी आग ले जाकर माँ, भोलानाथजी, ज्योतिष दादा और स्वामीजी के भीगे कपड़े सुखाये गये। परन्तु यहाँ लकड़ी नहीं मिलती और बर्फ तथा पानी के भीतर आग जलाना भी कठिन था। उसमें भी पानी टपक रहा था। कुछ खाना पका के खाकर कम्बल ओढ़कर सो गये। परन्तु शरीर गर्म नहीं हो रहा था। अनोखी यात्रा! ज्योतिष दादा और बाबा को उदरामय होने के कारण उन्हें च्यूड़ा सिझाकर (पकाकर) खाने को दिया गया। इसी तरह इस पहाड़ी स्थान पर और भी एक रात बीती। इस स्थान का नाम 'डोबरा' था।

लीपू पार होने का आयोजन

आषाढ़ 18, शुक्रवार– आज 'लिपू हिल' (अर्थात् लिपू पास) पार करना पड़ेगा। पहले से ही सुना जा रहा था कि इसे पार करना सबसे कठिन है। बहुत ऊपर चढ़ना होगा। इस समय हम 16000 फीट चढ़े हैं। 'लिपू' में 18-19 हजार फीट चढ़ना होगा। उसके बाद उतराई भी बहुत खतरनाक है। बर्फ पर पैर फिसल जाने का पग-पग पर डर है। फिर बर्फ अधिक न हो तो पहाड़ के धँस जाने का डर है। ऐसे स्थान पर पानी के भीतर जाया भी न जा सकेगा। सुबह आकाश कुछ साफ था। उसी समय रवाना होने के लिये सईस पहाड़ से घोड़ों को उतार लाये। किन्तु फिर पानी बरसना शुरू होने के कारण आज जाना रूक गया। यहीं 'मुकाम' करना अर्थात् रहना स्थिर हुआ। गाइड को चलने का साहस नहीं हुआ। बात यह थी कि आज सुबह रवाना होकर सन्ध्या को 'तकलाकोट' पहुँचेंगे। इसलिये कल रात को ही कुछ खाने की चीजें बनाकर रखी गई थी। आज रास्ते में उसी को खाकर चलना पड़ेगा। जाना रुक जाने से आज दोपहर को हम उसी को खाकर रह गये। ज्योतिष दादा को दस्त हो रहा था इसलिये उन्होंने बार्ली पी। हाथ-पैर ठंडक से सुन्न हो गये थे, इसलिये लिखना कठिन हो रहा था, अगुंलियाँ टेढ़ी होती जा रही थी। पानी लगातार बरसता जा रहा था। देहरादून के परिचित भारती ब्रह्मचारी

भी हमारे साथ चल रहे थे। उनके साथ कुछ भी नहीं था। ऐसी स्थिति में अकेला चलना असम्भव था। आगामी कल आब–हवा अच्छी रहे तो सुबह चलना तय हुआ।

'तकलाकोट' कुछ विशेष स्थान था। सुना है कि वहाँ बहुत–सी चीजें मिल जायेंगी। धारचूला के कुली लंगोटी पहने थे, परन्तु यहाँ कुलियों के कोट, पतलून, जूता सभी कुछ थे। नहीं तो यहाँ चलना असम्भव हो जाता। तीसरे पहर कुछ धूप दिखाई पड़ी। गीले वस्त्र धूप में डाल दिये गये। थोड़े समय तक धूप थी फिर अंधेरा छा गया। किन्तु उतनी–सी धूप पाकर ही सबके हाथ–पैर और शरीर कुछ गर्म हुए। हम लोग थोड़ा बाहर टहलकर फिर तम्बू के भीतर घुस गये, क्योंकि शीत बहुत अधिक था।

आगामी कल 'लिपू पास' पार होना होगा। सुना है कि कुछ लोग वहाँ बेहोश होकर गिर पड़ते हैं, इसलिये कुछ खास इन्तजाम करके जाना पड़ता है। ठण्डक भी बहुत अधिक होगी, इसलिये हम गर्म कोट–पतलून पहनकर तैयार हो गये। कल भोर में ही रवाना होना होगा। नहीं तो तकलाकोट पहुँचा नहीं जाएगा। रास्ते में सिर चकराने या श्वास–कष्ट होने से साथ क्या–क्या रखना चाहिये, सबको माँ ने बता दिया। यहाँ थोड़ा–थोड़ा श्वास–कष्ट सभी को अनुभव हो रहा था। मैदान की तरह समतल स्थान था, जिस पर भी थोड़ा चलते ही हाँफना पड़ता था। हम शीत से ठिठुरते जा रहे थे। आग जलाने का भी कोई उपाय नहीं था। लकड़ियाँ साथ नहीं थी। कुली बहुत दूर से कुछ गीली लकड़ियाँ लाकर उसी से रसोई पका रहे थे। माँ ने और भी कहा था–''यदि पैसे की कमी न हो तो यहाँ हॉट बैग (गर्म–बिस्तर) और चारपाई लेकर चलना होता है। सूखे फल तो लेने ही पड़ते हैं। जो लोग बिस्कुट खाते हैं, उन्हें वे भी रखने पड़ते हैं।''

आषाढ़ 19, शनिवार– आज तड़के उठकर देखती हूँ कि थोड़ी–थोड़ी बारिश हो रही है। कल रात में भी बारिश हो रही थी। किन्तु गाइड सन्देलसिंह पहाड़ से घोड़ों को उतार लाकर जाने के लिये तैयार हो गये। क्योंकि बैठे रहने से उन्हें नुकसान है। जितनी जल्दी हो सके, यात्रा खत्म करने से ही उनको लाभ है। हम लोग माँ का नाम लेकर पौशाक आदि पहनकर 7 बजे रवाना हुये। पानी बरसता ही गया। सभी कह रहे थे–आज जितना रास्ता तय करना है, वह समाप्त होने पर आगे विशेष भय नहीं है।

लीपू का दृश्य

यहाँ से 'तकलाकोट' लगभग 10 मील था। हमने लिपू में पहुँचकर जो दृश्य देखा, वह कभी भूलने का नहीं है। पहले चढ़ाई चलने लगी, कैसे रास्ते से घोड़े जा रहे थे, उसे याद करने पर भी डर लगता है। उसके बाद क्रमशः आसपास बर्फ दिखाई देने लगी। कुछ दूर जाने पर फिर दोनों ओर बर्फ का समुद्र, बीच में काला पहाड़, उसमें भी स्थान-स्थान पर बर्फ थी। ऐसा लग रहा था मानो समुद्र में पुल के ऊपर से हम जा रहे हैं। उसके पश्चात् उतराई शुरू हुई। अब सभी को पैदल चलना पड़ा, क्योंकि बर्फ के भीतर से ही रास्ता था। कुलियों के ही सहारे हम चलने लगे, क्योंकि कदम-कदम पर पैर फिसलते जा रहे थे। उस समय मालूम हो रहा था कि हम बर्फ के समुद्र में उतर पड़े हैं। एक-एक आदमी पैर फिसल जाने से एकदम बहुत नीचे लुड़कता जाता था। परन्तु चोट नहीं लगती थी क्योंकि नरम बर्फ के ऊपर ही गिरता था। कपड़े-लत्तों को सम्हाल लेना भी मुश्किल था। हाथ सुन्न और अंगुलियाँ टेढ़ी होती जा रही थी। इसी बीच नींबू का अचार या काली मिर्च का चूर्ण लोग मुँह में डाल रहे थे। माँ के मुँह में भी मैं दे रही थी। किस हाथ से दूँ, इसका भी विचार नहीं था, ऐसी स्थिति थी। परन्तु ऐसे भयंकर रास्ते में सचमुच ही हमें विशेष कष्ट नहीं हुआ। चारों ओर के दृश्य और वर्तमान परिस्थिति में हमें एक गम्भीर आनन्द का अनुभव हो रहा था। दासू बाबू तो आनन्द से "माँ-माँ" कहकर रो पड़े थे। भोलानाथजी ने कुछ नहीं खाया। उन्होंने कहा-"मैं तकलाकोट बिना पहुँचे कुछ नहीं खाऊँगा।" महान् आनन्द से वह चल रहे थे। स्वामीजी पिछड़ गये थे। माँ ने कहा-"तुम और ज्योतिष स्वामीजी को देखो।" वह फिर लौटकर उन्हें साथ लाये, बोले-"मुझे ऐसा लगता है कि किसी के लिये भी चिन्ता की बात नहीं है। 'जय माँ तारण' कहकर मैं निश्चिन्त हूँ। मेरे मन में बल है।" वास्तव में जब हम नीचे उतरे तो वह आनन्द से मेरी पीठ थपथपाने लगे। उनकी आँखों में आँसू दिखाई पड़े। कहा-"मैं समझता हूँ कि **'तारा माँ'** ही सबकी रक्षा कर रही हैं।" इसी आनन्द से उनकी आँखों में आँसू थे।

माँ तथा भोलानाथजी की कृपा से ऐसे दुर्गम पथ पर हम आनन्द से चल रहे थे। लगभग मील भर चलने पर हम फिर घोड़े पर सवार हुए। माँ भी डांडी पर सवार हुई। हमने थोड़ा जलपान कर लिया, फिर चल दिये। पहाड़ी

रास्ते में तरह-तरह के ढंग से चले। अन्त में मैदान के भीतर से चलने लगे। पेड़-पौधे सहित पहाड़ों के विविध वर्ण तथा शोभा देखते हुये हम चल रहे थे। चारों ओर अपूर्व दृश्य था। लगभग सन्ध्या के समय हम लोग तकलाकोट पहुँचे। पहले ही गाइड ने जाकर तम्बू तान दिये थे। पहुँचते ही वहाँ के बाशिन्दे आकर जिस ढंग से खड़े हुये उनका चेहरा देखकर हमें डर लगने लगा। बाद में सुना था कि ये लोग डाका डालते हैं। अब से बहुत सावधान होकर रहना पड़ेगा, ऐसा सुना गया। रास्ते में स्थान-स्थान पर पहाड़ों में अनेक गुफायें दिखाई पड़ी थी। सुना है कि किसी समय इन गुफाओं में साधु लोग रहते थे। बहुत दूर से ही पहाड़ की चोटी पर राज-प्रतिनिधि का मकान और उसके पास लामाओं के मन्दिर दिखाई पड़ रहे थे। यहाँ गृहस्थों के भी कुछ घर तथा दुकानें थी। हर गृहस्थ के मकान के ऊपर कपड़े के टुकड़े रस्सी में लटकते दिखाई दिए। राज-प्रतिनिधि के मकान के ऊपर भी वैसा ही देखा। इनके मन्दिरों में भी वैसे ही कपड़े के टुकड़े रस्सी में लटकते दिखाई दिए। इधर अनेक खेत भी दिखाई दिये। प्राय: पानी नहीं बरसता, इसलिये नहर खोदकर खेतों में पानी देने का इन्तजाम करना पड़ता है।

यह सुना गया कि डाकुओं का डर यहीं से शुरू होता है। गाइड साथ में बन्दूक लाये हैं। यहाँ पेशावर की दो संन्यासिनियों ने आकर माँ से भेंट की। ये लोग यहाँ के लामाओं की शिष्याएँ हैं। गर्ब्यांग पहुँचने के पहले दाक्षिणात्य के तीन साधुओं से भी हमारी भेंट हुई थी। उनके नाम याद नहीं आ रहे हैं। हम सावधान होकर ही सोये। गाइड ने कहा-''कल सुबह खा-पीकर ही रवाना होना होगा। कल का पड़ाव भी 10 मील दूर है।'' यहाँ मील का कोई हिसाब नहीं जानता। अन्दाज से इन लोगों ने पड़ाव बना लिये हैं। एक-एक पड़ाव में जाकर ये लोग तम्बू लगा देते हैं।

रात्रि में बैठे-बैठे आज के दिन के रास्ते की बात सोचने पर स्वप्न की तरह मालूम होने लगा। पथ का कष्ट प्राकृतिक सौन्दर्य से भूल जाता था। वह कैसा दृश्य था! भाषा से उसे समझाना सम्भव नहीं है। पहाड़ के रंग देखकर माँ कह रही थी-''देखो, देखो, पहाड़ मानो बाघाम्बर बने हुये हैं। रास्ते की भेड़-बकरियाँ भी कैसी सुन्दर हैं। रोएँ पीठ से पैर तक लटक रहे हैं। बड़े-बड़े टेढ़े सींग कैसे सुन्दर लग रहे हैं।'' इनके रोएँ से कपड़े, मौजे, कम्बल आदि बनाकर इस देश के लोग हमारे पास बेचने को लाये। हमने

कुछ चीजें खरीद ली। पड़ाव में पहुँचते ही घोड़े छोड़ दिये गये।

रंगुंग

आषाढ़ 20, रविवार – आज खाना-पीना खत्म कर लगभग 11 बजे हम **'रंगुंग'** के लिये रवाना हुये। प्राय: 10 मील चलना पड़ेगा। हमारे पहुँचने के बाद से रवाना होने तक एक तमाशा-सा मैं देख रही थी। ''गाँव के लोग माँ को चारों ओर से झाँक रहे थे। लोग माँ को घेरकर खड़े थे। वे एक अक्षर भी नहीं समझते थे, और भी बहुत से लोग आये। रवाना होते समय माँ की डांडी के चारों ओर स्त्री-पुरुष आकर खड़े हो गये। कोई-कोई तो माँ के चरणों में हाथ देकर देखने लगे। माँ ने उनकी अंगुलियाँ पकड़ ली। वे आनन्द से मुस्कुराने लगे। ये लोग तिब्बत में भेड़-बकरियों के रोएँ का व्यापार करते हैं। तरह-तरह की चीजें लेकर हमारे सामने आये।''

शाम को 6 बजे हम 'रंगुंग' पहुँचे। रास्ते में अनेक मन्दिर दिखाई पड़े थे। मन्दिर के पत्थरों पर बहुत कुछ लिखा हुआ दिखाई पड़ा। सईसों ने कहा-ॐकार लिखा है। बकरी और भेड़ के सींग भी मन्दिरों के शिखरों पर लटकते दिखाई पड़े। उनमें भी अक्षर खुदे हुये थे। आज रास्ता बहुत खराब नहीं था। परन्तु डाकुओं का भय अधिक है यह जानकर सभी एक साथ चलने लगे। कैसा सुनसान रास्ता! स्थान-स्थान पर चमरी गायों और बकरी-भेड़ों के दल दिखाई पड़ते थे। न जाने कितने पहाड़ लाँघकर आये हैं। न रास्ता समाप्त होता था और न पहाड़। किधर से ले जायेंगे, कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। इधर कोई पेड़-पौधा भी नहीं था, पर स्थान-स्थान पर खेत थे। पहाड़ी लोग यह रास्ता जानते थे। हम केवल देख रहे थे कि कभी चढ़ाई और कभी उतराई है। कभी विशाल उपत्यका भूमि के भीतर से चल रहे थे। रास्ते का नामोनिशान प्रतीत नहीं होता था। पर्वतों पर पेड़-पौधे नहीं थे। तथापि लग रहा था कि मानो किसी ने तरह-तरह के रंगों से रंगकर पहाड़ों को सजा रखा है। पर्वतों की चोटियों पर जमी हुई बर्फ शोभा बढा रही थी। रास्ता चलते हुये लग रहा था-मानो असीम अनन्त के पथ पर चल रहे हैं। शायद इसका कहीं अन्त नहीं है। गाइड ही अपने अन्दाज से मील का निश्चय कर शाम होने से पहले उसी तरह के एक स्थान पर तम्बू तान देते थे। हम लोग भी कुछ समय के लिये अपनी-अपनी चीज वस्तु सम्भालकर

रहने का इन्तजाम कर लेते थे। फिर घर-द्वार (तम्बू) तोड़कर रवाना होते थे। मानो यायावर का जीवन चल रहा है। आज पिताजी को थोड़ा श्वास-कष्ट होने से माँ ने निश्चय किया कि कल उन्हें डांडी देकर स्वयं घोड़े पर जायेंगी। आज जल्दी-जल्दी खाना-पीना करके सब लोग सो गये।

दिन में तारा देखना

आषाढ़ 21, सोमवार– आज सुबह 10.30 बजे के भीतर खा-पीकर सब लोग चल पड़े। आज माँ घोड़े पर तथा बाबा डांडी में चलने लगे। रास्ते में एक स्थान पर माँ का घोड़ा बैठ गया था। माँ भी सरक गई पर उन्हें चोट नहीं लगी। जो हो, बेला दो बजे हम 'गौरी-पहाड़' नामक स्थान पर पहुँचे। घास-पानी देखकर पड़ाव डालने का नियम था। आज अनेक लोगों को ही श्वास-कष्ट आरम्भ हुआ। ठंड भी बहुत अधिक थी। किसी तरह रात बीती। उस रास्ते में दिन के समय एक नक्षत्र दिखाई पड़ा परन्तु ज्योतिष दादा ने उसे देखा है या नहीं, पता न लगा। सुना है कि उस नक्षत्र को जो नहीं देख सकता, वह संसार में अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहता।

मानसरोवर के मार्ग में डाकुओं के पंजे में

आषाढ़ 22, मंगलवार– आज कुछ गर्म चाय लेकर हम सभी रवाना हुये। साथ में कुछ लोग भी थे। आज 10 मील जाने पर हम **'मानसरोवर'** पहुँचेंगे। रास्ते में डाकुओं का डर है, गाईड ने बता दिया था। आज भी माँ घोड़े पर चली और स्वामीजी डांडी में, क्योंकि उन्हें बहुत ही अधिक श्वास-कष्ट हो रहा था। कल रात में मुझे भी श्वास-कष्ट हुआ था। तीसरे पहर साँस छोड़ने में बहुत ही कष्ट होने लगा था। रात में वह बहुत बढ़ गया। ठंड भी भयानक थी। बहुत से गर्म कपड़े ओढ़कर लेटे, पर शरीर गर्म नहीं हो पा रहा था। हम सुबह साढ़े आठ बजे रवाना हुये। रास्ते में इससे पहले भी डाकुओं के साथ भेंट हुई थी परन्तु माँ की कृपा से कुछ दुर्घटना नहीं हुई। कई बन्दूकें तथा अस्त्र-शस्त्र हमारे आदमी साथ लाये थे। आज चलते-चलते पहले दो आदमियों के साथ भेंट हुई, उनके साथ भी अस्त्र-शस्त्र थे। वे हमारे साथ-साथ चलने लगे। दाहिने हाथ की आस्तीन समेटकर चलने लगे। सुना है कि शस्त्र चलाने के उद्देश्य से ही वे इस तरह चलते हैं। कुछ दूर जाने पर पहाड़ के ऊपर दो और आदमी खड़े दिखाई दिये। पहले के

दो आदमियों ने हाथ से उन्हें कुछ इशारा किया। वे उतरकर हमारे जाने के रास्ते के पास बैठ गये। हमारे गाइड भी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित थे। वह भी घोड़ा दौड़ाकर उन्हीं के भीतर जा बैठे तथा उनसे बातचीत करने लगे। हमारे सारे घोड़ों और डांडियों के उस स्थान से आगे निकल जाने पर गाइड घोड़ा दौड़ाकर हँसते हुये हमारे साथ आ मिले। अवश्य ही डाकुओं से बातचीत के फलस्वरूप ही हम उनके हाथ से त्राण पा गये।

डांडी धीरे-धीरे चलने लगी। उसी के लिये हम जगह-जगह रुककर चलने लगे। गाइड भी बहुत सावधानी से चलने लगा। और भी कुछ दूर जाकर देखा-इस सुनसान स्थान पर और भी दो आदमी खड़े हैं। कहीं पेड़-पौधों का नामोनिशान नहीं था। जहाँ तक दृष्टि पहुँचती थी केवल पहाड़ ही नजर आते थे और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। हम लोग कुछ और भी आगे बढ़ गये। देखा, खेमा लगाकर कुछ लोग बैठे हुये हैं। गाइड घोड़ा दौड़ाकर उनके पास गये। हमारे उनके पास से गुजर जाने पर गाइड पुनः दौड़ते हुये हमारे साथ आकर मिल गये। सुना कि यह डाकुओं का खेमा था। ये लोग बकरी-भेड़ें लेकर यहाँ रहते हैं। इसी तरह डरते-डरते सब लोग रास्ता चलने लगे। क्रमशः मानसरोवर दिखाई देते ही सब लोग भय की बात भूल गये। अपूर्व दृश्य! विशाल झील! आकाश विचित्र रंगों से रंजित! मानो एक दूसरा आकाश नीचे भी बिछा दिया गया है।

हम लोग मानसरोवर देखते-देखते बहुत दूर चले आये। एक-एक स्थान पर बहुत ही भयानक चढ़ाई-उतराई थी। माँ को इस तरह पहले-पहल घोड़े की सवारी करते देखकर हमें बड़ा कष्ट हो रहा था, परन्तु माँ स्वामीजी की हालत देखकर किसी तरह डांडी में जाना स्वीकार नहीं कर रही थी। बहुत ही भयंकर रास्ता था। विपत्ति का पारावार नहीं था। माँ मुस्कुराते हुये ही चल रही थी। हम लोग बहुत दूर निकल आये। स्वामीजी की डांडी बहुत पिछड़ गई थी। माँ एकाएक इस सुनसान स्थान पर उतर पड़ी। भोलानाथजी, ज्योतिष दादा और मैं माँ के साथ आये थे। माँ ने कहा-"तुम तीनों चले जाओ। जहाँ तम्बू लगेगा, वहीं जाकर ठहरो। मैं यहाँ डांडी के लिये ठहरूँगी।" टुनू और दासू दादा भी नहीं पहुँचे थे।

इस निर्जन स्थान पर माँ को अकेली छोड़कर आने में राजी न होने से माँ गम्भीरता के साथ बोली-"जो कहती हूँ सुनो। तुम लोग चले जाओ।"

भोलानाथजी भी दो-एक बार एतराज करके भाई जी को साथ लेकर आगे-आगे मानसरोवर की ओर चले आये थे। इसी तरह मैं भी बहुत दूर चलकर मानसरोवर के तीर पर आ पहुँची। देखा-गाइड और पार्वती देवी वहाँ खेमा डालने का इन्तजाम कर रहे थे। लगभग 2 बजे हम लोग वहाँ पहुँचे थे, वहाँ सब लोग उतर गए। इस तरह हमारा दल तीन भागों में बँट गया। हम माँ और दूसरे लोगों की प्रतीक्षा में मानसरोवर के तीर पर बैठे रहे।

मानसरोवर

मानसरोवर में हरेक रंग के हँस तैर रहे थे। मैंने कुछ समय पाकर मानसरोवर के तीर से कुछ हटकर जहाँ तम्बू लगे थे, वहीं बैठकर लिखना आरम्भ किया। कैसा स्थान! जैसा खतरनाक, वैसा ही रमणीक! चारों ओर नाना रंगों की पर्वत-मालायें सुसज्जित थी और हमारे पैर के नीचे विशाल सरोवर विराजमान था। हवा तेज थी। धूप निकली पर ठंड के मारे उसका अनुभव नहीं हो रहा था। तो भी गाइड कहने लगे-''माँ की कृपा से हम लोग अच्छी तरह आ पहुँचे हैं। नहीं तो यहाँ हवा इतनी तेज रहती है कि आदमी का खड़ा रहना भी मुश्किल हो जाता है।'' यहाँ से कैलास तीन दिन का रास्ता था। कैलास पर्वत की चूड़ा बर्फ के मन्दिर-सी शोभायमान थी, चाँदी की तरह चमक रही थी। साथ के लोग कैलास पर्वत देखकर 'कैलासपति' की जयध्वनि करने लगे। कहाँ आ पड़े हैं, इन सब दृश्यों को देखते-देखते और उनके विषय में सोचते-सोचते हम आनन्द-विभोर हो रहे थे।

सब इन्तजाम होने के बाद रसोई का प्रबन्ध होगा। कुछ दिनों से इधर लकड़ी नहीं मिल रही थी। इसी पर्वत पर एक तरह के छोटे-छोटे काँटे के पौधे थे जो स्थान-स्थान पर झाड़ी के रूप में थे और चमरी गायों का सूखा गोबर सईस बटोर कर लाते थे। उसी से किसी तरह रसोई हो रही थी और किसी तरह का कुछ नहीं था। ये पौधे कुछ कच्चे ही जलते हैं। हवा के कारण स्टोव जलाना भी सम्भव नहीं था। श्वास-कष्ट सभी को थोड़ा-बहुत अनुभव हो रहा था। कपूर सूँघना पड़ता था। इसी से काम चल रहा था।

माँ ने पहले से ही सारी व्यवस्था की है

माँ ने अलमोड़ा से ही हम सब लोगों के लिये गर्म कपड़े की पतलून लाने के लिये कह दिया था। वैसा ही किया गया था। रूईदार कुर्ता आदि माँ

ने ही बरेली से बनवा लाने के लिये कहा था। अब देखती हूँ कि कलकत्ता से जो गर्म कपड़े आदि लाये गये थे, उनके सिवाय माँ के कथनानुसार यदि और गर्म कपड़े न बनवाये गये होते तो शीत निवारण असम्भव हो जाता। बहुत-सी और भी चीजों को माँ ने लाने के लिये कहा था। अब देखती हूँ कि वे बहुत ही आवश्यक थी। कपूर आदि माँ ने ही मँगवाये थे। यहाँ आकर सुनती हूँ कि श्वास-कष्ट होने से कपूर सूँघने पर आराम मिलता है। अस्तु, माँ पूर्ण-शक्ति-शालिनी हैं। उनकी बात इन छोटे विषयों से क्या प्रमाणित करूँ। तो भी लिखने में आनन्द हो रहा है इसलिये लिख रही हूँ।

रास्ते में चमरी गायों की दुमें देखने में बहुत ही सुन्दर लग रही थी। यह सुना गया कि जंगली चमरी गायों पर सवार होकर आने से कभी-कभी विपत्ति में पड़ना पड़ता है इसीलिये हम घोड़े पर आये हैं। सभी जंगल में छोड़े जाते हैं। आवश्यक होने पर मालिक उन्हें पहाड़ से उतार लाते हैं। इस सुनसान स्थान पर अवाक बैठकर प्रकृति की लीलाभूमि मैं देख रही थी, कुछ देर में माँ तथा दूसरे लोग आ पहुँचे। हम लोगों ने मानसरोवर में स्नान किया। माँ ने जल का स्पर्श कर कुछ छिड़क दिया। उससे कुछ बूँदें मेरे शरीर पर भी लगी। भोलानाथजी स्नान करने से पहले माँ को बुलाकर उनसे कुछ बातें करते रहे। पार्वती ने भोलानाथजी से दीक्षा ली। मैं तम्बू में लौट रही थी, इतने में ही माँ अपने भाव में तन्मय होकर सरोवर के तीर पर कुछ समय तक टहलती रही। उसके पश्चात् भाईजी भी माँ के साथ गये। माँ जब तम्बू में लौट आई उस समय मैं रसोई बनाने चली गई थी। बड़ी तेज हवा थी, उसके ऊपर कच्चे कँटीले पौधों से रसोई बनाना कठिन था, वह समझाया नहीं जा सकता। बहुत कष्ट से रात में सबने भोजन किया। लगभग 10 बजे लोग सो गये। बाद में सुना कि शाम से पहले माँ सरोवर के तीर पर जा बैठी थी। उस समय सरोवर शान्त हो गया था। कोई लहर नहीं थी।

राक्षस ताल

इसी सरोवर के पास कैलास पर्वत के नीचे और भी एक झील दिखाई पड़ी। गाइड ने कहा-''इसका नाम 'राक्षस ताल' है। राक्षस पति रावण ने यहाँ तपस्या की थी।'' डाकुओं के बारे में अफवाह सुनी कि यहाँ के राजा इसके लिये उन्हें कोई सजा नहीं देते क्योंकि यही उनका पेशा है। सुना है कि राजा

ने ही कह दिया है–"तुम जिस तरह हो, जबरदस्ती से ही सही या और किसी तरह से अपनी जीविका चलाओ।" इसलिये राहगीरों पर अत्याचार करने से इन्हें कोई सजा नहीं मिलती और सईसों ने कहा–"हम सब चश्मा पहन लेते हैं क्योंकि खाली आँख देखकर वे जान जाते हैं कि हम डर गये हैं। तब और भी अधिक अत्याचार करते हैं, इस कारण आँख छिपाकर हम इस ढंग से चलते हैं मानो हम उनकी परवाह ही नहीं करते।" और भी कहा–"वे लोग पहले खाना माँगते हैं, न देने पर हथियार चलाते हैं। सरोवर में अनेक चक्रवाक देखे गये। अनेक प्रकार के और भी पक्षी यहाँ दिखाई दिए। इतने दिनों तक किसी तरह के पक्षी दिखाई नहीं दिए थे। हम आज लगभग 10 मील आये हैं।

आषाढ़ 23, बुधवार– आज खाना-पीना करके रवाना होने की बात थी। सुबह हवा कुछ कम रहती है। इस कारण रास्ता चलना आसान होता है। परन्तु इतनी सर्दी में चलना भी मुश्किल था। अस्तु, हम जल्दी-जल्दी खाना पकाकर और थोड़ा-बहुत खा-पीकर 12 बजे चल पड़े। पहले ही बताया जा चुका है कि मील का यहाँ कोई ठीक हिसाब नहीं है। ये लोग अन्दाज से जो कहते हैं, मौका देखकर किसी स्थान पर पड़ाव डाल दिया जाता है। आज भी प्राय: साढ़े 6 बजे शाम को एक स्थान पर पहुँचकर खेमा डाल दिया गया। सुना है इस स्थान का नाम 'जुगुम्फा' है।

लामाओं का मन्दिर दर्शन

आज हम लगभग 8 मील आये हैं, ऐसा अनुमान होता है। हम मानसरोवर के तट-तट पर ही बहुत दूर तक आये। उसके बाद एक पहाड़ लाँघकर कुछ नीचे स्थान पर आये। रास्ते में लामाओं की एक गुफा तथा मन्दिर देखा। गुफा कुछ बड़ी और साफ सुथरी थी। बुद्ध की मूर्ति तथा और भी अनेक मूर्तियाँ यहाँ स्थापित दिखाई दी। बहुत से ग्रन्थ सजाये हुये रखे थे और बहुत यत्न से उनकी रक्षा की जाती थी। घी का दीपक जल रहा था। मूर्तियों के सामने बहुत-सी छोटी-छोटी कटोरियों में जल भरकर रखा गया था। पुजारी तीन-तीन साल में बदल जाते हैं। उस समय सारी चीजें नये पुजारी को सहेजकर दी जाती हैं। अनेक बाजे भी दिखाई दिए।

सुना है कुछ लोग मानसरोवर की परिक्रमा करते हैं अर्थात् चारों ओर

प्रदक्षिणा करते हैं, रास्ता लगभग 60 मील का है। 5–6 दिनों से कम नहीं लगते। इसलिये हम लोगों ने साहस नहीं किया। यहाँ एक स्थान पर पहाड़ के छेद में से खौलता हुआ गर्म जल निकल रहा है। यह स्थान भी सरोवर से बहुत दूर नहीं है। अब कैलास केवल 2 दिनों का रास्ता रह गया। पर्वत से सटा हुआ पर्वत है। सबसे ऊपर कैलास का शिखर है। अस्तु, यहाँ तम्बू और चीज–वस्तु सम्भालते हुये शाम हो गई।

कड़ाके की सर्दी थी, लकड़ी नहीं मिली, तेज हवा में स्टोव भी जलाया नहीं जा सका। लालटेनें भी खराब हो गई हैं। इस कारण थोड़ा–थोड़ा सत्तू खाकर सब लोग सो गये। सबकी ऐसी बुरी हालत हो गई कि सत्तू के बदले आटा ही माँ और भोलानाथजी को खिला दिया गया। ऐसी हालत थी कि वह सत्तू है या आटा, वह देख लेने की भी शक्ति नहीं थी। सभी थके–माँदे थे। खासकर स्वामीजी को श्वास–कष्ट बहुत अधिक था। माँ के घोड़े पर आने से हम समझते थे कि माँ को बहुत कष्ट हो रहा है परन्तु कुछ करने का कोई उपाय भी नहीं था। सब सहन करके ही रास्ता चलना होगा, ऐसी स्थिति में हम लोग आ गए थे।

पहाड़ की चोटी पर आकर दिखाई पड़ा मानो चारों ओर बगीचा सजा दिया गया है। पूर्वोक्त कंटीली झाड़ियों के सिवाय और कोई पेड़–पौधे नहीं थे। झाड़ियों में बहुत छोटे–छोटे सुन्दर फूल लगे हुये थे। वे झाड़ियाँ भी ऐसे सुन्दर ढंग से सजाई हुई थी कि मानो किसी माली ने उन्हें काट–छाँटकर सुडौल बना दिया है। सभी साफ सुथरी थी। कितने ही रूप दिखाई पड़ रहे थे, जिनका वर्णन करना भी सम्भव नहीं है। पथ दुर्गम तथा दुरूह था, इसमें कोई संदेह नहीं।

आषाढ़ 24, बृहस्पतिवार– आज सुबह से ही थोड़ा–थोड़ा पानी बरसने लगा। इधर प्राय: वृष्टि नहीं होती। वर्षण से और भी असुविधा होने लगी। ठंड भी अधिक बढ़ गई। सभी जड़वत् हो गये थे। कुली शराब पीकर चलते हैं। वे भी सर्दी से सिकुड़ गये थे। बुलाने पर भी जल्दी नहीं आते थे। इसी कारण खाना–पीना असम्भव हो गया।

बूँद

यह बात तय थी कि आज सुबह रवाना होना होगा किन्तु सर्दी के मारे

कोई हिल-डुल भी न सका। किसी तरह खा-पीकर चलना ही तय हुआ। हम लगभग 11.30 बजे खा-पीकर चल पड़े। आज हवा भी बहुत ठंडी थी, बहुत कष्ट से हम रास्ते पर चलने लगे। विस्तृत मैदान के भीतर से हम लोग चल रहे थे। उसका दूसरा प्रान्त दिखाई नहीं पड़ रहा था। शाम को 6 बजे हमने कैलास पर्वत के नीचे मैदान में तम्बू लगा लिया। कैलास पर्वत की शोभा देखते ही बनती थी। बर्फ से ढका हुआ मानो एक बहुत बड़ा चाँदी का मन्दिर है। चारों ओर के पहाड़ मानो मन्दिर की दीवारें हैं। माँ ने कहा- ''वह देखो, काली गौरी-पीठ की तरह पहाड़ घूम गया है।'' बहुत ही अपूर्व शोभा थी। इस स्थान का नाम 'बून्द' है। हम आज यहीं रात बितायेंगे, ऐसा निश्चय हुआ।

धनकेना से परिक्रमा आरम्भ

आषाढ़ 25, शुक्रवार- आज कुल 5 मील चलना है। 'धनकेना' पार होकर जाना होगा। धनकेना कुछ प्रसिद्ध स्थान है। कुछ दुकानें आदि भी हैं। सुना है, आज भी हम खा-पीकर ही चलना आरम्भ करेंगे। यहाँ मैदान के भीतर थोड़ी दूरी पर बहुत से लोग अपनी चमरी गायों तथा भेड़ों का दल लेकर पड़े हुये हैं। आज से ही हमारी परिक्रमा आरम्भ होगी। हम लोग खाना-पीना करके लगभग 12 बजे रवाना होकर रास्ते में धनकेना देखने गये। यहाँ भूटान राजा का मकान है। शायद यह स्थान भूटान राजा के इलाके में ही पड़ता है।

लगभग 4 बजे पहाड़ों के बीच में एक स्थान पर पड़ाव डाल दिया गया। हम लगभग 6-7 मील आये हैं। आज शरीर की थकावट से, खासकर श्वास लेने में सभी को दिक्कत हो रही थी। ठंड के मारे दम घुटने की हालत हो रही थी। कोई किसी को देख नहीं सकता था ऐसी स्थिति थी। जरा हिलने से ही श्वास ऐसे गिरने लगता था मानो अभी बन्द हो जाएगा। लकड़ी नहीं मिली। आग जलाने का प्रबन्ध नहीं हुआ। कपड़ों से शीत का निवारण होना असम्भव प्रतीत होने लगा। शीत से हाथ ऐसा अवश हो गया कि लिखना भी मुश्किल हो गया है। कैलास पर्वत की प्रदक्षिणा चल रही है वह भाव मन में रखा नहीं जा सकता। शरीर की ऐसी ही हालत हो गई। ठंड के मारे सब जड़वत् हो गये हैं।

काले कुत्ते की घटना

यहाँ एक घटना नहीं लिखी गई है। तकलाकोट से एक काला कुत्ता हमारे साथ हो लिया था। माँ का घोड़ा चलते ही साथ-साथ वह भी चल पड़ा। रास्ते में अगर कहीं हम बैठ गये तब वह कुत्ता भी जाकर माँ के पास बैठ जाता था। एक दिन माँ ने उसके सिर पर हाथ फेरकर पुचकारा। वह घोड़े के पीछे-पीछे दौड़ता चला। किसका कुत्ता है? कुछ भी पता न लगा, परन्तु वह इस देश का कुत्ता नहीं था।

आज रास्ते में 3-4 बार हिम-वर्षा हुई थी। यहाँ भी बीच-बीच में बर्फ गिर रही है। मैदान के बीच में खेमा लगाकर पहाड़ी लोग सपरिवार चमरी गाय तथा बकरी-भेड़ लेकर रहते हैं। उनके बड़े-बड़े कुत्ते थे। वे बड़े ही भयानक थे। हमारा दल जब मैदान में से चलता था तब वे तम्बू से बाहर निकलकर आश्चर्य से हमारी ओर देखते थे। उनकी पौशाकें नेपाली, भूटानी, तिब्बती आदि विभिन्न प्रकार की थी।

न जाने कितने पहाड़, कितनी नदियाँ हम पार कर आये। शोभा की सीमा नहीं थी। हमारे साथ के लोग उस देश के लोगों से भेंट होने पर कैसी-कैसी बातें करते थे, उनका एक अक्षर भी हम समझ नहीं पाते थे। प्रार्थना करने का ढँग भी अनोखा था। भिखारी अँगूठा दिखाकर भीख माँगते थे। जितना ही ऊपर हम चढते जाते थे, मार्ग की दुर्गमता उतनी ही अनुभूत हो रही थी। स्वामीजी को श्वास-कष्ट अधिक था। माँ की कृपा से हम लोग किसी तरह पैर बढ़ा रहे थे। ज्योतिष दादा भी घोड़े पर चलते-चलते बहुत थक गये थे। परन्तु कोई चारा ही नहीं था। हम रास्ते पर चलते ही जा रहे थे। आगामी कल भी कुछ दूर जाकर ठहरना होगा और परसों गौरीकुंड पहुँचने की बात है। सुना है कि गौरीकुंड की ऊँचाई 22 हजार फीट है। दो-तीन मील तक भयानक खड़ी चढ़ाई है। कैसे वहाँ पहुँचेंगे, समझ में नहीं आ रहा है। केवल माँ का ही भरोसा है।

आषाढ़ 26 शनिवार– इस स्थान का नाम 'सरसों' है। लगभग 12 बजे हम लोग रवाना हुये। इधर कई दिनों से बड़े-बड़े मैदानों के भीतर से चलना पड़ रहा था। बीच-बीच में चढ़ाई-उतराई भी थी। शाम को 4 बजे एक स्थान पर आकर पड़ाव डाल दिया गया। कैलास पर्वत का शिखर तीन ओर से देखा। एक स्थान पर भोलानाथजी ने दिखाया-पत्थर की मानो युगल मूर्ति

है। हमें दिखाने के लिये वह रास्ते पर खड़े थे। अपने भाव से उन्होंने जो कुछ देखा, वही हमें भी दिखाया। रास्ते में एक स्थान पर शिवजी का चरण-चिह्न दिखाया परन्तु यह सब विश्वास की बात, भाव की बात है। रास्ते में स्थान-स्थान पर बहुत से पत्थर के ढोंके इकट्ठे किये हुये रखे थे। उनमें कुछ अक्षर खुदे हुये थे। ये सुना गया कि वे सब ॐकार तथा और भी अनेक महान् वाणियाँ हैं।

आज हमने जहाँ आकर खेमा लगाया, वहाँ से थोड़ी दूरी पर एक झरने के गिरने का शब्द सुनाई पड़ रहा था। यहाँ भी लकड़ी नहीं मिली। गोबर से रसोई बनानी पड़ी। स्टोव भी जलाया गया। बीच-बीच में हिम वर्षा भी हो रही थी। थोड़ी दूरी पर एक गुफा थी। पार्वती देवी जाकर वहाँ से हमारे लिये कैलास का धूप और यज्ञ का भस्म लाई। गर्ब्यांग छोड़ने के बाद कहीं भी दूध नहीं मिला था। परसों चमरी गाय का दूध और मक्खन मिला था। आगामी कल गौरीकुण्ड जाना होगा।

सुना है कि यह रास्ता भी बहुत खराब है। कल प्राय: दिन-भर ही घोड़े की पीठ पर बिताना होगा। आगे डांडी नहीं जायेगी, अत: स्वामीजी को भी घोड़े पर चलना होगा। उनकी अवस्था देखकर उन्हें तथा मुझे नीचे छोड़ जाने की बात हो रही थी परन्तु भोलानाथजी की चेष्टा से सभी के जाने की बात तय हो गई। जो होना है, वही होगा। श्वास-कष्ट के लिये कपूर और कुछ मेवा तथा रास्ते के कष्ट के लिये कुछ आवश्यक वस्तुयें माँ ने सबको बाँट दी। कल दोपहर को खाने का स्थान नहीं मिलेगा, इस कारण खाने के लिये आज रात को ही कुछ बना लिया गया। मानो एक भारी लड़ाई के लिये तैयारी हो रही है। हवा तेज थी। किसी तरह सब लोग कम्बल ओढ़कर सो गये।

अखण्डानन्द स्वामी ने आज रात को एक बहुत सुन्दर स्वप्न देखा। स्वप्न में देखा कि कई काले रंग की नंगी स्त्रियाँ उनके पास आई हैं। स्वामीजी ने उनमें से एक को कहा-''मेरा शरीर अस्वस्थ हो गया है। अब मुझसे कैलास परिक्रमा नहीं हो सकती।'' उस काली स्त्री ने सामने की एक दूसरी स्त्री को इशारे से दिखाकर कहा-''इनसे कहिये।'' स्वामीजी ने देखा कि सामने एक उज्ज्वल पीले रंग की स्त्री-मूर्ति खड़ी है। स्वामीजी ने उनसे पूछा-''माँ, क्या मुझसे नहीं होगा।'' गोरी स्त्री ने कुछ नहीं कहा।

गौरीकुंड में आगमन और क्रिया-कर्म करना

आषाढ़ 27, रविवार- आज सुबह ही रवाना होना होगा। स्वामीजी का जाना भी स्थिर हुआ है। उस समय उन्हें अपने स्वप्न की बात याद आई। गौरीकुंड के दर्शन के लिये जाना है इसलिये किसी ने कुछ नहीं खाया। साथ में गर्म चाय भी ले ली गई। थोड़ी धूप दिखाई दी। इसी बीच हिम-वर्षा भी हो रही थी। हम लोग लगभग 7.30 बजे रवाना हुये।

माँ के कथनानुसार घोड़ों को एक के बाद दूसरा इस प्रकार सजा लिया गया। कल रात को शीत के मारे किसी को नींद नहीं आई थी। जितने भी गरम कपड़े थे प्राय: सभी पहनकर सब लोग सोये थे किन्तु शरीर मानो जल से भीगा-सा अनुभूत होने लगा। इसी जगह ऐसी अवस्था हुई। आज तो और भी अधिक ऊँचाई पर उठना होगा। 22 हजार फीट ऊँचा गौरीकुंड रवाना होते समय माँ ने दिखाया-''देखो चारों ओर एक गोल रेखा की तरह है। इसे धर्मसभा कहते हैं। इस शरीर की माँ छुटपन में मुझे कहती थी-यह शुभ लक्षण है।'' कुछ दिन पहले गाइड ने दोपहर को एक स्थान पर घोड़ा रोककर दिखाया था-आकाश में एक नक्षत्र और चन्द्र दिखाई पड़ रहे हैं। वे कहते थे-एक साथ सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र दिखाई पड़ना शुभ लक्षण है।

हम लोग चलते ही गये। हवा बहुत ही कम थी इसीलिये अधिक कष्ट नहीं हो रहा था। परन्तु हवा न होने पर भी बहुत अधिक ठंड से हम लोग ठिठुरते जा रहे थे। दो-तीन गरम पायजामा तथा गरम कोट, स्वैटर, ओवरकोट आज सब पहनकर ही हम लोग चल रहे थे। जूता, मोजा, गरम टोपी, दस्ताना आदि किसी चीज की कमी नहीं थी। तो भी शीत के मारे हम लोग काँप रहे थे। रास्ता वास्तव में ही बड़ा भयानक था। पथरीली चढाई के रास्ते में पग-पग पर घोड़ों को ठोकरें लग रही थी।

प्राय: 3 मील इसी तरह चढ़ते हुए हम गौरीकुंड आ पहुँचे। जो कुछ करना है इसी गौरीकुंड में करना होता है। और कोई मन्दिर या मूर्ति नहीं है। यहाँ कैलास पर्वत प्रदक्षिणा करना ही धार्मिक कृत्य है। आज ही प्रदक्षिणा समाप्त करनी होगी। गौरीकुण्ड एक बर्फ का तालाब है। पर्वत के तने पर भी बर्फ थी। इसलिये दिखाई पड़ता था कि कुण्ड के तीन ओर बर्फ की दीवारें हैं। हम बर्फ के भीतर से ही आ रहे थे, रास्ते में विशेष बर्फ न रहने पर भी

दोनों ओर ही पर्वतों पर बर्फ थी। कुण्ड के जरा ऊपर रंगीन कपड़े का एक झण्डा देना होता है। सभी ले जाया गया था। बहुत कष्ट से हम गौरीकुण्ड के पास उतरे। बर्फ जमकर कड़ी हो गई थी। किनारे के पास कहीं-कहीं जल दिखाई पड़ता था, उसमें भी हलके बर्फ के टुकड़े तैर रहे थे। उन्हें हटाकर ही नहाना पड़ता है। भोलानाथजी, दासू दादा और हमारे साथ के भारती ब्रह्मचारी ने स्नान किया। हम लोगों ने सिर में पवित्र जल का छिड़काव किया। वहाँ हम कुछ देर तक रहे। माँ ने भी सिर धोया, जलपान किया, मेवा देकर भोग दिलाया तथा धूपबत्ती जलाकर सबसे आरती कराई। भोलानाथजी की एक बड़ी जटा काटकर गौरीकुण्ड में डाल दी गई।

थोड़ी-थोड़ी बर्फ की वर्षा होते रहने पर भी कुछ धूप निकली। इससे हवा न रहने के कारण हमें अधिक कष्ट नहीं हुआ परन्तु स्वामीजी को विशेष श्वास-कष्ट हो रहा था। प्राय: कुम्भक की तरह की अवस्था में वह माँ के पीछे जाकर बैठ गये। ज्योतिष दादा की भी प्राय: वही हालत थी। सुबह से ही उनकी छाती की स्थिति अच्छी नहीं थी परन्तु सबका जाना बन्द हो जाने के डर से उन्होंने कुछ प्रकट नहीं किया था। लौटते समय उन्होंने अपनी उस हालत की बात बताई। माँ की कृपा से तथा भोलानाथजी के उत्साह से सब लोग सकुशल गौरीकुण्ड पहुँचकर धार्मिक कृत्य कर सके। आज साथ के लोगों को कुछ खिला देने का यहाँ नियम है। फल, मेवा, हलुवा जो कुछ साथ था उसमें से थोड़ा-थोड़ा बाँट दिया गया। वहाँ कुछ मिलने का उपाय नहीं था।

लगभग साढ़े 12 बजे हम गौरीकुण्ड से वापस रवाना हुये। अब उतराई थी, यह और भी भयंकर थी। हर समय घोड़े की पीठ पर रहा भी नहीं जाता था। हम घोड़े पर सवार होकर जिस रास्ते से उतरे थे, उसे देखने से भी डर लगता था। लगभग दो मील की उतराई थी, माँ के साथ दो व्यक्ति थे। इसी तरह लगभग ढाई बजे हम समतल भूमि पर पहुँचे। सामने जल का सोता मिला। हम वहीं बैठकर कुछ जलपान करके फिर रवाना हुये।

समतल भूमि पर करीब चार-पाँच मील चलकर सन्ध्या से पूर्व ही एक झरने के पास पड़ाव डाल दिया गया। रास्ते में डर था, डांडी से चलने पर बहुत पिछड़ जाना पड़ता था इसलिये स्वामीजी घोड़े पर ही आये।

मार्ग में प्रदक्षिणा करते समय देखा कि दो आदमी दण्डवत् करते हुये प्रदक्षिणा कर रहे हैं। हमसे कुछ माँगने पर कुछ पैसे दे दिये गये। सुना है कि इस तरह की प्रदक्षिणा पन्द्रह दिन में पूरी होती है। हमें आश्चर्य हुआ कि ऐसे दुर्गम रास्ते में इस प्रकार एक बार दण्डवत् करके फिर उठकर जहाँ सिर था वहाँ से पुनः दण्डवत करते हुये ये आगे बढ़ रहे थे। घुटनों और छाती पर मोटा कपड़ा लपेट लिया था। उनकी भक्ति देखकर हम अवाक् रह गये।

इसी बीच में हमारे गाइड जाकर खबर लाये कि उन्होंने अपने मुँह से ही स्वीकार किया है कि वे डाकुओं के सरदार हैं। इसी तरह वे लोगों को धोखा दे रहे हैं। इस समाचार से भी हमें आश्चर्य होने लगा। तम्बू में आकर तय हुआ कि कल ज्योतिष दादा को थोड़ा विश्राम देने के लिये डांडी में सवार कराया जाएगा। माँ तो भक्तों के लिये इसी तरह न जाने कितना कष्ट उठाया करती हैं। रात को रसोई होने पर सब लोग खा-पीकर सो गये।

माँ प्रसंगवश कह रही थी-"देखती हूँ, पाँच गेरुआ-वस्त्रधारी (सूक्ष्म शरीर में) पास आकर कह रहे हैं-'हम तुम्हारे साथ परिक्रमा में थे।' ऐसे तो कितने ही रहते हैं। मैं कुछ न बोली परन्तु एक दूसरे सूक्ष्म-शरीरधारी ने उनसे पूछा-'तुम लोग कौन हो?' उन साधुओं ने उत्तर दिया-'हम महेशचन्द्र भट्टाचार्य के भतीजे कानाई के शिष्य हैं। इसी तरह अभी भी हम काम करते जा रहे हैं।" माँ कह रही थी-"इस बात से प्रतीत होता है कि कानाई इस जन्म से पूर्व जन्म में उच्च अवस्था में था।"

इतना कहकर सूक्ष्म-शरीर-धारियों के प्रसंग में उन्होंने बताया-"जिस प्रकार तुम लोगों को देखती हूँ उसी तरह उन्हें भी मैं साफ देखती थी। जैसे तुम लोग पैर पर हाथ फेरते हो और प्रणाम करते हो, तुम्हारे पास बैठकर वे भी वैसा ही करते हैं।"

यहाँ भी लकड़ी नहीं मिली परन्तु पार्वती देवी एक गुफा में जाकर कुछ लकड़ियाँ खरीद लाई। लकड़ी माने काँटे की कुछ छोटी-छोटी टहनियाँ थी। हम लोग पूर्वोक्त अद्भुत पौशाक में ही दिन-रात बिता रहे थे। कल ही हम 'बूँद' पहुँचेंगे। वहीं हमारा सामान रखा हुआ था। यहाँ भी भीखमंगों की संख्या अल्प नहीं थी। उन्हें मुट्ठी भर सत्तु दिया गया, इसी से वे ख़ुश, ऐसे ही वे गरीब थे।

* * *

दूसरा अध्याय

कैलास से लौटना

आषाढ़ 28, सोमवार– आज भी खाना–पीना करके ही हम लोग रवाना होंगे। अब हम लौटने के पथ पर थे। कल ही प्रदक्षिणा समाप्त हो गई थी। कल रात को हम 'डीडीपो' में थे और आज 'जीजीपो' में आये।

मानसरोवर में पार्वती देवी ने और गौरीकुण्ड में टुनू ने भोलानाथजी से दीक्षा ली है। खाने–पीने के बाद सब लोग चल पड़े। ज्योतिष दादा डांडी पर चले। 'बूँद' पहुँचकर वहाँ जो सामान रखा हुआ था उन्हें लेकर 'बरखा' नामक स्थान पर सन्ध्या से पहले आकर पड़ाव डाल दिया गया।

हवा बहुत अधिक रहने से ठंड भी बहुत थी। यहाँ दिखाई पड़ा कि थोड़ी धूप निकलते ही कुछ गर्मी मालूम होती है और धूप घट जाते ही अथवा हवा चलते ही भयंकर शीत लगने लगती है। आज भी बहुत शीत था। साथ के दो–एक सईस ही बर्तन माँजते थे। केशवसिंह भी साथ था। रात के लगभग नौ बजे सब लोग सो गये। यहाँ से कैलास पर्वत का शिखर बहुत ही सुन्दर लग रहा था। वह बर्फ से पूर्णतया आवृत्त था। मुझसे माँ ने घी का दीया जलवाकर, आरती करवाकर दण्डवत् प्रणाम कराया। मानसरोवर और गौरीकुण्ड से माँ ने पवित्र जल मँगवाया है।

आषाढ़ 29, मंगलवार–आज सुबह अच्छी धूप निकली। सबने कपड़े–लत्ते धूप में डाल दिये। टुनू की कमीज के भीतर बहुत–सी जूंएँ घुसी हुई थी और काट–काटकर उसके सारे शरीर में उन्होंने घाव बना दिये थे। आज उसने कमीज खोल दी। दिन के बारह बजे खाना–पीना करके सब लोग चल पड़े। यहाँ भी चमरी गाय का दूध और मक्खन मिल गया था, बकरी के दूध का भी मक्खन मिला था। हमने कुछ खरीद भी लिया। ये लोग भेड़ के चमड़े की डिबिया के भीतर मक्खन रखते हैं। पाँच मील चलकर एक मैदान के भीतर 'राक्षस तालाब' के तट पर साढ़े 4 बजे आकर खेमा लगा लिया गया। आज माँ डांडी से आयी। इससे उल्लेखनीय और कोई घटना नहीं थी।

आषाढ़ 30, बुधवार– सुबह खाना-पीना करके दिन में 11 बजे हम लोग रवाना हुये। रास्ते में मैदान था, बीच-बीच में चढ़ाई-उतराई भी थी। कल रात को थोड़ी-थोड़ी बर्फ की वृष्टि हुई थी, शीत भी बहुत था। यहाँ से भी कैलास का अच्छा दर्शन हो रहा था। हम एक पहाड़ के ऊपर चढ़कर मानसरोवर को भी देख आये। लौटते समय हम मानसरोवर की तरफ से नहीं आये, दूसरे रास्ते से आये थे। घोड़े करीब-करीब अचल हो गए थे। 6 घण्टे चलने के बाद लगभग नौ-दस मील आकर राक्षस तालाब के दूसरे तीर पर पड़ाव डाल दिया गया। तकलाकोट पहुँचने में और भी दो-तीन दिन का समय लगेगा, थोड़े समय के भीतर ही ठंड और गर्मी का अनुभव हो रहा था।

हमारे साथ पाँच तम्बू आये थे। एक में माँ, भोलानाथजी, स्वामीजी, ज्योतिष दादा, पार्वती और मैं रहते थे। दूसरे में दासू दादा, टुनू और ब्रह्मचारीजी रहते थे। तीसरे में रसोई होती थी, उसमें केशवसिंह रहता था। अन्य दो में गाइड और साथ के अन्य लोग रहते थे। हर रोज सुबह गृहस्थी का सामान बटोर लेते और शाम को बिछा देते थे। कुछ दिनों तक और भी ऐसे ही चलता रहेगा। वृष्टि में बर्फ का अंश ही अधिक था और विशेष असुविधा नहीं थी। परन्तु इस खुली जगह में वृष्टि ने समय-समय पर हमें बड़ी असुविधा में डाल दिया था। फिर तकलाकोट के नीचे उतरते ही वृष्टि से बहुत ही कष्ट सहना पड़ेगा।

आषाढ़ 31, बृहस्पतिवार–खा-पीकर लगभग 11 बजे हम चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद मेरे शरीर का बायाँ भाग दर्द करने लगा और सुन्न-सा हो गया, मैं घोड़े से उतरकर लेट गई। थोड़ी देर बाद मुझे डांडी में देकर माँ घोड़े पर आई। आज़ भी लगभग दस मील आकर शाम के पहले एक स्थान पर पड़ाव डाल दिया गया। यहाँ भी कड़ाके का जाड़ा था, हवा भी बहुत तेज चलने लगी।

रास्ते में बहुत दूर तक कैलास के दर्शन होते रहे। राक्षस तालाब देखते हुये हम लोग चल रहे थे। यह भी बहुत बड़ा था। माँ ने कहा–"इधर से दिखाई पड़ता है मानो मानसरोवर खोदकर किनारों पर मिट्टी का ढेर लगा दिया गया है। वही पहाड़ बन गया है, देखो न किसी ओर झरने का नाम तक नहीं है।" लोग बातचीत में कह रहे थे–यदि देवताओं ने मानसरोवर बनाया

तो पास ही में **रावण** ने **राक्षस तालाब** भी बना दिया। तो रावण छोटा नहीं था। माँ ने कहा–"असम्भव क्या है? सम्भव भी असम्भव है और असम्भव भी सम्भव है।" हम लोग यहाँ मान्धाता पर्वत के पास थे। सुना है कि **राजा मान्धाता** ने इसी पर्वत पर आकर तपस्या की थी। अब तो कैलास या रावण–ताल कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था।

आषाढ़ 32, शुक्रवार– हम खा–पीकर चल पड़े। 6 मील जाकर रुकना होगा क्योंकि अब अधिक चलने की शक्ति बहुतों में नहीं थी। आज 6 मील चलकर उसी तरह के पर्वतों के बीच एक समतल स्थान देखकर तम्बू लगा लिया गया। आज भी मैं माँ की आज्ञा से डांडी में ही आई हूँ। एकाएक ठंड लगने से ही मेरा बायाँ हाथ बेकाम हो गया था।

हमारे खाने की खास चीज थी खिचड़ी (मसूर की दाल के सिवाय और कुछ नहीं मिलता था इसलिये हमें खिचड़ी खाना नसीब नहीं होता था)। रोटी या भात जब जैसा बन सका खा लेते थे। तरकारी में आलू के सिवाय कुछ नहीं मिलता था, जब वह भी खत्म हो गया तो चना भूनकर (जो साथ ले गये थे) अथवा केवल चीनी से ही खाने का काम चलाना पड़ता था। कैलासपति की कृपा से कच्चे पौधों में हवा देते–देते आग जल जाती थी इसीलिये रसोई का काम चलता था, नहीं तो वह असम्भव हो जाता। इसी तरह दिन बीत रहे थे, कभी–कभी झरने के पास पड़ाव डाला जाता था। उस समय समुद्र–गर्जन की तरह अविराम कल्लोल–ध्वनि कान में आती थी, अच्छी लगती थी।

स्वामीजी परिक्रमा से लौटने के रास्ते में फिर स्वप्न देख रहे थे– एक आदमी उन्हें दुर्गा–पूजा का निमंत्रण देने के लिये आये और जेब में कुछ खोंच देने लगे। स्वामीजी ने पूछा–"यह क्या दे रहे हो?" उन्होंने उत्तर दिया–"दुर्गापूजा का आशीर्वाद दिया है।" स्वामीजी ने हाथ जोड़े प्रणाम करते हुये उनसे कहा–"हमारे घर में भी हर साल दुर्गापूजा होती है।"

लौटने के मार्ग में तकलाकोट

श्रावण 1, शनिवार– आज हम सुबह 7 बजे रवाना हुये। 5–6 घण्टे चलने पर हम तकलाकोट पहुँचेंगे। सुबह बिना कुछ खाये ही चलकर 5 या साढ़े 5 घण्टे में तकलाकोट पहुँचे। यहाँ कुछ दुकानें हैं। कुछ घर गृहस्थों के

भी हैं। यह एक व्यापार की मण्डी है। हमारे पहुँचते ही अलमोड़ा की रन्द्रादेवी के चाचा माँ को अपनी दुकान में ले गये। वहाँ से कुछ चीजें खरीद ली गई। साथ की बहुत-सी चीजें खत्म हो गई थी। आलू या कोई दूसरी तरकारी नहीं मिली। चीनी आदि कुछ-कुछ चीजें मिल गई। यहाँ मटर के बहुत-से खेत थे। साथ के लोग खेतों में जाकर बहुत-से साग-भाजी लाये। किसी तरह उसे ही सिझाकर तरकारी पकाई गई।

सुना है कि राजा का हुक्म है कि कोई खेत से साग नहीं ले सकता। यहाँ राजा को बहुत अधिक मालगुजारी देनी पड़ती है। इस कारण कोई भी राजा से संतुष्ट नहीं है।

बहुत से लामा दिखाई दिए। गुफायें भी बहुत-सी थी। परन्तु योग्य लामा की खबर कोई नहीं दे सका। सुना है कि लामाओं को चिरकुमार रहने की प्रथा है। विवाह करने से सजा भोगनी पड़ती है।

हमारे तम्बू पहाड़ के नीचे जल के पास लगाये गये थे। चीज-वस्तु खरीदकर धीरे-धीरे चलकर हम नीचे उतर आये, पकाने-खाने में 5 बज गये। रन्द्रादेवी के भाई तीसरे पहर माँ के लिये कुछ फल और एक सुन्दर लकड़ी की कटोरी लाये। यहाँ से हमने कई चँवर खरीदे। इधर चमरी गाय के सिवाय हमारे देश की गाय दिखाई नहीं पड़ी।

इस देश में एक बड़ी ही सुन्दर प्रथा की बात सुनाई पड़ी। हमारे साथ के सईसों में कई मानसरोवर से पकड़कर दो-चार मछलियाँ पीठ पर बाँध लाये थे। ये मछली वे खायेंगे या नहीं- पूछने पर उन्होंने कहा-''ये मछलियाँ हम खाने के लिये नहीं लाये हैं। मानसरोवर की मछलियाँ अनमोल चीज हैं। बकरी-भेड़ों के झुंड में जब बाघ कूद पड़ता है तब इस मछली के जलाने की तीव्र गन्ध से बाघ को केवल मानसरोवर ही सूझता है। उस समय उसे यमलोक भेजना हम लोगों के लिये आसान बात हो जाती है।'' यह कहानी कहाँ तक सत्य है, मैं बता नहीं सकती परन्तु इसमें उनका दृढ़ विश्वास है।

आज शीत बहुत कम था। साँस की हालत भी कुछ स्वाभाविक हो गई। बहुतों ने पतलून और गरम कोट उतारकर कपड़े पहने। इससे कुछ आराम मालूम होने लगा। परन्तु तीसरे पहर फिर गरम कोट और पतलून पहननी पड़ी, फिर भी शीत कम नहीं हुआ। बहुत-सी तिब्बती स्त्रियाँ अपने बाल-बच्चों

को लेकर खड़ी-खड़ी तमाशा देख रही थी। दिनभर आदमियों का ताँता लगा हुआ था। तीसरे पहर माँ छोटी झाँझ बजाने लगी और उन्हें गाना गाने के लिये कहा गया। उनकी भाषा का एक अक्षर भी समझ में नहीं आया। सईसों के समझा देने पर चार-पाँच स्त्रियाँ आपस में हाथ पकड़कर आनन्द से नाचते हुये गाना गाने लगी। इनका स्वभाव बहुत ही सरल था। संकोच का लेशमात्र भी नहीं था। माँ की आज्ञा से अपने साथ का पिस्ता, किशमिश आदि इनमें बाँट दिया गया। मेवा पाकर वे बहुत खुश हुई। शाम होते ही हम लेट गये।

गर्ब्यांग का और भी तीन-चार दिन का रास्ता था। रुद्रादेवी के भाई (नन्दराम बाबू के लड़के) सन्ध्या समय कुछ चिट्ठियाँ दे गये। गर्ब्यांग में उनके पते पर आई थी। बहुत दिनों के बाद ढाका से हिरण दीदी और गणेश दादा तथा कलकत्ता से स्नेहलता बसु और ननी की चिट्ठियाँ मिली। नगेन दादा आदि की भी कुछ चिट्ठियाँ आई। इतने दिनों तक चिट्ठी-पत्रियों का कोई सम्पर्क ही नहीं था। मानो हम एक दूसरी ही दुनिया में थे। खैर आगामी कल खाना-पीना करके ही रवाना होना निश्चित हुआ है।

श्रावण 2, रविवार– आज सुबह पार्वती देवी ने आकर पहाड़ पर लामाओं की गुफा में ले जाने का प्रस्ताव रखा। बात तय हुई कि लौट आकर मैं रोटी बना लूँगी और दासू दादा बाकी रसोई बनाकर रखेंगे।

लामाओं की गुफा में गमन

माँ, भोलानाथजी, टुनू, ज्योतिष दादा, पार्वती देवी और मैं घोड़े पर चढ़कर ऊपर चढ़ने लगे। एकदम पहाड़ की चोटी पर लामाओं की गुफा थी। उसके पास ही राजा के प्रतिनिधि का मकान था। हम गुफा देखने चले। बड़ी खड़ी चढ़ाई थी। फिर लौटते समय वैसी ही खड़ी उतराई थी। घोड़े की पीठ पर चढ़ाई-उतराई करने में अब डर नहीं लगता था। अभ्यास-सा हो गया था। वास्तव में पहाड़ के तने पर जिस ढंग से रास्ता बना हुआ है उसमें घोड़े का पैर फिसल गया तो कहाँ जाकर गिरेंगे उसका पता भी नहीं चलेगा। रास्ता नाममात्र का था। पहाड़ के तने पर से इसी तरह चढ़ते हुए हम एकदम पहाड़ के शिखर पर आ पहुँचे।

लामाओं की गुफा पीले रंग की थी और राजा का मकान लाल रंग का था। हम घूम-घूमकर गुफा देखने लगे। बहुत बड़ी गुफा थी। बहुत से लोग

वहाँ रहते थे। सुना है कि यहाँ के लोग छोटे-छोटे बच्चों को भी संन्यासी बनाकर लामाओं को दे गये हैं। राजा ही सबके खाने-पीने का इन्तजाम करते हैं। यानी, प्रजाओं पर उनका हुक्म है कि सब साधुओं के खाने-पीने का सामान देना होगा। देखा कि बहुत से लड़के बैठकर शास्त्र पढ़ रहे हैं।

प्रधान लामा से भेंट करने के लिये हमने बहुत-सी लकड़ी की शंकाजनक सीढ़ियों पर से ऊपर उठकर देखा, अधिक उम्र के एक लामा गद्दी के ऊपर एक कुत्ता लिये बैठे हुये हैं। चारों ओर भगवान् बुद्ध के चित्र तथा मूर्तियाँ और अन्यान्य मूर्तियाँ भी रखी हुई थी। पूर्वोक्त गुफाओं की तरह यहाँ भी हर मूर्ति के सामने जलपूर्ण पात्र रखा हुआ था। बहुत-सी पुस्तकें भी सजाई हुई थी और भी बहुत से असबाब थे। हमारे में से ज्योतिष दादा ने कहा-''कुछ शक्ति दीजिये।'' बात कुछ भी नहीं समझ सके। बाद में हमारे साथ के सईस और पार्वती देवी के समझा देने पर तरह-तरह के प्रसाद देने लगे-'तीर्थपुरी' का प्रसाद, 'खच्चरनाथ' का प्रसाद आदि।

हम लोग उन स्थानों पर नहीं गये क्योंकि उसमें समय अधिक लगता। रास्ता भी ठीक नहीं था। लामा ने रंगीन कपड़े के टुकड़े भी दिये। मालूम हुआ है कि ये इन टुकड़ों को बहुत ही शुभ लक्षण मानते हैं, क्योंकि पहले ही बताया गया है कि कपड़े के ऐसे छोटे-छोटे टुकड़ों को रस्सी में लपेटकर हर एक देवस्थान पर लटकाये रखा गया है। गृहस्थों के मकानों पर भी तथा रास्ते के बीच-बीच में पत्थरों के ढोके बटोरकर उसी तरह कपड़े लटकाये रखे गये हैं। परन्तु उन पत्थरों में बहुत-से अक्षर खुदे हुये थे। आश्चर्य की बात यह है कि ॐ का अक्षर करीब-करीब हमारे ही तरह का था और इस शब्द का व्यवहार ये लोग बहुत अधिक करते हैं।

हम गुफा के सभी स्थानों को देखने लगे। एक स्थान पर जाकर देखा तारामूर्ति तथा अन्य स्थान में दूसरी देवीमूर्ति हैं। एक घर में बुद्ध की विशाल पीतल की मूर्ति रखी हुई है। उपयुक्त लामाओं की मूर्ति भी स्मारक चिह्न के रूप में रखी हुई है। एक बूढ़े लामा ने उनके घर में जाने पर चाय पीऊँगा या नहीं पूछा। सुना है ये सब लोग मिलकर चाय का भोग चढ़ाकर प्रसाद पाते हैं। चाय बिना पीये इस देश में रहने का उपाय नहीं है। हम लोग भी रुपया, चाय, मेवा और मिसरी ले गये थे। यह सब गुफा में चढ़ाना होता है।

लड़कों के रहने के घर भी देखे। प्रायः अंधेरा छाया हुआ था। चारों ओर का स्थान बहुत साफ नहीं था। परन्तु जिस घर में मूर्ति थी वह बहुत साफ़-सुथरा था। पहले घुसते ही बहुत दुर्गन्ध नाक में आने लगी। भेड़ और चमरी गाय के सींग तथा हड्डियों की कमी नहीं थी। गुफा में घुसते समय एक बहुत बड़ी चमरी का सिर दिखाई पड़ा।

यह सुना गया कि लामा लोग दाल, भात और रोटी खाते हैं। कोई-कोई माँस भी खाते हैं। गुफा क्या थी मानो राजमहल हो। बूढ़े लामा के घर में गोल-गोल पतले कागज पर न मालूम क्या लिखा है। ज्योतिष दादा ने उसे लाना चाहा पर नहीं मिला। सुना है कि खेती में कोई विघ्न हो तो इस कागज से वह दूर होता है। बहुत कहने-सुनने पर आठ आना पैसा देकर दो कागज लाये गये।

हमारे लौटने में दिन बहुत चढ़ गया। आकर रोटी बनाकर भोग लगाया गया। कई आदमी माँ से भेंट करने के लिये आये थे और सुबह से ही पहाड़ी स्त्रियाँ तम्बू उठा-उठाकर झाँक रही थी। जब तक हम थे तब तक वे तम्बू के चारों ओर भीड़ लगाये खड़ी थी।

खाना-पीना करके रवाना होने में लगभग एक बज गया। कल ज्योतिष दादा डांडी में आये थे, आज माँ चली। हम सब घोड़े पर चले। रास्ते में अनेक व्यापारी दिखाई दिए। कोई दल तम्बू लगाकर बैठा था तो दूसरा दल पहाड़ के नीचे कुण्ड के पास रसोई पका रहा था। घोड़ों, खच्चरों और चमरी गायों को छोड़ रखा था। उनकी पीठ के ऊपर रखे गये जो बोझे थे, वे इधर-उधर पड़े हुये थे। खाना-पीना हो जाने के बाद उन बोझों को उनकी पीठ पर चढ़ाकर सब चल देंगे।

तकलाकोट एक व्यापार का स्थान है। सभी तकलाकोट जा रहे हैं। नीचे की चीज ऊपर और ऊपर की चीज नीचे भेजने का यही बाजार है। यहाँ लोग इकट्ठे होकर चीज-वस्तुओं की अदला-बदला करते हैं।

हमने आज 6 मील आकर पड़ाव डाला। दो मील और ऊपर जाने पर 'लिपू' की चढ़ाई शुरू होगी। थोड़ी दूर पर ही डेरा डाला गया क्योंकि 'लिपू' के पास ठंड में रहना मुश्किल होता। यहाँ भी झरने के पास ही खेमा लगाया गया। इसी तरह का जीवन बीतने लगा। घास के फूल अनेक तरह के दिखाई

पड़े। किसी-किसी स्थान पर पीले फूलों के खेत में तम्बू खड़े किये गये और कहीं लाल, आज बैंगनी रंग के फूलों का बिछावन देखा।

दिन रहते ही हम पहुँच गये थे। तकलाकोट से साबुत मटर लाये थे। साथ में कोई तरकारी नहीं थी। दाल भी खत्म हो गई थी। मटर काले-काले थे। स्टोव पर उसी को भूनकर खाया गया। कल 'लीपू' पार होना होगा। इस रास्ते से सभी लोग डरते हैं। जाते समय ही इस बात को मैंने लिखा है। इसकी ऊँचाई सुना है कि 18 या 19 हजार फीट है। बहुतों को यहाँ सिर में चक्कर आ जाता है। पिछली बार केशवसिंह भी चक्कर आने के कारण गिर पड़ा था। इसलिये पहले से ही माँ ने आज सबको कपूर, अचार और दूसरी आवश्यक चीजें दिला दी। कल तड़के निकलना होगा। भोजन किस समय होगा कुछ निश्चय नहीं है। इस कारण कुछ-कुछ खाने की चीजें भी बना ली गई। रात के करीब बारह बजे मैं आकर सोई।

लीपू पार कर कालापानी आगमन

श्रावण 3, सोमवार-हम आज सुबह ही रवाना हुये। साथ में गरम चाय बनाकर ले ली गई। ठंड से तबियत खराब होने पर चाय बहुत ही आवश्यक चीज थी। आशा थी कि कल गर्ब्यांग पहुँचेंगे। दिन के साढ़े सात बजे रवाना हुये। आज 'लीपू' में बर्फ कम थी। बर्फ के ऊपर की चढ़ाई थोड़ी दूर की थी। उतराई भी बहुत दूर तक थी। किन्तु बर्फ के ऊपर से नहीं। तकलाकोट के ऊपर का रास्ता जिस प्रकार समतल अधिक था उसी तरह यहाँ चढ़ाई-उतराई ही अधिक थी। रास्ता भी पथरीला था। पहाड़ के तने पर से चलना होता था। नीचे से रास्ता देखने पर डर लगता था। माँ की कृपा से घोड़े अनायास ही इन रास्तों को पार करते हुए निकल आये। हम लोग वेला सवा तीन बजे 'काला-पानी' आकर तम्बू तानने का प्रबन्ध करने लगे।

इतनी दूर का रास्ता चलकर आने में सबको बहुत ही कष्ट हुआ। रास्ते में एक स्थान पर बैठकर कुछ जलपान कर लिया गया था। 'कालापानी' आकर रसोई बनी। रास्ते में एक स्थान पर कुछ आलू मिल गया था, मानो कितनी ही प्रसन्नता की बात थी! सड़ा-सूखा आलू था। ऐसी ही हमारी स्थिति थी। शाम से पहले सब लोग खा-पीकर आराम करने लगे। यहाँ भी झरने का गुरु-गम्भीर शब्द चल रहा था, चाँदनी निकल आई, आकाश

निर्मल था। पहाड़ के तने पर कुछ समतल स्थान देखकर खेमा लगाया गया था। चारों ओर पहाड़ के शिखर बर्फ से ढ़के हुये थे। कल सुबह चल देने की बात तय हुई। गर्ब्यांग जाकर ही खाने-पीने का इन्तजाम किया जायेगा। यहाँ से गर्ब्यांग का आठ-दस मील का रास्ता है, वह भी बहुत ही खराब है।

श्रावण 4, मंगलवार-आज सुबह सब लोग रवाना हुये। कल रास्ते में नन्दराम बाबू से भेंट हुई थी, वह तकलाकोट जा रहे थे। वह अलमोड़ा की रन्द्रादेवी के पिता थे। इसी समय सभी लोग तकलाकोट जाते-आते हैं क्योंकि सालाना खरीद-बिक्री का यही समय है। इधर सभी लोग ऊन के व्यापारी हैं, ऊन ही उन लोगों के लिये धन है। व्यवहार की चीजें तो सभी ऊन की बनी है। वस्त्र, कुर्ता, टोपी यहाँ तक की रस्सी भी ऊन की बनी हैं। खाना रखने का थैला, कपड़ा रखने का थैला आदि सभी चमड़े के बने हैं। पहनने का कुर्ता भी चमड़े का दिखाई दिया।

आज भी सुबह साढ़े सात बजे रवाना हुये। रास्ता बहुत ही खराब था। जैसी चढ़ाई-उतराई थी वैसी ही तंग पथरीली सड़क थी। प्रतिक्षण ही गिर पड़ने का भय होता था। घोड़े इन रास्तों को पार करते समय यदि एक ऊँगली भी इधर-उधर होते हैं तो बहुत नीचे एकदम नदी के भीतर जा गिरना होगा। केवल एक ही घोड़ा चल सकता है। किस ढंग से घोड़े ऐसे खड़ी चढ़ाई करके पहाड़ की चोटी पर पहुँच जाते हैं और फिर उसी तरह उतराई तय करके नदी के किनारे उतर आते हैं उसे बिना देखे विश्वास करना कठिन है और सईस भी अनायास साथ-साथ चल रहे थे। वे हमें पकड़-पकड़कर किसी-किसी स्थान को पार करा देते थे। कहीं-कहीं रास्ता इतना तंग था कि एक आदमी का खड़ा होना भी असम्भव मालूम होने लगा। एकदम खड़ा पहाड़, किसी तरह का रास्ता नहीं था। अभ्यास से सभी सम्भव होता है-यही इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। भुक्त-भोगी के अतिरिक्त इसे अच्छी तरह से कोई नहीं समझ सकता। यथार्थ में माँ की कृपा तथा बाबा भोलानाथजी के उत्साह से हम लोग सकुशल आ गये। आज रास्ते के दोनों ओर पेड़-पौधे (देवदारू या चीड़ के वृक्ष अधिक) तथा वन भूमि देखकर बहुत ही आनन्द हुआ। चलते समय पेड़ों की छाया भी मिल रही थी। बहुत दिनों तक ऐसा दृश्य दिखाई नहीं पड़ा था, इसी कारण आज श्याम-शोभा से बड़ी ही शान्ति मिल

रही थी। छोटे-छोटे फूलों के पौधे कल से ही बहुत दिखाई पड़ रहे थे। न जाने कितने प्रकार के फूल खिले हुये थे। मानो सजाया हुआ फूल-बाग है।

रास्ते में आते-आते दिखाई दिया था कि दल-के-दल व्यापारी गर्ब्यांग से तकलाकोट जा रहे हैं। घोड़ों, चमरी गायों, खच्चरों, बकरियों और भेड़ों के झुण्ड चीज-वस्तुओं को ढोते हुये चल रहे थे। इन बकरियों और भेड़ों की पीठ पर थैलियों में भरकर दोनों ओर बराबर तौल का सामान लादा जाता है। ये 10-12 सेर से 30 सेर तक सामान ढो सकती हैं। ऊपर लकड़ी का बड़ा अभाव है इसलिये हर भेड़ की पीठ पर एक-एक लकड़ी बाँध दी गई है। भेड़ों के झुण्ड के कारण रास्ते पर चलना मुश्किल था। एक तो कैसा तंग रास्ता, उस पर बकरियों और भेड़ों का वैसा उपद्रव!

इतने कष्ट के भीतर भी आनन्द का एक फल्गु-स्रोत सदा ही बह रहा था। हमारे साथ के लोग प्राय: सभी गर्ब्यांग के थे। घर पहुँचने के आनन्द से डांडी वाले भी आज रास्ते चलते हुये गाना गा रहे थे। हमें भी ऐसा लगा मानो अब आ ही गये हैं।

दिन के लगभग ढाई बजे गर्ब्यांग पहुँचकर पूर्वोक्त स्कूल में ही डेरा डाला गया। 'धारचूला' से कब कुली आयेंगे उसका निश्चय नहीं था। उन सबका इन्तजाम करने के लिये हमें यहाँ चार-पाँच दिन रहना होगा-इसी की बातचीत चल रही थी। रसोई बना ली, माँ और भोलानाथजी खाने बैठे। खिचड़ी, भात, रोटी और आलू की तरकारी बनी थी। इतने में मुरादाबाद के कई सज्जन माँ के दर्शनों के लिये आये। बाद में सुना कि एक डिप्टी मजिस्ट्रेट, एक डाक्टर, एक 'धारचूला' के जज प्राणवल्लभ बाबू, जिन्होंने हमारा सारा प्रबन्ध कर दिया था तथा एक पुलिस इन्स्पैक्टर थे।

ये लोग गर्ब्यांग आ रहे थे, इसकी खबर हम रास्ते में ही पा गये थे। इनके साथ अनेक व्यक्ति आये तथा कुली भी बहुत आये। ये लोग इस देश के मालिक थे इसलिये इस अंचल में हलचल मच गई थी। हमारे गाइड सन्देलसिंह के साथ वे माँ के दर्शनों के लिये आये। बहुत देर तक माँ के पास बैठे। स्कूल के आँगन में इन लोगों ने दो तम्बू तान लिये और वे स्वयं डाक-बंगले में रहे। ये लोग हमारे कुलियों तथा खाने-पीने का सब प्रबन्ध करने के लिये तैयार हो गये, इस कारण हमें बहुत ही सुविधा हो गई। कुली आदि के विषय में अब कोई झंझट नहीं रह गया।

हम आगामी कल या परसों यहाँ से रवाना हो सकेंगे ऐसा निश्चय हुआ। विश्राम के लिये हमने एक दिन ठहरकर जाने की इच्छा प्रकट की। माँ की कृपा से किसी ओर भी कोई असुविधा नहीं हुई। यहाँ आने पर अनेक स्थानों से बहुत-सी चिट्ठियाँ मिल गई। ज्योतिष दादा डाकखाने जाकर ले आये। अनेकों का समाचार मिल गया। आज सन्ध्या के बाद ही सब लोग सो गये। माँ गर्ब्यांग आ गई हैं वह खबर रात को ही बस्ती में कहला दी गई।

श्रावण 5, बुधवार– आज हमें यहीं रहना है। डिप्टी साहब ने सब प्रबन्ध कर दिया है। वे लोग भी अपने दल-बल के साथ कैलास दर्शन को चले थे। कैलास गिरि नाम के एक साधु भी उनके साथ थे। वह भी कैलास चल रहे थे। सुना है कि वह पन्द्रह वर्षों से हर साल कैलास की यात्रा कर रहे हैं। इतने दिनों के बाद यहाँ आकर हम पतलून, कोट, टोपी उतारकर धोती पहनकर आराम पा गये। आज खाने-पीने के बाद सभी निश्चिन्त होकर विश्राम करने लगे। यहाँ के अनेक लोग चावल, दाल, घी आदि लेकर माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। यही यहाँ का नियम है।

श्रावण 6, बृहस्पतिवार– आज खाने-पीने के बाद रवाना होने की बात थी, इसलिये जल्दी-जल्दी सब इन्तजाम होने लगा। हम लोग दिन के लगभग 10 बजे चल पड़े। डिप्टी साहब का दल भी कैलास पर्वत की ओर रवाना हो गया। वे माँ को कुछ फल और अचार दे गये। हमने भी रास्ते के लिये कुछ आवश्यक चीजें उन्हें दी।

हमारे भोजन के पूर्व बहुत से लोग माँ के दर्शनों के लिये आये। माँ को प्रणाम कर और हमसे बार-बार विदा लेकर उदास भाव से वे लौट गये। हमारे साथ जो लोग गये थे वे भी डबडबाती आँखों से विदा लेकर चले गये। हम लोग डांडियों में सवार होकर पर्वत के मार्ग से उतरने लगे।

फिर कालीगंगा गरजती हुई हमारे साथ-साथ चलने लगी। उसका गर्जन और चलने का ढंग जिसने नहीं देखा उसे मैं नहीं समझा सकती। स्रोतस्विनी आनन्द से उन्माद नृत्य करती हुई तीव्र वेग से बह रही थी। बीच में एक बड़ा पत्थर सामने पड़ गया, इससे वह उछल-उछलकर उसके आगे खड्डे में जाकर गिरने लगी। मानो भागीरथी महान् आनन्द से तरंगायित होती हुई विश्वनाथ को स्नान करा रही है।

दोनों ओर ही आकाश छूने वाले पर्वत-शिखर थे तथा उनके पैरों के नीचे से गंगा प्रबल वेग से प्रवाहित हो रही थी और हम लोग तंग पहाड़ी रास्ते से अग्रसर होते जा रहे थे। पथ का वर्णन बहुत ही दुष्कर है। रास्ता इतना तंग था कि दो आदमी अगल-बगल खड़े नहीं रह सकते थे। उसमें एक ओर आकाश चूमने वाले पर्वत और दूसरी ओर पातालगामी सुविशाल गह्वर! इसके नीचे का अंश दृष्टि की सीमा के बाहर था। नीचे की ओर ताकने से सिर में चक्कर आता था और उसके भी नीचे तेज बहने वाली नदी गरजती हुई जा रही थी। एक अंगुली इधर-उधर होने से कैसी अवस्था हो सकती थी, उसे लिखना अनावश्यक है।

ऐसे रास्ते पर हम कभी डांडियों में और कभी रास्ता बहुत खराब रहने पर डांडीवालों के सहारे पैदल चल रहे थे। हर डांडी में 6 कहार थे। चार आदमी डांडी ढोते और दो पारी-पारी से उनको मदद देने के लिये रहते थे। जब भी हमें डांडी से उतरने की आवशकता पड़ती थी तभी डांडी वाले दौड़कर आ मदद कर देते थे। बहुत ही यत्न से ये हमें भयंकर रास्तों को हाथ पकड़कर पार करा दिया करते थे। खुद ही खड़े होने की जगह नहीं पाते पर ऐसे तंग रास्तों से भी हमें अनायास मदद देकर उबार लाते थे। अभ्यास का प्रभाव ऐसा ही होता है। उस समय मालूम होता था कि संसार में इनके समान आत्मीय हमारे और कोई नहीं हैं।

डांडी में हाथ-पैर समेटकर चुपचाप बैठे रहना पड़ता था। सभी की अवस्था ऐसी ही थी। आँख-मुख में शंका का भाव और प्रतिक्षण ही गिर पड़ने का भय था। किसी स्थान पर ऐसे संकीर्ण मार्ग के ऊपर चट्टान का हिस्सा आ लटक पड़ा था जिससे सिर झुकाकर चलने में और भी डर लगता था। कभी-कभी तो ऐसे भयंकर स्थान से गुजरना पड़ता था कि लोग आँख मूंदे डर से सिकुड़कर काठ की तरह बैठे रहते थे। प्रतिक्षण ही गिर जाने का भय रहता था परन्तु पहाड़ियों का ऐसा ही अपूर्व अभ्यास कि जिस पथ पर पैर से चलने में भी डर लगता था वहाँ से वे डांडी लेकर अनायास पार होकर चले आते थे। आज टुनू, दासू दादा, ब्रह्मचारीजी और केशवसिंह पैदल ही चल रहे थे क्योंकि डांडी और नहीं थी। घोड़े भी ऐसे रास्ते पर चल नहीं सकते।

हम तीसरे पहर 'मालपा' पहुँचे। वहाँ आज बहुत से आदमी थे। एक

कमरा था जिसमें घुसने में भी घृणा होती थी (यही धर्मशाला थी)। उसके दरवाजे पर एक आदमी बैठा था। सुना है कि उसके और भी 19-20 साथी आने वाले हैं। वे अभी आकर नहीं पहुँचे थे। दूसरा उपाय न देखकर उसके मना करने पर भी हम लोगों ने उस कमरे में घुसकर उसे दखल कर लिया। यहाँ भी बारिश होने पर भीगना पड़ेगा, हम जानते थे परन्तु कोई दूसरा उपाय भी नहीं था। बाहर खाने-पीने का इन्तजाम हुआ।

ज्योतिष दादा को कुछ ज्वर हो गया। दुर्बलता बहुत बढ़ गई थी परन्तु उपाय भी क्या था? इसी हालत में चलना पड़ रहा था। आगामी कल भोर में रवाना होना स्थिर हुआ क्योंकि यहाँ कुलियों के लिये खाने की चीज कुछ भी नहीं मिली और खास कर आगामी कल का रास्ता बहुत ही खराब है इसलिये धूप न निकलने से पहले ही चल देने का निश्चय हुआ। रात को पानी बरसने लगा। छप्पर में से जगह-जगह पानी चूने लगा। हमने किसी तरह रात बितायी। एक तो घर गन्दा था, उस पर बिल्कुल भीगा हुआ। किसी तरह साफ करके लता-पत्ती बिछाकर हम लोगों ने बिस्तर लगा लिया। ऐसे समय पानी का टपकना! स्थिति समझने में किसी को कष्ट न होगा, पर हमें ऐसी आदत पड़ गई थी कि इसी अवस्था में मोमजामा का कोट ओढ़कर सो गये।

श्रावण 7, शुक्रवार– बहुत तड़के उठकर यात्रा का आयोजन होने लगा। बारिश नहीं थी। सब चीजें सम्हालकर रवाना होने में कुछ समय लगा परन्तु धूप निकलने के पहले ही हम निकल पड़े। आज का रास्ता शायद कैलास के मार्ग में सबसे खराब था। ज्यादातर पैदल ही चलना पड़ा। धूप निकल आई पर पथ खत्म नहीं हो रहा था।

ज्योतिष दादा चल नहीं सके, इस कारण एक आदमी उन्हें पीठ पर ढोकर ले चला। बीच-बीच में कुछ अच्छा स्थान देखकर (यद्यपि वह भी खतरनाक ही था) हम डांडी में सवार होकर थोड़ा विश्राम लेने लगे। फिर रास्ता खराब देखते ही डांडी वाले हमें उतार देते थे। माँ के साथ हम सभी थके हुये थे। पर चलना ही पड़ता था क्योंकि कोई दूसरा उपाय ही नहीं था। कुली पीठ पर लाद लेना चाहते थे परन्तु माँ और मैं राजी नहीं हुई।

कैलास के लिये रवाना होते समय अलमोड़ा में नरेन बाबू की स्त्री यूथिका देवी ने जटा होने की शंका से माँ के केशों में तेल देकर दो वेणियाँ

बाँध दी थी। मैंने भी वैसी ही वेणी गूँथ ली थी। कैलास जाने के मार्ग में गब्यांग आकर माँ ने वेणियों को खोल डाला था क्योंकि अभ्यास ही नहीं था। अब माँ फिर आलुलायित-कुन्तला बन गई। बिखरे केश, हाथ में डण्डा, चेहरा परिश्रम से लाल, श्रीचरणों में पादुकायें-ऐसी पौशाक में जब माँ पहाड़ के पथ पर चल रही थी तब उनकी एक अनोखी और अपूर्व मूर्ति देखकर मुझे तपस्विनी पार्वती का स्मरण आ जाता था।

हम पहाड़ लाँघकर चल रहे थे। पर्वतों के तने पर से अनेक झरने भयंकर शब्द करते हुये नीचे उतर रहे थे। रास्ते में हमें उन झरनों को पार करना पड़ता था। छतरी लगाये हुये चलने पर भी बूँदों से कपड़े भीगते जा रहे थे। बहुत ऊँचे से जलस्रोत प्रबल वेग से नीचे की चट्टानों पर गिरते रहने से इतनी अधिक जल-बिन्दुएँ छिटक रही थी कि चारों ओर कुहासा-सा प्रतीत हो रहा था।

न मालूम कितने ही अपूर्व दृश्यों को देखते हुये हम लोग चल रहे थे परन्तु उनका आनन्द अनुभव करने लायक हालत हमारी उस समय नहीं थी। खासकर आज का रास्ता बहुत ही बेढ़ब था। कैलास के पास वाले स्थान के पहाड़ों पर पेड़-पौधों का नामोनिशान नहीं था। मानो कैलास-पति के शुक्ल भवन के भग्नावशेष पड़े हुये हैं। इधर के पर्वत जंगलों से ढके हुए हरे-भरे थे। यह एक दूसरा ही रूप था। इस समय वर्षाकाल होने के कारण जंगल भी खूब घना हो गया था।

अस्तु, हम बहुत ही मुश्किल से वेला लगभग दो बजे 'दिप्ती' पहुँचे। यहाँ ऊपर एक घर मिल गया। वह बिल्कुल खराब नहीं था। खाना-पीना करने में सन्ध्या हो गई। खा-पीकर सभी थके-माँदे सो गये। सुना है कि आगामी कल का रास्ता बिल्कुल खड़ी चढ़ाई का है, परन्तु पथ बिल्कुल खराब नहीं है।

माँ के यहाँ आते ही एक आदमी (जाते समय देखा था) कुछ सरसों का साग, दो कच्ची मूलियाँ, एक कच्चा कोहड़ा और थोड़ा दूध दे गया। ये तरकारियाँ हमारे लिये बहुत ही अनोखी मालूम हुई। आज भोलानाथजी बड़े उत्साह से अच्छी तरह रसोई करने लगे। मैंने तरकारी बनाई, शाक भी बनाया। इतने दिनों के बाद सभी ने परम तृप्ति के साथ भोजन पाया। यहाँ एक दुकान भी थी।

श्रावण 8, शनिवार– खाना-पीना करके रवाना होना तय हुआ। आलू, कोहड़ा, शाक मिल गये। खिचड़ी, रोटी, साग, तरकारी सभी तैयार हुआ। वहाँ तेल भी मिल गया। इसलिये अब विशेष असुविधा नहीं थी। थोड़ा दूध भी मिल गया था।

भोजन के बाद हम आगे बढ़े। मार्ग करीब तीन मील की चढ़ाई का था किन्तु आज हमें पैदल नहीं चलना पड़ा, डांडी में ही आये। साग-भाजी के बहुत से खेत दिखाई दिए। यहाँ लोग खेत को 'चूया' कहते हैं।

एक बात यथास्थान लिखना मैं भूल गई थी, यहाँ उसका उल्लेख करती हूँ। माँ का शरीर कुछ क्षीण हो गया है। गर्ब्यांग पहुँचने पर दिखाई पड़ा कि सभी का रंग कुछ काला-सा हो गया है। खासकर नाक ही अधिक काली हो गई है और पत्थर की सड़क पर चलने से घोड़ों के पैर भी कुछ-कुछ लंगड़े हो गये हैं। शायद इसीलिये एक छोकरा सईस रास्ते में हँसता हुआ कहता था कि कैलासपति का प्रसाद है –

'आदमी काला, घोड़ा लंगड़ा।'

गर्ब्यांग के बाद धीरे-धीरे रंग बदल रहा है।

यहाँ कुछ गर्मी का अनुभव हो रहा था तो भी रात को अभी भी कम्बल ओढ़ना पड़ता था। रात को बारिश होती थी। इधर दो-तीन दिन चलने के रास्ते में बारिश नहीं हुई। यह सौभाग्य की बात है। जैसा रास्ता था, अगर पानी बरसता तो न जाने क्या होता।

भोलानाथजी टुनू की डांडी में ही आ रहे थे, आज कुछ पैदल भी चले। टुनू बहुत दूर तक डांडी में आया, डांडियाँ रास्ते में टूटते जाने से संख्या में घट गई थी।

अब कालीगंगा की गर्जना सुनाई नहीं पड़ती थी। वह दूर हट गई थी। सुना है यही कालीगंगा अयोध्या में सरयू और दूसरे स्थानों पर अनेक नामों से विख्यात हुई है। बर्फ के पहाड़ कल से ही दिखाई नहीं पड़ते थे। आज तो एकदम ही अदृश्य हो गये हैं। आज भी दस मील चलकर 'ससा' में जाकर विश्राम लेना होगा।

तीन-चार मील रहते ही रूमादेवी ने रास्ते में आकर माँ की चरण-

वन्दना की। उन्होंने कहा–''माँ, आज तीन-चार दिन से आपके दर्शनों की प्रतीक्षा में मैं यहाँ बैठी हुई हूँ। आश्रम में नहीं गई।'' शाम से पहले हम लोग गन्तव्य स्थान पर पहुँचे। रूमादेवी भी हमारे साथ आयी। हमारे 'ससा' पहुँचने के पहले ही रूमादेवी ने रहने का मकान ठीक करके चटाई बिछा रखी थी। हमारे पहुँचते ही गृहस्थों के घरों से आटा, घी, आलू, दूध सब लाई।

सेवा ही इनके जीवन का व्रत है। एक बूढ़ी संन्यासिनी में सेवा का ऐसा आग्रह देखकर हमें आश्चर्यचकित होना पड़ा। माँ से कहने लगी–''माँ, मैं दिन गिनते हुये तीन रोज से आपके लिये यहाँ घूम रही हूँ। आज एक पत्थर पर पड़ी थी। मुझे डर था कि कहीं आप निकल न जायें। आश्रम में अनेक लोग आये हैं। बहुत काम-काज करना था परन्तु मैं नहीं गई, आपकी प्रतीक्षा में बैठी हूँ। सात दिन हुये मैं अलमोड़ा से यहाँ आयी हूँ।'' पहाड़ से फूल तोड़ लाकर उन्होंने माँ के चरणों में रखकर प्रणाम किया। माँ के प्रति वृद्धा की इतनी भक्ति देखकर हम अवाक् रह गये। केवल कुछ घंटों का परिचय है। रात को रूमादेवी की सेवा से सभी खा-पीकर विश्राम करने लगे।

गृहस्थों के आने से शाम को घर भर गया। माँ के पेट में कुछ दर्द हो रहा था। इस कारण दोपहर को विशेष कुछ नहीं खाया और अभी भी खाने से इन्कार किया। ज्योतिष दादा को ज्वर हो गया था इस कारण हम कुछ चिन्तित हो गए, नहीं तो कोई विशेष असुविधा नहीं थी। कल भोजन के बाद 'खेला' रवाना होने की बात तय हुई। आज भी हम दस बजे चले थे। लगभग दस-बारह मील आ गये। रास्ते में सिरखा गाँव छोड़ आये। रात अधिक होने पर सब सो गये।

श्रावण 9, रविवार– ज्योतिष दादा बीमार थे। भोजन के बाद चलने लगे। सात मील दूर 'खेला' जाना होगा। कुलियों को खेला तक जाने की बात थी। वहाँ पहुँचकर वे विदा होंगे।

रूमादेवी हमारे साथ-साथ चली। वह माँ की शरण में ही रहेंगी, बताया। अब अपने आश्रम में नहीं लौट जायेंगी। कहा–''मैंने सेवा-व्रत को ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ कार्य निश्चित किया था। अब वृद्ध होने पर देखती हूँ कि इस काम का अन्त नहीं है। अब अच्छा भी नहीं लगता, अब जरा शान्ति से माँ के पास रहकर अपना काम करना चाहती हूँ।'' इसीलिये वह हमारे साथ चली।

यहाँ आकर देखा, देशी गुलाब और चमेली के फूल खिले हुये हैं। दासू दादा ने उन्हें तोड़ लाकर माँ के चरणों में डाल दिया। इतने दिनों के बाद देशी फूल दिखाई दिए। आज सुबह से ही ग्रामीण स्त्री–पुरुष माँ के दर्शनों के लिये आने लगे। कोई घर की गाय का दूध माँ के लिये लाया। किसी ने फूलों से माँ का बिस्तर भर दिया। आते समय कुछ स्त्रियों ने फूल और मिसरी लाकर माँ को दिये। मैंने फिर उन्हें सबको बाँट दिया।

एक स्त्री विशेष रूप से धर्म सम्बन्धी बातें माँ से पूछने लगी। कैसे काम करना होगा, माँ से उपदेश माँगा। डांडी के साथ–साथ कुछ लोग बहुत दूर तक आये। रूमादेवी का **'शारदा आश्रम'** यहाँ से डेढ़ मील दूर है। इस गाँव में अनेक व्यक्ति रूमादेवी को श्रद्धा से देखते हैं। गर्ब्यांग के पोस्टमास्टर ने 'खेला' के पोस्टमास्टर को माँ का सब प्रबन्ध कर देने के लिये पत्र भेजा है।

हम सन्ध्या से कुछ पहले 'खेला' पहुँचे गये। रास्ते में आज कुछ वर्षा हुई थी। पोस्टमास्टर का आदमी समाचार लेने के लिये रास्ते में बैठा था। हम खेला की एक दुकान में डेरा जमाकर बैठ गये। पटवारी, पोस्टमास्टर आदि आकर हमारा समाचार ले गये। ज्योतिष दादा को अब ज्वर नहीं था परन्तु बहुत दुर्बलता थी, इसलिये आगामी कल हमारा यहीं रहना निश्चित हुआ। कुलियों के घर इधर ही थे। वे सब आज विदा लेकर चले गये। कल अलमोड़ा जाने वाले कुलियों का प्रबन्ध करना होगा। बारिश चल रही थी। पार्वती देवी हमारे साथ ही आई थी। वह नौकरी के लिये नैनीताल जायेगी।

श्रावण 10, सोमवार– आज हम खेला में ही रह गये। पोस्टमास्टर साहब ने हमारे को अलमोड़ा ले जाने के लिये कुलियों का प्रबन्ध कर दिया। उन्होंने कुछ पके आम, केले और घर के दूध से माँ की अर्चना की। ज्योतिष दादा को थोड़ा–थोड़ा बुखार था। वह बहुत ही कमजोर हो गये थे। इसके सिवाय और कुछ असुविधा नहीं थी। हर तरह की तरकारियाँ यहाँ मिल गई। छोटे–छोटे पहाड़ी लड़के भण्टा, कोंहड़ा, कच्चा केला, साग आदि बेचने के लिये आने लगे। आज मटर की दाल भी मिल गई। अब अलमोड़ा आठ–नौ दिन का रास्ता रह गया। माँ का शरीर स्वस्थ नहीं था। कल यहाँ से हम 'धारचूला' रवाना होंगे।

ज्योतिष रायजी की बीमारी से सभी चिन्तित

श्रावण 11, मंगलवार– सवेरे ही सब लोग चल पड़े। 'धारचूला' के दो मील पहले 'तपोवन' में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के दवाखाने में पहुँचे। ज्योतिष दादा का बुखार बढ गया। एक बार डाक्टर साहब को दिखा लेना होगा। थोड़ी उम्र के एक डाक्टर यहाँ सपरिवार रहते हैं। ज्योतिष दादा को दिखा दिया गया। ज्वर 104 डिग्री था। हम लोग कुछ समय यहाँ विश्राम करके, दवा लेकर 'धारचूला' की ओर बढ़े क्योंकि 'धारचूला' का डाक बंगला खुली जगह में था। वहाँ ज्योतिष दादा कुछ आराम से रहेंगे।

लगभग दो बजे हम डाक बंगले पहुँचे। वहाँ के चौकीदार ने आकर सब इन्तजाम कर दिया। डाक्टर रोज आकर देखेंगे, इसका भी प्रबन्ध किया गया। आज भी दवा वगैरह मंगाई गई। यहाँ अनेक गृहस्थों का निवास-स्थान है। सब सामान भी मिल गया, अच्छा दूध भी मिल गया। हमें यहाँ कुछ दिन रहने की बात हो रही थी क्योंकि मार्ग के कष्ट से ही ज्वर नहीं छूट रहा था।

माँ के पहुँचते ही स्थानीय गृहस्थ आम और फूल लेकर दर्शनों के लिये आये। घर से दूध भी भेज दिया। इसी तरह आज की रात यहाँ बीती।

कालीगंगा की वही गम्भीर गर्जना फिर सुनाई पड़ने लगी। चारों ओर पर्वत-मालायें सिर ऊँचा किये खड़ी थी। ऐसे निर्जन स्थान पर यह बंगला बहुत ही मनोरम प्रतीत होने लगा। दूर पर्वतों के तने पर गृहस्थों के घर तथा पेड़-पौधे सुहावने लग रहे थे। ऐसा लगा मानो युग-युगान्तर से स्थिर रहकर वे स्रोतस्विनी का एकतान संगीत सुन रहे हैं। इसी तरह का एकतान लगातार सुनते रहने से किसी को असुविधा नहीं हो रही थी, बल्कि सभी मोहित और आनन्द से भरपूर थे। इसी कारण जो इनके सम्पर्क में आये वही आनन्द पा रहे हैं। वर्षाकाल के कारण चारों ओर जंगल बढ़ गया था।

कल रातभर पानी बरसता रहा, इस कारण आज हवा विशेष ठंडी भी नहीं, गरम भी नहीं थी। रात को ज्योतिष दादा का बुखार कुछ घट गया। मेरे सोने में रात कुछ अधिक हो गई।

श्रावण 12, बुधवार–आज सुबह डाक्टर आकर देख गये। ज्वर आज 99.5 डिग्री में उतर आया। कुछ हालत सुधरी है। हमारा आज यहाँ रहना

स्थिर हुआ। दोपहर को खाने-पीने का पर्व समाप्त होने पर सभी विश्राम करने के लिये लेट गये। मैं खुले बरामदे में अकेली बैठी लिखने लगी। मुझे समय बहुत कम मिलता था, इस कारण सभी बातें संक्षेप में लिखनी पड़ी। केवल घटना-मात्र ही लिख सकती थी।

रूमा देवी और पार्वती देवी आदि सभी साथ थे। आज तीसरे पहर खबर मिली कि कल रात की बारिश से पुल टूट गया है। अतः कल हमारा जाना नहीं हो सकता। कल पुल की मरम्मत होगी। परसों चलना निश्चित हुआ। आज और कोई उल्लेख योग्य घटना नहीं हुई। यहाँ मिशनरियों का एक मिशन है। वहाँ से तीन-चार स्त्रियाँ फल-फूल लेकर माँ के दर्शनों के लिये आई।

धारचूला में अवस्थान

श्रावण 13, बृहस्पतिवार– आज भी हमें यहीं रहना पड़ा। आगामी कल निकलने की बात तय हुई। रात होते ही जोर का पानी बरसने लगा। सुना है कि जल्दी ही पुल की मरम्मत होने की सम्भावना नहीं है। कल किस तरह वह रास्ता पार होना होगा, अभी तक जाना नहीं जा सका।

श्रावण 14, शुक्रवार– आज भी जाना नहीं हुआ। पहाड़ी लोग रस्सी बाँधकर लटकते हुए नदी पार कर लेते हैं। दूसरी तरफ के लोग उन्हें खींच लेते हैं। पारापार का वैसा ही इन्तजाम हुआ। ज्योतिष दादा को इस ढंग से पार करना असम्भव जानकर हमने जाने का संकल्प छोड़ दिया। वर्षा हो रही थी। बीच रास्ते में हम विपत्ति में फँस गये। दूसरा कोई उपाय भी नहीं था। आज का दिन भी इसी तरह बीत गया।

श्रावण 15, शनिवार– आज जल्दी-जल्दी खाना-पीना खत्म करना पड़ा क्योंकि रवाना होना होगा, किन्तु उसके बाद फिर सलाह परामर्श होने पर जाना बन्द कर दिया गया। कल भोर में रवाना होकर शाम को 'बलुयाकोट' पहुँचा देंगे ऐसा तय हुआ। इतनी देर होने के कारण सुना है कि रस्सी से खींचकर नदी पार होने में दो-तीन घण्टे का समय लग जाएगा। ज्योतिष दादा की हालत एक ही तरह की चल रही थी। स्वामीजी को भी सर्दी लगने से वह अस्वस्थ थे। अधिक दिन विलम्ब होने से साथ के रोगी के पथ्य आदि भी चूक जायेंगे। फिर कुछ मिलने का भी यहाँ उपाय नहीं दिखाई पड़ा। सभी

को चिन्ता होने लगी। तरह-तरह के परामर्श से आज भी यहीं रहना पड़ा। कुली रहना नहीं चाहते थे, वे घबराने लगे। उन्हें शान्त रखना बड़ी कठिन बात थी। कई कुली तो नाराज होकर चले गये। भरोसा यही था कि यहाँ कुली मिल जायेंगे। डाक बंगले का चौकीदार कुली ठीक कर देगा, ऐसा भरोसा देने लगा।

रस्सी पकड़कर नदी पार होना

श्रावण 16, रविवार– आज सुबह जहाँ तक सम्भव हुआ, पार जाने का समाचार लेकर हम लोग रवाना हुये। 5 मील दूर जाकर काली नदी पार करनी होगी। यहाँ रास्ता अच्छा था। हम थोड़े ही समय में नदी के तीर पर पहुँचे। बहुत सोच-विचार के बाद रस्सी के सहारे ही हम नदी पार हुए। रस्सी से पार होने का अर्थ है-बहुत मोटी रस्सी ऊपर टँगी हुई है, उससे लकड़ी और बाँस से बनाकर एक चौकी लटका दी गई है। उस चौकी में बैठने पर उसे उस पार के आदमी खींचकर उस पार ले जाते हैं।

नदी बहुत चौड़ी या गहरी नहीं थी परन्तु प्रवाह बहुत तीव्र था। उस प्रबल वेग में कोई खड़ा नहीं रह सकता था। हम आज एक नये तरीके से नदी पार हुये। दूर से दिखाई पड़ता था कि पहाड़ी लोग रस्सी पर लटकते हुये पारापार करते हैं। इसे देखकर हमें बहुत डर लगा था। 'धारचूला' से ही इस रस्सी के सहारे पार होना पड़ेगा, इस डर से हम प्रतीक्षा कर रहे थे। पहले तय हुआ था कि हमारे 40 कुली प्रवाह का वेग जहाँ कम है वहीं खड़े हो जायेंगे और हम डांडी के भीतर बैठकर ही उस पार पहुँच जायेंगे परन्तु नदी-तीर पर आने पर हालत देखकर रस्सी के सहारे ही पार आये। बारिश कम होने पर जल और भी घट जाता है।

बलुयाकोट हम आज तीसरे पहर पहुँचे। धारचूला से तम्बू लाये गये थे। एक चौरस स्थान पर खेमा लगाया गया। बाहर पत्थर लगाकर रसोई पकाई गई। वहीं खुले आकाश के नीचे बैठकर सबने भोजन किया। ज्योतिष दादा का बुखार कल ही छूट गया था। आज कुछ स्वस्थ मालूम हुये। इस स्थान के इस ओर घना जंगल है। कालीगंगा बहुत दूर नहीं थी उसका गर्जन अच्छी तरह सुनाई पड़ रहा था। इस तरह आज की रात यहीं बीत गई।

श्रावण 17, सोमवार– आज सुबह ही हम लोग असकोट रवाना हुये।

धारचूला से बलुयाकोट दस-ग्यारह मील का रास्ता था। बलुयाकोट से भी असकोट लगभग दस-ग्यारह मील का रास्ता रह गया। कुली साधारणतया रोज दस-ग्यारह मील ही चलते हैं।

ज्योतिष दादा के भात खाने की इच्छा प्रकट करने पर भोर में ही माँ ने भात का पथ्य देकर उन्हें रवाना कर दिया। हम आज असकोट पहुँचकर खाने का प्रबन्ध करेंगे। दिन के दो बजे हम असकोट पहुँचकर धर्मशाला में ठहर गये। ज्योतिष दादा धूप में बहुत बेचैन हो गए थे। इसके लिये हम कुछ घबराये। शाम को राजमहल के लोग माँ के दर्शनों के लिये आये। खाने-पीने का सामान राजभवन से ही आया था। राजा स्वयं कल माँ के पास आयेंगे। दिन भर के बाद देर रात में हमारा खाना-पीना खत्म हुआ। आज कई दिनों से माँ 24 घण्टों में केवल एक बार ही भोजन कर पा रही थी। एक रोज सूजी की रोटी और तरकारी तथा दूसरे भात, आटे की रोटी, दाल आदि थोड़ा बहुत खा लेती थी। इसी तरह अब माँ का भोजन चल रहा था। आज की रात धर्मशाला में ही बीती।

श्रावण 18, मंगलवार– सुबह, रवाना होने में दिन के 10 बज गये। भोजन आदि किसी का न हो पाया था। माँ को राजमहल में ले जाने के लिये खबर आई थी। इसलिये रवाना होकर भी माँ रास्ते से राजभवन में गई। वहाँ तरह-तरह की खाने की चीजों से माँ का भोग दिया गया। उसके बाद हम लोग चले। थोड़ी दूर चलते ही स्वामीजी की डांडी टूट गई। टुनू, दासू दादा, पार्वती, रूमादेवी आदि घोड़े पर सवार थे। एक डांडी के टूट जाने से टुनू पैदल चला। स्वामीजी और भोलानाथजी डांडी का इन्तजाम करने के लिये असकोट लौट गये। हम लोग आगे बढ़े, रास्ते में उन लोगों ने हमें पकड़ा। इस रास्ते में रोगी को लेकर चलना बहुत ही कठिन था। सात मील चलकर हम 'डीडीहाट' स्कूल पहुँचे। शिक्षकों और छात्रों का दल दौड़कर आकर माँ को बहुत आदर से स्कूल में ले जाकर बैठाया। भोजन और रात्रिवास के लिये आज यहीं रहना स्थिर हुआ। फारेस्ट रेंजर साहब नैनीताल से आये हुये थे। उन्होंने माँ के दर्शनों के लिये आकर कुछ फल देकर माँ की चरण-वन्दना की। माँ की धूप से आरती उतारी और कहा-"बहुत दिनों से माँ के दर्शनों की मैं चेष्टा कर रहा था। आज मैं धन्य हो गया। मुझे रास्ता बतला दीजिए।" इसी तरह और भी बहुत-सी बातें कही। माँ ने भी

कुछ-कुछ उपदेश दिये। वह बहुत देर तक बैठे रहे। चलने के रास्ते में एक बार उनके बँगले पर जाने के लिये प्रार्थना कर गये। भोजन समाप्त होने में आज भी रात हो गई। आज धूप नहीं थी, इस कारण रोगी लेकर आराम से आ सके। शिक्षकों ने अपने रहने का घर माँ के लिये खाली कर दिया। स्कूल के घर में ही छात्र और शिक्षक रहते थे।

श्रावण 19, बुधवार– भोर में दस मील दूर 'थल' नामक स्थान के लिये हम चल पड़े। रेंजर साहब माँ का सारा बंदोबस्त करने के लिये साथ-साथ चले। अनेक व्यक्ति उपदेश सुनने के लिये माँ के पास आये। हम लोग ज्योतिष दादा को यथासम्भव सावधानी के साथ लेकर रवाना हुए और दिन के लगभग दो बजे 'थल' गाँव के स्कूल के बरामदे में रात्रि में रहने के लिये आसन जमाकर बैठ गये। रास्ते के कष्ट से रोगी बहुत ही कातर थे परन्तु दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं था। इस कारण चलना पड़ता था। मार्ग में थोड़ा वर्षण हुआ परन्तु विशेष असुविधा नहीं हुई। खाने-पीने के बाद तीसरे पहर खूब जमकर पानी बरसने लगा। जूंओं के मारे हम परेशान थे। कल रात को कोई भी सो न सका था। आज भी वही हालत थी। सभी के शरीर पर जूंओं के काटने से फुन्सियाँ निकल आई। खुजलाते-खुजलाते हैरान होना पड़ता था। इसी तरह आज की रात भी बीत गई।

श्रावण 20, बृहस्पतिवार– तीसरे पहर पानी बरसने की शंका थी इसलिये जल्दी-जल्दी चलना पड़ रहा था। परन्तु सुबह चलकर खाना-पीना करने में रोज ही रात हो जाती थी। सवेरे ही जाने का निश्चय हुआ था किन्तु वृष्टि होने के कारण जाना नहीं हुआ। जल्दी-जल्दी खा-पीकर लगभग 11 बजे हम लोग रवाना हुये। रास्ते में लगभग 3 बजे हम बहुत वृष्टि में आ पहुँचे। 10 मील दूर 'बेनीनाग' जा रहे थे। 'थल' में दुकान, डाकखाना आदि सभी थे, किन्तु 'बेनीनाग' में डाक्टर और दवाखाना है। दुकानें भी दो-चार हैं। अनेक चीजें भी मिल जायेंगी।

हम लोग तीसरे पहर 'बेनीनाग' पहुँचे और स्कूल में ठहर गये। माँ के आने से तुरन्त स्कूल में छुट्टी दे दी गई और घर खाली कर दिया गया। शिक्षक महाशय ने आकर कहा-"माँ, जितने दिन चाहें यहाँ रहें, मैं दूसरी जगह स्कूल करूँगा।" डाक्टर को खबर दी गई। उन्होंने आकर रोगी को देखा, दवा और पथ्य का भी प्रबन्ध किया। ज्वर आज कुछ कम था, रास्ते

के कष्ट से ही रोगी बेचैन था। बारिश चल रही थी। एक तकिया तैयार करने की कोशिश की। सुना है कि यहाँ रूई का तकिया नहीं बनता। कपड़े भीतर भरकर ही तकिया तैयार होता है। वैसा ही एक तकिया बनवा लिया गया। रात यहीं बीती।

श्रावण 21, शुक्रवार–सुबह पानी बरस रहा था। चलना सम्भव न हुआ। 12 मील चलकर 'गनई' नामक स्थान पर पहुँचने की बात थी, परन्तु रोगी बहुत ही दुर्बल थे इसलिये आज यात्रा बन्द रही। हम लोग बहुत धीरे–धीरे चल रहे थे। कब पहुँचेंगे उसका पता नहीं था। इधर कुलियों को बैठाए रखना बहुत मुश्किल हो गया। इस कारण दासू दादा ब्रह्मचारी, टुनू आदि कुछ लोग कुछ माल लेकर कुलियों के साथ अलमोड़ा चले गये। हम लोग स्कूल में ही रह गये। माँ के देहरादून वाले एक भक्त इधर अपनी जमीन देखने के लिये आये थे। उन्होंने पता लगाकर यहाँ आकर माँ के दर्शन किये। आज उन्होंने ही भोजन आदि का प्रबन्ध किया। यहाँ लकड़ी का अभाव था और रसोई के लिये जगह भी नहीं थी, परन्तु उन्होंने एक स्थान पर रसोई का इन्तजाम कर दिया। सभी का खाना–पीना हो गया। मैंने स्टोव पर भात पका लिया। यहाँ भी अनेक लोग माँ के दर्शनों के लिये आये।

श्रावण 22, शनिवार– सुबह चल पड़े। मैं और भोलानाथजी घोड़े पर थे। डांडियाँ टुनू और दासू के साथ भेज दी गई हैं। रास्ते में जोर का पानी आया। खूब भीग गये। डांडी में बैठे माँ और स्वामीजी भी खूब भीग गये। केवल रोगी की ही डांडी बहुत यत्न से ठीक ढंग से लाई गई। लगभग ढाई बजे 12 मील दूर 'गनई' के डाक बंगले में पहुँचे।

किसी को पानी पीने का भी मौका नहीं मिला। सभी भीगकर नहा गये थे। स्वामीजी भी नंगे बदन गीले वस्त्र पहनकर बैठे रहे। बोझा ढोने वाले कुली बहुत देर से पहुँचते थे, इस कारण बदलने का दूसरा वस्त्र नहीं मिला। स्वामीजी का शरीर भी बहुत अस्वस्थ था, परन्तु उपाय ही क्या था? नीचे एक दुकान में चादर मिल गई, उसी समय दो चादरें मँगवाकर माँ और स्वामीजी को दे दी गई। स्वामीजी एक चादर लपेटकर बैठे रहे, परन्तु माँ ने और कुछ नहीं लिया। गीले वस्त्र ही शरीर पर सुखा लिये। लगातार पानी बरसता गया। रात में भीषण वृष्टि हुई। बहुत रात तक खाना–पीना होता रहा। रोगी की अवस्था वैसी ही चल रही थी।

माँ की मौन अवस्था, ज्योतिष राय महाशय की बीमारी में, संतान की बीमारी में माँ का जो स्वाभाविक भाव होता है, माँ ने वही भाव अपनाया

श्रावण 23, रविवार– सुबह रोगी को कुछ पथ्य कराकर हम लोग रवाना हुये। 12 मील चलकर 'केनेरा' पहुँचना होगा। वहाँ भी फारेस्ट बँगला था। आज थोड़ा-थोड़ा पानी बरसा। फिर धूप बहुत सताने लगी। बहुत दूर चले आये, डांडी दिखाई नहीं पड़ती थी इस कारण डांडी के लिये हम एक पेड़ की छाया में बैठकर प्रतीक्षा करने लगे।

सामने कालीगंगा बहती जा रही थी। मैं तीर पर बैठकर लिखने लगी। माँ दिन-भर में एक बार ही कुछ खा लेती हैं, फिर जल के सिवाय और कुछ नहीं लेती। धारचूला पहुँचने के दूसरे दिन से ही लगभग 8-10 दिन तक माँ का यही क्रम चल रहा था। उसके बाद आज 4-5 दिन से उन्होंने कपड़ा बदलना भी छोड़ दिया। जो कुरती-धोती पहनी थी वही पहनी हुई हैं। 'बेनीनाग' आने के दिन हम खूब भीग गये। वहाँ पहुँचकर गीला कपड़ा छोड़ देने के लिये कहा परन्तु नहीं छोड़ा। हमारे में किसी के पास भी दो धोतियों के सिवाय और कोई वस्त्र भी नहीं था। इसलिये माँ के लिये एक जोड़ी धोती खरीद ली। परन्तु माँ उस व्यवहृत वस्त्र को छोड़ने के लिए राजी नहीं हुई। कुरती भी एक ही चल रही थी-कहने पर भी नहीं छोड़ती थी।

आज 'गनई' से रवाना होते समय ज्योतिष दादा के लिये माँ ने सब प्रबन्ध कर दिया था। उसके बाद उन्हें रवाना करके स्वयं डांडी में आ बैठी, फिर कुछ बोली नहीं। उस समय इस पर मैंने ध्यान नहीं दिया था। कुछ दूर आकर कुली विश्राम करने लगे। माँ ने ज्योतिष दादा की डांडी के पास आकर उनका बिस्तर दुरुस्त करा दिये, उसी समय स्वामीजी ने देखा कि माँ बात नहीं बोलती हैं। हमारे घोड़े पर आ पहुँचते ही उन्होंने यह खबर दी। बात न करने से माँ इशारा भी नहीं करती। बहुत दिनों के बाद आज माँ की बात बन्द हुई है। मुझे बहुत दिक्कत होने लगी। रोगी को पथ्य आदि माँ के कथनानुसार ही दिये जाते थे। रोगी की सेवा का प्रबन्ध माँ स्वयं करा रही थी। दिन-रात रोगी के सिरहाने अपने कम्बल के छोटे बिछौने पर बैठी रहती थी। बीच-बीच में थोड़ा लेट जाती थी-उस एक ही स्थान पर।

माँ का चेहरा भी न मालूम कैसा हो गया। बात, हँसी प्राय: सभी बन्द

हो गये। केवल रोगी के विषय में ही माँ बातें करती थी। बात बन्द हो जाने से क्या करूँ, क्या खिलाऊँ, सभी मुझे सोचना पड़ रहा था। माँ की बात बन्द होने से मन बहुत ही उदास हो गया। असली बात, सन्तान की बीमारी में जननी का जो स्वाभाविक भाव होता है माँ ने वैसी ही मूर्ति धारण कर ली। सारी लीलाएँ माँ ठीक-ठीक करती आ रही हैं। यह लीला ही क्यों असम्पूर्ण रखेंगी? इस कारण माँ के किसी काम के किसी भी अंग में कमी नहीं हो सकती। मौन रहने के कारण मुझे ही ज्योतिष दादा का सारा प्रबन्ध करना पड़ रहा था। फिर रवाना हुये। अभी तीन मील बाकी है। तीसरे पहर लगभग 4 बजे बंगले पर पहुँचे। आज भी खाना-पीना करने में रात हो गई।

श्रावण 24, सोमवार– 5 मील जाकर आज ''धोलछिना'' डाक बंगले पर रहना होगा। सब लोग रवाना हुये। अलमोड़ा अब 13 मील रह गया। इसके आगे रहने की सुविधा न रहने के कारण आज यहीं रहना पड़ा।

* * *

तीसरा अध्याय

भाईजी की मृत्यु–शय्या

कैलास यात्रा के अन्त में अलमोड़ा लौटना

श्रावण 25, मंगलवार– हम लोग लगभग आठ बजे रवाना हुये। दिन अच्छा था। इतने दिनों की यात्रा आज समाप्त हुई। 13 मील बाद ही सब लोग अलमोड़ा पहुँचे। कैलास यात्रा भी समाप्त हुई। हम लोग रोगी को लेकर एक नये मकान में (जहाँ अब तक कोई आदमी नहीं रहा था) आकर ठहर गये। नये मकान में रहने में कोई रुकावट नहीं थी। माणिक और नरेश बाबू की पत्नी यहाँ आठ दिनों से माँ की प्रतीक्षा कर रही थी। उनसे भेंट हो गई।

श्रावण 26, बुधवार– ज्योतिष दादा की बीमारी के कारण यहाँ पर कुछ दिन रहना पड़ेगा। माँ ने रास्ते से ही मौन धारण कर लिया था और एक ही वस्त्र में आठ–दस दिन तक रही थी, यह बात मैंने पहले ही लिखी है। आज माँ ने इतने दिनों का वस्त्र छोड़कर नये वस्त्र पहने। मौन पूर्ववत् ही चल रहा था। माँ अब इशारे से ज्योतिष दादा का प्रबन्ध करा रही थी। बहुत दिनों के बाद माँ को काम कराने का खयाल हुआ। इसलिये थोड़ा बहुत काम अपने हाथ से करने लगी। दिल्ली के नरेश बाबू की पत्नी, माणिक और टुनू यहीं थे। सभी माँ के दर्शनों के लिये आने लगे, परन्तु माँ मौन थी, इस कारण सभी को कुछ दुःख हो रहा था। माँ ज्योतिष दादा के बिछौने के पास ही बैठी हुई थी। मानो जगत की जननी आज ज्योतिष दादा की माँ बनकर बैठी हुई हैं।

श्रावण 27, बृहस्पतिवार– आज सुबह से ही ज्योतिष दादा को बहुत हिचकी शुरू हुई। हम लोग बड़ी चिन्ता में पड़ गये। माँ ने ज्योतिष दादा के सिर पर हाथ रखा। उस समय बिना कारण हँसने लगी। हँसते–हँसते ज्योतिष दादा के ललाट का पसीना पोंछ दिया। उस समय डाक्टर भी बैठे हुये थे। माँ ने एकाएक उस कपड़े से ही डाक्टर का ललाट और मुख पोंछ दिया। माँ 24 घण्टे में एक बार खाती थी। आज दिन–भर कुछ नहीं खाया। रात को थोड़ा–सा खा लिया। अधिक रात होने पर रोगी की हालत कुछ सुधरी।

श्रावण 28, शुक्रवार–आज विशेष कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। रोगी की हालत एक ही तरह की चल रही थी। माँ रोगी के सिरहाने ही एक दूसरी चौकी पर बैठी या लेटी रहती थी।

माँ की एकदम उदासीन अवस्था

श्रावण 29, शनिवार– कल रात में माँ बहुत देर तक सोई हुई थी। ज्योतिष दादा का ज्वर शुरू होने के बाद से शायद कभी इतने अधिक समय सोयी नहीं रही। आधी रात में एक बार उठ बैठी। आखिरी रात में भी बैठी थी। किन्तु आज भोर से ही माँ लेटी हुई थी। दिन के 10–11 बजे एक बार उठकर शौचादि के बाद फिर आकर लेट गई।

इन कई दिनों तक मामूली इशारे से ज्योतिष दादा के खाने–पीने के विषय की बात माँ समझा रही थी। किन्तु आज फिर पहले की तरह गम्भीर मुद्रा धारण कर ली। चेहरा देखकर कोई भी भाव प्रकट नहीं होता था। कोई बात उनके कानों में पहुँचती हो यह भी समझ में नहीं आता था। पहले की तरह दिन भर चादर ओढ़कर अपने ही भाव में पड़ी रही। शाम को लगभग 5 बजे उठकर बैठ गई।

आज माँ एक बार के लिये भी रोगी के प्रति ध्यान नहीं दे रही थी। एकदम अपने मन में अपने भाव से अपने में ही लवलीन थी। इन कई दिनों तक माता के समान ही रोगी की सेवा–यत्न विशेष ध्यान से कराया था। पथ्यादि सब स्वयं देखकर करा लिया करती थी। जिन्होंने इतने दिनों तक इस ढंग से रोगी के हर एक विषय की ओर स्वयं नजर रखी थी आज उन्हें बिल्कुल उस ओर ध्यान नहीं था। डाक्टर को आते देखकर पास बैठी रहती थी। आज डाक्टर के आने पर लेटी ही रह गई। थोड़ी देर बाद अपने कमरे में जाकर बैठी रही। आँखें मूंदकर मानो नशे में चूर थी। उसके बाद पुनः आकर ज्योतिष दादा के सिरहाने अपनी खाट पर अपने ही भाव में विभोर होकर लेटी रही। किन्तु रोगी आज दिन भर माँ को न देखकर उनकी बात पूछ बैठे। उनमें इतनी शक्ति नहीं रह गई थी कि सिर घुमाकर सिरहाने माँ को देख सकें। जिस माँ ने इतने दिनों तक इतने स्नेह से ध्यान रखा था आज उस माँ को न देखकर रोगी ने माँ की बात पूछी।

ज्योतिष दादा की बात मैं कुछ सुनाने लगी परन्तु माँ सुन रही हैं ऐसा

समझ में नहीं आया। ज्योतिष दादा की हालत प्राय: पहले की तरह ही चल रही थी। पेट का कड़ा स्थान कुछ उभर आया था। हरीराम देहरादून से ज्योतिष दादा को देखने के लिये आज आ पहुँचा। ये लोग इनसे बहुत प्रेम-भाव रखते हैं। इस तरह आज का दिन भी बीत गया। महारतन आदि आश्चर्यचकित होकर कह रही थी कि माँ भाईजी (ज्योतिष दादा) को यत्न कर रही थी और आज इस तरह कैसे बैठी हैं। माँ के इस प्रकार अद्भुत चरित्र की यह एक खबर इन लोगों ने पाई। किन्तु कारण कुछ समझ न सकी। समझने का उपाय ही क्या था? माँ के सभी अद्भुत हैं।

श्रावण 30, रविवार– आज भी सुबह माँ का वैसा ही भाव दिखाई पड़ा। लगभग 2 बजे डाक्टर के आकर चले जाने पर माँ का भोग हुआ। माँ बहुत ही थोड़ा खाती थी। खाने-पीने के बाद माँ आज ज्योतिष दादा के बिछौने के पास जाकर बैठ गई। पहले की तरह न होने पर भी आज माँ रोगी के विषय में उदासीन नहीं थी।

श्रावण 31, सोमवार– आज सुबह से ही माँ का और भी कुछ परिवर्तन हुआ। माँ आज पहले की तरह रोगी के बिछौने के पास बैठकर उसके आराम की व्यवस्था करने लगी। रोगी के प्रबन्ध के लिये थोड़ा-बहुत इशारा भी कर रही थी। कोई-कोई काम पहले की तरह स्वयं भी कर रही थी। रोगी की हालत दुपहर से बहुत ही खराब हो गई थी। शाम को दो डाक्टर आकर कुछ डर गये। पेट फूल गया था। श्वास-कष्ट हो रहा था। मुमूर्षु अवस्था थी। माँ पास में कुर्सी पर बैठकर सिर पर हाथ फेरने लगी। कभी चुपचाप बैठ जाती थी। एक बार थोड़ा हटकर अपनी खाट पर जा बैठी। रोगी ने पूछा-"माँ कहाँ हैं?" मैंने उत्तर दिया-"माँ आपके सिरहाने बैठी हैं।" तुरन्त माँ आकर कुर्सी पर बैठ गई। इस प्रकार जो तीसरे पहर बैठी, रात भर फिर नहीं उठी।

रोगी की हालत क्रमश: बिगड़ती गई। भोलानाथजी जब रोने लगे तब हमारे भी नेत्रों में आँसू आ गये। माँ उस समय एकाएक थोड़ा-थोड़ा हँसने लगी। हँसते-हँसते रोगी के शरीर पर उन्होंने अपना पद्महस्त छुआ दिया। रात के 2 बजे तक डाक्टर अनेक तरह से कोशिश करके हार मानकर चले गए। मैंने कहा-"माँ, डाक्टरों की विद्या समाप्त हो गई है, अब जो कुछ हो सके तुम ही करो।" माँ ने कुछ नहीं कहा। एक ही ढंग से रोगी के आराम का

प्रबन्ध करने लगी। एक बार मैंने देखा कि माँ ने रोगी के ऊपर फूँक दिया। उस समय शायद घर में और कोई नहीं था। माँ और मैं ही थी। रहने पर भी इतने अस्पष्ट भाव से फूँका जिस पर किसी का ध्यान नहीं गया।

भाद्र 1, मंगलवार– भोर में माणिक के आने पर माँ ने इशारे से मुझे जरा लेटने के लिये कहा। माणिक को चले जाने के लिये भी इशारा किया। मैंने कहा–''मैं लेटती हूँ। अब तुम जो हो करो।'' थोड़ी ही देर में मुझे सिर पकड़कर हिला दिया। मैं उठ बैठी, उसके अनन्तर रोगी का कुछ प्रबन्ध कर मैंने देखा–वह चारों ओर देख रहे हैं। मैंने पूछा–''क्या देख रहे हैं।'' ज्योतिष दादा ने कहा–''तुम नहीं थी इसलिये नहीं देखा। मुझे एक आदमी आकर दो इंजेक्शन देकर चला गया। मैं वही देख रहा था।''

रोगी की हालत खराब थी ही– अब बीच–बीच में प्रलाप भी करने लगे। मैंने कहा–''अच्छा तो है, आप उस इंजेक्शन से ही अच्छे हो जायेंगे।''

पहले की अपेक्षा आज कुछ अच्छे थे किन्तु वायु से पेट फूल गया था। कुछ भी किया नहीं जा सकता था। माँ भोर में जरा लेट गई, फिर उठ बैठी। दिन–रात में दो बार एक चीज खाती नहीं थी। जो हो, माँ जो कुछ करती हैं संसार के कल्याण के लिये ही करती हैं। आज डाक्टर ने आकर कहा–''कल तो मैंने एकदम आशा ही छोड़ दी थी। आज कुछ भरोसा मिल रहा है।'' आज भी रोगी की हालत चिन्ताजनक ही थी। डाक्टर ने सेलाइन (*Saline*) इंजेक्शन दिया। कल भी दिया था। नशे की तरह रोगी पड़े हुये थे। दोपहर को डाक्टर के आने पर माँ ने इशारे से बताया कि रोगी ने माँ से प्रार्थना की है कि और सेलाइन इंजेक्शन न दिया जाय। डाक्टर ने कहा–''उस इंजेक्शन के प्रभाव से ही तो रोगी अब तक जीवित है, कैसे बन्द करूँ? अच्छा, यदि शाम को हालत अच्छी दिखाई पड़े तो फिर नहीं दूँगा। परन्तु इस समय जैसी हालत है उसमें इंजेक्शन के सिवाय दूसरा उपाय ही क्या है?''

एक समय मुझे अकेली पाकर माँ ने इशारे से बताया कि इंजेक्शन न देने से चल सकता है या नहीं? मैंने कहा–''डाक्टर तो कह गये हैं कि हालत अच्छी रहे तो नहीं देंगे। तुम कृपा करके अवस्था में कुछ परिवर्तन कर दो तो फिर इंजेक्शन नहीं देना पड़ेगा। भोग तो बहुत हो चुका, अब भोग समाप्त कर दो।'' माँ ने कुछ नहीं कहा।

भाईजी जीवन–मरण के सन्धि–स्थल में

तीसरे पहर फिर रोगी में कुछ अस्थिरता का भाव दिखाई पड़ा। सन्ध्या के पूर्व थोड़ा मकरध्वज देने के लिये माँ ने इशारा किया। उसी को दिया। माँ पास ही बैठी रही, कभी सिर पर हाथ फेरने और कभी बिछौने या पथ्य की सुव्यवस्था कराने लगी। मेरी माँ सभी ओर से पूर्ण जो हैं। आज सन्ध्या के बाद रोगी की अवस्था बहुत ही खराब हो गई। सभी की आँखों में आँसू आ गये। केवल माँ स्थिर, धीर, शान्त रही। रात के 12 बजे के बाद अवस्था जब जीवन–मृत्यु के सन्धि–स्थल पर आकर डाँवाडोल होने लगी तब माँ रोगी के पास से उठकर अपनी खाट पर जा बैठी, सब देख रही थी पर पास नहीं आई। परन्तु मैंने देखा कि रोगी की खाट पर उनका चरण–स्पर्श है। डाक्टर ने उनका अन्तिम इलाज किया और एक सेलाइन इंजेक्शन देना चाहा–माँ ने आज्ञा दी। अनेक चेष्टाओं के अनन्तर डाक्टर के जाने के पहले माँ से मैं और हरीराम ने कहा–''माँ, हम लोग बाहर जायें, तुम अकेली रोगी के लिये रहो, डाक्टर को तो और कुछ करने का नहीं रह गया है। अब तुम जो हो करो।'' हरीराम आदि सभी रोने लगे। हमारे बाहर चले जाने पर थोड़ी ही देर में माँ ने डाक्टर को बुला लिया। हम लोग भी अन्दर आये। उस समय भी सेलाइन इंजेक्शन की बात चली–माँ ने आज्ञा दे दी। डाक्टर प्राण–पण चेष्टा करके चले गये। हम लोग उस मृतप्राय रोगी को लेकर बैठे रहे।

रोगी को पूरा होश था। एक बार बोले–''माँ कहाँ हैं? एक बार माँ को बुलाओ।'' किन्तु माँ पहले की तरह पत्थर के समान अवश भाव से पड़ी थी। रोगी ने भी दो–एक बार पुकारा किन्तु माँ नहीं उठी। हमें डर लगा कि यह क्या बात है? भय से भोलानाथजी माँ का हाथ पकड़कर बहुत देर तक बैठे रहे। इस और एक चिन्ता में हम लोग व्याकुल हो गए। भोलानाथजी और मैंने इस विषय में कुछ समय तक आलोचना की परन्तु कुछ भी निश्चय न कर सके। भोलानाथजी ने मुझे माँ की खाट पकड़कर जप करने के लिये कहा। मैंने महारतन और छबी की माँ को जप करने के लिये बैठाया। वे बैठकर एकाग्र चित्त से जप करने लगी। वे माँ के इस भाव का पता नहीं पा सकी। इसलिये हमारी यह बात सुनकर डर गई। अस्तु, कुछ देर बाद ही माँ के थोड़ा हिलते ही मैंने कहा–''माँ, थोड़ा उठ बैठो, दादा पुकार रहे हैं।'' माँ आँखें मूँदकर ही अस्पष्ट स्वर में बोली–''अच्छा, उठती हूँ।'' हमारे हृदय में

फिर आशा का संचार हुआ। परन्तु भोलानाथजी को और मुझे भय हो रहा था। माँ बहुत चेष्टा करके उठी और रोगी के पास आ बैठी। सिर के तालु पर हाथ दिया। रोगी माँ को पाकर शायद कुछ शान्ति पा गये। इसी तरह रात बीती। श्वास की अवस्था देखकर मालूम होने लगा मानो अभी प्राण निकल जाएँगे।

ज्योतिष राय महाशय का माँ के चरणों में सिर रखकर महाप्रयाण

भाद्र 2, बुधवार– सुबह माँ लेटी हुई थी। रोगी को लेकर हम लोग बैठे हुये थे, माँ भी उठकर बैठ गई। आज ज्योतिष दादा का अन्तिम दिन है। महात्मा आज हमें छोड़कर चलने लगे। माँ के कहने से 10 बजे दिन को सिविल सर्जन को लाकर दिखाया गया था। ज्योतिष दादा को 4–5 दिनों से हिचकी आ रही थी। कल से वह कुछ कम थी। श्वास की भयानक स्थिति कल से ही चल रही थी। आज भी होश था। कहने लगे–''स्वामीजी ने खाया है?'' मुझसे पूछा–''माँ को खिलाया?'' कल रात को मुझसे कहा था–''खुकुनी फिनिश।'' आज डाक्टर आये हैं या नहीं, बार–बार पूछ रहे थे। नाड़ी देखकर डाक्टर द्वारा फिर सेलाइन इंजेक्शन देने के लिये तैयार होकर आते ही दादा ने आपत्ति की। परन्तु डाक्टर राजी नहीं हुये। जब तक श्वास है तब तक आशा नहीं छोड़ सकते। इंजेक्शन दिया और तरह–तरह से कोशिशें की। बाद में आशा छोड़कर बोले–''नाड़ी की गति किसी तरह भी परिवर्तित नहीं हो रही है। अब माँ का ही भरोसा है।'' मैंने माँ से रोकर कहा, हरीराम ने भी रोते हुये कहा, परन्तु माँ इशारे से बोली–''कुछ भी नहीं आ रहा है।'' रोगी के पास बैठकर उनके ललाट का पसीना पोंछने लगी। माँ की बात सुनकर हम लोगों ने भी आशा छोड़ दी। दादा ने उस समय दो–तीन बार ''हरिबोल''–''हरिबोल'' कहा, उसके बाद बोले–''माँ कहाँ हैं?'' मानो साफ नहीं देख रहे हैं। हमारे दिखा देने पर देखा। अब लगातार बोलने लगे–''माँ, माँ, माँ।'' इसके अनन्तर कुछ सुर में भी दो–एक बार बोले–''माँ, माँ, माँ।'' माँ पास में स्थिर भाव से बैठकर पसीना ही पोंछने लगी। हम लोग रोने लगे। माँ ने कहा–''खुकुनी, नाम सुनाओ।'' मैंने आँख के आँसू पोंछकर 'माँ' नाम सुनाया। थोड़ी देर बाद कहा–''कैसा सुन्दर!'' फिर कहा–''खुकुनी, कैसा सुन्दर!'' कुछ क्षण के अनन्तर एक अंगुली उठाकर कहा–**''सब एक हैं, एक के सिवाय कुछ भी नहीं है।''** हरीराम रोते हुये बोला–''भाई जी!'' उत्तर में कहा–''एक, सब एक हैं, इस बात पर खयाल रखो, भैया! एक, सब एक

हैं।'' मैंने कहा-''दादा तो माँ की गोद में अच्छी तरह लेटे हैं।'' बोले-''माँ और मैं एक हूँ, बाबा और मैं एक हूँ, हम लोग सब एक हैं। एक के सिवाय और कुछ नहीं है।'' इसके पश्चात् संन्यास-मंत्र का स्पष्ट रूप से उच्चारण किया। जोर-जोर से साँस गिरने लगी। पाखाना नहीं होता था, अब पाखाना होना शुरू हुआ। बोले-''खुकुनी, मुझे साफ कर दो।'' फिर कहा-''मेरा मुख अच्छी तरह साफ कर दो।'' मैंने वैसा ही किया। होश धीरे-धीरे गायब होने लगा। माँ की दृष्टि तथा कृपा के भीतर रहकर महापुरुष ने धीरे-धीरे 57-58 वर्ष की आयु में शरीर छोड़ दिया। शरीर त्याग के दो-एक मिनट पहले मैंने उन्हें खाट से उतार दिया था तथा माँ का चरण सिर पर रख दिया था। माँ चुपचाप समाधिस्थ होकर बैठी रही। मैंने सबसे कहा-''माँ-नाम सुनाओ'', नाम आरम्भ होते ही अन्तिम श्वास गिरा।

स्थिर भाव से महापुरुष चले गये। सुन्दर मृत्यु! मृत्यु के कुछ क्षण पहले माँ ने सबको जरा बाहर जाने के लिये इशारा किया। कुछ मिनट बाद ही फिर बुलाया। हम लोगों के घर में घुसते ही ज्योतिष दादा ने कहा-''माँ ने मुझे सोने के लिये इशारा किया है। मैं सोता हूँ।''

मृत्यु के बाद माँ ने मुझे, बाबाजी तथा हरीराम को पास बुलाकर कहा (मौन रहते समय जिस प्रकार अस्पष्ट होता था उसी भाव से कहने लगी)-''इसे समाधि देने का इन्तजाम करो, क्योंकि इसका संन्यास लेना हो चुका है। इसका अवधूत भाव है।'' उसके बाद कुछ-कुछ विवरण बताने लगी। भोलानाथजी घबराकर बोल उठे-''बोलो, बोलो, अच्छा, मैं छः वर्ष मौन रहने के बाद बात कर रहा हूँ।'' तुरन्त माँ ने रोक कर कहा-''चुप'' (अर्थात् वह शायद मौन भंग कर डालें इस कारण बात करने से मना किया)।

माँ ने कहा-''हम जब मानसरोवर गये थे तो तुम्हें, ज्योतिष को तथा भोलानाथ को पहले भेजकर मैं रास्ते में बाबा के लिये प्रतीक्षा कर रही थी। लौट आकर सुना कि ज्योतिष सरोवर में नहा आया है। बाद में भोलानाथ से सुना, ज्योतिष ने नहाकर वस्त्र जल में बहा दिया और भोलानाथ को देखा, देखकर भोलानाथ का पैर पकड़कर कहा-''बाबा, मुझे इच्छा हो रही है कि यहीं से 'अवधूत संन्यासी' होकर चला जाऊँ।'' मानसरोवर को एक ओर दिखाकर कहा-''मुझे विदा दीजिये, मैं उस ओर चला जाऊँ।'' जनेऊ खोलकर भोलानाथ के चरणों पर रख दिया। भोलानाथ उस समय विशेष रूप

से कहने लगे–''यह क्या है? क्या कर रहे हो? तुम्हारी माँ आदि अभी आये नहीं हैं, जल्दी वस्त्र पहन लो।''

''ज्योतिष ने शायद सोचा, माँ से तो कुछ कहा नहीं गया है। भोलानाथ की आज्ञा पाकर वह गरम कपड़े पहनकर अपने तम्बू के पास प्रतीक्षा कर रहे थे। बाबा (अर्थात् अखण्डानन्द स्वामी जी) के आने पर हम दो घण्टे बाद तम्बू में आ पहुँचे। आकर देखा, ज्योतिष का मानसरोवर स्नान हो गया है। मेरे आने पर फिर मानसरोवर के तीर पर हम सब गये थे न? जिनको स्नान करना था वे नहाकर अपने-अपने भगवद् भाव से काम-काज करके चले गये।''

''मैं और ज्योतिष मानसरोवर पर टहल रहे थे। भोलानाथ से जो कुछ उसने कहा था वह इस शरीर से कहने लगा। प्रणाम करते हुये फिर से कहा– ''माँ, मुझे ऐसा लग रहा है कि इधर की ही किसी गुफा में जीवन के अन्तिम दिन बिता दूँ। आप पिताजी से कहिये मैं एक ओर निकल जाऊँ। अभी चला जाऊँ-विदा दीजिये।'' दिखाई पड़ा कि उदास अवधूत-भाव का प्रकाश है। मैंने देखा कि यह प्रकाश बहुत सुन्दर है और तीव्र है इस उत्तम भाव को देखा, मैंने कहा-'तू अभी साथ चल।' इस बात को सुनकर वह चुप हो गया।''

''ज्योतिष साथ-साथ चला और बोला-''मेरा एक निवेदन है, कहिए तो मैं अभी से मौन हो जाऊँ।' मैंने कहा-'नहीं, रास्ते के बीच में मौन हो जाना ठीक न होगा।' इतना कहकर चलते-चलते मैंने कहा-''जब आज तुझे इस तरह संन्यास हो गया और तुझे मौन हो जाने की इच्छा हो रही है। तब तेरा नाम 'मौनानन्द पर्वत' हुआ।''

''यह शरीर मानसरोवर की ओर देखते हुये तीर पर टहलने लगा। जिस तरह मन्त्र आदि निकलते हैं, इस शरीर के मुख से उसी तरह लगातार संन्यास मंत्र अपने आप निकलने लगे, ये सभी अपने आप निकल रहे थे, यह शरीर अपने भाव में विभोर होकर चल फिर रहा था। इतने में दिखाई पड़ा और कहने लगा-''माँ, यह तो संन्यास मंत्र है, मैं पा गया हूँ।'' इतना कहते हुये गद्‌गद् भाव से बहुत देर तक चरणों में पड़ा रहा। गले का जनेऊ, हार आदि सब कुछ इस शरीर के पैरों के पास देकर मंत्र जप करने लगा। इसी समय मानसरोवर के तीर पर जाकर और भी कुछ कृत्य करने लगा और इस शरीर को 8-9 गण्डूष (अंजलि) जल दिया। उस दिन से उसका वह संन्यास

मंत्र आदि लगातार जप और वह भाव बीमारी की हालत में भी बराबर चलता रहा।''

माँ ने बाद में फिर जनेऊ और हार उठा लेने को कहा था। माँ की आज्ञा की रक्षा के लिये माला की तरह जनेऊ और हार उन्होंने गले में लटका रखा था।

माँ ने और भी कहा–''कैलास यात्रा के पहले जब वैद्यनाथ धाम जाया गया था उस समय एक संन्यासी ने अयाचित भाव से बुला ले जाकर ज्योतिष से इस तरह का मंत्र स्वत: बताया था। लौट आकर ज्योतिष ने कहा–''मैंने उनसे कुछ माँगा नहीं था परन्तु मुझे खुद बुला ले जाकर पास बैठाया। मैं प्रणाम करके उनके पास बैठ गया, उन्होंने इस तरह की बातें खुद ही बताई।'' इससे पहले भी ऐसी घटना हुई थी परन्तु उसने उसे छिपा रखा था। बाहर कुछ जाहिर न करने की इच्छा से बाहर का कुछ भी पहले नहीं बदला था। संयोग से उधर के रास्ते में तो हर समय गरम कपड़े पहनकर ही चलना पड़ा था, कदाचित् थोड़ी देर के लिये धोती कमर पर लपेट लिया करता था। तू जब उसके पाखाना करने के बाद साफ करके कच्छा ठीक कर रही थी उस समय बोल उठा था, 'नहीं, कपड़ा ऐसे ही लपेटा रहने दो।' मैं दूर से सुन रही थी, वही चल रहा था। अन्तिम घड़ी में तो तुम लोगों ने खुद ही सुन लिया। जब संन्यास-भाव था तो इसकी समाधि होनी चाहिये। इन सब बातों को बाहर जाहिर करने की इच्छा न रहने से मैंने उस समय किसी से कहा नहीं था। विचार यह था कि समय आने पर सबको बता दूँगी, इसी से आज कह दिया।''

''एक बात और, जब इसको राजयक्ष्मा हो गया था तभी मेरे मुख से निकला था–'डरते क्यों हो? अभी कुछ न होगा, अभी काम करते चलो, और भी कुछ सालों तक रहोगे।' इस शरीर ने कब क्या कहा था, यह शरीर तो बाद में उन बातों को खयाल में भी नहीं लाया था परन्तु ज्योतिष ने मन में गाँठ बाँध ली थी, इसी से दिखाई पड़ा कि सभी काम जल्दी-जल्दी समाप्त कर रहा था। रास्ते में उसने एक दिन इस बात को कहा था। मैंने कहा–'उन बातों को क्यों सोच रहे हो?' उसके बाद जब रास्ते में बुखार खूब बढ़ गया, तो ज्योतिष ने कुछ चिन्तित होकर मुझसे कहा–'क्या उपाय होगा, माँ? खुकुनी अकेली है उसे रसोई आदि का सारा काम-धंधा अकेले ही करना पड़ता है,

फिर सेवा भी करनी पड़ती है। वह अकेली है, कैसे काम चलेगा?' मैंने उसका यह भाव देखकर एकाएक कह दिया-'तुम फिक्र मत करो, मैं खुद करूँगी और सबसे करा लूँगी।' उस समय मैंने इस बात को कह डाला था इसीलिये थोड़ा बहुत तुम लोगों ने जो कुछ देखा किया गया था, कोई काम तो इस शरीर से नहीं होता, खयाल आया कि बात दे चुकी हूँ। सेवा के लिये बिशू को अलमोड़ा आकर रहने के लिये मैंने स्वामीजी के द्वारा पथ से ही चिट्ठी लिखवा दी थी। उस चिट्ठी को पाकर ही बिशू आया था। खैर, दो दिन खयाल नहीं आया इसी से कुछ ध्यान नहीं दिया गया, फिर बात रखने के लिये जो कुछ हो सका, किया गया। अब बतलाया क्योंकि इस समय इन सब बातों को जताना आवश्यक है।''

संक्षेप से माँ ने संन्यास की बातें कुछ-कुछ कही, हरीराम समाधि देने का स्थान ठीक करने के लिये चला गया। हम सब लोग मृतक शरीर को लेकर बैठे रह गये। 3-4 घण्टे बीत गये। माँ ने फिर कहा-''मुझे बात करने की इच्छा नहीं हो रही है। जब खयाल होगा तब बताऊँगी।'' मुझसे कहा-''तुम और तुम्हारे बाबा विन्ध्याचल जाकर रहो। रूमादेवी अब मेरे साथ रहेंगी। हम आगामी कल देहरादून के लिये रवाना हो जायेंगे, क्या कहती हो?'' उस समय बाबा और मैंने एकान्त में बातचीत करने के लिये सबको हटा दिया क्योंकि इसके बाद यदि माँ मौन धारण कर लें। आवश्यक बातें हो गई। माँ ने मुझे ज्योतिष दादा की ''बहन'' के रूप में दो-तीन बार मिला दिया था। उस बात का उल्लेख करने पर बोली-''बहन का काम तो तुमने यथेष्ट ही कर दिया है।'' यही बातें करते हुये शाम हो आई।

अलग स्थान नहीं मिला। इसीलिये पाताल देवी नामक एक स्थान पर समाधि देने का निश्चय किया गया। वहाँ और भी दो बंगाली साधुओं को समाधि दी गई थी। पिछली बार ढाका जाते समय ज्योतिष दादा यहाँ धर्मशाला में रहेंगे ऐसा निश्चय किया था। खैर, आज वहीं उन्हें समाधिस्थ किया जायेगा यह तय हुआ। बाद में किसी दूसरे स्थान पर उनके शरीर का कुछ अंश ले जाकर स्मारक मंदिर बनाने का प्रबन्ध किया जायेगा, यही हरीराम की इच्छा थी। स्वामीजी से माँ ने कह दिया, ''तुम साथ जाकर अपना मंत्र उच्चारण करके समाधि दे देना, तुम्हारा तो यही पहला काम है।'' बहुत से लोग साथ गये।

पाताल देवी में ले जाकर ऊपर और नीचे नमक रखकर ज्योतिष दादा के शव को समाधिस्थ किया गया। दूसरे दिन हरीराम ने उस स्थान को पक्का बना दिया। दादा को ले जाने के बाद माँ और मैं चुपचाप उसी घर में बैठी रही। एकाएक भोलानाथजी के पेट में दर्द होने लगा। बहुत चिल्लाने लगे। नरेन बाबू की पत्नी और मैं क्या करें, कुछ निश्चय नहीं कर सकी। भोलानाथजी ने माँ को दूसरे कमरे में ले जाना चाहा। माँ ने कहा–''शायद उठने पर बात करने का खयाल ही नहीं रहेगा। जब उठूँगी तो जाकर उसी कमरे में सो जाऊँगी। कल ही तो देहरादून चल देना है, आज नन्दादेवी के मन्दिर में चला जाना अच्छा था।'' फिर से कहा–''कल ही जब जाना है, तो आज फिर डेरा बदलने की क्या जरूरत है? यहीं से चल-चला जायेगा।'' हमने भी सोचा कि माँ जिस जगह बैठकर बातें कर रही हैं वहीं रहें, शायद बात ही बन्द हो जाय! आवश्यकतानुसार बातें तो कर रही हैं। जब तक बात सुनने को मिले!

उसी कमरे में माँ का बिछौना लगा दिया गया। थोड़ा-सा दूध पिला दिया। मैं माँ से दादा की बात करने लगी। इधर भोलानाथजी दर्द के मारे चिल्ला रहे थे। कोई पुरुष डेरे पर नहीं था। एक लड़के को पाकर डाक्टर के पास भेजा। शरीर और मन की उस समय जो हालत थी, उसमें ऐसी विपत्ति! मानो सिर में चक्कर आने लगा। अस्तु, जो कर्त्तव्य है करती जा रही हूँ। डाक्टर ने आकर डूश दिया, इंजेक्शन भी दिया। कुछ क्षण में भोलानाथजी कुछ शान्त हुये।

रात के लगभग 11 बजे सब लोग समाधि देकर लौट आये। माँ ने हरीराम से कहा–'तुम लोग भाईजी से प्रेम रखते थे। अपने ही देश में उनके शरीर को रख लिया।' हरीराम खूब रोने लगा। माँ की आँखें भी डबडबा आई। हम सब ही रो रहे थे। माँ ने हरीराम से कहा–''ज्योतिष की जो सत्-कर्म करने की इच्छा थी तुम लोग चाहो तो उसे पूर्ण करने के लिये चेष्टा कर सकते हो। आत्मा का तो ध्वंस नहीं है, इच्छा रूप से तुम्हारे पास उसने जो प्रकट किया था वही इच्छा तुम्हें मदद देगी।''

ज्योतिष दादा की बात ही चलने लगी। माँ ने कहा–''वह तो साधारण मनुष्य नहीं था, शुरू से ही वह दिखाई पड़ा था। उसके भाव बहुत ही ऊँचे थे।'' वह जो हार जनेऊ के रूप में सेवा को दिया गया था उसे फिर

ज्योतिष दादा के गले में ही माँ ने रख देने को कहा था। अब सेवा को वह हार माँ ने दे देने को कहा। माँ के उठने पर फिर वह बात करेंगी या नहीं इसका कोई निश्चय नहीं था, इसलिये जिसे जो कुछ कहना था एकान्त में माँ से कहा गया। रात के लगभग 2 बज गये। माँ सबके साथ रसोई के कमरे में आकर सोई और कुछ भी नहीं बोली।

* * *

चौथा अध्याय

स्व. ज्योतिष राय महाशय के महाप्रयाण के बाद

भाद्र 3, बृहस्पतिवार– आज बहुत देर में माँ उठी, सभी के मन में 'हाय–हाय' का भाव था। मानो सभी विध्वस्त हो गया है। माँ उठकर बैठी, खगेन रोते हुए विदा लेकर चला गया, उसे ढाका जाना था। ज्योतिष दादा की पत्नी और पुत्र के पास तार भेजा गया था, इतने दिनों तक तो ज्योतिष दादा की पत्नी उनसे बात ही नहीं करती थी। जब ढाका जाने की बात चली थी, तब वह ढाका नहीं जाना चाहते थे। माँ ने कहा–"अब चल, अब वह फिर तुझे गाली नहीं देगी।" वास्तव में ही अबकी बार उन्होंने बहुत अच्छा बर्ताव किया था, शायद यही अन्तिम बार की भेंट थी इसीलिये ऐसा हुआ था। कैलास जाने के लिये उन्होंने मना किया था, यह जानकर माँ ने भी निषेध किया था, परन्तु ज्योतिष दादा राजी नहीं हुये, उन्होंने पत्नी को समझाकर खत भेजने की बात कही थी। अब की बीमारी की बात सुनकर वह बहुत घबरा गई थी, पर आ न सकी क्योंकि उनका शरीर भी अच्छा नहीं था। शायद मन की भी रुकावट थी। जो होने को होगा वह होकर ही रहेगा, शायद यही उनका भाव था। ज्योतिष दादा ने संन्यास लिया था। इसीलिये पत्नी–पुत्र के साथ भेंट न होना ही संन्यासी के लिये आवश्यक था इसलिये जिनका आश्रय लिया था उन माँ की गोद में ही ज्ञान रहते प्राण छोड़कर चले गये। ऐसी अवस्था सभी को प्रार्थनीय है। परन्तु उनके पत्नी–पुत्र की बात सोचकर आज सभी के हृदय में चोट लग रही थी। सारे अभिमान की यहीं समाप्ति हो गई। माँ उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें, यही प्रार्थना है।

माँ के उठने पर मैंने उनके हाथ–मुँह धुला दिये। माँ ने थोड़ा–सा दूध पीया। कमरे में बहुत से लोग चुपचाप बैठे थे। मैं माँ के लिये रसोई करने चली गई। थोड़ी देर बाद ही सुना कि माँ स्वामीजी को पास के कमरे में ले जाकर (जिस कमरे में ज्योतिष दादा ने शरीर छोड़ा था) दरवाजा बन्द कर बातें करने लगी हैं। बहुत देर तक बातचीत होती रही। उसके अनन्तर पाखाने

चली गई। स्वामीजी ने ही जल देकर हाथ धुला दिया। फिर बातें होने लगी। बहुत देर के बाद मैं वहाँ पहुँची। मुझसे कहा–''शची का, नरेन का और और और....'' बात बन्द हो आई, थोड़ी देर बाद बोली–''चिट्ठी का जवाब दिया गया है?'' मैंने कहा–''तुम्हें तो सारी चिट्ठियाँ (इन दिनों जो आई हैं) सुनाने का मौका ही नहीं मिला इसलिये जवाब भी नहीं दिया गया है। मैं तो साथ नहीं जाऊँगी। माणिक को सभी चिट्ठियाँ दे दी, वह तुम्हें सुनाकर जवाब दे देगा।'' माँ ने कहा–''और क्या सुनूँगी? सभी की सब बातें सुन चुकी हूँ।'' आँखें मूंदकर इन सब बातों को बोल रही थी। थोड़ी देर पहले ही स्वामीजी के द्वारा बिछौना मँगवाकर इसी कमरे में लेट गई। मैंने यह सुनकर इस कमरे में आकर खाने की बात कही परन्तु माँ का शरीर विकल था बोली–''अब सोऊँगी, खा न सकूँगी।'' मैंने देखा, शरीर की जैसी अवस्था है उससे खाना सम्भव नहीं है, लेट गई।

बाद में हरीराम आया। एक मिशन के साधु और भी आये। उन्होंने माँ से बातें करते हुये कहा–''स्त्रियों के लिये एक रहने का स्थान होना आवश्यक है। वे एक स्थान पर रहकर साधन-भजन कर सकें वैसा होना अच्छा है। अनेक स्त्रियों ने इस ढंग के प्रार्थना-पत्र भेजे हैं।'' माँ ने कहा–''ज्योतिष की भी ऐसी ही इच्छा थी। तुमने जब खुद ही ऐसा प्रस्ताव किया है तो चाहो तो हरीराम, स्वामीजी आदि के साथ मिलकर इस काम को कर सकते हो। मैंने तो तुमसे नहीं कहा, तुम्हीं आकर कह रहे हो।'' हरीराम ने कहा–''आपकी आज्ञा के बिना तो कुछ नहीं होगा।'' माँ ने कहा–''मैं तो कुछ नहीं बोलती, तुम्हीं लोग सब कुछ करते हो। यदि तुम करना चाहो तो कर सकते हो। इस शरीर की तो कोई बात ही नहीं है। हृदय से जो शुभ कार्य किया जाता है उससे सुफल ही होता है। जो-जो नियम बनाने हैं तुम लोग मिलकर बना सकते हो। इस शरीर को तो इन सब कामों में रहने का खयाल ही नहीं होता। इस शरीर से इन विषयों को न पूछो। खुकुनी आदि सब हैं, तुम लोगों की इच्छा देखकर मैंने इतना कह दिया है। काम तो तुम लोगों का है। संसार में जितने शुभ कर्म करते हो सभी एक भगवान् की सेवा है। तुम लोग संसार में सभी कर्म करते हो उसमें शुभ कर्म ही करना उचित है। सत्य लाभ की चेष्टा ही एकमात्र करणीय है। जो कर्म अनुकूल है वही कर्म ग्रहणीय है। भगवद् भाव के सहायक कर्म ही यथार्थ कर्म हैं। इसके

सिवाय अन्य कर्म अकर्म है, अतः त्यज्य है।'' इसके बाद और भी दो-चार बातें बताई। उसके अनन्तर मुझसे दो एक गुह्य बातें कहकर लेट गई। एकदम चुपचाप।

कल भी शायद जाना नहीं होगा। ''जो करना हो, भोलानाथ के शरीर को देखकर तुम लोग करना।'' माँ ने इतना ही कहा। आज भी भोलानाथजी की बीमारी के कारण जाना रुक गया। माँ मौन रही। तीन बजे के समय खाने के लिये फिर से कहा गया परन्तु नहीं खाया। कल रात को ही हरीराम ने कहा था-''माँ पिताजी तो बीमार पड़ गये हैं, कल जाना नहीं हो सकता। कल भाईजी की समाधि पर एक चिह्न स्थापित करूँगा। तीसरे पहर में आपको वहाँ दिखाने ले जाऊँगा। परसों हम लोग चल देंगे।'' इस बात पर माँ ने स्वामीजी से कह दिया-''हरीराम से कह देना कि यह शरीर यदि उसके साथ न जा सके तो मैं उसी के साथ रहूँगी, ऐसा ही वह समझे।'' वही हुआ। तीसरे पहर हरीराम, महारतन, नरेन बाबू की पत्नी, माणिक और सबको ज्योतिष दादा का समाधि-स्थान दिखाने ले गया। माँ पड़ी ही थी। रात हो आई माँ नहीं उठी। तब कीर्तन शुरू किया गया, परन्तु माँ को उठाया नहीं जा सका। कमरे में अनेक लोग रात भर रहे। रात को लगभग एक बजे बहुत कठिनाई से माँ को उठाया जा सका और बैठा दिया गया। जरा-सा दूध मुँह में लिया फिर पड़ी रही।

भाद्र 4, शुक्रवार-धूप निकल आई, पर माँ के उठने का कोई लक्षण दिखाई न पड़ा। भोलानाथजी भी घबराकर बहुत पुकार-गुहार करने लगे परन्तु किसी से कुछ न हुआ। लाचार होकर फिर कीर्तन शुरू किया गया। माँ ने दुपहर को जरा करवट पलटी परन्तु शरीर सुन्न-पत्थर-सा था। आँखें मींची हुई थी। तीसरे पहर माँ की साँस कुछ तेज चलने लगी, हम लोग घबराने लगे। सोच में सभी के हृदय विकल तथा शरीर अवसन्न हो गए।

कीर्तन चल रहा था, माँ एक बार कुछ बोली, मुँह के पास कान ले जाकर सुना। माँ कह रही थी-''सबको जरा बाहर जाने को कहो, केवल तुम अकेली रह जाओ।'' उसी समय वैसा ही किया गया। माँ ने जो कुछ कहा वह समय पर प्रकट होगा, इस समय बोलने से मना किया था। कुछ और नहीं बोली। भोलानाथजी ने भी आकर बहुत चेष्टायें की पर और कुछ न बोली। साँस की हालत देखकर भोलानाथजी ने माँ को पास वाले कमरे में

ले जाने को कहा, इसलिये ले जाया गया। माँ की हालत देखकर और माँ ने जो कुछ कहा है उसके बारे में सोचकर हमारे मन में माँ के लिये बड़ी भारी दुश्चिन्ता उत्पन्न हुई। फिर माँ ने अस्पष्ट भाषा में मुझसे और एक-दो बातें कही। उसे भी उस समय प्रकट न करने के लिये कह दिया।

सभी खाना-पीना छोड़कर माँ के चारों ओर उदास भाव से बैठे रहे। ज्योतिष दादा की ऐसी मृत्यु, उसके ऊपर माँ के शरीर की ऐसी हालत! हमारी अवस्था लिखकर बयान करना सम्भव नहीं है। कैसी अवस्था में समय बीत रहा था, माँ ही जानती हैं। सन्ध्या के बाद माँ का सिर घूमकर पीठ में जा लगा। आँखें आग-सी चमकने लगी। आँखें खोल दी। सन्ध्या के बाद अपने शरीर को उठाकर बैठा देने के लिये कहा, मेरी ओर जरा हाथ पसार दिया। मेरे द्वारा हरीराम की सहायता से पकड़ कर उठाते ही माँ आसन में बैठ गई। शरीर में योग की क्रिया थोड़ी-थोड़ी होने लगी। फिर शरीर अवश होते ही हम दोनों ने लिटा दिया। हरीराम कहने लगा-''अलमोड़ा निवासी मखौल उड़ाते थे, इसीलिये माँ ने आज उन्हें अपना स्वरूप दिखाया। कुछ डर नहीं है।'' जो हो, सभी लोग फूल छिड़कने लगे, कमरे में लोग नहीं समाते थे। कोई-कोई आरती उतार रहा था। परन्तु भय से और दुश्चिन्ता से हमारी सारी रात बीत गई, रात भर नाम-कीर्तन होता रहा। अधिक रात में बाहरी आदमी प्रायः कोई नहीं था। कमरे में तेज बत्ती जलाकर सब लोग माँ को लेकर बैठे रहे, माँ वैसी ही पड़ी रही।

भाद्र 5, शनिवार- आज पूर्णिमा है। आज सुबह भी माँ उसी तरह पड़ी रही परन्तु भाव में कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ा। शरीर सुन्न था, परन्तु बाहरी ज्ञान का आभास मिलता था। यह देखकर सभी के हृदय में बल का संचार हुआ। भोलानाथजी ने कहा-''अब यहाँ किसी तरह नहीं रहा जा सकता। आज ही, इसी स्थिति में ही रवाना होना होगा। वह तो इससे पहले ही जाना चाहती थी।'' कल भी सुबह जाने के लिये हम लोग तैयार हो गये थे किन्तु माँ को उठा न सकने के कारण जाना नहीं हुआ। भोलानाथजी ने कहा-''तुमने तो मेरे साथ देहरादून जाने की बात बताई थी।'' माँ ने कहा-''मैं तो हर समय कहती हूँ, यदि शरीर ठीक रहे तो तुम लोग हो सके तो ले जाना।'' इससे सभी डर गये और बोले-''नहीं-नहीं, आप स्वयं न चलेंगी तो कोई आपको नहीं ले जा सकेगा। ऐसा शरीर लेकर ही आपको चलना पड़ेगा।'' माँ ने उत्तर नहीं दिया।

हरीराम के कुछ क्रोध के साथ सबको कुछ बतलाते ही माँ ने कहा- ''क्रोध न करो, अपना भाव छोड़ो।'' कल उस अवस्था में भी अस्पष्ट भाषा में ऐसी ही बातें हो गई थी इसलिये भोलानाथजी आज ले चलने के लिये ही तैयार हो गये। उनकी इच्छा से सभी तैयार हो गये। आराम-कुर्सी पर लिटाकर बहुत सावधानी से माँ को मोटर-बस पर चढाकर हम लोग दिन के 10 बजे अलमोड़ा से रवाना हो गये। माँ की वर्तमान स्थिति ऐसी थी मानो शरीर हिलाना भी कठिन था, परन्तु बाहरी ज्ञान का लक्षण दिखाई पड़ता था। 2-3 घण्टे मोटर में ही माँ मुझसे अस्पष्ट भाषा में कहने लगी-''भोलानाथ नहीं समझते, कहते हैं माया है। क्या यह माया का काम है? यह माया का काम नहीं है, क्या तुम लोगों ने मेरी ऐसी अवस्था पहले कभी देखी नहीं थी? कुछ दिनों से ही तो 'बन्द करो', 'बन्द करो' ऐसा शब्द मेरे भीतर से निकल रहा था। तुम लोगों ने सुना है, ज्योतिष की बीमारी के समय भी मैं कई बार अचेत पड़ गई थी, फिर उठकर बैठ गई थी। एक बार रमना के आश्रम में शरीर बैठा ही रहता था, उठ नहीं सकती थी, तुमने रोकर ज्योतिष को बताया उस दिन से ज्योतिष रोज भोर में आकर मुझे लेकर टहलता था। उस समय शरीर बैठा रहता था, अब फिर लेटा रहने लगा है। इसकी तो तरह-तरह की अवस्थायें चल रही हैं। भोलानाथ बिना समझे कहते हैं-''यहाँ रहने से बढ जायेगा। क्या मैं माया से बद्ध हूँ कि इसीलिये ऐसा हुआ?''

ज्योतिष दादा को ले जाने पर भोलानाथजी के पेट में जो दर्द उठा था, उसी समय से उन्होंने मौन भंग किया। भोलानाथजी ने माँ की बात सुनकर कहा-''मैंने अपने भाव से कहा था। मुझे बहुत चोट लगी थी इसीलिये मैंने कहा। तुम जो माया से बद्ध नहीं हो, क्या मैं इसे नहीं समझता? तुम्हारी कितनी प्यारी छोटी बहिन सुरबाला का देहान्त हो गया, उसमें भी तुम्हें विचलित होते नहीं देखा।'' और भी दो-चार बातें माँ कभी आँखें मूंदकर और कभी थोड़ा खोलकर मुझसे कहने लगी। फिर कुछ देर तक चुप रही, फिर बोली-''हरीराम से कह दो, यह शरीर कहीं भी रहे दरवाजा बन्द कर दे। कोई शोरगुल न हो। यदि नितान्त ही कोई आवे तो थोड़ा देखकर चला जाय।'' हरीराम ने कहा-''वैसा ही होगा। मैं छुट्टी लेकर माँ के पास रहूँगा।''

मैंने कहा-''तुम्हारे शरीर की ऐसी हालत है, हम कैसे विन्ध्याचल जायेंगे? तुम्हारे कहने से हमें करना तो पड़ेगा परन्तु दिल में बड़ी चोट लगेगी।'' माँ

कहने लगी–''इस शरीर की सेवा के लिये तो कितने ही आदमी हैं। तुमने तो बहुत कुछ किया ही है। अब ढाका के आश्रम में जाकर सबसे कह देना कि आश्रम के भीतर दूसरे विषयों की बात एक भी न हो। पुरुषों से कह देना, स्त्रियों का दोष देखकर उस सम्बन्ध की चर्चा न करके स्त्रियाँ जिससे साधन में सहायता पा सकें वैसा ही उन्हें करना चाहिए। सब लोग मेलजोल से न रहने पर कोई भी काम सिद्ध नहीं होगा। एक ही लक्ष्य पर सबको चलना होगा। इसी से सबका कल्याण है। तुम्हारे वहाँ जाकर ये बातें अच्छी तरह समझाकर न कहने से नहीं होगा। तुम्हारा ही यह काम है। कलकत्ता जाकर कहना कि इन लोगों ने जो एक स्थान बनाने के लिये कहा था, अगर वे एक स्थान बना लेते हैं और स्त्रियों के लिये अलग स्थान न बना सके तो उसी एक स्थान पर भिन्न-भिन्न समय में (जब पुरुष जायेंगे तो स्त्रियाँ नहीं) स्त्रियाँ और पुरुष ध्यान, जप, कीर्तन या पाठ किया करेंगे। यदि कोई (स्त्रियाँ या पुरुष) वहाँ गृहस्थी छोड़कर रहना चाहें उसकी व्यवस्था सब लोग मिलकर चाहें तो कर दें। उससे सभी का कल्याण होगा। ये सब बातें कहकर तुम सबसे काम करा लेना। जान लेना कि यह भी सेवा ही है। उस पथ में अग्रसर होने के लिये चेष्टा करो, यह भी सेवा ही है।''

इन बातों के होते-होते गाड़ी निर्दिष्ट स्थान पर आ पहुँची। मैंने पूछा–''लोगों से क्या कहूँगी?'' माँ ने उत्तर दिया–''एक लक्ष्य से, एक भाव से रहने के लिये कहना।'' हलद्वानी में बस आई, ट्रेन 5 बजे छूटेगी। ट्रेन आई हुई है। सारा इन्तजाम हो रहा है। नैनीताल से देवीदत्त और मुन्नी आये हैं। वे माँ के साथ देहरादून जायेंगे। माँ ने शौचालय जाने की इच्छा प्रकट की। सुनकर हमें कुछ भरोसा हुआ। अब तक कुछ भी खिलाया नहीं जा सका। अनेक चेष्टा से पकड़कर बैठाया। शरीर एकदम सुन्न। पेशाब नहीं हुआ। फिर लेट गई। माँ को आराम कुर्सी पर लिटाकर ट्रेन पर चढाया गया। ट्रेन में आकर फिर पेशाब करने की इच्छा प्रकट करने पर बहुत चेष्टा से बैठाकर पेशाब कराया गया। माँ के और भी कुछ बाहरी भावों का आभास मिला। चुपचाप पड़ी रही। चम्मच से मुख में थोड़ा-थोड़ा जल देने पर वह बहता जाने लगा। अनेक चेष्टा के अनन्तर एक बार थोड़ा-सा जल निगल लिया। आँखें भी खोली, परन्तु दृष्टि स्थिर थी।

रात के 9 बजे बरेली पहुँचना था। उसके बाद ही हमें माँ का संग

छोड़ना पड़ेगा। शरीर की ऐसी अवस्था! मन बहुत ही व्याकुल होने लगा परन्तु उपाय भी तो कुछ नहीं था। आदेश का पालन करना ही होगा। माँ फिर 2-4 बातें बोली। मैंने फिर से कहा-"माँ तुम्हें छोड़कर कैसे जाऊँ? तुम जो कहती हो उसे तो अवश्य ही करना होगा।" माँ ने कहा-"पहले जब कह दिया तो अब जाओ। हरीराम से कह देना कि आवश्यक होने पर तुम्हें चिट्ठी लिख दे।" माँ का आदेश ही सिर पर धारण कर लिया, परन्तु हृदय में बड़ी चोट लगी। माँ धीरे-धीरे बोल रही थी। देखते-देखते गाड़ी बरेली पहुँची। अनेक स्त्री-पुरुष माँ के लिये प्रतीक्षा कर रहे थे किन्तु माँ की ऐसी अवस्था देखकर लोगों को मानो काठ मार गया, सभी पाषाण मूर्ति की तरह खड़े रह गये। हम लोगों ने बहुत धीरे-धीरे माँ को 'स्ट्रेचर' पर लिटाकर गाड़ी से उतार लिया। घण्टे भर के बाद देहरादून की गाड़ी आयेगी। माँ को घेरकर सब लोग चुपचाप खड़े रहे। हम लोग रात के 12 बजे की गाड़ी से विन्ध्याचल रवाना होंगे।

माँ का देहरादून गमन

माँ को कुछ खिलाया नहीं जा सका। मैं बोली-"माँ पास न रहने दिया। पर कुछ खा लेना।" बहुत प्रार्थना करने पर बोली-"अच्छा"। मैंने कहा-"हम सबकी ओर खयाल रखकर शरीर की रक्षा करना।" बोली-"शरीर तो एक दिन जाएगा ही।" पहले भी कहा था-"यह शरीर रहे या न रहे तुम लोग अपना-अपना काम ठीक-ठाक करते रहना।" इन बातों से माँ के शरीर के सम्बन्ध में बहुत ही शंका होने लगी। चारों ओर की परिस्थितियों से दिमाग चकराने लगा। समय से गाड़ी के आने पर माँ को चढ़ा दिया। मैं आँसू गिराते हुये उतर आई। महारतन को उसके पति ने माँ के साथ देहरादून भेज दिया। हम लोग स्टेशन पर ही प्रतीक्षा करने लगे। माँ के भक्त कुछ लड़कों ने रात के 12.30 बजे हमें विन्ध्याचल की गाड़ी में बैठा दिया।

भाद्र 6 रविवार- आज बहुत दिनों के बाद माँ को छोड़ना पड़ा। खासकर उनके शरीर की ऐसी विकट स्थिति में ज्योतिष दादा का अभाव आदि कारणों से हृदय बेचैन था। फिर अपने शरीर की थकावट इतनी अधिक थी कि चिन्ता करने की शक्ति भी न थी। मैं अवसन्न भाव से पड़ी रही। दूसरे दिन 10 बजे गाड़ी इलाहाबाद पहुँची। दो बजे हम लोग दूसरी गाड़ी से

विन्ध्याचल आये। विराजमोहिनी दीदी और अनंग भट्टाचार्य महाशय माँ की आज्ञा से यहाँ थे। परन्तु सभी शून्य मालूम होने लगा। माँ से बिछुड़ना पड़ा।

भाद्र 9, बुधवार– आज एकाएक माणिक, भोलानाथजी, शंकरानन्द स्वामी और गोदावरी काशी में आ पहुँचे। खबर मिली कि माँ को लेकर सब लोग रविवार सुबह देहरादून पहुँच गये हैं। सोमवार को माँ की अवस्था देखकर भोलानाथजी ने खेद प्रकट करते हुये कहा था–''मुझे संन्यास लेने की इच्छा हो रही है। कौन किसका है?''–आदि, आदि। माँ ने उसी समय कहा था–''तो आज ही काशी चले जाओ। शंकरानन्द के पास जाना। समय की उपयोगी सहायता वह दे सकते हैं।'' माणिक को माँ ने भोलानाथजी के साथ कर दिया था।

सुना है कि माँ अब केवल जल ही पी रही हैं और कुछ नहीं लेती। बात उसी तरह थोड़ी–थोड़ी बोलती हैं पर अधिक समय अवसन्न भाव से लेटी रहती हैं। कोई करवट बदल देता है। शरीर प्राय: अवश है। बातचीत आवश्यकतानुसार थोड़ी–बहुत कर लेती हैं। गोदावरी और रूमादेवी से आश्रम के नियम शुरू करने के लिए कह रही हैं। किन्तु अब सुना है कि गोदावरी को मेरे पास रहने के लिए आज्ञा दी है और कह दिया है–''उसी जगह तुम अपनी खुकुनी दीदी के कहने के अनुसार कुछ दिनों तक मौन, जप आदि नियमित रूप से करते रहो। विराजमोहिनी भी वहाँ है। सब लोग मेल–जोल करके रहना।'' रूमादेवी को देहरादून के आश्रम में रहने के लिये कहा। निशि बाबू और मौसी (सुशीला) रायपुर से माँ के पास आये हैं–ऐसा सुना। देहरादून के सभी डाक्टर माँ की सेवा कर रहे हैं।

माँ सबको बीच–बीच में कीर्तन करने के लिये कहती और दूसरे समय चुपचाप रहने के लिये आज्ञा दे रखी है। क्या करने से क्या होगा समझ नहीं सकती थी। भोलानाथजी को फिर माँ ने मौन रहने के लिये आज्ञा दी है। इस कारण वह फिर मौन हो गये। उत्तरायण न होने से संन्यास· नहीं होता, इस कारण माघ मास के पहले संन्यास नहीं लिया जा सकेगा। भोलानाथजी शंकरानन्दजी को तथा आगरा से वीरेन दादा को साथ लेकर माँ के पास चले गये। गोदावरी हमारे ही पास रही। माँ की आज्ञा के अनुसार काम होने लगा। तार भेजकर हरीराम से खबर मिली कि माँ कुछ अच्छी हैं। ज्योतिष दादा के लिये भण्डारा देने की बातचीत चल रही है। पिताजी से माँ ने कहा था–

ज्योतिष दादा का संन्यास का नाम 'मौनानन्द' हुआ था और पूर्व जन्म में भी उनका ऋषि भाव था।

भाद्र 11, शुक्रवार– अलमोड़ा में रहते समय महारतन ने एक घटना बताई थी। हम लोग जब कैलास जाने के लिये बरेली पहुँचे थे और सन्ध्या समय माँ को लेकर सामान खरीदने गये थे तब जूते की दुकान पर जाकर जूते खरीदे जा रहे थे। माँ एकाएक बोल बैठी–''मेरे जूते का दाम मत लेना।'' हँसते हुये यह बात बोली पर किसी ने खयाल नहीं किया। महारतन मेरे और माँ के जूतों का दाम देकर जब मोटर में आकर सवार होने लगी तो माँ ने कहा–''क्या उसने मेरे जूते का दाम भी लिया है?'' महारतन ने कहा–''हाँ माँ, लिया है। राजी नहीं हुआ।'' माँ बोली–''अहा! अच्छा नहीं किया। मंगल नहीं होगा। इस पैसे को अलग रख छोड़ने को कहो।'' दुकानदार मुसलमान था, उसने माँ की बात पर ध्यान नहीं दिया। हमारे हृदय में चोट लगी। मैंने पूछा–''यह क्या माँ! 'मंगल नहीं होगा' क्यों कहती हो?'' माँ ने कहा–''क्या करूँ, मेरे मुख से अपने आप निकल गया।'' महारतन ने दुकानदार को माँ का आदेश समझा दिया। अलमोड़ा में ज्योतिष दादा की मृत्यु के समय महारतन ने जाकर खबर दी कि महीने भर के भीतर ही वह मुसलमान दुकानदार मर गया है।

आज रात को नरेन चौधरी की पत्नी यूथिका की चिट्ठी से पता चला कि 24 अगस्त को माँ को दो–तीन मिनट के लिये बैठाया गया था। माँ बातचीत अच्छी तरह कर रही हैं परन्तु जल के सिवाय और कुछ नहीं ले रही हैं। कह दिया कि जब और कुछ खाऊँगी, बताऊँगी।'' आगरा के खत से पता चला कि वीरेन दादा को लेकर भोलानाथजी रवाना हो गये हैं।

भाद्र 13, रविवार– आज सुबह यूथिका का पत्र आया–27.8.37 तारीख का पत्र। माँ के सिर की जटा के कारण कोई उनका केश छुड़ा नहीं सकता था। बहुत–सा केश आज देवीदत्त से माँ ने कटवा डाला। यह शची बाबू की बहन के पास भेजा जाएगा। इस बात को अभी तुम और किसी से न कहना। अब माँ बातचीत अच्छे ढंग से कर रही हैं। अलमोड़ा में दूसरे दिन माँ को लेकर जो कोहराम मचा हुआ था, याद है न? कल माँ ने खुद कहा–''उस दिन शरीर में साँस की गति दूसरे प्रकार की हो गई थी। पहले भी तो ऐसी ही हालत होती थी, यह भी उसी तरह की थी।'' सचमुच ही उस दिन साँस

देखकर हमें बहुत ही डर लगा था। इसीलिये हम लोग रोने-पीटने लग गये थे।

काशीधाम में

भाद्र 15, मंगलवार– नेपाल दादा 5 दिन की छुट्टी लेकर माँ को देखने देहरादून गये थे। आज लौट आने पर हमें उनसे माँ की खबर मिली। 3-4 दिन हुये किसी कार्यवश हम काशी आये हैं। सुना है कि माँ अभी भी बिछौने में ही पड़ी हुई हैं। परन्तु दिन में 2-1 बार माँ को पकड़कर 2-4 मिनट बैठाया जाता है, वह भी दूसरे के सहारे बैठी रहती हैं। शरीर का निचला भाग एकदम सुन्न हो गया है। दिन भर में केवल पाव भर या डेढ़ पाव जल ही पीती हैं, कोई और खाद्य-पदार्थ नहीं खाती हैं। तो भी बातचीत अच्छी तरह करती हैं। सुबह सामने प्राय: कोई नहीं रहता। एक आदमी जो कुछ आवश्यक काम होता है कर देता है। तीसरे पहर रोकने पर भी आदमी आ ही जाते हैं। माँ भी हँसते हुये सबको उपदेश आदि देती हैं। रात के 11 बजे तक बातचीत चलती है।

माँ इन दिनों बीच-बीच में हँसी-खुशी से बातचीत भी करती हैं। खाने के लिये कहने पर कहती हैं–''मैंने तो संकल्प करके कुछ नहीं किया है, शरीर इस समय कुछ नहीं माँग रहा है, जब फिर यह शरीर खाना माँगेगा–लूँगी। मुझे तो समय-असमय का खयाल ही नहीं रहता। रात के 12 बजे या 1 बजे यदि वह चाहे तो उसी समय लूँगी। तुम लोग चिन्ता क्यों करते हो?'' मुँह रोज ही धुला दिया जाता है, परन्तु कुल्ला करके जल फैंक नहीं सकती, शरीर इतना विवश है। बीच-बीच में करवट बदल देने को कहती हैं। उस समय किसी के बहुत सावधानी से पकड़ने पर कहती–''इस तरह डरते क्यों हो? जिस तरह पत्थर को धकेल दिया जाता है उसी तरह धकेलकर ठीक कर दो। शरीर तो पत्थर-सा ही हो गया है।'' माँ ने सबका कुशल समाचार नेपाल दादा से पूछा है।

ज्योतिष दादा की मृत्यु के 13वें दिन हरिद्वार में साधुओं का भण्डारा देने के लिये शंकरानन्द, भोलानाथजी और माणिक गये हैं। जन्माष्टमी के दिन माँ के आदेश से 'मनोहर मन्दिर' में मन्मथ बाबू और भोलानाथजी ने यज्ञ आदि किये हैं। हर साल इसी नियम से यज्ञ आदि होंगे, कह दिया है। आश्रम में फिजूल बातें या हँसी-दिल्लगी न हो इसके लिये माँ के आदेश से नियम

हुआ है कि सुबह 7 से 9 बजे तक बीच के कीर्तन के हाल में सब लोग ध्यान-जप आदि करते रहेंगे। सन्ध्या को 7 से 8 बजे तक सब लोग उसी कमरे में कीर्तन आदि करेंगे। वैसा ही काम हो रहा है। विभिन्न देशों से माँ के भक्त लोग सपरिवार माँ को देखने आये हैं। आश्रम में जिनको जगह नहीं मिली वे पास ही में किराये पर मकान लेकर रह रहे हैं। माँ की अस्पष्ट वाणी अब सुस्पष्ट हो गई है। पूछने पर कहती हैं-''मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ।'' बातचीत में भी आनन्द का भाव प्रकट हो रहा है परन्तु शरीर अवश है।

नेपालदादा ने कहा-'ज्योतिष दादा की बीमारी की बात माँ ने अधिक नहीं उठाई। परन्तु एक बार बात-बात में कहा था-''रास्ते से ही तो ज्योतिष की बीमारी शुरू हुई थी, तो खुकुनी अबकी बार खूब सेवा कर गई है। आहार-निद्रा छोड़कर भी सेवा की है।'' बीमारी के बारे में केवल इतना ही कहा, और कोई बात नहीं उठाई। परन्तु कथा-प्रसंग में बीच-बीच में 2-3 बार ज्योतिष दादा का नाम उठा था। वीरेन दादा, निशि बाबू, सुशीला मौसी, देवीदत्त, यूथिका चौधरी आदि सभी माँ के पास हैं। उल्लेख-योग्य और कोई बात नहीं सुनी।

हम लोग माँ के कहने के अनुसार ही काशी आये हैं। स्वामीजी माँ के आदेश के बिना कहीं भी नहीं जाते। जब जहाँ रहने या जाने के लिये कहती, हम लोग यथासाध्य उसका पालन करने की चेष्टा करते हैं। 2-3 दिनों में ही हम पुनः विन्ध्याचल चले जायेंगे।

नेपालदादा से और एक बात सुनी। असकोट के राजा के बहनोई राणा साहब काशी में रहते हैं। उनसे रास्ते में माँ की दो बार भेंट हुई थी। अब की बार असकोट से लौट आने पर एक मित्र ने दिल्लगी से पूछा था-''क्या भैया, ससुराल में अब की बार नई चीज क्या देख आये?'' उन्होंने जवाब दिया था-''भाई, अब की बार ससुराल के रास्ते में एक ऐसी चीज देखी है, जिसे जन्म भर भूल न सकूँगा।'' मित्र ने कहा-''क्या देखा है?'' राणा साहब ने कहा-''एक बंगाली माताजी, नाम-''आनन्दमयी माँ''- उन्हें देखा है। भाई उनकी आँखों की बात न भूलूँगा। मानो भीतर से सब कुछ छीन लेती हैं। ऐसी चीज मैंने कभी नहीं देखी थी।'' राणा साहब के वह मित्र काशी के सुप्रसिद्ध डाक्टर गोपालदास गुप्त महाशय हैं। उन्होंने ही यह बात नेपाल दादा से कही थी।

यह बात सुनकर मुझे कलकत्ता के रामतारन बाबू की बात याद आई। उन्होंने लिखा था–"मैं बिड़ला मन्दिर में दूर खड़े होकर माँ को देखता था क्योंकि लोगों की भीड़ के कारण निकट जाने का उपाय नहीं था। कैसी सुन्दर मूर्ति! देख–देखकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही थी। अनेक स्त्रियाँ सज–धजकर माँ के चारों ओर बैठी हुई थी परन्तु माँ के रूप के सामने उनकी तुलना ही नहीं हो सकती थी। निराभरणा माँ, तो भी न जाने कितने सौंदर्य का भण्डार लेकर बैठी हुई थी। ऐसी अपूर्व मूर्ति को देखते–देखते मैं मुग्ध हो जाता था। मेरी लेखनी में ऐसी शक्ति नहीं है कि मैं उसे लिखकर प्रकट कर सकूँ।" और भी कितने ही लोगों ने इसी ढंग की अनेक बातें बताई हैं।

यह तो बाहरी सौंदर्य की बात है। बाहर की ओर से माँ ऐसी कुछ अप्सरा–सुन्दरी नहीं है परन्तु कर्म, ज्ञान और भक्ति से मिली हुई वह मूर्ति अतुलनीय है। मनुष्य भाषा से उसकी क्या व्याख्या करेगा? इस कारण अनेक भक्त भी उनकी बात प्रकट करते हुए मौन हो गये हैं। आँख के आँसुओं से ही केवल उस भाव का किञ्चित् प्रकाश हो सकता है। मेरी ये बातें अतिशयोक्ति नहीं हैं। जिन्होंने माँ को देखा है वही इस बात को स्वीकार करेंगे। कभी माँ की दोनों आँखें ज्ञान की प्रतिभा से उज्ज्वल, स्थिर, धीर और कभी फिर भाव में विभोर रहने से पलकें झपक जाती हैं। फिर कभी दिल्लगी से कहती–"बहुरूपी।" परन्तु दिल्लगी नहीं सचमुच ही माँ हमारी बहुरूपिणी हैं।

नेपाल दादा से और भी सुना–"माँ दिन के 9.30 या 10 बजे आँखें खोलती हैं। उसके बाद उनका मुँह धुलाने का प्रबन्ध किया जाता है। इस कारण 9 बजने के बाद ही दो–चार व्यक्ति उनके कमरे में जाकर पैरों पर हाथ फेरना शुरू करते हैं और कोई जरा आवाज करता है जिससे माँ आँखें खोल दें। इस कारण माँ ने एक दिन कहा–"मैं जब खुद आँखें खोलूंगी तभी तुम लोग आना, उससे पहले कोई न आना।" दूसरे दिन वैसा ही हुआ। उस दिन माँ साढ़े 10 बजे आँखें खोलकर बोली–"करवट बदल दो।" उस समय सब लोग कमरे में जाकर माँ का मुँह धुलाने का इन्तजाम करने लगे। थोड़ा जलपान करने के बाद माँ प्राय: कहती–"उठाकर बैठा दो।" एक आदमी पकड़कर बैठा देता और पीठ की ओर पकड़कर बैठता। 4–5 मिनट बैठने के बाद माँ फिर लेट जाती। उस समय सभी के साथ बातचीत करती। 12 बजे

तक बातचीत होती है। उसके बाद 4 बजे तक माँ को अकेली चुपचाप विश्राम करने दिया जाता है। 4 बजे से रात के 11 बजे तक बहुत से आदमी आते-जाते रहते हैं। उस समय माँ अच्छी तरह बातचीत करती रहती हैं। किसी तरह की क्लान्ति का भाव नहीं दिखाई देता।

माँ के हाथ पर क्रास, त्रिशूल और धनुषबाण के चिह्न

एक दिन सुना माँ दोनों हाथ चित्त रखकर लेटी थी। एकाएक नेपाल दादा की दृष्टि एक हाथ पर पड़ी, नेपाल दादा ने देखा कि हाथ में +चिह्न (क्रास) है।'' इसी से वह बोल उठे-''माँ आपके हाथ में क्रास का चिह्न है।'' माँ ने धीमे स्वर से कहा-''उसके पास त्रिशूल भी है।'' फिर दूसरा हाथ दिखाकर बोली-''देखो इस हाथ में धनुष-बाण भी है।'' नेपाल दादा ने देखा-कहने के अनुसार त्रिशूल और धनुष-बाण की रेखाएँ माँ के हाथ में हैं और एक ध्वजा का चिह्न भी दिखाई पड़ा।

और भी सुना, हम लोग जब ढाका गये थे उस समय ढाका से पास किये हुये एक डाक्टर को ज्योतिष दादा ने साधन-भजन की सहायता के लिये देहरादून हरीराम के पास भेजा था। उसका नाम था सुशील। वह लड़का देहरादून आश्रम में है। माँ उसके ऊपर बहुत ध्यान रखती हैं। उस पर आदेश हुआ है कि ऊपर के मौन-साधना के कमरे में बैठकर साधन-भजन करे और तीसरे पहर उठकर भोजनादि करे, रात को और कुछ न खाये। वह आदेश के अनुसार साधन-भजन कर रहा है। मौन-साधना का वह कमरा (जिसमें वत्सासन बिछाया हुआ है) प्राय: बन्द ही रहता है, कोई वहाँ नहीं जाता। केवल जो मौन रहकर साधना करना चाहते हैं वही चुपचाप जाकर उस कमरे में ध्यान कर सकते हैं।

भाद्र 17, बृहस्पतिवार- हम आगामी कल विन्ध्याचल रवाना होंगे। आज गोपी बाबू के साथ भेंट करने गये, माँ की खबर गोपी बाबू को जताने के लिये नेपाल दादा भी साथ गये। गोपी बाबू ने आग्रह से माँ के प्रतिदिन का सारा समाचार सुना। गत सोमवार ज्योतिष दादा का भण्डारा देने के लिये शंकरानन्द स्वामी, भोलानाथजी और माणिक हरिद्वार चले गये हैं। परन्तु नेपाल दादा को नहीं मालूम हो सका कि भण्डारा हुआ है या नहीं, क्योंकि सोमवार सुबह ही वह चले आये हैं। गोपी बाबू ने हमारे ही समान अन्दाज

से कहा–‘‘सम्भवत: भण्डारा हो जाने के बाद माँ भोजन करेंगी।’’ उस समय मैंने कहा–‘‘ज्योतिष दादा की मृत्यु के बाद माँ ने दो बार भोजन किया है।’’ तब गोपी बाबू ने कहा–‘‘ठीक ही तो! ज्योतिष दादा के भण्डारा हो जाने के बाद माँ खायेंगी ऐसी बात भी नहीं कही जा सकती। ये लोग किस लिये कौन काम करते हैं कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यह तो हम बाहर से देखकर अनुमान करते हैं कि शायद ज्योतिष बाबू की मृत्यु के कारण ही माँ का ऐसा भाव हुआ है। अवश्य हमारे ऐसे अनुमान का कोई मूल्य नहीं है।’’ मैंने कहा–‘‘माँ इस कारण ऐसा हुआ यह बात नहीं मानती। बल्कि किसी के कहने पर प्रतिवाद ही करती हैं।’’ गोपी बाबू ने भी कहा–‘‘बात तो ठीक है। हमारा अनुमान मात्र है।’’ मैंने यह भी कहा–‘‘यह जो अन्नाहार है, यह भी माँ के लिये नई बात नहीं है, मैंने पहले भी देखा है। इस तरह पड़े रहना भी नया नहीं है। तो बहुत दिनों से ऐसा भाव नहीं हुआ और ज्योतिष दादा की मृत्यु से हमारा भी मन दुर्बल हो गया है। इस कारण डर लगता है।’’

विन्ध्याचल में

भाद्र 18, शुक्रवार– आज हम लोग विन्ध्याचल आ गये हैं। यूथिका देवी, भोलानाथजी और माणिक के पत्र आये। नई खबर विशेष कुछ नहीं है। माँ अब कुछ अच्छी हैं, अब स्वयं ही करवट बदल लेती हैं। सारा शरीर हिलाडुला सकती हैं। अभी जल के सिवाय और कोई चीज नहीं खाती हैं, परन्तु बातचीत अच्छी तरह करती हैं। अलमोड़ा में स्व. ज्योतिष दादा के उद्देश्य से भण्डारा दिया जायेगा। उसका भार देवीदत्त के ऊपर सौंप दिया गया है। माँ के शरीर की कुर्ती काटकर खोली गई है। कपड़े का एक टुकड़ा शरीर पर लपेटा रखा गया है। बताया है–‘‘इस समय कुर्ती खोलना और पहनना कठिन है, उठने पर कुर्ती पहनूँगी, इस समय ऐसा ही रहने दो।’’ उनकी अन्तिम चिट्ठी की तारीख भाद्र 16 थी।

नेपाल दादा से सुना कि माँ ने कैलास यात्रा के बारे में कहा है, पिताजी (स्वामी अखण्डानन्दजी) को ही श्वास–कष्ट सबसे अधिक हुआ था। उस पर नेपाल दादा ने कहा–‘‘उन्हें तो बहुत पहले से ही हृदय का रोग था।’’ माँ ने कहा–‘‘नहीं पिताजी को कभी हृदय का रोग नहीं हुआ था, ऊपर जाने से केवल दम फूलता था। फिर नीचे उतर आने पर वह उपसर्ग

धीरे–धीरे घट जाने लगा। हृदय की कुछ हानि नहीं हुई। उन्होंने जो इतने दिनों तक श्वास की क्रिया की है क्या उसका कोई फल नहीं है? इसीलिये इतने परिश्रम से भी हृदय की कुछ क्षति नहीं हुई है।'' बाबा को हृदय का रोग था। वह माँ के आदेश से क्रिया करके दूर हो गया था, यह पहले ही कहा गया है। माँ ने उत्तर दिया–''इस तरह श्वास की क्रिया मैंने और किसी को नहीं बतायी। केवल तुम्हीं को बतायी है और तुम नियमित करते जा रहे हो। शायद तुम्हारे भीतर ऐसा पूर्व संस्कार था इसीलिये तुम्हें ही बताया गया है।''

यथार्थ में बाबा पहले से ही ऐसी क्रिया करते थे किन्तु ठीक तरह उपदेश न पाकर काम करने से हानि ही हो रही थी। माँ क्रिया के विषय में विभिन्न व्यक्तियों को तरह–तरह के उपदेश देती हैं, किन्तु वह बहुत ही गुप्त रूप से। माँ कहती हैं–''जिसकी बात हो केवल उसी को बताई जाती है, दूसरे को सुनने की आवश्यकता नहीं है।'' इसलिये क्रियादि के बारे में मुझे या दूसरे को जो बताया था उसकी कोई बात ही नहीं लिखी गई और न लिखी जायेगी। इसके सिवाय बहुतों को शायद अनेक बातें बताई हैं। परन्तु गुप्त रखने के लिये आदेश दिया है। ये बातें भी प्रकट नहीं की जा सकती।

भाद्र 21, सोमवार– आज शाम को वीरेन दादा का बृहस्पतिवार भाद्र 17 का लिखा हुआ एक पत्र मिला। उन्होंने देहरादून से स्वामीजी को लिखा है–''माँ ने आज सुबह अंगूर का रस लिया है। आकर जो अवस्था देखी थी उससे डर ही लगा था। जो हो, अब बहुत शीघ्र–शीघ्र परिवर्तन हो रहा है। पहले हाथ और उसके बाद पैर हिलाने लगती हैं। परसों से कमर में भी कुछ शक्ति पाई है और खुद ही करवट बदल लेती हैं। आज स्नान–गृह में पैदल जाकर मुँह धोया है। अब दो–दो घण्टे पर अंगूर का रस थोड़ा–थोड़ा देता रहूँगा। अवस्था देखकर क्रमश: भोजन का परिवर्तन किया जायेगा। आशा हो रही है कि माँ ने कृपा की है और शीघ्र ही स्वाभाविक हो जायेंगी। इच्छा है कि कल हम लोग चन्दा करके करीब 2 मन मिठाई गरीबों को बुलाकर खिला देंगे। और कोई चिन्ता न कीजियेगा।''

भोलानाथजी भाद्र 18 तारीख, शुक्रवार के पत्र में लिख रहे हैं–''आज एक शुभ समाचार दे रहा हूँ। आज आप लोगों की माता ने वीरेन के हाथ से भात खाया है। वीरेन ने भात पकाया था। छवि की माँ ने तरकारी पकाई

थी। आज थोड़ा चलकर हाथ-मुँह धोया है। मैं, माणिक और शंकरानन्द हरिद्वार गये थे। श्रीमत् मंगलगिरि के वहाँ 37 परमहंसों का भण्डारा दिया गया है। एक दूसरी धर्मशाला में भी दण्डी, ब्रह्मचारी और विद्यार्थियों का भण्डारा देकर हम आ गये हैं। गिरि महाराज बहुत अच्छे आदमी हैं-इत्यादि।'' माँ शुक्ल त्रयोदशी, बृहस्पतिवार, भाद्र 3 को लेटी थी और अब कृष्ण त्रयोदशी शुक्रवार को भात खाया है। भाद्र 17 बृहस्पतिवार को माँ उठकर बैठी हैं।

भाद्र 22, मंगलवार- आज सुबह भोलानाथजी के पत्र से मालूम हुआ- माँ भाद्र 18 के बाद से नियमित रूप से खाना-पीना कर रही हैं और प्रायः 18वें दिन खा रही हैं।

भाद्र 25, शुक्रवार- प्रायः ही माणिक के पत्रों से माँ का समाचार पा रही हूँ। माँ अच्छी ही हैं। थोड़ा ही खाती हैं। केवल पाखाना जाने के समय ही पैदल चलती हैं बाकी समय बैठी ही रहती हैं। सवेरे टमाटर का रस और तरकारी लेती हैं। रात को थोड़ा दूध और रोटी दी जाती है। कलकत्ता और मुरादाबाद आदि स्थानों से भक्त लोग गये हैं।

आश्विन 3, रविवार- भोलानाथजी और माणिक के पत्रों से ज्ञात हुआ, माँ ने यूथिका चौधरी और माणिक को देहरादून से चले आने का आदेश दिया है। वे आये हैं। माँ को थोड़ा पेट का दर्द हुआ है, खाना-पीना थोड़ा ही करती हैं। उससे शरीर फिर कुछ खराब हो रहा है। अब स्त्रियों में सुशीला मौसीजी और रूमादेवी माँ के पास हैं। लक्ष्मी देवी भी आश्रम में आई हैं। वही आजकल माँ को रसोई पकाकर खिला रही हैं। इतने में कालीप्रसन्न कुशारी महाशय और नलिनी बाबू (बेबी दीदी के पति) गुजर गये हैं, ऐसी खबर मिली।

आश्विन 15, शुक्रवार- माँ अब अच्छी ही हैं खबर मिल रही है। कलकत्ता, काशी और दूसरे स्थानों से अनेक भक्त दुर्गा-पूजा की छुट्टी में माँ के पास जा रहे हैं। माँ अब भी बैठी ही रहती हैं। अधिक चलने की बात कहने से कहती हैं-''अभी चलने का भाव नहीं है, भाव होने से चलूँगी।' रूमादेवी में कुछ भाव का परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा है। खबर मिली है कि वह नाम-कीर्तन करते-करते कभी-कभी अचेत होकर गिर पड़ती हैं।

माँ ने इस प्रसंग में कहा-''रूमादेवी ने कहा था'' सेवा आदि तो बहुत

किया। आश्रम में भी अनेक काम किये गये परन्तु मुझे शान्ति नहीं मिली। इस कारण माँ के साथ आई हूँ, अब मैं माँ की आज्ञा से एकान्त में रहकर अपना काम करूँगी। 'इसी भाव को लेकर वह आई थी। यह भाव बहुत अच्छा है।' अस्तु, माँ की कृपा से बहुत ही शीघ्र उनके इस तरह भाव का परिवर्तन देखकर सभी लोग प्रसन्न हैं।

आश्विन 28, बृहस्पतिवार (विजया दशमी)–किसी कारणवश कुछ दिनों से हम लोग काशी आये हैं। यहाँ से बच्चू और उसकी माँ मातृ-दर्शन के लिये देहरादून गये हुये हैं। अबकी बार दुर्गा-पूजा आश्विन 25 से शुरू हुई है। अष्टमी तिथि को रात के 4 बजे हमने विश्वनाथजी के दर्शन में जाकर एक अपूर्व दृश्य देखा–रात के लगभग तीन बजे से ही दर्शनार्थी लोग 108 बार मन्दिर की प्रदक्षिणा करने के उद्देश्य से फेरा लगा रहे हैं। स्त्रियों और पुरुषों के बीच में रेलिंग लगा दिया गया है। उनका यह भाव मुझे बहुत अच्छा लगा। और भी कई मन्दिरों में गये। सारे मन्दिर खुले नहीं थे। परन्तु दर्शनार्थी लोग भीड़ जमाकर द्वार पर बैठे हुये हैं। मन्दिर का दरवाजा खुलते ही देवता का दर्शन कर यात्रियों का दल फिर दूसरे मन्दिर की ओर चल रहे हैं।

अभी तक अँधेरा छाया हुआ था। दुर्गा-पूजा के समाप्त होने के बाद ही हम लोग विन्ध्याचल लौट जायेंगे, ऐसा निश्चय हुआ था। एकाएक देहरादून से शची बाबू का तार आया–बाबा को लिख रहे हैं–''माँ नवमी की रात को हरिद्वार जा रही हैं। आप दीदी को लेकर हरिद्वार में माँ से भेंट कीजिये।'' आज सुविधाजनक गाड़ी न पाकर कल जाने का निश्चय किया गया।

* * *

पाँचवाँ अध्याय

हरिद्वार आकर मातृदर्शन और नर्मदा यात्रा

आश्विन 29, शुक्रवार– आज हम लोग दिन के 11 बजे हरिद्वार रवाना हुये।

आश्विन 30, शनिवार– सुबह नानकी बाई की धर्मशाला में जाकर देखा–माँ सबको साथ लेकर वहाँ आई हुई हैं। जिस समय हम लोग वहाँ पहुँचे उस समय माँ लेटी हुई थी। हम लोगों के कमरे में घुसते ही माँ ने पूछा–''तार मिला था?'' आँखें मूंदकर ही बात करते हुये फिर चादर ओढ़कर लेटी रही।

देहरादून से माँ के साथ बाबा भोलानाथजी, भ्रमर, शंकरानन्द, असीमानन्द, नानाजी, नानीजी, सुशीला मौसी, निशि बाबू, रूमादेवी, बच्चू और उसकी माँ, शची बाबू, सतीश बाबू, अवनी बाबू तथा और बहुत से कश्मीरी भक्त आये हैं। नानी के पुत्र (मनकेश्वर रयना) का सारा परिवार दो महीनों से माँ के संग हैं। वे भी आये हैं। नरेन बाबू सपरिवार आये हैं। माणिक भी है।

सुना है कि देहरादून में माँ मन्मथ बाबू की प्रार्थना से नवमी पूजा के दिन पूजा देखने के लिये बंगालियों की हरि–सभा में गई थी। वहाँ से आनन्द चौक में काशी बाबू के मकान पर पहुँची। वहाँ जाते ही बोली–''जब बाहर निकल आई हूँ तब फिर आश्रम नहीं लौट जाऊँगी। 3 बजे की गाड़ी से सब लोग हरिद्वार जाने के लिये तैयार हो जाओ।'' इतने अधिक आदमी, किसी–किसी का तो अभी तक भोजन भी नहीं हुआ। इस कारण बहुत प्रार्थना और मिन्नतें करके 6 बजे शाम की गाड़ी से जाने के लिये माँ को राजी किया गया।

6 बजे की गाड़ी से सब लोग हरिद्वार आये। भक्त लोग माँ को घेरकर बैठ गये। माँ का मुँह धुलाकर कुछ जलपान करा दिया गया। उसी समय बात–बात में आभास मिला कि माँ शीघ्र ही हरिद्वार छोड़ेंगी। जलपान करने के बाद ही माँ ने अखण्डानन्द स्वामीजी से कहा–''कैलास से लौटकर

मंगलानन्द गिरि से भेंट नहीं की गई है। चलो, हम लोग अभी चल चलें।'' माँ की बात सुनते ही भक्तवृन्द भी सजधज कर तैयार हो गये। 8–10 ताँगे लेकर सब लोग 'कनखल' गिरि महाराज के आश्रम पर पहुँचे। गिरि महाराज उस समय खा–पीकर लेटने का प्रबन्ध कर रहे थे। इस अवस्था में किसी के जाने पर वह प्राय: स्वागत नहीं करते, दरवाजा बन्द कर लेट जाते हैं, किन्तु माँ को देखकर उन्होंने बैठने का आसन बिछा दिया और अन्य लोगों को भी बैठने के लिये कहा। बात–बात में माँ से कहा–''तुम न आती तो मैं लेट जाता, और किसी के लिये दरवाजा खुला न रखता।'' वहाँ करीब घण्टा भर आनन्द कोलाहल कर माँ सबको साथ लिये फिर धर्मशाला में लौट आई।

देहरादून से हरीराम, लछमी, अलमोड़ा से श्रीनिवास आदि आये हैं। उसके कुछ पहले, दिन के लगभग 11 बजे माँ असीमानन्द स्वामी को बुलवाकर हम सब लोगों के सामने कहने लगी–''तुम तो नर्मदा ले जाना चाहते थे। नर्मदा की गाड़ी किस समय है?'' उन्होंने कहा–''रात के 11 बजे।'' माँ ने कहा–''चलो।''

उसी समय भक्तों में कौन–कौन जायेंगे स्थिर हो गया। सबका जाना नहीं हो सकेगा क्योंकि किसी–किसी का स्कूल या ऑफिस खुल गया है। बहुत से काशी और कलकत्ते की ओर लौट गये। हम (करीब 15 आदमी) माँ के साथ नर्मदा की ओर रवाना हुये। रात के 11 बजे की गाड़ी से चल पड़े। मैमनसिंह के ज्ञानचन्द्र चट्टोपाध्याय महाशय सपरिवार माँ के दर्शनों के लिये देहरादून जाकर दर्शन न पाने से हरिद्वार आकर दर्शन किया। वे भी हमारे साथ दिल्ली तक चले। दिल्ली में पंचू बाबू और पंकज बाबू अपनी–अपनी पत्नी के साथ माँ के दर्शनों के लिये स्टेशन पर आये।

आश्विन 31, रविवार– आज सुबह 7 बजे दिल्ली और रात के 2 बजे बड़ौदा पहुँचे। वहाँ से मोटर द्वारा 4 मील दूर एक छोटे स्टेशन में जाकर रात बिताई। चाँदनी रात, निर्जन स्थान, स्टेशन शहर से बाहर था। शची दादा, प्रोफेसर नरेन बाबू आदि सभी को वह स्थान बहुत ही मनोरम प्रतीत होने लगा। वहाँ रात का बाकी समय बातचीत करते–करते बीत गया।

नर्मदा तीर–चन्दोद में विष्णु मन्दिर गमन

कार्तिक 1, सोमवार– आज सुबह 7 बजे नर्मदा की गाड़ी में बैठकर

फिर 8 बजे गाड़ी बदलकर दिन के करीब साढ़े 9 या 10 बजे नर्मदा के तीर पर बसे 'चन्दोद' पहुँचे। यह स्थान असीमानन्दजी का पूर्व से ही परिचित था। उनके मुँह से माँ की बात सुनकर अनेक लोगों ने माँ का दर्शन करने की विशेष इच्छा प्रकट की थी।

हम लोगों ने स्टेशन पहुँचने पर देखा कि एक खिलौने वाला अनेक खिलौने ठेले पर लेकर जा रहा है। माँ जाकर उस ठेले के पास खड़ी हो गई। मैंने कहा-''क्या चाहिये, माँ बताओ।'' इतना कहते-कहते ही श्री नरेन चौधरी की पत्नी यूथिका देवी भी वहाँ आई। उन्होंने एक खिलौना उठाकर माँ के हाथ में दिया, देखने में मुद्गर जैसी एक ''झुमझुमी'' थी। माँ साथ-ही-साथ बोली-''मुद्गर तो हुआ, शंख, चक्र, गदा और पद्म।'' चट से मैंने एक चक्र जैसा खिलौना उठाकर माँ के हाथ में दिया, माँ उसे पकड़ी ही रही। बाद में भोलानाथजी ने एक कौड़ी का खिलौना माँ के हाथ में दिया। माँ ने चुपके से मुझसे कहा-''शंख के बदले कौड़ी हुई।'' फिर मैंने कमल के बदले एक गोल फूल-जैसा खिलौना माँ के हाथ में दिया। यूथिका देवी ने दो छोटी-छोटी बालटियाँ तथा और भी कुछ खिलौने दिये। माँ बहुत खुश होकर उन्हें ले चली।

थोड़ी दूरी चलकर हम सब रुक गये, माँ ने कौनसा खिलौना किसको अच्छा लगा पूछकर एक-एक खिलौना एक-एक के हाथ में दे दिया। वे खिलौने सभी बजने वाले थे, उन्हें बजा-बजाकर शची बाबू, नरेन बाबू आदि के नाम-कीर्तन शुरू करते ही चारों ओर से अनेक लोग आकर तमाशा देखने के लिये खड़े हो गये। माँ ने हँसकर कहा-''देखती हूँ कि तुम लोग भीड़ इकट्ठा करने लग गये।'' ये सब कृत्य करके हम सब असीमानन्द स्वामी के निर्देश के अनुसार चलने लगे।

कुछ दूर पैदल चलना पड़ा। असीमानन्द ने स्टेशन से कुछ दूर विष्णुदास मन्दिर में माँ को ले जाकर ठहराया। वहीं रहने का इन्तजाम किया गया। असीमानन्द स्वामी पहले आकर यहीं ठहरे थे। जाकर देखा कि यह एक विष्णु-मन्दिर है। जनश्रुति है कि पहले एक सज्जन ने यहाँ एक छोटी विष्णु-मूर्ति स्वप्न में पाकर स्थापित की थी। बाद में वर्तमान बड़ी विष्णुमूर्ति स्थापित की गई है। मन्दिर बहुत बड़ा है। एक महन्त और कुछ सेवक हैं। मन्दिर के साथ संलग्न और भी कई कोठरियाँ हैं। ऊपर हमारे रहने के लिये स्थान दिया

गया है। कमरे बड़े-बड़े पर फर्श मिट्टी के हैं। सब लोग नर्मदा में जाकर नहा आये और विष्णु का प्रसाद खाया। उत्तम भात, तरकारी, पूरी, हलवा और अचार-प्रसाद मिला। सुना है कि यहाँ यात्रियों को बिना मूल्य प्रसाद दिया जाता है। बहुत बड़ी जमींदारी है। उसकी आमदनी से ही खर्च चलता है। किसी को बिना खिलाये लौटाया नहीं जाता। सभी सम्प्रदायों के संन्यासी तथा गृहस्थ जितने दिन चाहें वहाँ रह सकते हैं। मन्दिर में अनेक विद्यार्थी भी रहते हैं। सबको प्रसाद दिया जाता है। खाने-पीने के बाद सब लोग आराम करने लगे। माँ भी विश्राम करने के लिये लेट गई। माँ का चेहरा बहुत ही दुबला मालूम होता था। अब तक पैदल चलती नहीं थी। अब चल रही हैं। परन्तु बाहरी दृष्टि से कोई बीमारी प्रतीत नहीं होती। माँ मन्दिर में आकर बोली- ''देखो, विष्णु-मन्दिर में आऊँगी यह बात पहले नहीं सुनी गई थी। परन्तु विष्णु-मन्दिर में आ रही हूँ इसी कारण स्टेशन से ही शंख-चक्र, गदा और पद्म का खेल चल रहा था।

गाड़ी में आते समय कुछ बातें हुई थी। वे उल्लेख-योग्य हैं इसी से लिखती हूँ। नरेन बाबू ने कहा था-''माँ एक स्थान पर लिखा है, भगवान् कहते हैं कि 'मैं मुक्ति देने में कुंठित नहीं हूँ परन्तु भक्ति देने में कुंठित हूँ।' भक्ति ही बड़ी है यह भाव प्रकट किया गया है।'' माँ ने कहा-''शुद्ध भक्ति भीतर ही है, उन्हें प्राप्त करने की आशा से साधन करते चलो। वह स्वयं मीमांसा हृदय में प्रकट कर देंगे। एक के सिवाय कोई दूसरा नहीं है।''

माँ फिर बोलने लगी-''एक कश्मीरी महिला 'माँ'-'माँ' नाम का कीर्तन किया करती थी। इसलिये किसी ने उनसे पूछा था कि 'तुम तो शक्ति की उपासक नहीं हो तो 'माँ'-'माँ' क्यों करती हो?'' यह बात उनके मन में खटक गई, परन्तु उन्हें मेरे सामने आकर पूछने का साहस नहीं हुआ। देहरादून के काशी बाबू की पत्नी लक्ष्मी से मुझे कहला भेजा था। तब मैंने उन्हें बुलाकर कहा-'देखो, यदि तुम्हारे भीतर ऐसी दृढ़ धारणा हो कि मैं राम या कृष्ण के मन्त्र से दीक्षित हूँ, मैं उस नाम के सिवाय और कुछ नहीं करूँगी तो तुम्हें वही करना चाहिये। उसी में सब कुछ है। फिर दूसरी ओर से विचार करने पर भगवान् को कोई माता, कोई पिता और कोई मित्र कहकर पुकारते हैं। जिसको जो भाव अच्छा लगे वह उसी भाव से पुकार सकता है। उस हिसाब से 'माँ कहकर पुकारने पर भी उन्हीं को पुकारना होता है, उसमें कोई

दोष नहीं लगता।' इस बात को सुनने पर उनका भ्रम दूर हुआ।''

शची दादा ने बहुत दिनों पूर्व गम्भीरनाथ बाबाजी की जीवनी की एक घटना पढ़ी थी। किसी समय बाबाजी नर्मदा-तीर पर कुछ दिनों के लिए आसन बिछाकर बैठ गए थे। एक साँप रोज उनके पास आया करता था। उन्होंने कहा था- साँप की दृष्टि के साथ दृष्टि मिलाते ही बाबाजी को समाधि लग जाती थी। उस स्थान पर एक साधु 12 वर्ष की तपस्या कर रहे थे। वह कुछ दिनों के लिए दूसरी जगह चले गए थे। इतने में गम्भीरनाथ बाबाजी ने वहाँ आकर आसन जमाया था। जब वह साधु लौट आया और बाबाजी से सुना कि एक साँप रोज उनके पास आता है तो वह साधु आश्चर्यचकित होकर बोल उठा-''इसी सर्प के दर्शन के लिए मैं आज 12 वर्षों से यहाँ तपस्या कर रहा हूँ परन्तु दर्शन नहीं हुए। लेकिन आप बड़े भाग्यवान हैं कि आते ही दर्शन पा गए।'' इस घटना के पढ़ने के बाद ही शची दादा को नर्मदा-दर्शन की प्रबल इच्छा हुई थी।

शची दादा आज सुबह गाड़ी में जब एकाएक चुप होकर बैठ गये तो माँ ने कहा-''क्यों, तुम तो एकदम चुपचाप गम्भीरनाथ बाबाजी बनकर बैठ गये?'' यह बात सुनकर शची दादा के हृदय में न जाने कैसा एक भाव जाग उठा-उन्होंने मन्दिर में आकर माँ से कहा-''माँ, आपकी बात से मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मुझे ऐसा मालूम होता है कि आपने मुझे आज गम्भीरनाथ बाबाजी की बात स्मरण कराने के लिये ही एकाएक वह बात कही है। वास्तव में उन्हीं के कारण मेरे भीतर नर्मदा आने की इच्छा जगी थी। आज नर्मदा-किनारे आकर आपने उसी बात का स्मरण करा दिया।'' माँ जरा मुस्करायी।

अवतारों के भीतर भाव का खेल

रास्ते में ऐसी अनेक घटनायें हुई। अवतार के अवतरण के सम्बन्ध में माँ ने कहा-''एक हिसाब से तो सभी लोग अवतार हैं और यदि वह बात छोड़ भी दो तो किस स्थान से अवतरण होगा? इसके उत्तर में कहा जाता है-निर्गुण और सगुण का प्रकाश। सगुण और निर्गुण का एक साथ प्रकाश ही अवतार है। जैसे-पेड़ का अंकुर, उस अंकुर से पेड़-पौधा होता है, परन्तु अंकुर अवस्था में ही वृक्ष का रंग और प्रकृति नहीं मालूम होती। बीज मिट्टी के साथ मिलकर रहने से अंकुर उत्पन्न होता है और क्रमशः उसी से पेड़-

पौधे, फल-फूल निकलते हैं। सगुण और निर्गुण दोनों भावों के एक साथ प्रकाश से ही अवतार होता है। इसलिये अवतार में दोनों भावों की लीला दिखाई पड़ती है। और भी देखो, समुद्र के ऊपर का अंश कितना तरंगमय है, परन्तु भीतर के अंश में कोई तरंग नहीं है। वहाँ जल स्थिर, धीर, शान्त है। उसी प्रकार अवतार में चल और अचल दोनों भावों की लीला होती रहती है।''

मैंने प्रश्न किया-''कभी-कभी दिखाई पड़ता है-तुम्हारी कृपा से रोग अच्छा हो गया है। तुम्हारे शरीर में भी भोग नहीं हुआ। यदि कहीं रोग प्रकट नहीं हुआ तो वह कहाँ गया। रोगी के कर्मफलों का भोग तो किसी को करना ही होगा। जगाई, मधाई का पाप ग्रहण कर श्रीचैतन्यदेव काले हो गये थे।'' माँ ने कहा-''देखो, कभी-कभी तुम लोगों ने देखा होगा कि रोग इस शरीर में आ गया है, फिर रोग एक शरीर से किसी दूसरे शरीर में भी दिया जा सकता है। स्वयं अपने में रखने की जरूरत नहीं पड़ती। कभी तो इस शरीर में मामूली रोग प्रकट हुआ है, फिर कभी उसका निशान भी नहीं दिखाई पड़ा। इसका कारण देखो आग है, जो सभी चीजों को भस्म कर देती है, जरा-सा चिह्न भी नहीं रख छोड़ती। सभी सम्भव है।''

दीक्षा की बात पर मैंने पूछा-''तुम्हारी जो दीक्षा हुई है, कहते हैं ऐसा क्यों कहा जाता है? क्या इससे विशेष कोई लाभ हुआ है?'' माँ बोली-''कोई प्रयोजन नहीं था, फिर भी सभी जैसे शरीर के ऊपर से चला जा रहा है, यह भी वैसा ही है। इसीलिये झूलन उत्सव के दिन जब ऐसा कुछ हो गया तो भोलानाथ ने पूछा-''दीक्षा हुई है?'' मैंने कहा-''हाँ, बचपन में पेड़-पौधों से बातचीत होती थी। कितने ही प्रकार के शब्द इस शरीर से निकल आते थे। उसके बाद स्तोत्र आदि निकलते तुमने सुना है। दीक्षा भी वैसी ही है, भीतर से अपने आप ही प्रकाश पाया और सब जैसा निकल गया है यह भी उसी तरह हो गया है।''

मैंने पूछा-''अच्छा माँ, तुम तो समय-समय पर कहा करती हो कि 'शरीर पड़ा था, न मालूम मैं कहाँ चली गई थी, शायद जरूरत थी इसीलिये तुम लोगों की इच्छा से शरीर के किसी स्थान से लौट आना सम्भव हुआ है।' कहाँ जाती हो? जैसे यहाँ शायद कोई जरूरत पड़ी, वहाँ भी जाने का उसी तरह कोई कारण होगा।'' माँ ने कहा-''देखो, अनेक प्रकार हैं, शरीर

के ऊपर वाले या निचले अंश से बाहर जाया जाता है। फिर नव द्वारों में किसी एक द्वार से निकला जा सकता है। फिर हर एक स्थान से भी निकला जा सकता है, जैसे-पैर की अंगुली, लोम या केश की जड़ से अथवा केश के भीतर से तथा ब्रह्मरन्ध्र के किसी भी स्थान से बाहर निकला जा सकता है। सभी तो अनन्त हैं और यह भी अनन्त हैं।''

मैंने कहा-''तुम जो कहीं चली जाती हो, क्या ऊपर के लोक से कोई लेने आते हैं? या खुद ही अपने प्रयोजन सिद्ध करने के लिये जाती हो!'' माँ ने कहा-''कभी-कभी बुलाकर ले जाते हैं। जैसे तुम लोग ले जाते हो और मैं जाती हूँ। फिर कभी तुमने देखा होगा कि मैं बैठी बातें कर रही हूँ और कोई मुझे नहीं बुला रहा है, एकाएक मैं उठकर दूसरे स्थान पर जा पहुँची। वहाँ शायद ऐसी कोई घटना हो रही थी जो मेरे निकट छिपाने की चेष्टा हो रही थी। मेरे एकाएक वहाँ पहुँचने पर भेद खुल गया। मैं जो मंगल गिरि के आश्रम में एकाएक गई थी, उसने तो बुलाया नहीं था, तिस पर भी मैं गई, इसका भी प्रयोजन था। प्रयोजन रहने से ही सब कार्य सिद्ध हो जाते हैं। परन्तु है वह तुम्हारा ही प्रयोजन या अप्रयोजन। परन्तु बाहरी ओर से शायद कुछ भी समझ में नहीं आता।'' आज मन्दिर में बात-बात में किसी ने कहा-'वह जाना गया है।' भोलानाथजी और माँ दोनों ने ही इसकी व्याख्या की-'जो नहीं, वही जाना', यानी यह जो दिखाई पड़ने वाला प्रपंच-विलास है जिसे हम जानने योग्य या ज्ञेय समझकर कहते हैं-हम तो जानते हैं-वह ज्ञेय जगत् कुछ भी नहीं है अर्थात् असत् है।

माँ और भोलानाथजी की दीक्षा का विवरण

कार्तिक 2, मंगलवार- आज मैंने दरवाजा बन्द करके माँ और भोलानाथजी को एकान्त में पूछा-''आपकी दीक्षा की ठीक-ठाक घटना मैं सुनना चाहती हूँ। वह बात परम पावन-जगत का कल्याणकर है। अब आप दोनों के निकट अगर मैं इसका ठीक-ठीक विवरण न सुन लूँ तो और कौन वह घटना ठीक-ठीक हमें सुनायेगा?'' तब दोनों के मुख से दीक्षा का निम्नलिखित विवरण सुना।

भोलानाथजी उस निर्दिष्ट दिन दीक्षा ग्रहण नहीं करेंगे कहकर जलपान की प्रतीक्षा न करके कचहरी चले गये। माँ ने भोलानाथजी को दो-तीन बार

बुला भेजा परन्तु बाबा नहीं आये। अन्त में माँ ने कहला भेजा-"जाकर कह दो कि अगर न आए तो मैं ही कचहरी जाऊँगी।" उस आदमी ने जाकर भोलानाथजी से वैसा ही कहा। भोलानाथजी माँ को जानते थे- न मालूम यह क्या कर बैठे। कचहरी आकर हाजिर होना भी विचित्र नहीं है। शंकित होकर भोलानाथजी डेरे पर आकर देखते हैं कि माँ टहल रही हैं और उनके मुँह से स्तोत्र-मन्त्रादि अपने आप निकल रहे हैं। भोलानाथजी के आते ही माँ ने उन्हें स्नान कर आने के लिये कहा तथा सूखा वस्त्र लाकर दिया। भोलानाथजी के नहा आने पर दोनों आसन पर बैठ गये। उस समय माँ के मुँह से एक बीज-मंत्र उच्चरित हुआ। माँ ने भोलानाथजी से वह मंत्र जप करने के लिये कहा ओर जो कुछ क्रियाएँ आवश्यक हैं उन्हें भी समझा दिया। उस दिन से भोलानाथजी उसी मंत्र का जप करने लगे। इसके बाद भोलानाथजी को वृथा मांसादि खाने से मना कर दिया। शुद्ध पवित्र भाव से रहने के लिये कहा और वह भी ठीक उसी तरह चलने लगे। इसी ढंग से भोलानाथजी की दीक्षा हो गई।

भोलानाथजी की दीक्षा की घटना ऐसे निस्संकोच तथा स्पष्ट रूप से आज तक प्रकट नहीं हुई थी। सौभाग्य से आज दोनों के मुख से इसे सुनकर मैं धन्य हुई, कृतार्थ हो गई। दोनों के निकट माँ की दीक्षा की बात रखी। इस विषय में माँ ने श्रीमुख से जो कुछ कहा था उसी को यहाँ लिख रही हूँ-

"पहले तो माता-पिता ही गुरु हैं। एक दिन पिताजी ने कहा-'हरि का नाम लेने से मंगल होता है।' बहुत दिनों के बाद मैंने गुरु के आदेश से हरि नाम लेना शुरू किया। फलस्वरूप कीर्तन के समय शरीर में जो क्रियायें होती जाती थी उन्हें तुमने देखा और सुना ही है। उसके बाद विवाह हुआ, इस शरीर के माँ ने कह दिया-'पति परम गुरु है।' जब ही जिसे गुरु के स्थान पर बिठाने का खेल इस शरीर ने खेला है तभी उसके हाथ में अपने को पूर्णतया सौंप दिया जाता था, अपनी स्वतंत्र इच्छा का कोई खेल नहीं होता था। गुरु जो कहते, वही बिना विचारे इस शरीर के भीतर से हो जाता है। मेरे शरीर में जब हरि नाम से उस प्रकार की क्रियायें होने लगी तब एक दिन भोलानाथ ने कहा-"देखो, हम तो वैष्णव नहीं हैं! हरि नाम से तुम्हारे ऐसे भाव होना ठीक नहीं है। हम लोग शैव हैं। इस कारण हमारे लिये ऐसा होना उचित नहीं है।" माँ शिशु की तरह भोलानाथजी से पूछ बैठी-"तो मैं क्या

करूँ? 'जय शिवशंकर, बम्-बम् हर-हर बोलूँ?'' भोलानाथजी ने थोड़ा जोर देकर ही कहा-'हाँ, तुम वही करो।' माँ ने भी तुरन्त कहा-'अच्छा तो मैं वही करूँगी।' उस समय तो बाहरी उपाय से बीज आदि जानने की कोई सम्भावना ही नहीं थी, इसीलिये माँ वही नाम करने लगी। इस अवस्था में एक दिन माँ ने भोलानाथजी से कहा-''मैं जमीन पर बैठकर नाम करूँ!'' (रात में माँ बिछौने पर ही अपने भाव में विभोर होकर बैठी रहती थी।) भोलानाथजी उसमें बाधा नहीं डालते थे। उस समय से माँ जमीन पर ही नाम लेने बैठा करती थी। माँ कहती थी-'हरि और हर तो एक ही हैं, इस कारण पहले कीर्तन में जो शारीरिक क्रियादि हो जाती थी इस नाम से वह और भी बढ गई।' इस तरह सम्भवतः 1329 बंगाब्द (ई. 1922 सन्) के श्रावण मास की झूलन पूर्णिमा की रात्रि 12 बजे माँ के भीतर से ही अपने आप दीक्षा हो गई!

गुरु का आदेश बिना-प्रतिवाद पालन करते चलो, कलियुग में नाम-साधन से ही सब कुछ होता है

माँ बोली-''इस कारण मैं सबको पहले से ही बतला देती हूँ-'जिसको जो नाम अच्छा लगे वह वही करता जाय। गुरु का आदेश बिना आपत्ति के पालन करते चलो। अपने को उन्हीं की इच्छा के भीतर छोड़ दो। अपनी कोई इच्छा सिर न उठाये। देखना इसी से अपने हृदय का द्वार खुल जाएगा। 'कलियुग में सरल सीधा नाम-साधन ही उत्तम है।' इसी से सब कुछ हो जाता है'-ऐसा कहा गया है। तुम लोग ऐसा न समझो कि संस्कृत शब्द से दीक्षा न होने पर भगवान् को बुलाया नहीं जा सकता और कोई काम भी नहीं होगा। इस शरीर को भी तो देख रही हो और बात सुन रही हो। क्या केवल यही बात है? आवश्यकतानुसार सभी अपने आप खुल जायेगा। मैंने तो पहले ही बतलाया है-'रजिस्ट्री बही में नाम लिखाने के लिये उत्तम नाम आवश्यक है।' तुम्हें जो नाम अच्छा लगे, करते जाओ। प्रयोजन होने पर सभी आ जायेगा। 'बीज' शब्द का अर्थ है-विशेष परिचय। जैसे-तुम्हारा नाम विचित्र है और कोई परिचय ज्ञात नहीं है। परन्तु नाम लेकर पुकारने से पास आये, उसके बाद सारा परिचय मिल जाता है।''

फिर कह रही हैं-''इसी कारण ज्योतिष से एक बार मैंने कहा था, तुम्हारे आश्रम में कीर्तन के पूर्व 'जय शिवशंकर बम्-बम् हर-हर'- इस नाम

का कीर्तन कर लेना। उस समय ज्योतिष ने कीर्तन के पहले उन नामों का कीर्तन करने के लिये कह दिया था। अन्नपूर्णा के मन्दिर में आरती के समय आज भी यह नाम लिया जाता है। किस लिये ऐसा कहा, वह उस समय ज्योतिष को खोलकर नहीं बताया गया था।'' माँ ने दिखाया-'नाम के बीच में बीज है।' इसीलिये नाम लेते-लेते बीज विकसित हो जाता है। बीज के भीतर भी नाम है। सभी के भीतर सब है। जिस भाव से या जिसके जरिये से ही हो, प्रकट होना ही वांछनीय है। जो कुछ हो, एक काम करते चलो, वृथा समय और श्वास नष्ट न करो। जो करोगी उसी से फल होगा। उसी रूप से ही एक का विकास होगा।'' माँ ने कहा-''हरि और हर एक ही हैं, फिर अलग भी हैं।'' फिर 'माँ'-'माँ' शब्द पहले माँ के मुख से ही निकलता है, इसलिये हम लोग देखते हैं कि माँ के भीतर साम्प्रदायिक भाव लेश-मात्र भी नहीं है। ये सब बातें अब तक छिपी हुई थी। आज एकान्त में माँ और भोलानाथजी के श्रीमुख से ये सब कुछ सुनकर मैं मुग्ध हो गई। दोनों के चरित्र का असाधारण भाव इससे खिल उठा है।

बात-बात में और भी एक विशेष बात प्रकट हुई है। घटना इस प्रकार है-अब तक संसार में जो अवतार और महापुरुष आये हैं, सभी का एक-एक विरुद्ध दल था, ऐसा सुनाई पड़ता है। माँ का भी है, माँ कहती हैं कि वह अंग का भूषण है। ऐसे ही एक दल ने भोलानाथजी के पास माँ की निंदा-सूचक चिट्ठी भेजी थी। माँ और भोलानाथजी उस समय देहरादून में थे। भोलानाथजी ने उन्हें ऐसा जवाब दिया था-''मैंने उनसे (माँ से) 12 साल 10 मास की अवस्था में विवाह किया है, आज तक मैं उसे पूर्ण ब्रह्मचारिणी रूप से अच्छी तरह जानता हूँ। आज तक उसमें चंचलता का बिन्दुमात्र प्रकाश भी नहीं देखा। इसीलिये मैंने निःसंकोच उसे संसार में सभी के सामने छोड़ दिया है।'' भोलानाथजी से ऐसा स्पष्ट तेज धार वाला जवाब पाकर विरुद्ध-वादियों में बहुत से शान्त हो गये थे। उनमें से बहुतों के मन का सन्देह दूर हो गया था। भोलानाथजी के सुन्दर सरल भाव के कारण हम लोग माँ की कितनी ही असाधारण लीला का समाचार पाकर कृतार्थ हो गये हैं। आज भी माँ का यह परिचय पाकर चरित्र के असाधारण भाव का और भी एक परिचय पाया। मामूली कुछ बातों से एक महान् चरित्र खिल उठा है, उसकी उपलब्धि सभी लोग करेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं।

माँ स्वयं प्रयोजनरहित है, जो कुछ प्रकट होता है सब भक्तों के लिऐ

इसलिये माँ कहती है-"जो आवश्यक है, केवल वही इस शरीर के भीतर से हो जाता है। मुझे तो किसी चीज की आवश्यकता नहीं है, शायद तुम लोगों को आवश्यकता थी इसलिये साधना का अंश इसी शरीर के भीतर से सम्पन्न हो रहा है। इस शरीर के भीतर से जो योग-क्रियायें प्रकट हो गई हैं, मेरे सामने वह सब ठीक बच्चों के खेल के समान हैं। कोई भेद नहीं मालूम हुआ।" माँ के मुँह से इन सब बातों को सुनकर मैं स्तब्ध हो गई। इन सब बातों को इस ढंग से कौन कह सकता है? हमारी धारणा में भी वह नहीं आ सकता। इतनी बड़ी एक शक्ति को लेकर हम केवल खेल ही करते आये हैं। वह भी हमारे ही भाव में सम्मिलित होकर हमारे साथ न जाने कितने ही खेल खेल रही हैं।

दिन के एक बजे का समय था। मैंने दरवाजा खोल दिया। माँ आज सुबह उठकर जलपान करके ही भोलानाथजी की पेटी लेकर दिल्लगी से उन्हें चिढ़ाने लगी। भोलानाथजी का भाव भी शिशु की तरह सरल है। दोनों में इस तरह की दैवी लीला देखकर सभी लोग मोहित हो गये। माँ कितने भावों से क्या-क्या खेल, खेल रही हैं, कौन इसका हिसाब लगायेगा! आज लगभग 3 बजे भोजन-पर्व समाप्त हुआ। विष्णु-मन्दिर से प्रसाद आया। आज कोजागर लक्ष्मी-पूर्णिमा है, देखा, यहाँ भी कुछ-कुछ नियम पालन किये जाते हैं। मन्दिर में देवता की आज विशेष पूजा होती है। यहाँ की गुजराती भाषा हम लोग अच्छी तरह नहीं समझते थे। असीमानन्दजी के इस प्रान्त के कई शिष्य माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। माँ को अहमदाबाद नर्मदा के तीर पर तथा अन्यान्य स्थानों पर ले जायेंगे, कहा। माँ की एक बात-"मेरा तो कुछ भी ठीक नहीं है, जो हो जाय।"

नर्मदा भ्रमण और मन्दिरादि का विवरण

शाम को लगभग 5 बजे नर्मदा नदी में नाव पर हम लोग घूमने निकले। तीर के मन्दिरों आदि का इतिहास कहते हुये स्वामी असीमानन्द साथ-साथ चले। सुना, निकट ही साधुओं की बहुत-सी 'कुटिया' हैं। उनमें बहुत से साधु रहते हैं। लगभग 40 मील ऊपर शूलपाणेश्वर का मन्दिर है। वहाँ चक्रतीर्थ में डुबकी लगाने से शिवलिंग मिलता है। नर्मदा के किनारे बड़ौदा राज्य की धर्मशाला और शिव-मन्दिर है तथा **नर्मदेश्वरी** का मन्दिर है। एक

शिव–मन्दिर का दर्शन कर हम लोग एक साधु के आश्रम में चले। आश्रम के घाट पर नाव लगाकर आश्रम में पहुँचे।

इस आश्रम के वर्तमान महन्त का नाम कैलाशचन्द है। उनके गुरु केशवानन्द, उनके गुरु ब्रह्मानन्द थे। यही **ब्रह्मानन्द देवधर** के **बालानन्द ब्रह्मचारी** के गुरु थे। बालानन्द ब्रह्मचारी इसी स्थान पर लगभग 50 वर्ष ब्रह्मचारी–जीवन बिता गये हैं। ब्रह्मानन्द और केशवानन्द के दो चित्र दीवार में लटकाये हुये थे। आश्रम में शिव–मन्दिर तथा एक ओर यात्रियों के रहने के लिये धर्मशाला है। वहाँ के लोग माँ को महन्त के रहने के कमरे में ले गये। हम लोग भी साथ थे। देखा कि एक राजसी ठाट है। साधारण बड़े आदमियों के घर में भी इस तरह के असबाब नहीं रहते। माँ के साथ महन्त की कुछ देर तक बातें हुई। प्रसाद पाने के लिये उन्होंने सब लोगों से अनुरोध किया, अस्वीकार करने पर सबके लिये दूध मँगवा दिया। कोजागर लक्ष्मी पूर्णिमा के कारण सत्यनारायण और चन्द्र की पूजा हो रही थी। नये अन्न का भोग दिया गया। उसका प्रसाद सबको थोड़ा–थोड़ा मिला। देखा, इन गुजरातियों में बंगाल की कुछ प्रथायें प्रचलित हैं। इन आश्रमों को यहाँ के लोग 'कुटिया' कहते हैं। एक दिन उनकी कुटिया में प्रसाद पाने के लिये महन्तजी ने विशेष रूप से अनुरोध किया।

हम लोग रात के 8 बजे नाव से लौट आये। उस समय नर्मदा में एक बहुत अच्छा भाव अनुभूत हो रहा था। माँ नाव पर ही गाना गाने लगी।

हरि नामेर तरी बाँधो भाई।

अर्थात् हरिनाम की नौका बाँधो भाई। हम लोग मुग्ध होकर सुनने लगे। स्थान, काल, पात्र सभी मधुर थे। हम लोग रात के 10 बजे विष्णुदास की धर्मशाला में लौट आये। माँ बहुत देर तक बरामदे में बैठी रही। आज यहाँ भी मूर्ति को बाहर लाकर खूब सजा दिया और कीर्तन तथा आरती होने लगी। रात के करीब साढ़े 10 बजे सबने भोग का प्रसाद पाया। कल नाव से नर्मदा के तीर पर स्थित व्यास, अनसूया आदि स्थानों पर जाया जायेगा, ऐसा निश्चय हुआ है। सुना, नाव पर आना–जाना रात में ही अधिक होता है क्योंकि यहाँ नाव के ऊपर कोई आवरण नहीं है, घाम में आने–जाने से कष्ट होता है। आज रात प्रायः समाप्त करके हम लोग सो गये। माँ भी उसी समय सो गई।

'व्यास' में गमन

कार्तिक 3, बुधवार– आज सुबह माँ बहुत देर से उठी। इस मन्दिर के महन्त में किसी तरह की विलसिता का भाव नहीं दिखाई पड़ा, बिल्कुल मामूली ढंग से रहते हैं। इस मठ के सभी लोग हमारा काफी आदर-सत्कार कर रहे हैं। कोई तकलीफ नहीं है। सुना है कि सभी धर्मों के लोग यहाँ आश्रय पाते हैं। आज शाम को 4 बजे हम नाव से 'व्यास' की यात्रा पर चले। शाम को 'व्यास' पहुँचे, काफी निर्जन स्थान है। द्वीप के भीतर कई मन्दिर तथा आश्रम हैं। नर्मदा के एक तीर पर 'व्यास' तथा दूसरे पर 'शुक्रदेवी' हैं। हम लोग 'व्यास' जाकर लक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर में पहुँचे। वहाँ एक अग्निहोत्री ब्राह्मण (गुजराती) सपरिवार रहते हैं। सभी को यह स्थान बहुत अच्छा लगा। भोलानाथजी घूमते हुये अग्निहोत्रीजी की कुटिया में जा पहुँचे। यहाँ खाने की चीज कुछ भी नहीं मिलती, मन्दिर की पुजारिन ने तो किसी तरह थोड़ी खिचड़ी पकाकर अतिथि-सत्कार किया। चाँदनी रात में यह स्थान बहुत ही मनोरम मालूम हुआ। शरीफा के पेड़ों से यह स्थान बिल्कुल भरा हुआ था। रात यहीं बिताई गई। माँ के गले में दर्द हुआ है, शरीर अस्वस्थ हो गया है।

अनुसूया देवी के मन्दिर में गमन

कार्तिक 4, बृहस्पतिवार– नर्मदा में स्नान आदि करके व्यासदेवजी की तपस्या के स्थान का दर्शन कर हम लोग अनुसूया देवी का स्थान देखने चले। दिन के लगभग एक बजे हम लोग वहाँ पहुँचे। यहाँ भी मन्दिर आदि हैं। जनश्रुति है कि इस स्थान की मिट्टी शरीर पर लीपने से कुष्ठ रोग में आराम होता है। उसका एक अस्पताल भी यहाँ है। एक बंगाली साधु ने यहाँ एक बड़ी सुन्दर काली-मूर्ति स्थापित की थी, उसके बाद उनका देहान्त हो गया। वह काली-मूर्ति अभी भी यहाँ पर है। अनुसूया देवी का मन्दिर है। एक बहुत बड़ा बरगद का वृक्ष है। हम लोग दिन के 11 बजे वहाँ से चलकर शाम को 7 बजे चन्दौद पहुँचे। किसी का भोजन नहीं हुआ। मन्दिर में भोगादि हो जाने पर रात के 9 बजे सबने प्रसाद खाया। सभी लोग माँ को लेकर महान् आनन्द से दिन बिता रहे हैं। शची दादा आदि सभी लोग कहने लगे–''आज तो भूख लगी ही नहीं। न जाने किस शक्ति के प्रभाव से लोग इतने दिनों का अभ्यास त्याग सके हैं।''

कार्तिक 5, शुक्रवार–तीसरे पहर 4 बजे हम लोग माँ के साथ अहमदाबाद रवाना हुये। वहाँ से तीन-चार आदमी माँ को लेने आये हैं। हम लोगों ने बड़ौदा स्टेशन पर रात बिताई। बड़ौदा शहर बहुत ही सुन्दर सजा हुआ है। हम लोग सुबह 7 बजे अहमदाबाद की गाड़ी से जायेंगे।

अहमदाबाद आगमन

कार्तिक 6, शनिवार – आज सुबह 7 बजे की गाड़ी से यात्रा कर हम लगभग 1.30 बजे अहमदाबाद पहुँचे। यहाँ स्वामी असीमानन्दजी के कई शिष्य हैं, स्वामीजी से माँ की बात सुनकर उनके अनेक श्रद्धालु भक्त माँ की फोटो की पूजा कर रहे हैं। माँ आज आयेंगी यह सुनकर अनेक लोग स्टेशन पर उपस्थित हुये हैं। माँ के गले में फूलों की माला का ढेर लग गया। हम लोग स्टेशन के नजदीक ही एक धर्मशाला में जाकर रुक गये। बहुत से लोग माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। गुजराती भाषा हम जानते नहीं थे, इस कारण बातचीत करने में बड़ी कठिनाई हो रही थी, तो भी ये लोग कुछ-कुछ हिन्दी समझते हैं, उसी से किसी तरह काम चल रहा था। असीमानन्दजी ने थोड़ी बहुत गुजराती भाषा सीख ली है।

यहाँ के लोगों में बहुत ही सरल भक्ति विश्वास दिखाई पड़ा। एक महिला दो महीनों से स्वप्न में निरन्तर माँ का दर्शन पा रही है तथा माँ की अभयवाणी भी सुन रही थी। वह एक बहुत ही अपूर्व घटना है। माँ को तथा हम लोगों में से बहुतों को स्वप्न में देखा है, ऐसा कहा। हमें देखकर पहचान सकी। चन्दौद से माँ के गले में दर्द शुरू हुआ था, इस बात को भी उन्होंने बताया और माँ कब आयेंगी यह भी बताया था। माँ को पाकर यह महिला उन्हें छोड़ना नहीं चाहती थी। दिन भर माँ के पास बैठी रही।

शाम को असीमानन्द स्वामीजी, माँ तथा हम लोगों को सरस्वती नदी के उस पार गाँधी आश्रम के पास अपने एक भक्त के मकान पर ले गये। लौटते समय संन्यासियों का आश्रम देख लिया गया। यहाँ बहुत से संन्यासियों के रहने का प्रबन्ध है। तीन-चार बड़े-बड़े दालान हैं। इन सबको देखकर हम लोग धर्मशाला में लौट आये। यहाँ के एक वैद्यजी माँ को लाने के लिये चन्दौद गये थे। बहुत लोग रात के 10 बजे तक बैठे रहे, बाद में माँ के सबको विश्राम करने की बात कहने पर सब चले गये। दो-तीन आदमी रात को धर्मशाला में ही रह गये।

कार्तिक 7, रविवार– माँ तड़के उठ गई। शची दादा आज कलकत्ता जायेंगे। माँ के साथ एकान्त में कुछ बातें की। शाम को ढाका के हरिदास साधु तथा उनके साथी एक और साधु आकर हाजिर हुये। वे सबको लेकर कीर्तन करने लगे। रात के करीब 12 बजे सब लोग सोये।

कार्तिक 9, सोमवार– शाम को कुछ गुजराती सज्जन माँ की उपदेश-वाणी सुनने के लिये आये। पहले कुछ देर तक कीर्तन हुआ, भोलानाथजी आनन्द से नाचने लगे। कीर्तनादि के बाद सब लोग माँ का उपदेश सुनने के लिये बैठ गये। माँ के गले में बहुत दर्द हो रहा था किन्तु उस ओर ध्यान न देकर माँ लगभग एक घण्टे तक लोगों से बातचीत करती रही। सभी लोग आनन्दित हुये।

स्थानीय मनुष्यों की गुजराती भाषा में माँ की उपदेश–वाणी छपाने की व्यवस्था

यहाँ के लोगों ने गुजराती भाषा में माँ की उपदेश-वाणी छपवाने का प्रबन्ध किया है। माँ की सहज सरल उपदेशवाणी यहाँ के लोगों का हृदय भी आकृष्ट कर सकी है। आज शाम को यहाँ के एक श्री अम्मालाल नामक सज्जन के घर की स्त्रियाँ आकर माँ को अपने यहाँ ले गई। अपने बगीचे में उन्होंने माँ तथा हम लोगों को बैठाया। जलपान का भी आयोजन किया। इनकी विशाल अतिथिशाला और गौशाला देखने योग्य है। अपनी अतिथिशाला में रहने के लिये माँ से बहुत अनुरोध किया, परन्तु माँ ने कहा–''हम लोग यहाँ कितने दिन रहेंगे, उसका कुछ भी निश्चय नहीं है। अगर रह गये तो क्या होगा, देखा जायेगा।'' स्त्रियाँ बहुत ही सद्‌भावयुक्त हैं। इनके मन में धर्म के सम्बन्ध में कुछ प्रश्न हैं, इस कारण कल सुबह आकर माँ को अपने यहाँ ले जायेंगे, ऐसा निश्चय हुआ। रात के लगभग 1.30 बजे माँ तथा अन्य लोग सो गये।

गुरु की आवश्यकता

कार्तिक 9, मंगलवार–भोर में गुजराती स्त्रियाँ आकर माँ और मुझे अपने यहाँ ले गई। बहुत दूर तक हम लोग मोटर में गये। एक स्थान पर मोटर खड़ी करके स्त्रियाँ माँ के साथ वार्तालाप करने लगी। गुरु की आवश्यकता है

या नहीं, पूछने पर माँ ने कहा–''जन्म होने के बाद से ही तो गुरु कर रही हो। **माता, पिता, शिक्षक यहाँ तक कि जिससे एक भी विषय सीख सकी हो सब ही तो गुरु हैं।** सभी कामों के लिये एक जरिया चाहिये, कोई भी ज्ञान प्राप्त करना चाहो तो गुरु की आवश्यकता है।'' फिर प्रसंग–वश बोलने लगी– **''कर्म बिना किये कुछ नहीं होगा, कर्म करना चाहिये। अशुद्ध बन्धन काटने के लिये शुद्ध बन्धन में रहना पड़ता है।** जैसे कपड़े में गाँठ लगाई है, उसे खोलने के लिये उसमें ध्यान देकर हाथ से खोलना पड़ेगा। सभी काम ऐसे ही हैं, आदि।''

बातचीत के बाद लगभग 8 बजे हम धर्मशाला लौट आये। दो पारसी महिलायें यहाँ शिक्षण–कार्य कर रही हैं। वे माँ के दर्शन करने के लिये आई हैं। सुना है कि कलकत्ते के डाक्टर महेन्द्र सरकार से उन्होंने पूछा था–''क्या आपने किसी अच्छे महात्मा का दर्शन किया है?'' उत्तर में उन्होंने कहा था– ''मैंने अनेक महात्माओं का दर्शन किया है, परन्तु ढाका की आनन्दमयी माँ को देखकर मुझे बहुत ही आनन्द मिला। मुझे विश्वास है कि वह पूर्ण अवस्था में स्थित हैं।''

उस बात को सुनकर इन दोनों स्त्रियों को माँ के दर्शनों के लिये प्रबल आकांक्षा हुई थी। आज दर्शन पाकर बहुत ही आनन्दित हुई। उनसे बात हो रही थी। एक महिला ने माँ से कहा–''माताजी, मुझे किसी तरह की प्रतीक उपासना अच्छी नहीं लगती। अपने मन को स्थिर करने का उपाय क्या है?'' माँ ने तुरन्त उत्तर दिया–''**बहुत अच्छा, तुम शान्ति से बैठकर अपने श्वास की गति पर ध्यान रखो, और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।** श्वास–प्रश्वास ही तुम्हारा प्रतीक है।'' महिला को सुनकर बहुत ही आनन्द हुआ। और भी कुछ बातचीत होने के बाद वे घूमने के लिये माँ को मोटर में ले गई।

आज यहाँ के बहुत से लोग मिलकर माँ का भोग दे रहे हैं। जो लोग भाषा तक नहीं समझते अथवा थोड़ी बहुत हिन्दी समझते हैं, वैसे स्त्री–पुरुष भी माँ की मूर्ति देखकर ही साक्षात् देवी रूप से मान रहे हैं। सभी लोग कह रहे हैं–''हम लोग माँ का दर्शन कर धन्य हुये।'' दिन के लगभग 12 बजे माँ गाँधी आश्रम और दूसरे स्थानों को देखकर लौट आई। भोग आदि भी हो गया। रास्ते में ही माँ कह आई हैं कि आज ही अहमदाबाद छोड़ देंगी। सभी लोग रहने के लिये अनुरोध कर रहे थे। आज बहुत से बड़े-बड़े

आदमी खबर पाकर माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। आज ही चली जायेंगी सुनकर वे बहुत ही अफसोस करने लगे। वैद्यराज अम्बाशंकर तथा अन्य लोग तरह-तरह से माँ तथा उनके साथियों का आदर-सत्कार कर रहे हैं। इतनी जल्दी चली जा रही हैं, देखकर वे सभी खेद प्रकट करने लगे।

अहमदाबाद से बड़ौदा रवाना

श्रीयुत् कान्तिलाल और रतिलाल दो भाई यहाँ के नामी धनी हैं। वे भी माँ को रखने के लिये बहुत विनती करने लगे। पारसी स्त्रियाँ शाम को आकर, आज ही माँ चली जा रही है-यह सुनकर माँ को रहने के लिये बहुत अनुनय-विनय करने लगी। परन्तु माँ हाथ जोड़कर हँसते हुये सबको समझाकर रात को 9 बजे की गाड़ी से जाने के लिये तैयार हो गईं। हम लोगों ने भी समझाकर कहा-''माँ को खयाल होने से हजार असुविधायें क्यों न हों बात नहीं टलती।'' और भी कहा गया-''माँ कब कहाँ जायेंगी या रहेंगी कुछ भी निश्चय नहीं है। शायद कोई माँ को देखने के लिये मोटर से आये, उसी समय कोई गाड़ी है या नहीं, खबर लेकर कहती-''बाबा, मुझे अभी इसी गाड़ी से स्टेशन ले चलो।' इस तरह चल पड़ती हैं।'' आज भी हमें कह रही थी-''देखना, आज गाड़ी का समय बीत न जाय, आज ही जाना चाहिये।'' इसका अर्थ तो ऊपरी दृष्टि से कुछ भी समझ में नहीं आता। माँ यहाँ केवल 2-3 रोज से आई हुई हैं। रहने के लिये लोगों का इतना सादर अनुरोध टालकर माँ बड़ौदा रवाना हो रही हैं, उधर कहाँ जाकर ठहरेंगी उसकी कोई निश्चयता नहीं है। सबने कहा-''आज रात को न जाकर माँ कल सुबह जाती तो सबको आनन्द होता।'' परन्तु माँ ने हँसकर कहा-''जो होना होगा कुछ हो ही जायेगा नहीं तो स्टेशन पर ही रहा जायेगा। जब बात मुँह से निकल गई तो आज ही जाऊँगी।'' सैकड़ों बाधा-विघ्न माँ के ऐसे खयाल को नहीं रोक सकते। बहुत से लोग रोने लगे। न मालूम कितने वस्त्र और मालायें आदि माँ के चरणों के ऊपर गिरने लगे। गुजराती लोग मिलकर माँ की स्तुति करने लगे। शैलेन बाबू सपरिवार आये हैं।

गाड़ी का समय हो आया परन्तु ताँगे नहीं आये। घर में बैठे सभी लोग माँ की मूर्ति की ओर निहारने लगे। माँ उठ खड़ी हुई, साथ-साथ सभी लोग खड़े हुये। माँ बाहर आकर खड़ी हो गई। शैलेन बाबू अपनी मोटर से माँ,

भोलानाथजी तथा हमारे 2–4 आदमियों को स्टेशन ले चले। बाद में और लोग भी धीरे–धीरे आकर स्टेशन पहुँच गये। आने के दिन यहाँ के सभी अपरिचित थे, इन 3–4 दिनों में माँ यहाँ के अनेक लोगों का चित्त आकर्षित कर चली जा रही हैं। दल–के–दल आदमी ट्रेन के पास माँ को घेरकर खड़े हो गये। असंख्य व्यक्ति माँ के मुख की वाणी सुनने तथा उनका मुख देखने के लिये उत्सुक हैं। इन लोगों ने फूल की मालाओं से माँ को प्राय: ढाँक दिया। हम लोग माला खोलकर सबके गले में डालने लगे। असीमानन्दजी यहाँ रह गये। इसी ढंग से अहमदाबाद की लीला समाप्त कर लीलामयी माँ बड़ौदा के लिये रवाना हो गई। माँ को पुन: अहमदाबाद आने के लिये भक्त लोग बार–बार अनुरोध करने लगे। यह स्थान बिल्कुल अपरिचित है और इनकी भाषा भी हम नहीं समझते हैं, तथापि माँ की कृपा से इस स्थान पर हम लोग जो हार्दिक सेवा–यत्न पा सके हैं वह बहुत दिनों तक याद रहेंगे। माँ के 2–4 उपदेश पाकर ये लोग अपने को धन्य मान रहे हैं। माँ अगर कुछ दिन बड़ौदा में रह गई तो इनमें से कुछ लोग वहाँ जायेंगे ऐसा कहने लगे।

हम लोग रात के 9 बजे बड़ौदा रवाना हुये। कहाँ ठहरेंगे कुछ भी ठिकाना नहीं था। धर्मशाला में रहने की सुविधा नहीं है, पिछली बार देखा गया है। बड़ौदा 3–4 घण्टे का रास्ता है। वैद्यराज का लड़का बलदेव हमारे साथ आया है। रात के लगभग 12 बजे हम बड़ौदा पहुँचे। आश्चर्य की बात यह है कि एक भद्र पुरुष ने पहले से ही आकर हमारे लिये एक अच्छी धर्मशाला में रहने का प्रबन्ध कर दिया है। वहाँ पहुँचने पर देखा साधुओं के रहने के लिये बहुत बड़ा कमरा है। इसका नाम चिमनलाल माणिकलाल धर्मशाला है। बातचीत करते हुये 1 बज गया। नानाजी और नानीजी हमारे साथ ही आये हैं।

माँ का पूर्व वृत्तान्त

कार्तिक 10, बुधवार– रात को माँ की बचपन की घटना सुनी। माँ उस समय बहुत छोटी थी। 4–5 साल की होंगी। गाँव में कवि–गान सुन आकर बगीचे के पेड़ के नीचे स्थिर भाव से बैठकर माँ गाना गाने लगी। परन्तु उच्चारण भी ठीक नहीं हो रहा था। लोग पूछने लगे–"तेरी आँख में आँसू

क्यों हैं?'' बार-बार इस प्रकार के प्रश्न पूछे जाने पर माँ ने हँसकर सबको भुलावा दिया। माँ के पिताजी ने बहुतों से कहा था-''उसका उस समय जो एक अपूर्व भाव देखा था वह आज भी हृदय में अंकित है।'' उसके बाद हमारे पूछने पर माँ पहले की और भी घटनायें कहने लगी-कैसे शुद्ध भाव से सभी काम-काज करती थी या हो जाते थे। जब भोग देना आरम्भ हुआ तब अपने हाथ से पानी लाना, मसाला पीसना सब कुछ करती थी। और भी कहा-''जहाँ तक सम्भव हुआ शुद्ध भाव से ही भोग आदि दिया जाता था।'' शाहबाग आने पर ही भोग देना आरम्भ हुआ। उस प्रसंग में कहा-''एक दिन खाने पर बैठकर देखती हूँ कि भोजन नहीं हो रहा है। शरीर तो अच्छी तरह आसन जमाये बैठ गया। उसके बाद चीजों के ऊपर जप होने लगा।'' मैंने पूछा-''क्या जप हुआ?'' माँ ने उत्तर दिया-''जो मंत्र भीतर चलता था उसी मंत्र से भोग का निवेदन हो गया।

माँ का गंडूष का खेल

''फिर बाजितपुर में एक दूसरा ही तमाशा शुरू हो गया। खाने के पहले पाँच कौर अन्न रख दिया जाता था, फिर 5 बार मुँह में थोड़ा-थोड़ा देकर भोजन आरम्भ होता था। वह कब जानती हो? 6 दिन उपवास और एक दिन रात को बैठे रहने के अनन्तर आरम्भ हुआ।'' मैंने कहा-''गण्डूष लेने के रूप में क्रियादि हो गई होगी। अच्छा, इन सब क्रियाओं के होते समय मन्त्रादि उच्चारित नहीं होता था?'' माँ ने कहा-''हाँ, मन्त्रादि भी सब हो जाता था। कुछ दिन इसी ढंग से चला। निवेदन भी उसी भाव से कुछ दिन होता रहा। उसके बाद उस तरह निवेदन आदि नहीं किया जा सकता था। शरीर गिर जाता था। उस समय भोलानाथजी के कहने से वह भोग का निवेदन कर दिया करते थे। भोग का चावल एक-एक करके बीन लिया जाता था। विशेष पूजा के समय लकड़ी आदि में भी कभी-कभी गोबर-जल छिड़क दिया जाता था। पूजा आदि के काम जहाँ तक सम्भव था शुद्ध रूप से ही किया जाता था।''

कार्तिक 11, बृहस्पतिवार- आज तीसरे पहर माँ को लेकर हम शहर में घूमने निकले। गायकवाड़ के महल के चारों ओर घूम आये। घूमने निकलते समय धर्मशाला के दूसरी ओर एक स्थान पर मकान के दरवाजे के सामने

एक मोटर खड़ी देखकर माँ ने हँसकर कहा–''उस मोटर के मालिक से जाकर कहो कि अपनी मोटर में मुझे जरा घुमा दे न? कहने से अवश्य ही मुझे ले जायेंगे।'' वह मकान या मोटर किसकी है, हमें कुछ भी नहीं मालूम था। माँ की बात सुनकर मैं हँसती हुई बोली–''केवल तुम ही कर सकती हो। तुम्हारे लिए असाध्य कुछ नहीं है।'' शाम को एक लड़का माँ से भेंट करने आया। सुना है कि वह लड़का उस सामने के मकान का है। हमारी इस धर्मशाला के मालिक का ही वह मकान है। वह लड़का मालिक का भानजा है। माँ हँसकर बोली–''खुकुनी, तीसरे पहर इसी की मोटर की बात मैंने कही थी। और अब देखती हूँ कि वह खुद ही आकर हाजिर हुआ है।''

आज दो–चार आदमी माँ को देखने आये। बर्तन मलने के लिये एक कहारिन रखी गई है। उसने माँ को देखकर मुझसे कहा–''वह स्त्री कौन है?'' मैंने कहा–''माताजी''। उसने कहा–''मुख की ज्योति देखने से ही मालूम होता है।'' गुजराती और हिन्दी मिलाकर वह बातें कह रही थी। इस बात के लिखने का तात्पर्य यह है कि माँ के मुखमण्डल की असाधारणता मामूली आदमी की दृष्टि को भी आकर्षित कर लेती थी।

कार्तिक 12, शुक्रवार– सुबह धर्मशाला के मालिक तथा उनके परिवार के कुछ लोग आये। हमारा विशेष आदर–यत्न करने के लिये धर्मशाला के मैंनेजर को कह गये। इस धर्मशाला में 3 दिन रहने का नियम है। माँ तीन दिन के बाद कहीं जायेंगी या नहीं समझ में नहीं आता था, खैर धर्मशाला तो छोड़नी ही होगी। परन्तु आज यथासमय मालिक ने आकर माँ का दर्शन किया और कहा–''साधु–महात्माओं के रहने के लिये कोई नियम का बन्धन नहीं है। माँ जितने दिन चाहें यहाँ रह सकती हैं।'' माँ हँसकर बोली–''देखा न, भगवान स्वयं ही सब प्रबन्ध कर देते हैं, मालिकों को ठीक समय पर आकर हमारे रहने की व्यवस्था करने के लिये कौन बुला लाया था?''

रूक्मिणी बाई ने आकर माँ से भेंट की। इन्होंने पिछली बार बड़ौदा होकर जाते समय माँ से भेंट की थी। आज दो–चार गुजराती सज्जनों तथा महिलाओं को लेकर माँ से भेंट करने आई।

पूर्व जन्म है या नहीं

एक सज्जन ने माँ से पूछा–''पूर्व जन्म है या नहीं? कोई कहता 'है'

और कोई, 'नहीं'।'' माँ ने कहा-''है, परन्तु **जिन्हें पूर्व जन्म और परजन्म का संस्कार है उन्हीं का जन्मांतर होता है। जिन्हें नहीं है उनका नहीं होता।** जो जिस स्तर में खड़ा है उसके मन में वैसा ही भाव जागता है, वह वैसी ही बात बोलता है।''

सज्जन ने कहा-''तब तो मुसलमान या ईसाई होना अच्छा है। क्योंकि उन्हें जन्मान्तर का संस्कार नहीं है-इस कारण उनका जन्मांतर भी नहीं होगा और हम हिन्दुओं को कितने जन्म आवागमन करना होगा उसका निर्णय करना भी असाध्य है।'' माँ ने कहा-''तुम इच्छा करते ही क्या केवल इसी भाव को लेकर संस्कार-मुक्त हो सकते हो? तुम्हें तो जन्मगत संस्कार है। दूसरी ओर देखो, केवल हिन्दू या मुसलमान होने से ही नहीं होता। अनेक मुसलमानों में हिन्दू संस्कार रहता है। फिर अनेक हिन्दुओं में भी मुसलमान संस्कार दिखाई पड़ता है।''

यदि ब्रह्म अज्ञेय हैं तो उन्हें कैसे जाना जाता है

सज्जन ने बात-बात में फिर पूछा-''दर्शनादि होता है या नहीं और होने से वह ठीक है या नहीं?'' माँ ने उत्तर दिया-''अवश्य ही होता है, जैसे तुम्हें देखती हूँ ठीक उसी तरह होता है।'' सज्जन ने कहा-''शास्त्र कहते हैं कि ब्रह्म अज्ञेय और अव्यक्त है। यदि वैसा ही हुआ तो उन्हें कैसे जाना जा सकता है?'' माँ ने कहा-''तुमने एक फूल देखा है। मैंने पूछा-'बाबा, फूल कैसा है।' तुमने उत्तर दिया-'बहुत सुन्दर' फूल 'ऐसा है' और 'वैसा है' आदि। परन्तु फूल का यथार्थ स्वरूप प्रकट नहीं हुआ। अपने मन का भाव तुम एकदम ठीक-ठीक प्रकट कहाँ कर सके? तुम भाषा से किसी वस्तु के स्वरूप का परिचय नहीं दे सकते। केवल आभास मात्र ही व्यक्त कर सकते हो, क्योंकि वाणी वहाँ कुंठित होकर लौट आती है। हर एक सांसारिक वस्तु व्यक्त और अव्यक्त दोनों ही है। उसी प्रकार ब्रह्म व्यक्त और अव्यक्त, ज्ञेय और अज्ञेय एक साथ दोनों है। सभी भाव उनमें है।'' इतना कहकर हँसने लगी। सज्जन ने भी खुश होकर कहा-''ठीक ही कहा है माँ।''

फिर बात उठी-''कलियुग में योगी पुरुष हैं या नहीं।'' माँ ने कहा-''हैं।'' उन्होंने कहा-''लोग कहते हैं कलियुग बड़ा पाप का युग है। इस युग में साधु पुरुष नहीं रह सकते।'' माँ ने कहा-''सभी मनुष्यों में अल्पधिक 3

गुण हैं। तो मात्रा के भेद से कोई-कोई गुण कहीं-कहीं प्रबल हो उठता है, केवल इतना ही भेद है। कलियुग में भी सत्ययुग का आभास है क्योंकि सत्ययुग आ रहा है।'' इस बात से भी उन सज्जन को विशेष आनन्द हुआ और उन्होंने माँ की बात मान ली। वह उच्च शिक्षित थे। रात के लगभग 12 बजे सब लोग सो गये। माँ और हम कुछ लोग बरामदे में ही सोये। माँ का शरीर अच्छा नहीं था परन्तु सदा ही प्रफुल्ल भाव से बातचीत करती थी।

कार्तिक 13, शनिवार– माँ सुबह के करीब 8 बजे उठी हैं। नानीजी ने थोड़ा जलपान करा दिया। इसके बाद नरेश बाबू एकान्त में बातें करने लगे। पहले ही कहा जा चुका है कि अहमदाबाद के वैद्यराज के पुत्र बलदेवजी हमारे साथ आये हैं। इनके भीतर भी बहुत शुद्ध संस्कार हैं। आज भी सुबह धर्मशाला के मालिक आये थे। माँ को तीसरे पहर कहीं घूमने ले जायेंगे, कहा। लगभग एक बजे भोग हुआ। भोग के बाद थोड़ा विश्राम लिया गया। शाम को माँ कीर्तन करने लगी–''**रघपुति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम। जयति शिवा-शिव जानकी राम, जय रघुनन्दन जय सिया राम।**''उनका मधुर स्वर सभी का हृदय आकर्षित करने लगा, सभी लोग साथ-साथ गाने लगे। धर्मशाला के छोटे-छोटे बच्चों ने भी इस कीर्तन में योगदान किया। आनन्द से नरेश दादा नाचते हुये नाम-कीर्तन करने लगे। नरेश दादा सदा ही नाचते हुये नाम-कीर्तन करते थे। हम लोग कहते थे-''आपका यह पागलपन देखने से कोई आपको प्रोफेसर नहीं कहेगा।'' शची बाबू की भी यही अवस्था थी। वह जवाब देते थे-''कलकत्ता में जब अपने काम में रहते हैं, तब तो यह भाव नहीं रहता। यहाँ माँ के सम्पर्क से न जाने कैसा पागलपन सवार हो जाता है।'' वास्तव में ही उनका बर्ताव देखने से मालूम होता था कि न जाने कैसे नशे में वे मस्त हुये हैं। माँ के साथ आहार-विहार के अनियम से इन व्यक्तियों के बीमार पड़ने की आशंका ही अधिक थी परन्तु वे अच्छी तरह हैं। सभी के चेहरे पर सात्विक भाव की उज्ज्वलता तथा विशुद्ध परिवर्तन खिल उठे हैं।

रात के आठ बजे सेठजी की मोटर से हम लोग रोकरनाथ (मारुति) के मन्दिर में जाकर कीर्तनादि सुनकर रात के करीब 10 बजे लौट आये। सब लोग माँ और भोलानाथजी को लेकर खाने बैठ गये। महान् आनन्द से

फरवी–च्यूड़ा, केला आदि से जलपान कर रात के लगभग 12 बजे सब लोग सो गये।

कार्तिक 14, रविवार– माँ आज भी साढ़े 7 बजे उठी। एक बंगाली भद्र पुरुष जो यहाँ रेलवे के बड़े अफसर हैं, सपरिवार माँ के दर्शन करने के लिये आये। माँ उठ बैठकर उन लोगों से बातचीत करने लगी। आज श्रीमती रुक्मिणी बाई ने भोजन का सारा सामान भेज दिया। लगभग एक बजे भोग हुआ। भोग के बाद माँ थोड़ा विश्राम करने के लिये लेट गई। आज सेठजी के साथ नवद्वीप के एक बाबाजी आये थे। शाम को बाबाजी कीर्तन करने के लिये आयेंगे, कह गये। रात के करीब 9 बजे आये। नानाजी बहुत उस्ताद गवैये हैं। उनके गाना शुरू करते ही बाबाजी ने अपना सितार उनके हाथ में दिया। नानाजी ने कई गाने गाये, उसके बाद बाबाजी ने भी दो–तीन गाने गाये। रात के लगभग 12 बजे हम लोग सो गये।

कार्तिक 15, सोमवार– माँ लगभग 7 बजे उठी। मुँह धुलाकर मैंने थोड़ा फल खिला दिया। कल रात में अहमदाबाद से वैद्यराज फिर आये। सुबह माँ के पास बैठकर अनेक बातें करने लगे। दिन के लगभग 12 बजे भोग हुआ। मिस्टर चटर्जी (उपरोक्त रेलवे अफसर) की पत्नी आज सुबह से ही आकर माँ के पास बैठी हैं। उनके पति इस प्रकार के साधुओं और धर्म सम्बन्धी बातों पर विश्वास नहीं रखते, पर यह माँ के लिये व्याकुल हैं। घर के काम–धन्धे समाप्त कर कब माँ के पास आयेंगी इसी चिन्ता से गले का हार कहीं भूल आई हैं। माँ के पास आने की उतावली में मन व्याकुल था। इन सब बातों से मालूम होता है कि माँ कितने अल्प समय में लोगों का मन आकर्षित कर सकती हैं। आज तीसरे पहर माँ की फोटो खींची गई।

चलना–फिरना कम होते–होते माँ की ऐसी स्थिति हो गई है कि थोड़ा चलने से ही पैर लड़खड़ा जाते हैं। चलने का भाव ही नहीं था। आज फोटो खींचने के लिये माँ को निचली मंजिल में ले जाया गया। फोटो खींच लेने के बाद मैंने कहा–''जब नीचे उतर आई हो तो चलो, जरा टहल आवें।'' माँ ने कहा–''चलो।'' रास्ते में निकलते ही दीक्षितजी वकील के साथ भेंट हो गई। वह माँ के दर्शन को आ रहे थे, कल भी आये थे। माँ को निकलते देखकर वह भी हमारे साथ हो लिये।

हम लोग थोड़ा चलकर पारसियों की अग्नि-रक्षा के मन्दिर के पास आये। माँ ने कहा-''चलो, भीतर जायें।'' चारों ओर बहुत सुन्दर बगीचा लगा हुआ था। मन्दिर के पास जाते ही एक बड़ी ही सुन्दर गन्ध हमारी नाकों में आने लगी। कई पारसियों के साथ भेंट हुई। उनके मुँह से सुना है कि उनके अग्नि-मन्दिर में दूसरे धर्म के अनुयायियों को घुसने नहीं दिया जाता, यहाँ तक की बाहर से भी देखने नहीं दिया जाता है। अग्नि में दोनों समय आहुति दी जाती है। निदान, हम चारों ओर घूम-फिरकर चले आये।

आज कृष्णा चतुर्दशी है और कल ही दीवाली और काली-पूजा होगी। यहाँ दीवाली पर खूब उत्सव होता है, सुना। आज देखा कि मन्दिर के द्वार, सीढ़ी तथा भीतर के दरवाजों में चावल का चूर्ण घोलकर चित्रित किया जा रहा है। अग्नि-मन्दिर भी नहीं छूटा। बंगाल के चावल-चूर्ण घोलकर 'आल्पना' (चित्रकारी) की बात याद आई। वहाँ पूजा के दिन घर-घर में हर दरवाजे पर लक्ष्मी देवी के चरण-चिह्न अंकित किये जाते हैं। यहाँ भी देखती हूँ कि वैसे ही मंगल-चिह्न हैं। अनेक मंगल-कार्यों में आल्पना देने की प्रथा बंगाल में प्रचलित है। इस दूर देश में भी बंगाल की ऐसी चिराचरित प्रथा देखकर हमें आनन्द हुआ।

आज घर-घर में दीपक जल रहे हैं। तरह-तरह की आतिश-बाजियों के शब्द से कान बहरा हो जाना चाहते थे। मन्दिर से लौटने के रास्ते में चटर्जीजी के मकान पर होकर हम लोग धर्मशाला वापस आये। माँ कह रही थी-''चलने लगते ही पैर लड़खड़ा जाते हैं। चलने का भाव ही नहीं है।'' माँ की इस अवस्था से हम लोग बहुत ही चिन्तित हो गए। चेहरा बहुत ही दुबला और पीला हो गया है।

आज संन्ध्या के समय बातचीत के सिलसिले में मैंने कहा-''तुम्हें तो बिना भोजन किये कई दिनों तक रहते देखा है। पानी तक नहीं पीया तथापि शरीर अच्छा ही था। अब इतना यत्न करने की चेष्टा होती है तो भी शरीर न जाने कैसा होता जा रहा है।'' माँ ने कहा-''उस समय तो एक दूसरी ही अवस्था थी। बचपन में जो भाव था आजकल फिर वही भाव है। उस समय भी माँ बुला-बुलाकर खिला देती थी, खाने का ध्यान किसी समय भी नहीं था। उसके बाद मध्यभाव तुम लोगों ने देखा ही है। बिना भोजन किये भी शरीर अच्छा था, उसका कारण यही है कि प्रकाश और स्वरूप आदि तथा

कर्मयोगी, भक्तियोगी और ज्ञानयोगी की अनुभूतियों के प्रवाह इस शरीर के भीतर से प्रकट हुये थे। हठयोग, राजयोग आदि हर एक ही शरीर में प्रकट हुआ था। परन्तु इस समय शिशु का भाव चल रहा है। उन दिनों शरीर सेवा से चलता था और अब भी सेवा से चल रहा है। उस समय धीरे-धीरे शरीर बढ रहा था, अब फिर दूसरी ओर चल रहा है।'' मैंने कहा-''सिद्धेश्वरी की बीमारी के बाद से ही तुम्हारा स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। उसके बाद अनेक सेवा-यत्न से भी वह ठीक नहीं हुआ।'' माँ ने कहा-''मैं तो किसी को बाधा नहीं देती। परन्तु यह तो स्वभाव ही है। अपने भाव में बाधा पाने पर ही फिर वैसा रूप प्रकट हुआ था।'' इस ढंग की बातचीत कुछ देर तक चली। रात के 10 बजे सब लोग लेट गये।

कार्तिक 16, मंगलवार- आज विशेष कोई घटना नहीं है। आगामी कल कलकत्ता और दिल्ली के कुछ भक्त चले जायेंगे। मौसीजी और निशि बाबू कुम्भ मेला तक हरिद्वार में रहेंगे। उन्हें भी हरिद्वार भेज दिया गया। कल भोर में 6 बजे की गाड़ी से सब लोग चल देंगे। माँ ने कहा-''देखो, 'डाकोर' जाओगे न? तो गाड़ी किस समय है देखो।'' 'डाकोर' में द्वारकानाथ का बड़ा मन्दिर है। और भी अनेक मन्दिरादि हैं। खबर लेने से पता लगा कि कल सुबह 7 बजे यहाँ से 'डाकोर' जाने की गाड़ी मिलेगी। वह गाड़ी 10 बजे 'डाकोर' पहुँचेगी। उसी गाड़ी से जाना निश्चित हुआ। कल वहाँ द्वारकानाथ के मन्दिर में अन्नकूट होगा।

डाकोर में श्रीद्वारकानाथ के मन्दिर में अन्नकूट

कार्तिक 17, बुधवार- सुबह 7 बजे की गाड़ी से हम लोग 'डाकोर' चले। साथ में रूक्मिणी बाई और उनकी कन्या विजया भी चली। इन लोगों ने भोलानाथजी से दीक्षा ली है। स्टेशन पहुँचकर देखा कि सेठ पूंजीलाल भी डाकोर जा रहे हैं। माँ को देखकर वह बहुत आनन्दित हुए। हम लोग बेला 10 बजे डाकोर पहुँचकर 'वल्लभ भवन' नामक धर्मशाला में रुक गये। हम लोग उसी समय 'रणछोड़-रायजी' (विष्णु-मन्दिर) का दर्शन करने चले। वहाँ गोमती (बहुत बड़ा तालाब) में स्नान कर रणछोड़-रायजी का दर्शन करके धर्मशाला लौट आये।

आज अन्नकूट का महोत्सव है। इस कारण आज प्रतिपदा तिथि पर विभिन्न स्थानों से यहाँ अनेक लोग आये हैं। हम लोगों के धर्मशाला लौट

आते ही रणछोड़-रायजी का बालभोग तरकारी दूध आदि आया। सभी ने प्रसाद खाया। दिन के दो बजे से अन्नकूट (यहाँ अन्नलूट कहते हैं) आरम्भ होगा। इस अपरिचित स्थान पर आकर रुक्मिणी बाई और सेठजी के प्रबन्ध से हमें कोई असुविधा नहीं हुई। माँ की कृपा से सभी जगह सुव्यवस्था हो जाती है। दिन के 2 बजे हम लोग अन्नकूट दर्शन करने के लिये मन्दिर में पहुँचे। पर वहाँ जाकर देखते हैं कि बहुत अधिक भीड़ है और फाटक बन्द कर दिया गया है। थोड़ी देर में दरवाजा खुलते ही हम लोग भीतर गये। सभी लोगों के आग्रह से माँ के लिये थोड़ा सुविधाजनक स्थान कर दिया गया।

एक बहुत बड़े कमरे में देवता के सामने भोग रखा गया है। भोग हो जाने के बाद पर्दा उठा दिया गया। दरवाजा खुलते ही जनसंघ ने भीम वेग से धावित होकर सारा प्रसाद लूट लिया। यह एक भयंकर काण्ड था। थोड़ी ही देर में सारा प्रसाद समाप्त हो गया। एक-एक आदमी की भयंकर मूर्ति देखकर डर लगता था। हम लोग सब देखकर लौट आये। माँ का चेहरा देखकर ही अनेक लोगों ने माँ की चरण-धूल ली। शाम को सेठजी आरती दिखाने के लिये ले चले। सुबह माँ सबके अनुरोध से बहुत जल्दी भीड़ में घुस गई थी और मूर्ति के दर्शन कर तुरन्त बाहर आई थी। इस समय भी सबके कहने से माँ भीड़ में लोगों को धकेलकर मूर्ति का थोड़ा दर्शन करके ही बाहर खुली जगह में आ बैठी। एक महिला ने थोड़ी देर के लिये अहमदाबाद में माँ को देखा था। उन्होंने मन्दिर में ही माँ को एक साड़ी पहना दी। जनश्रुति है कि द्वारकानाथ यहीं विराज रहे हैं। द्वारका में जो इस समय मूर्ति है वह बाद की बनाई हुई है। प्राचीन मूर्ति यही है। इनका नाम है रणछोड़-रायजी। हम लोग शाम को धर्मशाला लौट आये। सेठजी ने एक ब्राह्मण के द्वारा दुपहर को रसोई पकवाई थी। इस समय तीन रुपया मूल्य की एक प्रसादी थाली आई। वह अनेक प्रकार की तरकारियों और मिठाइयों से भरी थी। सब लोगों ने महान् आनन्द से प्रसाद पाया। मैंने अपना भोजन बना लिया था। माँ का ऐसा ही सुन्दर और नियमित प्रबन्ध है। रात को धर्मशाला के बरामदे में सब लोग माँ को लेकर सोये।

कार्तिक 18, बृहस्पतिवार– आज उठते ही कुछ लोग देवता का स्पर्श करने के लिये मन्दिर में चले गये। माँ लेटी रही। मैं भी माँ के साथ ही रह गई। दिन के 12 बजे खा-पीकर एक बजे की गाड़ी से हम लोग बड़ौदा

रवाना हुये। बड़ौदा स्टेशन पहुँचने पर दिखाई पड़ा कि श्री हरीराम जोशी आये हैं। वह महीने भर की छुट्टी लेकर माँ के साथ रहने के लिये आये हैं। हम लोग यहाँ के साधु बालाजी के साथ 'डाकोर' से आये।

बड़ौदा आगमन और श्रीकृष्ण मन्दिर दर्शन

बालाजी ने माँ को बड़ौदा के श्रीकृष्ण मन्दिर में ले जाने का प्रस्ताव किया। हम लोग एक बस में सवार होकर धर्मशाला में आये। वहाँ सामान रखकर उसी समय श्रीकृष्ण मन्दिर में पहुँचे। वहाँ आज अनेक प्रकार के भोग आदि से अन्नकूट मनाया गया। जाकर देखा अभी तक सब सजाया हुआ है। स्टेशन पर गीता-प्रचारक विद्यानन्द स्वामी से भेंट हुई। इस देश में इनका बहुत नाम है। श्रीकृष्ण मन्दिर में माँ को बैठाया गया। नरसिंह स्वामी इस मन्दिर के कर्त्ता हैं। उनसे भी भेंट हुई। बालाजी ने माँ से कहा-''माँ आपका चेहरा देखने से ही मालूम होता है कि आप पूर्ण तृप्त हो गई हैं। तथापि यहाँ सबके साथ थोड़ा प्रसाद पा जायें तो हम लोग अपने को कृतार्थ मानेंगे।'' माँ अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी हँसकर बोली-''बाबा का दर्शन पा गई, बाबा के मुख से सत् कथा सुनी यही तो प्रसाद है।'' उन्होंने कहा-''व्यावहारिक भाव से मैंने आपसे ये बात कही।'' हम लोग धर्मशाला लौट चले। उन लोगों ने हमारे साथ कुछ प्रसाद दे दिया। माँ ने कहा-''चलो, नर्मदा तीर, कर्णाली या व्यास जायें।'' व्यास में एक बड़ी धर्मशाला है। 'बड़खा' गाँव के निकट साधु-महात्माओं के रहने का स्थान है। गृहस्थों के रहने के लिये भी भिन्न-भिन्न स्थान हैं कि सुना 'कर्णाली' में और मन्दिर हैं। वहाँ रहने के लिये यहाँ के वकील दीक्षितजी ने एक चिट्ठी दी है। कर्णाली में रहने के लिये चन्दौद से खाने का सारा सामान लाना होता है और व्यास में रहना हो तो भी चन्दौद या बड़खा से सब चीज वस्तुयें मँगानी पड़ती हैं। माँ ने कहा-''जहाँ जो चीज मिले वहाँ उसी से ही काम चलाना होगा। हर समय ही शहर में रहा जायेगा, सुविधा मिल जायेगी ऐसी बात नहीं है।'' आज रात को ही यहाँ से 4 मील दूर 'गया गेट' स्टेशन जाकर कल सुबह 7 बजे की गाड़ी से चन्दौद जाना स्थिर हुआ। चन्दौद से नाव पर कर्णाली जाना होता है। अहमदाबाद के एक भद्र पुरुष के कल माँ को भोग देने का विशेष आग्रह प्रकट करने से कल भोजन के बाद दिन के 11 बजे जाने की बात तय हुई।

एक मुसलमान के नमाज पढ़ते समय माँ के दर्शन की बात

आज हरीराम के मुख से दो विशेष खबरें मिली। सुना, एक सज्जन देहरादून में माँ के पास आया करते थे। यहाँ तक कि वह माँ के साथ हरिद्वार आने के लिये भी इच्छुक थे। उस मुसलमान सज्जन ने माँ को लिखा है कि वह रोजा के समय 40 दिन तक माँ के साथ रहना चाहते हैं और उन्होंने कहा है कि अल्लाह का नाम लेने बैठते ही वह देखते हैं कि माँ सिर पर ताज पहने एक हाथ में त्रिशूल और दूसरे में डमरू लिये उनकी ओर एकटक देख रही हैं। वह भी अल्लाह का नाम लेते समय माँ की ओर देखते रहते हैं। उन्होंने और भी कहा है–“मैं आँख खोलकर संपूर्ण जागृत अवस्था में देखता हूँ कि नमाज पढ़ते समय माँ मेरे सामने आकर बैठी हैं। माँ जब चलती–फिरती रहती हैं तब मैं नहीं देखता। जब वह एक जगह बैठी रहती हैं तभी मैं देखता हूँ......इत्यादि।”

दूसरी घटना यह है कि हम लोग माँ के साथ अलमोड़ा में एक जर्मन चित्रकार के घर गये थे, वहाँ एक फ्रांसिसी महिला से भेंट हुई थी। ज्योतिष दादा के शरीरान्त के दिन माँ को जब समाधि की अवस्था हुई उस समय वह महिला आई थी और बहुत देर तक आँखें मूँदकर माँ के पास ही बैठी थी। हमें मालूम था कि वह स्पेन देश की हैं परन्तु अब सुना है कि वह फ्रांसिसी हैं। एक अंग्रेज के साथ उनका विवाह हुआ था। वह अपने पति को भारत लाई थी परन्तु उनके पति यहाँ न रह सकने के कारण इंग्लैण्ड चले गये और ये यहीं रह गई हैं। साधु–सन्तों से प्राय: भेंट करती हैं। इन्होंने **श्रीअरविन्द** और दाक्षिणात्य के **रमण महाराज** से भी भेंट की थी।

एक फ्रांसिसी महिला का माँ के शरीर पर हीरे का जेवर धारण तथा उनमें ज्योति के स्फुरण का दर्शन

इस महिला ने माँ के साथ भेंट करने देहरादून जाकर हरीराम से भेंट की थी। माँ उससे पहले ही देहरादून छोड़कर चली आई थी। इनका नाम है पेंतरोज। इन्होंने हरीराम से जो कहा था, उसका आशय इस प्रकार है, “मैंने अनेक साधु देखे हैं परन्तु माँ का ऐसा पूर्ण भाव और कहीं नहीं देखा। मैं जब माँ की समाधि–स्थिति के समय अलमोड़ा में उनके पास बैठी थी, उस समय देखा था मानो माँ का शरीर एक विशाल रूप बन गया। मैंने सोचा कि

शायद मेरे देखने का भ्रम है, इतना सोचकर आँखें खोलने पर भी माँ का वैसा ही विशाल रूप दिखाई देने लगा। कुछ देर के बाद माँ के शरीर से सूर्य किरण की तरह एक ज्योति निकलने लगी और वह शान्त होकर मेरे शरीर में प्रविष्ट हो गई। मैं काँपने लगी। बाद में माँ ने मेरी ओर देखा, मैंने भी उनकी ओर ताका और तभी मैं धीरे-धीरे शान्त हो गई। बहुत आदमियों की भीड़ थी। इसके बाद मेरी अवस्था का परिवर्तन हो गया। मैं समझती हूँ कि माँ ही 'पराविद्या' हैं। मैंने अपने भीतर **दुर्गा, काली, तारा** आदि की मूर्तियाँ देखी हैं और मैं तारा की उपासिका हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि माँ ही तारा हैं। वह मुझे जो आदेश देंगी मैं उसी का पालन करूँगी।''

हरीराम ने उन्हें देहरादून के मौन घर में बैठने दिया था। उस समय भी उन्हें एक बहुत सुन्दर अनुभूति हुई थी। उन्होंने कहा था-''माँ को वहाँ भी देखा विराट मूर्ति में हाथ फैलाकर सबको पुकारते हुए, मानो कह रही हैं, तुम लोग बाहर क्यों घूम रहे हो। मेरे भीतर आ जाओ। अन्तर राज्य में प्रवेश करो।''

इन्होंने जब हरीराम से सुना कि कमला नेहरू माँ के पास आया करती थी तथा माँ के प्रति बहुत श्रद्धा का भाव रखती थी, उस समय इन्होंने कहा था-''मैंने अपने एक फ्रांसिसी मित्र से सुना है कि वे कमला नेहरू के मित्र थे। कमला नेहरू विलायत में मेरे मित्र से कहती थी, एक माताजी को वह सर्वदा आँखों के सामने देखती थी। नेहरू ने उस मित्र से माताजी की अनेक बातें कही थी और वह आकर मुझे सब बातें बतलाया करते थे। मैं उस समय सोचती थी कि वह माताजी कौन हैं। एक बार दर्शन मिल जाता तो मुझे प्रसन्नता होती। अब समझ रही हूँ कि आनन्दमयी माँ ही वह माताजी हैं। मैं अपने उस फ्रांसिसी मित्र को यह बात लिख भेजूंगी।''

इन्होंने हरीराम के मार्फत माँ को जो चिट्ठी लिखी है उसमें भी माँ के प्रति उनके मन का कैसा सुन्दर भाव है, कैसी धारणा है, वह प्रकट होती है। यह माँ के साथ कुछ दिन रहना चाहती हैं और आश्रम में रहकर माँ की आज्ञा के अनुसार काम करने में राजी हैं। और लिखा है-माँ समुद्र-किनारे या पहाड़ पर जहाँ रहना चाहती हैं यह उसका प्रबन्ध करने में राजी हैं, इत्यादि।

एक दूसरी बंगाली महिला की माँ को श्रीकृष्ण रूप में देखने की प्रार्थना से दर्शन प्राप्ति

एक और घटना इस प्रकार है–आज हम लोग श्रीकृष्ण मन्दिर लौट आये। थोड़ी देर बाद ही रास्ते की ओर देखकर माँ ने कहा–"चटर्जी बाबा घूमने जा रहे हैं। कह दो, मेरी माँ (उनकी पत्नी) को खबर दें कि हम लोग आये हैं।" यह भद्र पुरुष माँ के पास ज्यादा नहीं आते थे, परन्तु उनकी पत्नी की माँ के प्रति अनुरक्ति बहुत प्रबल हो उठी है। परिचय केवल 2–3 दिन का ही था इसलिये हम लोग आनाकानी करने लगे कि कैसे बुलायें। इतने में माँ ने दुमंजिल से खुद ही पुकार कर कहा–"बाबा, मेरी माँ को जरा खबर दे दो कि हम लोग आये हैं।" उन्होंने कहा–"वह शायद अभी आ जायेगी।"

इनका डेरा पास ही था। थोड़ी देर में ही चटर्जी साहब की पत्नी आकर उपस्थित हुई। माँ कल ही चली जायेंगी यह सुनकर वह बच्चों की तरह रोने लगी। अन्त में कहा–"मैं कुछ समझ न सकी, मन में बार–बार संशय आ रहा है और फिर सब बहता जा रहा है। माँ को ठीक पहचान नहीं सकती। डाकोर जाने के पहले दिन रात को ही–माँ का श्रीकृष्ण रूप में दर्शन पाऊँ, विशेष रूप से ऐसी ही प्रार्थना की थी। माँ के साथ मेरी बहुत बातें हुई थी। उसके दूसरे दिन माँ डाकोर चली गई। मेरा मन इतना उदास हो गया और मुझे बहुत ही आश्चर्य लगा।"

मैं सहज में किसी के सामने सिर नहीं झुकाती। जिसे मैं अच्छा नहीं समझती उसे किसी के कहने से अच्छा नहीं कहती। जो हो, ऐसी अवस्था हो गई कि उस दिन रसोई करते हुये मैं बार–बार भूल करने लगी। तरकारी में जल के बदले तेल डालना और तेल से हाथ धोना, इसी तरह की भूल करने लगी। हृदय के भीतर माँ के विरह की ज्वाला धधकने लगी। मेरी हालत देखकर पति ने मुझे अनेक तरह से समझाया परन्तु उससे क्या होगा? सिर दर्द का बहाना कर मैं एक कमरे में जाकर पड़ी रही।

चलते–चलते मन में नाम–जप करती जाती थी, एकाएक दिखाई पड़ा कि श्रीकृष्ण माँ के सिर पर एक पैर रखकर दूसरा पैर किस पर रखेंगे मानो यही विचार रहे हैं। उस मूर्ति को देखकर ही मुझे माँ की बात याद आई। समझ गई कि यह माँ का ही खेल है। थोड़ी ही देर में वह मूर्ति गायब हो

गई। उस समय मैं प्रार्थना करने लगी–''माँ और एक बार दिखाओ।'' परन्तु फिर नहीं देख सकी, देखने की तीव्र आकांक्षा बनी ही रही। मन में कहा–''माँ, फिर एक बार दिखाओ।'' परन्तु फिर न देख सकी। यह सब क्या हुआ?

मैंने पूछा–''क्या आपने यह सब स्वप्न में देखा था?'' उन्होंने कहा–''स्वप्न में देखा होता तो मैं इस धर्मशाला में न आती। प्रत्यक्ष सत्य है।''

पति की सम्मति न रहने से इन्होंने दीक्षा नहीं ली। थोड़े समय के लिये ही माँ से भेंट हुई थी। भद्रभाव से आकर माँ से बातचीत करके चली जाया करती थी। आज बच्चों की तरह बहुत देर तक रोयी। इन्हें बाल–बच्चे नहीं हैं। माँ ने कहा–''मैं ही तुम्हारे बाल–बच्चे हूँ। इसी कारण मेरे लिये रो रही हो।''

कर्णाली में श्री मनोहर मुरलीधर के मन्दिर में आगमन

कार्तिक 19, शुक्रवार– आज खा–पीकर हम लोग 10 बजे धर्मशाला से चल पड़े। गया गेट स्टेशन बड़ौदा से 4 मील दूर है, वहाँ आकर ट्रेन पकड़ी। 11 बजे की गाड़ी से बीच में एक बार गाड़ी बदलकर वेला लगभग 3 बजे हम चन्दौद पहुँचे। उसी समय नर्मदा के किनारे जाकर नाव से सन्ध्या के पूर्व ही कर्णाली में मनोहर मुरलीधर के मन्दिर में पहुँचे। मन्दिर के पुजारी गोपालराव बालकृष्णजी के निकट दीक्षितजी ने चिट्ठी दी थी। वह स्थान चन्दौद से 2 मील दूर नर्मदा के तीर पर अवस्थित है। बहुत ही सुन्दर स्थान, चारों ओर धर्मशाला, बीच में मुरलीधर का मन्दिर था। यहाँ विशेष कोई चीज नहीं मिलती। चन्दौद से सब लाना पड़ता है। रात में खिचड़ी पकायी गयी। माँ को थोड़ी तरकारी सिझाकर दी गई। रात के 12 बजे हम लोग सो गये।

कार्तिक 20, शनिवार– कल ही सुना गया था कि यहाँ 3–4 दिन रहने का नियम है। पुजारी जी ने बहुत आनन्द से हमें ठहराया। माँ से उन्होंने कहा–''आप यहाँ रहिये। थोड़ी देर में मैं सारा इन्तजाम कर देता हूँ।'' ऊपर और नीचे के 2–3 कमरों में हम लोग रुक गये। इस समय माँ के साथ भोलानाथजी, अखण्डानन्द स्वामी, हरीराम, नानाजी, नानीजी, मैं, रूमादेवी और नरेश बाबू थे।

कार्तिक 21, रविवार– यह स्थान बहुत ही एकान्त है। नर्मदा के तीर पर ही यह मन्दिर है, और भी एक धर्मशाला है। आसपास में और भी कई गृहस्थ हैं। इधर मन्दिर या धर्मशाला से ही बर्तन वगैरह मिल जाते हैं। पैसा देने पर नौकर–चाकरों का भी प्रबन्ध हो जाता है। कोई विशेष असुविधा नहीं है। एक दुकान है जिसमें चावल, दाल आदि मिल जाते हैं। तरकारी आदि सब चन्दौद से ही मँगाने पड़ते हैं। आज चन्दौद से विष्णुदास मन्दिर के ब्रह्मचारी लोग माँ से भेंट करने आये थे। माँ उनके मन्दिर में क्यों नहीं गई? इस कारण महन्त ने खेद प्रकट करते हुय कहला भेजा है। माँ का शरीर बहुत ही दुर्बल है–इसी शरीर से चलती–फिरती हैं। रात को बातों–बात में माँ कभी हँसी और कभी रोई। अवस्था देखकर सभी डर गये थे।

कार्तिक 22, सोमवार– करीब 9 बजे माँ उठी। भाव बहुत ही गम्भीर था, वातावरण शान्त। दिन के 11 बजे भोजन के बाद माँ कुछ विश्राम करने के लिये लेट गई। कल रात को माँ के पेट की हालत ठीक नहीं थी, बहुत देर तक चुपचाप बैठी थी। पिछली रात को सो गई थी। वेला लगभग 2 बजे अहमदाबाद के एक ब्रह्मचारी माँ से भेंट करने आये। माँ के चरणों में फूल–फल रखकर प्रणाम किया। पूछने पर पता चला कि ये करीब 30 साल से नर्मदा किनारे पर आश्रम बनाकर रह रहे हैं। इनका नाम रमनलालजी है। माँ को अपने आश्रम में ले जाने के लिये बहुत आग्रह प्रकट करने लगे। माँ को देखते ही बोल उठे–"वाह, अब तो देखता हूँ कि साक्षात् नर्मदा हैं। माँ, अनेक पुण्यों के फलस्वरूप आपका दर्शन मिला। तीर्थस्थान भी साधु–महात्माओं का दर्शन माँगते हैं। इसलिये प्रार्थना है कि आप नर्मदा किनारे–किनारे टहलकर सभी के ऊपर थोड़ी–थोड़ी कृपा दृष्टि डालियेगा। मेरा आश्रम तो इधर ही है।" लगभग 6 बजे उठकर माँ पास वाली छोटी छत पर जा बैठी। उपस्थित भक्तों से थोड़ी–बहुत बातचीत करने लगी। सन्ध्या से पहले थोड़ी तरकारी रिझाकर मैंने माँ को खिला दी।

कार्तिक 23, मंगलवार– दिन के लगभग 10 बजे माँ को उठाकर मुँह धुला दिया। बाद में थोड़ी रोटी–तरकारी खिला दी। माँ बैठी हुई नरेश बाबू के साथ वार्तालाप करने लगी।

रमना आश्रम का पूर्व वृत्तान्त

तीसरे पहर सब लोग बैठे थे, बात-बात में 'रमना' आश्रम की बात चली। भोलानाथजी ने बाजितपुर में एक बार कहा था-"मुझे एक मकान बनाने की इच्छा है।" माँ तुरन्त बोल उठी-"मकान तो तुम्हारा है ही। ढाका के अमुक व्यक्ति का मकान ही तो तुम्हारा मकान है।" इतना कहकर उस मकान के मालिक का नाम भी बता दिया। बाद में जब 'रमना' का आश्रम बना तब महन्तों के कागज-पत्रों में दिखाई पड़ा ठीक उसी नाम का एक व्यक्ति किसी समय इस (रमना आश्रम) स्थान का मालिक था।

माँ के छोटे कमरे के दक्षिण की ओर काली-पूजा के घट के लिये एक नारियल का वृक्ष रोपा गया था। माँ के आदेश से ही वैसा किया गया था। आज उस बात के प्रसंग में माँ ने कहा-"उसके भी साथ कुछ और घटनायें हैं जो भूपति बाबा जानते हैं। उनसे पूछ लेना।" मन्दिर बनाना शुरू करने पर नींव खोदते समय बहुत नीचे कुछ समाधि-स्थान मिले थे। मन्दिर के नीचे पास-पास तीन समाधियाँ थी और एक समाधि मन्दिर के बाहर एक कोने में भी थी। शिव के नीचे एक समाधि बैठी हुई अवस्था में थी। स्वामी अखण्डानन्दजी ने उस स्थान से एकाएक एक अस्थि निकालकर माँ से कहा था-"माँ, इसे मैं साथ रखूँ?" माँ ने कहा-"इसे साथ लेकर गृहस्थ के मकान में नहीं जाया जायेगा। इसलिये इसे साथ रखना उचित नहीं होगा।" इस प्रसंग पर माँ कह रही हैं-"और भी बहुत लोग थे-परन्तु बाबा ने ही जाकर उस हड्डी को उठाया था-फिर उसी के ऊपर शिव-प्रतिष्ठा बाबा ने ही कर दी।" इतना कहकर हँसने लगी। कौन जाने इसका क्या अर्थ है?

रमना आश्रम के छोटे कमरे में माँ एक दिन कम्बल पर लेटी हुई थी। दूसरी ओर भोलानाथजी पलंग पर 'नेट' की मसहरी लगाकर आराम से सो रहे थे। माँ की बीमारी अच्छी होने पर भोलानाथजी की बीमारी के समय जब माँ रमना आश्रम में आई थी, उस समय की बात है। माँ एकाएक आधी रात में उठकर भोलानाथजी से बोली-"तुम उठकर मेरे बिछौने पर सोओ, मैं तुम्हारे बिछौने पर सोऊँगी।" भोलानाथजी ने वैसा ही किया अर्थात् मैं उत्तर की ओर सो गई और भोलानाथजी को दक्षिण की ओर सुलाया। इसके बाद से माँ उसी ओर सोती थी। अब माँ का चित्र उसी स्थान पर रखा गया है। माँ ने उस बिछौने पर 3 दिन सोकर सारा बिछौना उठाकर रखने को कहा

और जमीन पर कम्बल का बिछौना लगाया। तब से दोनों का कम्बल का बिछौना हुआ। इसके बाद माँ बैठी थी और एक कंकाल मूर्ति देखी थी और उसकी समाधि उस उत्तर की ओर ही देखी थी। बाद में प्रकट किया था कि वह ज्योतिष दादा का ही एक जन्म का शरीर था। माँ का बिछौना जिस स्थान पर था वहीं ज्योतिष दादा के पूर्व जन्म की समाधि देखी थी।

रमणिकाश्रम दर्शन और उसका इतिहास

आज शाम को लगभग 3 बजे कल के ब्रह्मचारी रमनलालजी माँ को अपने आश्रम में लेने हमारे यहाँ आये, साथ में एक महिला भी आई। वह महिला इन्हीं की शिष्या हैं। इन्होंने ही गुरु का आश्रम बना दिया है। इनके माता-पिता गुरु के साथ उन्हीं के आश्रम में रहते हैं। आश्रम का नाम ''रमणिकाश्रम'' है। यह बम्बई की रहने वाली हैं, विवाह के सात-आठ दिन बाद ही पति को छोड़कर इस ओर आई हैं। इसीलिये रमनलालजी कहते हैं कि यह मीरा की अवतार हैं।

वह, माँ और हम लोगों को अपने आश्रम में ले गये। बहुत सुन्दर आश्रम, ठीक नर्मदा के ऊपर है; नीचे की मंजिल में सब लोग रहते हैं। ऊपर की मंजिल में 2 कमरे और छत है। उन्हें साधु-सन्तों के रहने के लिये रखा है। इधर के सभी मन्दिरों और आश्रमों में साधु-सन्तों के रहने का स्थान रखा जाता है। विद्यानन्द स्वामी (गीता-प्रचारक) का एक गीता मन्दिर भी यहाँ है-उसी के साथ लगा यह रमणिकाश्रम है। हम लोग जिस मन्दिर में हैं, उसके चारों ओर की धर्मशालाओं में अनेक लोग हैं। जो लोग नर्मदा निवास करने आते हैं वे एक रुपया मासिक देने पर ही जीवन भर वहाँ रह सकते हैं। चन्दौद में टीकमजी के मन्दिर में तथा विष्णुदासजी के मन्दिर (जहाँ हम लोग थे) में अनेक लोगों के रहने का बन्दोबस्त है। यह सुना गया है कि इस अंचल में नर्मदा और रणछोड़दासजी का बड़ा माहात्म्य है। हम लोग कुछ देर तक आश्रम में रहकर चले आये। ब्रह्मचारीजी ने अपने बैठने का स्थान आदि सब कुछ घूम-घूमकर दिखाया। माँ के आने से उन्हें बड़ा आनन्द मिला।

भाईजी के संन्यास का विवरण

माँ लौट आकर छोटी छत पर बैठ गई। उपस्थित लोगों से बातचीत करने लगी। आज तीसरे पहर से ही बात-बात में मानसरोवर में ज्योतिष दादा

के संन्यास की बात चली। माँ मुझसे कह रही थी–''जब देहरादून में मेरा वह हार शारदा को दिया गया था उसे तो तुम जानती ही हो। उसके बाद जब 'सोलन' से एक दिन के लिये मैं देहरादून गई थी, तब बात–की–बात में ज्योतिष की रिष्टि की बात चली। मैंने ज्योतिष से कहा था–''हार तो तू अपने गले में रख सकता है।' 'रखना, छोड़ना मत', ऐसी बात नहीं हुई, 'रख सकता है' ऐसी बात हुई। इस बात पर ज्योतिष ने वह हार अपने गले में डाल लिया।

''मेरे मानसरोवर पहुँचने के पहले ही उसने सरोवर में नहाकर वस्त्रादि फैंक दिया था। उसके बाद नंगे–बदन भोलानाथ को प्रणाम कर उसने बहुत कुछ कहा था। भोलानाथ के कहने से उसने फिर गरम कपड़े पहने थे। मेरे पहुँचने पर वह फिर से मेरे साथ मानसरोवर तक गया और सब बातें बतलाकर उसने हार जनेऊ आदि मेरे पैरों में रख दिये। उस समय उसे याद नहीं था कि वह हार मैंने उसे गले में पहनने को कहा था। देखो, कैसा संयोग था! उस समय सभी विस्मृत हो गया। मैं उस बात को याद कर एकदम चुप रह गई। जो होने को होगा वही होकर रहेगा। इसीलिये शायद पहले 'रख सकता है' इस तरह की हल्की बात मुँह से निकल गई थी।''

''जो हो, ज्योतिष कहने लगा, 'मुझे ऐसा हो रहा है।' देखा, एक उदास भाव उस समय के लिये उसके सारे शरीर में प्रकट होने लगा। मेरे पैरों पर गिरकर बोला–'आप पिताजी से कहिये, मैं एक ओर कहीं चला जाऊँ। आप मुझे विदा दीजिये।' दिखाई पड़ा कि उसमें उदास और अवधूत भाव का एक प्रकाश है। और भी सुना, उसने स्नान के बाद अवधूत के स्वरूप में शास्त्र–ग्रन्थों और साधु–सन्तों से जो संन्यास–मंत्र तथा महावाक्य ज्ञात थे उनमें से चुन–चुनकर स्वयं ही संन्यास–मंत्र का जप किया था। मैं जानती थी, ये उसे सब ज्ञात हैं। अनेक स्थानों पर उसका भाव देखकर संन्यासी लोग उसे संन्यासी बना लेना चाहते थे। मैंने देखा, वह प्रकाश बहुत ही सुन्दर और तीव्र है। उस अच्छे भाव को देखा, परन्तु मैंने कहा–'तू इस समय मेरे साथ चल', इस बात को सुनकर वह चुप हो गया।''

''ज्योतिष साथ–साथ चला और बोला–'मेरा एक निवेदन है। कहिये तो मैं अभी से मौन हो जाऊँ।' मैंने कहा–'नहीं, रास्ते के बीच में मौन हो जाना ठीक न होगा।' इतना कहकर चलते–चलते मैंने बताया–'आज जब तुझे ऐसे

संन्यास हुआ है और इस पर्वत पर मौन हो जाने की इच्छा जगी है तो तेरा नाम ''मौनानन्द पर्वत'' हुआ।''

यह शरीर मानसरोवर की ओर इधर-उधर देखते हुये टहलता जा रहा था। मन्त्रादि जिस तरह निकलते हैं, इस शरीर के मुख से उसी तरह लगातार संन्यास-मंत्र तथा और भी क्या-क्या निकलता जाने लगा। अपने आप ही यह सब हो रहा था। यह शरीर अपने भाव में लवलीन होकर टहलने लगा। इसके साथ दिखाई पड़ा कि ज्योतिष पीछे-पीछे आ रहा है। वह दौड़ता हुआ आकर मेरे पैरों पर गिरने लगा और पीछे से 'पा गया हूँ, मेरा कैसा सौभाग्य है' कहकर संन्यास-मंत्र स्वयं ही ले लिया और मुझसे कहा-'आपके मुँह से जो निकला है वही तो संन्यास-मंत्र है।' इसके बाद हम लोग तम्बू के पास चले आये। भोलानाथ को जब मैंने यह वृत्तान्त बताया तो भोलानाथ ने कहा-'मैं वहाँ जाकर ज्योतिष को खोजने लगा तो देखा, वह कहीं नहीं है। उस समय भी तुम लोग नहीं आये थे। मैंने खोजते-खोजते मानसरोवर की ओर जाकर देखा, ज्योतिष नहाकर सारे वस्त्र जल में बहा करके बिल्कुल अवधूत स्वरूप में खड़ा है। मुझे देखकर मेरे पैरों में गिर पड़ा। गले का जनेऊ भी खोल डाला था। सब छोड़कर मुझसे कहा-'आज्ञा दीजिये, मैं एक ओर चला जाऊँ।' तब मैंने कहा-'तुम्हारी माँ और स्वामीजी अभी नहीं आये हैं। तुम यह क्या कर रहे हो? कपड़े पहनकर मेरे साथ चलो।' उसके बाद मेरे साथ-साथ वह तम्बू तक आ रहा था। उस समय तुम लोग आ पहुँचे।''

इसके बाद माँ ने एक दिन ज्योतिष दादा से राक्षस ताल की ओर जाते हुये बात-बात में कहा था-''तूने जो यह काम कर डाला उसका आभास तक मुझे पहले नहीं बताया या पूछा तक नहीं।'' उत्तर में ज्योतिष दादा ने छलछलाती आँखों से कहा था-''आपने मेरी कुछ भी स्वतंत्र इच्छा कहाँ रखी है? और हम लोग जो आपके चरणों के आश्रय में आये हैं उसका उद्देश्य ही तो स्वरूप-स्थिति लाभ करना है। कोई उस ओर जा सके तो आपकी प्रसन्नता की ही बात है। इसमें फिर पूछना ही क्या है? हम लोग उसे नहीं समझते यही खेद का विषय है। मैं तो जानता हूँ कि मैं जो कुछ करता हूँ आप ही करा रही हैं। इसलिये जिज्ञासा का प्रयोजन ही कहाँ रह गया? इसके अतिरिक्त मेरे मन में ऐसे एक भाव का वेग आ गया था कि मैं अपने को सम्हाले नहीं रख सकता था।''

माँ बोली–"मैंने देखा, ठीक बात ही बोल रहा है, पूर्ण वैराग्य की अवस्था है। विद्वत्संन्यास का भाव है। अवधूत भाव प्रकट हुआ है। यही तो यथार्थ संन्यास है। बाहरी अनुष्ठान का उसे प्रयोजन ही नहीं हुआ। इसीलिये उसकी मृत्यु के बाद मेरे मुख से समाधि देने की बात निकली थी। तो भी मैंने उस समय रामकृष्ण मिशन के जो दो साधु वहाँ थे उनसे पूछा था–'देखो, इतनी घटनायें हो गई हैं। अब तुम लोग विधि सम्मत कार्य करो। मैं तो विधि कुछ नहीं बतलाऊँगी।' उनमें से एक ने सब सुनकर कहा–'इनका संन्यास ग्रहण ठीक ही हुआ है। इन्हें समाधि दे दी जाये।'

"लौटने के रास्ते में ज्योतिष ने पूछा था–'मैंने पहले स्वयं ही जिसे लिया था और आपके मुँह से जो पाया है उनका जप कैसे करूँगा? सब तो एक ही है समझा, फिर भी पूछता हूँ।' संयोग से संन्यासी लोग भी वहाँ उपस्थित थे। मैंने कहा–'जिसे स्वयं लिया है उसे तो रखना ही होगा और जो मुझसे पाया है, उसे भी सर्वदा स्मरण रखना पड़ेगा।' इस कारण ही शायद मृत्यु के पहले उन शब्दों का उच्चारण कर उसने बता दिया कि मुझे याद है।"

इस हार को माँ के चिह्न रूप से मैंने अपने पास ही रखा है।

कार्तिक 24, बुधवार– माँ सुबह लगभग 9 बजे उठकर बैठ गई। मुँह धोने के लिये कहने पर बोली–"और भी बाद में।" चुपचाप बहुत देर तक बैठी रही। करीब 10 बजे हाथ-मुँह धुलाकर कुछ खिला दिया गया। माँ को आजकल प्राय: कुछ भी हजम नहीं होता है। पेट में कुछ दर्द हो जाता है। बहुत थोड़ा ही खाती हैं। वह भी हजम नहीं होता, मैंने ध्यान से देखा है कि माँ के श्वास की गति हर समय बदलती जाती है। उस पर खयाल रखकर ठीक समय पर माँ को खिलाने का प्रबन्ध न करके ही हम लोग माँ के हाजमे को गड़बड़ा देते हैं।

रमणा स्थित काली–मूर्ति के अंग–भंग के प्रसंग में विवृत्ति

आज खाने के बाद माँ देर तक नहीं लेटी और बैठे हुये ही नाना प्रकार की बातचीत करने लगी। रमना आश्रम की काली-मूर्ति के बारे में कहने लगी–"किसी-किसी के मन में ऐसा प्रश्न जगा है, यदि काली का कोई अंग टूट जाय तो क्या किया जायेगा?" उसका उत्तर यह है कि 'मनुष्य के ऐसे अंग हैं जिनके नष्ट हो जाने पर जीवन रह नहीं सकता। मूर्ति का यदि कोई

ऐसा अंग टूट जाय तो दरवाजा बन्द करके दीवार उठा दी जायेगी, पूजा बन्द हो जायेगी। नहीं तो जैसा चल रहा है वैसा ही चलेगा।' जब वहाँ की काली-मूर्ति का हाथ तोड़कर चोर गहना चुरा ले गया तब ज्योतिष दादा ने काशी के पण्डितों से पत्र द्वारा व्यवस्था माँगी थी-इस काली-मूर्ति की पूजा की जा सकती है या नहीं? उन्होंने पण्डितों को सब बातें लिख भेजी थी।

काशी से महामहोपाध्याय अन्नदाचरण तर्क चूड़ामणि महाशय ने उत्तर में लिखा था-''मूर्ति की अंग-हानि होने से उसका जल में विसर्जन कर देना ही साधारण विधि है, परन्तु यह मूर्ति महापुरुष द्वारा प्रतिष्ठित है। शास्त्र में विधान है कि इस अवस्था में महापुरुष की जो इच्छा है वही करना चाहिये।'' माँ ने भी कहा-''तुम्हारे माँ-बाप के हाथ-पैर टूट जाने से क्या तुम उन लोगों को जल में फैंक देते हो?'' माँ के आदेशानुसार ब्राह्मणों के द्वारा काली-मूर्ति का हाथ जुड़वा लिया गया था। इस प्रसंग में और भी एक बात माँ ने कही थी-''काली का दरवाजा खोलने का भार योगेश बाबू के ऊपर है। अनेक लोगों के चित्त में ऐसा प्रश्न उठा है कि उनके अभाव में दरवाजा कौन खोलेगा। उसके उत्तर में कहा गया है कि योगेश बाबू आदि में कोई या आत्मीय-स्वजनों में से कोई यह काम करेगा। उनके लड़के या सुरेन बाबू के लड़के या कोई दूसरा आत्मीय यह काम करेगा।''

रात लगभग 11 बजे माँ लेट गई। हरीराम, नरेश बाबू और हम दो-तीन व्यक्ति बैठे बातें कर रहे थे। एकाएक माँ के पेट का दर्द बढ़ गया। नरेश दादा ने कहा-''माँ, ऐसा क्यों होता है? दर्द को आप हटा दें।'' माँ ने हँसकर कहा-''क्या तुम्हीं लोगों को हटा देती हूँ तो इन्हें क्यों हटाऊँगी? जैसे तुम लोग हो, मेरे ये भी वैसे ही हैं।'' नरेश दादा ने पूछा-''क्या ऐसा कभी हो सकता है? जैसे हम लोग हैं वैसे वे क्यों होंगे?'' माँ ने उत्तर दिया-''सत्य बोल रही हूँ, ये भी तो मेरे ही अंग हैं? हटा कैसे दूँ?'' बहुत देर तक दर्द चलने के बाद घटने लगा। रात में माँ बहुत देर तक स्थिर नहीं रह सकी।

कार्तिक 25, बृहस्पतिवार- आज भी लगभग 9 बजे माँ उठकर बैठीं। भोग हो जाने के बाद भी माँ बैठी ही रही। दो विधवा स्त्रियाँ माँ को देखने आई। सुना है कि यहाँ स्वयम्-ज्योतिः नाम की एक गुजराती माताजी थी। यहाँ उनका आश्रम है। दोनों उन्हीं की शिष्यायें हैं। इनकी गुरु बहनें और एक

दूसरी महिला तथा ये दोनों उसी आश्रम में रहती हैं। एक का नाम है "शिव-ज्योति", यह ही अब गुरु माता की गद्दी पर बैठी हैं। कुछ देर तक माँ के साथ वार्तालाप करके जाते समय माँ को उनके आश्रम में जाने के लिये अनुरोध किया। शाम को 5 बजे आकर माँ को ले जायेंगी, ऐसा निश्चय हुआ। ये लोग प्राय: 19-20 सालों से नर्मदा तीर पर आश्रम-जीवन बिता रही हैं। जाते समय यह भी कह गई कि "आप लोगों को जब जिस चीज की जरूरत हो, हमें कहला भेजें। साधु-महात्माओं की सेवा ही हमारे जीवन का ध्येय है। आश्रम के सभी कुछ आप ही लोगों के हैं"-इत्यादि। माँ से अनुरोध किया-"हम तीनों स्त्रियों को आप साथ ले चलें। हम आपके साथ रहकर आपकी सेवा करेंगी।" गंगारचरण बाबू कलकत्ते से पेंशन हो जाने के बाद नौकरी लेकर बड़ौदा स्टेट में आये हैं। कल हरीराम बाबू वहाँ गये हैं। माँ के दर्शनों के लिये वे लोग उतावले हो रहे हैं। परन्तु इस समय माँ का कहीं जाने का भाव नहीं है।

कई बच्चे तीसरे पहर आकर माँ को स्वयम्-ज्योति: आश्रम में ले गये। आश्रम बहुत सुन्दर है। माँ आश्रम के बरामदे में बहुत देर तक बैठी रही। शाम को हम लोग लौट आये। माँ आकर छोटी छत पर बैठी। चाँदनी फैली है, नर्मदा दिखाई पड़ती है। इधर कुछ मन्दिरों और आश्रमों के सिवाय गृहस्थों की बस्ती नहीं है। कुछ बड़े-बड़े पेड़ हैं, स्थान बहुत ही रमणीक है। इस धर्मशाला में रहने वाले अब तक माँ के पास नहीं आये थे। आज धीरे-धीरे सभी माँ के दर्शनों के लिये आने लगे। स्वयम्-ज्योति: आश्रम से लौटते समय दिखाई पड़ा कि रास्ते में सभी लोग माँ को चारों ओर से प्रणाम करने लगे; और सभी के मुँह में एक ही बात थी-"मनोहर मुरलीधर के मन्दिर में जो एक माताजी आई हुई हैं वह एक देखने योग्य व्यक्ति हैं। ऐसी मूर्ति प्राय: दिखाई नहीं पड़ती।" लोग आ-आकर 'माँ महेश्वरी', 'माँ नर्मदे' कहकर प्रणाम कर रहे हैं।

कार्तिक 26, शुक्रवार- आज बड़ौदा से रुक्मिणी बाई माँ के दर्शन करने के लिये आकर उपस्थित हुई। 3-4 घण्टे रहकर फिर बड़ौदा लौट जाने के लिए बाध्य हुई, विशेष काम था। समय का अभाव था, तिस पर भी माँ को देखने के लिये एक बार दौड़कर आई हैं। आज भी माँ के पेट में थोड़ा-थोड़ा दर्द है, कभी अनुभव करती हैं और कभी नहीं। आज भी दोपहर को ज्यादा

लेटी नहीं थी। लेटने का भाव किसी-किसी समय बहुत ज्यादा रहता है, उन दिनों प्राय: पड़ी ही रहती हैं, फिर कभी लेटने का भाव बिल्कुल घट जाता है, उन दिनों प्राय: बैठी ही रहती हैं। फिर लेटने पर भी 'शरीर ठीक नहीं रहता' इस कारण उठकर बैठ जाती हैं। माँ की कृपा से रूमादेवी के भीतर तरह-तरह के भाव जग रहे हैं और नाना मूर्तियों का दर्शन हो रहा है।

अपनी आध्यात्मिक अवस्था का अच्छी तरह विचार करना चाहिये

एक बात पर मैंने ध्यान दिया था, कोई शायद माँ से अपनी आध्यात्मिक अवस्था की बात कह रहे हैं-''माँ मुझे ऐसी प्रेरणायें आती हैं और ऐसी अवस्थायें होती हैं।'' माँ सहानुभूति के साथ सब बातें सुनती हैं, उनका भाव तो नष्ट नहीं करती बल्कि उत्साह बढ़ाती हैं। थोड़े दिनों के बाद धीरे-धीरे उन्हें समझा देती हैं कि और भी अधिक उन्नत अवस्थायें हैं। अपनी इच्छा-शक्ति ही भगवान् की प्रेरणा की तरह बहुधा प्रतीत होती है। जड़ता की अवस्था ही प्राय: समाधि रूप से मालूम होती है। उसे माँ धीरे-धीरे शान्ति से समझा देती हैं। आज भी वैसी ही बातें चली। माँ बोली-''अपनी अवस्था को अच्छी तरह विचारकर देखना चाहिये कि उस अवस्था में भगवान् की शुद्ध प्रेरणा का आना सम्भव है या नहीं। क्या यह यथार्थ भगवत्-प्रेरणा है या मन की एक धारणामात्र? इन बातों को अच्छी तरह विचारकर देखना होता है। फिर तरह-तरह की विभूतियाँ आकर रास्ता रोक दें तो उन्हें निर्मम भाव से दूर हटा देना उचित है। उससे उन्नति के मार्ग पर अग्रसर होने का रास्ता साफ होता है।''

श्रीराधाकृष्ण की लीला, अद्वैत का खेल

सन्ध्या के पहले माँ को छत पर लाकर बैठाया गया। प्राय: दिन-रात ही माँ ने बिछौने पर बैठे हुये ही बिता दी। पहले थोड़ा पथ्य खिला दिया गया। रात अधिक होने पर माँ फिर बिछौने पर जाकर लेट गई। श्रीरामचन्द्र का एक गीत गाया। थोड़ी देर बाद ही श्रीकृष्ण की बात चली। नरेश दादा मधुर भाव की बात बोल रहे थे। माँ ने झट कहा-''मधुर भाव है स्वयम्-प्रकाश, वह तो एक विशेष बात है। समाधि के विशेष स्तर पर न पहुँचने से इसे समझने का अधिकार कहाँ है? शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य आदि भाव की चरम अवस्था या पूर्ण परिणति ही मधुर भाव है। समाधि में इन्द्रियों

की पूर्णाहुति होती है। इस कारण उस समय साधक में अतीन्द्रिय मधुर भाव का प्रकाश होना स्वाभाविक है। इसीलिये राधाकृष्ण लीलाविलास करते हैं। ये उनके एक ओर की बात है। व्यावहारिक जगत के मनुष्यों ने इसमें अपना भाव आरोप कर, न जाने इसे कैसा बना डाला है। इस कारण किसी–किसी के मुँह से सुनाई पड़ता है कि राधाकृष्ण का भाव अच्छा नहीं लगता। इसीलिये सुना है कि वृन्दावन लीला में ऋषि लोग गोपियाँ बन गये थे।'' यह बात सुनकर नरेश दादा ने कहा–''माँ, एक स्थान पर मैंने पढ़ा है कि राम जिस समय वन में थे उस समय 60 हजार ऋषि राम के साथ पति भाव से मिलना चाहते थे। उसमें बाधा देकर राम ने कहा–'यह कैसे होगा? मैं तो एक–पत्नीक हूँ। केवल सीता ही मेरी पत्नी है।' तब ऋषि लोग बोले–'हम लोग तो आपके आगमन की प्रतीक्षा में बैठे हुये हैं। आपके साथ मधुर भाव की लीला करेंगे।' तब रामचन्द्र ने कहा–'आप लोग और कुछ काल तक प्रतीक्षा करें। द्वापर युग में कृष्ण अवतार के समय आपकी मनोकामना सिद्ध होगी। उस समय आप लोग गोपियाँ बनकर जन्म लें और मधुर रस का आस्वादन करें।'

माया का अर्थ है–मैं आया यानी जब तक मैं हूँ

उसके बाद सांख्य और वेदान्त के प्रसंग में वेदान्त की माया की बात चली। नरेश दादा ने कहा–''वेदान्त में स्पष्ट रूप से माया समझाई नहीं जा सकी। माया को अनादि और अनिवर्चनीय कहकर समाप्त कर दिया है।'' उस समय माँ चुपचाप लेटी थी। एकाएक हँसते हुये अपने ही मन में कहने लगी– ''माया माने 'मैं आया'। आशय यह है कि जब तक 'मैं हूँ' का भाव है तब तक ही माया है। उस 'मैं' को छोड़ देने पर ही अद्वैतानुभूति होती है। उस समय माया नहीं रहती।*

इन सब बातों के होते–होते रात का एक बज गया। उसके बाद सब लोग सो गये।

माँ को इन दिनों 2–1 टमाटर, कुछ तरकारी आदि सिझाकर थोड़ा–सा

---

* अहंकारग्रहान्मुक्तः स्वरूपमुपपद्यते।
चन्द्रवत् विमलः पूर्णः सदानन्दः स्वयम्प्रभः।।
–विवेकचूड़ामणि (शंकराचार्य)

भात या रोटी खिलायी जाती है। सन्ध्या के बाद थोड़ा दूध-साबूदाना दिया जाता है। शिशु की तरह खिलाया जाता है।

कार्तिक 27, शनिवार– माँ लगभग साढ़े 8 बजे उठ बैठी। बहुत देर तक चुपचाप स्थिर भाव से बैठी रही। यहाँ तक की उस अवस्था में मुख धुलाने की बात कहने का भी मुझे साहस नहीं हो रहा था। प्रायः आधे घण्टे के बाद माँ के चेहरे का कुछ परिवर्तन देखकर मैंने कहा–''माँ, मुँह धोने चलो।'' माँ ने कहा–''और थोड़ा बाद में।'' कुछ क्षण के अनन्तर लगभग 10 बजे माँ का मुँह धुला दिया और तरकारी का रसा और थोड़ा भात खिला दिया। मसालेदार तरकारी माँ खा नहीं सकती। परिमाण भी बहुत थोड़ा है। खाने के बाद माँ फिर अपने छोटे बिछौने पर जा बैठी। हम सब एक-एक करके जाकर प्रसाद ले आये।

'श्री शंकराचार्य के अद्वैतवाद की मीमांसा से हृदय को तृप्ति नहीं मिलती'– बात में माँ का प्रतिवाद

माँ आज दोपहर में नरेश दादा के साथ वार्तालाप कर रही थी। हाथ का काम समाप्त कर मैं भी वहाँ जा बैठी। नरेश दादा कह रहे थे–''चैतन्यदेव का अचिन्त्य भेदाभेद का भाव ही रसास्वादन के लिये श्रेष्ठ भाव है। यह मनुष्य के चिन्ता राज्य की अन्तिम बात है। इससे सुन्दर भाव मनुष्यों ने और कहीं पाया है, ऐसा प्रतीत नहीं होता। शंकराचार्य के अद्वैत वाद की मीमांसा से हृदय तृप्त नहीं होता।'' माँ दूसरी ओर मुँह किये चुपचाप लेटी हुई थी। नरेश दादा मुझसे ही बातें कर रहे थे। शंकराचार्य के मतवाद के विरूद्ध मन्तव्य सुनकर ही माँ करवट बदलकर बोली–''जिसको जिस विषय का ज्ञान नहीं है वह उस विषय को कैसे समझेगा?'' माँ के बोलने का ढंग देखकर नरेश दादा उछल पड़े और महान् आनन्द से कहने लगे–''माँ, शंकराचार्य की बात से आपको ऐसा भाव क्यों हुआ? इससे मालूम होता है कि शंकराचार्य के प्रति आपका विशेष पक्षपात है। आपकी इस बात से मैंने एक विशेष अर्थ समझ लिया जो अभी प्रकट नहीं करूँगा।'' माँ इसे सुनकर अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी हँसने लगी। मैंने कहा–''क्यों भई, कल जब श्रीकृष्ण की बात हो रही थी, उस समय भी माँ चुपचाप लेटी थी। फिर एकाएक घूमकर कृष्ण का यथार्थ तत्व समझा दिया था, इससे मालूम होता है कि कृष्ण के प्रति भी माँ

के पक्षपात की कमी नहीं है।'' नरेश दादा उस समय और भी उत्साहित होकर बोल उठे–''वाह यह तो और भी समझा, मेरी माँ के सम्बन्ध में एक विशेष विषय का समाधान हो गया। वह बात समय पर प्रकट करूँगा।''

तीसरे पहर माँ को मैंने थोड़ा फल का रस पिला दिया। धूप ढल जाते ही माँ को छोटी छत पर ले जाकर बैठाया। बातचीत होने लगी। सन्ध्या के पहले आज भी माँ को दूध–साबूदाना खिला दिया गया। किसी तरह खाना नहीं चाहती थी। पेट का दर्द हर समय नहीं रहता, बीच–बीच में अनुभूत होता है। फिर कभी शायद उस पर खयाल ही नहीं रहता। इसी तरह चल रहा था। माँ छत पर ही बैठी हुई हैं। भोलानाथजी भी वहाँ आकर बैठ गये। अखण्डानन्द स्वामीजी, नरेश दादा, नानीजी और मैं माँ के पास कोई खड़ा और कोई बैठा है। बीच–बीच में एक–आध बात चलती है और फिर बन्द हो जाती है।

बाजितपुर के पागल हरकुमार की बात चली। माँ कहने लगी–''मैं तो उससे बात नहीं करती थी। घूँघट निकाल लेती थी। परन्तु वह सदा ही खयाल रखता था कि मुझे किस चीज की आवश्यकता है। मुझे कोई असुविधा न हो, इसके प्रति उसका विशेष ध्यान था। पड़ौसी लोग उसका यह भाव शायद पसन्द नहीं करते थे, परन्तु वह उसकी परवाह नहीं करता था। मेरी सभी सांसारिक असुविधाओं को वह अपनी शक्ति भर दूर करने की चेष्टा करता था। वह मुझसे बोलता था परन्तु मैं नहीं बोलती थी। इसलिये वह बहुत दुःख प्रकट करता था। अन्त में भोलानाथ की आज्ञा से मैं उसके साथ बात करने लगी थी। (नरेश दादा के प्रति) हरकुमार का चेहरा बहुत कुछ तुम्हारे साथ मिलता है।''

थोड़ी देर बाद भोलानाथजी खाने के लिये उठ गये। नीचे रसोई होती थी और एक कमरे में भोलानाथजी, अखण्डानन्द स्वामी और नानाजी रहते थे। माँ ऊपर की कोठरी में रहती थी। मैं, नानीजी और नरेश दादा माँ के पास ही सोते थे। सब लोग खाने–पीने के लिये चले गये। मैं माँ के पास बैठकर पँखा झल रही थी। नरेश दादा खा–पीकर ऊपर आये। नानीजी भी आई। उस समय रात के 9 बज गये थे। तब तक भी माँ छत पर बैठी हुई थी। चाँदनी रात थी–चारों ओर सन्नाटा छाया था। नर्मदा के तीर पर ही यह मन्दिर था। नदी भी दिखाई पड़ती थी, हम लोग माँ के साथ बातें कर रहे थे। अनेक बातें ही चल रही थी।

नरेश दादा माँ के पास ही हर समय रहते हैं। विशेष प्रयोजन के बिना वह प्रायः नहीं उठते। न जाने कितनी ही बातें माँ से कहते हैं। बहुत ही सुन्दर भाव! संसार में ऐसा सुन्दर भाव प्रायः दिखाई नहीं पड़ता। माँ भी इनकी बहुत प्रशंसा करती हैं। यह सारदेश्वरी माता के शिष्य हैं, मैमनसिंह के रहने वाले हैं, कलकत्ता में प्रोफेसर हैं। बात-बात में रात अधिक हो गई। माँ उठी, हम लोग भी कमरे में आये। माँ आकर बिछौने पर लेट गई।

कार्तिक 28, रविवार–कल रात को माँ चुपचाप लेटी नहीं थी, लेटे-लेटे गाना गाने लगी–'**हरिनामेर तरी बाँधो भाई; देखो, गगने आर वेला नाई**'– अर्थात् हरिनाम की नौका बाँधो भाई, देखो, आकाश में अब वेला नहीं है। उसके बाद भी स्थिर भाव से सोई नहीं थी। बातचीत बन्द हो गई। हम लोग सो गये। एकाएक जगकर देखा, माँ छत पर जा बैठी हैं। हम लोग सब उठ गये, देखकर माँ फिर आकर लेट गई, किन्तु सारी रात इसी भाव में बिता दी। स्थिर भाव से लेटी न रह सकी। बीच-बीच में ऐसा होता है। फिर कभी ऐसा भी दिखाई पड़ता है कि दिन-रात के अधिकांश समय माँ चादर ओढ़े लेटी हैं। कभी इसकी विपरीत अवस्था दिखाई पड़ती है। कहती 'शरीर शान्त नहीं हो रहा है। स्थिर भाव ही नहीं है।' माँ सुबह भी बहुत देर तक लेटी रहकर लगभग साढ़े 9 बजे उठी। उसके बाद मुँह-हाथ धुलाकर कुछ भोग दिया गया। आज भी दुपहर के बाद माँ को सोने का भाव नहीं दिखाई पड़ा, बैठी हुई नरेश दादा से बातें करने लगी। बाद में मैं भी जाकर सम्मिलित हुई। मैंने कई बार कहा–''माँ, तुम जरा लेट जाओ।'' माँ ने कहा–''सोने का भाव नहीं है।'' इसी तरह दुपहर बीत गया।

स्त्रियों के जनेऊ धारण की बात पहले किस प्रसंग में चली थी उसका विवरण

न जाने किस प्रसंग में स्त्रियों के जनेऊ धारण करने की बात चली थी। माँ आज उसी विषय में नरेश दादा से कहने लगी–''कलकत्ता के कुशारी महाशय के डेरे में एक दिन खुकुनी मुझे साबुन से नहला रही थी, गले के महीन हार को खोलकर साबुन से साफ करके जब उसने उसे मेरे गले में पहना दिया तब वह जनेऊ की तरह गले में लटकने लगा। मैंने अपने खयाल

से उस हार को नापकर कहा–'खुकुनी, तुमने देखा, यह ठीक जनेऊ की ही नाप है।' ठीक–ठीक सामवेद के जनेऊ की नाप–सा प्रतीत हुआ, न छोटा हुआ, न बड़ा। इतना कहते ही मुझे खयाल आया कि यह जनेऊ है और उसे कन्धे के ऊपर जनेऊ की तरह डाल रखा है। तीसरे पहर मैं छत पर खड़ी थी–कुशारी महाशय नंगे बदन खड़े थे। देखा, उनके गले में जनेऊ नहीं है। मैंने पूछा–'यह क्या है आपके गले में जनेऊ नहीं है, वह जरा संकोच के साथ बोले–'कुछ दिन हुये टूट गया है। कई बार कहा, परन्तु कोई एक जनेऊ बनाकर नहीं देता।' मैंने कहा–'कोई बना नहीं देता इस कारण गले में जनेऊ न देकर आप कैसे रह रहे हैं। तब तो जिन लड़कों को आपने जनेऊ दिया है, वे भी तो उसी तरह जनेऊ फैंक देंगे। क्योंकि आपको देखकर उन्हें ऐसी शिक्षा मिली है कि ब्राह्मण जनेऊ छोड़कर भी रह सकते हैं। यदि यही बात है तो निरर्थक खर्च करके जनेऊ देने की आवश्यकता ही क्या थी।' मेरी इस बात से उसी समय भोलानाथजी के गले से जनेऊ का त्रिदण्डी सूत लेकर उन्होंने अपने गले में धारण किया।

''तीसरे पहर यह घटना हुई। सन्ध्या के बाद फिर जनेऊ की बात चली। स्नान के समय मुझे जनेऊ का खयाल हुआ था, उसी का प्रसंग चलने लगा। शाम के बाद सब लोग बैठे थे, मैंने बात–बात में कुशारी महाशय की पत्नी से कहा–'ननदजी, यह लीजिए, एक जनेऊ। आप मुझे इसे पहना दीजिये।' इतना कहकर हार मैंने उनके हाथ में दिया। उन्होंने भी उसे मेरे गले में पहना दिया। मैंने कहा–'अच्छा, तो अब मैं ब्रह्मचारिणी हुई। अब व्रत–भिक्षा दीजिये।' उन्होंने मेरे आँचल में रुपया, हर्रे तथा और भी न मालूम क्या–क्या बाँध दिये। मैंने कहा–'अब लड़कों को बुलाइये। मुझे गायत्री सुनावें। मैं पढ़ूँ या न पढ़ूँ, मुझे सुनायेंगे।' तब मैंने एक–एक कर लड़कों को बुलाया। जो 5 लड़के आये, उनमें से किसी के भी गले में जनेऊ नहीं था। वे बहुत ही संकोच में पड़ गये। सब लोग कहने लगे कि इनके गले में जनेऊ नहीं है जानकर ही मैंने ऐसा काण्ड किया है। अस्तु, बाद में अखण्डानन्द स्वामीजी तथा और भी कुछ लोगों ने मिलकर मुझे गायत्री सुनाई। दूसरे दिन मैंने कहा–'मेरे तो ऐसे कार्य थोड़े समय के लिये ही हो जाते हैं। मैं इतने समय तक शूद्रों का मुँह नहीं देखूँगी।' वही किया। बाद में वहाँ सभी के गले में जनेऊ दिया गया था। इसी तरह पहले जनेऊ का खयाल हुआ था।''

बात-बात में फिर कहने लगी-''देखो, एक बार मेरी दाहिनी आँख 3 दिन तक बन्द थी, बाद में खुल गई।'' एक बार दाहिना हाथ सुन्न हो गया था। उस बात को याद करा देते ही माँ ने कहा-''हाँ, चार मास सुन्न था उसका भी विशेष कारण था।'' विशेष अनुरोध करने पर माँ कहने लगी-''टंगाइल से हम उस समय काशी की ओर जा रहे थे। नन्दू उस समय हम लोगों से बहुत हिलमिल गया था। बच्चों का सा स्वभाव था। वह हमारे साथ जायेगा, बोला; किन्तु अन्त तक नहीं गया। मैंने पूछा-'तूने जायेगा कहा था, क्यों नहीं जायेगा?' परन्तु वह किसी तरह नहीं गया। अन्त में जब मेरा शरीर विकल हो गया तो वह डर गया और मेरे दाहिने हाथ पर हाथ फेरते हुये बोला-'माँ, मैं तुम्हारे साथ जाऊँगा।' बाद में जब शरीर स्वाभाविक अवस्था में आ गया और हम लोग काशी रवाना हुये तब नन्दू जाने से इन्कार करने लगा। अन्त में जाते समय वह वास्तव में ही नहीं गया। तब खयाल हुआ कि मेरे दाहिने हाथ को पकड़कर नन्दू 'आयेगा' कहकर वचन दिया था और उसके बाद नहीं आया, इससे उसको भारी अमंगल होगा। परन्तु वह इसे नहीं समझता था और न समझने की उसमें शक्ति ही थी। मेरा दाहिना हाथ उसी समय सुन्न हो गया था। उसका अमंगल काट देने के लिये ही यह भाव हुआ था। चार मास तक हाथ बेसुध था।''

फिर बात-बात में मुझसे कहा-''एक बार तुम्हारे मकान में बाबा के मंगल के लिये रयानी (मनसा) पूजा हुई थी। बलि के समय बकरे का कान कट गया। पुरोहित से पूछा गया-''ऐसा होने पर क्या करना चाहिए?'' पुरोहित विशेष कुछ जवाब न दे सके। इस शरीर ने कहा-'बकरे की बलि के समय यदि उसका कान कट जाता है तो बलि की अंगहानि हुई न?' उस पूजा के समय 3-4 दिन के लिये इस शरीर को तुम्हारे घर ले गये थे। आते समय तुम्हारे घर की दुमंजिल से नीचे उतरने पर मेरे पैर के तलवे में चोट लगकर हड्डियाँ टूट गई। इसका कारण यह है कि बकरे का गला बिल्कुल कट जाने से पहले या बाद में कान कटा, कौन कहेगा? अगर गला पूर्णतया कट जाने से पहले कान कट गया हो तो अंगहानि की अवस्था में बलि हुई, उससे अमंगल होने की सम्भावना थी। इस कारण इस शरीर के ऊपर से वह कट गया। ऐसा होता है। मैं तो अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती किन्तु **जो इस शरीर पर निर्भर करके कोई काम करता है उसके अमंगल की शंका रहने से किसी**

समय इस शरीर पर से ही कुछ हो जाता है।'' माँ के चरित्र का एक विशेष भाव इन घटनाओं से प्रकट होता है।

अल्प विपत्ति की सहायता से गम्भीर विपत्ति टाली जा सकती है

शाम को फिर छत पर बैठकर बातें होने लगी। आज भी अधिक रात तक मैं, माँ, नरेश दादा और नानीजी छत पर ही रहे। बाद में आकर बिछौने पर लेट गई। परन्तु उस समय भी सोने का भाव नहीं था। नरेश दादा ने कहा–''अच्छा माँ, हम लोग तो भूल से अकर्म–कुकर्म करके कष्ट भोगते हैं। क्या इससे तुम्हें कष्ट नहीं होता? यह देखो न, एक छोटे बच्चे को मिट्टी खाते देखकर हम झट उसे रोककर हटा देते हैं और यह समझा देते हैं कि मिट्टी नहीं खानी चाहिये। आग में हाथ देने गया तो दौड़कर वहाँ से हटा लेते हैं और तुम माँ होकर भी हमें नहीं देखती हो या देखकर भी चुपचाप बैठी रहती हो, ऐसा क्यों होता है?'' माँ हँसकर बोली–'फिर देखो, कभी–कभी ऐसा भी तो देखा गया है, छोटे–छोटे बच्चे लालटेन पर हाथ छुआने जाते ही माँ उनका हाथ पकड़कर थोड़ा लालटेन पर लगाकर सेंक दिया करती है। इससे बच्चों को ऐसी शिक्षा मिलती है कि फिर उस ओर जाते ही नहीं हैं। थोड़ा दुःख देकर अधिक दुःख के हाथ से माँ उन्हें बचा देती है। शायद न जानकर एकाएक लालटेन से हाथ जला ही डालता। इसलिये थोड़ा–सा सेंक देकर माँ ने उसे भयंकर विपत्ति से बचा दिया।

आज भी रात भर माँ के भीतर सोने का भाव नहीं दिखाई दिया। आधी रात में कुछ लेटी थी। परन्तु अधिक क्षण तक स्थिर नहीं रह सकी।

कार्तिक 29, सोमवार– सुबह माँ के उठते ही चन्दौद के टीकमजी मन्दिर के महन्त ने आकर माँ को प्रणाम किया। उन्होंने माँ से टीकमजी मन्दिर में जाने के लिये प्रार्थना की। हम लोग चन्दौद में इन्हीं के मन्दिर में थे। माँ ने कहा–''खयाल आया कि नर्मदा तीर पर आकर कुछ दिन यहाँ रहूँगी। इसीलिये रह रही हूँ। फिर लड़की को जब इच्छा होगी तो पिताजी के पास जायेगी।'' महन्त महाराज ने कहा–''माँ, आप ही देवी नर्मदा हैं। आपको फिर नर्मदा दर्शन की क्या आवश्यकता है? आप चन्दौद में रहें तो मैं हर समय देख–रेख कर सकूँगा। यहाँ रहने से वह सम्भव नहीं हो सकता क्योंकि यह स्थान मील भर दूर है। वहाँ आप लोगों को कोई असुविधा न होगी।''

परन्तु माँ ने फिलहाल यहीं रहेंगी, इस ढंग की बात कह दी। वह भी, 'इच्छा होते ही माँ चन्दौद चली आवें,' ऐसी प्रार्थना कर चले गये।

कल दो आदमी आकर बता गये हैं कि चन्दौद के एक पण्डे का कर्णाली में एक मकान है। उसमें रहने के लिये पण्डाजी ने माँ से प्रार्थना की है। माँ को किसी तरह की असुविधा न हो इसलिये उन्होंने कहलाया है कि सारा मकान ही वह माँ की सेवा के लिये छोड़ देना चाहते हैं। माँ कृपा करके सबको लेकर वहाँ जाकर रहें तो वह अपने को सौभाग्यवान समझेंगे। यह पण्डाजी महाराज एक दिन आकर माँ के दर्शन कर गये हैं। हम उनकी प्रार्थना सुनकर विस्मित नहीं हुये क्योंकि माँ के ऐसे काण्ड अनेक देखे गये हैं। दो-एक दिन के परिचय से ही लोग सेवा के लिये उत्सुक हो जाते हैं। कह दिया गया कि माँ गृहस्थ के मकान में नहीं रहती हैं।

इस समय महाराष्ट्रीय तथा गुजराती स्त्री-पुरुष माँ के दर्शनों के लिये आया करते थे। बातचीत विशेष समझ न सके, केवल दर्शन करके फल और मिठाई देकर 'माँ नर्मदे', 'माँ महेश्वरी' कहकर बार-बार प्रणाम करते हुये चले जाया करते थे। यहाँ के गीता मन्दिर में 7 दिनों तक भागवत पाठ हुआ है। उस समय वहाँ नर्मदा और 'ओड़' नदी के संगम-स्थल में स्नान करने के लिये अनेक यात्रियों की भीड़ लगी थी। नरेश दादा ने कहा-''माँ, आप तो बात-बात में सभी से हाथ जोड़कर कहती हैं-'तुम मेरे पिताजी हो, मैं छोटी बच्ची हूँ।' इस मीठी बात से उनका उद्धत अहंकार समाप्त कर देती हैं। अनेक साधु-संन्यासियों में बहुत ही उद्धत भाव दिखाई पड़ता है। वे लोग समझते हैं कि आपके भीतर भी वैसा ही अहंकार का भाव है। इसलिये पहले आपके साथ वे प्राय: गर्व के साथ बातचीत शुरू करते हैं; परन्तु अन्त में 'मैं तो बच्ची हूँ, मैं तो कुछ नहीं जानती' आपकी यह बात सुनकर तथा आपका विनयपूर्ण भाव देखकर वे एकदम गल जाते हैं।'' सुनकर माँ हँसने लगी।

एक घटना

आज दोपहर को भोलानाथजी ने मुझसे कहा-''तुम्हारी माँ के पितृकुल में 'नापित-कलंक' है।'' दिल्लगी से इतना कहकर वह हँसने लगे। बाद में नानाजी और नानीजी आदि से सभी ने यह घटना सुनी। नानाजी के वंश में

एक पण्डित थे–उनका नाम था–कालीकान्त विशारद। वह बहुत बड़े पण्डित थे, परन्तु वह एक नापित की छोटी कुमारी कन्या की पूजा किया करते थे। उसके भीतर वह अपनी इष्ट मूर्ति का दर्शन पाते थे। उस लड़की को साथ लेकर वह घूमते–फिरते थे। इस बात को लेकर समाज में चर्चा छिड़ गई कि कालीकान्त विशारद एक नाई की लड़की को कन्धे पर लिये घूमते–फिरते हैं। परन्तु वह ऐसी निंदा–चर्चा की परवाह नहीं करते थे।

एक बार 'विद्याकूट' के एक मकान पर पण्डितों की सभा हो रही थी। उसमें काशी के पण्डित लोग भी निमन्त्रित होकर आये थे। कालीकान्त विशारद भी निमन्त्रित होकर उस सभा में उस नाई की लड़की को लेकर उपस्थित हुये। विशारद महाशय का नियम था कि वह उस नाई की लड़की से बिना पूछे किसी बात का उत्तर नहीं देते थे। काशी के एक पण्डित ने कालीकान्त विशारद से एक प्रश्न पूछा। उत्तर देने से पहले नाई की लड़की से पूछते ही उसने कहा–"बता दो कि उसका मुँह जूठा है। उसके प्रश्न का उत्तर कैसे दिया जायेगा? इस बात से सभी लोग चंचल हो उठे।"

उस समय परीक्षा के लिये पीकदान और जल मंगाया गया। काशी के पण्डित के मुख में जल लेकर कुल्ला करके पीकदान में गिरते ही दिखाई पड़ा कि उसमें भात का एक टुकड़ा है। इस घटना से सभी लोग स्तम्भित, हो गये और सभी के मन में उस नाई की लड़की के प्रति कुछ श्रद्धा का भाव जागा। फिर भी लोग सामाजिक शासन के अधीन हैं इसलिये एक दिन कालीकान्त विशारद के मकान पर निमंत्रण होने पर कोई भी उनके वहाँ जाने में राजी न हुआ क्योंकि वह नापित–कन्या की पूजा करते हैं। अन्त में बहुत कहने–सुनने पर खाने का प्रबन्ध हुआ। ब्राह्मण लोग पंगत में खाने बैठ गये। एक समय वह नापित–कन्या दही लेकर आ गई। किसी ने प्रतिवाद किया–कोई–कोई पत्तल छोड़कर उठ खड़े हुये परन्तु बहुतों ने उस कन्या के भीतर काली–मूर्ति का प्रकाश देखा। इसके अनन्तर सभी लोग उस कन्या को श्रद्धा और सम्मान की दृष्टि से देखने लगे।

आज दुपहर को नानाजी आकर बैठ गये और एक गाना गाने लगे। माँ भी उठ बैठकर साथ-साथ गाने लगी, जो इस प्रकार है –

राधा मम प्राण, राधा मम ज्ञान।
राधा मम ध्यान, राधा नाम सार।।

प्रेममयी राधा, राधा अन्ध आधा।
राधा नाम साधा बाधा नाहि तार।।

आमि दिवस रजनी, राधा नाम ध्वनि।
करि मात्र, जानि राधा मूलाधार।।

राधा आद्या शक्ति, राधा भक्ति मुक्ति।
राधा अनुरक्ति, भक्त श्रीराधार।।

श्रीराधिका यन्त्रे, दीक्षा राधा मन्त्रे।
करि बाँशी यत्ने, नय रन्ध्रे फुत्कार।।

से तन्त्रे सा, रे, गा,मा,पा,धा,नि, सप्तमा।
आलाप संयमें बाजे सहस्रार।।

अर्थात् राधा मेरे प्राण हैं, राधा मेरा ज्ञान है, राधा मेरा ध्यान है, राधा सब कुछ है। राधा प्रेममयी है, राधा प्रेमान्ध है, राधा नाम गाने में बाधा नहीं है। मैं दिन-रात केवल राधा नाम ध्वनि करता हूँ क्योंकि राधा ही सबका मूल आधार है। राधा ही आद्या शक्ति है, राधा की अनुरक्ति तथा भक्ति से राधा के भक्त को मुक्ति मिलती है। श्रीराधा के यंत्र में, राधा मन्त्र में दीक्षा लेकर बंशी के नौ रन्ध्रों में फुत्कार देता हूँ। उस तन्त्र में संयम से सा, रे, गा, मा, पा, धा, नि आदि सप्तमा का आलाप सहस्रार में बजता है।

गाने के बाद फिर बातचीत होने लगी। नरेश दादा ने अब तरह-तरह की बातों से घर के सबको प्रभावित कर रखा है। इनका भाव सरल, शुद्ध और सुन्दर है। माँ भी इनकी बात खूब मानती हैं और कहती हैं- ''किसी कारण से ऐसा भाव रहते हुये भी संसार में रह रहे हैं।'' प्रतिदिन की तरह आज भी शाम के पूर्व ही थोड़ा दूध-साबूदाना खिलाकर माँ को छत पर बैठाया गया। माँ थोड़ा भी चलती नहीं हैं। केवल पखाना जाते समय ही थोड़ा चलती हैं। आज सुबह नीचे उतरकर मन्दिर के सामने थोड़ी देर बैठी थी। रात के करीब 8 बजे तक माँ छत पर बैठी रही, बाद में आकर लेट गई। परन्तु नरेश दादा के साथ बातचीत करने लगी। आज भी रात को माँ के भीतर सोने का भाव नहीं है।

कार्तिक 30, मंगलवार–माँ सवेरे उठी हैं। पुजारी की पत्नी ने माँ को थोड़ा दूध पिला दिया। मैंने बाद में माँ के हाथ-मुँह धुला दिये। भोग हो

जाने के बाद दोपहर तक माँ बातें करती रही, मैं और नरेश दादा हर समय माँ के पास बैठकर बातचीत करते हुए समय बिताया करते थे। बीच-बीच में स्वामी अखण्डानन्दजी, भोलानाथजी और नानाजी आकर सम्मिलित होते थे। आज भी माँ ने नानीजी के साथ इन दो गानों को गाया-

(1)

आमि कि तार संग छाड़ा हइ –

ये जन कातर प्राणे डाके आमाय मा कइ, मा कइ?
हृदये जागाये ताँरे, नामे प्राण माखा थाके,
आर किछु ना देखे चोखे, ए ब्रह्माण्डे आमा बइ।
अन्य कथा कय ना मुखे, व्यथित हय से व्यथित देखे।

समान थाके सुखे दुःखे, लोकेर निन्दा शोने कइ?
शिशु येमन माके डाके, मा डाके तार आँखि झरे।
पारि कि आर थाकते दूरे, अमनि ऐसे कोले लइ।
मनमोहनेर मन दुराचार, शिशुर मतो स्वभाव कइ तार।
मा डाकेर आर नाइ पाराबार, माँ आमार (ठिक) आमि मार कई।'

अर्थात् क्या मैं उनका संग छोड़कर रहती हूँ? जो व्यक्ति कातर होकर 'माँ कहाँ,' 'माँ कहाँ' कहकर पुकारता है, जो हृदय में उनको जगा रखता है, नाम से जिसके प्राण सने हुए रहते हैं, इस ब्रह्माण्ड में मेरे सिवाय आँखों से और कुछ नहीं देखता, मुँह से अन्य बात नहीं कहता, जो दुःखी को देखकर दुःखी होता है, सुख-दुःख में समान रहता है, लोगों की निंदा नहीं सुनता, जिस प्रकार शिशु माँ को पुकारता है, उसी तरह माँ नाम लेते ही उसकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं; क्या मैं उससे दूर रह सकती हूँ? झट आकर उसे गोदी में उठा लेती हूँ। 'मनमोहन' का मन दुराचार है, उसका स्वभाव शिशु-सा कहाँ है? माँ नाम पुकारने का पारावार नहीं है। मेरी माँ तो ठीक हैं परन्तु मैं माँ का कहाँ हो सका?

(2)

मा डाक शोने ना, दैखा देय ना, (कथा कय ना),
मा बुझि मोर बेंचे नाइ।

आमि करबो श्राद्ध (रे), हबो शुद्ध,
यदि कृष्णा एकादशी पाइ।।
आमि होयेछि कुपुत्र अति अपवित्र,
पितामातार यत्न करि नाइ।
आमि करबो तिल–पात्र (रे) दिबो पिण्ड मात्र,
दैखाइबो आमार किछु नाइ।।
पिण्ड प्रयोजन मात्र, जन्मिले सुपुत्र,
शास्त्रे आछे शुनते पाइ।।
आमि मातृ–निरुद्देशे (रे), थाकि कि विश्वासे,
बेनापुरे श्राद्ध करते चाइ।।
आमार मन वृष्टि आछे, बेंधे दिबो गाछे,
टाकार जन्य कोनो ठैका नाइ।
आमि करबो वृषोत्सर्ग (रे), यदि पाई स्वर्ग,
अपवर्ग हलेओ क्षति नाइ।।
थाक पुरोहितेर मंत्र पुरोहितेर मुखे,
मन्त्र कइले तन्त्र भुले याइ।
आमार मा महामन्त्र (रे), तार मन्त्र कि स्वतंत्र,
बाबार तन्त्रे हैनो लिखा नाइ।।
द्विज ईशान बले मन, हैनो बुद्धि कैनो,
श्राद्ध दिये आर कार्य नाइ।
आछे मृत्युञ्जयी वाणी (रे), मृत्यु–विनाशिनी,
शिवानीर नाकि मरण नाइ।।

अर्थात् माँ पुकार नहीं सुनती, दर्शन नहीं देती (बात नहीं कहती), शायद मेरी माँ जीवित नहीं है। मैं श्राद्ध करूँगा, शुद्ध होऊँगा यदि कृष्ण एकादशी पा जाऊँ। मैं कुपुत्र तथा अत्यन्त अपवित्र हो गया हूँ क्योंकि मैंने माता–पिता की सेवा नहीं की है। मैं तिल–पात्र तथा पिण्ड मात्र दूँगा और दिखाऊँगा कि मेरे पास कुछ नहीं है। सुपुत्र का जन्म पितरों को पिण्ड देने के लिये होता है ऐसा शास्त्र में सुनाई पड़ता है। मैं माता के उद्देश्य से विश्वास

लेकर कैसे बैठा रहूँ? मैं बेनापुर में श्राद्ध करना चाहता हूँ। मेरा जो मनरूपी बैल है पेड़ से उसे बाँध दूँगा। रुपये के लिये कोई बाधा न होगी। यदि स्वर्ग पा जाऊँ तो मैं वृषोत्सर्ग करूँगा, अपवर्ग होने से भी कोई हानि नहीं है। पुरोहित का मन्त्र उन्हीं के मुँह में रहे। मन्त्र कहने से मैं तन्त्र भूल जाता हूँ। मेरी माँ ही महामंत्र हैं। उनका मंत्र स्वतंत्र कहाँ है? बाबा (शिव) के तन्त्र में ऐसा लिखा नहीं है। द्विज ईशान कहता है-अरे मन, तुझे ऐसी बुद्धि क्यों? श्राद्ध से कोई प्रयोजन नहीं। मृत्युंजयी वाणी मृत्यु-विनाशनी है। सुना है कि शिवानी की मृत्यु नहीं है।

आज नानीजी ने यहाँ कार्तिक-पूजा की। भोलानाथजी ने पूजा कर दी। माँ के साथ हम लोग पूजा के मन्दिर के बरामदे में बैठकर आनन्द-कोलाहल करने लगे। बाद में भोलानाथजी के कहने से माँ को थोड़ा भात दूध के साथ खिला दिया गया। माँ और भोलानाथजी खाने बैठे। नानीजी माँ को खिलाने लगी। माँ ने आज नटखटी शुरू की। भोलानाथजी से कहा-"देखूँ, तुम किस चीज से भात खा रहे हो?" भोलानाथजी भी अपनी थाली से माँ को खिलाने लगे। हम देखते हैं कि माँ का बहुत पहले का भाव फिर से शुरू हो गया है। कुछ भी खाना नहीं चाहती। पर आज कहने लगी-"दो, क्या दोगे?" भोलानाथजी ने कई कौर खिला दिये। दूध-भात भी खाया। और भी खाने के लिये तैयार बैठी रही परन्तु हमें और अधिक देने का साहस नहीं हुआ। अन्त में बोली-"मूली है न? कच्ची मूली ही दो! और क्या खाऊँ?" फिर मैंने दो-एक टुकड़ा कच्ची मूली ही खिला दी।

फिर हमारे अनुरोध से भोजन का आसन छोड़कर उठ गई। नरेश दादा माँ का यह भाव देखकर आश्चर्य में आ गये और कहने लगे-"माँ, मैं आपको जितना ही देखता हूँ उतना ही अवाक हो जाता हूँ। आपको कोई भी नियम के बन्धन से बाँध नहीं सकता। यही शिक्षा आपके पास रहकर पा रहा हूँ।" आज भी चाँदनी रात में हम लोग बहुत देर तक छत पर बैठे रहे। नरेश दादा माँ के चरणों पर सिर रखकर मंत्र-मुग्ध की तरह न जाने क्या-क्या कहने लगे। आज कुछ महाराष्ट्रीय महिलायें माँ के दर्शनों के लिये आई थी। उनमें से एक ने नर्मदा की परिक्रमा की है। सुना परिक्रमा करने में 4 साल लगे थे। परिक्रमा के रास्ते में स्थान-स्थान पर गाँव हैं और उनमें दान-सत्र भी हैं।

अग्रहायण 1, बुधवार- माँ दिन के करीब 11 बजे उठी। मैंने मुँह-हाथ

धुला दिये। कुछ देर बातचीत के बाद भोग हुआ। भोग के बाद नरेश दादा के साथ बातचीत करने लगी। रात को माँ अपने बिछौने पर बैठी हैं, मैं और नरेशदादा पास बैठे हैं और नानीजी पास लेटी हैं। तरह-तरह की बातचीत होने लगी। माँ के भाव में कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ा। नरेश दादा ने एकाएक माँ की गोदी में सिर रखकर बाद में सिर को उनके चरणों में लुढ़का दिया, कुछ बेचैनी का भाव दिखाई पड़ा। बहुत देर के बाद उठ बैठकर बोले-वह माँ के चेहरे में से शिव की तरह शुभ्र ज्योति निकलते देखकर वैसा कर रहे थे और वह ज्योति उस समय भी स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी इसलिये स्थिर होकर बैठ गये। कुछ क्षण तक उनका यह भाव था; मैं चुपचाप बैठी रही। माँ बात बन्द करके आँखें मूँदकर बैठी रही। थोड़ी देर के बाद मैं बोली- ''नरेश दादा, बहुत देर तक इस ढंग से बैठे रहना उचित नहीं है; माँ के भाव में कुछ विशेष परिवर्तन हो सकता है।'' उस समय हम दोनों माँ को पुकारने लगे, माँ ने आवाज नहीं दी। उसी ढंग से बैठी रही। थोड़ी देर बाद माँ ने मानो आँखों की पलकों को खींच लिया और अस्पष्ट भाव से कहा- ''मैं तो ठीक ही हूँ, ऐसे ही बैठी हूँ, तुम्हारी पुकार सुन रही थी परन्तु बात नहीं निकलती थी।'' मैंने कहा-''माँ, अब जरा लेटी रहो।'' माँ भी 'अच्छा' कहकर लेट गई।

अग्रहायण, 2 बृहस्पतिवार- आज भी माँ बहुत देर में उठ बैठी। मुँह धुला देने के लिये कहने पर बोली-''अभी नहीं। तुम्हारे नित्य-नियमित विधि-व्यवस्था के अनुसार यह शरीर हर समय चल नहीं सकता। कभी तो चला भी नहीं था, तुमने देखा ही होगा। यह जो रोज ही एक समय पर भोजन करना तथा उठना-बैठना इन नियमों से हर समय यह शरीर चल नहीं सकता। क्या करूँ बताओ?'' इतना कहकर बैठी रह गई। उस समय बात-बात में रमना आश्रम तथा सिद्धेश्वरी आदि के इतिहास की बात चली। माँ कहने लगी और हम लोग मुग्ध होकर सुनने लगे। करीब एक बजे माँ ने स्नान किया। कल मेरे तथा नरेश दादा के स्नान की बात कहने पर माँ ने कहा था-''कल देखा जायेगा।'' माँ को नहला दिया, लगभग दो बजे भोग हुआ। भोग के बाद माँ का शरीर कुछ विकल मालूम होने लगा। मैं उनकी रीढ़ रगड़ने और शरीर पर हाथ फेरने लगी। माँ की आँखें बन्द थी। थोड़ी देर बाद कुछ दर्शनार्थी लोगों के आने पर माँ आँखें खोलकर लेटी ही रही।

एकाएक बोल उठी–''मैंने एक बड़ी भारी आँधी देखी है। मानो जलाशय के सामने थी, फिर थोड़ी देर में ही आँधी रुक गई।'' मैंने पूछा–''माँ, वह आँधी किस ओर से आई थी?'' माँ ने हँसकर कहा–''अब तुम ही समझ लो।'' फिर बोली–''देखो, शुरू में जब पिताजी ने कहा था–'हरि का नाम लो, हरि ही सब कुछ हैं।' उसके बाद हरि का नाम ही मैं लेने लगी। पिताजी शाक्त थे परन्तु हरि का भाव जब उनके मन में प्रबल था उस समय मुझसे वैसा कहा था। मेरे शरीर में हरि–नाम लेने पर तरह–तरह की क्रियाएँ होने लगी। बाद में भोलानाथजी के पास आने पर वे शैव और शाक्त हैं ऐसा कहा। बाद में इस शरीर पर वैसी क्रियाएँ भी होने लगी। और तमाशा यह है कि घटना–चक्र से तुम्हारे नानाजी ने हरि नाम का उपदेश दिया और उनके नारायण–चक्र ने भी आकर इसी आश्रम में स्थान लिया।''

एक पुलिस अफसर ने आकर माँ से चन्दौद में नर्मदा–तीर के एक मठ में रहने के लिये अनुरोध किया। माँ को चन्दौद ले जाने के लिये उनका बहुत ही आग्रह प्रतीत हुआ। एकाएक माँ ने कहा–''चलो, चन्दौद घूम आवें।'' तीसरे पहर लगभग चार बजे हम उन पुलिस अफसर के साथ माँ को लेकर चन्दौद चले। उस मठ में पहुँचे, मठ के दण्डी स्वामीजी माँ को वहाँ रखने के लिये विशेष आग्रह प्रकट करने लगे। माँ ने कहा–''खयाल होते ही लड़की बाप के पास चली आयेगी।'' टीकमजी के मन्दिर के महन्त रामरतनजी को पुलिस अफसर ने खबर देना चाहा। माँ ने मना किया। अफसर ने कहा–''उन्हें खबर न देने से वे मेरे ऊपर नाराज होंगे क्योंकि माताजी आई हैं और उन्हें खबर नहीं दी गई।'' तब माँ ने कहा–''मैं स्वयम् जाऊँगी। आप खबर न दें।''

मठ से निकलने पर मैंने कहा–''चलो, टीकमजी के मन्दिर में जायें।'' माँ ने कहा–''चलो।'' मंदिर के पास जाते ही खबर मिली कि महन्त महाराज राजपीपला रियासत के दीवान साहब को लेकर माँ के दर्शनों के लिये कर्णाली गये हैं। हम लोग घाट के पास आकर नाव पर चढ़े। भवानीशंकर पण्डा, पुलिस अफसर तथा और भी 2–4 आदमी माँ के साथ आकर नाव पर सवार हुये। माँ को आराम से रखने के लिये सभी लोग उतावले हो रहे थे परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि ये लोग माँ का दर्शन करने के लिये शायद एक ही बार आये हुये थे। केवल इतना ही तो परिचय

था। नाव पर आते ही दिखाई दिया कि दीवान साहब लौट आ रहे हैं। वे पास आकर माँ की नाव पर सवार हुये और माँ को प्रणाम कर बोले–"मैं आपके दर्शनों के लिये कर्णाली गया था। सुना, महन्त महाराज अपने एक ब्रह्मचारी को लेकर पैदल चन्दौद लौट गये हैं। लोग कहने लगे, माँ जाकर लौट आई हैं। यह बात सुनकर महन्त महाराज को नींद नहीं आयेगी। माँ ने कहा–"तब तो और भी अच्छी तरह भेंट हो जायेगी।" दीवान साहब ने माँ से कहा–"राजपीपला से 14 मील दूर नर्मदा तीर पर मिट्टी के नीचे रणछोड़जी की एक मूर्ति मिल गयी है। ऊँचाई में एक आदमी की सी होगी। उस मूर्ति को स्थापित किया गया है। यदि आप उस मूर्ति का दर्शन करना चाहें तो खबर मिलते ही मैं सब इन्तजाम कर दूँगा।" माँ ने कहा–"नर्मदा तीर पर आने की बात हो रही थी। अब यहाँ आया गया। कुछ दिन नर्मदा तीर पर रहना हो रहा है। बाद में जो कुछ हो जाय।" कुछ देर के बाद एक जगह नाव लगाकर सब लोग चले गये। हम लोग भी कर्णाली लौट आये।

रात में सब लोग खाने बैठे–हम लोग भी हैं। भोलानाथजी के बड़े भाई रेवती बाबू की बात चली। माँ ने भी अनेक गल्प (कहानी) सुनाये। रात को नरेश दादा ने माँ से कहा–"माँ, मुझे यह सोचकर आश्चर्य होता है कि आपका भीतरी भाव बिल्कुल स्थिर, धीर, शान्त है। परन्तु बाहर न जाने कितनी लीलायें करती जाती हैं। ऐसा चरित्र कहीं दिखाई नहीं पड़ता। मुझे ऐसा लगता है कि मानो सांख्य के पुरुष की तरह आप साक्षी रूप से सब कुछ देखती जाती हैं। आप जब गल्प कहती हैं तो में अवाक होकर केवल आप ही को देखता रहता हूँ और सोचता हूँ कि कैसे ऐसी दो विरूद्ध अवस्थाएँ एक ही व्यक्ति के भीतर एक ही समय सम्भव होती हैं। जितना ही देखता हूँ और समझता हूँ उतना ही आश्चर्य में पड़ जाता हूँ।" इतना कहकर माँ के चरणों में सिर रखकर प्रणाम किया। आज भी अधिक रात तक बातचीत होती रही।

अग्रहायण 03, शुक्रवार– आज दिन के 3 बजे नरेश दादा, नानाजी और नानीजी कलकत्ता जाने वाले हैं। रात को माँ अपनी दीक्षा की बातें कह रही थी–"देखो, बाहरी ओर से देखने से मैंने उन दिनों तक किसी साधु महात्मा के जीवन की घटना सुनना तो दूर की बात है, चित्र तक नहीं देखा था। इसलिये बाहरी ओर से कोई संस्कार इस शरीर में तुम्हारी दृष्टि से आ न सका। देव–देवियों के चित्र भी मैंने कम ही देखे थे। पिता के घर में केवल

पूजा और व्रत नियमादि देखा था। भोलानाथ के घर में वह सब कुछ नहीं था। इसलिये पूजा या देव-देवियों के चित्र बहुत अधिक नहीं देखे थे। दीक्षा के दिन क्या हुआ कि मैं उसी ढंग से बैठी थी। कान में कोई नाम सुना, वह भी नहीं। शिशु के मुख में जैसे बात प्रकट होती है उसी तरह मेरे भीतर से मंत्र खिल उठा। इसके अतिरिक्त अपनी इच्छा-शक्ति की कोई क्रिया ही नहीं थी। देखा कि हाथ की ऊँगलियों में अपने आप जप होने लगा। अनेक प्रकार के चमत्कारी दृश्य दिखाई पड़ने लगे। वह एक अपूर्व समय था। आसन भी उसी तरह होते थे। जैसे पहले श्वास-प्रश्वास की गति के साथ पैर सीधे हो गये। उसके बाद धीरे-धीरे नाना प्रकार के आसन होने लगे। शरीर स्थिर भाव से बैठा रहा परन्तु आसन एक के बाद दूसरा होने लगा, ऐसा तमाशा होता था।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

नरेश दादा ने कहा-''माँ, अनेक महापुरुषों की जीवनी पढ़ी हैं, देखी हैं, परन्तु ऐसा कहीं नहीं सुना। आप क्या हैं उसे समझने की शक्ति हममें नहीं है। आपको कोई देव-देवी कहने से भी छोटा करना होता है।'' रमणा-सिद्धेश्वरी आश्रम की बात करते हुये माँ बोली-''भोलानाथ की आकांक्षा पूरी हुई है। इन स्थानों पर आया गया। साधक की दृष्टि से ही उन्हें सब स्थानों पर पहुँचा दिया जा रहा है। उस दृष्टि से ही पहले ढाका रमणा आश्रम में जाकर 24 घण्टे रहने के बाद भोलानाथजी को वहीं रखकर हम लोग बाहर आये। भोलानाथजी तो साधारण मानव नहीं हैं न।'' फिर बात-बात में कहने लगी-''देखो, फिर कभी शायद किसी के साथ उसके संस्कार के अनुरूप बात होने लगी कि तुम ऐसे-ऐसे हो। वह भी अपने को वैसा ही समझने लगा। परन्तु वह वास्तव में वैसा नहीं है। बहुधा ऐसा क्यों होता है जानती हो? किसी का स्वभाव देखकर कहा जाता है कि 'तुममें ऐसा संस्कार है,' शायद किसी को ऐसा कहा गया है। फिर एक बात और है जो जिस देवता का उपासक है उसमें उस देवता का कुछ प्रभाव आ ही जाता है। इस शरीर में तो तुम्हारी जैसी भाषा नहीं है! मेरी बात का अर्थ न समझकर उसने मान लिया, वह पहले ऐसा ही था परन्तु वैसा होने पर उसका चरित्र कैसा हो सकता है वह सोचकर नहीं देखा। इसी तरह किसी-किसी क्षेत्र में बहुत-सी बातों का तुम लोग गलत अर्थ निकाल लेते हो।''

आज 9 बजे माँ मुख का वस्त्र हटाकर उठ बैठी। प्राय: 11 बजे भोग

हुआ। भोग के बाद माँ अपने बिछौने पर आ बैठी। पास में नरेश दादा और भोलानाथजी आ बैठे। थोड़ी देर बाद मुझे देखकर पूछा–"तुम्हारा भोजन हो चुका?" मैंने कहा–"अभी नहीं।" माँ ने कुछ नहीं कहा। थोड़ी देर बाद मैं खा–पीकर उठ आई। सुना, माँ ने भोलानाथजी से एकान्त में बात करने के लिये नरेश दादा को नीचे भेज दिया है। कुछ क्षण बाद ही भोलानाथजी ने नीचे आकर मुझसे कहा–"तुम्हारी माँ तुम्हें बुला रही है।" मेरे ऊपर जाते ही माँ खिलखिला कर हँस पड़ी और बोली–"पहले हँस तो लूँ, उसके बाद बात होगी।" मुझे न मालूम कैसा लगा, घबराकर पूछा–"मुझे भी उनके साथ भेज दोगी क्या?" माँ ने कहा–"तुम कुछ दिन सिद्धेश्वरी आश्रम में जाकर रहो। अखण्डानन्द मेरे पास ही रहेगा।" "क्या यही व्यवस्था की?" इतना कहकर मैं वहीं बैठ गई। माँ बोली–"पहले कहने से शायद तुम्हारा खाना–पीना ही न होता, मन खराब हो जाता, इसी से अब कहा है।"

क्या करूँ, ठीक समय पर आँसू पोंछते हुये सबने बिदा ली। माँ बोली–"तुम लोग रोते क्यों हो? जो हँसता है, क्या उसके लिये रोना चाहिये? मैं तो हँस रही हूँ क्या देखते नहीं हो?" माँ के चरणों में पड़ी रहना चाहती हूँ परन्तु माँ हटा देती हैं। बहुत कातर देखकर अपने ही मन में मुझे सुनाकर माँ कहने लगी–"भीतर–बाहर दोनों ओर से भारी धक्का लग रहा है। क्या करोगी? अब तो इसी ढंग से चलना पड़ेगा। मैं तुम्हारी आत्मोन्नति ही चाहती हूँ। शान्ति से चली जाओ।" मैंने प्रणाम कर माँ से विदा ली, मैंने समझा बाहरी कार्य देखकर माँ को जितना कठोर मालूम होता है, यदि माँ वैसी ही होती तो हम उनके लिये न रोते, माँ के पास न आते। हमारी दृष्टि से जो कठोर और अन्याय मालूम होता है उसके पीछे न जाने कितनी बातें हैं जिन्हें हम नहीं समझ सकते और माँ के बर्ताव से असन्तुष्ट होते हैं। परन्तु दयामयी माँ उसे समझकर भी संतान के कल्याण के लिये ही यथा कर्त्तव्य करती जा रही हैं। माँ हमारे साथ नीचे उतर आई। पिता और माता के चरणों पर गिरकर प्रणाम किया। माँ मन्दिर में खड़ी रह गई। हम बार–बार उस मूर्ति को देखते हुये धीरे–धीरे चले आये। स्वामीजी नाव तक आकर हमें उस पर सवार करवाकर लौट गये। हम लोग नाव से चन्दौद चले। वहाँ से 5 बजे गाड़ी पकड़कर बड़ौदा जायेंगे। मैं काशी होकर ढाका जाऊँगी। नरेश दादा और नानीजी तथा नानाजी कलकत्ता चले जायेंगे।

बड़ौदा पहुँचकर हम रात को माणिकचन्द की धर्मशाला में आये। यहाँ माँ के साथ हम लोग रह गये थे। उसकी स्मृति जाग उठी। हम लोग उन्हीं बातों की आलोचना करने लगे, नरेश दादा बहुत ही व्याकुल हो गए हैं। वह बार-बार कहने लगे-"माँ के पास से जो अतुल वैभव लाया हूँ उसकी तुलना नहीं है। माँ क्या चीज हैं, उसे समझने की शक्ति हम में नहीं है। माँ ने न जाने कितनी समस्याओं की मीमांसा कर दी है, उसे मैं कैसे समझाऊँगा?" उनकी आँखों से आँसुओं की धारायें बह चली। उनके भीतर अनेक प्रकार की अनुभूतियाँ होती थी। यह एक विलायत-लौटे उच्च-शिक्षित्त व्यक्ति हैं। स्वयम् भी सम्पन्न हैं। परन्तु माँ के पास आने से भीतर और बाहर कुछ गम्भीर परिवर्तन हो गया है। स्वयम् ही कहते थे- "माँ, कलकत्ता में मैं इस ढंग से नहीं रह सकता। वहाँ मेरा साहबी-मिजाज रहता है। मेरा मकान तथा असबाब उसी रुचि का परिचय देते हैं। परन्तु यहाँ आकर न जाने मैं कैसा हो गया हूँ।" माँ को प्रथम बार देखने के बाद से ही उनमें जो अनुभूति हुई है उसे हमारे सामने प्रकट किया, कहा-"मैं अब तक जिसे खोज रहा था ठीक उसी को यहाँ पा गया हूँ।" बचपन से ही उनके जीवन में एक उत्तम आध्यात्मिक भाव का विकास हुआ था।

अग्रहायण 4, शनिवार- हम भोर 6 बजे दिल्ली रवाना हुये।

अग्रहायण 5, रविवार- आज भोर में दिल्ली पहुँचे। माँ के भक्तों में से अनेक लोग नानाजी तथा नानीजी को देखने के लिये स्टेशन पर उपस्थित थे। हम रात को 11 बजे काशी पहुँचे। नरेश दादा आदि सब लोग कलकत्ता चले गये।

अग्रहायण 8, बुधवार- माँ के आदेशानुसार कर्णाली से रवाना होकर मैं काशी आ गई हूँ। माँ मुझसे अकेली रहने और चलने का अभ्यास करा रही हैं। एक दिन के लिये मैं विन्ध्याचल गई थी। आज विन्ध्याचल से यहाँ लौटते समय ही अखण्डानन्द स्वामीजी का तार मिला कि माँ ने मुझे काशी में रहने की आज्ञा दी है। बात समझ में नहीं आई। माँ की चिट्ठी आने में भी 4-5 दिन की देरी होगी। चिट्ठी न मिलने तक काशी में ही रहना पड़ेगा।

स्वामीजी की चिट्ठी भी आज मिली है। उससे मालूम हुआ कि मेरे चले आने के बाद ही वे लोग विद्यानन्द स्वामी के गीता मन्दिर की धर्मशाला में चले गये हैं। स्थानाभाव के कारण रसोई का अलग इन्तजाम सम्भव न हुआ।

मन्दिर से ही प्रसाद आने लगा। किन्तु अधिकारी लोगों ने कहा कि शीघ्र ही सारा इन्तजाम कर देंगे। स्वामीजी ने लिखा है–''मेरे लिये कोई चिन्ता न करो क्योंकि मेरी आवश्यकता बहुत थोड़ी है। इसलिये मेरी कोई असुविधा नहीं है। यदि मैं माँ की कुछ सेवा कर सकूँ तो अपने को धन्य समझूँगा।'' वास्तव में ही इस वृद्ध वयस में भी उन्हें कुछ भी आवश्यकता नहीं थी। उनके पूर्व जीवन का कोई भी अभ्यास उनके लिये वर्तमान जीवन में प्रकट नहीं होता था। वह इसी ढंग से चुपचाप अपना संन्यास जीवनयापन कर रहे हैं। मैं काशी में माँ के दूसरे आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

अग्रहायण 12, रविवार– कल स्वामीजी के पत्र से ज्ञात हुआ कि माँ ने उनसे एकाएक कह दिया–''खुकुनी को काशी में रहने के लिये तार दे दो।'' इसीलिये उन्होंने तार भेजा है। और भी लिखा है, वे गीता मन्दिर में ही भोजन करते हैं। केवल भोलानाथजी माँ के लिये थोड़ी बहुत रसोई पका लेते हैं। शीघ्र ही उनके अन्यत्र जाने की बात है। कहाँ जायेंगे, अभी निश्चय नहीं हुआ है।

मैं आज गोपी बाबू के साथ एक लड़के को देखने गई थी। लड़के की अद्‌भुत अवस्था थी। वह स्थूल शरीर से निकलकर ऊपर के लोकों में चला जाता है। अनेक देव-देवियों और ऋषियों-मुनियों से भेंट होती है। वे दृष्टि की सहायता से नाना प्रकार की शिक्षा देते हैं। लड़के की उम्र 16 वर्ष, नाम केदारनाथ दास, मालाकर का लड़का है। उसकी माँ विधवा है। अवस्था देखकर समझ में आया कि उस बालक को विष्णुलोक, शिवलोक और इन्द्रलोक आदि ऊर्ध्वलोकों में जाने की प्रेरणा होती है। उसके बाद ही वह लेट जाता है। प्राय: 15-20 मिनट के बाद उठ बैठता है, उस समय अनेक जटिल प्रश्नों का उत्तर देता है। उससे पूछने पर मालूम हुआ कि देवताओं ने उससे कहा है कि–''अब तुम्हें शिक्षा दी जा रही है। 20 वर्ष उम्र होने पर तुमसे संसार का कल्याण होगा।'' वह कहता है नारद, वशिष्ठ, ब्रह्मा, विष्णु सभी से उसकी भेंट होती है। एक बार एकाएक डर जाने के बाद से उसकी ऐसी अवस्था आरम्भ हुई है। देवता लोग उस बालक को सूक्ष्म शरीर से ऊर्ध्वलोक में ले जाते हैं। गोपी बाबू ने कहा–''इसकी अवस्था अच्छी प्रतीत होती है। धीरे-धीरे उन्नत होता जा रहा है। देवता लोग बालक को नाना प्रकार की स्तव-स्तुतियाँ सिखा रहे हैं। शरीर से अंगूठे के परिणाम में बाहर

निकल जाता है। अनेक स्थानों पर घूम फिरकर फिर शरीर में लौट जाता है। बहुत अच्छी अवस्था है।''

कर्णाली में श्री श्री माँ

अग्रहायण 17, शुक्रवार– आज कर्णाली से अखण्डानन्दजी का पत्र आया है। तारीख 11 अग्रहायण को लिख रहे हैं–''हम लोग यहाँ से नाव पर 4–5 घण्टे का पथ तिलकवाडी गये थे। वहाँ से लौटते समय राजपीपला भी गये थे। आज यहाँ लौट आये हैं। अहमदाबाद से 2 पारसी महिलायें (माँ ने जिनके नाम कल्याणप्रिया और शुद्धप्रिया रखे थे) आज 4 दिन से माँ के पास आई हैं। कल चली जायेंगी। माँ का शरीर बहुत ही दुर्बल हो गया है, दूध एकदम नहीं लेती। दिन में भात खाती हैं। रात को थोड़ा–सा दूध पीती हैं। भोलानाथजी ही खिला देते हैं। हमें 2 पक्के कमरे मिले हैं। एक में माँ एकान्त में रहती हैं। दूसरे में हम लोग रहते हैं। तारापीठ जाने के बात चल रही है। अभी कुछ निश्चय नहीं हुआ है।

अग्रहायण 21, मंगलवार– आज पुनः स्वामी अखण्डानन्दजी का पत्र आया है। बड़ौदा आकर पहले चिमनलाल माणिकलाल की जिस धर्मशाला में माँ थी उसी धर्मशाला में हम लोग रुके हैं। कितने दिनों तक यहाँ रहना होगा इसका कुछ निश्चय नहीं है। यहाँ गंगाचरण बाबू की पत्नी रोज सुबह आकर शाम तक माँ के पास रहती हैं।

अग्रहायण 22, बुधवार– सुबह शंकरानन्द स्वामीजी ने बाबा का एक तार लाकर बताया कि आज ही रात के 9 बजे की गाड़ी से माँ मुगलसराय आ रही हैं। वह मुझे उसी गाड़ी में पहुँचा देंगे।

शाम को हम लोग मुगलसराय चले। रात के 9 बजे माँ की गाड़ी मुगलसराय आ पहुँची। काशी से अनेक व्यक्ति माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। बच्चू की माँ अनेक प्रकार की खाद्य वस्तुएँ लाई हैं। माँ को थोड़ा खिलायेंगी, यही उनकी आकांक्षा है। माँ का आदर–यत्न करके मानो किसी को तृप्ति नहीं होती।

माँ, भोलानाथजी, रूमादेवी तथा अखण्डानन्दजी तारापीठ जा रहे हैं, मुझे भी साथ ले चले।

* * *

छठा अध्याय

श्री श्री माँ का तारापीठ आगमन

अग्रहायण 23, बृहस्पतिवार, बंगाब्द 1344, ईस्वी 1937 सन्– श्री श्री माँ के साथ हम लोग तीसरे पहर लगभग तीन बजे रामपुर हाट पहुँचे। बैलगाड़ी से हम सन्ध्या के बाद **श्मशानेश्वरी तारा माता** के मन्दिर में आये। सुना है कि यहाँ अधिक दिन रहना नहीं होगा। भोलानाथजी को कोई काम है इसीलिए यहाँ आना हुआ है। जिस समय वह यहाँ साधना करते थे, उस समय उनकी बहुत ही सुन्दर अवस्था हुई थी। इस कारण यह स्थान उन्हें बहुत प्रिय लगता है। भोलानाथजी ने यहाँ आकर तारा माता के मन्दिर के बरामदे में लेटने का स्थान बना लिया। वह आकर यहीं रहते हैं। हमारे यज्ञोपवीत के समय जो कुटिया बनायी गयी थी उसी में माँ का बिस्तर लगा दिया गया।

श्रीयुत् यतीन्द्रनाथ पण्डा महाशय के मकान में ही रसोई बनी और रात्रि के लगभग 11 बजे माँ का भोग हुआ। पण्डों के घर से अनेक स्त्रियाँ माँ के दर्शनों के लिए आयी।

भैरवी माँ

यहाँ एक भैरवी माँ आयी हुई हैं। सुना है कि माँ के प्रति लोगों की इतनी श्रद्धा उन्हें पसन्द नहीं आयी। उन्होंने कभी माँ को नहीं देखा तो भी माँ की निन्दा करती हैं। परन्तु माँ ने उस बात को सुनकर कहा–''चलो खुकुनी, हम जाकर भैरवी माँ को देख आवें।'' भोलानाथजी ने थोड़ा रोककर कहा–''कल जाना।''

इसके बाद भैरवी माँ ही मन्दिर में दर्शन करने आयी। माँ के वहाँ जाकर हँसते हुए खड़ी होते ही उन्होंने भी माँ की ओर देखकर धोती खींचते हुए अपने पास बैठाया। माँ भी उनकी लड़की बनकर उसी भाव से आनन्द करने लगी। थोड़ी ही देर में भैरवी माँ उठकर चली। माँ भी उनके पीछे-पीछे चलते हुए उनसे बोली–''लड़की माँ के पीछे-पीछे आ रही है परन्तु माँ देखती ही नहीं।'' उन्होंने कहा–''मैं तो संसार की माँ होना चाहती थी परन्तु आनन्दमयी

ने उसे होने नहीं दिया। इसलिए अब माँ बनने की साध नहीं रही। पर लड़की यदि बुलाती है तो मैं राजी हूँ।'' इतना कहकर साथ के आदमियों के साथ वह चली गयी। यह बात उन्होंने किस उद्देश्य से कही, ईश्वर ही जानते हैं।

भैरवी माँ का शरीर मोटा, हाथ में त्रिशूल था, वह लाल वस्त्र पहने हुए थी। वह मगरा में डेरा लगाकर रहती हैं। पति, कन्या आदि सब विद्यमान हैं। वह मगरा के डेरे में ही रहती हैं और बीच-बीच में श्रीरामपुर जाती हैं। सुना है कि वह कल ही चली जायेंगी। मन्दिर में माँ से भेंट होने पर उन्होंने कहा-''मैं बहुत अच्छा गा सकती हूँ।'' माँ झट से बोल बैठी-''तो मुझे भी एक गाना सुना दो माँ।''

माँ की साधना की बात, आसन-क्रिया-त्राटक

अग्रहायण 24, शुक्रवार- बहुत देर तक माँ बिछौने पर सोती रही। मैं कल रात माँ के दरवाजे के सामने नाट-मन्दिर में सो रही थी। रूमा देवी और अखण्डानन्दजी सिद्धाश्रम में सोये थे। कल रास्ते में माँ से कुछ बातें हुई थी। माँ ने बात-बात में कहा था-''जैसी-जैसी अवस्थाएँ इस शरीर में होती जाती थी, मैं बता नहीं सकती। कभी बैठी हूँ, आँखें ऐसी चढ़ गयी कि लोग देखकर डरने लगे। चेहरा सुन्दर पर न जाने कैसा हो गया। हाथ इस ढंग से जगे, कोहनी, यहाँ सिर ऐसे हो जायँ, इस तरह का भाव भीतर से आने लगा और शरीर भी उसी तरह हो गया। प्रश्न हो सकता है ऐसा क्यों होता है? शरीर की अंग-भंगिमा देखने से लोग डर जाते हैं। इसका कारण क्या है जानती हो? **षट्चक्र** आदि तुम लोग कहा करती हो पर मैं कहती हूँ कि सारे शरीर में अनेक ग्रन्थियाँ हैं। उस तरह की क्रिया आदि के होने के साथ-साथ एक-एक स्थान की ग्रन्थि खुल जाती है। तुम लोग कहती हो-''नेत्रों से त्राटक किया जाता है पर मैं कहती हूँ कि सारे शरीर से भी उसी तरह त्राटक की क्रिया हो जाती है। स्पष्ट मालूम होता है कि विविध अंगों के साथ-साथ सिर, हाथ, पैर, हड्डी, मांस, अंगुली आदि स्थानों की ग्रन्थियाँ खुलती जाती हैं। विभिन्न अंग-भंगिमाओं के साथ-साथ श्वास की क्रिया भी उसी तरह बदलती जाती है। वह एक अपूर्व अवस्था थी। सभी अपने आप होता जाता है-**हठयोग** और **राजयोग** और भी तुम लोग जो कुछ कहती हो, वह सभी इस शरीर में होता जाता है। एक को छूकर स्तर मिलता है। जब तक क्रिया के भीतर है तब तक स्तर या सीढ़ी भी है।

''उसके बाद वाली अवस्था कैसी है जानती हो? जैसे तुम लोग जो लिफ्ट (Lift) या वैसा ही कुछ कहती हो, उसी से ऊपर चढ़ना जैसे दुमंजिल या तिमंजिल पर उठकर तुम लिफ्ट में चुपचाप खड़ी रहती हो, देखा दुमंजिल या तिमंजिल आती-जाती है, उस समय तुम्हारे भीतर कोई क्रिया नहीं रहती। ऊपर नीचे सभी उस समय तुम्हारे सामने समान हो जाता है। आवश्यकता के अनुसार अपने आप यातायात होता है। उसके लिए फिर चेष्टा करने की आवश्यकता नहीं होती अथवा उसके सामने ऊपर-नीचे कुछ भी नहीं रह जाता-ऐसा भी कह सकती हो।

''फिर तरह-तरह के बीज भी निकलते थे।''

शास्त्र-मत

मैंने कहा-''अच्छा माँ, तुम्हारे भीतर ऐसी जो अवस्थाएँ होती थी क्या वे शास्त्रों में मिलेंगी?'' माँ कहती थी-''देखो, एक बात पर खयाल रखना। शास्त्रों में जो कुछ लिखा है वह तो अवश्य ही मिलेगा। एक शास्त्र में न मिले तो दूसरे शास्त्र में मिलेगा। किसी न किसी स्थान पर अवश्य ही मिलेगा। मैंने तो पहले ही कह दिया है कि शास्त्र में कितना लिखा जा सकता है? टाईम-टेबल की तरह खास-खास स्थानों के नाम ही लिखे रहते हैं। तुम लोग अगर उस रास्ते से पैदल चल सको तो देखोगी कि और भी बहुत कुछ हैं जो पुस्तकादि में नहीं लिखा रहता या रहना सम्भव भी नहीं है, उसी तरह शास्त्र में जो कुछ लिखा है उसके अतिरिक्त और भी बहुत कुछ रह सकता है। परन्तु शास्त्र में जो कुछ लिखा है वह तो अवश्य ही मिलेगा। फिर सब विषयों का आभास शास्त्र में है। हृदय-कमल न खिलने तक कैसे समझोगी? यदि कहीं इसका व्यतिक्रम दिखाई पड़े तो समझना होगा कि क्रिया ठीक-ठाक नहीं हो रही है। कुछ गोल-माल अवश्य है। शास्त्र में जो अशास्त्रीय सिद्ध किया गया है उसी के साथ भी मिलेगा। इसी कारण शास्त्र में लिखित सभी विषय मनुष्य में मिल जायेंगे।''

मैंने कहा- ''अच्छा माँ, बीज बड़ा है या नाम।'' माँ बोली-''देखो, कौन बड़ा है यह कहा नहीं जा सकता। अवश्य ही कहा तो यही जाता है कि तुम लोग नाम करते चलो, उसी से तुम्हारे संस्कारों की निवृत्ति के लिए बीज अपने आप आ जायेगा। परन्तु बीज पहले या वृक्ष पहले यह जिस

प्रकार बताया नहीं जा सकता वैसे यह भी है। अतः यह बड़ा है, वह छोटा है ऐसा कहा नहीं जा सकता। जैसे बीज के भीतर वृक्ष की सत्ता है, वृक्ष भरा रहता है इसीलिए बीज से वृक्ष उत्पन्न होता है। फिर वृक्ष से फल तथा सैकड़ों बीज होते हैं। ऐसे ही कहा जाता है कि नाम और नामी अभिन्न हैं।''

माँ की साधना की बात

बात-बात में अपने शरीर में जो क्रियाएँ होती जाती थी उनके विषय में माँ ने कहा-''मैं देखती थी कि क्रियाएँ आरम्भ हुई, एक-एक करके होती गयी फिर मुख से निकल गया-'बस, मैं चली' कहकर क्रिया बन्द हो गयी। मानो क्रियाएँ मूर्ति धारण कर 'हम चली' कहकर बंद हो गयी। उसके बाद शरीर गृहस्थी के काम में लग गया यानी उस समय के लिए इस प्रकार की क्रिया बन्द हो गयी। ऐसा ही सुन्दर प्रकाश।''

फिर बात-बात में अपने शरीर के भीतर माँ एक उज्ज्वल ज्योति देखती थी। यह बतलाने लगी-''देखो, कैसा तमाशा हो गया, एक दिन शाहबाग में टहल रही थी, एकाएक एक स्थान पर बैठ गयी। बैठकर बगल में जो एक कोयला पड़ा था उसे हाथ में उठा लिया। क्यों उठा लिया, उस पर ध्यान ही नहीं था। हो जाता है। इसके बाद उस कोयले से भूमि पर मैं कुछ लकीरें खींचने लगी। शरीर में **षट्चक्र** हैं, परन्तु वे कुछ दूर-दूर पर हैं, सभी अपने शरीर में अपनी अंगुली से नाप-नापकर खींचने लगी-''किस चक्र या पद्म के कितने दल, कैसा रंग, सभी भीतर से, मूलाधार से सहस्रार सब खींचा। अब तुम्हारे मुख से नाम सुनकर कहती हूँ, पर उस समय कुछ भी ज्ञात नहीं था। खींचकर ही मैं उठ गयी और भोलानाथ से कहा-'एक चौकी से ढाँक दो।' बाद में ज्योतिष और निरंजन के आने पर भोलानाथ ने उन्हें दिखाया।''

हृदय भगवान् का आसन

ऐसी बातें कहने लगी-''हृदय ही सब सुख-दुखों के अनुभव का स्थान है न? फिर वह यथार्थ में है, भगवान् का आसन। जिनका आसन है उन्हें बिठाया न जा सका तो चिर शान्ति नहीं मिलती। उस आसन पर जिस किसी को बिठाओ, तो उसमें अशान्ति ही है। क्योंकि उस पवित्र आसन का सम्मान वह नहीं रख सकता। उसमें तो आना-जाना है, इसलिए जिसका आसन है उसी को बिठाने की चेष्टा करना ही हमें विशेष प्रयोजन है। वह तो सदा ही

उस आसन पर विराजमान हैं उन्हें प्रकट करने की चेष्टा करना ही हमारे साधन-भजन का उद्देश्य है। ऐसा होने पर हमारी सीमाबद्ध मूर्तियों का संस्कार दूर होकर भ्रू-मध्य के चक्र में आने पर अनेक रंगों वाला ज्योतिस्वरूप खिल उठता है।''

आघात देते ही शक्ति जागती है

इतना कहकर माँ हँसते हुए फिर बोली-''देखती क्या थी, जानती हो? जैसे जल देने की व्यवस्था-एक स्थान पर जल डाल देते ही दूसरे ढालू स्थान पर पहुँच जाता है। उसके पश्चात् वहाँ से शायद और एक बड़े स्थान पर जाकर अपने आप पूर्ण हो जाता है। जैसे नदी की गति समुद्र की ओर ही होती है उसी प्रकार मूलाधार से ऊपर की ओर जाने का नियम है। एक स्थान में जाने पर दूसरे स्थान में, तीसरे स्थान में और क्रमश: सहस्रार में।''

मैंने कहा-''किसी-किसी स्थान पर दिखाई पड़ता है कि किसी व्यक्ति के भीतर कितनी ही अलौकिक अवस्थाएँ होती हैं, परन्तु साधन-भजन बाहर से कुछ भी नहीं होता मानो बच्चा है।'' माँ उत्तर में बोली-''देखो, आघात दे सकने से ही हुआ। कभी-कभी ऐसा भी देखा जाता है कि शायद भय खाकर या किसी दूसरे से चोट खाकर उसके भीतर के कई दरवाजे खुल गये। उस समय वह अलौकिक अनेक तत्त्व बतला सकता है। कभी-कभी उनकी ऐसी अवस्था स्थायी भी हो जाती है और कभी स्थायी नहीं रहती। ठीक-ठीक ढंग से यदि इनकी रक्षा होती है तो अनेक क्षेत्रों में विशेष सुफल मिलने की आशा हो जाती है। जो होने को है या जो आवश्यक है कर्म की गति से वह अपने आप ही आ जाता है।''

माँ के स्तुति-मन्त्र कहाँ से आते हैं

फिर भाषा की बात चली। उस पर माँ ने कहा-''देखो, भाषा तो एक-एक शब्द स्मरण कर सीखनी नहीं पड़ती। जब जिन लोगों में रहती हूँ उनका भाव ध्यान में आते ही अपने आप उनकी भाषा भी निकल जाती है। एक-एक शब्द सीखना नहीं पड़ता। याद भी नहीं रखना होता। देखती क्या थी, जानती हो? कभी-कभी हाथ के अक्षर बहुत शुद्ध और सुन्दर हो जाते थे। फिर कभी एकदम अस्पष्ट। एक बार मेरा नाम किसी कारणवश भोलानाथ मुझसे लिखा लेना चाहते थे किन्तु आश्चर्य की बात है इससे पहले चिट्ठी-

पत्री भी तो लिखी हैं परन्तु उस दिन बहुत-सा कागज नष्ट करने पर भी दस्तख्त नहीं हो सके। इसलिए वह मेरे दस्तख्त नहीं करा सके, काम भी नहीं हुआ। ऐसी ही अवस्था थी।

''यह कैसा है, जानती हो? जैसे स्तुति-मंत्र आदि का स्पष्ट उच्चारण होता जाता है फिर कभी तुम लोगों के बहुत कहने-सुनने पर भी कुछ भी नहीं निकलता। तथापि कह सकती हो-फटी पहली पोथी और प्रथम भाग कुछ पढ़ा गया था परन्तु संस्कृत शब्द तो उस विद्या से नहीं आ सकते? स्तुति-मन्त्रादि कहाँ से आते? इसी तरह कभी अपने आप शुद्ध और सुन्दर लेख भी हो जाता था।''

कर्णाली की बात बताते हुए माँ ने कहा-''तुम्हारे चले आने पर एक कोठरी में मैं अकेली रहने लगी। एक दिन देखा कि शरीर न जाने कैसा होता जा रहा है। एकाएक खयाल आया कि बड़ी माँ (भ्रमर घोष) ने एक दिन कृष्ण-लीला की बात पूछी थी किन्तु उस समय कहा नहीं गया। बाद में जो कुछ आ जाय बताऊँगी कहा था, अब खयाल में आते ही मैंने भोलानाथ से कहा-''देखो, मैं जो कुछ बतलाती हूँ उसे तुम बड़ी माँ को लिख भेजो।'' इतना कहकर बोलने लगी-''श्वास की गति भी बदलती जाने लगी। बाबा (स्वामीजी) और भोलानाथ ने शायद सोचा कि मैं कृष्ण की बात करते हुए उस तरह के भाव में आविष्ट होती जा रही थी। परन्तु असल में वैसी बात नहीं थी। वैसा भाव शुरू हो गया। बाद में एकाएक बड़ी माँ की बात याद आते ही मैं वैसी बातें कहने लगी थी। तुम लोग कह सकती हो, बाद में कहने से ही होता परन्तु मुझे तो प्रबन्ध करके ये सब नहीं होते। जब जैसी प्रेरणा होती है, अपने आप होता जाता है।

''इसी तरह कुछ देर तक मैं सोई रही। बाबा और भोलानाथ कुछ समय रहकर अपनी-अपनी कोठरी में सोने चले गये। मैं उसी कोठरी में पड़ी थी। शरीर में तरह-तरह की क्रियाएँ होने लगी। अन्धेरा कमरा, रूमा देवी एक ओर पड़ी थी। मेरे शरीर में अपने आप क्रियाएँ होने लगी। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि दूसरे किसी के घर में घुसते ही क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं।'' मैंने पूछा-''ऐसा क्यों होता है माँ? पहले तुम्हारे भीतर एक प्रकार की क्रिया होती थी और अब दूसरे प्रकार की क्रिया क्यों होती है?'' ज्योतिष दादा ने भी एक बार ठीक इसी तरह का प्रश्न किया था। बहुत दिनों के बाद कीर्तन

में पुनः माँ का भावावेश देखकर उन्होंने कहा था–''लोग पूछते हैं कि जीवन के प्रथम भाग में ऐसी क्रियाएँ हो गयी, उसके बाद अवस्था का न जाने कितना परिवर्तन हो गया, फिर वैसी क्रियाएँ शुरू क्यों हुई।'' इस बात के उत्तर में माँ ने कहा–''तुम लोग ऐसी बात कह सकते हो। साधकों में क्या होता है, जानते हो? मानो एक-एक अवस्था हो जाती है फिर एक नयी अवस्था आती है। इसी तरह उनमें क्रमोन्नति होती है, परन्तु इस शरीर की दूसरी ही स्थिति है इसलिए उलटा-पलटा दिखाई पड़ता है, इन धाराओं में कुछ भी ठीक नहीं रहता। एक बार शायद तुम लोगों की दृष्टि से एक उच्च स्तर की क्रिया शरीर में हो गयी फिर शायद कोई एक साधारण क्रिया ही होने लगी। ऊपर या नीचे नाम से कोई स्थान तो इस शरीर में नहीं है। तुम लोगों को जब जैसी आवश्यकता होती है वही इस शरीर में हो जाता है।'' मेरे प्रश्न का भी आज उन्होंने ऐसा ही उत्तर दिया। शरीर में ज्योति की बात पूछने पर माँ ने कहा–''समय-समय पर कैसा देखती थी, जानती हो? मानो यह शरीर ही ज्योतिर्मय है। मैं जहाँ रहती थी वह स्थान भी मानो उस ज्योति से प्रकाशित हो जाता था।''

शास्त्र और शिष्य

सुबह लगभग 10 बजे माँ उठी, मुँह-हाथ धुला दिये गये। माँ पेड़ के नीचे बैठी। मैं भी बैठ गयी। माँ के आने का समाचार सुनकर बहुत से लोग माँ की चरण-धूलि लेने आकर उन्हें प्रणाम करते हुए कुशल-मंगल पूछकर चले जा रहे थे। मैं माँ के साथ बातें कर रही थी। बात-बात में शास्त्र की बात चली। माँ ने कहा–''**शास्त्र क्या है जानती हो? स्व–अस्त्र, जिस अस्त्र (कर्म) के द्वारा लौकिक संसार–बन्धन काटा जाता है।**'' फिर बात चली–शिष्य क्या है? माँ ने कहा–''स्व+स्व अर्थात् अपना स्वरूप बना लेना। स्वरूपतः जो अभेद है उसे समझा देना अर्थात् प्रकाशित कर देना। फिर शिष्य क्या है? शस्य जमीन में बीज डालकर शस्य उत्पन्न किया जाता है। यह भी वैसे ही जमीन में बीज बोया जाता है। शस्य उत्पन्न करने के लिए यानी फलस्वरूप का प्रकाश।'' माँ की इस बात को सुनकर मुझे एक गाना याद आया–

'मन रे कृषि–काज जानो ना।
ऐ मन मानव जमीन रइलो पतित,
आबाद करले फल्तो सोना।।

अर्थात् रे मन! तुम कृषि का काम नहीं जानते हो। ऐसा उत्तम मानव जमीन परती रह गयी! इसे आबाद करते तो सोना फलता।

आज रात लगभग 2 बजे माँ और मैं सो गयी।

अग्रहायण 25 शनिवार– आज बात-बात से माँ ने कहा–''भगवान् के सिवाय और किसी की लीला नहीं हो सकती। साधक साधन के द्वारा भगवान् के तुल्य बन सकता है किन्तु भगवान् नहीं बन सकता। लीला भगवान् की ही है।''

आज भोर में ही कलकत्ते से यतीश गुहा और शची दादा के घर की स्त्रियाँ तथा नारायण बाबू आये। नानाजी का शरीर बहुत अस्वस्थ है। नानीजी तथा उनकी इच्छा है कि अन्तिम समय वे माँ को एक बार देखें। सभी लोग माँ को वहाँ चलने के लिए अनुरोध करने लगे। अन्त में भोलानाथजी तथा दूसरे लोगों के कहने से निश्चय हुआ कि आज ही दिन के 12 बजे रवाना होकर 4 बजे की गाड़ी पकड़कर रात के साढ़े नौ बजे कलकत्ते पहुँचेंगे। फिर दूसरे ही दिन सुबह 8 बजे की गाड़ी से माँ लौट आयेंगी।

हम लोग जल्दी-जल्दी माँ को लेकर रवाना हुए। बैलगाड़ी से जाना होगा। कुछ विलम्ब हो गया था, इसलिए रामपुर हाट जाकर गाड़ी मिलेगी या नहीं सन्देह होने लगा। इतने में दिखायी पड़ा कि एक भद्र पुरूष एक मोटर में माँ के दर्शन करने के लिए आये हैं। हमारी तैयारी देखकर वे माँ और हम लोगों को अपनी गाड़ी में ले चले। हम तो चल पड़े किन्तु और भी दो-तीन साथी बैलगाड़ी से रवाना हो चुके थे। सभी जानते थे कि उन्हें गाड़ी नहीं मिलेगी। आश्चर्य की बात है कि उस दिन गाड़ी डेढ़ घण्टे लेट आयी। इतने में सभी लोग आ पहुँचे और गाड़ी में सवार हो गये।

रात के 10 बजे हम कलकत्ते पहुँचे। माँ के आने का समाचार बहुत से लोगों को नहीं मिला था। इसलिए आसपास के भक्तों को माँ के आने का समाचार देने के लिए दो-तीन आदमी निकल गये। हम लोगों ने दो-चार मकानों में घूमकर बिड़ला के मन्दिर में लौटने पर देखा कि कुछ भक्त लोग वहाँ उपस्थित हुए हैं। माँ यहाँ कुछ घण्टे रहेंगी, इसलिए कोई नहीं उठना चाहता था। जिन्हें थोड़ा भी शीत सहन नहीं होता था, वे भी बैठे रहे। रायबहादुर सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय, प्राणकुमार बाबू, शचीकान्त घोष आदि

सभी लोग बैठे हुए हैं। रात्रि के लगभग 3 बजे कोई-कोई विदा लेकर चले गये। माँ और हम लोग लगभग 4 बजे सोये।

नानाजी के मृत्यु-समय माँ

अग्रहायण 26, रविवार- आज सुबह 8 बजे की गाड़ी से हम लोग रवाना होंगे। सभी लोग माँ को रखने की चेष्टा कर रहे हैं परन्तु माँ ने मीठी-मीठी बातों से सबको समझा दिया कि अब माँ का यहाँ रहना नहीं होगा। कल ही स्टेशन से आते समय नानाजी को देख लिया गया है। लौटते समय भी पिता और माता से विदा लेकर तथा माँ की चरण-धूलि सिर पर धारण कर माँ स्टेशन की ओर चली। साथ-साथ भक्त लोग भी चले। सबको रुलाकर माँ की गाड़ी रवाना हुई।

केवल मैं और भोलानाथजी ही माँ के साथ गये थे। दूसरे लोग तारापीठ में ही रह गये थे। रास्ते में बातें हो रही थी। एकाएक माँ ने कहा-''देखो ये सांसारिक लोग अपने-अपने सुख-सुविधा के सम्बन्ध में कितनी ही बातें कहा करते हैं, वे सभी प्रलाप हैं। प्रलाप क्या है? जो प्रलय-काल में लय होते दिखाई पड़ता है।

तारापीठ में माँ का विचित्र दर्शन

हम लोग तीसरे पहर ढाई बजे रामपुर हाट पहुँचकर बैलगाड़ी से तारापीठ रवाना हुए। गाड़ीवानों के मुख से सुना कि कल चार-पाँच भक्त तारापीठ गये हैं। अनुमान किया कि जमशेदपुर या बरहमपुर के भक्त लोग होंगे। माँ, मैं और भोलानाथजी एक ही गाड़ी में चले। रास्ते में माँ ने कहा-''देखो, तारापीठ में उस दिन रात को मैं लेटी थी। देखती क्या थी, जानती हो? मानो बहुत से लोग एक रास्ते से गाते हुए चल रहे हैं। कितने आदमी थे, कहा नहीं जा सकता। पर थे वे बहुत ही अधिक। किस प्रकार का रास्ता था? बहुत बड़ा जंगल, एक ओर से नदी बहती जा रही है। नदी के किनारे जंगल के वृक्षों की छाया के भीतर से वे लोग चल रहे हैं और बीच में (अपने शरीर को दिखाकर) यह शरीर उस दल के आगे-आगे दौड़ता हुआ जा रहा है। कभी वृक्ष की ओट में छिप जाता है मानो आँख-मिचौनी का खेल हो रहा है। एक बार बाहर आता है फिर दूसरे ही क्षण छिप जाता है। पीछे के लोग

दौड़ते हुए भाव में विभोर होकर टेढ़े-मेढ़े रास्ते से जा रहे हैं और नाम-रस की ध्वनि से दिङ्मण्डल प्रतिध्वनित करते हुए गाते जाते हैं-

कृष्ण कन्हैया बंशी बजैया
गैया चरैया हारे, रे, रे, रे, रे, ए, ए।

उस स्थान के चारों ओर मानो आनन्द का प्रवाह बहता जा रहा है।

''सुनो, वह सुर किस प्रकार था?'' इतना कहकर माँ फिर गाने लगी-

कृष्ण कन्हैया बंशी बजैया गैया चरैया हारे, रे, रे, रे, रे, ए, ए। फिर हँसते हुए बोली-''आयी हूँ तारापीठ और देखती हूँ कन्हैया, यह कैसा सुन्दर हुआ?'' इतना कहकर मधुर हँसी हँसने लगी।

फिर कहा-''देखो, ऐसी भी अवस्था हो गयी है यदि किसी वृक्ष के तने पर किसी को खरोंचते देखा तो मुझे ऐसा लगता कि इस शरीर (अपने शरीर को दिखाकर) में भी ठीक वैसा ही खरोंचने का निशान होता जा रहा है और क्लेश का अनुभव हो रहा है। इस शरीर के उन भावों की बात कहना तो दूर की बात है किसी के द्वारा कहते सुनने पर भी यह शरीर अकड़ जाता था। शायद कुछ प्रकट हो पड़ा इसी डर से शरीर न जाने कैसा हो जाता था। इस प्रकार अनजाने में न मालूम कैसे-कैसे भाव हो गये उसका किसी को पता भी नहीं था। फिर अब देखती हूँ कि कभी-कभी इन भावों की बात एकाएक जाहिर हो पड़ती है। परन्तु शरीर का शून्य भाव दिखाई नहीं पड़ता था। जो सत्य है वह शरीर के भीतर विभिन्न भावों में प्रकट हो पड़ता है। मैं कुछ नहीं जानती थी, क्यों? ''जानती नहीं थी''-यह बात भी तुम लोगों के हिसाब से ठीक नहीं है। सभी प्रकार के भाव तो उसी जगह हैं न? जो होने को था वह हो ही गया। तुम लोग अपने प्रयोजन के अनुसार जैसे कराते जा रहे हो वैसा ही होता जा रहा है।''

माँ का अपना खयाल और हमारे भाव में भावित खयाल

फिर बात-बात में कहने लगी-''देखो, कभी-कभी ऐसा भी होता है, शायद किसी से बातें कर रही हूँ। ध्यान उधर ही है, इतने में किसी ने आकर पूछा-''माँ यह काम कैसे करूँ?'' उस समय मुख से उत्तर निकला-'करो, करो।'' उसने भी वैसा ही किया। इसमें माँ की आज्ञा नहीं ली गई। उसकी

अपनी इच्छा ही प्रबल रही। यदि कोई ध्यान दे तो समझ सकता है कि माँ कौन बात अपने भाव से कहती हैं और कौन बात लोग अपने भाव में भावित होकर उनसे कहलवा ली है।

हम लोगों ने संध्या के बाद तारापीठ पहुँचकर देखा कि जमशेदपुर से अतुल बाबू, अमूल्य बाबू, खेरेश (पारसी लड़के) आये हैं और श्रीरामपुर से त्रिगुण बाबू तथा कलकत्ते से कृष्ण बाबू भी आए हुए हैं। बात करते हुए रात अधिक हो गयी। सब लोग विश्राम करने चले गए। माँ भी सो गयी।

अग्रहायण 27, सोमवार– आज कलकत्ते से और भी बहुत से लोग आये हैं। आगामी बुधवार यहाँ से चल देने की बात तय हुई है। कल भोलानाथजी तारा माता की पूजा करेंगे। भक्त लोग आयोजन कर रहे हैं। कलकत्ते से पूजा के सामान मँगाये गये हैं।

माँ का पढ़ना–लिखना, पहली पोथी और दूसरी पोथी

दो–तीन दिन पहले रात्रि के समय एक दिन बात–बात में माँ ने कहा था–''देखो, बचपन में पुस्तकें कैसे पढ़ी जाती थी उसका किसी को पता ही नहीं लगा। पहली पोथी शुरू हुई। तुम्हारी नानीजी ने एक दिन मुझे पढ़ाने बिठाया। फिर दो–एक महीने तक खबर ही नहीं ली–पुस्तक भी दिखाई न पड़ी। फिर एक दिन बिठाया। इसी तरह दो–तीन बार बिठाते ही पहली पोथी समाप्त हुई। उसके बाद एक फटी हुई दूसरी पोथी मिली। वह भी दो–चार दिनों में ही समाप्त हो गयी। गाँव के स्कूल में निम्न प्राइमरी कक्षा खोल दी गई। उस कक्षा में मैं भर्ती कर दी गयी। दूसरी पोथी समाप्त होने पर मुझे शिशु पाठ पुस्तक पढ़ने को दी गयी। स्कूल में प्राय: जाया ही नहीं जाता। पुस्तक भी कभी खोली नहीं जाती। कभी थोड़ा खोलकर दो–एक पंक्तियाँ पढ़ी तो आश्चर्य की बात है कि कक्षा में जाने पर शिक्षक ठीक उसी जगह से प्रश्न पूछा करते थे। मैं भी ठीक–ठीक उत्तर दे दिया करती थी। ऐसा किस प्रकार हो गया, इस पर किसी का ध्यान ही नहीं गया।

जैसे बाजितपुर में गृहलक्ष्मी के रूप में रहते समय काली–पूजा होती थी और काली माता का प्रसाद लेने के लिए बहुतों को भोलानाथ बुला लाते थे। परन्तु कुछ भी पता नहीं रहता था। जो कुछ रसोई होती थी, उसी से सब लोग प्रसाद खाकर परितृप्त हो जाते थे। भोलानाथ कहते थे–''काली

माता की कैसी अपूर्व कृपा है कि कितने आदमियों ने प्रसाद पाया परन्तु कुछ भी कम न हुआ।''

बात-बात में माँ ने एक दिन कहा-''देखो, दुनिया के लोग सांसारिक सुख-दुःख की बात कहते रहते हैं परन्तु वह सभी प्रलाप है। पहले ही मैंने बताया है कि प्रलाप का अर्थ है जो प्रलय काल में लुप्त हो जाता है।'' इस पर मैंने कहा-''माँ, ऐसा सुनायी पड़ता है कि प्रलय काल में भी सब कुछ समाप्त नहीं हो जाता। सभी सूक्ष्म रूप से रह जाते हैं।'' माँ ने कहा-''वह कैसा, जानती हो? जैसे वृक्ष फल देकर मर भी जाय तो उसके बीजों में अगणित वृक्ष सूक्ष्म रूप में विद्यमान रह जाते हैं। फिर उन्हीं बीजों से अनेक वृक्ष उत्पन्न होते हैं वस्तुतः संसार में किसी चीज का विनाश नहीं होता। सृष्टि का भी बीज है। सृष्टि स्थिति लय हर समय होते रहते हैं।

माँ का ऋषि भाव

फिर एक दिन उपस्थित लोगों के सामने माँ अपने शरीर के प्रथम जीवन में स्वाभाविक रूप से हँसते-खेलते साधना की क्रियाएँ अपने आप होती जाती थी, उसका प्रसंग उठाकर कहने लगी-''देखो, यह जो नाना प्रकार के मन्त्र और बीज मुख से अपने आप निकलते जाते थे, तुम लोगों के मुख से अब सुन रही हूँ कि प्राचीन समय में मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों के मुख से मन्त्रादि अपने आप निर्गत हुआ करते थे। सम्भवतः वह सब भाव तुम लोगों के प्रयोजन के अनुसार इस शरीर के भीतर से प्रकट होते जाते थे।

अग्रहायण 28, मंगलवार- आज कोई विशेष बात नही है। भक्तों ने दिन भर माँ को लेकर आनन्द-कोलाहल किया। भोलानाथजी को ज्वर हो गया है।

अग्रहायण 29, बुधवार- आज ढाका से राधिका बाबू आये हैं। माँ के साथ बात करते हुए उन्होंने कहा-''माँ, जो मूल में हैं वह जब सत्य-स्वरूप हैं तो मिथ्या कहाँ से आयी? मुझे ऐसा लगता है कि भीतर अज्ञान का पर्दा थोड़ा फट गया है।'' माँ ने हँसकर कहा-''पर्दा थोड़ा भी फट गया तो फिर जुड़ नहीं सकता। जैसे अनार कब पकता है किसी को बतला देना नहीं पड़ता, रंग और गन्ध से ही वह प्रकट हो जाता है और बाहर का पर्दा अपने-आप फट जाता है और एक बार फटने पर फिर नहीं जुड़ता।'' राधिका

बाबू ने हँसकर कहा–''हमारा तो जुड़ जाता है।'' माँ ने कहा–''फटा नहीं है, केवल जरा–सा हिल रहा है, उसी से समझते हो कि फट गया है और सत्य से मिथ्या कैसे आयी? वह कैसा है जानते हो? जैसे समुद्र के बुलबुले समुद्र में ही लय हो जाते हैं, उसका ही एक रूप है, मिथ्या कुछ भी नहीं है।''

बातचीत के बाद कुछ दिन चढ़ने पर माँ नाट–मन्दिर में जा बैठी। भक्त लोग चारों ओर बैठ गये। राधिका बाबू ने माँ से पूछा–''माँ ढाका के लोगों से जाकर क्या कहूँगा?'' माँ ने उत्तर दिया–''क्या कहोगे, जानते हो? कहोगे कि उसी ओर चलते जाओ, रुको नहीं। रुककर न देखो कि मैं कहाँ तक आया? उससे क्या होता है जानते हो? जितना अग्रसर हुए थे वह भी घट गया, इसलिए रुकना नहीं चाहिए। लगातार चलते रहना होता है।''–इतना कहकर माँ हँसने लगी।

बात–बात में शची दादा ने कहा–''माँ, आज एक मुर्दा आ रहा है।'' माँ ने कहा–''सुना है कि यहाँ मुर्दा न आने से माँ **(तारा माँ)** का भोग नहीं होता। वास्तव में ही तो जो असत्य और अनित्य है वह समाप्त हुए बिना माँ के भोग में सत्य वस्तु नहीं लग सकती।'' इतना कहकर फिर हँसते हुए बोली–''जो नित्य और सत्य है वह भोग में कैसे लगेगा? बात समझाने के लिए ऐसा कहा जाता है।''

तारापीठ त्याग, माँ का नाम क्या है, घर कहाँ है

सुबह उठकर ही माँ ने कहा–आज ही जायेंगी। पहले ही निश्चय हुआ था कि आज ही जायेंगी। इसलिए भोलानाथजी का शरीर अस्वस्थ रहने पर भी आज ही रवाना होना स्थिर हुआ। आज भोलानाथजी ने तारा माता की पूजा की। कलकत्ते, बहरमपुर और जमशेदपुर के बहुत से भक्त लोग उपस्थित हैं। बड़ी धूम–धाम से पूजा आदि सम्पन्न हुए। लगभग 4 बजे भोग होने के बाद सबने प्रसाद पाया। रात के 11 बजे यहाँ से रवाना होकर रात्रि के साढ़े तीन बजे रामपुर हाट जाकर गाड़ी पकड़नी होगी। भोग होने के पहले नाट–मन्दिर में बैठकर माँ गा रही थी, भक्त लोग भी साथ–साथ गा रहे थे–

कृष्ण कन्हैया, बंशी बजैया।
गौ चरैया हारे, रे, रे, ए, ए।

भोग के बाद छोटे कमरे में माँ को दरवाजा बन्द कर लिटा दिया गया। बाहर एक आदमी आकर भक्तों से पूछ रहा था–"माँ का नाम क्या है? घर कहाँ है?"–इत्यादि। भीतर से माँ सुन रही थी। थोड़ी देर बाद वह उठ बैठी। फिर हँसकर बोली–"बाहर कौन उन बातों को पूछ रहा था? मेरे मुख से निकल रहा था, अव्यक्त धाम, स्वरूप ग्राम, सच्चिदानन्द घनश्याम नाम।" इतना कहकर शिशु की तरह सरल हँसी हँसने लगी। भक्त लोग भी इन बातों को सुनकर आनन्द करने लगे।

एक पंडे की पत्नी ने माँ के लिए थोड़ा दूध और गुड़ के लड्डू भेज दिये। माँ चली जायेंगी यह जानकर ये गरीब गृहस्थ जो कुछ हो सके माँ की सेवा के लिए लाया करते हैं, मानो अपनी लड़की बहुत दिनों के बाद आयी है। बहुत कुछ वैसा ही भाव है। फिर पंडे और उनकी स्त्रियाँ कहते थे–"हमारी तारा माँ और आप एक ही हैं।"

हम सदल–बल रात के 11 बजे रवाना हुए। चाँदनी रात थी। 12–14 बैलगाड़ियाँ हमें तथा हमारा सामान लेकर चलने लगी। लगभग दो बजे हम लोग रामपुर हाट पहुँचे। वहाँ से साढ़े तीन बजे की गाड़ी से चलकर माँ के साथ वर्धमान आकर 12 घंटे के लिए हम लोग वहाँ रुक गये।

पौष1, बृहस्पतिवार– आज भोर से हम लोग वर्धमान पहुँचकर कुछ देर वहाँ रुके। उसके बाद सिक्खों की एक धर्मशाला में आये। शची दादा के परिचित एक सज्जन के घर में सबके खाने–पीने का प्रबन्ध हुआ। कल रात को गाड़ी में कमल ने माँ से पूछा था–"माँ, क्या स्वप्न सत्य है?" माँ ने कहा–"जिस प्रकार संसार सत्य है वैसे ही स्वप्न भी सत्य है, परन्तु कभी शायद बीती घटना देखते हो और कभी शायद भविष्य की घटना देखते हो। सभी संस्कार के खेल हैं।"

माँ घर के भीतर नहीं जायेंगी। बाहर खड़ी रह गयी। नानाजी की चौकी दरवाजे के पास ला देने पर उस पर बैठ गयी। सभी लोग बातचीत कर रहे थे। इतने में नानाजी ने माँ की ओर देखकर माँ, माँ, माँ, कहकर तीन बार पुकारा। बाद में माँ कहकर लम्बी साँस छोड़ते हुए चुप हो गये। माँ ने भी उनके इस भाव पर विशेष ध्यान दिया। उनके उस समय का भाव देखकर ऐसा लगा मानो माँ के प्रति थोड़ी देर के लिए कन्या–भाव दूर होकर उनमें मातृ–भाव जगा।

इसके बाद जिस दिन हम लोग तारापीठ आ पहुँचे थे, उस दिन रात को माँ लेटे-लेटे देख रही थी-मानो नानाजी कह रहे हैं- ‘लो’। माँ ने उत्तर दिया-‘‘अभी मेघ है।’’ उन्होंने पूछा-‘‘इस मेघ से क्या होगा?’’ इसका आशय बहुत कुछ ऐसा है मानो नानाजी माँ से अपने को ग्रहण करने के लिए अनुरोध कर रहे हैं और माँ कह रही हैं कि अभी मेघ है अर्थात् अभी तक कर्म का बन्धन है। उन्होंने कहा-‘‘इससे क्या, मुझे लो।’’ ठीक ऐसा ही भाव है।

माँ मुझसे कहने लगी-‘‘देखो, मैं देखती हूँ कि पतला मेघ छट भी सकता है।’’ इतना कहकर अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी हँसते हुए फिर बोली-‘‘तुम्हारी नानी शायद विपत्ति में पड़कर इस शरीर की बात बहुत याद कर रही हैं उसी का प्रभाव समय-समय पर इस शरीर में प्रकट हो रहा है।’’

माँ धर्मशाला में आकर बहुत देर तक लेटी रही, कुछ भी नहीं खाया। तीसरे पहर माँ उठकर बैठ गयी। गत रात्रि में माँ वर्धमान आयेंगी सुनकर कलकत्ते से अनेक व्यक्ति आकर लौट गये हैं। आज भी कलकत्ते से प्राणकुमार बाबू की पत्नी और कन्या, यतीश गुहा, रायबहादुर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और उनकी लड़की ननी आदि माँ को देखने आये हैं।

सन्ध्या साढ़े छः बजे की गाड़ी से जाने के लिए माँ सबको साथ लेकर स्टेशन पर आ बैठी। नरेश दादा, अमूल्य दादा, लक्ष्मी दादा, यतीन दादा आदि भक्त माँ को घेरकर बैठे हैं। माँ के समीप स्त्रियाँ ही अधिक बैठी हैं। इससे पुरूषों में बातचीत होने लगी कि स्त्रियाँ ही माँ के निकट बैठ सकती हैं। इस प्रकार आनन्द-कोलाहल के बीच में यथासमय गाड़ी आ गयी। उस समय बहुतों की आँखें डबडबा आयी। सबको रुलाकर माँ गाड़ी में जाकर सवार हुई। जमशेदपुर के भक्त लोग माँ के साथ आसनसोल तक जा सकेंगे। इसी से वे प्रसन्न हैं। पारसी लड़का (खेरेश), माँ ने उसका नाम दिया था केशवानन्द, वह भी जमेशपुर से आया है। फिर माँ का दर्शन कब होगा इसी चिन्ता में हम लोग व्याकुल थे।

माँ के साथ भोला-अभय

यथा समय गाड़ी छूटी। रात के 10 बजे जमशेदपुर के भक्त लोग आसनसोल उतर गये। माँ लेट गयी। अब की बार हमारे साथ अटल दादा के

भांजे कमल का एक साला जा रहा है उसका नाम है भोला। उम्र 16-17 साल होगी। आई.ए. पढ़ रहा है। इतने में अभी से बहुत अच्छा वैराग्य का भाव दिखलाई पड़ रहा है। लड़का हरिद्वार जाना चाहता था, इस कारण माँ को पाकर माँ के साथ चल पड़ा है। बात तय हुई कि माँ काशी में उतरेंगी और वहाँ से हरिद्वार की ओर जाना होगा। हरिद्वार, ऋषिकेश या देहरादून कहाँ रहना होगा, अभी निश्चय नहीं हुआ।

पौष 2, शुक्रवार– आज भोर में ही माँ के साथ हम लोग काशीधाम आ पहुँचे। पहले वीरेश्वर पांडे धर्मशाला में उतरे। बाद में स्वर्गीय निर्मल बाबू की पत्नी के आग्रह से हरि की धर्मशाला में जाना हुआ। स्वामी अखण्डानन्दजी को भी माँ ने ढाका जाने के लिए कहा। मेरे लिए भी वही आदेश है। माँ के साथ काशी आने की आज्ञा पाकर मैं उनके साथ काशी आयी हूँ। रूमा देवी भी साथ हैं। माँ के आने की खबर सुनकर दोपहर को बहुत से लोग माँ का दर्शन करने आये हैं। रात के 10 बजे तक सब लोग माँ के पास बैठे रहे।

नानाजी का शरीर त्याग

पौष 3, शनिवार– तारापीठ छोड़ने के पूर्व दिन यानी अग्रहायण 27, मंगलवार से भोलानाथजी बात कर रहे हैं। ज्वर बहुत अधिक था। उसी स्थिति में वह मातृ-संगीत गाने लगे और बाद में बातचीत करना आरम्भ किया। कल तार आया है कि नानाजी (माँ के पिता) का पौष 1, बृहस्पतिवार रात्रि 11 बजे के समय देहान्त हो गया है। माँ ने तो कहा था कि 'थोड़ा मेघ है।' मृत्यु का समाचार पाकर माँ ने कहा "तीन दिन के बाद ही मृत्यु हुई है। मेघ तो कुछ था ही, वह भी छँट गया था।"–तार पाने पर माँ ने कहा–"आने के साथ जाना भी लगा है।"

माँ की बात हम लोग पहले ही जान चुके थे कि अब की बार नानाजी चल बसेंगे। 71 वर्ष की उम्र में उन्होंने शरीर छोड़ा था। वह बहुत गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति थे। इस खबर से माँ के भाव में कोई परिवर्तन न देखकर बच्चू की माँ ने पूछा–"माँ, तुम तो जानती थी तो आते समय नानाजी को देख क्यों नहीं आयी। ऐसी खबर सुनकर भी तुम्हारे भाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। माँ तुम कैसी कठोर हो।" माँ हँसने लगी, फिर बोली–"मैं भी

उस दिन (जिस दिन कलकत्ते जाना हुआ था) पिताजी को कह आयी थी– 'पिताजी मैं जाती हूँ।' उस पर उन्होंने कहा–''अच्छा बेटा जाओ।'' मुझे तो उन्होंने पहले ही विदा कर दिया है।'' बाद में मुझसे कहा–''गाड़ी से जब हम लोग बृहस्पतिवार को काशी आ रहे थे तब ठीक उसी समय मुझे सब कुछ स्पष्ट प्रतीत हो रहा था, यहाँ तक कि किस स्थान पर क्या हो गया था। वहाँ जाने पर दिखाया भी जा सकता था। ठीक–ठीक होगा।''

कल रात्रि से ही भोलानाथजी माँ से कह रहे थे–''हजार हो, बाप ही तो हैं। तुम्हें कुछ करना चाहिये। व्यवहार में तुम तो बहुत कुछ करती आयी हो। तुम लड़की हो, तुम्हें बाप के लिए कुछ करना आवश्यक है।'' माँ बोली–''बाप तो सभी हैं, मैं तो 'नहीं करूँगी' या 'करूँगी' ऐसा कुछ भी नहीं कहती, जो कुछ तुम लोग करा सको, करा ही लेते हो। तुम लोगों के भावों के साथ मेल रखकर यह शरीर तो बहुधा चल ही रहा है। जब वह नहीं होता तो मैं क्या करूँ? बताओ। जो हो जाय, मैं कुछ नहीं बोल सकती।'' इतना कहकर माँ चुप हो गयी। भोलानाथजी ने कहा–''अपना कर्त्तव्य मैं करूँगा।'' खबर सुनकर भोलानाथजी के नेत्रों में आँसू आ गये थे। उनका हृदय बहुत ही कोमल है।

काशी में अवस्थान

अस्तु, उन्होंने (भोलानाथजी) चौथे दिन कुछ ब्राह्मण–भोजन और दान का प्रबन्ध करने को कहा। माँ बोली–''तुम्हें ब्राह्मण–भोजन कराने की इच्छा हुई है तो बच्चू के घर उसका इन्तजाम करो। धर्मशाला में ये सब न करो।'' यही तय हुआ। माँ अब की बार जब कलकत्ते गयी थी तभी फूफीजी से कह आयी थी कि ''अच्छी तरह सेवा करना।''

आज माँ सुबह ही उठकर बैठी हैं। धीरे–धीरे दो–चार व्यक्ति आने-जाने लगे। एक ने पूछा–''अच्छा माँ किसी को यदि घूमते–फिरते रहने की इच्छा हो तो घूमना उचित है या नहीं?'' माँ ने उत्तर दिया–''क्यों घूमोगे?'' उस व्यक्ति ने कहा–''कोई उद्देश्य नहीं है, ऐसे ही एक इच्छा उत्पन्न हुई है।'' माँ ने कहा–''उद्देश्य–रहित हो ही नहीं सकता। एक उद्देश्य भीतर रहता ही है। तुम जो कहते हो उद्देश्य नहीं है यह भी एक उद्देश्य ही है। अच्छी बात है जब घूमने–फिरने का खयाल आया है तो वही करो और इससे वासना की

निवृत्ति कर लो। ऐसा भी हो सकता है कि किसी स्थान में जाने पर या कुछ दिन घूमने के बाद इस भाव की निवृत्ति अपने आप हो जायेगी।''

एक महिला ने कहा-''माँ, नाम लेने के लिए बैठते ही नींद आती है, प्यास लगती है, नाम करने की इच्छा ही नहीं होती।'' माँ ने कहा- ''अच्छी बात है जब नींद आए तो थोड़ा सो लेना, फिर उठकर नाम करने बैठना। जब प्यास लगे तो पानी पीकर फिर नाम करने बैठ जाना। जल पी लिया तो पूजा कैसे करूँगी? ऐसा भाव मन में न रखना। तुम्हें नाम करना चाहिये। जिस ढंग से ही हो करना ही होगा-ऐसा भाव मन में रखना।''

माँ के मुख से नानाजी की बात

दोपहर को बहुत से लोग चले गये। माँ के सामने मैंने नानाजी की बात चलायी। बात-बात में माँ नानाजी के बचपन की बात बताने लगी-''सुना है कि पिताजी को थोड़ी उमर में भी गृहस्थी के प्रति आसक्ति बहुत ही कम थी। विवाह के पहले भी एक बार घर से निकल गये थे। फिर कुछ दिनों के बाद पकड़कर लौटा लाये गये थे। बाद में विवाह होने पर फिर निकल गये थे। इस बीच में लाल वस्त्र भी पहने थे। उसके बाद एक लड़की होकर मर गयी। उसके अनन्तर इस शरीर का प्रकाश हुआ था और उसके अनन्तर क्रमशः तीन लड़के हुए। परन्तु पिताजी हमारे साथ कभी भी हेल-मेल नहीं रखते थे। बहुत दिनों के बाद घर आये, यहाँ तक कि पुत्र-कन्याएँ उन्हें पहचान न सकने के कारण डर भी गए थे, मानो कोई अजनबी आदमी आये हैं। वह अपने भाव में भगवद्-भजन करते हुए विभोर रहते थे। विवाह करने के बाद भी सुना है कि रात्रि में कभी-कभी घर नहीं आते थे। भजन में ही बिता देते थे। भगवान् के संगीत में वह प्रायः लवलीन हो जाया करते थे। असल में तुम्हारे नानाजी और नानीजी का जीवन एकदम भिन्न प्रकार का था। बाहर से उसे जानने का कोई उपाय ही नहीं था। सन्तानें होकर मर गयी वह भी जन्म की पूर्ति करने के लिए हुआ था। इसके भीतर और भी अनेक बातें हैं जो साधारण मनुष्य नहीं समझेंगे।''

नानाजी को क्रोध था। उस बात को चलाने पर माँ ने कहा-''किसी ने कहा था कि जीवन्मुक्त महापुरूषों में भी एक-एक भाव प्रबल दिखाई पड़ता है, जैसे क्रोध इत्यादि। ध्यान देने पर पता चलता है कि कोई रिपु के वशीभूत

है और किसी के शरीर के भीतर से वह भाव अपने आप निकलता जा रहा है। तुमने तो देखा है कि पिताजी जब क्रोध करते थे तब वह क्रोध भयंकर था जो साधारण मनुष्यों में नहीं दिखाई पड़ता। फिर दूसरे ही क्षण पानी-पानी। यह भाव समझना कठिन है।'' इतना कहकर नानाजी के शरीर-त्याग के समय के और भी अनेक सुन्दर-सुन्दर भावों की बात बतायी। मुझे आश्चर्य हुआ कि हम लोग बाहर से कुछ भी समझ नहीं सकते।

आज दोपहर को एक कश्मीरी भक्त के घर से, बच्चू के मकान से तथा और भी एक डॉक्टर के यहाँ से माँ के लिए भोजन आयेगा। माँ खाने से पहले लेट गयी। माँ ने बात-बात में एक दिन बताया-''देखो, कभी-कभी ऐसी बात चलती है कि 'यह काम करो' किन्तु तुम लोग देखती हो कि वह काम नहीं हुआ। शायद सोचती हो कि माँ ने कह दिया तो भी वह अच्छा काम नहीं किया जा सका। ऐसा क्यों? मैं कहती हूँ यदि कोई अच्छा काम करने की इच्छा करें और बाहर वह काम नहीं किया जाये तो भी केवल शुभ इच्छा के कारण ही एक शुद्ध क्रिया हो जाती है। जान लेना कि कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता है। जैसे कि लोग कहते हैं 'काशी के लिए यात्रा करके मार्ग में मरने पर भी काशी-प्राप्ति का फल होता है।' इसीलिए मन में सदा शुद्ध भाव रखना आवश्यक है।''

तीसरे पहर कुछ लोग आये हैं। एक महिला ने माँ से पूछा-''माँ, आप जिस प्रकार सदा आनन्द में हैं उस आनन्द को अपने हृदय में कैसे रखा जा सकता है?'' माँ ने हँसकर उत्तर दिया-''अपनी धोती को कैसे पकड़ रखती हो? शोक, दुःख, आँधी, पानी कुछ भी क्यो न हो अपनी धोती को ठीक ही रखती हो, धोती को रखना ही होगा, इस प्रकार प्रयोजन-बोध विशेष रूप से होने के कारण ऐसा ही एक अभ्यास हो गया है कि जरा-सा खिसकते ही समेट लेती हो। उसी प्रकार के अभ्यास से इस आनन्द को भी पकड़कर रखा जा सकता है।'' वह महिला प्रसन्न होकर बोली-''ठीक बात है, गीता में भी भगवान् ने कहा है कि अभ्यास-योग से ही सब हो सकता है।'' रात के लगभग 1 बजे माँ सो गयी।

पौष 4, रविवार- आज सुबह ही कुछ स्त्री-पुरुष आये हैं। एक सज्जन ने माँ से पूछा-''माँ, योग कैसे हो सकता है?'' माँ ने हँसकर उत्तर दिया-''वियोग हुआ किसके साथ?'' बाद में फिर से कहा-''यह जो बोध है-

कहाँ, उन्हें तो देख नहीं पाता, उनके साथ तो तेरा योग नहीं है–यह जो वियोग का सा भाव है, उसी को पकड़ने के लिए हठयोग, राजयोग आदि किये जाते हैं। गुरुस्थान और गुरुशक्ति से ही सब कुछ आ जाएगा।'' सज्जन ने कहा–''माँ सुना है कि गुरु की परीक्षा कर लेनी होती है और शिष्य की परीक्षा कर लेना भी आवश्यक है।'' प्रश्न समाप्त होने से पहले ही माँ ने कहा–''वह कैसा है जानते हो? जैसे लड़की का विवाह करने से पहले दामाद की जाँच कर ली जाती है। विवाह हो जाने के बाद फिर कोई बात नहीं चलती। गुरु अपने को स्वयं प्रकट न करें तो शिष्य उन्हें कैसे पहचान सकेगा?'' एक दूसरे सज्जन ने पूछा–''माँ, इसे क्या कहते हैं? उसका नाम क्या है?'' माँ ने उत्तर दिया–''देखो, जानने के विषय का अन्त नहीं है, सभी अनन्त हैं। इस प्रकार के प्रश्न पूछकर 'कैसे आँखे खुलेंगी?' ऐसा प्रश्न करना ही अच्छा है। हर समय हर बात का उत्तर आता भी नहीं है। तुम लोग भी कहलवा नहीं सकते। शायद प्रयोजन भी नहीं है।''

आज भोलानाथजी माँ के द्वारा नानाजी के पारलौकिक कार्य करायेंगे। सब प्रबन्ध हो गया है। षोडश दान की व्यवस्था हुई है। सब चीजें सजाकर भोलानाथजी माँ को उसी कमरे में बुलवा लाये। माँ आकर आसन पर बैठ गयी। पण्डित गुरुप्रसन्न भट्टाचार्य महाशय मंत्र पढ़ाने लगे। माँ आसन पर बैठते ही बोली–''दान ग्रहण किस कारण? जो दान देते हैं वही तो ग्रहण करते है।'' उसके बाद आसन पर बैठा हुआ माँ का शरीर एकदम निश्चल हो गया। भोलानाथजी माँ को छूकर फूल–जल छिड़कते हुए दान–कार्य करने लगे। माँ का शरीर मानो एकदम शून्य है। आँख की दृष्टि नीचे की ओर निष्पलक है। भोलानाथजी जहाँ तक सम्भव था माँ का हाथ पकड़कर फूल–जल का स्पर्श कराने लगे। इसी प्रकार श्राद्ध–कार्य समाप्त हुआ। जिनके सारे कर्म समाप्त हो गये हैं, देहात्म–बुद्धि ही नहीं है, लोकाचार के अनुरोध से उन्हें भी कर्म कराने के लिए बिठा दिया गया। माँ ने कहा–''मैं तो करूँगी या न करूँगी, कुछ भी नहीं कहती। जो होने को होता है वह हो जाता है।'' वास्तव में हम लोग देखते हैं कि माँ ऊँचे या नीचे किसी भी स्तर पर खड़ी नहीं हैं। इसी कारण सभी कार्य वह सामंजस्य के साथ कर सकती हैं।

फिर तपस्या का स्तर दिखाने के लिए शायद माँ अपने शरीर से एक–एक स्तर में एक–एक अवस्था ठीक–ठीक अन्त तक प्रकट करती हैं। उस

समय इन कामों में सामंजस्य नहीं रहता था परन्तु अब माँ के सभी कार्य सामंजस्य के साथ चल रहे हैं। इसलिए हम भी यथासम्भव करा लेते हैं।

दोपहर का खाना-पीना होते ही दिन ढल गया। लगभग 3 बजे माँ खाने पर बैठकर बोली-"आज एक बार विन्ध्याचल घूम आया जाय तो कैसा? देखो तो कितना बजा है?" अनेक व्यक्ति उस समय माँ के दर्शनों के लिए आये हुए थे, परन्तु माँ का खयाल-उसी समय जल्दी-जल्दी खाना-पीना समाप्त कर माँ विन्ध्याचल के लिये रवाना हो गयी। इलाहाबाद से जितेन्द्र चन्द्र मुखोपाध्याय महाशय आये हुए हैं। उन्हीं के साथ माँ विन्ध्याचल चल पड़ी। मैं भी साथ गयी। कुछ आवश्यक कार्य के लिए भोलानाथजी नहीं जा सके, परन्तु माँ रवाना हो गयी हैं इसलिए हम दोनों उनके साथ चले। सन्ध्या के बाद हम लोग विन्ध्याचल पहुँचे। एकाएक माँ को पाकर वहाँ के सभी लोग प्रसन्न हो उठे। माँ श्रीयुत् महेश बाबू को देखने गयी। पंचवटी देखी। रात्रि में वहाँ रहकर भोर 5 बजे महेश बाबू की मोटर से विन्ध्याचल स्टेशन पर आकर हम लोग साढ़े छः बजे की गाड़ी में सवार हुए।

पौष 5, सोमवार- सुबह साढ़े नौ बजे हम लोग काशी पहुँचे। माँ आते ही हाथ-मुँह धोकर चादर तानकर कुछ घंटे लेटी रही। उसके बाद धीरे-धीरे भक्तों का समागम होने लगा। माँ भी सबके साथ वार्तालाप करने लगी। माँ की मधुर हँसी और बात से सभी लोग आनन्दित हो रहे हैं। बात-बात में माँ ने कहा था-"उनको पकड़े रहने से गिरने का डर नहीं रहता।"-ऐसी ही बातें कहने लगी।

माँ की साधना की बात

कुछ दिन पहले एक बार बात-बात में माँ ने कहा था-"पहले शरीर के भीतर से साधन की जो क्रियाएँ हो गयी हैं उनमें पूजा, यज्ञ आदि सभी तो इसी शरीर के भाव से हो गये हैं। मानो यज्ञ करने बैठी तो अंगुली से जमीन पर मंडल अपने आप खींचा गया। सामने पूजा की कोई साम्रगी नहीं थी। केवल भाव से ही शरीर में क्रिया होती जाने लगी। एक बार ज्यों ही याद आया, उस समय भी वैसा ही हुआ था। इस समय भी वैसा ही करती हूँ। ऐसी इच्छा होते ही अंगुलियाँ टेढ़ी-मेढ़ी हो जाती थी, फिर कुछ देर हाथ बिल्कुल स्थिर हो जाता था। मैं भी उसी तरह जब शरीर को छोड़कर बैठी

रहती थी तब फिर धीरे-धीरे हाथ भी ठीक-ठीक स्थान पर जाकर अंगुलियाँ चलने लगती थी। मंडल खिंच गया-इसी प्रकार चमत्कारी दृश्य मैं देखती रहती थी। किसी प्रकार का संस्कार लेकर काम नहीं होता था।

फिर देखो, किसी के द्वारा किसी साधु की जीवनी या गीता, भागवत आदि सुनाने पर थोड़ा सुनते न सुनते ही भाव में ऐसा परिवर्तन हो जाता था कि सुनने लायक अवस्था ही नहीं रह जाती थी। इसमें किसी प्रकार की अवज्ञा का भाव बिन्दुमात्र भी नहीं रहता था। शरीर में ही ऐसा एक परिवर्तन अपने-आप हो जाता था।'' मैंने कहा-''किसी प्रकार के अनुकरण या संस्कार का भाव तो तुम्हारे भीतर काम नहीं कर सकता। इसी कारण शरीर में ऐसा परिवर्तन होकर तुम बाहर कुछ भी नहीं सुन सकती थी।''

बहुत दिन पहले की घटना माँ ने बतायी। ऋषिकेश में पूर्णानन्द स्वामी का आश्रम है। माँ जिस समय ज्योतिष दादा को साथ लेकर कुछ दिन ऋषिकेश में थी तब पूर्णानन्द स्वामी लोगों के मुँह से माँ की बात सुनकर भी पहले माँ से मिलने नहीं आये। साधु-समाज को स्त्रियों से बातचीत करना पसन्द नहीं था। बाद में परिचय पाने पर अनेक साधु माँ के दर्शन करने के लिए आने लगे। पूर्णानन्द स्वामी ने स्वयं न आकर एक शिष्य के द्वारा माँ के पास एक प्रश्न भेज दिया तथा उसका उत्तर ले जाने के लिए कहा। शिष्य ने आकर माँ से पूछा-''आपको स्वप्न किस प्रकार का होता है?'' माँ ने उत्तर दिया-''**अज्ञान अवस्था में ही निद्रा होती है। उस निद्रा में ही स्वप्न होता है। जिसे अज्ञान नहीं है उसे निद्रा भी नहीं है,** स्वप्न कहाँ से आएगा? और यदि कहो, जो कुछ दिखायी पड़ रहा है सभी स्वप्न हैं तो उसमें भी भेद है।'' माँ के मुख से इस प्रकार का उत्तर सुनकर वह बहुत ही प्रसन्न हुए थे। उसके बाद वह माँ को ले जाकर बहुत आदर-यत्न करने लगे। माँ उन्हें बाबा कहकर पुकारती थी। उन्होंने कई बार अपने हाथ से पकाकर माँ को खिलाया था।

आज बात-बात में किस-किस स्थान पर माँ की इच्छा प्रगट हुई है ऐसी बात चलने पर माँ बोली-''देखो यह जो इच्छा देख रहे हो यह भी तुम्हारे ही भाव से प्रकट हो रही है। वास्तव में इस शरीर के भीतर इच्छा और अनिच्छा के नाम से कोई वस्तु नहीं है। क्या बीज में ऐसी इच्छा हो सकती है कि मैं वृक्ष बनूँगा। क्या वृक्ष में ऐसी इच्छा हो सकती है कि लोग मेरे पास आएँ और मैं उन्हें छाया दूँ? जिस प्रकार वैसा नहीं है, स्वाभाविक

रूप से ही वह सब होते जा रहे हैं उसी प्रकार इस शरीर में इच्छा की तरह जो भाव प्रकट होता है वह भी स्वाभाविक है। तुम्हारी ही आवश्यकता के अनुसार वह भाव निकलता जा रहा है।''

नानाजी की मृत्यु के समय संन्यास मंत्र देने की बात मैंने चलायी। माँ बोली–''तुम लोग मन्त्र या दीक्षा की बात कहती हो पर मैं कहती हूँ कि पिताजी के साथ तो मैंने अनेक बातें ही की हैं। यह भी एक प्रकार की बात निकल गयी है।'' इच्छा के विषय में फिर कहा–''देखो, इस शरीर से जो तुम लोग करा लेती हो वही होता जा रहा है। तुम लोग कीर्तन का आयोजन करके कीर्तनादि करते हो। कीर्तन में जो भाव होता है वह इस शरीर से हो गया है फिर तुम लोग काली–पूजा का आयोजन करके इस शरीर के सामने लाये हो, पूजा का भाव भी इस शरीर में प्रकट हुआ है। फिर तुम लोग संन्यास लेकर मेरे पास आये हो (मानसरोवर की बात) संन्यास का मंत्र मुँह से निकल गया। मैंने तो कुछ भी नहीं कहा। तुम लोग जो जिस भाव से उपस्थित हुए हो उसने उसी भाव से इस शरीर को भावित कर लिया है, उन–उन भावों की क्रियाएँ प्रकट कर ली हैं। इसमें इच्छा या अनिच्छा का भाव मेरे भीतर कुछ भी नहीं हैं।'' आज भी अधिक रात्रि तक सब लोग बैठे रहे। आज आते समय गोदावरी को साथ लाये हैं। वह माँ के साथ हरिद्वार जायेगी।

ज्ञानपापी, काला नाग और विश्री मीठी हँसी

पौष 6, मंगलवार– आज माँ भोर में ही उठी हैं। बहुत से लोग दर्शनार्थ आये हैं। बातचीत चल रही है। बात–बात में रामतारण बाबू का प्रसंग चला। वह गंभीर प्रकृति के व्यक्ति हैं परन्तु बहुत रसिक भी हैं। एक–एक बात जो वह कहते हैं उसका मूल्य है। उन्होंने माँ के तीन नाम रक्खे हैं– (1) ज्ञानपापी (2) कालानाग (3) विश्री मीठी हँसी। अर्थ बतलाया–काला नाग यानी जहरीला साँप एक बार डस ले तो विष नहीं उतरता। माँ को जो एक बार पहचान सका है वह कभी छोड़ नहीं सकता। दूसरा ज्ञानपापी यानी अपने में सारी शक्ति के रहते हुए भी हमें कुछ नहीं देती। तीसरा विश्री मीठी हँसी–यानी विशेष श्री युक्त मीठी हँसी। इस व्यक्ति की बातें इसी ढंग की थी। माँ को देखते ही इनके नेत्रों में आँसू आ जाते थे।

आज माँ के हाथ के लिखे कृष्ण के शतनाम का कुछ अंश सुबह

निकालकर मैंने सबको पढ़ सुनाया। लेख में अनेक अशुद्धियाँ थी परन्तु अक्षर बहुत ही सुन्दर थे। इसे लेकर लोग खूब आनन्द-कोलाहल करने लगे। माँ के भीतर एक चमत्कार यह है कि कभी तो बहुत सुन्दर लेख लिखती हैं फिर कभी शायद अपने नाम का दस्तखत करना भी कठिन हो जाता है। जब जैसा प्रयोजन होता है वैसा ही हो जाता है। लेख में भी दिखाई पड़ता था कि एक स्थान पर जो शब्द ठीक लिखा गया है दूसरे स्थान पर वही शब्द अशुद्ध लिख दिया गया है। ऐसी-ऐसी बातें हो रही थी। माँ ने कहा-''मैं तो तुम्हारी तरह अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती। जब जैसा हो जाय।''

तीसरे पहर भक्तों के साथ बातें हो रही थी। अनेक लोग बैठे हुए थे। कुमुद भट्टाचार्य आ गये। शान्ति की बात चली कि शान्ति कैसे मिल सकती है? माँ ने कहा-''दूर का अन्त होने से ही शान्ति होती है। जब तक वह दूर है, ऐसा बोध है, तब तक ही अशान्ति का बोध है।'' एक आदमी ने कहा-''माँ, सब समझता हूँ किन्तु कुछ कर नहीं पाता।'' माँ हँसकर बोली-''बाबा ठीक-ठीक समझा नहीं जाता, समझने पर कर्म से ही वह प्रकट होता है।'' कैसे समझा जाय? इस बात के उत्तर में माँ बोली-''अन्धविश्वास, गुरु की आज्ञा के अनुसार काम करते चलो। गुरु-शक्ति से सब कुछ पा जाओगे। विश्वासमात्र ही अन्धा है। विश्वास के चक्षु नहीं हैं।''

कृष्ण-तत्त्व

विभिन्न मनुष्यों के विभिन्न भाव माँ के निकट आने पर प्रकट हो जाते हैं। माँ भी जिसका जैसा भाव है उसी ढंग से बात कहकर उसे शान्त करती हैं। सभी लोग माँ की बात से आनन्द पाते हैं। बहुत से लोग खाना-पीना भूलकर माँ के समीप बैठे हुए हैं। रात के 10 बजने पर सब लोग उठे। कल 10 बजे माँ के हरिद्वार चलने की बात निश्चित हुई है। माँ की आज्ञानुसार मैं कल ही कलकत्ते रवाना होऊँगी। भोलानाथजी भी नानाजी के श्राद्ध के उपलक्ष्य में कलकत्ते जा रहे हैं। तारापीठ जाते समय बैलगाड़ी में बैठे-बैठे माँ कृष्ण-तत्त्व कह रही थी-एक गाय देखकर कहने लगी ''देखो गौ तो पशु है, पशु माने पशु की वृत्ति है। उन वृत्तियों के रक्षक रखवाला क्या करता है? वह गौओं की इस ढंग से रक्षा करता है कि उससे प्रचूर दूध मिले। दूध है शुक्लवर्ण, शुक्लवर्ण ही सत्त्व गुण है।''

''वृत्तियों की भी ठीक उसी तरह रक्षा करनी होती है जिससे उनके भीतर से सत्त्व गुण निकल सके। उसके बाद मंथन के द्वारा सत्त्व गुण का सार मक्खन निकल आया। उस मक्खन की परिणति कहाँ? परिणति परमात्मा में है। इसलिए माखनचोर कृष्ण हैं। अब परमात्मा को 'तुम-तुम' ही कहो या - मैं-मैं' ही कहो, एक ही बात हैं।''

''फिर देखो, गोपिनियाँ थी। वे क्या हैं? दस इन्द्रियाँ और छः रिपु यानी सोलह। सोलह के ऊपर जो सत्य स्वरूप एक-रस है, वह रस ही ऋषि नाम से कथित है। ऋषियों ने क्या किया? तुम लोगों के मुख से ही सुना है कि राम अवतार में राम के पास जाकर उन्होंने पति रूप में मिलना चाहा। राम ने कहा-'अभी नहीं, कृष्ण अवतार में तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करूँगा।' वह एकरस जाकर राम के पास खड़ा हो गया, मिलन-रस के लिए। उस समय आकर्षण बिना उस रस की परिणति नहीं हो सकती। इसी कारण तुम लोग कहते हो कि राम के पास जाकर उन्हें पति रूप में कामना करने पर राम ने कहा-'कृष्ण के आने पर आपकी कामना पूर्ण होगी।' तुम्हारे ही मुख से सुना है कि कृष्ण ही आकर्षण हैं। राम के पास जाने पर ही आकर्षण आयेगा। इसलिए राम को पति रूप में पाने की कामना की बात आयी।''

''कृष्ण की बात तुम लोग कहते हो जब कृष्ण आये तभी लीला आरम्भ हुई। क्योंकि वह रस ही लीला का यथार्थ अधिकारी है, इसलिए कात्यायनी पूजा करके पूज्य-पूजक की सीमा लाँघकर लीला का अधिकारी होता है। लीला नित्य है, ऐसा कहा जाता है। यथार्थ में ही लीला नित्य है।'' इतना कहकर माँ हँसते हुए फिर बोली-''मैं तो अंड-बंड बोलती हूँ। उस लीला में किन लोगों ने योगदान दिया? गोपिनियों ने। गोपिनी क्या है, वही एक-रस? ऋषि लोग ही गोपिनी बने थे; तुम्हारे ही मुख से सुना है। यह इन्द्रियातीत विषय है। इस कारण सांसारिक भाव से वह समझ में नहीं आ सकता। इस प्राकृतिक विषय-भाव से वह अप्राकृत खेल-लीला रस गुप्त है, इसी कारण वही गोपिनी नाम से कथित है और वही इस लीला रस के आस्वादन में अधिकारी है।''

इतना कहकर फिर हँसते हुए बोली-''अच्छा देखो तो, बाहर की ओर से दिखाई पड़ता है कि गौओं की रक्षा करते हैं, गोप लोग। गोप नाम क्यों पड़ा? इसलिए कि दूध में माखन गुप्त रूप से रहता है। वह तो साधारण दृष्टि

से दिखाई नहीं पड़ता। इस गुप्त वस्तु मक्खन को बाहर निकालते हैं इसलिए वे गोप हैं।'' इतना कहकर माँ शिशु की तरह हँसने लगी-''यह एक तरफ की तरह-तरह की बातें खयाल में आयी इसलिए कह दी।''

भीड़ से माँ को कष्ट नहीं

पौष 7, बुधवार- माँ आज सुबह 10 बजे रवाना होंगी। भोर होते ही लोग माँ के पास आने लगे। एक महिला ने माँ से कहा-''माँ हर समय इतनी भीड़ रहती है, आप विश्राम भी नहीं पा सकती। थकावट भी नहीं आती। सदा ही आप आनन्द समुद्र में डूबी हुई हैं। इस प्रकार का भाव कैसे मिल सकता है?'' माँ ने उत्तर में कहा-''अच्छा माताजी, एक मकान में तो अनेक आदमी रहते हैं। उनके साथ वार्तालाप करने या बैठे रहने में तुम्हें तो कोई कष्ट नहीं होता। फिर देखो इस शरीर में हाथ-पैर आदि अनेक अंग हैं। आवश्यकतानुसार उन अंगों को हिला-डुला सकते हैं उससे भी कोई कष्ट नहीं होता।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। माँ के इस महान् भाव की बात का अर्थ किसी ने समझा या नहीं, मैं नहीं जानती। परन्तु जिन्होंने प्रश्न किया था उन्हें इस उत्तर से बहुत प्रसन्नता हुई। अस्तु, सबसे विदा लेकर माँ दिन के 11 बजे काशी छोड़कर हरिद्वार के लिए रवाना हो गयी। लगभग 4 बजे भोलानाथजी के साथ मैं भी कलकत्ते के लिए चल पड़ी।

पौष 8, बृहस्पतिवार- आज सुबह 9 बजे हम कलकत्ते पहुँचे। यतीश दादा के डेरे में जाकर ठहरे। वहाँ खाना-पीना हो जाने के बाद नानीजी से भेंट करने के लिए मैं बिड़ला के मन्दिर में गई। माँ की आज्ञा से स्वामी अखण्डानन्दजी बिड़ला-मन्दिर में हैं। आगामी रविवार को नानाजी का श्राद्ध है। नानीजी से सुना है कि कलकत्ते में नाम करते-करते नानाजी बैठे हुए तथा ज्ञान रहते शरीर छोड़ा। सबसे मालूम हुआ कि नानीजी ने उस समय जोर-जोर से नाम सुनाया था।

पौष 17, शनिवार- माँ का और कोई विशेष समाचार नहीं मिला। नानाजी का श्राद्ध पौष 11, रविवार को धूम-धाम के साथ सम्पन्न हुआ। भोलानाथजी और भक्तों ने मिलकर निर्विघ्न कार्य सम्पूर्ण किया है। नानीजी जिस प्रकार स्थिर, धीर थी अब भी ठीक वैसी ही हैं। बाहर यथाशक्ति कार्य में योगदान दिया है।

माँ का समाचार आया। वे थोड़े समय के लिए एक बार देहरादून गयी थी, उसके बाद फिर हरिद्वार लौट आयी हैं। बड़े दिन की छुट्टी में भ्रमर, नवतरु दादा आदि माँ के पास गये हैं। माँ की आज्ञा से योगेश दादा कुछ दिन पहले उत्तरकाशी से आकर कलकत्ते अपनी माता और भ्राताओं से भेंट करके पुनः देहरादून गये थे। आजकल वह भी माँ के साथ हरिद्वार में हैं और कोई समाचार नहीं हैं।

हम लोग कलकत्ते में हैं। संज्ञा देवी आयी थी। उनके मुँह से एक बात सुनी। उन्होंने कहा था-''एक दिन माँ मेरे मुख से-किसी माताजी ने किसी कारणवश कुछ शाप दिया था-यह सुनकर हँसते हुए बोली-देखो शाप किसे दूँगी? अपने हाथ की अंगुलियों की खरोंच से शरीर के किसी स्थान से खून निकल आए तो क्या अंगुलियों को शाप दिया जा सकता है? चारों ओर जो कुछ दिखाई पड़ते हैं, सभी तो वही हैं। एक के सिवाय और कुछ भी नहीं है, शाप किसे दूँगी?'' माँ के मुख से अक्सर इस भाव की बात निकल आया करती है। इस भाव की तुलना कहाँ मिलेगी? मैंने भी माँ के मुख से इस भाव की बात कई बार सुनी है, तथापि आज दूसरे के मुख से माँ के इस अद्वैत भाव की बात सुनकर मैं पुलकित हो उठी। ऐसी बात कभी पुरानी नहीं होती। हम लोग माँ के साथ मनुष्य समझकर खेल ही करते हैं। उनके ज्ञान का बिन्दुमात्र भी ग्रहण करने की शक्ति हममें नहीं है। कभी-कभी ऐसा भाव मन में आने से चित्त हताश हो जाता है, आज भी हुआ। असीम समुद्र सामने फैला हुआ है पर उसका बिन्दुमात्र भी जल ग्रहण करने की शक्ति हममें नहीं है। इसलिए माँ कहा करती हैं-''उनकी कृपा तो निरन्तर बरसती जाती है परन्तु लेने वाला कौन है?''

पौष 3 तारीख को माँ ने एक घटना बतायी थी, उसे लिख रही हूँ। नानाजी की बात चल रही थी। स्वामी अखण्डानन्दजी और मैं प्रायः माँ के साथ रहते थे। किन्तु तारापीठ से काशी आते समय माँ ने स्वामीजी को कलकत्ते रहने के लिए आज्ञा दी थी; तारापीठ से ही यह निश्चय हो गया था। शाम को माँ वर्धमान स्टेशन पर बैठकर सबसे बातचीत कर रही थी। गाड़ी के आने में कुछ विलम्ब था।

बात करते हुए अस्वाभाविक भाव से एकाएक उठकर माँ ने अखण्डानन्दजी को कुछ बातें बतायी। बात ऐसी हुई जिस प्रकार माँ हर समय समझाया

करती हैं कि एक स्थान पर पहुँचने के अनेक रास्ते हैं उसी प्रकार विभिन्न भावों से उस बात को कहा–''देखो, काशी–यात्रा के लिए निकलकर रास्ते में मर जाने पर भी जैसे काशी–प्राप्ति होती है, जैसे तुम लोग कहते हो, उसी प्रकार शुभ कार्य करूँगा कहकर कार्य आरम्भ करके यदि वह सम्पन्न न भी हो तो भी शुभ फल मिल जाता है।'' माँ प्राय: कहा करती हैं–''यदि तुम लोग किसी शुभ इच्छा को मन में जगाए रखने की चेष्टा करते हो तो वह कार्य किसी न किसी समय वे पूर्ण करा ही देते हैं परन्तु हर समय वह बाहर प्रकट न भी हो सकता है।''

अखण्डानन्दजी को माँ ने कह दिया–''तुम कलकत्ते पहुँचते ही अपने नानाजी के डेरे में जाना।'' शायद वर्धमान से उस रात को लौटकर दूसरे लोग नानाजी के डेरे में न जाते परन्तु माँ की आज्ञा के अनुसार अखण्डानन्दजी कलकत्ते पहुँचकर नानाजी के डेरे में जाकर देखते हैं कि थोड़ी ही देर पहले उनका शरीर–त्याग हो गया है।

माँ से भेंट करने के लिए अनेक व्यक्ति कलकत्ते से वर्धमान आये थे। माँ की गाड़ी छूटने के बाद ही सब लोग कलकत्ते लौटेंगे, ऐसा निश्चय हुआ। केवल सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय अपनी कन्या ननी को लेकर अधिक रात हो जाने के भय से कुछ पहले ही कलकत्ते रवाना होंगे, इसलिए माँ को प्रणाम करने गये। माँ ने स्वामीजी से कहा–''तुम भी इनके साथ जाओ।'' सुरेन्द्र बाबू ने कहा–''चलिए न मैं आपको मोटर से पहुँचा दूँगा।'' परन्तु माँ की गाड़ी के आने में अभी भी कुछ देर थी। इतना समय भी माँ का संग छोड़कर जाने के लिए वह राजी नहीं हुए। माँ भी और कुछ न बोली। माँ तो स्पष्ट रूप से किसी को कुछ आज्ञा नहीं देती। स्वामीजी माँ का यह इशारा समझ न सके। अखण्डानन्दजी से बात करके माँ फिर आकर भक्तों के पास बेंच पर बैठ गई। अखण्डानन्दजी के साथ माँ की सारी बातें एकान्त में ही हुई थी, यह पहले लिखा गया है। जिसको जितना प्रयोजन है, माँ उससे उतना ही प्रकट करती हैं। बाद में माँ के मुख से जैसा सुना उसी को लिख रही हूँ। ठीक समय पर गाड़ी आयी और हम उस पर सवार होकर काशी रवाना हुए।

काशी में माँ के मुख से सुना–''मैं जब वर्धमान स्टेशन पर बैठकर अन्य लोगों से बातें कर रही थी उस समय तुम्हारे नानाजी के संन्यास के भाव का

चित्र मेरे सामने आकर खड़ा हो गया था। कैसा जानती हो? जिस प्रकार तुम्हें देखती हूँ। इस शरीर की माँ कहती थी–इस शरीर के पिताजी इस शरीर को देखने से पहले दो बार घर से निकल गये थे। इस शरीर की दादी के मुख से सुना है कि एक बार उन्होंने लाल वस्त्र भी धारण किया था–एक बार विवाह के पहले और दूसरी बार विवाह के पश्चात्। लोग उन्हें जबरदस्ती घर लौटा लाये थे। उसके बाद ही यह शरीर उत्पन्न हुआ।'' अस्तु, माँ कहती थी–''उनका वह संस्कार मेरे नेत्रों के सामने आने लगा।''

नानाजी के अंतिम समय माँ का संध्यान

उसके बाद गाड़ी में रात के 10 बजे जब मैं माँ को खिलाने लगी तो माँ थोड़ा मुँह में लेकर ही एकाएक लेट गयी। माँ ने कहा–''उस समय मैं क्या देख रही थी, जानती हो? तुम्हारे सिनेमा की तरह सब स्पष्ट भासित होने लगा। देखा कि तुम्हारे नानाजी का शरीर है और उसके ऊपर एक दूसरा शरीर भी संयुक्त है। उस शरीर का रूप कैसा है जानती हो? मानो धूम और शुक्ल ज्योति से मिला हुआ है।'' अपना शरीर दिखाकर फिर कहने लगी–''यह शरीर वहाँ उपस्थित होकर जिस प्रकार तुम्हारे साथ बातचीत करता है तथा अपने आप जिस प्रकार मंत्र आदि निकल जाते हैं, उसी प्रकार वहाँ संन्यास सम्बन्धी कुछ मंत्र उस छाया मूर्ति के सामने निकलने लगे। उसके बाद वह धूएँ की मूर्ति क्रमश: बढ़ते–बढ़ते पतली होकर मानो हवा में मिल गयी। कैसा जानती हो? जैसे जल में तेल की एक बूँद पड़ जाये तो वह फैलकर धीरे–धीरे जल में मिल जाती है। फिर सिगरेट या बीड़ी पीकर मुख से धूआँ छोड़ने पर पहले तो वह स्पष्ट दिखाई पड़ता है और बाद में वह धीरे–धीरे हवा में मिल जाता है। बहुत कुछ उसी तरह यह भी है–उपमा तो सर्वांश में मिलता नहीं है न?''

इस बात को सुनकर मैंने कहा–''माँ मैं देखती हूँ कि तुम्हारे पिताजी के ऊपर भी ऐसी ही एक विशेष घटना हो गयी।'' माँ बोली–''देखो, मैं तो कुछ भी नहीं करती। तुम लोग जैसा करा लेते हो, इस शरीर से वही तुम्हारे प्रयोजन के अनुसार हो जाता है। यह फिर कोई विशेष घटना कैसे हुई? तुम लोगों के साथ जिस प्रकार बात करती हूँ, इस शरीर के पिता के साथ भी जैसे बात की है, वैसे ही यह भी है। मैं तो देखती हूँ कि सभी एक प्रकार का है। तुम इसे विशेष घटना क्यों कहती हो?''

इतना कहकर बच्चों की सी मीठी-मीठी हँसी हँसते हुए वह मेरी ओर देखने लगी। मैं इसका क्या उत्तर दूँ? जिनके सामने सभी एक हैं परन्तु हमारे लिए तो यह एक विशेष घटना ही है, इसे मैं उन्हें कैसे समझाऊँगी? योगी-ऋषि लोग अनेक साधनाओं के द्वारा जिस अवस्था तक पहुँचने में समर्थ नहीं होते वह मेरी माँ के सामने हँसी-खेल की तरह सरल और सहज है। फिर माँ कहा करती हैं-"मैं तो कुछ भी नहीं जानती।" यह कुछ न जानने में भी वह प्रकाशित हैं।

पौष 20, मंगलवार- बड़े दिन की छुट्टी समाप्त होने से कल भ्रमर माँ के यहाँ से कलकत्ते आ पहुँची है। खबर पाकर मैं आज सुबह उनसे मिलने गयी। भ्रमर से सुना-माँ हरिद्वार पहुँचकर दूसरे ही दिन देहरादून गयी थी और वहाँ एक दिन रहकर गोदावरी को वहाँ छोड़कर पुन: हरिद्वार लौट आयी हैं। उस समय भ्रमर ने भी हरिद्वार जाकर माँ का चरण दर्शन किया। भ्रमर के पहुँचने के दूसरे ही दिन माँ, भ्रमर, रूमा देवी और योगेश ब्रह्मचारी को साथ लेकर लछमन झूला चली गयी थी। वहाँ गंगा-किनारे वाली धर्मशाला में चार-पाँच दिन रहकर ऋषिकेश लौट आयी थी। वहाँ काली कमली वाले की धर्मशाला में रात बिताकर दूसरे दिन सुबह हरिद्वार चली आयी थी। वहाँ नानकी बाई की धर्मशाला में रहने में कुछ असुविधा होने से निशि बाबू और मौसीजी को एक दूसरी धर्मशाला में रखकर हरिद्वार में एक दिन रहकर माँ देहरादून चली गयी। निशि बाबू और मौसीजी हरिद्वार में ही रहने लगे। दूसरे लोग माँ के साथ देहरादून चले गये। भ्रमर जिस दिन माँ को लेकर देहरादून पहुँची थी उसी दिन रात की गाड़ी से वह कलकत्ते लौट आयी है। अर्थात् पौष 17, शनिवार को माँ देहरादून पहुँची और अपने आश्रम में ही रह रही हैं। इसके अतिरिक्त और कोई विशेष समाचार नहीं है।

सुना है कि माँ का शरीर पहले की तरह ही है। एक बार ऋषिकेश में एक साधु ने एकाएक दरवाजे के सामने आकर माँ से कहा था-"माँ, कई दिनों से मेरा बुखार नहीं उतर रहा है।" उस दिन रात से ही माँ को थोड़ा ज्वर होकर दो दिन रहा। माँ की बात से भ्रमर को ऐसा लगा मानो उस साधु का ज्वर ही माँ के शरीर में आया है। भ्रमर को माँ ने मना कर दिया-"मेरे ज्वर की बात अभी किसी को न लिखना। दूसरे स्थान में लिखने पर निरर्थक हल्ला मच जायेगा।" भ्रमर के मुख से इस घटना को सुनकर मैं थोड़ा हँसी।

पौष 24, सोमवार– आज हम लोग ढाका पहुँचे।

पौष 30, शुक्रवार– आज भोलानाथजी नये यज्ञ-मन्दिर की स्थापना करेंगे। राजा के धन से वह मंदिर तैयार हुआ है। लोग आश्रम में हमारे पास माँ की बात सुनने के लिए प्राय: आया करते हैं।

देहरादून में भोलानाथजी का कीर्तन

माघ 7, शुक्रवार– भोलानाथजी आज हरिद्वार के लिए रवाना हो गये। हम लोग भी सिद्धेश्वरी आश्रम में आये। भोलानाथजी अब की बार यहाँ बहुत आनन्द दे गये हैं। बच्चों की तरह वह प्राय: नाच-नाचकर भजन गाया करते थे और बीच-बीच में सबको लेकर नामघर में कीर्तन किया करते थे। उनमें सुर, ताल, लय आदि का ज्ञान अच्छा न रहने पर भी ऐसा उत्तम कीर्तन गाया करते थे कि जिससे सभी को बहुत आनन्द मिलता था। छोटे-छोटे बच्चे उनके साथ होते थे। वे ही सदा उनके साथ अधिक रहा करते थे। लम्बी जटा, नाभि तक लम्बित शुभ्र दाढ़ी, सिल्क का गेरुआ वस्त्र पहने हुए, दीर्घ शरीर देखने में भव्य लगता था। दो-चार गाने बहुत भाव में विभोर होकर गाकर वह सबको आनन्द देते थे:-

1. आमि ये भाई मायेर छेले
आमि आबार भय करि काय?
ये आमारे भय देखाबे
आमि बले दिबो माय।

2. "नव सजल जलधर काय
कपाले सिन्दुर, कटिते घुंघुर,
रतन नूपुर पाय, (मायेर)
हासिते हासिते दानव नाशिछे
रुधिर लेगे छे गाय, (मायेर)........"

3. पुतुल बाजिर पुतुल आमरा,
ये मन नाचान ते मन नाचि,
यखन बसान तखन बसि,
यखन उठान तखन उठि।" आदि

अर्थात् 1- मैं तो भैया माँ का लड़का हूँ। फिर मैं किससे डरूँ? जो मुझे भय दिखावे मैं तुरन्त माँ से कह दूँगा।

2. नवीन सजल जलधर वपु, ललाट पर सिन्दूर, कमर में घूंघरू, पैरों में रत्न के नुपुर हैं। (माँ) हँसते-हँसते दानवों का नाश कर रही हैं, जिससे माँ के शरीर में रक्त लगा है।

3. पुतलों के खेल में हम लोग पुतले हैं। वह जैसे नचाते हैं वैसे ही हम लोग नाचते हैं, जब बिठाते हैं तब हम बैठते हैं, जब उठाते हैं तब हम उठते हैं-इत्यादि।

माँ की खबर मिली कि वह अभी देहरादून के आश्रम में ही हैं।

माघ 15, शनिवार- भोलानाथजी देहरादून से दिल्ली गये हैं ऐसी खबर मिली। देहरादून से हरीराम जोशी के पत्र से मालूम हुआ कि माँ के साथ भेंट करने के लिए सोलन के राजा और रानी देहरादून जाकर 10 दिन रहे। उसके बाद माघ की 9 तारीख को माँ रायपुर गयी हैं। साथ में महारतन, उसकी लड़की विमला, रूमादेवी तथा अल्मोड़ा की और भी बहुत-सी स्त्रियाँ (जो माँ का दर्शन करने के लिए देहरादून गयी थी) आदि बहुत से लोग हैं।

माघ 18, मंगलवार- आज हम लोग कलकत्ते रवाना होंगे। माँ की आज्ञानुसार ढाका में कई दिन रहकर हम पुनः कलकत्ते के लिए चल पड़े।

रायपुर में माँ को ज्वर

माघ 19, बुधवार- आज सुबह कलकत्ते पहुँचने पर खबर मिली कि माँ को ज्वर हो गया है। शाम को भोलानाथजी के पत्र से माँ के ज्वर का विस्तारित समाचार मिला। वह योगेश ब्रह्मचारी की चिट्ठी पाकर दिल्ली से माँ के पास रायपुर चले गये हैं। उन्होंने लिखा है कि ऋषिकेश से भ्रमर माँ का जो ज्वर देख आयी थी वही ज्वर अभी भी चल रहा है। दो दिन का अन्तर देकर ज्वर आता है। किसी को जताने से मना कर देने के कारण अब तक हमें खबर नहीं दी गयी थी। माँ का शरीर बहुत दुर्बल हो गया है। हमें यहाँ से जाने के लिए मना करने से हम माँ की बीमारी की खबर पाकर भी उनके पास न जा सके। किसी कार्यवश कलकत्ते में ही कुछ दिन रहना पड़ा।

माघ 24, सोमवार- आज भी भोलानाथजी का एक पत्र मिला। बहुत

अनुनय-विनय कर अब माँ को देहरादून के आश्रम में लाया गया है। अब ज्वर कुछ कम हो रहा है।

माघ 27, बृहस्पतिवार– आज भोलानाथजी के पत्र से ज्ञात हुआ कि माँ का ज्वर 105 डिग्री तक चढ़ा है, बहुत ही दुर्बल हो गयी हैं। इस कारण डॉक्टर सोम को बुलाकर दिखाया गया है। वे जाँच के लिए खून ले गये हैं। परीक्षा के बाद औषध देंगे। चिकित्सा के बारे में माँ ने कहा है-''तुम लोगों को जैसी इच्छा हो कर सकते हो।'' भोलानाथजी माँ को इस प्रकार अस्वस्थ देखकर बहुत घबरा गये हैं। इस कारण डॉक्टर को दिखाना ही तय हुआ है।

फाल्गुन 2, सोमवार– हम दो दिनों के लिए पुरी गये थे। आज कलकत्ते लौट आये हैं। भोलानाथजी के पत्र से विदित हुआ कि डॉक्टर सोम को माँ के खून की जाँच से कुछ भी नहीं मिला। इसलिए औषध भी नहीं दी गयी। औषध देना उचित है या नहीं, भोलानाथजी अभी तक निश्चित नहीं कर पाये हैं। ज्वर एक ही ढंग से चल रहा है। दो दिन के बाद ज्वर बहुत तेजी से आता है, छः-सात घंटे रहता है। माँ से ज्वर में आराम करने की बात कहने पर माँ कहती हैं-''तुम लोग ज्वर से द्वेष क्यों रखते हो। जैसे तुम लोग आते हो वैसे ही वह भी आता है। शरीर के भीतर खेलता रहता है। मुझे तो कोई कष्ट नहीं देता बल्कि आनन्द ही रहता है।'' भोलानाथजी माँ की हालत देखकर बहुत चिन्तित हो गए हैं।

फाल्गुन 4, बुधवार– आज हम लोग काशी रवाना हुए। भक्त लोग माँ के लिए बहुत ही घबराये हुए हैं परन्तु अपने काम-काज के कारण किसी को जाने का मौका नहीं मिल रहा है। ''कुंभ-स्नान'' आ रहा है। उस उपलक्ष्य से माँ का चरण-स्पर्श करने के लिए कुछ लोगों ने जाने का निश्चय किया है।

फाल्गुन 5, बृहस्पतिवार– आज हम लोग काशी आ पहुँचे हैं। हरिराम की धर्मशाला में उतरे हैं, साथ में बेलू और निधू आये हैं। वे भी माँ के पास जा रहे हैं।

फाल्गुन 8, रविवार– कल यतीश दादा का एक पत्र मिला। उन्होंने लिखा है-''कल हरिद्वार से बाबा का लिखा एक पत्र मिला है। उन्होंने लिखा है-

'तुम्हारी माँ का ज्वर एक ही तरह से चल रहा है। किसी तरह कम नहीं हो रहा है। कोई औषधि भी नहीं दी गयी है। शरीर बहुत ही कमजोर हो गया है। तुम्हारी माँ कल 5 बजे शाम को हरिद्वार आ पहुँची हैं। निशि बाबू आदि जिस धर्मशाला में हैं उसी में हम लोग भी आये हैं।'

आज तीसरे पहर भोलानाथजी का पत्र मिला। उन्होंने हमें हरिद्वार जाने के लिए लिखा है और बताया है कि माँ की हालत एक ही ढंग से चल रही है। शरीर में खून की कमी होने से वह बहुत ही दुर्बल हो गयी हैं। इटावा के सिविल सर्जन पीताम्बर पन्त छुट्टी लेकर हरिद्वार आये हैं। उन्होंने माँ की चिकित्सा शुरू की है। हम लोग आगामी 10 फाल्गुन को माँ के पास जाने के लिए रवाना होंगे, ऐसा निश्चय हुआ है।

हरिद्वार, ठाकुरदास बद्रीदास की धर्मशाला में

फाल्गुन 11, बुधवार– आज भोर में हम लोग हरिद्वार आ पहुँचे। यह धर्मशाला भीमगोडा के एक मील ऊपर ऋषिकेश के रास्ते के पास है। हमने आकर देखा कि माँ बहुत ही दुर्बल हो गई हैं। हृदय की अवस्था अच्छी नहीं है। जरा-सा शब्द होते ही वह धड़कने लगता है और हाथ-पैर ठंडे हो जाते हैं। भोलानाथजी से सुना है कि इधर दो दिन अवस्था बहुत ही चिन्तनीय हो गई थी। आज आठ-नौ दिनों से माँ हरिद्वार आयी हुई हैं। ज्वर लगभग दो महीने पुराना हो गया है। सुना है कि आज कई दिनों से माँ औषध ले रही हैं। जिस दिन से औषध लेना शुरू किया है, उसी दिन से बिछौने में पड़ गयी हैं। इससे पहले भी ज्वर आता था किन्तु माँ चलना-फिरना या बातचीत करना स्वाभाविक रूप से ही करती थी। डॉक्टर ने कहा-"माँ, ऐसा रोगी मैंने जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। माँ, मेरी औषधि से कुछ न होगा। आपके शरीर की चिकित्सा मैं कैसे कर सकता हूँ? आप स्वयं ही स्वस्थ होने की इच्छा कीजिये। यही मेरी प्रार्थना है।" माँ भी बात-बात में कहती हैं-"औषध जब मैंने पी ली है तब रोगी के सब लक्षण ही तो प्रकट होने चाहियें। इसी कारण औषध पीने के बाद ही मैं बिछौने पर पड़ गयी हूँ। ऐसा तो होगा ही। जो होगा उसे पूर्ण रूप से ही होना चाहिये।"

औषध पीने के साथ-ही-साथ माँ के शरीर में अस्वाभाविक यौगिक क्रिया आरम्भ हो गयी। किसी-किसी समयं दिखाई पड़ा कि बीमारी बहुत

तेज है। किन्तु इस प्रकार की यौगिक क्रिया अपने आप आरम्भ होने पर बीमारी धीरे-धीरे हट गयी। अब की बार भी औषध से ज्वर हटा या क्रिया से कौन बता सकता है, माँ ही जानती हैं। जब अस्वाभाविक क्रिया होने लगती है तो उसे देखकर हम डर जाते हैं। यह सत्य है कि औषध से ज्वर बन्द हुआ परन्तु ज्वर उतर जाने के साथ-ही-साथ माँ को खयाल आया कि ज्वर तो बन्द हुआ फिर दिल की धड़कन तो शुरू न हो जायेगी? याद आते ही दिल की धड़कन शुरू हो गयी। अब वही विशेष रूप से चल रही है।

डॉक्टर साहब की पत्नी का देहान्त बहुत दिन पहले हो चुका है। उसके बाद फिर विवाह नहीं किया है। सन्तान भी नहीं है। हरिद्वार में गंगा-तट पर उनका एक बहुत बड़ा मकान है। उसमें माँ को ले जाने के लिए साल भर से वह प्रार्थना कर रहे हैं। परन्तु माँ का जाना नहीं हुआ है। सुना है कि अब उन्होंने उस मकान को **''आनन्दमयी सेवाश्रम''** बना दिया है और स्वयं ही उसकी व्यवस्था कर रहे हैं। अभी भी वह माँ को वहाँ ले जाना चाहते हैं। वह पेंशन लेकर अभी-अभी हरिद्वार आये हैं।

माँ का प्रथम औषध सेवन

एक बात और भी है कि माँ जब विराजमोहिनी दीदी को साथ लेकर बाहर निकली थी उस समय इटावा में जाकर कुछ दिन रही थी। उस समय माँ के पेट की गड़बड़ी के कारण यही डॉक्टर साहब बुलाये गये थे। सुनते ही वह औषध आदि लेकर माँ के पास आ पहुँचे। माँ ने उस समय कहा था-''अच्छा अभी रहने दीजिए, यदि कभी औषध पीने की इच्छा होगी तब आप ही की औषध मैं पहले लूँगी। घटनाचक्र से देहरादून में माँ को ज्वर हुआ। वहाँ के डॉक्टर सोम के खून की जाँच करने के बाद औषध देने की बात चली। उस समय पीताम्बर पन्त की बात याद आयी और आश्चर्य की बात यह है कि एकाएक सुनाई पड़ा कि पीताम्बर पन्त भी पेंशन लेकर कई दिनों से हरिद्वार आये हैं। उस समय माँ ने भोलानाथजी से कहा-''चलो, हरिद्वार चल चलें।'' अब हरिद्वार आकर पीताम्बर पन्त की औषधि ही माँ ने पहले-पहल ली।

डॉक्टर साहब ने कहा-''माँ, आपका शरीर तो साधारण मनुष्य का-सा नहीं है। इस शरीर में कैसी औषधि दूँगा, उसे मैं निश्चय नहीं कर सकता।

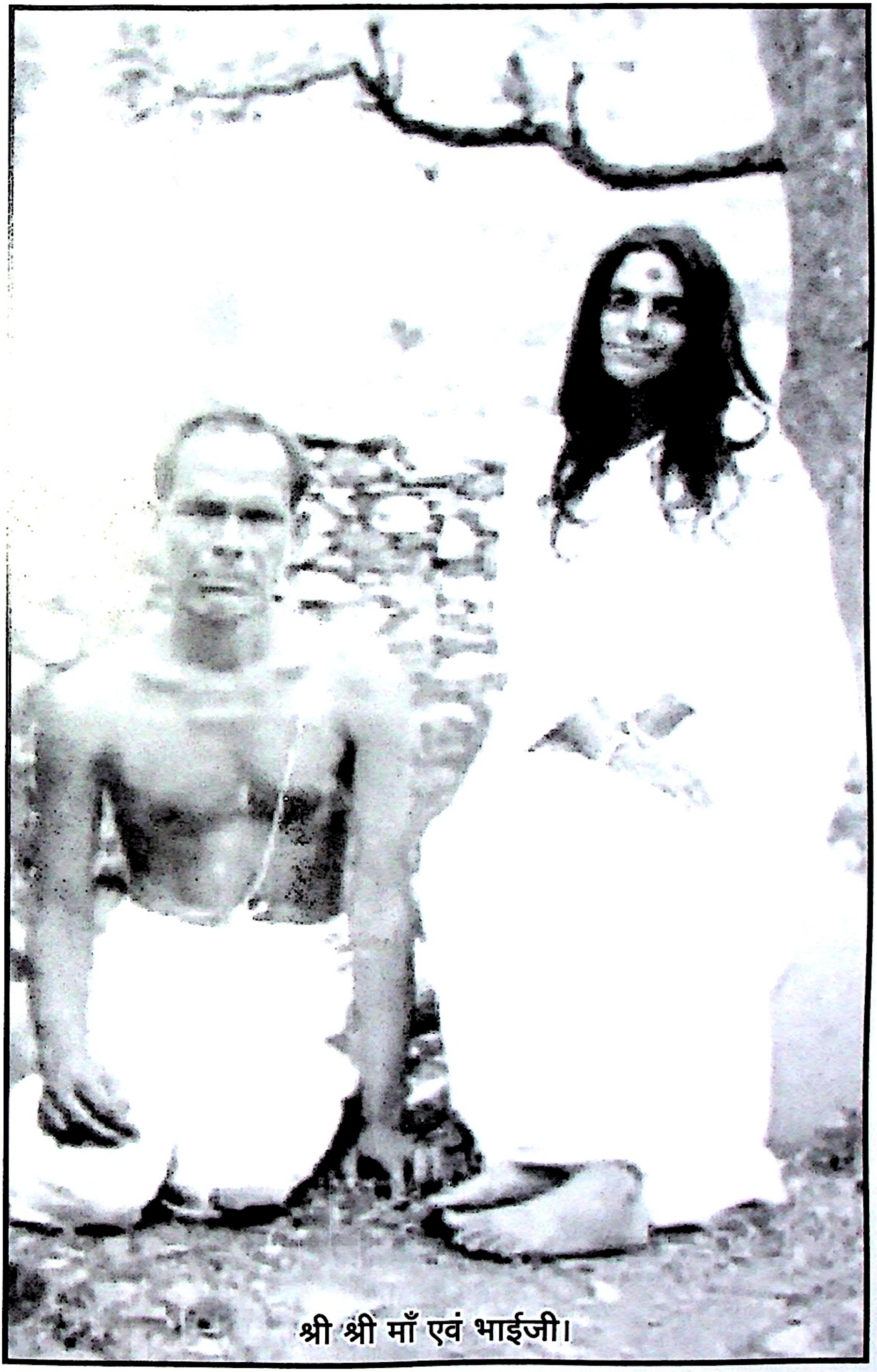

श्री श्री माँ एवं भाईजी।

श्री श्री माँ भोलानाथजी, गुरुप्रिया दीदी एवं भक्तों के साथ।

श्री श्री माँ अल्मोड़ा में।

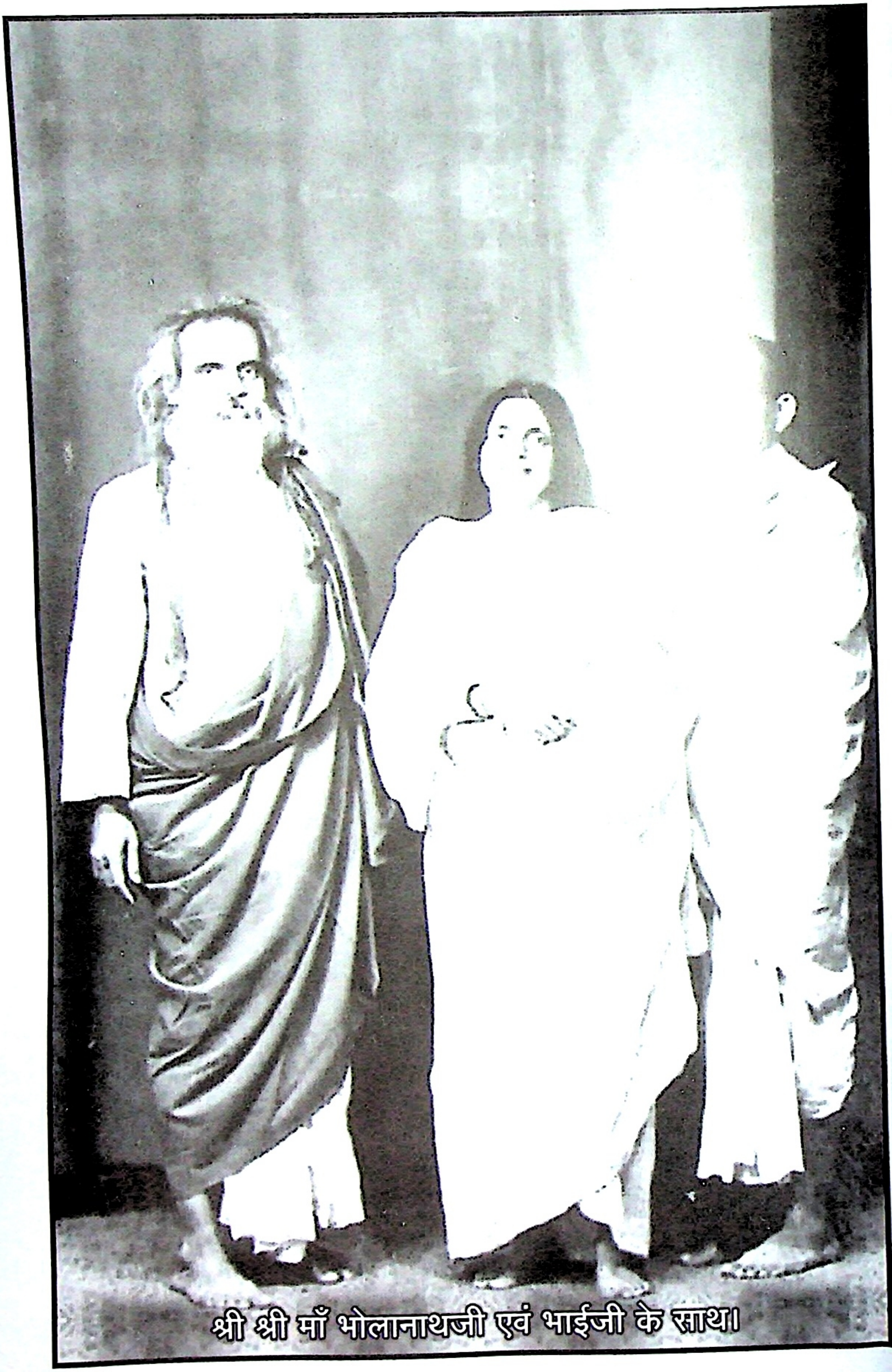

श्री श्री माँ भोलानाथजी एवं भाईजी के साथ।

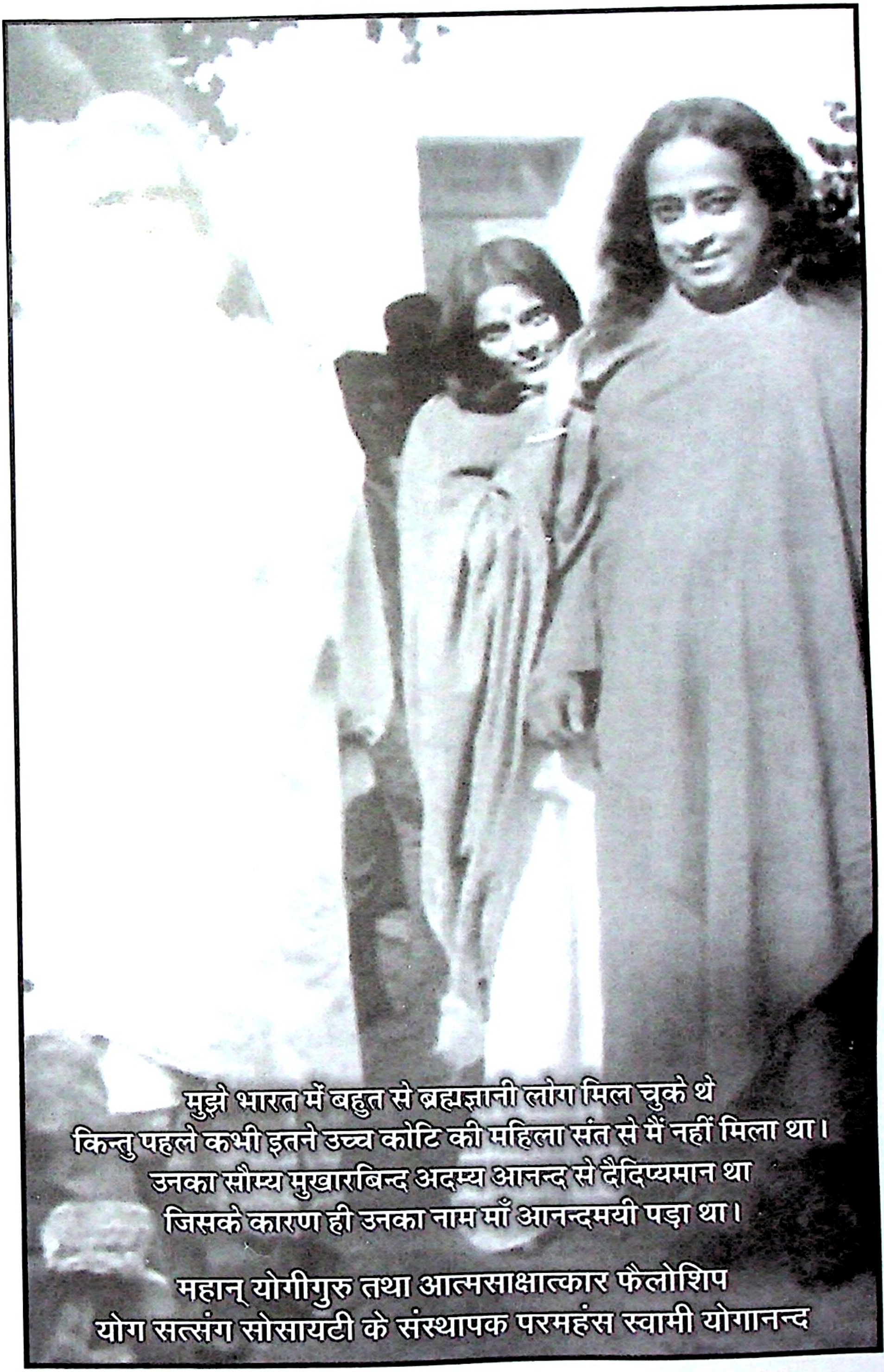

मुझे भारत में बहुत से ब्रह्मज्ञानी लोग मिल चुके थे
किन्तु पहले कभी इतने उच्च कोटि की महिला संत से मैं नहीं मिला था।
उनका सौम्य मुखारबिन्द अदम्य आनन्द से दैदिप्यमान था
जिसके कारण ही उनका नाम माँ आनन्दमयी पड़ा था।

महान् योगीगुरु तथा आत्मसाक्षात्कार फैलोशिप
योग सत्संग सोसायटी के संस्थापक परमहंस स्वामी योगानन्द

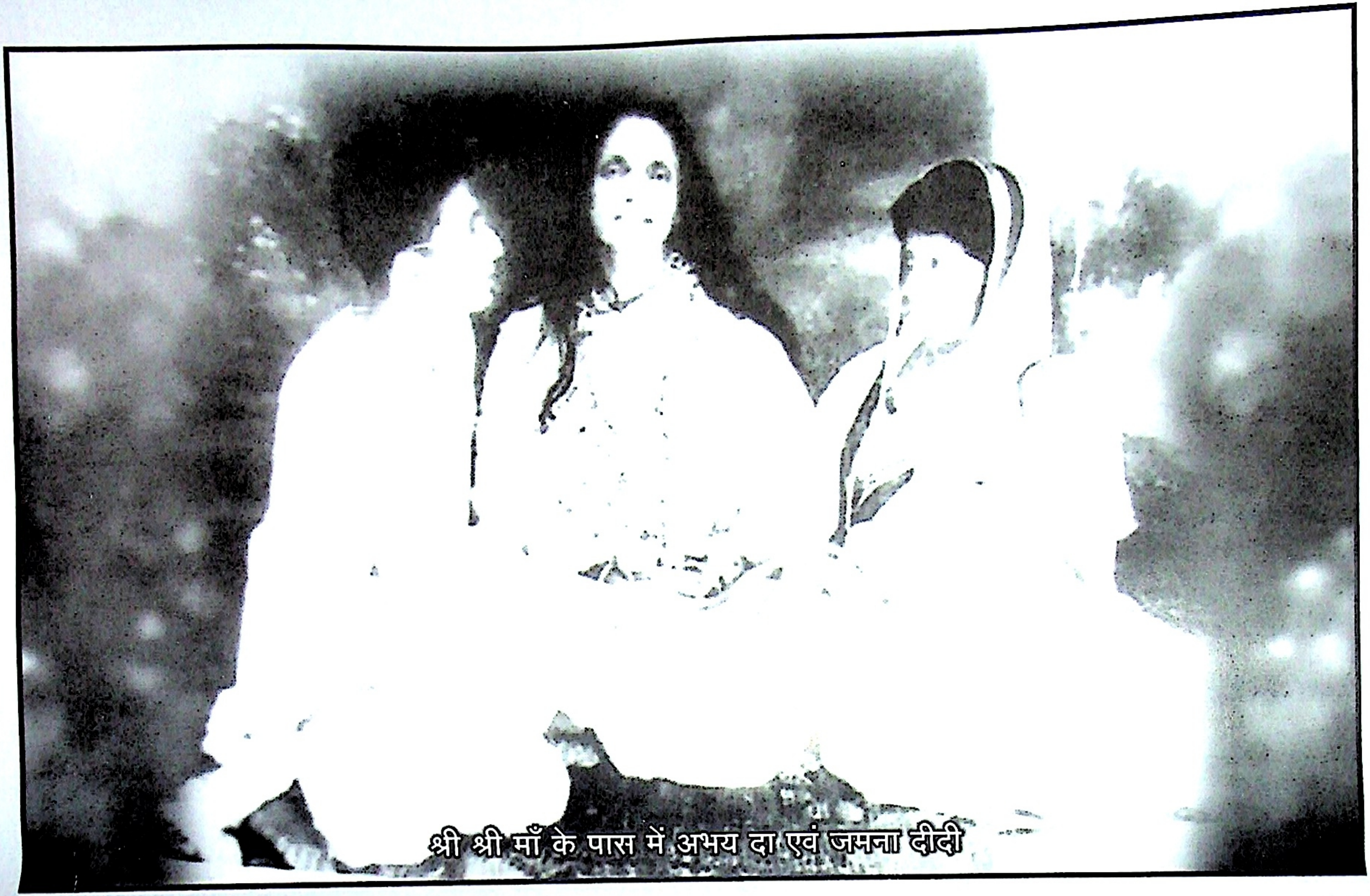

श्री श्री माँ के पास में अभय दा एवं जमना दीदी

आप स्वयं आरोग्य का भाव न लावें तो हम लोग कुछ नहीं कर सकते।'' माँ ने कहा-''यह शरीर कैसा है, जानते हो? भीतर की सारी ग्रन्थियाँ खुली हुई हैं, इस कारण कोई भी रोग क्यों न हो पूर्ण रूप से ही होता है। सारे रोमकूपों की जड़ तक सभी ग्रन्थियाँ खुली हुई हैं। इस कारण रोग भी सारे शरीर में आसानी से घूमने का मौका पाता है। फिर जब औषधि पी ली गयी है तब उसी तरह सारे शरीर में वह फैल गयी है। यह शरीर तो औषधि पीता नहीं है, इस कारण शरीर को औषधि के अधीन कर लेने में भी समय लगता है।'' वास्तव में भोलानाथजी को भी दवा देने की इच्छा नहीं थी क्योंकि वह तो जानते ही थे कि माँ की अवस्था कैसी है? परन्तु उस प्रान्त के भक्त लोग इसके लिए भोलानाथजी को उलाहना देने लगे कि बाबाजी माताजी की चिकित्सा नहीं करने दे रहे हैं। इसी कारण कितने दिनों से माँ रोग भोग रही हैं। इस तरह की बातों से विवश होकर भोलानाथजी अब औषधि देने के लिए राजी हुए हैं। और भी एक विशेष बात यह है कि भोलानाथजी ने स्वप्न में देखा है कि माँ को औषधि दी जा रही है। इस कारण वह भी औषधि देने के पक्ष में सम्मति दे रहे हैं।

अस्तु, माँ ने आज भी बात-बात में कहा-''देहरादून में एक साधु के आकर औषधि की बात कहने से माँ ने कहा-'देखो, तुम लोग वेदान्तवादी संन्यासी हो। तुम्हारी दृष्टि सबके प्रति समान रहनी चाहये। तुम लोग ज्वर से द्वेष क्यों रखते हो? ज्वर को क्यों भगा देना चाहते हो? तुम लोगों को यहाँ आने से तो मैं भगा नहीं देती, ज्वर को ही क्यों भगा दूँ? मुझे तो वह कुछ भी कष्ट नहीं दे रहा है।' वेदान्तवादी संन्यासी ने कहा-'माँ रोग होने पर हम लोग वैसा भाव नहीं रख सकते।'' यहाँ निशि बाबू, मौसीजी, रूमा देवी, महारतन, भोला (अभय), गोदावरी आदि कई व्यक्ति हैं। हमारे साथ फैजाबाद से मनकेश्वर रयना की पत्नी और कन्या आयी हैं।

फाल्गुन 12 बृहस्पतिवार- आज देहरादून से शारदा और लक्ष्मी आयी हैं। धर्मशाला के बहुत से कमरों को ही हमने दखल में कर लिया है। माँ के लिए सभी का चित्त दुःखी है।

फाल्गुन 13, शुक्रवार- आज भी माँ की हालत एक ही प्रकार की है। कल रात को मैं बहुत समय तक माँ के पास बैठी थी। भोर साढ़े पाँच बजे माँ ने मुझसे कहा-''भोलानाथ को जरा बुला तो लाओ।'' मैंने वैसा ही

किया। देखा कि माँ ने भोलानाथजी से कुछ कहा। वह उसी समय बाहर चले गये। बाद में पता लगा कि भोलानाथजी को माँ ने डॉक्टर पीताम्बर बाबू के घर भेजा है।

गंगा-किनारे पीताम्बर बाबू के मकान पर माँ को ले जाने के लिए वह बहुत दिनों से ही कह रहे हैं। परन्तु माँ अब तक नहीं गयी। कल भी उन्होंने माँ से अपने यहाँ चलने के लिए अनेक प्रकार से अनुरोध किया है- ''माँ, उस मकान में चलिये। मकान बिल्कुल गंगा-किनारे है। गंगा की हवा से आपका शरीर अच्छा हो जायेगा।'' उस समय माँ ने विशेष कुछ नहीं कहा।

भोर में माँ ने डॉक्टर साहब से कहला भेजा है कि उनकी बात पर माँ राजी हैं। जब भी वह चाहेंगे, माँ जायेंगी। भोर में ही अगर प्रबन्ध हो जाये तो माँ इसी समय जाने में राजी हैं। किन्तु माँ को ले चलना कुछ कठिन है। माँ के शरीर की जो हालत है, उससे मोटर से ले चलना संभव नहीं है। स्ट्रेचर में ले जाना होगा। उसका प्रबन्ध नहीं किया गया है। इस कारण डॉक्टर माँ को भोर में नहीं ले जा सके।

दोपहर को डॉक्टर ने आकर देखा कि माँ के हृदय की अवस्था बहुत ही खराब है। माँ की उस समय की अवस्था देखकर हम लोगों का भी चित्त उदास हो गया। सुना है कि इससे पहले औषधि देने पर दो-तीन दिनों तक अवस्था बहुत ही संकट-जनक हो गयी थी। भोलानाथजी तथा दूसरे लोग अत्यन्त भयभीत हो गये थे। मृत्यु के सभी लक्षण प्रकट हो गये थे। माँ ने भी कहा था-''सचमुच उस समय तुम्हारी दृष्टि में मानो बत्ती के बुझ जाने का सा भाव ही प्रकट हो रहा था। शायद तुम्हारा कोई प्रयोजन रह गया हो इस कारण बत्ती बुझते-बुझते भी फिर जल उठी है। उस दिन शरीर समाप्त होने के पूर्व कैसी-कैसी अवस्थाएँ होती हैं सभी मैं देख रही थी।''

अस्तु, आज की अवस्था देखकर भोलानाथजी तथा हम सब लोग बहुत चिन्तित हो गए थे। डॉक्टर की औषधि आज दो दिनों से बन्द है। डर नहीं है जिस पर भी हृदय की स्थिति बहुत ही बिगड़ी हुई है। इस कारण जो औषधि दी गयी उसका असर पहले दिन तो अच्छा हुआ, परन्तु दूसरे दिन उससे कोई फल नहीं हुआ, बल्कि और भी अधिक खराब होने लगा। तब महारतन ने कहा-''माँ, अब औषधि की कोई आवश्यकता नहीं है। जब कुछ उपकार ही नहीं होता तो औषधि से क्या लाभ?''

उसके बाद से औषधि बन्द कर दी गयी। डॉक्टर ने भी हाथ जोड़कर कहा–''माँ, मैं और औषधि नहीं दूँगा। आप स्वयं ही आरोग्य प्राप्त करें।''

आज माँ बात ही नहीं कर सकती और ऐसा भाव भी प्रकट करने लगी कि औषधि की विषाक्त क्रिया ने ही जाकर हृदय पर आक्रमण किया है। माँ ने हँसकर कहा–''अच्छा ही तो हुआ है, मैं तो सभी से कहती हूँ कि बाहर छोड़कर अन्दर जाने की चेष्टा करो। इसलिए औषधि ने भी अन्दर जाकर हृदय को पकड़ लिया है। यह तो ठीक ही हुआ है। मैं कहती हूँ कि बाहर-भीतर एक करो। इसलिए बाहर-भीतर एक कर डाला है।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

यथार्थ में ही आज दोपहर की अवस्था देखकर हमें बहुत डर हुआ। आज माँ ने डॉक्टर को नब्ज देखने तक नहीं दिया और कहा–''जब औषधि ही नहीं ली गयी तो तुम लोग नब्ज देखकर क्या करोगे? जो कुछ होने को है वह आप से आप ही होता जायेगा।''

माँ के राजी होने पर शाम को स्ट्रेचर से माँ को लेकर दलबल सहित सब लोग पीताम्बर बाबू के पिता के नाम से बने हरनाथ घाट पर डॉक्टर पन्त के मकान पर आ पहुँचे। बहुत बड़ा महल-सा मकान गंगा के ठीक ऊपर स्थित है। माँ की जैसी हालत है, उससे स्ट्रेचर में लाने पर भी भय हो रहा था। किन्तु दिखाई पड़ा कि माँ कुछ अच्छी ही हैं।

बालिका रूप में रोग मूर्ति

रात में माँ कुछ घटनाओं की बात कहकर हँसने लगी। परन्तु घटना की बात सुनकर मेरे शरीर में रोमांच होने लगा। घटनाएँ ये हैं–माँ कहने लगी–''देखो, कैसा चमत्कार! मानो सिनेमा है। एक दिन इसी बीच में मैं क्या देखती थी, जानती हो? एक बालिका मूर्ति (हरिद्वार की घटना) चेहरा बहुत सुन्दर, घर के भीतर आकर मुझे पकड़ना चाहती थी। परन्तु मेरी उस समय हालत बहुत खराब थी। लड़की मुझे पकड़ना ही चाहती थी, उस समय एक आदमी तथा निशि बाबू उस लड़की को रोकने के लिए पकड़ने जाकर देखते हैं कि उसे पकड़ा नहीं जा सकता। क्योंकि वह छाया-मूर्ति थी। बिजली की चमक की तरह वह लड़की एक बार सामने दिखाई पड़ी फिर दूसरे ही क्षण गायब हो गई। कमरे के कभी इधर तो कभी उधर दिखाई पड़ने लगी। अन्त

में निशि बाबू ने दरवाजा बन्द कर दिया। परन्तु दरवाजा बन्द करने से क्या होगा? लड़की फिर कमरे के भीतर आकर खड़ी हो गयी। रोकने पर भी वह लड़की एकाएक आकर मेरा पैर छूकर उछलती हुई चली गयी। उसके उस स्पर्श का स्पष्ट अनुभव बहुत देर तक मुझे हो रहा था।''

कल्याण वन अखण्ड भावघन माँ

फिर माँ कहने लगी-''और एक दिन क्या देखा, जानती हो? एक स्थान पर मैं एक ही भाव से बैठी थी। कोई साथ नहीं था। एक ऊँचे स्थान पर बैठी थी। वह स्थान घास और छोटे-छोटे पत्थरों से भरा था। उसी के बीच में एक स्थान का नाम कल्याण वन था। मैं देखती क्या थी, जानती हो? देवता लोग अपने-अपने वाहन लेकर हाथ जोड़े खड़े हैं। इस शरीर के प्रति नमस्कार कर रहे हैं। अनेक ऋषि-मुनि, साधु-संन्यासी अवतार अपने-अपने सुन्दर वेश में विभिन्न स्थानों पर खड़े हैं और जिन पहुँचे हुए साधकों के नाम सुनाई पड़ते हैं ज्ञात-अज्ञात उनकी भी मूर्तियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ती थी। साधक-लोग आते-जाते थे। कोई-कोई स्थिर होकर खड़े थे। एक-एक का एक-एक भाव प्रकट हो रहा था। उस भाव से सब लोग विभिन्न स्तरों में विराट समुद्र की तरह दिखाई पड़ते थे जिसका अन्त नहीं है।''

''यह शरीर कुछ ऊपर बैठा था। इस कारण ऊपर की ओर देखकर सब प्रणाम कर रहे थे। यह शरीर भी तीव्र, शुभ्र, घन ज्योति से बना था। वह उपमा भी ठीक नहीं हुई। वह कैसा था भाषा से वह व्यक्त नहीं किया जा सकता। वहाँ का जो प्रकाश था वह भी दूसरे ही प्रकार का प्रतीत हो रहा था। उस स्थल पर जो कुछ लेकर-बस।'' इतना कहकर माँ चुप हो गयी।

फिर कहने लगी-''सबको लेकर ही सबके भीतर ही 'यह'-बात भी ठीक नहीं हुई। भाषा में कहने से ठीक नहीं कहा जा सकता। यथार्थ में वह अव्यक्त है। उसी स्थान पर इस मुख से निकल गया-'अखण्ड भावघन'। खंड को छोड़कर नहीं, सबको लेकर ही तो अखंड है। देवता, साधु और ऋषि लोग इस ढंग से खड़े थे कि उनका अन्त दिखाई नहीं पड़ रहा था। समुद्र की तरह जितनी दूर तक तुम्हारी दृष्टि जा सकती है अन्त दिखाई नहीं पड़ता। सब लोग स्थिर भाव से इस शरीर के पास थे। परन्तु यह शरीर तो बिछौने पर पड़ा हुआ है। कोई-कोई साधु चल-फिर रहे हैं और उस शरीर के पास

आकर चरण-धूलि ले रहे हैं। और साधु लोग मन में इस शरीर की स्वस्थता के लिए प्रार्थना कर रहे हैं- इसी शरीर से।'' ये सब कहकर हँसते हुए बच्चों की तरह पूछने के ढंग से माँ ने कहा-''यह सब कैसा तमाशा देखा?'' इतना कहकर हँसते हुए मेरी ओर देखने लगी।

इन बातों को सुनकर मेरा शरीर रोमांचित होने लगा। मैंने माँ के चरणों पर हाथ रखकर कहा-''माँ, तुम्हें हम लोग कुछ भी नहीं जान सके। ऐसा मौका पाकर भी उसे खो रहे हैं।'' माँ ने फिर कुछ गम्भीर मुद्रा धारण करके कहा-''उस प्रकार की बातें आ गयी तो कह दी। अपने ही पास रखना। ऐसी बातें किस प्रकार सत्य, प्रत्यक्ष और गम्भीर हैं यह साधारण लोगों के लिए समझना सम्भव नहीं है। इन बातों पर हँसी-दिल्लगी होना भी सम्भव है। क्योंकि वे लोग तो जानते भी नहीं और न समझते ही हैं। जिसके भीतर जितनी शक्ति है वह तो वैसा ही भाव प्रकट करेगा। विश्वास और अविश्वास दोनों ही तो स्वाभाविक हैं। सब रूपों और भावों. में तो वही एक हैं।'' माँ फिर बोली-''उनका कोई दोष नहीं है। जो कुछ वे समझते हैं वैसा ही कहेंगे न।''

डॉ. पन्त के सेवाश्रम जाने की घटना (माँ का दर्शन)

''कल मैंने क्या देखा सुनो, धर्मशाला में तो लेटी हुई हूँ, तुम लोग ऐसा न सोचो कि मैं सोकर स्वप्न देख रही हूँ। यह शरीर तो बैठकर या चलने-फिरने की हालत में जैसा दिखाई पड़ता है, बिछौने पर पड़ा रहने पर भी ठीक वैसा ही है। तुम पास बैठी थी। उस समय रात के दो बजे होंगे। उस समय देखा कि एक मूर्ति तुम्हें ओट में रखकर तुम्हारे और मेरे बीच में आकर आसन जमाये बैठी। तुम्हें शायद उस समय जप बन्द होकर ऊँघाई आ रही थी (मैं सचमुच ही मन में जप कर रही थी और बीच में जप बन्द होकर कुछ तन्द्रा का भाव भी आया; परन्तु इस बात को मैंने माँ से नहीं कहा था)। उस समय वह मूर्ति आकर स्पष्ट रूप से मुझसे पूछ बैठी-'स्थान कहाँ किया गया है?' मैं उनकी ओर देखते हुए बोली-'स्थान क्यों करना है?' मेरी दृष्टि से वह मूर्ति न जाने कैसी हो गयी और दौड़कर चली गयी।

''उस समय से ही मुझे खयाल आया कि पीताम्बर डॉक्टर तो अपने सेवाश्रम में रहने के लिए बहुत विनती कर गया, गंगा की हवा से रोग अच्छा हो जायेगा, यह भी बता गया। उसकी व्यवस्था के अनुसार यह शरीर

जब कुछ दिन चला तो यह बात भी क्यों न मानूँ? उनके ऊपर ही तो शरीर का भार दिया था, ऐसा ही एक भाव जगा। शायद आवश्यक है इसलिए यह सब होता जा रहा है। उसके बाद भोर होने पर तुमसे पूछा कि कितना बजा है? तुमने बताया कि साढ़े पाँच बजे हैं। उसी समय भोलानाथ को बुलवाकर डॉक्टर के पास भेजा कि यदि सम्भव हो तो इस शरीर को सेवाश्रम में ले जाया जा सकता है। परन्तु पहले स्ट्रेचर का इन्तजाम न रहने से उस समय वह नहीं ले जा सकेगा, ऐसा कह दिया। मेरे अन्दर एक कैसा भाव जगा, जानती हो? 'स्थान कहाँ किया गया है?'' उस मूर्ति ने मुझसे यह प्रश्न किया था। मेरे उस भाव के जगते ही मैंने कहा–'इस धर्मशाला के जिस स्थान पर मैं थी उसे तुम्हारे लिए छोड़ जाती हूँ।' इसके बाद ही उस स्थान के त्याग करने का भाव आया। भोर में ही भोलानाथ को बुलाकर डॉक्टर के पास भेजा।'' इस घटना को सुनकर मेरे शरीर में पुन: रोमांच होने लगा। माँ के शरीर की हालत जब बहुत ही खराब थी तभी यह घटना घटित हुई।

मैंने फिर हाथ जोड़कर कहा–''माँ, तुम्हें इच्छा न हुई तो तुम्हारे शरीर की कौन रक्षा कर सकता है? हमारे लिए तुम जो इस शरीर की रक्षा कर रही हो इससे हमारे प्रति तुम्हारी अपार करुणा ही प्रकट हो रही है। माँ, हममें कुछ करने की शक्ति तो हैं नहीं, केवल तुम्हारे चरणों में प्रार्थना है कि तुम हमारी ओर देखकर अपने शरीर की इसी ढंग से रक्षा करते रहना।'' माँ ने कहा–''शायद तुम्हारा ही प्रयोजन है इसलिए यह सब होता जा रहा है।'' कभी–कभी देखा है कि माँ बहुतों को कहती हैं–''तुम लोगों के लिए ही यह शरीर रह गया। इसी से तुम्हारे साथ भेंट हुई।''

* * *

सातवाँ अध्याय

फाल्गुन 14, शनिवार– आज कोई विशेष घटना नहीं हुई। माँ के हृदय की अवस्था के लिए ही हम लोग चिन्तित हैं। माँ बिछौने पर ही लेटी हुई हैं। डॉक्टर तथा दूसरे लोग कह रहे हैं–"माँ, हम लोग तो कुछ नहीं कर सके। अब अपनी व्यवस्था स्वयं ही कर लो।" माँ बीच–बीच में डॉक्टर को बुलाकर पूछ रही थी– "क्या खाऊँ?" इत्यादि! फिर अपने मन में भी कहती रहती थी। दोपहर को तीन–चार घंटे माँ के विश्राम के लिए दरवाजा बन्द कर दिया जाता है। परन्तु एक–एक दिन माँ के भीतर सोने का भाव ही नहीं रहता। फिर डॉक्टर के कहने से चुपचाप लेटी रही और एकदम मौन हो गयी। शरीर न जाने कैसा हो जाता! ऐसी ही अवस्था चल रही है।

सेवाश्रम में कीर्तन

प्रथम दिन डॉक्टर ने माँ को धर्मशाला से लाते समय कहा था–"माँ, अब रोग को यहाँ छोड़कर सेवाश्रम चलिये। आज वहाँ जाकर कीर्तन करूँगा। परन्तु इधर घर में जरा भी शब्द नहीं किया जाता। कोई जोर से चले तो भी दिल की धड़कन शुरू हो जाती है। पर उस दिन तीन–चार मील का रास्ता स्ट्रेचर पर आना तथा रास्ते का हल्ला–गुल्ला सुनते–सुनते आना हुआ। उसके बाद आकर लोगों को प्रबन्ध करने में लगा देखकर माँ ने सोचा कि कीर्तन करेगा बताया था पर नहीं किया। तब माँ ने मुझसे कहला भेजा–"बात की रक्षा के लिए कुछ समय तक कीर्तन करना उचित है।" डॉक्टर की इच्छा के अनुसार भोलानाथजी ने माँ के कमरे में ही सबको लेकर कुछ समय तक कीर्तन किया। माँ इससे कुछ अच्छी ही हैं।

आज और भी एक घटना की बात सुनी। इससे पहले एक दिन माँ की हालत जब कुछ खराब हुई तब कुछ क्रियायें अपने आप माँ के शरीर में होने लगी। उसके बाद से ज्वर छूट गया। उस बात पर ही माँ कहने लगी– "यदि अपने से यह सब होता है तो उसका फल भी होता है। परन्तु हर समय नहीं होता। जब जैसा प्रयोजन होता है, यह घटता जा रहा है।" बहुत से लोग माँ से मिलने के लिए आने लगे। 'कुम्भ–स्नान' के उपलक्ष्य में अनेक लोग हरिद्वार आकर उपस्थित हो रहे हैं।

फाल्गुन 15, रविवार– कई दिनों से माँ का वस्त्र नहीं बदलवाया गया। बिछौने की चादर भी नहीं बदली गयी। क्योंकि माँ को हिलाना-डुलाना सम्भव नहीं हो रहा है। आज माँ से धोती बदलने के लिए कहने पर माँ ने कहा– ''नहीं, अभी नहीं बदलूँगी। जब खड़ी होकर धोती बदल सकूँगी तभी बदलूँगी। उसके लिए चिन्ता क्या है? मैंने तो एक ही वस्त्र में अनेक दिन बिताये हैं।'' बिछौना बदलना भी उसी समय होगा ऐसा कह दिया। अभी तक उठकर बैठ नहीं सकती। कब उठकर खड़ी होंगी तब ही धोती बदलेंगी। एक बार यह भी कहा–''कल तो अच्छी तरह हो उसके बाद देखा जायेगा''।

फाल्गुन 16, सोमवार– आज सुबह माँ का मुँह धुलाकर कुछ पथ्य खिला देने के बाद माँ ने डॉक्टर से कहा–''आज उठाकर मुझे जरा खड़ा कर दो।'' वैसा ही किया गया। माँ को आज पकड़कर खड़ा कर दिया गया। खड़ी होकर माँ ने धोती बदल दी। कुछ समय तक बैठी भी रही। आज थोड़ा भात पथ्य दिया गया।

आज शिवरात्रि का उत्सव है। साधु लोग दल-के-दल ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने के लिए चल रहे हैं। बाजे के शब्द और लोगों के मुख से निकले स्तोत्र-मंत्रादि से हरिद्वार नगरी शब्दायमान हो रही है। 12 वर्ष के बाद कुम्भ-स्नान के लिए अनेक मनुष्य हरिद्वार में एकत्र हुए हैं। साधुओं का मेला ही देखने योग्य है- एक दल में नागा संन्यासी चल रहे हैं, दूसरे दल में संन्यासिनियाँ चल रही हैं, फिर साधुओं में जो विशेष प्रसिद्ध हैं वे हाथी की पीठ पर चल रहे हैं। साथ-साथ शिष्यों का दल भी चल रहा है। कहीं-कहीं साधुओं के साथ उनके शिष्य लाठी-तलवार आदि खेलते हुए चल रहे हैं। आज शाम को भोलानाथजी ने सबको साथ लेकर थोड़ी देर नाम-कीर्तन किया।

फाल्गुन 17, मंगलवार– आज माँ दूसरे की सहायता से कुछ चलकर बरामदे में जाकर बैठी। वहाँ बहुत देर तक बैठी रही। परन्तु शरीर की अवस्था देखकर माँ बैठ सकेंगी ऐसा किसी को भरोसा नहीं हो रहा था।

शारदा की सुन्दर अवस्था की बात

इस बार शारदा आयी है। सुना है कि उसे कुछ दिनों से एक बहुत सुन्दर भावावेश होता है। माँ के अब की बार देहरादून आने के कुछ पहले से ही उसकी ऐसी अवस्था शुरू हुई है। वह अपनी चेष्टा से कुछ करती है,

ऐसा नहीं। वह पूजा या जप करने में भी अधिक समय नहीं बैठ सकती। परन्तु बीच-बीच में उसे ऐसी अवस्था हो जाती है कि थोड़ा बैठते ही शरीर में भावावेश हो जाता है। वह अपनी इच्छा से जाकर बैठती हो, ऐसी बात भी नहीं है, बैठने में बाध्य हो जाती है। भीतर ऐसा ही भाव चल रहा है। एक दिन माँ को स्पर्श करते ही वैसी अवस्था हो गयी। बाहरी काम-काज में लगे रहने से आवेश का भाव कुछ कम रहता है परन्तु थोड़ा स्थिर भाव से बैठते ही बाहरी ज्ञान लुप्त हो जाता है।

शिवरात्रि के दिन अर्थात् कल ही स्वामी अखण्डानन्दजी को माँ ने **कनखल मंगलानन्द गिरि** के आश्रम में भेज दिया और कह दिया-''तुम संन्यासी हो। संन्यासियों के दल में मिलकर स्नानादि करना।'' माँ के आदेश से वह वहाँ चले गये हैं।

थोड़ा ध्यान देने का विषय है कि माँ की अवस्था ऐसी हो गयी थी कि किसी के जरा जोर से बोलने या उस कमरे में चलने से भी छाती में चोट लगती थी, दिल धड़कने लगता था। यहाँ तक कि आँख खोलने पर भी बाहरी दृश्य से दिल दुःखता था। ऐसी स्थिति में स्ट्रेचर से तीन-चार मील का रास्ता शोर-गुल के भीतर से तय किया गया, तो भी माँ की हालत एक-सी ही थी। आते समय कुछ विशेष परिवर्तन प्रतीत नहीं हुआ, बल्कि अच्छी ही थी बताया। उसके बाद परसों अपने को पकड़कर माँ ने बिठाने को कहा तो वैसा ही किया गया। पर थोड़ी ही देर में लेट गयी। कल ही सुबह उठाकर खड़ी कर देने के लिए कहा। चन्द मिनट खड़ी रही। बाद में तीसरे पहर लगभग ढ़ाई घण्टे स्वयं ही बैठी रही। आज कुछ पैदल चलकर बरामदे में जाकर बैठी थी। लगभग पाँच-छ: घण्टे बैठी रही। उसके बाद अनेक बार उठकर बैठी थी। अपने से ही कहा-''साँस अभी ऊपर की ओर है। उसे नीचे उतारा नहीं जा सकता। इसका कारण क्या है जानती हो? साँस की गति वैसी हो गयी थी। उस अवस्था में जाने पर साधारण मनुष्य जीवित नहीं रह सकता। इस कारण साँस की गति अभी तक ऊपर की ओर ही चल रही है।''

श्रद्धेय निशिकान्त मित्र महाशय से सुना कि औषधि लेने के बाद पारी का बुखार केवल एक दिन हुआ था। दूसरी पारी के दिन फिर बुखार नहीं आया। उस दिन अपने आप माँ के शरीर में कुछ क्रियायें हो गयी थी। निशि

बाबू ने कहा–''माँ की क्रिया की अवस्थायें देखते–देखते ही मुझे लग रहा था कि अब की बार माँ बुखार को विदा कर देंगी।

डॉक्टर बाबू माँ के विश्राम के लिए 12 बजे के बाद माँ के कमरे का दरवाजा बन्द कर देते हैं। फिर 4 बजे खोला जाता है। आज भी वैसा ही किया गया। कुछ लोग मिलने आये। माँ कभी लेटकर और कभी बैठकर सबसे बातें कर रही थी। रात 10 बजे बत्ती बुझा दी गयी।

माँ लेट गयी। मैं उनके पास बैठी। कमरे में अँधेरा था। एकाएक माँ बच्चों की तरह हँसते हुए बोली–''खुकुनी, उस दिन जो तुमसे मैंने कृष्ण, राम, देवताओं तथा ऋषियों को देखने की बात बतायी थी, प्रमाणित कर दिया है, क्या यह बात मैंने कह डाली थी।'' मैं थोड़ा हँसकर बोली–''क्या कहा था?'' माँ ने उसी ढंग से हँसते हुए कहा–''मैं ऊपर एक स्थान पर बैठी थी।'' मैंने पूछा–''वे लोग ऊपर की ओर इस शरीर को लक्ष्य करके हाथ जोड़कर प्रणाम कर रहे थे–यह बात कही थी न?'' माँ भी थोड़ा हँसकर बोली–''इस शरीर को लक्ष्य करके कहा था।'' इतना कहकर बच्चों की तरह सरल भाव से अपने आप ही कहने लगी–''न जाने क्या है? मैं किस समय क्या कहती हूँ, तुम लोग उसे स्मरण रखती हो। जो हो, जो देखा उसी को कह डाला। जिसको देखना, उसी का बोलना फिर उसी का सुनना भी है।'' इतना कहकर माँ बोलने लगी–''देखो, तुम लोग जो बातें बोलती हो कोई–कोई उसे सुनकर क्या सोचेंगे जानती हो? कहेंगे माँ को दो दिन के अन्तर पर बुखार आता था। उसी बुखार से दिमाग बिगड़ गया था। इसीलिए उस तरह का दृश्य देखा था।'' इतना कहकर माँ अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी हँसने लगी। मैं बैठी–बैठी माँ के उस अपूर्व भाव तथा मधुर हँसी को देख–देखकर मुग्ध हो रही थी। मुझे ऐसा लग रहा था मानो माँ के भावों का अन्त नहीं है। मानो वह अनन्त और अपार हैं। उनका सभी सुन्दर और मधुर है।

फिर माँ बोली–''किस प्रकार देखा, जानती हो? जैसे तुम लोगों को देखती हूँ, व्यावहारिक 'जगत्' में जीवित प्रत्यक्ष, ठीक वैसे ही।'' इतना कहकर माँ चुप हो गयी। फिर अपने ही भाव में कहने लगी–''तुम्हीं अपने को देखती हो। तुम्हीं अपने साथ बात करती हो, तुम्हीं अपनी निन्दा करती हो। तुम्हीं अपने को जानती हो। 'मैं' कहने से जो है, 'तुम' कहने से भी वही है।''

फाल्गुन 18, बुधवार– आज सुबह कुछ पथ्य लेने के बाद माँ जाकर गंगा के ऊपर वाले छोटे बरामदे में बैठी। सुबह स्वयं ही थोड़ा टहलती थी। दोपहर के खाने के बाद माँ अपने आप ही कुछ समय तक टहलती रही। उसके बाद 12 बजे माँ को सुलाकर दरवाजा बन्द कर दिया गया। खण्ड और अखण्ड की बात के प्रसंग में माँ ने कहा था–"देखो, खण्ड को छोड़कर अखण्ड हो ही नहीं सकता। सब खण्ड–अखण्ड के भीतर ही हैं। फिर यह जो खण्ड–अखण्ड कहती हूँ यह भी भाषा–मात्र है, केवल समझाने के लिए। उस प्रकार का प्रश्न उस स्थान पर उठ ही नहीं सकता।"

तीसरे पहर 4 बजे माँ बिछौने पर उठ बैठी। दरवाजा खोल दिया गया। इस समय कुछ लोग माँ के दर्शनों के लिए आये। माँ लोगों के साथ धीरे–धीरे बातें करने लगी। सन्ध्या हो जाने पर माँ को फिर से सुला दिया गया। रात के 10 बजे तक कुछ लोग माँ के पास बैठे रहे। इसके बाद डॉक्टर की बात से हर रोज की तरह सब लोग उठकर चले गये। बत्ती बुझा दी गयी। माँ को विश्राम देने के लिए ही डॉक्टर ने दिन के 12 बजे से 4. बजे तक माँ का दरवाजा बन्द रखने का प्रबन्ध किया। फिर रात के 10 बजे के बाद माँ को एकान्त में रखा जाता है। कुछ दिनों से यही नियम चल रहा है।

फाल्गुन 19, बृहस्पतिवार– आज सुबह लगभग 7 बजे आँख खोलते ही माँ का मुँह मैंने धुला दिया। उसके बाद थोड़ा पथ्य दिया गया। माँ लेटे–लेटे ही उपस्थित व्यक्तियों से बात करने लगी। वैद्यनाथ से तारानन्द स्वामी हरिद्वार आये हैं। इन्होंने आकर माँ के साथ कुछ समय तक वार्तालाप किया। और भी परिचित साधु लोग माँ से भेंट करने आये। 11 बजे के समय माँ को अन्न भोग दिया जाता है, परन्तु आज रोटी–तरक़ारी दी गयी। भोजन के बाद कुछ देर तक माँ बैठी रही। हरिराम आया है। आज भी भोजन के बाद दिन के 12 बजे दरवाजा बन्द कर दिया गया। आज भी माँ कमरे के भीतर थोड़ा टहली, उसके बाद लेट गयी।

अखण्डानन्द स्वामी आज ही विन्ध्याचल आश्रम के कार्य के लिए मिर्जापुर जा रहे हैं। महारतन भी आज बरेली चली गयी। तीसरे पहर 4 बजे दरवाजा खोल दिया गया।

मन की गति के अनुसार आसन और प्राणायाम स्वभाव से हो जाते हैं

माँ को थोड़ा पथ्य खिलाकर एक छोटी आरामकुर्सी पर बिठा दिया गया। डॉक्टर, एक संन्यासी और हम चार-पाँच व्यक्ति माँ के सामने बैठे हुए हैं। गंगा की ओर के जंगले और दरवाजे सब खोल दिये गये। आसन आदि की बात चली। माँ ने अभय (भोला) से पूछा-''अब भी आसन करते हो न?'' अभय ने उत्तर दिया-''नहीं माँ, अब कोई भी आसन नहीं करता हूँ।'' माँ ने पूछा-''क्यों?'' इसी बात पर आसन की बात चली। माँ कहने लगी-''भाव के अनुसार आसन हो जाता है। एक-एक आसन में एक-एक भाव प्रबल होता है। जैसे भोजन के समय एक प्रकार का आसन होता है। सोते समय पड़ा रहना भी आसन है। फिर विषय-चिन्तन करते समय शरीर में एक प्रकार की क्रिया या आसन हो जाता है। साँस की गति भी दूसरे प्रकार की हो जाती है। देखते ही मालूम होता है कि विषय-चिन्तन में मग्न हैं। उस ढंग से बैठने पर उसके विषय-चिन्तन में सुविधा होती है इसलिए बैठने का वैसा नमूना हो गया है। इसी प्रकार आध्यात्मिक चिन्तन के समय भी अपने आप आसन हो जाता है। कुंभक, रेचक, पूरक भी अपने आप हो जाते हैं। इस ढंग से जब आसन आदि अपने आप हो जाये तो समझना होगा कि गाँठ खुल गयी है।'' उसके बाद दूसरी चर्चा छिड़ी।

नाम करते समय डॉ. पन्त का विचित्र दर्शन

बात-बात में डॉक्टर साहब ने कहा-''एक साहब ने लिखा है कि एकान्त में शुद्ध भाव से बैठकर यदि 'मैं कौन हूँ' ऐसी चिन्तन कुछ समय तक की जाय तो अपने आप ही उसका ज्ञान विकसित हो जाता है। मैं तो आज दो माह से चेष्टा कर रहा हूँ। परन्तु कुछ भी तो समझ में नहीं आ रहा है।'' माँ ने कहा-''सबके लिए तो एक ही व्यवस्था नहीं है न।'' डॉक्टर साहब ने और भी कहा-''इटावा में एक बार माँ ने बात-बात में मुझे नाम करने को कहा था।*

आश्चर्य का विषय यह है कि जिस दिन से पहले-पहल मैं राम-राम करने बैठा तो उसी दिन से देखता हूँ कि जैसे यहाँ आटे की गोलियाँ मछलियों

---

* जिस प्रकार माँ सबसे कहती हैं-उनका नाम करो, राम राम बोलो, हरि हरि बोलो जो अच्छा लगे। माँ किसी से कोई खास नाम लेने के लिए नहीं कहती।

को खाने के लिए जल में फेंक दी जाती हैं; मैं भी उसी तरह नाम फेंकता जाता हूँ और एक हंस उसे खाता जा रहा हैं। बाद में मैंने सोचा–यह सब मैंने क्या देखा? शायद शुद्ध भाव से बैठा नहीं गया है। इसलिए ऐसा दृश्य देख रहा हूँ। उसके दूसरे दिन ही मैं स्नान करके एक पेड़ के नीचे पत्थर की चौकी पर बैठ कर राम–राम करने लगा। उसी दिन देखा कि एक ज्योति के बीच में उज्ज्वल अक्षर 'र' लिखा है परन्तु 'म' अक्षर मुझे दिखायी नहीं पड़ा। इसलिए आँखें मूँदकर सिर घुमाकर 'म' अक्षर देखने की मैं चेष्टा करने लगा। उस समय वह ध्यान टूट गया। माँ की आज्ञा से काम करने के लिए बैठने पर इस भाव का दर्शन हुआ था।''

एक लक्ष्य से चलो हिसाब न लगाओ

इस प्रकार की बातें होते रहने पर माँ जाकर लेट गयी। उस समय कमरे में मैं, भ्रमर, बेलू और विलास नाम की एक लड़की माँ के पास बैठी हुई थी। माँ डॉक्टर के 'र' दर्शन की बात के प्रसंग में कहने लगी–''देखो, एक बार एक आदमी से सुना था कि इस ढंग से एक लाख जप करने पर इतने दिनों के भीतर इस प्रकार का अनुभव अवश्य होगा। इस बात को सुनकर वह उस काम में बैठ गया। उसके बाद क्या हुआ जानती हो? वह जप करने लगा पर एक छिपकली के शब्द से उसने सोचा कि यह मुझे अनुभव शुरू हो गया है। इस ढंग से उसका एक लाख जप पूर्ण हो गया। किन्तु कुछ भी अनुभव नहीं हुआ। कारण यह है कि उसका मन चारों ओर के शब्दों में ही तल्लीन रहा और यह अनुभव हो रहा है कि ऐसी चिन्ता में ही वह लगा था इसलिए फल कुछ भी नहीं हुआ। इसीलिए कहा जाता है कि रास्ता चलते जाओ, फल की ओर न ताको। रास्ते में खड़े हिसाब लगाते रहने से उतने ही समय पिछड़ जाना पड़ता है। एक लक्ष्य से चलते जाओ।'' रात के 10 बजे बत्ती बुझा दी गयी।

फाल्गुन 20, शुक्रवार– आज भी माँ साढ़े सात बजे उठ बैठी। रोज की तरह माँ को पथ्य आदि दिया गया। आज वैद्यनाथ धाम के तारानन्द स्वामी को हमारे यहाँ भिक्षा लेने के लिए कहा गया था। उन्होंने भिक्षा ली। वह **श्री श्री तारा माँ** के उपासक हैं। आज भी दिन के 12 बजे माँ का दरवाजा बन्द कर दिया गया। माँ भी उस समय एकदम मौन रहती हैं। कहती हैं–''जब जो

किया जाय ठीक ढंग से करना ही आवश्यक है।'' कोई बात कर डाले तो भी माँ आवाज नहीं करती। चुपचाप लेटी रहती हैं। जैसा कहा गया है वैसे ही बच्ची की तरह ठीक-ठीक भाव से वह समय बिताती जा रही हैं। फिर किसी समय शायद सभी उलट जायेगा।

तीसरे पहर 4 बजे दरवाजा खुल गया। भक्त लोग माँ के लिए कुछ भोजन तैयार कर लाये थे। उन्होंने अपने ही हाथ से उसे माँ को खिला दिया। भोजन के बाद एक-दो आदमी करके कुछ लोग माँ के दर्शनों के लिए आने लगे। सोलन की राजमाता यहाँ कुछ दिनों से आयी हुई हैं। वह भी माँ के दर्शनों के लिए आयी। उन्होंने भ्रमर का कीर्तन सुनना चाहा। भ्रमर कीर्तन करने लगी। कीर्तन में दूसरे लोगों ने भी साथ दिया। सन्ध्या तक कीर्तन चला।

कीर्तन आरम्भ होने के कुछ पहले तारानन्द स्वामी अपने एक शिष्य ब्रह्मचारी को साथ लेकर आये। माँ ने इस ब्रह्मचारी को वैद्यनाथ में देखा था। ब्रह्मचारी एक पंजाबी युवक है। चेहरे से साधना की प्रतिभा टपक रही थी। माँ के ऊपर बड़ी श्रद्धा रखता है। लगोंटी पहने गोरे रंग पर टाट का रंग किया हुआ एक पर्दा डाले बहुत ही सुन्दर दिखायी दे रहा था। माँ ने इसकी गुरु-भक्ति के सम्बन्ध में कहा-''ऐसी गुरु-भक्ति, गुरु-सेवा में इस प्रकार दत्तचित्त प्राय: दिखाई नहीं पड़ता।'' सुना है कि कुछ सालों तक अनुष्ठान आदि करके अब अपने ही भाव से निकल पड़ा है। अवस्था देखकर गुरु ने ही घर से निकल जाने की आज्ञा दी है। ब्रह्मचारी युवक का चेहरा देखकर मुझे बहुत आनन्द हुआ। खासकर माँ के मुख से उसके गुणों का परिचय पाकर मैं और भी मुग्ध हो गयी। कुछ समय रहकर वे लोग चले गये। सन्ध्या के बाद दूसरे लोग भी उठ गये।

माँ को देखकर किसी को ईर्ष्या होने पर भी उसका कल्याण ही होगा

डॉक्टर साहब और हम लोग माँ के पास बैठे हैं। माँ के हृदय की अवस्था अब पहले से अच्छी है। बात-बात में माँ ने कहा-''देखो, एक बार एक आदमी ने मुझसे कहा था- 'माँ, आपको उच्च देखकर यदि किसी को इर्ष्या हो जाय तो उससे उसकी ही हानि होगी।' मैंने कहा-'इसमें भी एक अच्छा अंश है। यह ईर्ष्या का भाव भी उसे उन्नति की ओर ले जा सकता

है। जैसे उसमें ऐसा भाव भी आ सकता है कि मैं भी अच्छा बनूँगा। तो वह ईर्ष्या शुरू होने पर भी परिणाम में उस भाव से कल्याण हो सकता है। इसीलिए मैं कहती हूँ कि सभी में कल्याण का अंश है और यह शरीर तो किसी की हानि नहीं करता।'' रात को डॉक्टर साहब से अनेक वार्तालाप हुए। रात में 10 बजे बत्ती बुझा दी गयी।

फाल्गुन 21, शनिवार– कुछ दिन पहले माँ ने कहा था–''सुबह–शाम तुम लोग नाम करो। देखो, यह हृदय अच्छा होता है या नहीं।'' इतना कहकर हँसने लगी। सबको नाम करने के लिए ही माँ ऐसी बात समय–समय पर कहती हैं। परन्तु नियम से दोनों वक्त नाम करने का मौका ही नहीं मिलता। आज भोर में भ्रमर आकर नाम करने बैठी। साथ–साथ हम लोग भी नाम करने लगे। माँ बिछौने पर बैठी सुन रही थी। दिन के साढ़े आठ बजे तक नाम–कीर्तन चलने लगा। माँ को पथ्य देने में विलम्ब हो रहा था यह समझकर मैं बैठे रहने में बेचैनी महसूस करने लगी। देखकर माँ ने कहा–''पथ्य बाद में होगा। अब नाम करते चलो।'' वैसा ही हुआ। आज बहुत धूप चढ़ने पर माँ को पथ्य दिया गया। अवश्य मैंने समझा–बाहरी भोजन की अपेक्षा नाम करने पर माँ का शरीर अच्छा रहता है; इसके हमें बहुत से प्रमाण मिले हैं। तिस पर भी हम नहीं समझते।

दोपहर के भोजन के बाद माँ का दरवाजा बन्द हुआ। आज तीसरे पहर दरवाजा खोलने पर कुछ लोग माँ के दर्शनों के लिए आये। सन्ध्या समय कीर्तन हुआ। योगेश दादा देहरादून से आये हैं। उन्होंने भी कुछ समय तक नाम–कीर्तन किया। अभय (भोला) बहुत सुन्दर गाना गाता है। बच्चा है। उसका गाना हृदय को आकर्षित करता है। उसने भी **हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे** आदि नाम–कीर्तन किया। भ्रमर तथा हम लोगों ने भी उसमें योगदान दिया। भोलानाथजी ने भी कीर्तन किया।

सत्य वस्तु की चिन्ता से सत्य भाव ही खिल उठता है

कीर्तनादि के बाद फिर वही बात चली। किसी व्यक्ति ने माँ से कहा था–''माँ आपको देखकर तो किसी–किसी को ईर्ष्या होती है। उससे तो उसकी ही हानि होती है।'' इस बात पर माँ ने कहा–''इस ईर्ष्या के भाव से भी स्वयं अच्छा बनने की इच्छा जाग सकती है। फिर किसी भी प्रकार से हो

यदि सत्य वस्तु हो तो उसके चिन्तन से सत्य वस्तु ही खिल उठेगी। उसमें भी तो यह शरीर एक सेवा में लगा। यह शरीर तो किसी का नुकसान नहीं करता।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। आज भ्रमर कलकत्ते रवाना हो जायेगी। भोलानाथजी के भाई रेवरेन्ड कामिनी कुमार बाबू की बीमारी की खबर पाकर भोलानाथजी आज कलकत्ते रवाना हो गये। रात के 10 बजे उन लोगों के चले जाने के बाद माँ का दरवाजा बन्द हुआ।

फाल्गुन 22, रविवार–आज सुबह उठकर माँ शौचालय चली गयी। हाथ–मुँह धुलाने के बाद डॉक्टर के आने पर माँ बोली–''बेटा, तुमसे पूछा नहीं था। आज मैं बाहर शौचालय गयी थी।'' इतना कहकर हँसने लगी। डॉक्टर ने हाथ जोड़कर कहा–''माँ, आपको इच्छा होने पर आप सब कुछ कर सकती हैं। मुझसे पूछने की आवश्यकता नहीं है।'' माँ इसी प्रकार सबको यथायोग्य सम्मान देती हैं। पहले भी लिखा गया है कि डाक्टर साहब माँ के विश्राम के लिए दरवाजा चार घंटे तक बन्द करा देते हैं। माँ भी उस समय किसी से बात नहीं करती, चुपचाप लेटी रहती हैं। किसी सांसारिक व्यवहार में भी माँ की कुछ त्रुटि नहीं रहती। इसी कारण गृहस्थ, संन्यासी, स्त्री, पुरुष सभी को माँ इतनी प्रिय हैं। दो–चार संन्यासी प्राय: रोज ही आते हैं। वे माँ के प्रति बहुत श्रद्धा रखते हैं।

आज भी सुबह कीर्तन हुआ। दोपहर को देहरादून से इस देश के (माँ के पूर्व परिचित) दो सज्जन फल–फूल लेकर आये। उन्होंने कहा–''माँ, आपकी बीमारी से हम लोग बहुत घबराते थे।'' माँ, सभी की प्रिय हैं। उन सज्जनों के आने के बाद दो साधुओं ने भी आकर माँ का कुशल–मंगल पूछा। साढ़े ग्यारह बजे माँ के भोग का प्रबन्ध हुआ। सब लोग प्रणाम करके उठ गये। डॉक्टर साहब रोज ही पास खड़े रहकर माँ का भोजन देखते हैं। आज भी खड़े थे। भोजन के बाद दरवाजा बन्द कर दिया गया।

कल्याण वन की बात

आज सुबह माँ कहने लगी–''हर समय तो हर बात के कहने का खयाल नहीं आता। उस दिन जो कल्याण वन में राम, कृष्ण आदि मूर्तियों के देखने की बात बतायी थी, एक बात क्या हुई, जानते हो? 'अखण्ड भावघन'। एक–एक भाव की ही एक–एक मूर्ति है। जैसे आकर्षण कृष्ण, रम्यरस राम

कहते हो, उसी प्रकार उस अखण्ड भाव से अनन्त भाव बाहर-भीतर इसी प्रकार की अनन्त मूर्तियों के रूप में प्रकाश हैं- नित्य विराजमान हैं। इसी से मैं कहती हूँ कि उन मूर्तियों का तो कहीं अन्त नहीं है-समुद्र के समान अपार और अनन्त है। इन सब बातों को कौन बोलता है और कौन सुनता है?'' इतना कहकर कुछ क्षण तक चुप रहकर फिर कहा-''सभी एक का प्रकाश है।'' इतना कहकर फिर हँसते हुए बोली-''ये सब देखा या कहा क्यों जाता है? सुनकर ही तुम्हें क्या लाभ है? कितने ही क्या-क्या होते हैं?'' मैंने कहा-''माँ, अखण्ड भाव क्या है, वह शायद तुम आभास से प्रकट कर रही हो। परन्तु भाषा से तो वह भाव प्रकट नहीं किया जा सकता। तथापि शायद हमें कुछ समझाने के लिए ही तुम इन भावों और मूर्तियों के बारे में बता रही हो।'' माँ बोली-''न जाने क्यों तुम लोग इस शरीर के मुख से ये सब कहला लेते हो। इससे पहले कभी किसी से ऐसी बातें नहीं सुनी थी जो प्रत्यक्ष देखा है, उसी का थोड़ा बहुत तुम लोग इस मुख से निकलवा लेते हो। तुम लोग जो कहते हो सिनेमा, सोचते हो सिनेमा ही, फिर क्या करूँ? जो हो जाय।'' इतना कहकर माँ ने गम्भीर मुद्रा धारण कर ली।

रोग रूप अतिथि को भी सहन करना, सेवा करना

इस बात के बाद बात चली-''बीमारियाँ इतने दिनों तक शरीर में बैठी क्यों हैं? भगा क्यों नहीं देती?'' दिल्ली से बीरेन माँ को देखने आया है। उसी ने उस बात को कहा। माँ ने कहा-''देखो, मेरे लिए सभी मानो इस शरीर का ही है ऐसा खयाल आता है। तुम लोग रोग-शोक कुछ भी कहो, सभी इस शरीर में ही हैं। जैसे-हाथ, पैर और क्या। इसलिए भगा देने की कोई बात ही नहीं उठ सकती। हाथ को भगा दो, पैर को भगा दो, सिर को भगा दो-ऐसा कहते हो क्या? इन सभी को छोड़ देने से जिस प्रकार शरीर नहीं रह सकता ठीक उसी प्रकार और क्या? तुम गृहस्थ लोगों से कहती हूँ कि तुम्हारे पास जब रोग-शोक आयेंगे, तुम लोग समझ लेना कि मेहमान हैं। मेहमान समझकर उसी तरह थोड़ा यत्न करना, सहन करना सभी शक्तियाँ तो उन्हीं की शक्ति हैं। जिस प्रकार मेहमान घर में आये तो काम-काज अधिक हो जाता है और शायद गृहस्थ को कुछ असुविधा भी होती है तथापि वह कर्त्तव्य समझकर प्रसन्नता के साथ मेहमान की सेवा करता है, उसी प्रकार तुम लोग रोग रूपी मेहमान को शान्ति के साथ सहन करते रहना।'' इतना कहकर

मधुर हँसी हँसने लगी। उपस्थित सभी लोग माँ के इस भाव से मुग्ध हो गये। किस अवस्था में पहुँचने पर स्वाभाविक रूप से कैसी बातें निकलती हैं वह हमारी धारणा से भी परे है।

माँ की ''इच्छा''

बात-बात में मैंने कहा-''तुम्हारी अवस्था की बात भाषा में प्रकट करने में त्रुटि रह जाती है। जैसे किसी-किसी स्थान पर तुम्हारी इच्छा की बात उठती है पर तुम्हारी तो कोई इच्छा ही नहीं है और न संकल्प ही है।'' माँ बोली-''इच्छा या संकल्प नहीं है, ऐसी बात भी कही नहीं जा सकती। क्या है और क्या नहीं है-बस।'' इतना कहकर इस बात को समाप्त कर दिया। समझ में आया कि भाषा से जो कुछ कहा जायेगा उसी में कमी रह जायेगी। ऐसे भाव भाषा से प्रकट नहीं किये जा सकते। तथापि जो कुछ देखा है या माँ के मुख से सुना है अथवा जितना समझा है वह पहले ही लिख दिया गया है। माँ कहती हैं-''शायद देखती हूँ कि यह शरीर उठकर खड़ा हो गया तब कहा-'मैं चली'। इससे पहले तक जाने का कोई भाव ही नहीं आया था। कहाँ जाऊँगी, उसका भी शायद निश्चय नहीं था। इसी तरह अपने हाथ से भोजन करना भी बन्द हो गया।'' भाषा से प्रकट नहीं किया जा सकता समझकर ही माँ प्राय: बात को असम्पूर्ण रखकर ही 'बस' शब्द कहकर प्रसंग समाप्त कर देती हैं। माँ कहती हैं-''जिस ढंग से कहूँगी उसी में कमी रह जायेगी। भाषा से सब बातें कही नहीं जा सकती।''

आज भी दोपहर को माँ लेट गयी। चटगाँव से दासू नाम का एक 17-18 वर्ष का लड़का माँ के पास आया है। उसे घर में न रख सकने से उसकी माँ ने पुत्र को माँ के हाथ सौंप दिया है। दासू ने चटगाँव में ही पहले-पहल माँ का दर्शन किया था। पढ़ने के लिए उसे दिल्ली भेज देने की बात हो रही थी। योगेश ब्रह्मचारीजी उसे साथ ले जायेंगे। दिल्ली में भक्त लोग एक मकान किराये पर लेकर कीर्तनादि कर रहे हैं। माँ के आदेश से साधन कुछ दिन जाकर वहाँ रहा था। माँ का भेजा हुआ जानकर वहाँ के भक्तों ने साधन का बहुत आदर यत्न किया था। दासू को भी उन्हीं के पास भेजा जायेगा।

कल श्रीयुत् वीरेन बन्द्योपाध्याय दिल्ली से आये हैं। माँ को होली की

पूर्णिमा के उत्सव पर दिल्ली ले जाना चाहते हैं, किन्तु माँ का शरीर अभी भी बहुत दुर्बल है। इसलिए जाना नहीं होगा। सबको यहीं आकर माँ के सामने कीर्तन करने के लिए कह दिया गया। डॉक्टर साहब ने भी इस बात से बहुत प्रसन्नता प्रकट की। वीरेन बाबू कल चले जायेंगे। योगेश ब्रह्मचारीजी भी दासू को लेकर उनके साथ जायेंगे। तीसरे पहर सोलन की राजमाता आयी। वे कीर्तन खूब पसन्द करती हैं। वीरेन बाबू, योगेश दादा तथा हम लोगों ने बहुत देर तक उन्हें नाम-कीर्तन सुनाया। सन्ध्या समय सब लोग चले गये।

कुछ लोग माँ के समीप बैठकर वार्तालाप करने लगे। माँ की अवस्था जिस दिन बहुत खराब हो गयी थी उस दिन सिर इतना अधिक ठंडा हो गया था कि भोलानाथजी ने सेंक देते-देते सिर को गरम किया था। अभी भी समय-समय पर सिर बहुत ठंडा हो जाता है। थोड़ा सेंक दिये बिना शरीर ठीक नहीं होता। आज भी सिर ठंडा है। थोड़ा सेंक दिया गया। इसी तरह सब लोग मिलकर बातचीत करते रात के 10 बज गये। माँ के सोने के लिए बत्ती बुझा दी गयी।

फाल्गुन 23, सोमवार– माँ आज भी रोज की तरह 7 बजे उठी। आज भोर साढ़े पाँच बजे से ही श्रीयुत् निशि बाबू ने आकर नाम-कीर्तन शुरू किया। साथ-साथ वीरेन बाबू और हम लोगों ने भी सहयोग दिया। बहुत देर तक नाम-कीर्तन होता रहा। नाम-कीर्तन से ही माँ का शरीर अच्छा रहता है। कीर्तन के बाद माँ को पथ्य दिया गया। उसके बाद 12 बजे दरवाजा बन्द कर दिया गया। माँ आँखें मूँदकर लेट गयी। कभी-कभी शायद आँखें खोलकर भी लेटी रहती हैं परन्तु बात नहीं करती। उनका कहना है-"जब नियम का पालन करना है तो सम्पूर्ण रूप से ही करना उचित है।"

अनेक देशों के लोग माँ के दर्शनों के लिए आते-जाते हैं। आज भी तीसरे पहर दरवाजा खोल देने पर कई संन्यासी तथा दूसरे लोग आये। एक संन्यासी को शास्त्र की बात कहने में बहुत आनन्द आता है, इसलिए माँ भी उन्हें अच्छी-अच्छी बातें सुनाने के लिए कहती हैं। वह भी आनन्द से शास्त्र की बातें लगातार कहते जाते हैं। दूसरों को अप्रिय लगने पर भी माँ प्रसन्नता के साथ ही सुनती रहती हैं। चुपचाप बैठी रहती हैं। परन्तु माँ के कानों में सब बातें कहाँ तक पहुँचती हैं-माँ ही जानती हैं। कोई इस बात के विषय में माँ से कुछ कहे तो माँ कहती हैं-"कहने दो, वह तो शास्त्र की बात

कहने में ही प्रसन्न रहता है। किसी का भाव नष्ट नहीं करना चाहिए। शास्त्र तो भगवान् की ही बात है।''

एक बात यह है कि माँ के साथ बातचीत करने पर कुछ साधक-साधिकायें माँ की भाषा तथा भाव का अनुकरण करने लगते हैं। कई स्थानों पर ऐसा देखकर हमने माँ से कहा है; परन्तु माँ ने हमसे कहा-''कहने दो, रोको मत और इस समय सामने है रोक भी सकते हो परन्तु दूर जाकर भी तो वह ऐसा ही करेगा। तब कैसे रोकोगे? सत् भाव और सत् विषय का अनुकरण भी अच्छा है।'' थोड़ा रुककर माँ फिर बोलने लगी-''देखो, आम पकने पर वह जाकर नहीं बतलाता कि मैं पक गया हूँ। तुम लोग जाकर देखते हो कि उसका रंग लाल हो गया है और गंध से भी समझ सकते हो कि आम पका है। उसी तरह किसी के भीतर शुद्ध भाव जगने पर किसी को बता देने की आवश्यकता नहीं होती। व्यवहार तथा चेहरे से वह स्पष्ट प्रतीत होता है। आज भी तीसरे पहर सोलन की राजमाता आयी हैं। शाम को 6 बजे से हम सब लोग मिलकर नाम-कीर्तन करने लगे। रात के 10 बजे माँ को लिटा दिया गया।

फाल्गुन 24, मंगलवार- आज सुबह लगभग 10 बजे नानकी बाई अपनी पुत्रवधू को लेकर माँ के दर्शनों के लिए आयी। उन्होंने माँ का कुछ उपदेश सुनना चाहा। माँ ने दो-चार बातें कही-''गुरु के उपदेश के अनुसार चलने से ही सब होता है। एकनिष्ठा चाहिए। सभी एक से आये हैं, एक के भीतर ही हैं, एक में ही जायेंगे। एक-एक अक्षर करके हम लोग लिखते हैं, एक-एक कौर करके खाते हैं, एक-एक कदम रखकर चलते हैं- इत्यादि।'' दो-चार बातें कहकर माँ फिर बोली-''ऐसा भाव रखना।'' कुछ देर तक बैठे रहने के बाद वे लोग चले गये। 12 बजने पर माँ का दरवाजा बन्द कर दिया गया।

कृच्छ्र साधन की अवस्था खयाल आने से वैसी फोटो खिंची

चार बजे दरवाजा खोल दिया गया। माँ ने भी बात करना शुरू करके हँसते हुए कहा- ''खयाल आया कि इस शरीर का सिद्धेश्वरी में जो सूखे चेहरे की फोटो खींची गयी थी उस समय शरीर कुछ मोटा ही था। परन्तु पूर्व साधना के फलस्वरूप साधक का शरीर सूख जाता है वही इस शरीर में भी स्पष्ट हुआ था। उस भाव का खयाल आने से फोटो में उस पूर्व सूखे चेहरे

का ही चित्र आया था। उस कृच्छ्र साधन के समय कुछ भोजन होता ही नहीं था। निद्रा भी नहीं आती थी तथापि अतिथि अभ्यागत से लेकर सबकी सेवा, गृहस्थी के सारे काम-काज सभी ठीक-ठीक हो जाते थे। शरीर के सूख जाने पर भी भीतर शक्ति थी। मैं बहुत अच्छी तरह ही थी, उस समय तुम लोगों ने नहीं देखा। इस कारण शायद सिद्धेश्वरी में फोटो खींचते समय उसी सूखे शरीर का खयाल आया था। इसीलिए तुमने उस सूखी-मूर्ति को ही देखा है।''

फाल्गुन 25, बुधवार- आज सुबह स्वामी अखण्डानन्दजी विन्ध्याचल से यहाँ आ पहुँचे हैं। भोलानाथजी के पत्र से ज्ञात हुआ कि उनके भाई कुछ अच्छे हैं। वह दो-चार दिनों में ही आ रहे हैं।

फाल्गुन 26, बृहस्पतिवार- आज सुबह उठकर हाथ-मुँह धोने के बाद ही माँ ने कहा-''चलो आज थोड़ा टहल आयें।'' इतना कहकर डॉक्टर साहब के मकान को चारों ओर घूम-घूमकर देखा और कहा-''लोग आयेंगे तो इन कमरों में उनके रहने का स्थान होगा।''

लौट आकर अपने कमरे में माँ बैठी। इतने में इटावा से निरोज बाबू सपरिवार, बरेली से महारतन की बड़ी लड़की तथा प्रोफेसर दासगुप्त की पत्नी आदि आये। माँ हँसकर बोली-''तुम लोगों के यहाँ आने पर स्थान होगा या नहीं मैं अभी घूम-फिरकर देख आयी हूँ।'' उन्होंने भी कहा-''माँ आप तो स्वयं जानती हैं इसलिए हमने पहले कुछ खबर नहीं भेजी थी।''

आसन-प्राणायाम की उपकारिता

सब लोग माँ को लेकर बैठे। निरोज बाबू की पत्नी ने पूछा-''माँ, आसन-प्राणायाम आदि की कोई आवश्यकता है?'' माँ ने उत्तर दिया-''है क्यों नहीं? श्वास-प्रश्वास तो हर समय ही चल रहे हैं। कभी-कभी विषय चिन्तन में भी कुम्भक आदि या किसी प्रकार का आसन हो ही जाता है। अर्थात् उसी भाव में बहुत देर तक बैठकर विषय चिन्तन में मन विशेष भाव से लवलीन हो जाता है। यह तो अपने आप ही हो जाता है। उसी प्रकार जिस ढंग से बैठने पर या जिस भाव से साँस की गति होने से आत्म-चिन्तन में मन तल्लीन हो जाता है उसी का अभ्यास करना आवश्यक है। जिनका मन अपने से ही आत्मा की ओर रहता है उन्हें आसन-प्राणायाम आदि का अभ्यास

नहीं करना होता। भगवान् का चिन्तन करते-करते उनके आसन-प्राणायाम आदि अपने आप हो जाते हैं। एक-एक आसन में एक-एक (सांसारिक) क्रिया की वृत्ति विशेष रूप से जाग्रत होती है। उन क्रियाओं के समय उसी तरह के आसन अपने आप हो जाते हैं। सांसारिक कार्यों में इसका प्रमाण जरा ध्यान देने से ही प्रत्यक्ष होता है। तुम्हारे बैठने का ढंग देखकर ही बताया जा सकता है कि तुम्हारे मन में इस समय कौनसा भाव प्रबल है। नेत्र की दृष्टि, यहाँ तक कि शब्द सुनकर या चिट्ठी लिखने का तरीका देखकर भी स्पष्ट बताया जा सकता है कि तुम्हारा चरित्र कैसा है। दर्पण में मुख देखने की तरह साफ दिखाई पड़ता है।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। सब लोग मुग्ध होकर माँ की बात सुन रहे थे। माँ ने फिर कहा-''मन जैसे चंचल है वैसे ही मन महान् साधु भी है। बाहरी किसी भी चीज से उसे तृप्ति नहीं होती।'' बहुत देर तक बातचीत होने के बाद माँ का भोग हुआ। 12 बजे माँ का दरवाजा बन्द कर दिया गया।

चार बजे दरवाजा खुलने पर माँ ने कहा-''पहले शुद्ध कर्म आदि का आश्रय लेकर अशुद्ध संस्कारों को नष्ट करना होता है। उसके पश्चात् फिर शुद्ध कर्मादि भी नहीं रहते। जिस प्रकार शरीर में मैल पड़ने से साबुन लगाना होता है, साबुन भी तो एक मैल ही है। साबुन लगाकर मैल छुड़ायी गयी। बाद में जल से साबुन और मैल दोनों को ही धो डालना पड़ता है।'' इस तरह की और भी कुछ बातें हुई। स्वामी असीमानन्दजी आज बहुत-सी स्त्रियों को साथ लेकर माँ के दर्शनों के लिए आये हैं।

पूर्व वृत्तान्त, शाहबाग-अग्नि और जल का बोध नहीं

फाल्गुन 27, शुक्रवार- माँ आज रात के 4 बजे उठ बैठी। 5 बजे मुँह-हाथ धोये। धीरे-धीरे सुबह होने पर लोग आकर माँ के पास जुटने लगे। हम लोग भी बैठे थे। बात-बात में पूर्व वृत्तान्त की बात चली। माँ को शाहबाग रहते समय आग और जल का भेद-ज्ञान नहीं था। माँ उस अवस्था की बात कहने लगी-''कैसा होता था जानते हो? जल देख रही थी किन्तु उसका व्यवहार एकदम उल्टा। जैसे सब स्थानों पर चलती हूँ, सीढ़ी से चढ़ती उतरती हूँ, उसी तरह यह शरीर जल में उतर जाता था। उसके बाद तैरने या उठने की चेष्टा नहीं होती थी। क्योंकि जल के व्यवहार का कुछ खयाल ही नहीं

रहता था। इस कारण वह भाव ही नहीं जगता था। जैसे जमीन पर चलना-फिरना, उसी तरह और क्या? इस अवस्था में ये लोग (मुझे दिखाकर) न जाने कितने दिन उठा लाये हैं? समाधि नाम से तुम लोग जिस अवस्था की बात कहते हो जल में उसी तरह की अवस्था इस शरीर की भी हो जाया करती थी। फिर आग भी उसी तरह, आग की तपन मालूम ही नहीं होती थी। आग की जो क्रिया है वह तो शरीर में हो ही जायेगी। परन्तु मुझे उसका कुछ भी खयाल नहीं आता था। इस अवस्था में मैंने अपने पैर में तथा हाथ पर आग रखी थी। ऐसा लगता था जैसे हाथ में फूल लेकर खेलते हैं उसी तरह आग से खेलने का भाव जगता था। कोई भेद-ज्ञान नहीं था।''

माँ चिड़िया का चोंच मारा हुआ फल नहीं खा सकती; फिर कुत्ते की जूठन भी खाती हैं

फिर बात चली कि माँ किसी चिड़िया का चोंच मारा हुआ फल नहीं खा सकती थी। पर दूसरे के मुख का खाना भी खाते देखा है। यहाँ तक कि एक दिन एक कुत्ता खा रहा था। माँ दौड़कर वहाँ गयी-''मैं उसके साथ खाऊँगी।'' माँ के शरीर में ऐसे अनेक विपरीत भावों की घटनायें देखी हैं कि उन्हें लिखकर समाप्त नहीं किया जा सकता। छोटे-बड़े असंख्य भावों का खेल माँ के शरीर में निरन्तर संघटित होते देखा है।

माँ के शरीर में परिवर्तन

उसके बाद बात चली कि सिद्धेश्वरी के उस गड्ढे की लम्बाई-चौड़ाई कितनी थी। माँ के मुख से सुना कि वह यज्ञ-कुण्ड की नाप का था। पूरा सवा हाथ नहीं, उससे भी कुछ कम ही था। लम्बाई-चौड़ाई बराबर थी। उसी में माँ लेटी रहा करती थी। माँ का शरीर कभी बड़ा और भारी हो जाता और कभी छोटा और हल्का हो जाता था। यह बात सभी जानते हैं। आज भी माँ बात-बात में बोली-''शरीर न सिकोड़कर कैसे मैं उस गड्ढे में लेटी रहती?'' हम भी सोचते थे कि माँ का इतना बड़ा शरीर उस छोटे से गड्ढे के भीतर कैसे पड़ा रह सकता था। आज माँ के मुख से सत्य घटना प्रकट हुई।

लावण्य के भाव की बात

चैत्र नवरात्र की वासन्ती पूजा के समय लावण्य के भाव की बात चली।

आज माँ के मुख से सुना–जब अट्टहास करते हुए वायु के वेग से माँ उठ खड़ी हुई तब लावण्य ने 'चाची को क्या हो गया?' कहकर माँ के लिपट गया था। क्योंकि उसने इससे पहले माँ की भावावस्था नहीं देखी थी। माँ को छूते ही उसके शरीर की ऐसी अवस्था हुई कि वह लुढ़कते हुए कमरे से बाहर नीचे जा गिरा। मिट्टी का नीचा मकान, खासकर कीर्तन का शोरगुल; आँधी के प्रबल वेग से मिट्टी की दुर्गा–मूर्ति के गिर जाने के डर से सब लोग घबराते हुए दौड़–धूप करने लगे। इस कारण लावण्य की ओर ध्यान देने का किसी को भी खयाल ही नहीं हुआ।

रात के साढ़े तीन बजे माँ शौच गयी। आकर लेटे–लेटे बात करने लगी– ''देखो लक्षण देखकर ही पता लगता है कि कौन किस स्तर का है। महान् भाव के खेल अन्य प्रकार के होते हैं। साधारण भाव मूर्ति लेकर, उसे लीला नहीं कहते। भगवान् की लीला सभी हैं, यह सत्य है; और साधकों को क्या होता है? पहले एक भाव लेकर आरम्भ होता है, अन्त में अमूर्त भाव में भी कोई–कोई चला जाता है। इसमें भाव–समाधि भी आ सकती है।

''और पहले जो कहा, किसी को शायद आनन्द से एक अवसन्न–सा भाव आता है। उसके लक्षण देखकर वह समझ में आता है। शायद किसी मूर्ति के ऊपर कोई विशेष भाव से आसक्त है। इस कारण कभी–कभी उस भाव की गम्भीरता में एक अलौकिक क्रिया शरीर में होती जाती है, किन्तु उस अवस्था से उतर आने पर फिर उसमें साधारण भाव ही खिल उठते हैं। जैसे विषय–चिन्तन, देहात्मबुद्धि आदि भाव खिल उठते हैं। क्योंकि भोग का भाव तो उसका एकाएक नहीं जाता है न। किसी विशेष स्थान, मन्दिर या उपास्य देवता के अनुरूप कुछ देखते ही उसके शरीर में नाना प्रकार की क्रियाएँ होती रहती हैं। इस कारण शरीर की सेवा–परिचर्या या विषय आदि की बात वह फिर साधारण मनुष्यों की तरह ही कर सकता है। परन्तु जो यथार्थ में ही समाधि के उच्च स्तर में पहुँच जाता है उसका रंग ही बदल जाता है। क्योंकि पक जाता है न? और अवस्थानुयायी तत्त्व भी प्रकट होता है। जैसे आम के पकने पर उसे कहना नहीं पड़ता कि मैं पक गया हूँ तुम लोग आओ। बल्कि उसके रंग और गन्ध से लोग जान जाते हैं कि आम पका है। इसलिए कहती हूँ कि किसी एक मूर्ति को लेकर शायद वह डूबा हुआ है। इस कारण कीर्तन आदि से या किसी अन्य कारण से उसमें एक

विशेष भाव के खिल उठने पर भी अन्त में वह उसी साधारण भाव में ही आकर स्थिति-लाभ करता है। इन भावों का स्वरूप ठीक-ठीक समझना बहुत कठिन है।

''जिनमें महान् भाव के खेल हो रहे हैं उन्हें कोई विशेष भाव या मूर्ति लेकर ही केवल समाधि के स्तर में नहीं जाना पड़ता है। स्वाभाविक रूप से ही उनमें एक साथ सभी प्रकार के खेल होते जाते हैं। जैसे, एक समय दिखाई पड़ा-किसी कारण उसमें समाधि के लक्षण प्रकट हुए। फिर दिखाई पड़ा कि बिना कारण ही समाधिस्थ हो गया। यही स्वभाव है। इसमें कारण का प्रयोजन नहीं हुआ। स्वभाव की समाधि तो स्वभाव का ही खेल है न?''

माँ के भाव की बात, जल या वायु देखकर उसी भाव में भावित

चारू बाबू से माँ ने अपनी अवस्था बताते हुए एक बार कहा था-''देखो, यह शरीर कैसा है जानते हो? जल देखकर, आग देखकर या हवा के साथ-साथ उसी भाव में भावित हो जाता था मानो यह शरीर ही नदी की लहर या आग की लौ या हवा के साथ मिल गया है। बहुत मामूली ढंग से जमीन के साथ पैर का स्पर्श है, उसी अवस्था में यह शरीर हवा की तरह इधर-उधर डोल रहा है, गिर नहीं जाता। इसका कारण यह है कि यह शरीर हवा का सा हल्का हो गया है। उसी तरह नदी में भी नौका से चलने पर शरीर की स्थिति ऐसी हो जाती थी कि नदी के जल के साथ मिल जाना चाहता था। उसी भाव में शरीर में ऐसी एक अस्वाभाविक शक्ति का प्रकाश होता था कि ये लोग (मुझे दिखाकर) पकड़कर नहीं रख सकते थे। अपने आप ही वह भाव फिर रुक जाता था। शायद शरीर को रहना है इसलिए रुक जाता था; नहीं तो किसी में उसको रोके रखने की शक्ति नहीं होती थी।''

अभी भी उसी भाव की बात कहने लगी-''महान् भाव-खेल के भीतर इसी प्रकार देख सकते हो। कल जो जल, आग, वायु और आकाश के भाव के साथ शरीर की गति की बात बतायी थी वह कैसा है, जानते हो? प्रकृति लेकर लीला है, निर्विकार पुरुष पड़ा हुआ है, उसी के भीतर प्रकृति अपना खेल दिखा रही है। प्रकृति की लीला मानो शक्ति और शक्तिमान हैं। परन्तु वह प्रकृति के अधीन नहीं है। प्रकृति को साथ लेकर लीला होती जा रही है। जैसे-पति-पत्नी गृहस्थी का खेल खेलते जाते हैं। कभी-कभी शायद पति-

पत्नी के कहने के अनुसार चलता है परन्तु वह भी पति या कर्त्ता का अनुग्रह मात्र है। स्वामी स्वतन्त्र है। स्वामी शब्द का अर्थ है-स्व+आमि=स्वामी, जो सत् है यानी स्वयं है वही आमि (मैं हूँ)। इसीलिए संन्यासी लोग स्वामीजी होते हैं; यानी सोऽहम् और क्या? इस महान् भाव का खेल जिसके भीतर हो जाता है उसमें एक साथ सब भावों का खेल हो सकता है। उनका शरीर पंचभूत का दिखाई पड़ता है सही, परन्तु उनमें अतीन्द्रिय की लीला होती जाती है। अतीन्द्रिय हुए बिना दो प्रकार के भाव एक साथ एक आधार में प्रकट नहीं हो सकते।

लीला

''**राम, कृष्ण आदि अवतारों के कार्यों को लीला कहते हैं।** लीला शब्द का अर्थ है-जो लय पाता है, वह जिसको लेते हैं। वही अपने में मिला लेते हैं। वह स्वयं अनेक हैं। वह अपने ही को लेकर खेलते हैं। वही लीला है। **प्रकृति ही लीला करती है। प्रकृति पुरुष में लय प्राप्त हो जाती है।** यह प्रकृति सभी को समान भाव से ग्रहण करती है। जैसे नदी मैल और चन्दन सभी को बहा ले जाती है, सुगन्ध और दुर्गन्ध सभी को वायु बहा ले जाती है, सूर्य सर्वत्र समान भाव से प्रकाश देता है-ये सभी प्रकृति के खेल हैं। नदी जब तक समुद्र में नहीं मिल जाती तब तक ही उसका नाम नदी है। ज्यों ही वह जाकर समुद्र में गिरी त्यों ही उसका नाम हुआ समुद्र। असल में सभी एक महान् का ही खेल है।''

इच्छा-शक्ति रहने से भाव का खेल नहीं होता

उसके बाद थोड़ा चुप रहकर माँ कहने लगी-''इस प्रकार के भावों का पता लगाना बहुत कठिन काम है। इस महान् भाव के खेल जिसके भीतर अपने आप होते जाते हैं उसमें भी कभी-कभी लौकिक भाव का आभास मिलता है। क्योंकि लौकिक-अलौकिक दोनों प्रकार के खेल ही उसमें एक साथ हो सकते हैं। स्वाभाविक गति से ऐसा सुन्दर है कि हाथ-पैर आदि सभी अंगों को लेकर मानो महाप्रकृति खेल-खेल रही है। थोड़ी बहुत इच्छा-शक्ति रहने पर भी महान् भाव का खेल उसके भीतर हो सकता है।'' बात-बात में भोर हो गया।

ननी बाबू की लड़की को माँ की कुमारी–पूजा

और एक घटना की बात सुनी–''सिद्धेश्वरी में एक बार ननी बाबू किसी उपलक्ष्य से माँ को भोग देने के लिए गये थे। उनकी एक लड़की के ऊपर माँ के द्वारा कुमारी–पूजा की तरह सब हो गया। फूल–पत्ती की पूजा नहीं है। किस भाव से कुमारी की पूजा करनी होती है शायद वही भाव माँ के शरीर में से हो गया।

नोआद्दा ग्राम में माँ की चमत्कारिक अवस्था

एक बार जब माँ ढाका के विक्रमपुर परगना में घूमने गयी थी उस समय 'नोआद्दा' ग्राम में भी गयी थी। वहाँ खूब कीर्तन होता था। माँ भी खूब भाव में विभोर हो गयी। वहाँ ऐसी एक चमत्कारिक अवस्था हुई जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। माँ बरामदे में बैठी थी। साँप की गति से सिर की ओर का अंश तिरछी गति से सीढ़ी के ऊपर से चलते हुए आँगन में उतर आया परन्तु शरीर का बाकी अंश बरामदे में ही रह गया। साँप जिस प्रकार तिरछी गति से चलता है ठीक उसी भाव से माँ के शरीर का ऊपर वाला अंश आँगन में उतर गया था। यदि शरीर बढ़ाया न जाता तो यह सम्भव न होता। उसके बाद माँ भाव के आवेश में जब उठकर टहलने लगी तो शरीर के रोओं के हर एक छेद से मानों खून निकलने लगा। बाद में माँ ने स्वयं भी कहा था कि उनके शरीर का वैसा ही भाव हुआ था मानो हर एक रोम कूप से खून निकल रहा हो और रोयें इस ढंग से खड़े और कड़े हो उठे थे मानो काँटे हों। रोम के सिरे काँटे के सिरे की तरह मानो एकदम नुकीले हैं और रोम कूप मानो एक–एक गिल्टी से निकल आये हो। सारे शरीर से मानो लाल ज्योति निकल रही हो। ठीक वैसी ही अवस्था हो गयी थी। इस प्रकार का भाव और भी कई बार माँ के शरीर में प्रकट हुआ था।

हृदय उन्हीं का आसन है

आज तीसरे पहर 4 बजे दरवाजा खुलने पर एक ब्रह्मचारी ने आकर कहा–''निरोज बाबू आदि आये हैं। निरोज बाबू ने गीता का एक श्लोक पढ़कर पूछा–''माँ, यह जो निराकार और साकार उपासना है–यह सब क्या है? और गीता में लिखा है कि आज्ञा–चक्र में मन को स्थिर रखना होगा।''

माँ ने कहा–''देखो, आज्ञा–चक्र में मन को स्थिर करने से भी होता है। उसके सिवाय हृदय है सुख–दुःख, आनन्द आदि के अनुभव का स्थान। इसलिए कोई–कोई अपने हृदय आसन पर केवल जगत्पति को बिठाते हैं। जिन्हें बैठाने से वहाँ और निरानन्द या दुःख पहुँच नहीं सकता। मन को एक बार हृदय में स्थिर कर सकने से वह अपने आप आज्ञा–चक्र में पहुँच जाता है और आज्ञा–चक्र में जाने से ही वह स्वाभाविक क्रम से सहस्रार में जायेगा। जैसे किसी ढालू स्थान पर जल डाल देने से वह अपने आप बहता जाता है ठीक उसी तरह और क्या?

साकार–निराकार की उपासना

''और साकार–निराकार की बात है। पहले जब हृदय में बिठाया तब साकार है, उसके बाद आज्ञा–चक्र में जाते ही निराकार का आभास मिलेगा। उसके बाद किसी एक ओर की तथा रूप की बात नहीं रहती। तब अव्यक्त गति में जाता है। फिर देखो, **शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध** ये जो पाँच तत्त्व हैं इनमें प्रत्येक के भीतर ही हर एक मौजूद है।'' इस प्रकार अनेक घटनाओं तथा बातों का क्रम चलने लगा। रात के 10 बजे माँ लेट गयी; किन्तु आज शरीर फिर न जाने कैसा हो गया। सिर बहुत ठंडा हो गया। सेंक देते-देते सिर थोड़ा गरम हुआ। उसके बाद माँ चुपचाप सो गयी।

हरिद्वार में दिल्ली के–भक्तों का नाम–कीर्तन

फाल्गुन 28, शनिवार– आज भोर में ही माँ उठ गयी। कल माँ का शरीर बहुत ही खराब हो गया था। इस कारण आज माँ को ऊपर लाया गया। थोड़ा दिन चढ़ते ही लगभग 30–35 स्त्री–पुरुष दिल्ली से कीर्तन करने के लिए आ पहुँचे।

डॉक्टर का एक हॉल (कमरा) सजाकर 10 बजे कीर्तन शुरू हुआ। कीर्तन आरम्भ होते समय माँ भी नीचे उतर आयी। भक्तों ने माँ को माला और चन्दन से अच्छी तरह सजा दिया। उसके बाद सभी लोग माला–चन्दन से सजकर घूम–घूमकर नाम–कीर्तन करने लगे–

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द।

साथ-साथ मृदंग-मंजीरा बजने लगे। भक्तों के मुख के नाम की प्रतिध्वनि से सारा मकान गूँजने लगा। एक तो इस मकान में गंगा की कलकल ध्वनि निरन्तर सुनाई पड़ती है उसके ऊपर नाम की ध्वनि मिलकर भक्तों का हृदय आनन्द से प्रफुल्ल हो उठा। खासकर श्री श्री माँ उपस्थित हैं। उनकी शक्ति से ही मानो नये उत्साह से भक्त लोग गाने लगे-

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द।

तीसरे पहर माँ फिर आकर कीर्तन के कमरे के पास वाले बरामदे में बैठ गयी। चारों ओर स्त्रियाँ बैठ गयी। नाम की ध्वनि खूब जम गयी। बहुत से साधु-संन्यासियों ने आकर कीर्तन में योगदान दिया। सन्ध्या के बाद माँ कीर्तन के कमरे में आकर सबके साथ घूमने लगी। चेहरे पर अपूर्व-ज्योति झलक रही थी। इस समय चेहरे पर रुग्णता का लेशमात्र चिन्ह भी नहीं था। नाम शुरू होने के बाद से ही उनके शरीर में एक प्रकार की क्रिया होती जाती थी। उसे वह सम्भालती जाती थी। इस समय भी माँ को घूमते देखकर दूसरी स्त्रियाँ भी पुरुषों के दल में मिलकर घूमने लगी। उनमें संकोच का चिह्न भी नहीं था, क्योंकि माँ बीच में हैं। माँ की अवस्था का परिवर्तन होते ही वह एक किनारे जाकर खड़ी हो गयी। बाद में फिर आकर अपने स्थान पर बैठ गयी। बैठकर भी अपने भीतरी भाव को सम्भालने लगी। माँ के खड़े होते ही कीर्तन और भी जम गया। और-जय माँ, जय माँ, जय माँ, कहकर भक्तों ने कीर्तन आरम्भ किया। बहुत देर के बाद कीर्तन समाप्त हुआ।

कीर्तन का भाव, यथार्थ समाधि क्या है

माँ को सोने के कमरे में ले जाया गया। भक्त लोग खड़े रहकर माँ के साथ बातचीत करने लगे। बात-बात में चारू बाबू ने कहा-''माँ को कीर्तन के समय न जाने कैसा एक भाव हो गया था। हमने तो समझा शायद फिर शिमला की तरह अवस्था हो गयी है। शिमला में जो कुछ देखा है, वह कभी भी भूला नहीं जा सकता। अच्छा माँ, भाव बहुत आनन्द का होता है न?'' माँ ने कहा-''हर समय एक ही भाव है। आनन्द या निरानन्द का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। कीर्तन के बिना भी शरीर न जाने कैसा हो जाता है? और शायद आवश्यक भी हो, इसलिए शरीर नाम से भी वैसा हो जाता है।''

बात-बात में माँ ने फिर कहा-"देखो, कितने प्रकार के भाव हैं, किसी में शायद कीर्तन सुनते-सुनते अपने उपास्य देवता की मूर्ति के अनुरूप शरीर में क्रिया हो जाती है। जैसे कृष्ण या काली की मूर्ति के जो लोग उपासक हैं वे शायद कीर्तन के भावावेश में कृष्ण या काली की तरह खड़े हो गये। उसके बाद शायद एक अवसन्न भाव आया, पड़े रहे, लोग समझने लगे कि 'समाधि' है। परन्तु वह 'समाधि' बिल्कुल नहीं है। किसी के शायद नाम सुनते-सुनते हाथ-पैर आनन्द से सुन्न हो गये। लोगों ने समझा कि समाधि है, परन्तु असल में वह सांसारिक भावों का एक जड़ रूप मात्र है। यह जड़ भाव समाधि बिल्कुल नहीं है। भीतर इस दुनिया के आनन्द या निरानन्द का भाव समाधि की अवस्था में नहीं रह सकता। यह जो खण्ड-खण्ड भाव लेकर शरीर में एक-एक क्रिया हो जाती है यद्यपि यह साधारण से ऊँचा है, परन्तु वह उस महान् भाव या समाधि के पास तक भी नहीं पहुँच सकता।" इन बातचीतों के बाद 10 बज जाने के कारण दरवाजा बन्द कर दिया गया।

फाल्गुन 29, रविवार– दिल्ली के भक्त लोग आज भी रहेंगे। डॉक्टर साहब के इस मकान की बगल में ही एक सेठजी का मकान है। यहाँ के कीर्तन का समाचार पाकर सेठजी ने अपने मकान में एक दिन कीर्तन करने के लिए प्रार्थना की, इसलिए आज सेठजी के मकान में कीर्तन होगा। डॉक्टर साहब के मकान में ही बीरेन ने **'निमाइ-संन्यास'** का कीर्तन किया। आज भोर में ही भोलानाथजी आ पहुँचे। 'निमाइ-संन्यास' समाप्त होते ही भोलानाथजी ने नाम-गान शुरू किया। उनके नाम-कीर्तन शुरू करने पर वह किसी को चुपचाप खड़े रहने नहीं देते थे। सबको खींचकर कीर्तन में सम्मिलित करते हैं। वह बहुत देर तक नाम-कीर्तन कर सकते हैं। नाम जब खूब जम जाता है तब स्वयं भी मत्त हो जाते हैं। लगभग 11 बजे माँ ने कहा-"इस नाम-कीर्तन को बन्द करने की आवश्यकता नहीं है। इसे सेठजी के मकान में ले जाया जाय-" वही हुआ। उसी मकान में नाम-कीर्तन होने लगा।

यह मकान भी गंगा के गर्भ में है। इसमें अखण्ड अग्नि की रक्षा की जाती है। प्रतिदिन चार-पाँच ब्राह्मण बालक हवन करते हैं। हम लोग देखने गये। गंगा के गर्भ में ही मकान के एक अंश में होम होता है। ब्राह्मण बालक रामनामी ओढ़कर हवन करने बैठे थे-देखने में बहुत अच्छा लग रहा था। माँ तीसरे पहर 2 बजे कीर्तन में गयी। सन्ध्या समय अनेक साधु-संन्यासी

कीर्तन में आये। उनमें कुछ लोगों ने कीर्तन में सम्मिलित होकर उसकी शोभा बढ़ायी। आनन्द का प्रवाह चलने लगा। कुछ रात होने पर कीर्तन बन्द किया गया। कीर्तन के अनन्तर फिर भक्तों का दल माँ के साथ माँ-माँ गान करते हुए डॉक्टर साहब के मकान पर लौट आया। आज कुछ लोग दिल्ली लौट गये। बहुत से पूर्णिमा के स्नान के लिए तथा और भी कुछ दिन माँ का सत्संग लाभ करने के लिए रह गये।

फाल्गुन 30, सोमवार– सुबह माँ के उठने पर भक्त लोग आकर उनके चारों ओर बैठ गये। कुछ धूप चढ़ने पर माँ छत पर जाकर थोड़ा टहलने लगी। 11 बजे माँ के भोग के समय कई स्त्री-पुरुष 'जसीडीह' से आये। ये लोग देवधर के **बालानन्द स्वामीजी** के शिष्य हैं। प्राणगोपाल बाबू से माँ की उच्च अवस्था की बात सुनकर दर्शन करने आये हैं। भोग के बाद वे माँ के पास बैठे। पूछा–"माँ, क्या करने से शान्ति के अधिकारी हो सकते हैं?" माँ ने कहा–"बिना विचार गुरु की आज्ञा का पालन करते चलो। जिस प्रकार पेड़ की जड़ में पानी डाल देने से वह धीरे-धीरे बढ़ता है फिर पुराने पत्ते झड़ जाने पर नये पत्ते अपने आप निकलते हैं उसी प्रकार तुम लोग करते चलो। देखोगे कि धीरे-धीरे अपने आप जो चले जाने का है वह चला जा रहा है और जो आने का है वह आ रहा है। इसे छोड़ दूँगा, उसे छोड़ दूँगा, ऐसा न सोचो। एक ही नाम लेकर रहो। देखोगे कि सभी अपने आप हो जायेगा।" कुछ देर बैठे रहकर वे लोग चले गये। माँ का दर्शन पाकर वे लोग बहुत आनन्दित हुए। बार-बार यही कहते गये। सन्ध्या के पूर्व सब लोगों ने मिलकर कुछ देर तक कीर्तन किया। रात के 12 बजे माँ का दरवाजा बन्द कर दिया गया।

माँ की साधना की बात, देव-देवियों का आसन

चैत्र 1, मंगलवार– बात-बात में मुझसे आज माँ ने कहा–"शरीर के भीतर जब अनेक प्रकार की क्रियायें होती जाती थी उस समय देव-देवियों के चित्र में जिस प्रकार अनेक आसन दिखाई पड़ते हैं उसी तरह के अनेक आसन होते जाते थे। एक-एक देवता एक-एक प्रकार के वाहन के ऊपर एक प्रकार के आसन में बैठे थे। इस शरीर में भी ठीक वैसा ही होता था। इस प्रकार का एक आसन देखकर तुम्हारी नानीजी बहुत डर गई थी। वे तुम्हारे

नानाजी को दिखाने के लिए बुला लायी। परन्तु वे आकर नहीं देख सके। शायद प्रयोजन नहीं था।''

होली की पूर्णिमा पर माँ के साथ रंग खेलना और भोलानाथजी का मातृ-भाव

चैत्र 2, बुधवार– आज होली की पूर्णिमा है। दिल्ली से कुछ लोग आये हैं। आज जमशेद्पुर से यतीश बाबू अपनी पत्नी के साथ आये हैं। सब लोग माँ को लेकर रंग खेलने लगे। माँ का शरीर दुर्बल था परन्तु उस पर उन्हें खयाल ही नहीं था। आनन्द के साथ वह सबसे नाम-कीर्तन करा रही थी- **''जय राधे, जय राधे, जय राधे–''** भोलानाथजी आनन्द में मत्त होकर सबसे नाम-कीर्तन कराने लगे। खूब आनन्द का प्रवाह चलने लगा। कुछ देर के बाद माँ ने सबको भोलानाथजी के साथ ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने के लिए भेज दिया। रंग खेलने के पहले गंगा-किनारे माँ और भोलानाथजी की फोटो ली गयी। भोलानाथजी ने कुछ देर तक माँ की ओर देखते हुए माँ-माँ कहकर कीर्तन किया। आज फोटो खींचते समय जब भक्तों ने माँ और भोलानाथजी को एक साथ बिठाकर फोटो खींचने की बात चलायी तब माँ ने एकाएक कुछ उच्च स्थान पर जा बैठकर भोलानाथजी से कहा-''केवल माँ-माँ कहने से नहीं होता, लड़के की तरह पास बैठो।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। भोलानाथजी भी हँस रहे थे। भक्त लोग भी हँसने लगे। सचमुच ही भोलानाथजी थोड़ा नीचे माँ के पास बैठे। मैंने कहा-''बहुत अच्छा, अब माँ-बेटे की फोटो खींचिये।'' भोलानाथजी ब्रह्मकुण्ड जाकर भी सबको साथ लेकर कीर्तन कर रहे थे और अब कीर्तन करते हुए ही वापस आये। सब लोग स्नान करके आये तो माँ ने सबके ललाट पर चन्दन और अबीर का टीका लगा दिया। भक्त लोग माँ के अनुग्रह से अपने को कृतार्थ मानने लगे। माँ के चरणों पर सिर रखकर सबने प्रणाम किया। बहुत देर के बाद कीर्तन समाप्त हुआ।

12 बजने पर नियमानुसार माँ का दरवाजा बन्द कर दिया गया। आज माँ का भोजन नहीं हुआ। क्योंकि कीर्तन और स्नान आदि के कारण सभी को देर हो गयी थी। माँ बोली-''जब नियम चल रहा है तब उसकी रक्षा भी करनी चाहिए। अब दरवाजा बन्द कर दो। रसोई हो जाने पर जगा देना।''

वैसा ही किया गया। भोग के समय माँ के आकर बैठते ही भक्तों ने उन्हें चारों ओर से घेर लिया। माँ का भोग हो जाने पर प्रसाद लेने के लिए छीना-झपटी होने लगी। भोग हो जाने पर माँ फिर अपने सोने के कमरे में आकर मौन हो गयी और कहा-''मेरे मौन हुए बिना तुम लोग बात करना बन्द नहीं करोगे।'' यथार्थ में ही माँ के सारे कार्य सर्वाङ्ग-सुन्दर हैं। लोक-शिक्षा के लिए न जाने माँ कैसी-कैसी लीलायें करती रहती हैं।

भोलानाथजी भी माँ के पुत्र हैं

रंग खेलना शुरू होने से पहले जब भक्तों ने माँ और भोलानाथजी के चरणों में अबीर दिया उस समय अबीर देने के लिए पास-पास की दो कुर्सियों पर माँ और भोलानाथजी को भक्तों ने बिठाया। जब भक्तों ने माँ के गले में मालायें पहनायी तो माँ हँसते हुए भोलानाथजी की ओर इशारा करके बोली-''इस लड़के के गले में भी माला पहना दो। इतना कहकर भोलानाथजी की ओर देखते हुए बोली-''क्या मैं आशीर्वाद दूँ?'' इतना कहकर भोलानाथजी के सिर पर हाथ फेरते हुए फिर बोली-''सुमति-सुबुद्धि हो, घर से अच्छी तरह निकलो।'' भोलानाथजी भी हँसने लगे। उपस्थित भक्त एकटक माँ की यह लीला देख रहे थे। लोगों के मन में कैसा भाव जगा, पता नहीं। परन्तु सभी स्तम्भित हो गये। माँ ने फिर हँसते हुए सबकी ओर देखकर कहा-''तुम लोग मेरी ओर एकटक क्यों देख रहे हो?'' इतना कहकर वह हँसने लगी। सन्ध्या के पूर्व आज भी सब लोगों ने मिलकर माँ के सामने कीर्तन किया। आज दिल्ली के सब लोग चले गये। केवल पंचू बाबू रह गये।

चैत्र 3, बृहस्पतिवार- आज भोर में माँ के आँख खोलने से पहले ही मैंने जाकर माँ के पैरों में कुछ सरसों के तेल की मालिश करना शुरू किया। माँ आँखें बन्द रखते हुए ही मधुर हँसी हँसने लगी और हँसते-हँसते बोली-''सुनो खुकुनी, तुम्हारे ही जैसे लोग आकर मुझे अभी नाम सुना गये।'' इतना कहकर गाने के स्वर से माँ कहने लगी-''जय गुरु, जय माँ, श्री मधुसूदन, गोपाल, गोविन्द, नाम, भक्त नारायण।'' मैंने पूछा-''किसने नाम सुनाया माँ?'' माँ ने हँसते हुए उत्तर दिया-''छोटे-छोटे बच्चे बहुत से देखे। कोई नंगा, किसी के कुर्ते का बटन खुला, किसी का रंग बहुत काला, इसी तरह के। अपने से मिला-मिलाकर नाम करने लगे। किसी की पोशाक मैली, किसी की साफ,

सब हिलते-डुलते बच्चों की तरह अपने मन से नाम कर रहे थे। अभी भी उसका स्पन्दन कमरे के भीतर है। (अपने शरीर को दिखाकर) इस शरीर को बीच में खड़ा करके चारों ओर घूम-घूमकर नाम करने लगे। कभी-कभी हाथ जोड़ रहे थे। तुम लोगों में से कोई कमरे में नहीं था।''

इसके बाद और भी कुछ लोग कमरे के भीतर आये। दूसरी-दूसरी बातें चलायी गयी। कल रात वाली उस 'अखण्ड भावघन' की बात माँ कहने लगी-''देखो सूर्य और उसकी रश्मि, मानो उसी तरह की ये मूर्तियाँ उसी समय से आने लगी। किसी स्थान पर शायद प्रकाश कुछ अधिक पड़ा है और किसी जगह शायद कुछ कम। देखो, सूर्य को जब हम नहीं देखते, उस समय भी सूर्य पृथ्वी की दूसरी ओर रहता है-ऐसा सुना है, इस कारण सूर्य अनादि और अनन्त है। प्रलय में भी बीज रहता है। उसी से फिर प्रकाश होता है। यह आवागमन अनादि और अनन्त है। इसी से कहती हूँ कि सांसारिक सभी अनादि और अनन्त हैं। सभी तो वही हैं। इसलिए सभी अनादि-अनन्त हैं।''

देहरादून से प्रोफेसर सत्य बाबू आये हैं। साथ में एक सम्बन्धी युवक जो सात वर्षों से गेरुआ वस्त्र पहनकर ब्रह्मचारी की अवस्था में है। उसे माँ को दिखाने के लिए साथ लाये हैं। बात-बात में ब्रह्मकुण्ड के स्थान की बात चली। माँ ने कहा-''ऐसा विचार रखना चाहिए कि यथार्थ में ही ब्रह्मकुण्ड में स्नान कर सको।'' ब्रह्मचारी ने माँ के इस गम्भीर भाव की बात समझकर कहा-''माँ, ब्रह्मकुण्ड में स्नान कर सकूँगा न?'' माँ ने कहा-''उसी पथ पर तो चल रहे हो। मन में दुविधा क्यों लाते हो? अपना काम करते जाओ।''

आज सुबह नीरोज बाबू आकर उपस्थित हुए। अमृतसर लौटने के मार्ग में फिर माँ को जरा देखते जायेंगे।

कीर्तन से भी माँ का शरीर अच्छा हुआ

तीसरे पहर माँ का दरवाजा खुलने पर सभी लोग माँ के सामने बैठ गये। आज दो-तीन दिनों से बात चल रही थी कि कीर्तन से माँ का स्वास्थ्य सुधर रहा है। माँ ने स्वयं भी कहा-''देखो, कीर्तन के दूसरे दिन से ही भोजन हो रहा है।'' यथार्थ में ही माँ का पेट अच्छा नहीं रहता। सदा ही कुछ भारी-भारी मालूम होता है। इसलिए बहुत थोड़ा ही खाती हैं। डॉक्टर साहब

कुछ अधिक खाने के लिए प्रार्थना कर रहे थे। परन्तु माँ खा न सकी। कीर्तन के दूसरे दिन से ही पहले की अपेक्षा कुछ अधिक खा रही हैं। हृदय की क्रिया भी अच्छी है। कहती हैं-''तुम्हारे कीर्तन ने ही मेरे शरीर को अच्छा कर दिया है।''

उसके बाद स्वयं ही बोली-''तुम लोग सभी कहते हो कि मन स्थिर नहीं होता, मन स्थिर नहीं होता। क्यों नहीं होता? वह तो तुम लोग नहीं समझते। सदा ही अस्थिर चीजों की चिन्ता करते रहते हो। अस्थिर वस्तुओं की चिन्ता से मन स्थिर कैसे होगा? संग का गुण है न? सदा ही अस्थिर वस्तुओं की चिन्ता करते रहोगे और दो-एक घंटा पूजा के घर में बैठकर कहोगे-''इतना किया, मन तो स्थिर नहीं हुआ।'' औषध और पथ्य दोनों ही चाहिए, तब तो रोग अच्छा होगा। सांसारिक विषयों की चिन्ता केवल अभाव ही जगा देती है, स्वभाव में नहीं जाने देती।''

क्या भगवान् में दया है

उसके बाद फिर बात-बात में भगवान् की दया का प्रसंग चला। सत्य बाबू माँ की बात सुनने के लिए बोले-''माँ, भगवान् में भी दया-ममता है क्या? तब तो देखता हूँ उनको भी कष्ट होता है। यह कैसा हुआ?'' माँ पहले इधर-उधर की बातें करने लगी-''पिताजी, तो इन सब प्रार्थना-स्तुति आदि का क्या उद्देश्य है, बता सकते हो।'' इन सब बातों से प्रश्न की मीमांसा नहीं हो रही थी। उसके बाद माँ ने कहा-''भगवान् में दया-ममता है क्यों नहीं? उनमें सभी है फिर कुछ भी नहीं है। एक साथ दोनों ही उनके भीतर खेल सकते हैं।'' तब ब्रह्मचारी युवक ने सत्य बाबू से कहा- ''क्यों अब तो मीमांसा हो गयी न?'' सत्य बाबू ने कहा-''यह सब कह-कहकर ही हम लोग माँ की बात निकाल लेते हैं।'' माँ बोली-''एकदम सत्य बात है बाबा, तुम्हीं लोग बात निकाल लेते हो, मैं तो तुम्हारी ही लड़की हूँ।'' इतना कहकर फिर अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी हँसने लगी। सभी माँ के मुख की हँसी और बात से खूब आनन्दित हो रहे थे। कुछ देर के बाद सत्य बाबू और ब्रह्मचारी प्रणाम करते हुए विदा लेकर चले गये। ब्रह्मचारी माँ को साष्टांग प्रणाम करते हुए आशीर्वाद की भिक्षा कर रहे थे।

एक संन्यासी आये हैं। बात-बात में उन्होंने कहा-''दिल्ली में उनका मकान

है-इत्यादि।'' निरोज बाबू ने कहा-''संन्यासियों में ऐसा भाव क्यों रहेगा?-मकान, मठ, मन्दिर।'' इस बात पर माँ कहने लगी-''देखो, इस समय जो गेरुआधारी संन्यासी दिखाई पड़ते हैं वे संन्यासी बनने का केवल प्रयत्न कर रहे हैं। इसीलिए संन्यासी की वृत्ति धारण किये हुए हैं। कभी-कभी गृहस्थों में संन्यास वृत्तिधारियों की अपेक्षा उच्च भाव दिखाई पड़ता है। फिर इन सब संन्यासियों के किसी-किसी में नीच भाव भी समय-समय पर दिखाई पड़ते हैं। गृहस्थों के वे उच्च भाव मन में उठकर ही मन में लीन हो जाते हैं। फिर कभी-कभी उनके कार्यकारी होने का भी प्रमाण मिलता है। जैसे-एक अग्निकुण्ड है, उसकी एक चिनगारी दूसरे बड़े अग्निकुण्ड की सृष्टि कर सकती है।'' इस प्रकार के वार्तालाप के अनन्तर-सन्ध्या के पहले ही कीर्तन शुरू हो गया। घंटे भर तक कीर्तन चला। बाद में सब लोग धीरे-धीरे चले गये।

माँ की लीला

चैत्र 4, शुक्रवार- आज माँ के उठने में कुछ विलम्ब हुआ। जागने पर भक्त लोग आकर बैठ गये। लगभग 11 बजे माँ का भोग हुआ। माँ को कुछ दिनों से सर्दी और खाँसी हुई है। आज कच्चे आम से दाल पकायी गई है। माँ खा रही हैं। थोड़ा-सा खाने के बाद दूसरी तरकारी खाने लगी। पंचू बाबू उपस्थित थे। उनसे माँ ने कहा-''भोलानाथ को जरा बुलाओ तो।'' भोलानाथजी के आने पर माँ ने कहा-''देखो कटोरी में जो कच्चे आम की दाल है क्या सारी खा जाऊँ?'' भोलााथजी ने कहा-''बहुत ज्यादा खट्टी हुई है क्या?'' माँ ने कहा-''जरा खाकर देख लो।'' भोलानाथजी जरा आनाकानी करने लगे। देखकर माँ ने मुझसे कहा-''चम्मच से उनके मुँह में थोड़ा डाल तो दो।'' मैंने हँसते हुए वैसा ही किया। सब लोग हँसने लगे। इस लीला से सभी आनन्द करने लगे। भोलानाथजी ने कहा-''खाओ, ज्यादा खट्टी नहीं हुई है। माँ तुरन्त बोल उठी-''तुम खिला दोगे न?'' भोलानाथजी ने कहा-''मैं अच्छी तरह सान न सकूँगा।'' इतना कहकर वह अच्छी तरह सानकर माँ को खिलाने लगे। माँ ने हँसकर कहा-''डॉक्टर साहब के आने पर कहूँगी कि भोलानाथ ने मुझे खाने को कहा और खिला दिया है इसीलिए मैंने खट्टी दाल खायी है।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। भोलानाथजी ने भी हँसकर कहा-''ठीक ही तो दोष सारा मेरा ही है।''

माँ ने थाली में कुछ नहीं रखने दिया। पंच बाबू, बेनू और अभय इन तीन आदमियों को पास बिठाकर दाल, भात और तरकारी उनके हाथ में देने के लिए कहा। सब तरकारी इसी तरह समाप्त कर माँ उठ खड़ी हुई। उसके बाद मुँह-हाथ धोकर अपने छोटे-बिछौने पर आ बैठी। डॉक्टर के आदेश के अनुसार 12 बजे दरवाजा बन्द होगा और आधा घण्टा बाकी है। सभी लोग बैठे हैं। एक मिनट पहले भी कोई माँ को छोड़कर जाना नहीं चाहता। 12 बज जाने पर दरवाजा बन्द कर दिया गया।

चार बजे माँ के उठने पर बहुत-सी स्त्रियाँ माँ के दर्शन करने के लिए आयी। माँ ने सबको नाम-कीर्तन करने के लिए कहा। अभय पहले गाने लगा, उसके बाद दूसरे लोग गाने लगे। गंगा किनारे वाले छोटे कमरे में माँ सबको लेकर बैठी हैं। आम की दाल खाने के बाद से माँ को अब खाँसी नहीं है। सब लोग इस बात से आनन्द करने लगे कि माँ ने खाँसी की अच्छी दवा खायी है। अब खाँसी कैसे रह सकती है। आज भी रोज की तरह रात के 10 बजे माँ का दरवाजा बन्द कर दिया गया।

चैत्र 6, रविवार– कल रात से माँ का शरीर फिर कुछ अस्वस्थ हो गया। आज सुबह दिल्ली से जितेन बाबू माँ के दर्शनों के लिए आये हैं। बड़ौदा से गंगाचरण बाबू भी सपरिवार आये हैं। माँ का शरीर फिर कुछ अस्वस्थ हो गया, देखकर सभी का मन उदास है। हृदय की धड़कन बढ़ गयी है। थोड़े समय के भीतर ही माँ का चेहरा उतर जाता है। फिर थोड़ी देर में ही मुख का भाव कुछ अच्छा दिखाई पड़ता है। आज दिनभर ही माँ का शरीर खराब चल रहा है। शाम को माँ का सिर, हाथ-पैर ठंडे हो गये। सेंक देते-देते फिर कुछ गर्म होने लगे। माँ अपने ही भाव में बोली–"अच्छा, शरीर के भीतर एक कीर्तन चल रहा है।" परन्तु सभी के मन में भय है कि कौन जाने माँ क्या कर बैठेंगी?

चैत्र 7, सोमवार– कल रातभर माँ के दिल की धड़कन चल रही थी। आज चेहरा उतरा हुआ मालूम हो रहा है। आज भोर में ढाका से भूपति दादा दो महीनों की छुट्टी लेकर माँ के पास आये हैं। माँ आज सुबह निचले कमरे में उतर गयी हैं। वहाँ उपस्थित लोगों से माँ बातचीत करने लगी। शरीर अस्वस्थ है। अधिक बातचीत न करने के लिए हम लोग अनुरोध कर रहे हैं। फिर भय भी होता है कि माँ के चुप होने से एकदम मौन हो जाने का भाव

न हो जाय, बात करने का भाव ही नहीं रहता। इस कारण अपने मन से जो दो-एक बात कहती हैं हम लोग उसमें शामिल होते हैं।

जमशेदपुर से यतीश डॉक्टर महाशय सपरिवार आये हैं। उनकी छः महीने की बच्ची अपनी माँ की गोदी में बैठकर तरह-तरह के शब्द कर रही है। सुनकर माँ बोली-''बात निकलने का पूर्व लक्षण है। तरह-तरह के शब्द कर रही है। इसके बाद एकाएक बाबा या दादा शब्द निकल आयेगा। अपनी इच्छा से ऐसा शब्द कर रही है, ऐसा नहीं। अपने आप होता जा रहा है। बात की गाँठ खुलती जा रही है। शरीर में एक स्पन्दन-सा होता है, (अपने शरीर को दिखाकर) भीतर से जब मंत्रादि निकलता था तब उसी तरह कभी-कभी भीतर से अपने आप शब्द ढकेलकर निकल आता था। परन्तु इन बच्चों में संस्कार है, बाहरी शिक्षा है, अभाव का खेल है न? जैसे बाबा या दादा शब्द बाहरी शिक्षा है। किन्तु इस शरीर में तो वैसा कुछ नहीं, अपने आप स्वभाव से होता जा रहा है।

अद्वैत भाव के साधकों की अवस्था की बात

फिर बात-बात में माँ कहने लगी-''साधकों की अवस्थायें कैसी सुन्दर हैं? पहले-पहल जब अद्वैत का भाव आने लगता है, तब मालूम होता है-'यह भी मैं हूँ', 'वह भी मैं हूँ' अर्थात् उसके ऊपर जोर रहता है। उसके बाद क्या होता है? 'मुझे छोड़कर कुछ भी नहीं है।' यह भाव जागता है-केवल मैं ही हूँ। मेरे सिवाय और कुछ भी नहीं है, यह बात भी अशुद्ध है क्योंकि भाषा तो भा+सा-जो भासता है। भाषा से वह भाव प्रकट नहीं किया जा सकता।''

फिर कह रही हैं-''साधकों के भीतर भी संस्कार की छाप रहती है। कितनी ही ऊँची अवस्था में ही वे क्यों न पहुँच जायें प्रथम सूत्र का कुछ आभास रह ही जाता है। क्योंकि साधक हैं न, अवस्था है न? अवस्था के परे स्थिति होने से वह भिन्न बात है। साधक लोग लोक-शिक्षा के लिए बहुत कुछ करते हैं सही, परन्तु ध्यान देने पर समझ में आता है कि यह लोक-शिक्षा के लिए कर रहे हैं और वह भीतर के संस्कार के कारण कर रहे हैं। परन्तु जो अवतार हैं उनमें तो संस्कार का खेल नहीं रह सकता। इसी कारण उनके कर्म आदि का नाम 'खेल' या 'लीला' है।''- इतना कहकर माँ हँसने लगी।

माँ आज सुबह एक काण्ड कर बैठी। पाखाने गयी थी। उसमें वायु चलाचल का रास्ता बहुत छोटा था। एकाएक दरवाजे की सिटकिनी गिर गयी और वह बच्ची की तरह दरवाजे के पास आकर भीतर से जोर-जोर से खुकुनी, खुकुनी कहकर पुकारने लगी। पहले हम समझ नहीं सके। पर दूसरे ही क्षण मैं बेलू को लेकर दौड़ती हुई वहाँ पहुँची। कुछ देर बाद माँ दरवाजा खोल सकी। बाहर निकलकर कहा-''दरवाजा बन्द हो गया था। खोलने का खयाल ही नहीं आ रहा था। इसलिए पुकार रही थी। उसके बाद खोलकर उल्टी ओर से किवाड़ों पर धक्का दे रही थी।'' कभी-कभी ऐसा देखा गया था कि दरवाजा खोलने या बन्द करने का खयाल ही नहीं रहा, मामूली सिटकिनी भी नहीं खोल सकती और कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि जो काम साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता, उसे अनायास ही कर डालती हैं। इस कारण ट्रेन में भी माँ के पाखाने जाने पर मैं प्राय: उसका दरवाजा कुछ खुला रखकर और उसका एक पलड़ा पकड़कर खड़ी रहती थी। मेरे न रहने पर स्वयं भी दरवाजा थोड़ा खुला रखकर और पलड़ा पकड़कर बैठती थी। शायद कभी बन्द कर बैठी फिर खोलने का खयाल ही नहीं रहा; बाहर से लोग समझने लगे कि माँ का पाखाना अभी भी नहीं हुआ है परन्तु उधर शायद उस बन्द कोठरी में माँ के शरीर की गति दूसरे प्रकार की हो गयी। इसी तरह कभी तो माँ बिल्कुल साधारण भाव से चलती हैं और फिर कभी शायद विशेष असाधारण भाव से उनके शरीर की गति चलने लगी। एक ही आधार में इस प्रकार के अनेक भावों की लीला हम लोगों ने देखी है।

माँ के बचपन की बात, स्पर्श-सुख-भोग

चैत्र 8, मंगलवार- लगभग 8 बजे माँ उठी। उनका शरीर अच्छा नहीं था। दिन के 11 बजे माँ का भोग हुआ। 12 बजे दरवाजा बन्द हो जायेगा। माँ के पास मैं बैठी थी। अपने बचपन की बात चलायी। माँ के अद्भुत चरित्र की बात जितना सुनती हूँ या देखती हूँ हर बार ही नयी मालूम होती है। माँ कहने लगी-''यह जो एक स्पर्श-सुख सभी लोग अनुभव करते हैं, माता-पिता, भाई-बहिन या बच्चों को लिपटकर, इस शरीर की गति कभी उस प्रकार नहीं हुई है। अब चारों ओर देखती हूँ, यहाँ तक कि सन्तान से लिपटकर माँ कितना ही सुख पाती है, पर मैं माँ की ओर पीठ फेरकर माँ के पास लेटी रहती थी, उसके बाद कीर्तन के समय इस शरीर के उलट-पलट

होते समय तुम लोगों ने इसे लिपटा लिया। बाहर-भीतर जब एक हो गया तब शायद इस शरीर के पिता के कन्धे पर सिर रखकर फोटो खींची गयी। परन्तु पहले इस प्रकार का भाव कभी किसी ने देखा नहीं है। शायद प्रयोजन भी नहीं था। इसीलिए उस ओर शरीर की गति ही नहीं हुई।''

भोलानाथजी ने माँ को सदा ब्रह्मचारिणी कहा है। यह बात मैंने पहले ही लिखी है। जिस वृत्ति के हाथ से संसार में कोई नहीं बच सका, मेरी माँ के शरीर में वह वृत्ति जागी ही नहीं। माँ कहती हैं-''शायद तुम लोगों को प्रयोजन नहीं था। प्रयोजन बिना कुछ भी तो इस शरीर में प्रकट नहीं होता। शरीर में किसी भाव की तो अंगहानि नहीं है।'' बचपन में इसके लिए भोलानाथजी समय-समय पर कहते थे-''यह कैसा अद्‌भुत है, ऐसा तो कभी सुनाई नहीं पड़ता।'' माँ ने उस समय उत्तर दिया था-'शायद प्रयोजन नहीं है।' यहाँ तक कि भोलानाथजी के भीतर वह भाव थोड़ा भी उत्पन्न हुआ तो माँ के शरीर में ऐसा परिवर्तन हो जाता कि भोलानाथजी डर जाते और माँ को स्वाभाविक अवस्था में लाने के लिए घबराकर अनेक उपचार करने लगते। माँ कहती हैं-''अंगस्पर्श करने की आवश्यकता नहीं होती थी। बिछौने पर लेटी थी। भोलानाथ के भीतर किसी प्रकार भाव परिवर्तन होते ही इस शरीर की अस्वाभाविक अवस्था हो जाती थी।''

माँ कहती हैं-''इसे भोग करूँ या त्याग करूँ ऐसा भाव नहीं था। इस रास्ते से शरीर चल रहा है। शायद इसी का तुम्हें प्रयोजन है, इस कारण शरीर की गति ऐसी हो गयी है। यदि कहो, क्यों वह भोग इस शरीर से नहीं हुआ, इस क्यों का कोई अर्थ नहीं है। परन्तु यह भी कह सकती हो कि अंग्रेजी में बात क्यों नहीं करती? अंग्रेजों या किसी दूसरी जातियों का खाना क्यों नहीं खाती? उनके ऐसा रंग या भाव इस शरीर में क्यों नहीं हुआ? हर विषय में ही ऐसे प्रश्न पूछे जा सकते है। 'क्यों जाऊँगी? कहाँ? हर बात में ही क्यों। इस प्रकार अनेक बातें ही उठ सकती हैं। इसलिए कहती हूँ कि जिसकी तुम लोगों को आवश्यकता है, वही शरीर में होता जा रहा है।''

इन बातों के साथ-साथ पूर्वोक्त कल्याण वन की बात चली। माँ कहने लगी-''देखो, कुछ बातें ऐसी हैं कि कभी-कभी भीतर जागते ही उसे बाहर निकाले बिना रहा नहीं जा सकता। जैसे वमन का वेग आने पर उसे बिना निकाले शान्ति नहीं मिलती। ये जो बातें हो रही हैं यह भी एक प्रकार का

वमन करना ही है।'' फिर कभी-कभी दिखायी पड़ा कि रात में माँ लेटी हुई हैं। एकाएक मुँह घुमाकर बोल उठी-''कल मुझे एक बात का खयाल करा देना।'' इतना कहकर फिर चुपचाप लेटी रही। आज इस बात के प्रसंग में माँ ने कहा-''मेरे पास तो कोई झोला नहीं है न, झोला रहने पर भी उसके नीचे वाली सिलाई नहीं है। या तुम लोग पाइप या नल ऐसा कुछ कहते हो जिसके दोनों ओर खुली हैं। उसमें किसी चीज के रखने की जगह नहीं है। इस कारण सारी चीजें तुम्हीं लोग रखते हो। बातों को तुम लोगों के सामने डालकर ही मैं छुट्टी पा जाती हूँ। तो हाँ कभी-कभी पूछ भी तो लेते हो। चीज-वस्तु सब तुम्हीं लोग रखते हो। खाना-पीना भी तुम्हारे ही जिम्मे है। बातचीत तुम्हारे सामने डाल दी जाती है।'' इतना कहकर माँ अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी हँसने लगी।

माँ के विवाह का सम्बन्ध

फिर थोड़ी देर बाद हँसते हुए बोली-''देखो एक बात आ पड़ी है। अगर उसे न बताऊँ तो तुम लोग दरवाजा बन्द कर चले जाओगे और मैं अकेली हँसती रहूँगी। इसलिए तुम्हारे सामने कह देती हूँ। बचपन में शायद उस समय 11-12 वर्ष की उम्र होगी। एकाएक एक स्थान से इस शरीर का विवाह सम्बन्ध आया। वर की एक फोटो साथ लाये थे। हम गाँव की लड़कियों ने उस समय तक फोटो नहीं देखी थी। सबने उसको देखा। मैं प्राय: अपने स्वभाव के अनुसार किसी गाने की एक पंक्ति अपने मन से गाया करती थी, खेलती थी, पेड़-पौधों के साथ बातें करती थी। आज भी फोटोग्राफ इस बात को सुनकर दोपहर को मैं गाना गाने लगी-फोटाग्राफ, फोटोग्राफ, फोटोग्राफ, फोटोग्राफ। इस शरीर के एक नानाजी ने ओट से उसे सुनकर हँसते हुए मेरे सामने आकर कहा-''क्या हो रहा है?'' मेरे विवाह सम्बन्ध के लिए फोटो आयी है इस बात का मुझे खयाल ही नहीं था। तो भी नानाजी की हँसी से उस समय लज्जा हुई और वह ऐसी लज्जा कि मुझे रुलाई आ गई।'' इस बात को कहते हुए माँ हँसने लगी और बोली-''कैसे-कैसे तमाशे हो जाते हैं?'' मैं भी इस बात से खूब हँसने लगी।

माँ और आश्रम

तीसरे पहर बहुत लोग आये। माँ उपस्थित लोगों से बातें करने लगी।

जितेन बाबू आज चले जायेंगे। दिल्ली के आश्रम के सम्बन्ध में कुछ पूछते ही माँ ने कहा–"देखो बाबाजी, मैं तो तुम्हारा आश्रम नहीं चाहती हूँ, कुछ भी नहीं चाहती, केवल कहती हूँ कि तुम लोग सब मिलकर शान्ति से रहो। तुम्हारे भीतर केवल शुद्ध भाव ही बढ़ता रहे, यही मैं चाहती हूँ। सब लोग शान्ति और आनन्द से रहने की चेष्टा करो और यदि आश्रम की बात कहते हो तो वह तुम्हारे लिए है, तुम लोग करो तो उसका भी उद्देश्य है सबके भीतर शान्ति और आनन्द बढ़ा देना। वह न होकर यदि दलबन्दी की सृष्टि हो तो आश्रम की आवश्यकता ही क्या है? न होना ही अच्छा है। तुम लोगों के आनन्द में ही आनन्द है। यदि मेरा आश्रम कहो तो दुनिया भर एक ही आश्रम है। अथवा अनन्त आश्रम हैं।" जितेन बाबू ने भी माँ के चरणों पर प्रणाम करके कहा–"माँ, हम लोग अपनी शक्ति के अनुसार आपके आदेश का पालन करने की चेष्टा करेंगे। आप आशीर्वाद दीजिये, जिससे हम आपके आदेश का पालन कर सकें।" माँ ने कहा–"उनका आशीर्वाद सदा ही है। तुम लोग उसी ओर ध्यान रखकर काम करते चलो।"

चैत्र 9, बुधवार– आज सुबह लगभग 9 बजे माँ उठी। दो दिन से कह रखा है कि सुबह मैं जब तक स्वयं न उठूँ, मुझे न बुलाना।" वैसा ही किया जा रहा है। माँ के उठने पर मुँह–हाथ धुलाकर थोड़ा जलपान करा दिया। दर्शनार्थियों से माँ बातें करने लगी। जलपान के बाद माँ के हाथ और पैर की कुछ छापें ली गयी। 11 बजे भोग हुआ, रोज की तरह 12 बजे दरवाजा बन्द कर दिया गया।

माँ का शरीर आज दो दिनों से कुछ अधिक अस्वस्थ हो गया है। तीसरे पहर माँ उठकर बरामदे में जा बैठी। अनके लोग आये हैं। माँ सभी के भाव के साथ सामंजस्य कर सकती हैं। इसीलिए सभी लोग माँ के पास आकर प्रसन्न हो जाते हैं। सन्ध्या के पूर्व माँ छत पर गयी और रात के 10 बजे तक वहाँ रही।

खाने–पीने के बाद माँ को नीचे उतार लाया गया। एक सज्जन ने आकर कहा–"माँ, सुना है कि आप थोड़ा अस्वस्थ हैं। माँ, आप चाहें तो स्वयं स्वस्थ हो सकती हैं। अब स्वस्थ हो जाइये।" माँ ने हँसकर कहा–"मैं तो हर समय ही स्वस्थ हूँ। तो शरीर में तुम लोग जो कुछ देखते हो वह तो शरीर का ही एक खेल है।" थोड़ी देर के बाद बात–बात में हँसते हुए माँ ने

फिर कहा–''इच्छा होने से ही स्वस्थ होने की बात जो तुमने बतायी वह ठीक ही है। यदि खयाल आया तो निश्चय ही तुम लोग जिसे स्वस्थ कहते हो वह हो सकता है। परन्तु खयाल ही नहीं आता। इसका क्या उपाय है? बताओ।''

इस प्रकार के वार्तालाप में रात के 10 बज गये। माँ के कमरे की बत्ती बुझा दी गयी।

मातृ–दर्शन में शंकरी माँ

चैत्र 11, शुक्रवार– कल रात के लगभग 11 बजे हम लोग केवल लेट गये, इतने में माँ धीरे–धीरे उठकर अकेली निकल गयी। एकाएक जगकर माँ को बिछौने पर न देख मैं ऊपर चली गयी। वहाँ जाकर देखती हूँ कि माँ छत पर लेटी हुई हैं। मुझे देखकर माँ ने कहा–''सोने का भाव ही नहीं है। इसलिए पेट में कुछ दर्द–सा मालूम हो रहा है।'' अभय उस कमरे में ही सो रहा था। मैं कम्बल लेकर माँ के कमरे में चली आयी। रात भर में माँ का शरीर स्वस्थ नहीं हुआ। भोर में कुछ देर के लिए दरवाजा बन्द कर दिया गया। सुबह 8 बजे दरवाजा खोल दिया गया। माँ ने कहा–''पड़े रहने से क्या होगा? शरीर स्थिर नहीं हो रहा है इसलिए उठ बैठा है।'' माँ के उठने पर मुँह–हाथ धुलाकर कुछ पथ्य खिला दिया गया। उसके बाद ही दर्शनार्थी लोग आने लगे। शंकरी माता अपनी शिष्याओं को लेकर माँ को देखने आयी। वह अनेक प्रकार से माँ का आदर करने लगी। माँ भी उन्हें माँ–माँ कहकर बातें करने लगी। शंकरी माता ने कहा–''मैं तुम्हें प्रायः स्वप्न में देखती हूँ– तुम मेरी गोद में उठ बैठी हो।'' कुछ देर ठहरकर वह कनखल चली गयी। और भी एक साधु माँ से एकान्त में बात करने के लिए आये। बाद में सुना–उन्होंने कहा था–''माँ, मैं अनेक प्रश्न पूछने के लिए आपके पास आता हूँ परन्तु दूसरे लोगों के रहने के कारण मैं एकान्त में बात नहीं कर सकता। किन्तु आश्चर्य की बात यह है कि मेरे रहने पर दूसरों के साथ आप जो बातें करती हैं उनमें मेरे प्रश्नों की मीमांसा हो जाती है। इससे मुझे बहुत ही आश्चर्य होता है।''

ढाका के आश्रम में काली माता का दरवाजा खोलने की बात पर माँ की आज्ञा

आज ढाका के यतीन कविराज महाशय सपरिवार आगरा, दिल्ली आदि स्थानों पर होकर हरिद्वार लौट आये हैं। भोजन के पहले भूपति दादा ने ढाका के आश्रम के सम्बन्ध में बात चलायी। माँ ने कहा–''इस शरीर को तो आश्रम के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। तुम लोग जो अच्छा समझोगे वैसा करोगे।'' उत्सव के समय काली माता के मन्दिर का दरवाजा खोलने के सम्बन्ध में अनेक बार गड़बड़ी होती है। भूपति दादा ने माँ से ठीक मीमांसा की प्रार्थना की। मीमांसा हुई कि जन्मोत्सव के दिन अर्थात् जिस दिन माँ के शरीर के प्रकट होने की तिथि है उस दिन सुबह मन्दिर की पूजा आदि के बाद काली–मन्दिर का दरवाजा खोलकर पहले गह्वर के रुपये–पैसे उठाकर हिसाब करना होगा। उसके बाद अन्नपूर्णा के मन्दिर का दरवाजा खोल देना होगा। उस समय सर्व साधारण को मन्दिर में जाने का अधिकार रहेगा। रात के 8 बजे तक दरवाजा खुला रहेगा। उसके अनन्तर अन्नपूर्णाजी का दरवाजा बन्द करके मन्दिर आदि साफ कर काली–पूजा करनी होगी।

उसके पश्चात् काली माता के प्रकट होने के समय अर्थात शेष रात्रि में माँ की पूजा होगी। पूजा के अनन्तर अर्थात दूसरे दिन भोर में कालीजी का दरवाजा बन्द हो जायेगा। पहली बार ऐसा ही हुआ था। माँ ने और भी कहा–''इस काली–मूर्ति की यदि थोड़ी बहुत भी अंगहानि हो तो जहाँ तक संभव हो शुद्ध भाव से उसे ठीक कर लेना होगा और यदि कभी दरवाजा खुलने पर दिखायी पड़े कि मूर्ति का ऐसा अंग नष्ट हो गया है कि मनुष्य के शरीर का उस अंग के नष्ट होने से मनुष्य जी ही नहीं सकता तो उसी समय दरवाजा बन्द कर देना होगा और वह दरवाजा ईटों से चुन देने का सुप्रबन्ध कर देना होगा। चढ़ावे के सारे रुपये–पैसे इस समय गह्वर में ही जमा होते हैं। उस समय फिर उन रुपयों का हिसाब नहीं किया जायेगा और न उसमें से कुछ खर्च ही होगा। साल के अन्त में रुपयों का हिसाब करके रमणा की कालीबाड़ी के महन्त को जो फिलहाल रुपये देने की बात है उस मद में सब रुपये दे दिये जायेंगे।''

गंगाचरण बाबू ने माँ से कहा-"माँ, आपका शरीर इस प्रकार अस्वस्थ क्यों हो गया? आप तो इच्छा करते ही स्वस्थ हो सकती हैं। अपने लिए न हो, हम लोगों के लिए तो स्वस्थ हो जाइये।" उत्तर में माँ ने कहा-"तुम लोगों के लिए ही तो यह शरीर है। यदि इस शरीर से तुम लोगों की कुछ सेवा होती है तो तुम लोग रखोगे, नहीं तो जायेगा। मुझे तो कोई चिन्ता नहीं है।" इतना कहते-कहते मानो माँ के चेहरे पर निश्चिन्त और निर्विकार भाव विशेष रूप से खिल उठा। माँ के मुख की बात अक्षरशः सत्य है वह माँ के व्यवहार से तथा चेहरे के भाव से सदा ही स्पष्ट प्रतीत होती रहती है। उपस्थित सभी व्यक्ति स्तब्ध होकर माँ के मुख की ओर देखते रह गये।

रात के भोजन के बाद 10 बजने में विलम्ब है यह देखकर सब लोग माँ के कमरे में बैठे थे। गोला और गोदावरी से आज तीसरे पहर कुछ गलती हो गयी है इसलिए माँ ने कहा-"तुम लोग दस हजार जप करके इसका प्रायश्चित करना।"

गोला को जनेऊ देने की बात

गोला नाम की लड़की में विशेष धर्म-भाव है। वह प्रायः मौन ही रहती है, कहती है कि बात करने की इच्छा ही नहीं होती। यहाँ एक ब्रह्मचारी आये हैं। उन्होंने गोला को देखकर उसे यज्ञोपवीत देने का प्रस्ताव किया। माँ ने कहा-"अच्छी बात, तुम लोग तैयारी करो।" परन्तु माँ ने बहुत जोर नहीं दिया। गत परसों माँ ने गोला को हर समय मौन रहने को मना कर दिया था। आज सुबह किसी बात के प्रसंग में माँ ने गोला से कहा-"तुम्हें इतने बड़े एक काम (यज्ञोपवीत की क्रिया) का भार देना उचित होगा या नहीं, यह सोचने की बात है।"-इतना कहकर माँ थोड़ा हँसी।

हम लोग उनकी बात का अर्थ अच्छी तरह नहीं समझ सके। लड़की का भाव अच्छा है, माँ ने उसका मौन भंग कर दिया और आज ऐसी बात कहती हैं। इसका कारण क्या है? माँ तो कोई भी बात हर समय स्पष्ट रूप से नहीं बतलाती। माँ का कहना है-"कार्य से तुम लोग समझ लेना।"

आज रात में इन बातों का रहस्य जाना गया। माँ ने जब गोला को उसकी त्रुटि की बात समझाकर दस हजार जप करने का आदेश दिया तो वह लड़की एकदम स्थिर हो गयी। माँ ने उसे पास बुलाकर मीठी-मीठी बातों से

उसे और भी कुछ समझाया। वह लड़की थोड़ी ही देर में एकाएक कमरे से उठकर बरामदे में जाकर चिल्लाते हुए रोने लगी। रोते-रोते कुछ बेहोशी-सी आ गयी। हमने देखा कि उस लड़की का भाव अच्छा होने पर भी दिमाग में शक्ति कम है। अब समझ में आया कि माँ ने इसी कारण उसका मौन भंग करना चाहा तथा उसके सम्बन्ध में वैसा मन्तव्य प्रकट किया है। माँ के पास वह लड़की फिर लायी गयी। लड़की जमीन पर ही पड़ी रही। बहुत रोने लगी। माँ ने गंभीर भाव से कहा-" इस प्रकार होने से तो इस पर किसी विशेष कार्य का भार नहीं दिया जा सकेगा। क्यों?" माँ के चेहरे पर मुस्कुराहट थी; परन्तु उस लड़की से वह उसे छिपा रही थी। उस लड़की के यज्ञोपवीत की बात सुनकर बहुत ही आनन्द हो रहा था। इस कारण माँ की बात से उस लड़की की रुलाई एकदम बन्द हो गयी। माँ भी हमारी ओर देखकर हँसने लगी। अब समझ में आया कि उस लड़की की रुलाई बन्द करने के लिए ही माँ ने उस ढंग से बात की थी।

उसके बाद माँ के कहने से गोला को उठाकर उसके मुँह-हाथ धुला दिये गये। अब वह बहुत ही शान्त भाव से माँ के पास बैठी रही। माँ ने कहा-"इसका ऐसा भाव जानकर ही मैंने इसके यज्ञोपवीत की बात पर विशेष जोर नहीं दिया। यज्ञोपवीत तो हँसी-खेल की बात नहीं है न? क्रियादि सब करते रहना इसके लिए संभव न होगा।" हम लोगों से कहा- "तुम लोग इसका यह भाव नहीं समझोगे। इसीलिए मैंने कुछ नहीं बताया। अब इस भाव के प्रकट होने से सभी इसकी स्थिति समझ गये होंगे। इसी से मैं कहती हूँ कि मुँह की बात से कुछ नहीं होता। कार्य में प्रकट होना चाहिए और यह भी मैं कहती हूँ कि सभी का प्रयोजन है। आज गोला और गोदावरी ने कुछ गलती की है इसीलिए तो ऐसी घटना हुई। इसका भी प्रयोजन था।" इतना कहकर माँ हँसने लगी। रात के 10 बज जाने पर माँ का दरवाजा बन्द कर दिया गया।

* * *

आठवाँ अध्याय

माँ की बात–माँ के पैरों और हाथों की छाप

चैत्र 12, शनिवार– आज माँ का शरीर कुछ अच्छा है। आज पुरी से तुरीयानन्द स्वामी तथा कलकत्ते से रामतारन बाबू आये हैं। सुबह एक व्यक्ति ने आकर माँ से पूछा–"माँ, अमृत का बिन्दु गिरा था इसलिए इस स्थान का नाम ब्रह्मकुण्ड क्यों हुआ? अमृतकुण्ड होना चाहिए था।" माँ ने कहा–"अमृत तो ब्रह्म को छोड़कर रह ही नहीं सकता। ब्रह्मकुण्ड में सभी को स्नान करना होगा। अमृत की धारा प्राप्त करनी होगी।" इतना कहकर माँ हँसने लगी। हाथ–पैर की छाप लेने का क्रम दो–तीन दिनों से जारी है। कल जब छाप ली गयी थी उस समय माँ ने दोनों हाथों में अच्छी तरह रंग लगाकर छाप दी थी। उस समय माँ को देखकर ऐसा लग रहा था कि माँ मानो काम में बहुत व्यस्त हैं। कागज पर बहुत–सी छापें ली गयी। छाप देते हुए माँ ने कहा–"देखूँ, कितनी छापें और लोगे?" कहकर लगातार छापें देती जा रही थी।

हम जानते हैं कि जिस काम को हम शुरू करते हैं, कभी–कभी माँ उसमें इस ढंग से सहयोग देती हैं मानो दिन–रात वह इसी काम में व्यस्त हैं। दूसरी ओर खयाल ही नहीं है। कुछ समय इसी ढंग से बीता। उसके बाद जब वह काम बन्द हुआ तो शायद शत बार अनुरोध करने के बावजूद भी एक बार के लिए भी वह काम उनसे नहीं कराया जा सकता और यह भी बता देना आवश्यक है कि इस प्रकार छाप देने का एक खयाल चल रहा है। बाहर के लोग देखकर शायद यह समझेंगे कि माँ छाप देने के लिए बहुत ही व्यग्र हैं; किन्तु थोड़ा ध्यान देने पर समझ में आ सकता है कि भीतर का भाव क्या है? छाप देते हुए माँ ने कहा–"देखो, कोई–कोई शायद छाप देने में लज्जाते हैं, संकोच करते हैं और यह शरीर इस समय क्या कर रहा है, देखते हो न? मानो एक खेल पा गयी हूँ। देखो, लज्जा–संकोच क्यों आयेगा? शरीर की छाप लेना चाहते हो लो। तुम लोग भी देखो और मैं भी देखूँ।" इतना कहकर माँ ने अपने दोनों हाथों की बहुत–सी छापें दी। माँ जब जो

कुछ करती थी सारे शरीर में भी वह भाव प्रकट होता था। आज भी वही देख रही हूँ। यह भी माँ का एक अपूर्व रूप है।

कुछ देर तक ऐसा ही खेल चला। माँ कहने लगी–''परन्तु सभी का एक विशेष समय है। जितना समय इस काम के लिए देना चाहिए वह समाप्त होने पर वह काम फिर नहीं होगा।'' फिर माँ ने कहा–''जैसे बैठे रहकर बात करती हूँ, कीर्तन सुनती हूँ, वैसे ही यह भी एक कीर्तन ही चल रहा है। तुम लोगों को समय अच्छे कामों में बिताना चाहिए।''

आज भी भोजन के बाद नीचे आने पर यही बात चली। माँ ने कहा–''अच्छा यह जो छाप दी जा रही है, तुम लोग ऐसा न समझो कि माँ को छाप देने की बहुत इच्छा है, अपनी प्रतिष्ठा के लिए।'' इतना कहकर माँ धीरे-धीरे हँसने लगी। मैंने कहा–''माँ, सारे लक्षण देखकर ही तो एक मन्तव्य प्रकट करना होता है। एक अंश देखकर कुछ कहने से तो ठीक न होगा।''

साधकों का स्तर

माँ थोड़ा चुप रहकर बोलने लगी–''देखो, अनेक प्रकार के भाव हैं। उसका पता पाना कठिन है। शुरू-शुरू में क्या होता है, जानते हो? साधकों में विनय का भाव आता है। जैसे मैं कितना छोटा हूँ, लोग मेरा इतना आदर क्यों करते हैं? इस प्रकार के भाव में लोगों द्वारा दिये हुए सम्मान में वह संकुचित हो जाता है। यदि कोई उसके सम्मान में कुछ करना चाहता है तो वह स्वभाव से ही संकोच से सिकुड़ जाता है। कोई-कोई तो मनुष्य समाज में जा भी नहीं सकता। लोग क्या समझेंगे? ऐसा भाव है। फिर कोई-कोई शायद लोगों में प्रतिष्ठा पाने के लिए न जाने क्या-क्या करते रहते हैं। ये सब साधकों के स्तर हैं। लक्षण बहुत ही सुन्दर दिखायी पड़ते हैं परन्तु इस प्रकार विनय का भाव रहना भी आवश्यक है, नहीं तो बन्धन नहीं कटता। फिर एक दूसरा भाव कैसा होता है, जानते हो? जिस प्रकार बच्चे अपने ही शरीर पर रंग लगाते हैं, फिर दीवार पर छाप देते हैं। किसी ने देखा या न देखा, उस पर खयाल ही नहीं। अपने आप एक ही भाव से ऐसा करके हँसते-खेलते रहते हैं। यदि किसी ने आकर देख भी लिया तो उससे भी उसे संकोच नहीं होता। उसमें भी उनका एक ही भाव है। भीतर किसी जगह, किसी प्रकार का आवरण नहीं है, सब खुला है। इस भाव को समझना कुछ कठिन है। जैसे

कीर्तन आदि के समय किसी प्रकार के भाव का आवेश देखते ही तुम लोग उसे समाधि समझ लेते हो।'' इतना कहकर मुस्कुराते हुए माँ हमारी ओर देखने लगी। माँ फिर बोली–''भाव समझना कठिन है। कौन किस स्तर में है, साधारण मनुष्य के लिए उसे समझ सकना संभव नहीं है। इसलिए वे भूल करते हैं।''

इन बातों के होते–होते 12 बज गये। माँ तुरन्त मौन धारण कर लेट गयी। सब लोग विदा लेकर चले गये। दरवाजा बन्द कर दिया गया। यथार्थ में माँ के स्वयं मौन धारण न करने पर दिन के 12 बजे से 4 बजे तक और रात के 10 बजे के बाद दरवाजा बन्द करना कब तक चलता, कहा नहीं जा सकता। माँ ने कहा–''तुम लोगों ने डॉक्टर साहब से स्वीकार किया है और यह शरीर भी तो कभी–कभी सभी की बात मानता है। फिर कभी–कभी किसी की बात नहीं मानता। जब तक करना है, नियम से ही करना चाहिए।''

आज तीसरे पहर माँ ऊपर की छत पर गयी। सन्ध्या समय ऊपर के कमरे में आ बैठी। एक युवक आकर अवतार और ब्रह्म की बात पूछने लगा। माँ ने कहा–''देखो, यह सब अनुभव की बात है। जबानी समझायी नहीं जा सकती और कहने पर भी तुम संशय–रहित होकर उसे ग्रहण नहीं कर सकोगे। इसलिए इन बातों को अपने भीतर अनुभव करने की चेष्टा करो।'' दो–चार बातों के बाद वह लड़का चला गया। रामतारन बाबू से माँ ने कहा– ''देखो बात कैसी हुई, जानते हो? मैंने मैट्रिक भी पास नहीं किया और जानना चाहता हूँ एम.ए. का जटिल विषय। कैसे समझेगा? तो आलोचना करना अच्छा है। यह सच है, वह जाना जा सकता है परन्तु स्वयं अनुभव किये बिना संदेह रह ही जाता है।''

उसके बाद कृष्ण–तत्त्व के विषय में माँ ने कहा–''कृष्ण–तत्त्व है अतीन्द्रिय विषय और मनुष्य चाहता है उसे इन्द्रिय के द्वारा समझना। वह तो इन्द्रिय–ग्राह्य विषय नहीं है, तो कैसे समझेगा? वे लोग अपनी शक्ति के अनुसार अर्थ बना लेते हैं।'' इतना कहकर थोड़ा हँसते हुए माँ चुप हो गयी। रात के लगभग 9 बजे खाने–पीने के बाद माँ थोड़ी देर तक टहलकर बिछौने पर आ बैठी। 10 बजे तक सभी लोग माँ के कमरे में बैठे रहे। उसके बाद माँ लेट गयी और लोग प्रणाम करते हुए बाहर निकल आये।

चैत्र 13, रविवार– कल रात को भी माँ का शरीर बहुत देर तक शान्त भाव से लेटा नहीं रह सका। नींद नहीं आती थी, परन्तु माँ कहती हैं– "साधारण लोगों की निद्रा के समय जिस प्रकार शरीर में तह पड़ जाती है यह शरीर भी जब उसी प्रकार तहों में कुछ देर तक रहता है तो इस शरीर का विश्राम देखती हो। यह शरीर लेटकर जैसे रहता है, बैठकर या चल-फिरकर भी वैसे ही रहता है।" आज भी सुबह लगभग 8 बजे माँ उठी। सुबह थोड़ा दूध पिलाकर आज भी मैं माँ के हाथ और पैर की छाप ले रही थी। माँ को भी मानो एक खेल मिल गया। कागज के जिस्ते-पर- जिस्ते में लगातार छाप देते जाने लगी। 'और भी कागज लाओ, और भी स्याही लाओ'– कहने लगी।

दर्शनार्थी लोग अधीर हो उठे तो दरवाजा खोल दिया गया। सब लोग आकर माँ का दर्शन करने लगे। उससे भाव में जो एक बाधा पड़ने लगी उससे दरवाजा बन्द करके काम शुरू करने पर छाप अच्छी नहीं उठती थी। कहने लगी–"अब भाव नहीं है। बाधा पाने से अन्य प्रकार का हो गया।" खाने-पीने के बाद कुछ देर तक छापें ली गयी। उसके बाद माँ लेट गयी। रोज की तरह दरवाजा बन्द कर दिया गया।

माँ तीसरे पहर उठी। ढाका का एक व्यक्ति बहुत अच्छा कीर्तन गाता है। वह माँ को कीर्तन सुनाने आया है। माँ छत पर जा बैठी। अनेक लोग आये हैं। कीर्तन शुरू हुआ। लगभग दो घण्टे कीर्तन चला।

माँ स्वेच्छा से कुछ नहीं करती, हो जाता है

सन्ध्या के बाद रात के 8 बजे माँ भोजन करने बैठी। बात-बात में रामतारन बाबू आदि के साथ छाप लेने की बात चली। माँ ने कहा-"देखो यह जो कहा जाता है कि और भी कागज लाओ, स्याही लाओ और जिस्ते-पर-जिस्ता कागज छापा जाता है, यह मैं अपनी इच्छा से करती हूँ, ऐसी बात नहीं है। ऐसा हो जाता है। खुकुनी ने पहले-पहल जब दो दिनों तक छापें ली, उस समय ऐसा खयाल नहीं हुआ था। तीसरे दिन जब छापें लेने लगी, तब से ऐसा खयाल जागा। लगातार कागज और स्याही लाकर पार नहीं पा रही है। इसी तरह भोजन भी हो जाता था। किसी के कह-सुनकर खिलाना शुरू करने पर भी 'और लाओ', 'और खाऊँगी' ऐसा खयाल आया और जितना ही लोग देते जाते सारा मैं खाती जाती।"

रामतारन बाबू ने पूछा–"ऐसी कृपा क्या जग नहीं सकती?" माँ ने गम्भीर मुद्रा धारण कर उत्तर दिया–"नहीं जगती, ऐसा मैं नहीं कह सकती। कभी हो गया है, इन लोगों ने देखा है। खयाल आने पर हो सकता है।" इतना कहकर हमारी ओर इशारा किया। रामतारन बाबू ने कहा–"अच्छा माँ, तो कृपा का भाव ही आने दीजिये।" माँ ने कहा–"तुम लोग जैसा कराओगे वैसा ही होगा न। खुकुनी ने दो दिनों तक कागज–स्याही लाकर इस शरीर के हाथों और पैरों की छापें ली। उस समय खयाल भी न आया। तीसरे दिन जब फिर से शुरू किया तभी छाप देने का खयाल जगा। तुम लोग भी अपने कार्य के द्वारा वैसा खयाल ला सको तो वैसा ही होगा। मैं तो स्वेच्छा से कुछ नहीं करती। तुम लोग जैसा करा लेते हो वैसा ही होता जा रहा है। इस शरीर के सामने तो सभी समान हैं। जब जैसा हो जाये।" माँ का भाव और बात करने की भंगिमा देखकर सभी लोग माँ के मुख की ओर देखने लगे।

माँ फिर कहने लगी–"और भी सुनो। पहले क्या होता था, जानते हो? जब ऐसा एक अस्वाभाविक भाव होता तो चेहरे का भाव भी दूसरे ढंग का हो जाता। सभी लोग समझ जाते। किन्तु अब स्वाभाविक भाव से ही सब कुछ हो जाता है। चेहरा देखकर कोई कुछ नहीं समझ सकता।"

कल तीसरे पहर हम लोग माँ को गंगा किनारे ले गये थे। एकाएक उन्होंने हँसते हुए कहा–"देखो, मुझ पर विश्वास न करो, शायद नदी के भीतर से ही मैं चलने लग जाऊँ। वह पार दिखाई पड़ रहा है। मैं इस पार खड़ी हूँ। बीच में नदी है, उसका खयाल ही नहीं रहता। पहले भी यह भाव था। परन्तु उस समय शरीर में भी एक अस्वाभाविक भाव हो जाता था। उससे चेहरा देखकर सब लोग सावधान हो जाते थे। परन्तु अब उस प्रकार नहीं होता। साधारण भाव से हँसती हूँ, बात करती हूँ, इतने में एक अस्वाभाविक गति हो जाती है।" इस प्रकार के वार्तालाप के बाद माँ नीचे उतर आयी। रात के 10 बजे तक सभी लोग माँ के पास बैठे रहे। उसके बाद सब लोग माँ को प्रणाम करके सोने चले गये। माँ के कमरे का दरवाजा बन्द करके बत्ती बुझा दी गयी।

चैत्र 14, सोमवार– आज सुबह ढाका के उस व्यक्ति ने आकर माँ को कीर्तन सुनाना आरम्भ किया। दिन के लगभग 9 बजे तक कीर्तन चला। उसके बाद माँ का मुँह धुलाकर थोड़ा दूध पिला दिया गया। उसके अनन्तर

फिर सब लोग माँ को घेरकर बैठ गये। इस देश की स्त्रियाँ प्राय: रोज ही धूप-कर्पूर आदि के द्वारा माँ की आरती उतारा करती हैं। आज भी उतारी। दिन के 11 बजे माँ का भोग हुआ। भोग के बाद थोड़ी देर तक बातचीत हुई। 12 बजे दरवाजा बन्द कर दिया गया।

छाप देने के खेल के समय की घटना

हाथ की छाप लेते समय एक घटना हो गयी थी जो इस प्रकार है- जब तीसरे दिन या अन्तिम दिन मैं माँ के हाथ और पैर की छाप लेने गयी, उस दिन वह माँ के लिए एक खेल-सा हो गया। मैंने अनुभव किया कि इसके बाद फिर छाप नहीं देंगी, जितनी छापें आज ली जा सकें। माँ जिस्ते-पर-जिस्ते कागज पर छापें देती जाने लगी। मानो और किसी ओर खयाल ही नहीं है। कौन अच्छी हुई और कौन खराब हुई इस पर भी ध्यान नहीं। लगातार छापें देती जाने लगी मानो एक बच्ची को रंग का खेल मिल गया है। बहुत ही आग्रह से वैसा करती जाने लगी। माँ तो कितनी ही बार पहले कह चुकी हैं-''तुम लोग इस शरीर के पास जिस भाव को लेकर आते हो, दर्पण में मुख देखने की तरह वैसा ही भाव इस शरीर के भीतर खिल उठता है।'' छाप देने का खयाल मैंने ही लाकर उपस्थित किया है। दो दिन से मैं ही छाप ले रही थी। तीसरे दिन माँ को खयाल जगा तब लगातार छाप देती जाने लगी मानो एक महान् कार्य है। सारे शरीर में वही भाव खिल उठा। काले और लाल रंग से पैर और हाथ की छाप ली जाने लगी। देखकर उन्हीं को आनन्द होने लगा। हाथ की रेखा उठाने के लिए मैं छाप ले रही थी। सबमें रेखा अच्छी तरह नहीं उठती थी, किन्तु माँ का उस ओर ध्यान ही नहीं था। सब छापों को देखकर ही उन्हें महान् आनन्द प्राप्त होता था। छाप देते-देते शरीर के भीतर कुछ अस्वाभाविक भाव खिल उठा। पैर के लाल और काले रंग की छाप देखकर माँ एकाएक बोल उठी-''वाह, वाह, तुमने तो खूब सजाया (अपने शरीर की ओर इशारा करके), इस शरीर को आधा कृष्ण और आधा राधा बनाया।'' इतना कहने के साथ-ही-साथ फिर भाव में परिवर्तन हुआ मानो चुप हो गयी।

छाप की बात समाप्त होने पर माँ नीचे उतर आयी। नीचे आकर मानो कुछ घबराते हुए मुझसे कहने लगी-''मैंने क्या कह डाला? मैंने ही तो उस

दिन गोला और गोदावरी की गलती के लिए दस हजार जप करने को कहा था। आज मुझे भी जप करना चाहिए क्योंकि मैंने पैर की छाप के प्रसंग में राधा-कृष्ण के नामों का उल्लेख किया है। यह तो अपराध हुआ। अपराध के प्रायश्चित के लिए जप करना आवश्यक है किन्तु मैं उतना नहीं कर सकूँगी, शायद जप करते-करते वह बन्द हो जायेगा, नहीं तो दिन भर ही जप चलता रहेगा। अस्वस्थ शरीर रहने के कारण तुम लोग नियमित खिलाना-सुलाना चाहते हो किन्तु वैसा शायद न होगा। शायद जप ही चलता रहेगा। सोने का भाव ही नहीं रहेगा। ऐसी स्थिति में मैं क्या करूँ?'' मैंने कहा-''माँ प्रतिनिधि भी तो काम कर देता है।'' माँ ने कहा-''तुम कर सकोगी? तो तुम्ही मेरे लिए दस हजार जप करो।'' मैंने कहा-''वही करूँगी।''

मैंने देखा कि माँ का यह भी एक खेल है। लोगों की शिक्षा के लिए ही इस खेल को खेला है। नहीं तो माँ का जो भाव है उसमें जो कुछ कहा है उससे अपराध क्या हुआ? परन्तु लोक-शिक्षा के लिए फिर प्रायश्चित की व्यवस्था की।

मातृ-सन्निधान में शिशिर राहा

तीसरे पहर गोपीनाथ बाबू तथा और भी कुछ लोग आये। कुमिल्ला के राहा परिवार की शोभा नाम की एक लड़की सन्तदास बाबाजी की शिष्या है। सुना है कि उसकी अवस्था बहुत अच्छी है। आज उसका एक भाई मातृ-दर्शन को आया। उसका नाम शिशिर कुमार राहा है। उसके मुख से शोभा की अनेक बातें सुनी। यह भी सन्तदास बाबाजी के शिष्य हैं। गुरु के साथ ये बहुत दिनों तक रहे। ब्रह्मचारी का बहुत अच्छा सरल भाव है। माँ के साथ एकान्त में कुछ बातें करना चाहा। उसका भी प्रबन्ध कर दिया गया।

समाधि

रात को समाधि के सम्बन्ध में माँ ने मुझसे अनेक बातें कही। माँ की बात से मैंने जो कुछ समझा उसका आशय यह है कि समाधि अनेक प्रकार की हैं। पुनः समाधि एक ही है। बीच-बीच में किसी और का उल्लेख मात्र किया जाता है। किसी मूर्ति का भाव लेकर भी एक जड़ अवस्था आ सकती है। किन्तु वह जड़-समाधि नहीं है-अपने को भूल जाना है। फिर उस भाव से आकर उस मूर्ति का भाव लेकर रहता है। यह एक भाव की अवस्था मात्र

है। इसे समाधि नहीं कहा जा सकता। एक प्रकार की समाधि अवस्था आ सकती है। मूर्ति में ब्रह्म-भाव आकर खिल सकता है। उसे एक प्रकार की **भाव-समाधि** भी कहा जा सकता है। यह सविकल्प समाधि का पूर्व रूप है। फिर कभी-कभी ब्रह्म-भाव में स्थित रहकर भी भाव-समाधि की तरह प्रकट हो सकता है। फिर माँ ने कहा-''एक सत्ता में जब साधक स्थिति लाभ करता है उस समय तुम लोग जो कहते हो-**'सविकल्प समाधि'** वही है।

''इस शरीर में तो समाधि के अलग-अलग नाम सुनने का अवकाश ही नहीं हुआ। क्योंकि पढ़ा-लिखा है नहीं। तुम लोगों के मुख से सुन- सुनकर थोड़ा बहुत बतलाती हूँ। खयाल होने पर अवश्य ही सब कुछ आ सकता है। बात यह है कि यदि तुम लोग पास बैठकर समाधि के विषय में आलोचना करते रहो तो यह शरीर उस विषय की कोई-कोई बात सुझा देता है। तुम तो जानती ही हो कि तुम लोग जिस भाव को सामने लाओगे उसी भाव से कभी-कभी यह शरीर भी कुछ-कुछ बता देता है। फिर कभी शायद कुछ भी कहा नहीं जाता। शायद वहाँ प्रयोजन नहीं है।'' इतना कहकर फिर बताया- ''और निर्विकल्प, चैतन्य, समाधि, महाभाव, महाशून्य ऐसे कितने ही नाम तुम लोग कहते हो। इनका प्रकाश चमत्कारिक है।''

लीला

एक दिन एक भद्रपुरुष ने पूछा-''ब्रह्मभाव के बाद लीला है, यह कैसी बात हुई?'' माँ ने उत्तर दिया-''यह नहीं समझा? वह ब्रह्मस्वरूप, वह आत्मस्वरूप-यदि इसका प्रत्यक्ष न हुआ तो अतीन्द्रिय लीला में प्रवेश कैसे होगा? उन्हें प्राप्त करोगे तब तो। जल जैसे बरफ, बरफ जैसे जल, जल में बर्फ है, बरफ में जल है। उसी प्रकार प्रत्यक्ष निर्द्वन्द्व भाव से उनकी लीला, उनका खेल प्रकट होगा। नित्यधाम, नित्यलीला आदि का प्रकाश कहाँ होता है? बताओ तो। तुमने शायद समझा है कि वह अखण्ड, अव्यक्त ब्रह्म है। वह तो उस ओर की बात है। जो साकार में है, निराकार में भी वही है। उन्हें सर्वाकार में प्राप्त करना होगा। वह अखण्ड है न? जैसे एक बीज में अनन्त बीज और अनन्त वृक्ष हैं। फिर उस अनन्त के भीतर अन्त भी है, एक ही। उन्हें हर एक दिशा से, नाना भावों से प्राप्त करना होता है। सर्वरूप, सर्वदिक्, फिर नानातत्त्व के बाहर जाना होगा। बाहर-भीतर उन्हें सर्वाङ्गीण प्राप्त करना चाहिए। जो कुछ सुनती हो, तुम्हारी ऐसी दृष्टि अर्थात् चश्मे के

भीतर से देखती हो न? इसलिए देखने में भूल रह जाती है। लक्ष्य छोटा न बनाये रखो। उस परम पद के प्रति लक्ष्य रखो। वह जो सर्वाङ्गीण, व्यक्त, अव्यक्त, अखण्ड और पूर्ण हैं, उन्हें प्राप्त करना होगा।

समाधि की बात अव्यक्त है

''ये किस प्रकार हैं जानती हो? बीच में अनेक बातें रहती हैं, अनेक अवस्थायें रहती हैं, कहकर उन्हें समाप्त नहीं किया जा सकता। एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर चढ़ते समय जिस प्रकार शून्य भाव भी रहता है फिर जिस सीढ़ी को वह छोड़ता है और जिस सीढ़ी पर चढ़ता है उन दोनों में संयोग है। एक हुआ, सीढ़ी पर चढ़ जाता है, दूसरा हुआ, उस पर स्थिति। इन दोनों के बीच में भी अनेक अवस्थायें हैं। देखो, पहले जिस प्रकार मूर्त्त भाव लेकर ही एक शरीर में जड़ भाव आता है, फिर महाभाव भी, किन्तु एक जड़ भाव और सामयिक चंचलता की तरह दिखायी पड़ सकता है।''

''इसे समझना भी बहुत कठिन है। कितनी ही बातें रह जाती हैं। जितना कहूँ, कहना समाप्त नहीं होता। ठीक से समझाना भी नहीं होता। जैसे फूल कैसा सुन्दर है, वह मुख से कहकर समझाना असम्भव है, अव्यक्त ही रह जाता है, ठीक उसी तरह, और क्या? और क्या है जानती हो? मैं तो तुम्हारी पोथी-पुस्तक की भाषा नहीं जानती। इस कारण उस भाषा से समझाया भी नहीं जा सकता और यथार्थ में भाषा से इसे समझाया भी नहीं जा सकता। केवल इशारा मात्र कर दिया जाता है। इसी से कहती हूँ कि शास्त्र में भी बहुत कुछ लिखा हुआ है वह सब बिना जाने केवल भाव के प्राबल्य को ही समाधि न समझ बैठना।'' इस प्रकार भाव के सम्बन्ध में अनेक बातें कहने लगी। मैं सुनती हूँ और सोचती हूँ कि सभी अनन्त हैं।

चैत्र 15, मंगलवार– आज भोर में ही आकर ढाका के सज्जन ने कीर्तन आरम्भ किया। उनके आने के पहले ही माँ उठ बैठी हैं। लगभग दो घंटे कीर्तन चला। सभी ने कीर्तन किया। इस देश की स्त्रियों ने माँ की आरती उतारी और साथ-ही-साथ आरती का गान गाया।

आज ढाका से गणेश बाबू की पत्नी, जटू आदि अनेक लोग आये हैं। कल काशी से शंकरानन्द स्वामी आदि आये हैं। सारा मकान अतिथियों से भर गया।

दोपहर को खाने-पीने के बाद माँ लेट गयी। मैं पास बैठी थी। माँ धीरे-धीरे बोल रही थी। माँ के पूर्व भाव की अनेक बातें हुई। एक प्रणाम की ही अनेक अवस्थाओं की बात बतायी। यद्यपि हम लोगों ने वह सब देखा था किन्तु उस पर ध्यान नहीं दिया था। माँ की बात से अनेक विषयों के प्रति ध्यान आकृष्ट हुआ। देखा, एक प्रणाम का भाव लेकर भी एक पुस्तक लिखी जा सकती है।

माँ के प्रणाम की विभिन्न अवस्थाएँ

एक समय ऐसा था जब माँ सबको प्रणाम करती थी-यहाँ तक कि कुत्ते-बिल्ली तक को। चीज-वस्तु पैर से लग जाते ही माँ प्रणाम करती थी। माँ ने कहा-''माँ ने कह दिया था कि पैर में लग जाते ही प्रणाम करना होता है। इस कारण जो कुछ पैर में लग जाता था, बचपन में सभी को मैं प्रणाम करती थी। यहाँ तक कि बिछौने पर उठते समय बिछौने को प्रणाम करती थी। फिर जमीन पर उतरने से पहले भूमि को भी प्रणाम करती थी। तद्ज्ञान से सभी को प्रणाम करना शुरू हुआ। उसके बाद ऐसा हुआ कि मैं किसी का प्रणाम नहीं लेती थी परन्तु सभी को प्रणाम करती थी। उसके बाद ऐसा हुआ कि किसी को मैं प्रणाम नहीं कर सकती थी, किसी का प्रणाम ले भी नहीं सकती थी। किसे प्रणाम करूँ और कौन प्रणाम करे? उसके बाद फिर सब टूट गया। लोग प्रणाम करते और मैं भी प्रणाम करती। तुम लोगों ने देखा है कि कभी-कभी माता-पिता या भोलानाथ को प्रणाम करके फिर भूमि पर सिर लगाकर सभी को प्रणाम करती थी। फिर ऐसा हुआ कि पाँच मिनट के लिए प्रणाम दिया, फिर नहीं। ये सभी साधकों का एक-एक स्तर मात्र है। हाथ जोड़ना देवता के मन्दिर में भी होता है और तुम लोगों के सामने भी होता है। सब एक ही भाव है। कभी शायद देखा है कि मन्दिर में सिर झुकाकर प्रणाम नहीं हुआ। किन्तु इस शरीर के माता-पिता के चरणों में या भोलानाथ के चरणों में प्रणाम हो गया है।''

इसका कारण क्या है पूछने पर माँ ने कहा-''जिनको प्रणाम किया गया है, उन्हें उसी भाव से प्रणाम पाने का भाव सामयिक रूप से हो गया है। जिनके भीतर जिस समय जो भाव जगता है, इस शरीर के द्वारा उस समय उसी प्रकार की क्रिया हो जाती है। इसे तो तुम लोगों ने हर समय देखा ही

है। फिर ऐसा भी देखा है कि किसी समय उनके चरणों में सिर लगाकर प्रणाम नहीं हुआ। सिर झुकाना और न झुकाना एक ही बात है। फिर पैर में किसी के हाथ देने पर उसी के पैर के पास सिर झुक जाता था। ये सब तुम लोगों ने देखा ही है। ये सब साधकों के स्तर हैं। ऐसा खेल इस शरीर के भीतर से हो गया है।'' अत: माँ प्रणाम नहीं करती, ऐसी बात भी नहीं कही जा सकती।

फिर कहने लगी-''हाथ-पैर एक ही हैं-जहाँ चाहो पकड़ो। फिर यदि कोई इस शरीर को प्रणाम करता है या लात मार देता है-एक ही बात है।'' इतना कहकर हँसने लगी।

माँ के भीतर साधकों की विभिन्न अवस्थाओं का विकास

खाने-पीने के विषय में भी जो कुछ देखा और सुना है, 'देव भाव', 'साधक भाव' आदि का खेल सभी माँ के शरीर में हो गया है। परान्न ग्रहण नहीं करेंगी, जब ऐसा नियम था तब दूसरे किसी का कुछ भी ग्रहण नहीं करती थी। यहाँ तक कहती थी-''दूसरे के बर्तन आदि का भी व्यवहार नहीं कर सकती थी। क्योंकि मेरे व्यवहार से बर्तनों का जितना क्षय होगा, वह तो मेरा ही लेना हुआ।'' इसी ढंग से साधकों की अवस्थायें एक-पर- एक होती गयी। फिर कभी किसी का जूठा, यहाँ तक कि पक्षी का चोंच मारा हुआ फल भी नहीं खा सकती थी। किसी की लोभ-दृष्टि पड़ने से वह खाद्य वस्तु तक भोग में नहीं लगती थी। हम लोगों ने बहुत डरते हुए माँ के खाने की चीज तैयार की, न खाने तक माँ ग्रहण करेंगी या नहीं, ऐसी आशंका रहती थी। ऐसे शुद्ध भाव से भोजन आदि हुआ करता था। फिर कुछ दिनों के अनन्तर सभी के मुख की जूठन तक खायी। कभी कुत्ते के मुख की चीज खाने के लिए दौड़कर उसके पास गयी। इस प्रकार अनेक विपरीत भावों का समावेश माँ के भीतर देखा है और देखा जा रहा है इसकी सीमा नहीं है।

दोपहर के विश्राम के बाद 4 बजे दरवाजा खोल दिया गया। जो जहाँ था भक्त लोग एक-एक करके माँ के पास आ बैठे। आज शाम को भोलानाथजी ने सबको साथ लेकर कीर्तन किया। गंगा के उस पार कीर्तन हो रहा था। भोलानाथजी सबके साथ वहाँ जाकर कुछ देर तक कीर्तन कर आये। कीर्तन में भोलानाथजी को महान् आनन्द आता है।

भाव–समाधि

रात्रि में माँ से बात-बात में समाधि की अवस्था के बारे में बहुत कुछ कहा। जड़ अवस्था के पश्चात् सविकल्प-समाधि के पूर्व जिस भाव- समाधि की बात बतायी गयी थी, उस सम्बन्ध में कहने लगी-''मूर्त्त भाव की साधना करते हुए तन्मयता या जड़ अवस्था आती है। उस अवस्था में पहुँचने पर ब्रह्म-भाव का आभास कभी-कभी मिलता है। उसे भी भाव- समाधि कहते हैं। एक हुआ उस अवस्था में स्थिति और दूसरा उस अवस्था का थोड़ा आभास प्राप्त होना। इसका भेद समझना बहुत कठिन है।''

भाव का आभास और स्थिति में भेद

सन्तदास बाबाजी के शिष्य शिशिर बाबू ने माँ से पूछा-''अच्छा माँ, किसी देवता का ध्यान करते-करते क्या साधक उनका स्वरूप प्राप्त करता है?'' माँ ने उत्तर दिया-''इस सम्बन्ध में अनेक बातें हैं। किसी दूसरे समय यह प्रसंग उठाना।'' बाद में माँ ने एक बार मुझसे कहा था-''देखो, किसी-किसी स्थल में साधक किसी रूप का चिन्तन करते-करते तद्भावापन्न हो जाता है। उस समय कभी साधक काली या कृष्ण (जिस देवता की भावना वह करता है उन्हीं) के खड़े होने की भंगिमा से भावावस्था में खड़ा होता है, चलता-फिरता है किन्तु उस तन्मय भाव के चले जाने पर वैसा भाव नहीं रहता। एक भाव और है, वह कैसा जानती हो? कुछ भी चिन्तन नहीं किया गया तथापि नाना देव-देवियों के भाव शरीर में खिलते गये। इन दोनों में रात-दिन का अन्तर है। पहले मैंने जैसा कहा है-एक है उस भाव में स्थिति और दूसरा है उस भाव का थोड़ा आभास मात्र। उस आभास के चले जाने पर फिर पहले की ही अवस्था हो जाती है। तत् स्वरूप होता क्यों नहीं?''

गोला के यज्ञोपवीत की बात फिर से चलने लगी। परन्तु अभी कुछ निश्चय नहीं हुआ। माँ ने कहा-''जो होने को है, वह हो जायेगा।''

चैत्र 16, बुधवार- आज भी भोर में कीर्तन हुआ। बाद में माँ को हाथ-मुँह धुलाकर कुछ दूध पिला दिया गया। दोपहर को भोग के समय सब लोग चारों ओर जा बैठे। माँ की थाली से थोड़ा-थोड़ा प्रसाद पाने के लिए सभी उत्सुक थे किन्तु मुँह से बोल नहीं सकते थे। माँ ने कहा-''तुम लोग खाओगे? मैं भी प्रसाद पा रही हूँ, तुम लोग भी पाओ। सभी लोग प्रसाद पाते हैं।'' इतना कहकर हँसने लगी।

तीसरे पहर एक संन्यासी ने आकर माँ से पूछा–''माँ, हम सब लोग तो एक ही स्थान से आये हैं और एक ही स्थान पर जायेंगे, सब तो एक ही हैं तो ऐसी भेद-बुद्धि क्यों हुई?'' माँ ने उत्तर दिया–''कर्म से ही भेद-बुद्धि होती है और फिर कर्म से ही भेद-बुद्धि चली जायेगी।'' फिर उन्होंने पूछा–''चिन्तन का स्थान कहाँ है?'' माँ ने मुस्कुराकर अपने सिर पर हाथ फेरते हुए उत्तर दिया–''इस स्थान से आती है।'' उन्होंने कहा–''मैं कहता हूँ हृदय से आती है।'' माँ हँसकर बोली–''बाबा, हृदय तो सुख-दुःख के अनुभव का स्थान है वहाँ भगवान् का आसन लगाना होता है। मूल में ही सब है न? शरीर का मूल है मस्तक, फिर सभी स्थान में मूल है।''

जाति–भेद

और एक आदमी ने आकर पूछा–''जाति-भेद रखना उचित है या नहीं।'' माँ ने उत्तर दिया–''तुम्हारी राय क्या है?'' उन्होंने कहा–''मेरी समझ में रखना ही उचित है।'' माँ ने कहा–''तो तुम्हें रखना ही चाहिए, क्योंकि किसी का भाव नष्ट करना उचित नहीं है। तुम्हारे संस्कार के अनुसार तुम्हारे जो भाव हैं, उन्हीं के अनुसार तुम्हें चलना चाहिए। सबके लिए एक पथ नहीं है। यह देखो, हिन्दू लोग जिसे शुद्ध भाव का आचार-विचार मानते हैं, ईसाई और मुसलमान उसे नहीं मानते। क्या इस कारण उनमें महापुरुष नहीं हैं? जिसका जैसा संस्कार है उसे उसी ढंग से चलना चाहिए। फिर संस्कार कैसे उत्पन्न हुआ, यह भी देखना चाहिए। कुछ ऐसा है कि आलस्य के कारण तुम लोग कुछ आचार-नियम नहीं पालते। फिर कभी-कभी बचपन से चलते-चलते एक अभ्यास हो गया। अब उसी भाव से चलते हो। परन्तु भीतर संस्कार दूसरे प्रकार का है। उस संस्कार के कारण मन में सन्देह उत्पन्न होता है परन्तु अभ्यास तुम्हें अपने संस्कार के अनुसार काम करने नहीं देता। इस तरह और भी अनेक विचार हैं।''

संस्कार के अनुसार भाव का प्रकाश है

आज भी सन्ध्या समय कीर्तन आदि हुआ। रात में बात-बात में माँ मुझसे समाधि की बात कहने लगी–''देखो, कितने प्रकार हैं, समझना कठिन है। कभी पीतल को सोना समझ रहा है और कभी सोने को पीतल मान रहा है।'' इतना कहकर कुछ क्षण तक स्थिर भाव से देखती रही फिर अनेक बातें

कहने लगी। अन्त में कहा–''देखो, जिन भावों की बात तुमने सुनी है वह समाधि न होने पर भी इस पथ के सहायक हैं। जिनमें केवल ज्ञान–विचार के द्वारा ही आत्म–स्थिति का प्रकाश होता है, उनमें किसी–किसी के भीतर चंचलता, जड़ता आदि भावाभाव का प्रकाश नहीं मिलेगा। भावाभाव किसी–किसी के भक्ति–भाव के भीतर अधिक खिल उठता है और किसी–किसी में संस्कार के अनुसार ज्ञान–विचार के तीव्र भाव को बनाये रखने की शक्ति का प्रकाश अल्प है।''

चैत्र 17, बृहस्पतिवार– आज भी शिशिर बाबू आये हैं। आजकल प्राय: रोज ही आते हैं। आज डॉक्टर पन्त घर से लौट आये हैं। उनकी अनुपस्थिति में उनके नौकर सूरसिंह के हाथ से एक दरी गंगा के प्रवाह में बह गयी। वह उसे धो रहा था। नौकर डर से घबराने लगा–डॉक्टर साहब आकर क्या कहेंगे?

इधर इसके पूर्व एक ऐसी घटना हुई कि माँ जब यहाँ आकर धर्मशाला में ठहरी थी, माँ का शरीर बहुत अस्वस्थ था। उस समय एक दिन डॉक्टर साहब ने माँ से कहा था–''माँ, आज मैंने गंगाजी से प्रार्थना की है कि आपके भीतर अच्छी होने का भाव जाग उठे। माँ, आप अच्छी हो जायें, मेरी लाज बचायें।'' इस घटना के बाद माँ को डॉक्टर के मकान में लिवा लाने पर उस दिन माँ ने फर्श पर खड़ी होकर अपनी धोती बदल दी। उस दिन उस छोड़ी हुई धोती को डॉक्टर साहब के द्वारा माँ ने गंगा में फिंकवा दिया था।

गंगा–माता के द्वारा माँ के कपड़े, दरी आदि ग्रहण से माँ की रोग–मुक्ति

आज डॉक्टर साहब के लौट आने पर माँ ने उनसे एकान्त में कहा–''देखो, तुमने तो मेरे आराम होने का भाव जगाने के लिए गंगा माता के निकट प्रार्थना की थी इसलिए अपने हाथ से मेरा कपड़ा तुमने गंगा माता को दे दिया है, फिर गंगा माता ने तुम्हारी दरी को भी ले लिया।'' डॉक्टर साहब ने माँ के कहने का भाव समझकर ही कहा–''वह तो ठीक ही हुआ है माँ। कपड़ा लिया है, बिछौना भी चाहिए था। इसलिए ले लिया।'' माँ ने भी हँसकर मानो उनकी बात का समर्थन ही किया। जिस दिन दरी बह गयी थी उस दिन तीसरे पहर माँ ने छत पर जाकर टहलते हुए कहा था–''गंगा माता ने ले लिया है।'' इतना कहकर मुस्कुराने लगी। मैंने पूछा–''तुमने कहा है

क्या?'' माँ ने भी दूसरा कोई सुन न सके, इस ढंग से कहा-''बिल्कुल साफ, जैसे तुम लोग बात करते हो ठीक वैसा ही देखती हूँ।''

कुम्भ-स्नान पर साधुओं की शोभायात्रा

आज शिशिर बाबू ने माँ को एक तरकारी पकाकर खिलायी। आज अमावस्या का स्नान हुआ। साधुओं की शोभा-यात्रा निकली। वह एक बहुत ही अपूर्व दृश्य है। मैं कह रही थी मानो यह शिवजी का परिवार है। सभी संन्यायी, बहुत से नागा सन्यासी, सभी के अंग भस्म-भूषित, फिर भी हाथी-घोड़े आदि सजधज की भी कमी नहीं। हम लोग माँ के साथ छत पर खड़े होकर सब देख रहे हैं। गंगा के किनारे से साधु लोग पंक्तिबद्ध भाव से चल रहे हैं। कोई हाथी के ऊपर, कोई पालकी के भीतर, कोई घोड़े पर, साथ-साथ बाजा बजाने वालों का दल भी चल रहा है। बीच-बीच में पुलिस के कर्मचारी चल रहे हैं। शाम को 5 बजे तक यह शोभा-यात्रा चली। मानो मनुष्यों का समुद्र है।

आज भी नियमित रूप से रात के 10 बजे माँ का दरवाजा बन्द कर दिया गया। आज कई दिनों से माँ का शरीर चुपचाप नहीं लेटा रहता।

संन्यासियों का ऐश्वर्य इसी मेले के समय दिखाया जाता है। ब्रह्मकुण्ड में स्नान और संन्यासियों की शोभा-यात्रा देखने के लिए हरिद्वार में अपार भीड़ एकत्र हो जाती है। रास्ते के किनारे पर भी खड़े होने की ज्यादा जगह नहीं रहती। किसी के डेरे में कोई घुस गया तो निकलने का नाम नहीं लेता। कुछ जबरदस्ती का भाव है। क्या करें? जगह है ही नहीं, फिर पुण्य का संचय करना ही होगा। इसलिए भगा देने पर भी कोई भागना नहीं चाहता। ऐसी दशा है, परन्तु इतने समय में जो जितना हो सके यात्रियों की सेवा कर रहा है। संन्यासियों का भण्डारा तथा वस्त्र-दान जहाँ-तहाँ रोज ही होते सुनायी पड़ते हैं। यह एक विराट उत्सव है। शिवरात्रि को प्रथम स्नान, द्वितीय स्नान अमावस्या को और तृतीय स्नान ही कुम्भ-स्नान है जो चैत्र-संक्रान्ति को होगा। प्रवाद यह है कि अमृत का एक बिन्दु इस स्थान पर पड़ा था। इस कारण **ब्रह्मकुण्ड** हिन्दुओं का महान् तीर्थ है।

माँ के भक्त लोग दल-के-दल ब्रह्मकुण्ड-स्नान के उपलक्ष्य में मातृ-दर्शन के लिए आ रहे हैं। परन्तु माँ का शरीर अस्वस्थ रहने के कारण दिन

के 12 बजे से 4 बजे तक और रात को 10 बजे के बाद दरवाजा बन्द करने का नियम चल रहा है। किन्तु माँ का शरीर किसी तरह अच्छा नहीं हो रहा है। क्या कारण है? समझ में नहीं आता। माँ कहती हैं-''तुम लोगों के भीतर के भाव से ही ऐसा हो रहा है।'' आज भी रात के 10 बजे दरवाजा बन्द कर दिया गया।

चैत्र 18, शुक्रवार– आज कलकत्ते से विमला माँ, आनन्द भाई, सची दादा की बहिन (मझली दीदी), नानीजी आदि आ पहुँचे। उल्लेखनीय कोई विशेष घटना नहीं है।

माँ के एक भाव से रहने पर भी शरीर में विविध भावों की क्रियाएँ होती जाती हैं

चैत्र 19, शनिवार– आज भोर में ही माँ उठ बैठी। सोने का भाव ही नहीं है। खाने के लिए बैठने पर भी न जाने कैसा भाव हो जाता है। खाने के प्रति खयाल ही नहीं है। इधर-उधर की बातें कर रही हैं। यद्यपि यह भाव सदा ही है परन्तु कभी-कभी वह भाव विशेष रूप से प्रकट हो पड़ता है। खिलाना कठिन है, प्राय: कुछ भी नहीं लेना चाहती। कई दिनों से कह रही हैं-''देखो खुकुनी, इस समय शरीर के भीतर भूल-भ्रान्ति बहुत दिखायी पड़ेगी।'' वास्तव में वही देख रही हूँ। उस बात के प्रति लक्ष्य करके कहने लगी- ''देखो, क्या किसी को भूल-भ्रान्ति कह-सुनकर होती है? यह कैसा है जानती हो? जैसे आज होली खेलना है। खूब खेल हुआ, मिट्टी, स्याही आदि पोतकर सब लोग भूत की तरह बन गये। परन्तु वे जानते हैं-हम खेल रहे हैं, फिर धो डालने के लिए स्नान का जल भी पहले से ही तैयार रखते हैं। अच्छी तरह जानते हैं कि कुछ देर तक खेलकर सब धो डाला जायेगा। रंग लगाते समय कसर नहीं रखते। खूब लगा रहे हैं। रंग खेलने लायक फटे-पुराने वस्त्र भी पहन लेते हैं। उसके बाद खेल समाप्त होने पर साबुन और गरम जल में स्नान करके सब रंग धोकर फिर जैसे के तैसे बन बैठे।'' इतना कहकर हँसते हुए फिर से कहा-''उसी तरह और क्या?'' माँ के विविध भावों की बात है और शरीर के भीतर विविध भावों की क्रिया होती जाती है।

मैंने एक दिन हँसते हुए कहा-''माँ, तुम्हारे अनन्त भावों में से कुछ का हम अनुकरण करके अपनी चीज कहकर लोगों में चला सकते हैं। मान लो

यदि कोई वैसा करता है तो उसे पकड़ने का उपाय क्या है?'' माँ बोली- ''तो चोट खायेगा। क्योंकि जो लोग इस विषय में कुछ भी अनुभव प्राप्त कर सके हैं वे भी इस नकली भाव को अवश्य ही पकड़ सकेंगे और नकल करने जाकर खुद भी चोट खाकर गिर पड़ेगा, और भी दु:ख देगा।'' फिर कहा- ''देखो, महापुरुष लोग साधना के लिए जो कुछ कहते हैं-एकलक्ष्य से दृढ़ता के साथ उसे पकड़े रहो। वे लोग जो कुछ करते हैं उसे करने की चेष्टा न करो।'' इतना कहते हुए हँसते-हँसते गाने लगी-

सहज भावेर सहज नाम
पूर्ण हय मनस्काम।

इसके बाद अपनी बातें कहने लगी-''तुम तो जानती ही हो कि पढ़ना-लिखना कुछ भी नहीं हुआ, फिर अनुकरण करना तो दूर की बात, जब साधना का खेल इस शरीर के भीतर प्रकट होता था उस समय किसी की जीवनी, कोई धर्मग्रन्थ, नाटक, उपन्यास, कहानी कोई सुनाने आते ही बिजली के लगने से जिस प्रकार शरीर में एक धक्का लगता है, उसी प्रकार धक्का देता और जो कुछ सुनाने आता वह सब बातें कहीं उड़ा ले जाता। शरीर की जो स्वाभाविक गति है, वही हर समय प्रबल भाव से कायम रहती थी। बाहर से कुछ भी भीतर नहीं आ सकता था, कैसा? जानती हो? जैसे एक दीवार पर एक ईंट का टुकड़ा फेंकने से वह दीवार में टकराकर छिटक पड़ता है, दीवार पर जरा-सा दाग भी नहीं लगता। दीवार से ईंट का टुकड़ा यदि अधिक कड़ा होता तो दीवार को तोड़ डाल सकता था।

''परन्तु इस समय जो कोई जो कुछ सुनाता है मैं पास बैठी रहती हूँ, यहाँ तक कह सकती हूँ। एक दिन शारदाशंकर भागवत सुनाने आया था। कुछ देर तक उसी तरह रहने के बाद मैं अकेली उठकर चली गयी। और भी एक दिन एक आदमी कुछ सुनाने आया था, उसी दिन मैं पास भी नहीं बैठ सकी। उन दो दिनों के अलावा और कभी कोई कुछ सुनाने ही नहीं आया। अवस्था देखकर फिर कोई नहीं आता था। जिसको सुनाना है, यदि दिखाई पड़े कि उनमें सुनने का कोई लक्षण ही प्रकट नहीं हो रहा है तो क्या कोई उसे कुछ सुनाना चाहता है?''

दीक्षा न देने पर भी शक्ति–संचार किया जा सकता है

एक दिन शिशिर बाबू माँ को एकान्त में ले जाकर बात करने लगे। मैं भी वहाँ थी। शिशिर बाबू का प्रश्न यह है–'माँ, सुना है कि आप दीक्षा नहीं देती, एक समय यह मुझे बहुत पसन्द था। किन्तु शोभा कहती है–'दीक्षा न देने से यथार्थ में शक्ति–संचार नहीं होता।' यदि ऐसा ही है तो जो लोग आपको पकड़े बैठे हैं वस्तुतः आप उनके लिए कुछ भी नहीं कर रही हैं।" माँ बोली–"देखो, जिसको जो कुछ प्रयोजन है वह तो हो ही रहा है, कानों में मन्त्र न फूँकने से नहीं होता, ऐसी बात नहीं है। किस भाव से किसका काम बनता है वह कहा नहीं जा सकता।"

माँ ने मेरी ओर देखकर कहा–"तुम्हीं बताओ।" मैंने कहा–"प्रायः देखा गया है कि माँ के चरणों में किसी ने शरण ली, पर माँ तो किसी को दीक्षा नहीं देती। परन्तु उसने स्वप्न में अथवा जाग्रत अवस्था में अपने ही भीतर से बीज–मंत्र पाया। उसी से उसका काम बन गया। और भी न जाने कितने प्रकार के भाव हैं?" माँ भी मेरी बात के समर्थन में अनेक बातें बताने लगी।

रात को माँ के पास मैं बैठी थी। वहाँ और कोई नहीं था। उस बात पर ध्यान रखकर माँ कहने लगी–"कैसा, जानती हो? जैसे बीज से वृक्ष हुआ उसके बाद कलम लगाकर उसकी डाल से नया वृक्ष बना लिया गया। बीज का प्रयोजन नहीं हुआ परन्तु उस कलम के वृक्ष से भी फल–फूल मिल रहे हैं। इस प्रकार विविध भावों से भी काम हो सकता है। इसके भीतर अनेक गूढ़ विषय हैं।" मैं बोली–"सुना है कि महात्मा लोग नाना प्रकार की देह धारण कर संसार में विचरण कर रहे हैं। सभी को मातृ–गर्भ के भीतर से आना होगा, ऐसा नहीं है।" इस बात को सुनकर ही माँ ने उपरोक्त कलम की बात बतायी।

क्या भगवान् हैं

चैत्र 20, रविवार– आज सुबह दिनाजपुर के रायसाहब राधागोविन्द बाबू के पुत्र पुर्णेन्दु बाबू आये हैं। उन्होंने माँ से कुछ प्रश्न पूछने की इच्छा प्रकट की। यह प्रायः ही माँ के पास आया करते हैं, तीर्थों में बहुत भ्रमण कर चुके हैं। उन्होंने माँ से पूछा–"अच्छा माँ, क्या भगवान् वास्तव में ही हैं? वह दिखाई पड़ते हैं?" माँ ने उत्तर दिया–"हाँ, हैं, और दिखायी भी पड़ते

हैं। जैसे तुम लोगों को देख रही हूँ, तुम लोग मुझे देख रहे हो–इससे भी वह सत्य है।''

उसके बाद उन्होंने पूछा–''तो वह हमारा दु:ख क्यों नहीं मिटाते? वह ऐसे निर्दयी क्यों हैं?'' माँ ने उत्तर दिया–''वह निर्दयी नहीं हैं, सुख–दु:ख आदि अवस्थाओं के भीतर से वह तुम लोगों को पूर्णता प्राप्त करायेंगे इसी उद्देश्य से वह तुम्हें दु:ख–कष्टों के भीतर से ले जाते हैं। इसके अलावा और भी एक बात है, वह स्वयं ही अपने को लेकर खेल रहे हैं, यह उनकी लीला है।''

सुख–दु:ख उन्हीं की लीला है

पूर्णेन्दु बाबू ने कहा–''अच्छा माँ, मन को किसी तरह स्थिर क्यों नहीं किया जा सकता? अनके तीर्थों में भ्रमण किया, चुपचाप बैठकर वर्षों तक नाम का जप किया पर किसी तरह भी मन स्थिर क्यों नहीं होता?'' माँ ने उत्तर दिया–''देखो, मैं तो अंड–बंड बहुत कुछ बोल जाती हूँ, तुम्हारी लड़की ही तो हूँ।'' पूर्णेन्दु बाबू ने कहा–''अच्छी बात, लड़की ही हो, तुम्हारे बाप सठिया गये हैं, लड़की ही तो उन्हें समझा सकती है, बताओ माँ।'' माँ ने कहा–''बात क्या है, जानते हो? तपस्या का माने है ताप सहना। यह जो दु:ख पा रहे हो उनको पाने के लिए यही है तपस्या।''

पूर्णेन्दु बाबू ने पूछा–''तीर्थ भ्रमण से क्या लाभ है?'' माँ ने उत्तर दिया–''एक प्रभाव तो पड़ता है और इसके अतिरिक्त सब कुछ देख लेने पर आग्रह नहीं रहेगा, स्थिर होकर बैठ सकोगे। सभी आवश्यक है और तीर्थों में महापुरुषों का दर्शन मिलना सम्भव है। भाग्य के अनुसार तीर्थों में विशेष–विशेष लाभ की भी आशा रहती है। तीर्थ भी तो कृपा ही करता है। मैं तो बाबा कुछ भूल या खराब नहीं बोल सकती। मैं क्या देखती हूँ, जानते हो? सभी आवश्यक है और जिस स्थान से जो आदमी जो कुछ कहता है, सभी सत्य है। सब लोग एक ही स्थान पर खड़े हैं, ऐसा नहीं।''

आज सुबह रामकृष्ण मिशन के स्वामी देवानन्द ढाका के प्रसन्न बाबू को सपरिवार माँ के पास लाये। प्रसन्न बाबू की पत्नी बहुत अच्छा गाना गाती हैं। उन्होंने कई गाने गाये। सभी को आनन्द हुआ। और एक महिला एक भद्रपुरुष को लेकर आयी। भगवद्–भाव में पागल! बहुत सुन्दर गाना

गाती और नाचती है। अपने ही भाव में रहती है। सुना है कि पति के मर जाने पर गृहस्थी छोड़छाड़ कर चली आयी हैं।

दोपहर को माँ ने कुछ बातें कही। माँ लेटी हुई हैं। मैं पास बैठी हूँ। घर में कोई दूसरा आदमी नहीं है। माँ कहने लगी–''देखो, कभी–कभी ऐसा भी होता है कि बात करते समय जबान बन्द हो गयी। फिर कुछ न बोला जा सका। इसके भीतर अनेक बातें हैं। कभी तो प्रयोजन नहीं है, इसीलिए बात नहीं निकलती अथवा उपस्थित लोगों के भाव के अनुसार बात नहीं निकलती, फिर कैसा होता है, जानती हो? बात कहने का तो एक स्तर है न? उस स्तर के पार हो जाने पर फिर बात नहीं निकलती, मानो सभी का लय हो गया। निर्विकल्प समाधि जिस भाव का प्रकाश है उस अवस्था में बातें करना सम्भव नहीं है। अवतार ही कहो या और जो कुछ कहो जन्म ग्रहण दिखाई पड़ने से ही एक सीमा में बद्ध दिखाई पड़ता है, इसी प्रकार कितने समय तक किस प्रकार का खेल खेलना होगा उसी तरह दिखाई पड़ता है। उसी के अनुसार खेल हो जाता है। वही प्रकट होता है। सीमा के भीतर ही असीम है और असीम के भीतर ही सीमा है।

छंद से स्तोत्रादि निकलकर छंद में ही लय प्राप्त हो जाते हैं

''फिर और एक बात सुनो। यह जो प्रसन्न बाबू की पत्नी ने गाना गाया है इसमें सुर, ताल, लय आदि का उतार–चढ़ाव सुना न? जब इस शरीर से स्तोत्र आदि निकलते थे वह कितने छन्दों में होता था कहकर उसका अन्त नहीं किया जा सकता। सभी मानो अनन्त हैं, कहाँ तक कहूँ? एक–एक करके स्तोत्र या ऐसा ही कुछ तुम लोग जो कहते हो, बाहर निकलने लगे। छन्द पर छन्द निकलकर मानो फिर छन्द में ही मिल गये। सुर, ताल, लय भी न जाने कितने ही प्रकार के होते थे। सब जाकर एक–एक करके मानो सुर महासुर में, शब्द महाशब्द में विलीन हो जाते थे।''

सुर अनन्त हैं

मैंने कहा– ''माँ कलकत्ते में प्रमथ बाबू के डेरे पर एक बार तुमने 'हरि बोल' न जाने कितने ही प्रकार के सुर में गाया था। सुनकर प्रोफेसर खगेन मित्र महाशय ने आश्चर्यचकित होकर कहा था–''हरि बोल'' जो इतने सुरों में गाया जा सकता है इसकी मुझे धारणा नहीं थी। वह तो एक सुगायक

हैं।'' माँ बोली–''मैंने कहा है न कि सभी अनन्त हैं, वहाँ फिर कितना निकला होगा? वह भी तुम्हीं लोगों ने निकाला है। क्योंकि तुम लोग जिस-जिस भाव से सामने उपस्थित होते हो उन भावों की क्रियाएँ इस शरीर के भीतर से हो जाती हैं। खगेन मित्र सुगायक हैं। उन्होंने गाना गाया, साथ-साथ अनेक सुर निकल आये। परन्तु हर समय ऐसा नहीं होता। वास्तव में मैंने तो कभी गाना सीखा ही नहीं है। गाँवों में जिस प्रकार स्त्रियाँ गाल पर हाथ रखकर गाना गाने बैठती हैं ठीक वैसा ही तो है और क्या? इतने सुर कहाँ से निकल आये? तुम लोग जैसा करा लेते हो वही होता है। जितना आवश्यक है ठीक उतना ही हो जाता है। कोई पूछ सकता है–क्यों तुम अच्छी गायिका नहीं हुई? इस 'क्यों' का तो अन्त नहीं है। तब तो यह भी पूछा जा सकता है–क्यों अंग्रेजी में बात नहीं करती? क्यों उनकी पोशाक नहीं पहनती? क्यों मुसलमान का खाना नहीं खाती? इस प्रकार अनेक प्रश्न ही तो पूछे जा सकते हैं। इस कारण मैं कहती हूँ कि जो-जो आवश्यक है तुम्हीं लोग करा लेते हो।''

साधकों में बाहरी अवस्था एक–सी होने पर भी भेद रह सकता है

फिर एक समय माँ ने मुझसे कहा–''देखो, साधकों में कितनी अवस्थायें होती हैं समझना कठिन है। बात नहीं निकलती–यह भाव भी कितने ही भावों से हो सकता है। एक है शिशु में, पहले-पहल जब बोली निकलती है तो बा बा शब्द करता है और कुछ नहीं बोल सकता। ऐसा नहीं है कि उसे विदित है तो भी नहीं बोलता। उसको ज्ञान भी नहीं है और बोलने की शक्ति भी नहीं। और भी एक भाव है–किसी एक घटना को देखकर युवक या वृद्ध आह यह क्या! कहकर आश्चर्य से मौन हो जाता है। शिशु भी बा बा कहकर चुप हो गया और कुछ न निकला। युवक या वृद्ध भी मौन हो गया परन्तु इन दोनों भावों में जिस प्रकार बहुत अन्तर है साधकों में भी वैसा ही बहुत भेद है। इसलिए बाहरी अवस्था देखकर हर समय भीतरी भाव नहीं जाना जा सकता।''

आज तीसरे पहर शिशिर बाबू के आकर खड़े होते ही माँ ने पूछा–''तुम हँसते हो या रोते हो?'' उन्होंने उत्तर दिया–''क्यों कहिये तो?'' माँ हँसते हुए बोली–''यों ही पूछा है।'' बाद में उन्होंने कहा–''माँ, आपने ठीक

ही समझा है। आज ही एक घटना घटी है, वह सबके सामने नहीं कहूँगा, केवल आप से ही अकेले में कहूँगा।''

शिशु और साधक की उपमा

सन्ध्या तक माँ छत पर रही। उसके बाद नीचे आकर थोड़ा जलपान किया। बाद में दरवाजा बन्द कर दिया गया। आज भी रात को माँ के पास मैं एकान्त में बैठी रही। बात-बात में माँ ने कहा-''देखो, बच्चे पहले क्या करते हैं? केवल कुछ अस्पष्ट शब्द करते हैं, क्योंकि उन्हें ज्ञान नहीं हुआ रहता। उसके बाद क्रमश: शब्द स्पष्ट होने लगता है-किन्तु उस समय भी ज्ञान नहीं हुआ रहता। उसके पश्चात् धीरे-धीरे दो-एक शब्द निकले। उस समय तक भी माता-पिता आत्मीय कुटुम्बी उसकी सेवा ही करते जाते हैं। उसके बाद वह और भी कुछ बड़ा होता है। दो-चार बातें अस्पष्ट भाव में बोलना सीखा। उसी समय उसके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई-'यह क्या? वह क्या है?'-इत्यादि। तब सब लोग उन प्रश्नों का जवाब देने लगे। वह भी सीखने लगा। संसार उस समय उसका गुरु बना और वह हुआ जिज्ञासु शिष्य। साधकों की भी ठीक यही अवस्था है।''

चैत्र 21, सोमवार- आज सुबह माँ उठकर बैठ गयी। एक लड़का माँ को गाना सुनाने आया। और भी कुछ लोग आये, गाना चलने लगा। इस तरह 10 बजे गये। माँ का मुँह धुलाकर भोग दिया गया। आज सुबह माँ ने कुछ नहीं खाया। एक बार कहा था-''इस तरह समय से तुम लोग खाने-पीने का नियम चलाकर इस शरीर को और भी बिगाड़ रहे हो। जिस तरह पहले खाने-सोने का नियम नहीं था उसी तरह क्यों नहीं करते?'' डॉक्टर साहब को माँ के शरीर की अवस्था देखकर वैसे अनियमित ढंग से चलने देने का साहस नहीं हो रहा था। उनका कहना है-''माँ, शरीर का भी तो एक धर्म है। आप अपने भाव में रहती हैं, शरीर की ओर खयाल ही नहीं रहता। इसलिए शरीर बिगड़ता जाता है।'' कभी खाने-सोने का नियम नहीं चलाया जा सका। कभी शायद दिन भर के बाद सन्ध्या को कुछ खाया। बहुत दिनों तक ऐसा ही चला। फिर कभी ऐसा भी होता था कि जो सामने आता था वही कुछ न कुछ माँ के मुँह में दे देता और माँ भी उसे ग्रहण कर लेती। देहरादून में कुछ दिनों तक विशेष रूप से यही अवस्था चली थी। काशी

बाबू की पत्नी लक्ष्मी रानी आदि देखकर आश्चर्यचकित होती थी कि माँ दिन-रात जब तक लोग आ जाया करते थे तब तक वे कुछ न कुछ लेकर आते थे। वे कुछ न कुछ माँ के मुख में देते थे और माँ भी उसे ग्रहण कर लेती थी, कभी किसी प्रकार की आपत्ति नहीं करती थी।

तीसरे पहर एक आदमी आया। वह गले के भीतर से ऐसा शब्द निकालता है मानो बाँसुरी बज रही है फिर सुर के भीतर से बीन की तरह शब्द निकालता है। उसने कीर्तन भी किया। माँ छत पर जा बैठी। अनेक स्त्री-पुरुषों ने माँ के चारों ओर बैठकर कीर्तन सुना। सन्ध्या के बाद शिशिर बाबू और गोपीनाथ बाबू माँ के पास आ बैठे। शिशिर बाबू को कुछ प्रश्न पूछने थे। माँ को लेकर शिशिर बाबू, गोपीनाथ बाबू और मैंने दरवाजा बन्द कर दिया। गोपीनाथ बाबू ने माँ के शरीर को लक्ष्य करके कहा-''माँ का शरीर अच्छा होना आवश्यक है।'' माँ ने हँसकर कहा-''बोलो तो बाबा, किसका शरीर?'' गोपीनाथ बाबू ने हँसकर कहा-''यह तो फिर दार्शनिक तत्त्व लायी हैं। हम अपने भाव से कहते हैं कि आपका शरीर।'' माँ बोली-''अच्छा तो मैं भी वही कहूँगी। लोग कहते हैं मैं सीधी तरह कुछ नहीं बोलती।'' गोपीनाथ बाबू ने भी हँसकर कहा-''माँ पहले से ही बात स्थिर करके रखती हैं।''

अवतारों का पूर्वजन्म है या नहीं

शिशिर बाबू ने पूछा-''अच्छा, यह जो अवतार आते हैं यानी राम या कृष्ण, ये साधारण जीव की तरह जन्म ग्रहण करते हैं? अवतरण कौन करता है? अवतारों का पूर्वजन्म है या नहीं? जैसे राम या कृष्ण पूर्वजन्म में जीव थे या नहीं?'' माँ हसते हुए बोली-''यह जो सारे लोग हैं सभी तो अवतार हैं।'' शिशिर बाबू ने कहा-''हम समझ सकें, इस ढंग से बताइये।'' तब माँ ने कहा-''देखो, राम, कृष्ण आदि अवतारों का पूर्वजन्म है या नहीं यदि पूछो तो कहा जायेगा कि **न जाने कितने राम और कितने कृष्ण आते और जाते रहते हैं, किन्तु तुम्हारे जैसे जन्म नहीं हैं।**'' तब शिशिर बाबू ने कहा-''हमारे जैसे जीव बनकर वे आते हैं या नहीं?'' उत्तर में माँ ने कहा-''जीव उच्च स्तर में जाते-जाते भगवान् की तरह हो जाता है और भगवान् का अवतार बनकर जीव की तरह व्यवहार का प्रकाश दिखाता है।''

उसके बाद माँ अनुरोध के स्वर से गोपी बाबू से बोली-''बाबा, तुम

इसमें कुछ बोलो न, शास्त्र में क्या है?'' गोपी बाबू ने कहा-''दो प्रकार हैं, एक साधक उच्च स्तर में उठकर भगवान् की तरह हो जाता है और दूसरा भगवान् स्वयं।'' शिशिर बाबू ने पूछा-''इन दोनों में कौन अवतार होकर आते हैं?'' माँ उत्तर में बोली-''स्वयं भगवान् ही प्रकट होते हैं। क्योंकि वह स्वयं-प्रकाश हैं। वही तो सब कुछ हैं-सब भावों और रूपों में। एक में जो रहते हैं, विभिन्न भावों में वही हैं। पूर्वजन्म और परजन्म तुम्हारे लिए है। सभी जन्म ही तो उनके जन्म हैं, फिर उनका जन्म ही नहीं है। पूर्वजन्म और परजन्म का प्रश्न ही कहाँ रहता है?''

मुक्त पुरुषों का पुनर्जन्म

शिशिर बाबू ने प्रश्न किया-''तो क्या जो लोग साधना करते-करते भगवान् की तरह हो जाते हैं वे फिर नहीं आते?'' माँ ने उत्तर दिया-''उनका आना-जाना कैसे संभव हो सकता है? आने-जाने का घेरा लाँघने के लिए ही तो साधना है। फिर दूसरे भाव से कह सकते हो कि वे आते हैं। कैसे आते हैं, जानते हो? जैसे गंगा के जल में झरने और नाले का जल आकर मिल जाता है। अब गंगा से एक लोटा जल लो, उसके साथ झरने और नाले के जल का कुछ अंश उठ आया किन्तु कहा यही जाता है कि एक लोटा गंगा जल लाया हूँ। झरने और नाले का जल गंगा में मिलकर गंगा जल ही हो गया है, कोई अन्तर नहीं है।'' माँ शिशिर बाबू की ओर देखकर हँसते हुए बोली-''मुझसे तुमने अपने समझने के ढंग से कहने के लिए कहा था। इसी से सीधी तरह से बता दिया, परन्तु यह भी एक ओर की बात है। फिर देखो, जो साधक भगवान् के समान बन गये हैं-यदि भगवान् ने स्वयं अवतार धारण किया तो उनके साथ-साथ जो साधक भगवान् के समान बन गये हैं वे भी आये क्योंकि वे भगवान् के साथ अभिन्न हो गये हैं। जिस ओर देखोगे, भेद में भी पाओगे और अभेद में भी पाओगे।''

शिशिर बाबू ने कहा-''भगवान् तो पूर्ण हैं, उनमें दया-करुणा आदि कैसे? जैसे गीता में लिखा है-**यदा-यदा हि धर्मस्य**.... इत्यादि क्यों लिखा है? लोगों का दु:ख देखकर क्या करुणा होती है? इसी से वह उतर आते हैं? तो उनमें करुणा-दया है?'' माँ ने कहा-''देखो, तुम्हारे भीतर करुणा- दया इत्यादि है इससे करुणा-दया प्रकट होगी, किन्तु वस्तुतः यह करुणा-दया नहीं है।

''फिर दया; उनमें करुणा-दया न हो तो तुम लोगों ने कहाँ से पायी? वही तो सब हैं, सबके भीतर वही तो हैं। करुणा-दया का कोई प्रश्न ही नहीं है, फिर करुणा-दया उन्हीं में है और वह भी करुणा-दया में हैं। वह पूर्ण हैं इसलिए उनमें सभी सम्भव है। कैसा, जानते हो? यह उनकी एक स्वाभाविक गति मात्र है। जैसे मेघ होने से ही गर्जन, बिजली का चमकना आदि अपने आप होता रहता है, उसमें किसी प्रकार की इच्छा की आवश्यकता नहीं होती। फिर इच्छा भी तो उन्हीं में क्रमश: स्वाभाविक होती जाती है, उसी प्रकार मेघ अर्थात् लोगों का हाहाकार उठते ही उनका प्रकट होना स्वाभाविक हो जाता है। यह जो कहा गया है वह भी ऐसा ही है। वह फिर आयेंगे कैसे? वह तो हैं ही। जैसे तुम जिनके हो उनका प्रकाश माँगना भी तुम्हारा स्वाभाविक धर्म है। इसलिए कहा जाता है कि अपने को जानने से ही सब कुछ जाना जा सकता है।''

उसके बाद एक अवस्था की बात कहती हैं-''एक अवस्था में पहुँचने पर बात ही नहीं निकलती, सबका लय हो जाता है, परन्तु उसका भी एक प्रकाश रहता है। कहा जाता है कि बात नहीं निकलती। बाहरी भाव से कभी-कभी बात भीतर से निकल आती है। किसी भी बाहरी रुकावट से वह बाधा नहीं पाती, बाहर निकलती ही जाती है।''

निर्विकल्प के बाद की अवस्था

उसके बाद प्रसंग आया कि निर्विकल्प समाधि के बाद कोई अवस्था है या नहीं? माँ ने कहा-''है, निर्विकल्प समाधि की स्थिति में किसी का शरीर छूट भी जा सकता है, फिर किसी के निर्विकल्प समाधि में पहुँचने पर भी जिस प्रकार स्विच बन्द कर देने से भी पंखा कुछ देर तक चलता रहता है उसी प्रकार उनका शरीर रह जाता है, कारण छोड़कर शरीर नहीं रह सकता। समाधि भी तो एक अवस्था है न बाबा?'' गोपीनाथ बाबू ने कहा-''अवस्था ही तो है माँ।''

माँ बोली-''यह सब ही तो एक ओर की बात है।'' उसके बाद शिशिर बाबू ने प्रश्न किया-''अच्छा माँ, निर्विकल्प समाधि के बाद भी जो लोग किसी कारणवश रह जाते हैं, उनके लिए संसार के विविध तत्त्व रहते हैं या नहीं? और संसार को वे किस दृष्टि से देखते हैं?'' माँ हँसते हुए थोड़ी देर

चुप रहकर धीरे-धीरे कहने लगी-''देखो बाबा, तुम्हारे शरीर का हाथ पकड़कर यदि कोई कहे-यह कौन है? तुम कहोगे-मैं। फिर पैर पकड़कर वैसा ही पूछने पर भी कहोगे-मैं। अंगुली पकड़कर पूछने पर भी कहोगे-मैं। परन्तु हाथ, पैर, अंगुली आदि भिन्न नाम होते हुए भी एक 'मैं' ही कहोगे। ठीक उसी प्रकार समझ लो।'' शिशिर बाबू ने कहा-''इन सब बातों के पूछने का कारण यह है कि एक स्थान पर देखता हूँ कि नर-नारायण ने कृष्णार्जुन होकर जन्म ग्रहण किया था। फिर किसी शास्त्र में लिखा है कि कृष्ण स्वयं भगवान् हैं-इसकी मीमांसा क्या है?'' माँ ने विशेष भाव से गोपीनाथ बाबू को अनुरोध करते हुए कहा-''बाबा, बताओ न शास्त्र में क्या है?'' शिशिर बाबू ने कहा-''मैं माँ के मुख से सुनना चाहता हूँ।'' माँ बोली-''अच्छी बात, मैं बाबा के मुख से सुनना चाहती हूँ, बाबा समझ गये हैं।'' गोपी बाबू ने हँसकर कहा-''माँ इस बात का जवाब देंगी। जो जिस स्तर में अवस्थित है वह उसी स्तर की बात कह सकता है।'' माँ ने कहा-''देखो, इस तरह की बात कहने में सभी के साथ सबका समन्वय है, ऐसा दिखायी पड़ता है। किसी को छोड़ा नहीं जा सकता। सभी अनन्त हैं। भोलानाथ मुझे 'अपीलेश्वरी' कहते हैं यानी मैं हर बात को ठीक कहती हूँ परन्तु असली बात क्या है, जानते हो? मैं तो देखती हूँ कि सबके साथ सबका संयोग है। हर बात को 'है'-'है' कहने से काम नहीं चलता, फिर न करने से भी ठीक नहीं होता। सूक्ष्म रूप से विचार करने से दिखायी पड़ता है कि एकत्व भी अनन्त है। यह बहुत ही सत्य बात है।

एक घटना-आत्मा और परमात्मा में आँख-मिचौनी का खेल

चैत्र 22, मंगलवार- आज रात को माँ मेरे साथ बातें करते हुए एकाएक बोल उठी-''देखो, खेल हो गया। क्या हुआ, जानती हो? एक स्थान, वह स्थान बहुत ही भयानक और संकीर्ण मानो धँस रहा हो, पकड़ने का कुछ भी साधन नहीं है। उस स्थान पर कुछ पोटलियाँ जैसी वस्तुएँ रखी हुई हैं। खेल में छिपने के लिए यह शरीर वहाँ जाकर खड़ा हो गया। शरीर की गिरने लायक अवस्था है। वहाँ खड़ी होकर कहती हूँ-'कैसे आऊँगी?'' यह शब्द सुनकर नाना स्तरों के मनुष्य आकर सामने खड़े हो गये और उनके पास उतर आने के लिए बहुत व्यग्रता के साथ उन लोगों ने रास्ता कर दिया। यह शरीर उन पोटलियों में से एक-एक को पकड़ता है और वह छूटकर गिरती जाती

हैं। यह शरीर क्रमश: उनकी ओर अग्रसर होने लगा। इस शरीर की ओर ही उनका लक्ष्य है। इसलिए पोटलियाँ जो गिरती जाती हैं उस ओर उनका खयाल ही नहीं है। उनमें जो प्रधान है, वह आगे आकर इस शरीर को लेने के लिए व्यग्र था और आग्रह के साथ इस शरीर के लिए रास्ता कर दिया था। उसके ऊपर विशेष रूप से लक्ष्य करके इस शरीर ने कहा–'तुम मेरे परम मित्र हो, तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हें सन्तोष प्राप्त हो।' जिसने आशीर्वाद दिया था वह है यह शरीर।''–इतना कहकर अपने शरीर के प्रति इशारा करके माँ ने फिर कहा–''जिससे उनके पास जाया जाय, उसी लक्ष्य से वह आग्रह के साथ खड़े थे।''

मैंने पूछा–''इस खेल का उद्देश्य क्या है माँ?'' माँ ने उत्तर दिया–''आत्मा और परमात्मा का आँख-मिचौनी का खेल है और क्या? पोटलियाँ कामना-वासना की ग्रन्थियाँ हैं। मन-बुद्धि रास्ता कर देने में सहायक हैं। जिन्होंने आशीर्वाद दिया वह है जीवात्मा। प्रवेश-परमात्मा का अपने ही साथ आँख-मिचौनी का खेल है और क्या?''

चैत्र 23, बुधवार– आज बात करते हुए माँ ने मुझसे कहा–''उस दिन जो बात हुई थी, हाथ पकड़ने से भी तुम कहोगी–'मैं', पैर पकड़ने से भी कहोगी–'मैं', अंगुली पकड़ने पर तुम कहोगी–'मैं'। बात क्या है, जानती हो? आग में कोई चीज डाल देने पर उसका जो स्वभाव है कि अपने स्वरूप में परिणत कर लेना, उसी प्रकार स्वभाव में पहुँचने पर तुम जो हो वही है। एक के सिवाय कोई दूसरा नहीं है, एक में ही सबका लय होता है। एक कहने से भी ठीक नहीं होता और दो कहने से भी स्वरूप व्यक्त नहीं होता। इसलिए वह अव्यक्त है। फिर बात क्या है, जानती हो? सृष्टि-स्थिति-लय कोई बात ही नहीं है।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

फिर से कहा–''देखो, इन बातों को स्वभाव के कर्मों के द्वारा प्रत्यक्ष किये बिना ठीक-ठीक समझ नहीं सकोगी। गल्प-सा मालूम होगा।'' मैंने कहा–''सृष्टि स्थिति अनन्त है, तो एकत्व क्या है?'' माँ ने कहा–''यह ही तो स्वभाव और स्वयंप्रकाश है। अखण्ड आनन्द माँगना जिस प्रकार तुम्हारा स्वभाव है। खुद ही हाथों से ताली पीट रहा है, खुद ही गाना गा रहा है, खुद ही शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के अनुभव के अनन्तर शान्त होता जा रहा है।'' इतना कहकर हँसते-हँसते फिर से कहा–''देखो, खुकुनी, कैसा सुन्दर

तमाशा है, तुम खुद ही ज्यादा खा रही हो, फिर तैरते हुए महान् आनन्द से बहुत देर तक स्नान कर रही हो-फिर खुद ही पेट के दर्द तथा सर्दी-जुकाम से कष्ट भोग रही हो, फिर सोच रही हो-'कितने दिनों में मेरे ये रोग दूर होंगे? मैं जैसी थी, कब वैसी फिर होऊँगी'' ये सब बातें सोचकर घबराती हो। अच्छा, कहो तो कैसा सुन्दर तमाशा है। इसी से कहती हूँ कि जितना प्रयोजन है उतना ही ग्रहण करो। ऐसा होने पर जैसे- के-तैसे का प्रकाश। इस स्थिति में तुम देखोगी कि रोगी होने पर भी निरोगिता का आभास हर समय के लिए तुम्हारे भीतर स्थायी हो गया है। इसी से कहती हूँ कि उस समय भी आनन्द माँगना तुम्हारा स्वभाव है अर्थात् तुम जो हो उसी को माँग रही हो।

''फिर गुण जिस प्रकार के हैं भिन्न-भिन्न रूप लेकर वे एक-एक मूर्ति के आकार में परिणत हो जाते हैं। इसमें शुभ मूर्ति, अशुभ मूर्ति आदि नानात्व आ गया। इस नानात्व से एकत्व में जाने के लिए शुभ मूर्ति का आश्रय लेकर जाना होता है। इसी में सगुण-निर्गुण आदि सब कुछ आ जाते हैं। इसी से शिव का खेल है न! फिर सब गुणों और रूपों के विशेष प्रकाश के अनुसार जीव-कोटि, ईश्वर-कोटि तुम लोग जो कहते हो सभी का प्रकाश होता है। स्वभाव के कर्म में जाकर तुम जिस प्रकार पूर्ण और स्वस्थ थी वैसी ही पूर्ण स्वस्थ और शान्त हो। देखो तो, खेल का कैसा चमत्कार है, खेल न कहकर तुम लोग कहाँ जाओगे? घर का बच्चा घर में।''

फिर कहने लगी-''देखो, ऐसी बातें क्यों हुई? सुनोगी? गंगा के ऊपर मकान में रह रही हूँ। देखती हूँ कि गंगा में सब लोग नहा रहे हैं, तैर रहे हैं, फिर खूब खाँस रहे हैं, ज्वर भी हो रहा है। दूसरे लोग बहुत तृप्ति के साथ खा रहे हैं, किसी को ज्वर, किसी को जुकाम, किसी को पेट का रोग हो रहा है, फिर डॉक्टर के डेरे में हूँ औषधि आदि भी आवश्यकता के अनुसार दे रहे हैं। इसलिए सब देख-सुनकर ऐसी बातें आ गयी, अब मैं क्या करूँ, बताओ।'' हँसते-हँसते ऐसी बातें कह गयी।

एक आश्चर्यजनक घटना यह है कि माँ तो कोई बात साधारण भाव से स्वेच्छा से नहीं कहती। जब बातें निकलने लगती हैं तो कोई सुने या न सुने लगातार कहती जाती हैं। आज भी ऐसी ही दो-एक बातें कह रही थी। मैं और नानीजी बैठी थी। माँ लेटी हुई थी। आश्चर्य की बात है कि मैं और

नानीजी ने माँ की बात सुनी। परन्तु दूसरे ही क्षण सब भूल गयी। सारी बातें मुझे भी याद न रही। माँ ने हँसकर कहा–"जितना आवश्यक है उतना ही तो होगा।" मैंने नानीजी से पूछा, उनको भी कुछ याद नहीं आया। माँ ने हँसकर कहा–"तुम जो कहती हो कि माँ के पास बैठकर कुछ लिख नहीं सकती, माँ कुछ नहीं बोलती। अब देखा न घटना–चक्र से तुम्हारे ही मुख से निकल गया। तुम्हें भी अफसोस हुआ, कैसा सुन्दर!"

रात को लेटे–लेटे इन सब बातों को माँ ने कहा। इधर दरवाजा बन्द करने पर भी हर समय माँ चुप नहीं रहती। परन्तु हमारी ओर की व्यर्थ की बातें नहीं सुनती, कहने भी नहीं देती, अपने भाव में जो कुछ आता है वही कहती जाती हैं। आज भी अधिक रात तक बोलती जा रही थी। मैंने रोककर कहा–"क्यों बोलती हो माँ?" माँ ने उत्तर दिया–"मैं क्या करूँ? जो आ रहा है वही बोल रही हूँ।"

आज मैमनसिंह से विनय बाबू और ज्ञान बाबू सपरिवार आये हैं। डॉक्टर साहब का मकान भर गया है। भोलानाथजी सबको लेकर बहुत आनन्द से कीर्तन कर रहे हैं। कीर्तन में वह एकदम मत्त हो जाते हैं। एक महान् आनन्द का भाव उनके भीतर चल रहा है। बाहर हरिद्वार के चारों ओर आनन्द का मेला लगा हुआ है।

चैत्र 24, बृहस्पतिवार– आज भोर में ही गिरीन्द्र बाबू ने आकर मंगल आरती का गान शुरू किया। उसके बाद भोलानाथजी सबको लेकर कीर्तन करते हुए उस पार चले गये। बहुत देर तक कीर्तन करके फिर धीरे–धीरे सब लोग लौट आये। लौट के आकर भी सबको साथ लेकर भोलानाथजी ने खूब कीर्तन किया। महान् आनन्द!

अपनी साधना की अवस्था, देवी–देवियों का भाव

बात–बात में मेरे पूछने पर अपनी अवस्था की बात माँ ने मुझसे कही– "देखो, कुछ समय ऐसा गया जबकि देव–देवियों के आसन तो इस शरीर के भीतर हो ही जाते थे। यहाँ तक कि जिन देवताओं के चार हाथ हैं, उन देवताओं का भाव जब शरीर के भीतर खेलता, उस समय हाथ और खड़े होने का ढंग ऐसा हो जाता मानो और भी दो हाथ हैं। फिर देवताओं के जो चीजें रहती ठीक–ठीक वे ही भाव इस शरीर में खिलते रहते। जब मैं बहू

थी और घर का दरवाजा बन्द करके काम-काज करती थी उस समय वे भाव हो जाया करते थे। खेल ही तो है? सब खेल ही है।''

दोपहर को एक आदमी ने आकर माँ को धोती-चादर पहना दी। एक लड़के ने अपनी गाँधी टोपी माँ को पहना दी, माँ हँसने लगी, सब लोग माँ के मुख की ओर देखने लगे, फिर माँ ने उस लड़के को अपनी चादर ओढ़ा दी। माँ के सिर पर टोपी, धोती-चादर पहना हुआ रूप देखकर सब लोगों ने माँ के चरणों में प्रणाम किया। माँ उसी पोशाक से हर कमरे में जाकर हँसी-मजाक करने लगी। कुछ देर तक ऐसा खेल चला। उसके बाद सब छोड़-छाड़कर अपनी धोती पहनकर बिछौने पर जा बैठी।

माँ के दोनों हाथों में दर्द हुआ है। डॉक्टर तथा दूसरे भक्तों की बात से माँ ने कुर्ती पहन ली। शरीर में रोज ही एक न एक रोग लगा ही रहता है। डॉक्टर साहब आकर जब पूछते हैं-''माँ आज कैसी हैं?'' तब माँ एक न एक रोग की बात बताती हैं। फिर हमारे कानों में हँसकर कहती हैं-''डॉक्टर ने इलाज करना शुरू किया था, बड़ी सावधानी से रोग की व्यवस्था कर रहा है, रोगी बनकर, रोगी की बात कह-कहकर डॉक्टर को घबराहट में डाल देना होगा।''-इतना कहकर माँ हँसने लगी।

किरणचाँद दरवेश

चैत्र 25, शुक्रवार- संज्ञा देवी की लड़की की गाड़ी से आज माँ गंगा के उस पार अचलानन्द ब्रह्मचारी (कुलदानन्द ब्रह्मचारी के शिष्य) के निमंत्रण से यज्ञ देखने गयी। वहाँ से किरणचाँद दरवेश महाशय भी माँ को अपने तम्बू में ले गये। माँ के चरणों में प्रणाम कर, माँ का हाथ पकड़कर उन्होंने कहा-''मेरी माँ, मेरे सिर पर जरा हाथ रख दो।'' माँ मुस्कुराकर बोली-''क्या लड़की से ऐसा कहा जाता है?'' किन्तु दरवेश महाशय किसी तरह नहीं मान रहे थे। तब माँ ने कहा-''तो उठकर बैठ जाओ।'' उनके उठकर बैठते ही माँ ने उनके सिर तथा सारे अंगों पर अपना हाथ फेर दिया और कहा-''केवल सिर पर हाथ फेर देना ही पर्याप्त नहीं है, इसलिए सारे अंगों का स्पर्श किया है।'' वह कृतार्थ होकर आँसू भरे नेत्रों से माँ के मुख की ओर देखने लगे।

कुछ देर बाद हम लौट आये। रोज की तरह तीसरे पहर बहुत से लोग माँ के दर्शन के लिए आये। माँ को छत पर ले जाकर बिठा दिया गया।

सन्ध्या के बाद जलपान करने के लिए माँ को नीचे उतार लाया गया। रात के 10 बजे दरवाजा बन्द कर दिया गया।

साधना की अवस्था–मुद्रा, अंगन्यास–करन्यास

चैत्र 26, शनिवार– आज रात को बात–बात में माँ अपनी अवस्था की बात कहने लगी–"देखो, मुद्रा आदि किसी का भी नाम तक मुझे ज्ञात नहीं था, परन्तु देखती क्या थी, जानती हो? एक–एक देवता का प्रणाम एक–एक प्रकार की मुद्रा द्वारा हो रहा है।" फिर अंगन्यास–करन्यास होने की बात पर कहा–"जैसे चित्र में देखती हो, गाय के शरीर में कितने ही देवता हैं, उसी प्रकार इस शरीर में भी बीज–मंत्र भरे हुए हैं और हर एक बीज के देवता साथ–साथ हैं। जब क्रिया आदि होती थी तब हाथ से उन–उन स्थानों का स्पर्श हो जाता था। साफ दिखायी पड़ता था। साधक की ऐसी अवस्थायें इस शरीर में खेलती गयी। पहले ही कहा था कि जब किसी को छुआ नहीं जाता था उस अवस्था में किसी आदमी के सामने से चले जाने पर आहट बिना सुने ही शायद आँख मूँदकर लेटी हुई थी परन्तु पता लग जाता था।" मैंने पूछा–"कैसे जाना जाता था माँ?" माँ ने कहा–"कैसे, जानती हो? जैसे सूर्य की किरण है, ठीक उसी प्रकार की एक किरण सदा ही शरीर के भीतर से निकलती थी। इस कारण शरीर का स्पर्श न होने पर भी किरण की सीमा के भीतर आते ही उससे इस शरीर का स्पर्श हो जाता था। इससे इस शरीर का स्पर्श न होने पर भी किसी के पास आने पर पता लग जाता था। परन्तु ये सभी स्तर हैं।"

चैत्र 27, रविवार– आज विलास का यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। ब्रह्मचारिणी के वेश में वह बहुत ही सुन्दर लग रही थी। भोलानाथजी ही उसके 'आचार्य गुरु' हुए। आज कलकत्ते से यतीश गुहा अपनी माँ और कन्या के साथ तथा प्राणकुमार बाबू सपरिवार आये हैं। माँ का शरीर अस्वस्थ है इसलिए अधिक समय तक उनके कमरे का दरवाजा बन्द ही रखा जाता है। परन्तु भक्त लोग माँ के दर्शनों के लिए उतावले हैं। इस कारण दरवाजा खोलते ही बहुत भीड़ हो जाती है।

दूसरे के मन का भाव समझना

आज बात–बात में मैंने पूछा–"अच्छा माँ, दूसरे के मन का भाव कैसे

जाना जा सकता है?'' माँ ने उत्तर दिया-''कैसे, जानती हो? तुमने शायद रसोई का बनना नहीं देखा परन्तु तरकारी खाकर बता सकती हो कि उसमें नमक, मिर्च, मसाला आदि ज्यादा पड़ा या कम वैसा ही समझ लो। फिर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि रसोई करना देखा नहीं किन्तु गन्ध से ही समझ गई कि क्या पक रहा है उसी तरह न देखकर या नाम न सुनकर भी भीतरी भाव की बात जानी जा सकती है। दर्पण की तरह स्पष्ट दिखायी पड़ता है। सारी बातें नहीं कहलायी, जितना कहलाया-उतना कहा गया।''

माँ के चरित्र के सम्बन्ध में आलोचना चलने लगी। माँ के शरीर पर एक बार बहुत से जेवर थे। ट्रेन में एक गिर गया, माँ ने देखा पर कुछ न बोली, उतर जाने पर जब हम लोगों ने एक जेवर नहीं देखा तो माँ हँसकर बोली-''गाड़ी में गिर गया था, देखा तो सही पर तुम्हें बताने का भाव नहीं आया, इसलिए नहीं कह सकी। जाने कितनी चीजें ही तो पड़ी रहती हैं।'' इतना कहकर मधुर हँसी हँसने लगी।

शैतान का अर्थ

दोपहर को माँ खाने बैठी। रामतारन बाबू पास बैठकर थोड़ा-थोड़ा प्रसाद पा रहे हैं, संज्ञा देवी भी पास बैठकर प्रसाद पा रही हैं। किसी बात पर रामतारन बाबू ने एक मजाक किया। माँ ने हँसते हुए कहा-''तुम बड़े शैतान हो।'' सब लोगों के हँस पड़ते ही माँ बोली-''शैतान का माने जानते हो? स्व में जिसने तान लगायी है उसे ही शैतान कहते हैं।'' इस बात से रामतारन बाबू को महान् आनन्द हुआ। मैंने कहा-''माँ ने एक नया अर्थ निकाला है, अब शैतान शब्द निन्दा के बजाय प्रशंसा की ही बात होगी।''

आज कई दिनों से माँ के दाहिने हाथ में बहुत दर्द हो रहा है। ग्लैण्ड फूल उठे हैं, बायें हाथ में भी एक दूसरे प्रकार का दर्द है। माँ को तो खयाल ही नहीं रहता। आनन्दमयी मूर्ति सभी के साथ वार्तालाप करती जाती हैं परन्तु हम लोग देखते हैं कि शरीर क्रमशः बिगड़ता जा रहा है। एक न एक रोग लगा ही हुआ है। डॉ. पन्त ने कहा-''माँ, आप अपने भाव से ही अच्छी हो जाइये, नहीं तो हम लोग क्या कर सकते हैं? पाँच दिन हम लोग कुछ नहीं बोलेंगे, आप अपने ही भाव से इसे अच्छा कीजिये।'' माँ ने कहा-''एक बार जब शरीर में औषधि पड़ी है तो देखो कितना निकलता है, कितनी दवा तुम लोग दोगे?'' इतना कहकर हँसने लगी।

अखण्ड भावघन

चैत्र 28, सोमवार– माँ के हाथ की अवस्था एक ही तरह की चल रही है। डॉक्टर और स्वामी अखण्डानन्दजी चिन्ता में पड़ गये। मकान लोगों से भर गया। पूरा हरिद्वार शहर लोगों से भरा हुआ है। कहीं यज्ञ हो रहा है, कहीं भण्डारा हो रहा है, दिन-रात बाजे बज रहे हैं। मैंने एकान्त में पूछा– ''माँ, अखण्ड-भावघन क्या है?'' माँ ने उत्तर दिया–''जो स्थायी, अस्थायी, नित्य और अनित्य है, जिसका कभी खण्ड नहीं होता, अब समझ लो'' इतना कहकर मृदु हास्य करने लगी।

आज विनय सेन ने माँ से कहा–''माँ, आप इस तरह हँसी, दिल्लगी और मजाक की बात कैसे समझती हैं? आप तो उस भाव के भीतर कभी गयी ही नहीं थी।'' उन्होंने सोचा कि माँ का मुँह बन्द करा दिया किन्तु माँ ने तुरन्त जवाब दिया–''तुम लोग तो जाने कितने प्रकार के मनुष्यों का विचार कर राय देते हो, कैसे समझते हो? क्या तुम लोगों ने वैसा काम किया है? इतना कहकर हँस देते ही उपस्थित सब लोग हँस पड़े। विनय बाबू ने भी हँसकर कहा–''आपने खूब मुँहतोड़ जवाब दिया।'' माँ बोली–''मैं कुछ सोच-समझकर नहीं कहती। तुम लोग अपने मन का भाव ही मुझसे निकाल लेते हो, तो इसमें और एक बात सुन लो। यहाँ समझने-विचारने की कोई बात नहीं है, वही तो नाना भावों से, नाना रूपों से सदा प्रत्यक्ष हैं। जो कहो, वही।''

चैत्र 29, मंगलवार– हरिद्वार का वातावरण मानो बिल्कुल बदल गया। साँस लेना भी कठिन है। रास्ते, घाट सब लोगों से भर गये। एक कोलाहल का शब्द दिन-रात लगा ही हुआ है, कानों के पर्दे मानो फटना चाहते हैं। आगामी कल स्नान है। आज कलकत्ते से शची बाबू, रायबहादुर सुरेन बाबू, उनकी लड़की ननी आदि अनेक लोग आये हैं। निश्चय हुआ कि कल पांड़े के मकान में माँ की पूजा और अहोरात्रि कीर्तन होगा। आज शाम को अधिवास (श्रीगणेश) कर दिया गया। गंगा-किनारे कीर्तन होगा।

कुम्भ-स्नान

चैत्र 30 बुधवार– आज कुम्भ-स्नान है। 12 वर्षों के बाद एक स्थान पर ऐसा पर्व आता है। लाखों आदमी जुटे हैं। पुलिस तथा अनेक सेवा-

समितियों के दल काम कर रहे हैं। शान्ति-रक्षा के लिए सभी सन्नद्ध हैं, तो भी लोग घायल हो रहे हैं, बहुत-सी घास-फूस की कुटियाँ तैयार हुई हैं; स्थान-स्थान पर तम्बू तान दिये गये हैं, किसी-किसी में आग लग रही है, सामान जल रहे हैं, मनुष्य मर रहे हैं, भयंकर स्थिति है।

भोर में कीर्त्तन शुरू हुआ-

''हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे।''

सुबह प्रतिदिन की तरह भोलानाथजी कीर्तन का दल लेकर बाहर निकल गये। गंगा किनारे कीर्तन स्थान पर भी कुछ लोग बैठकर नाम की रक्षा करने लगे। चारों ओर खूब सजाया गया है। बीच में मंच तैयार किया गया है। लगभग वेला 9 बजे माँ की पूजा आरम्भ हुई। श्रीयुत् मन्मथ चट्टोपाध्याय ने पूजा की।

पूजा के बाद माँ का भोग हुआ। उसके बाद विश्राम के लिए दरवाजा बन्द कर दिया गया, परन्तु माँ आज अधिक समय तक लेटी न रही। भक्त लोग माँ के दर्शनों के लिए दूर-दूर से आये हुए हैं। उनमें कोई-कोई दो-चार दिनों से अधिक रह नहीं सकेंगे। माँ दोपहर को एक बार उतरकर कीर्तन में जा बैठी। उसके बाद लोगों के कहने से गंगा में उतर गयी और सिर पर गंगाजल छिड़क लिया। भक्त लोगों ने उसी समय वह जल अपने सिर पर डाला। कुछ लोग ब्रह्मकुण्ड नहीं गये, माँ का चरण-स्पर्श गंगाजल अपने सिर पर देकर ही कृतार्थ हो गये।

आज माँ ने गरम जल से स्नान किया। इधर दोनों हाथों में बहुत दर्द है। हिला भी नहीं सकती। सर्दी तथा कुछ बुखार भी है। डॉक्टर को बच्ची की तरह सब दिखा रही हैं। डॉक्टर ने कहा-''माँ, अपने अन्दर अच्छे होने का भाव जगाइये तो सारे रोग अच्छे हो जायेंगे। हमारी यह प्रार्थना स्वीकार कीजिये।''

रात के 10 बजे दरवाजा बन्द कर देने के थोड़ी देर बाद ही माँ फिर उठ बैठी। तीसरे पहर से ही देहरादून जाने की बात चली है। माँ ने भी कहा-''अच्छी बात है, चेष्टा करो।'' किन्तु शहर की जो अवस्था है उससे शहर से निकलना प्रायः असम्भव है। रात के लगभग 11 बजे माँ नीचे

उतरकर कीर्तन में जा बैठी। स्त्री-पुरुष सभी लोग माँ के सामने कीर्तन करने लगे। माला-चन्दन सबको पहना दिया गया। झमाझम कीर्तन आरम्भ हुआ। माँ को भी माला-चन्दन से खूब सजा दिया गया। बीच-बीच में माँ खड़ी होकर ताल के साथ हाथ हिला-हिलाकर सबको उत्साहित करने लगी। माँ को उस प्रकार हाथ हिलाते देखकर भक्तों का दल और भी ऊँचे स्वर से नाम-कीर्तन करने लगा। चाँदनी से चारों दिशायें हँस रही थी, उसी में गंगा की कलकल-ध्वनि के साथ नाम की ध्वनि मिलकर कैसी मधुर लग रही थी, उपस्थित सभी लोग उसकी उपलब्धि कर रहे थे। खासकर इस पर्व के उपलक्ष्य में नाना स्थानों से आये हुए लोगों की कीर्तन-ध्वनि सुनायी पड़ रही थी। संन्यासी लोग 'हर-हर गंगे' कहकर गंगा में कूद रहे थे। गंगा के उस पार से साधुओं की शोभा-यात्रा सुबह होने के साथ ही चल रही थी। रात को भी कई दल हाथी, ऊँट और घोड़े सजाकर चले गये थे। हम लोग माँ को साथ लेकर कीर्तन में मत्त हैं, दो-चार आदमियों के ऊपर नाम-रक्षा का भार देकर सब लोग जाकर सो गये। मैं बहुत चेष्टा से दो-चार स्त्रियों को नीचे ले जाकर कीर्तन में शामिल हुई।

* * *

नवाँ अध्याय

सन् 1345 बंगाब्द, वैशाख 1, बृहस्पतिवार– हरिद्वार में पूर्ण कुम्भ हो गया है। माँ अभी यहीं विराज रही हैं। दोपहर को कुछ लोग सामान लेकर बहुत कठिनाई से स्टेशन पहुँचे, परन्तु कुछ घण्टों के बाद बहुत हैरान होकर लौट आये। माँ को लेकर हम दो–चार आदमी डेरे पर थे। बहुत अधिक भीड़ के कारण कोई भी जा न सका। स्टेशन का फाटक बन्द हो गया है। माँ ने एक बार कहा–''कोशिश करो, शहर गरम हो गया है। बीमारी फैल गयी है। इतने अधिक आदमियों को लेकर जहाँ तक शीघ्र हो, यहाँ से निकल जाना आवश्यक है। परन्तु निकलने का कोई उपाय ही नहीं है।'' अन्त में तय हुआ कि रात के 12 बजे मोटर से देहरादून जाया जायेगा।

माँ सन्ध्या के बाद ही छत पर जा बैठी। आज माँ का शरीर कुछ अस्वस्थ मालूम हो रहा है। बहुत देर तक सो न सकी, शायद जाने का भाव जगा है, इस कारण वह पूर्ण न होने तक स्थिर भाव से शरीर पड़ा नहीं रह सका। शाम को कुछ समय तक छत पर लेटी रही, उसके बाद उठ बैठी। चेहरा प्रसन्न था। छत पर गाना गाते हुए टहलने लगी। सभी मोटर की प्रतीक्षा करने लगे। माँ ने हँसकर कहा–''डॉक्टर साहब कितने प्रयत्न से इस 'चिड़िया' को घर में रखकर रात के 10 बजे दरवाजा बन्द कर गये, पर चिड़िया साँकल काटकर बाहर निकली जा रही है।''– कहकर माँ हँसने लगी। रात के लगभग 12 बजे मोटर आयी। सारा प्रबन्ध करके रात के लगभग ढाई बजे हम लोग चल पड़े। दूसरे लोग मोटर बस से सहारनपुर होकर देहरादून के लिए चल पड़े। माँ की मोटर में मैं, हरीराम जोशी, रायबहादुर सुरेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय और उनकी कन्या ननी देहरादून आये। हम जंगल के भीतर से आये। हिरणों और खरगोशों के झुण्ड दिखायी पड़ने लगे। सुना है कि इस जंगल में बाघ और हाथी भी हैं। अंगरेज लाट साहब साल में दो बार इस जंगल में शिकार के लिए आया करते हैं। माँ का शरीर बहुत अस्वस्थ था, परन्तु इस तरह प्रबन्ध करके न निकलते तो अनेक असुविधायें होती।

देहरादून वापस

वैशाख 2, शुक्रवार– आज भोर साढ़े पाँच बजे हम लोग आश्रम आ पहुँचे। माँ को ज्वर हो गया है। परन्तु चेहरा प्रफुल्ल है। माँ की अवस्था देखकर हमें भय हो रहा है क्योंकि उनका शरीर बहुत ही दुर्बल है। अब उसके ऊपर ज्वर हो गया है। दिन के 9 बजे भोलानाथजी सबको लेकर आ पहुँचे। आश्रम के सामने के छोटे मकान को किराये पर लेकर जमशेदपुर के डॉक्टर यतीश बाबू सपरिवार ठहरे हैं। माँ को पाकर उन्हें बहुत ही आनन्द हुआ। आश्रम के निकट एक दूसरा बड़ा मकान किराये पर लिया गया। गृहस्थ भक्त सभी आकर वहीं ठहर गये।

दोपहर को बात-बात में माँ ने कहा–"जब तक भाषा है तब तक ही कर्म है और जब तक कर्म है तब तक ही भाषा है।"

माँ का शरीर अस्वस्थ रहने के कारण भीड़ अधिक न हो, इसलिए अधिक समय तक दरवाजा बन्द रखा जाता है। दिन-रात ज्वर चल रहा है।

वैशाख 3, शनिवार– आज सुबह सब लोग माँ के पास बैठे हुए हैं। एकाएक शची बाबू ने कहा–"रायबहादुर कलकत्ते से निश्चय कर आये थे कि अब की बार माँ को लेकर मसूरी जायेंगे।" माँ झट बोल उठी–"बहुत अच्छा, अभी जाने की तैयारी करो।" परन्तु रायबहादुर माँ की इस अस्वस्थ अवस्था को देखकर अभी उन्हें मसूरी ले जाना नहीं चाहते थे। अन्त में माँ ने कहा–"मैं अच्छी ही रहूँगी। तुम लोग देख लेना। चलो, वहीं चल चलें।" माँ का उत्साह पाकर प्राय: 16 व्यक्ति माँ को लेकर दिन के 11 बजे मसूरी के लिए रवाना हो गये। शाम को 4 बजे वहाँ से सब लोग देहरादून लौट आये। यथार्थ में देखा गया कि माँ कुछ अच्छी ही हैं। सन्ध्या 6 बजे रायबहादुर, शची बाबू आदि कलकत्ते चले गये।

वैशाख 4, रविवार– खबर मिली कि सबको साथ लेकर माँ के हरिद्वार छोड़ने के बाद ही वहाँ भयंकर दुर्घटना हो गयी है। आग लगकर अनेकों का सर्वनाश हो गया है। पुलिस के साथ सेवा समिति के सदस्यों की मारपीट हो गयी है। खबर पाकर उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री **गोविन्दवल्लभ पन्त** हरिद्वार आकर डॉक्टर पीताम्बर पन्त के घर पधारे हैं। वह मकान पुलिस आदि से भर गया है। यदि माँ पहले ही वह मकान छोड़ न आती तो बहुत ही असुविधा में

पड़ना पड़ता। हरिद्वार में इस प्रकार की घटना का आभास पाकर ही माँ क्यों सबको लेकर उस भीड़ में से निकल आयी हैं, उसका कारण सभी लोग समझ गये। इन सब बातों को सुनकर माँ धीरे-धीरे हँसने लगी।

आज बहुत कष्ट से प्राणकुमार बाबू सपरिवार हरिद्वार से यहाँ आ पहुँचे हैं। वे पीत कोठी में हमारे साथ नहीं थे, दूसरी जगह थे। इस कारण हमारे साथ नहीं आ सके। हरिद्वार में इतनी अधिक भीड़ थी कि कोई किसी को खबर नहीं दे सका। साँस रुँध जाने की हालत थी। जहाँ-तहाँ लोग मर रहे थे। शुरू से जैसी शृंखला से शान्ति-रक्षा का काम चल रहा था, अन्त तक वैसी शृंखला कायम नहीं रखी जा सकी। एक भयंकर अवस्था उत्पन्न हो गयी।

वैशाख 6, मंगलवार– आज माँ का ज्वर कुछ कम गया है। कुछ अच्छी मालूम हो रही हैं। मालिश, सेंक आदि बन्द कर दिया गया है। माँ ने कहा- ''बहुत दिनों तक ही तो करके देखा, अब बन्द कर दो।''

माँ तीसरे पहर उठकर बरामदे में जा बैठी। 'नामघर' में कोई-कोई बैठकर नाम-गान करने लगे। रोज ही सुबह-शाम कीर्तन होता है। बात-बात में भूपति दादा ने कहा-'माँ, उस दिन आपने कहा था कि कुछ भी नष्ट नहीं होता है।'' माँ ने उत्तर दिया-''कुछ भी नष्ट नहीं होता, केवल रूपान्तरित हो जाता है। कैसा है, जानते हो? जैसे बीज से वृक्ष बना और वह बीज नष्ट हो गया। परन्तु उससे उसी ढंग के हजारों बीज उत्पन्न हो गये। फिर नष्ट सभी होते हैं, और कुछ भी नष्ट नहीं होता-दोनों ही ठीक हैं।''

फिर किसी बात पर माँ ने कहा-''जैसे तुम लोगों को देख रही हूँ, वैसे ही रोग की मूर्तियों को भी प्रत्यक्ष देखती हूँ-दिन-रात लेटे-बैठे कैसे ही क्यों न रहूँ।'' माँ को विश्राम लेते हुए देखने पर भी यथार्थ में माँ को विश्राम नहीं होता, उसी को कह रही थी।

वैशाख 9, शुक्रवार– आज माँ कुछ देर में उठी। कुछ लोग एकान्त में माँ के साथ बातचीत करने लगे। दोपहर को 11 बजे माँ का भोग हुआ। कई मेमें माँ से भेंट करने आयी हैं। 12 बजे तक सभी लोग माँ के पास बैठकर तरह-तरह की बातें करते रहे। 12 बजे के बाद कमरा खाली कर दिया गया और माँ आराम करने के लिए लेट गयी।

तीसरे पहर माँ बाहर थोड़ा टहलने लगी। कुछ लोग दर्शन करने आये। बिहार के गिधौड़ की रानी आज शाम को माँ के दर्शन करने आयी। यह सोलन राजा की सम्बन्धी हैं।

वैशाख 10, शनिवार– आज तीसरे पहर संज्ञा देवी की मोटर से माँ को लेकर मैं घूमने निकली। आज हरीराम बीमार है। उसके घर के सामने मोटर रुकी। माँ को घर में पाकर उसने धीरे-धीरे उतर आकर माँ का दर्शन किया। उसके बाद काशी बाबू के डेरे पर रुककर तथा मनोहर मन्दिर घूमकर आश्रम लौट आयी। आज श्रीयुत् यतीशचन्द्र गुहा तथा प्राणकुमार बसु आदि के सपरिवार कलकत्ते रवाना होने की बात थी। किन्तु प्राणकुमार बाबू की सास के बहुत ही अस्वस्थ हो जाने के कारण और ठीक समय पर गाड़ी न आने से जाना नहीं हुआ। कल जाने का निश्चय हुआ।

वैशाख 11, रविवार– सुबह माँ के उठने पर कुछ लोग उन्हें लेकर रास्ते में थोड़ा टहलने के लिए निकल गये। माँ का शरीर दुर्बल है, इस कारण थोड़ा चलकर ही लौट आकर अपने कमरे में बैठ गयी। आजकल माँ दूध-रोटी ही खा रही हैं। और सब खाना बन्द है। माँ ने कहा–''इस प्रकार स्वाभाविक भाव से तुम लोग खिलाओगे तो यह शरीर तुम्हारी दृष्टि में अच्छा नहीं रहेगा।'' माँ अपने भाव से बहुत ही थोड़ा खाती हैं। चावल, तरकारी, फल आदि प्राय: सभी बन्द हैं। हाथ में दर्द है। लोगों के कहने से दोनों हाथ गरम रखने की व्यवस्था करती हैं। फिर सब खोलकर फेंक देती हैं। कहती हैं–''इतने दिनों तक तो तुम लोगों ने सारी व्यवस्था की है अब खुली हवा में रहने दो।''

अब हरिद्वार की बात याद आयी। भोलानाथजी जब फूलों की माला और चन्दन से सजकर दलबल के साथ कीर्तन करते हुए निकलते हैं तो उन्हें कीर्तन के भावावेश में बहुत ही सुन्दर दिखायी देता है। यथार्थ में ही वे कीर्तन में गम्भीर आनन्द पाते हैं। रास्ते में दल-के-दल लोग उनकी चरण-धूलि लेने के लिए हाथ फैलाते हैं। कुम्भ-स्नान के दिन भी भोलानाथजी जब दलबल के साथ ब्रह्मकुण्ड में स्नान करने के लिए उतरे तो नागा संन्यासी लोग आकर उन्हें स्नान कराने लगे। भोलानाथजी के भीतर उन लोगों ने किस दिव्य रूप का दर्शन किया, वह स्वयं भी नहीं जानते थे। सेवा समिति के लड़के भोलानाथजी को उन लोगों के हाथ से बचाने के लिए आये। किन्तु

नागा संन्यासी उन्हें छोड़ना नहीं चाहते थे। वे सब लोग मिलकर महान् आनन्द से भोलानाथजी को स्नान कराने लगे। भोलानाथजी कहते हैं–''उस अवस्था में पड़कर मेरे मन की कैसी अवस्था हुई थी, वह मैं बता नहीं सकता। मैं कहाँ था, इसका भी निश्चय नहीं कर सका।'' रोज ही भोलानाथजी कीर्तन का दल लेकर निकलते थे। यह मैंने पहले ही बताया है। भोर 6 बजे माँ जाकर आँगन में खड़ी होती उनके सामने थोड़ी देर नाम-गान करके भोलानाथजी दलबल लेकर निकल पड़ते। रास्तें में उनके दल में मिलकर अनेक लोग कीर्तन में शामिल होते। लगभग तीन घंटे तक कीर्तन करते हुए वे लौट आते। कीर्तन में उनकी क्लान्ति या विरक्ति नहीं है। महान् आनन्द से कीर्तन करते हुए वह लगातार नृत्य करते रहते।

आज सुबह साढ़े नौ बजे दो ब्रह्मचारी (सन्तदास बाबाजी के शिष्य) माँ के दर्शनों के लिए आये। वे मसूरी जा रहे हैं। एक ने कहा–वह करीब नौ साल से गृहस्थी छोड़कर साधु हो गये हैं। घर में रहते समय वह बीच-बीच में कामाख्या और वशिष्ठाश्रम आदि स्थानों पर जाकर एकाग्रचित्त से ध्यान-जप करते थे। उस समय अनेक हरिण उनके पास आकर खड़े होते थे। उन्होंने सोचा–जब गृहस्थ रहते हुए थोड़ा जप करने से ही इस तरह हरिण आदि आकर पास खड़े हो जाते हैं तो सब छोड़-छाड़कर भगवान् का नाम लेते हुए निकल जाने पर शायद बाघ, भालू आदि हिंसक जन्तु भी हिंसा भूलकर पास आएँगे। किन्तु फिर कहते हैं कि वह गम्भीर भाव अब नहीं है। दूसरे ब्रह्मचारी के काठ का कौपिन है। वह भी आठ साल से घर छोड़ आये हैं। दोनों ही आज हमारे आश्रम में ठहर गये।

आज तीसरे पहर काशी बाबू की पत्नी लक्ष्मीरानी आयी हैं। गत परसों पेट की बीमारी से उनका शरीर बहुत ही अस्वस्थ हो गया था। आज माँ के पास आकर उन्होंने एक अद्भुत घटना की बात बतायी। उन्होंने कहा–''माँ, बीमारी के पहले दिन रात को मैंने स्वप्न में देखा कि एक काली-मूर्ति आ रही है। वह मूर्ति बहुत भयंकर नहीं थी, बल्कि उज्ज्वल-मानो चमक रही थी। वह मूर्ति आपके सामने आकर हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी। मैंने समझा, ऐसी सुन्दर मूर्ति महादेवजी की ही होगी, परन्तु सर्प कहाँ है? इतने में ही उस मूर्ति ने आँख के इशारे से आपका कोई आदेश प्राप्त कर लिया और वह आदेश मानो मेरे ही बारे में था। आप भी स्थिर भाव से बैठी थी और उसी

तरह आँख के इशारे से ही मानो आपने आदेश दिया। आदेश पाते ही उस मूर्ति ने अपना जोड़ा हुआ हाथ खोल दिया और एकाएक एक भयंकर सर्प निकल आया। उसका मुख बहुत बड़ा था। उस सर्प के निकलने से पहले ही वह काली-मूर्ति गायब हो गयी। उस सर्प ने निकलते ही मेरे वस्त्र खाना शुरू कर दिया। इतने अधिक वस्त्र मुँह में खींचता गया मानो सब खा डालेगा। आप स्थिर भाव से बैठी देख रही थी। तब मैं डर से चिल्ला उठी-'माँ, आप बैठी देख रही हैं और मुझे साँप खाता जा रहा है। मुझे बचाइये, मुझे बचाइये।' कातर भाव से चिल्लाने के बाद वह सर्प मूर्ति भी गायब हो गयी। मेरी नींद खुल गयी। नींद खुल जाने के बाद मुझे ऐसा लगा मानो यमराज आये थे। माँ की कृपा से मैं बच गयी। शायद मुझे कोई कठिन रोग होगा। किन्तु मैं नहीं मरूँगी, अच्छी हो जाऊँगी। वैसा ही हुआ। दूसरे दिन सुबह से ही एकाएक कठिन रोग हुआ मानो हाथ-पैर टूटते जा रहे थे। परन्तु अगले दिन ही मैं अच्छी हो गयी।'' माँ इस घटना को सुनकर थोड़ा हँसी। मैंने कहा-''तुमने जिस मूर्ति की बात बतायी, चित्र में यमराज की मूर्ति वैसी ही दिखायी पड़ती है।''

इस घटना से मेरे मन में ऐसा भाव उत्पन्न हुआ कि धर्मराज ने अपना काम करने के लिए माँ का आदेश माँगा। माँ की आज्ञा पाकर महाकाल सर्प रूप में आकर निगलने लगे और माँ द्रष्टा बनकर निर्विकार भाव से बैठे हुए इस ध्वंस लीला को देख रही थी। किसी प्रकार का विकार उनमें नहीं आ सकता। इस भाव का चिंतन करने से भी चंचल चित्त स्थिर हो जाता है। फिर प्रार्थना का भी फल आपने दिखा दिया। वे सब भाव नित्य पुरुष में ही संभव हैं। जैसे गीता में भगवान् ने कहा है-''**मैं सब कुछ करता हूँ, फिर कुछ भी नहीं करता।**'' ये दोनों विपरीत भाव एक साथ माँ के भीतर ही दिखायी पड़ सकते हैं। ऐसी लीला हर समय माँ के भीतर होती रहती हैं। परन्तु हर समय हम लोग उसे समझ नहीं सकते।

शाम को 6 बजे श्रीयुत् यतीशचन्द्र गुहा आदि सभी चले गये। बीमार बुढ़िया को बहुत मुश्किल से मोटर में चढ़ाकर आश्रम के दरवाजे पर लाने से पहले ही माँ ने मुझसे कहा-''रोग भी उन्हीं का एक रूप है। चलो, हम भी रोग का रूप देख आवें।'' इतना कहकर हमें लेकर रास्ते के पास जाकर खड़ी होते ही मोटर आकर सामने रुक गयी। बुढ़िया के बहुत कहने पर माँ

मोटर में चढ़ी। उन्होंने माँ के पैर की धूल ली। माँ का हाथ खींचकर अपने सिर और शरीर पर स्पर्श करा दिया। माँ ने कहा–''विश्वनाथजी का स्मरण करते हुए जाना।'' उन्हें काशी ले जाया जा रहा है। उनके चले जाने के बाद संज्ञा देवी आयी। उनकी लड़की और दामाद भी मोटर में साथ आये हैं। आज भी माँ को मैं उसी मोटर से मसूरी के रास्ते में कुछ दूर तक घुमा लायी। गुजराती व्यासजी दो दिन हुए यूरोप से लौटकर यहाँ आये हैं। सन्ध्या के बाद वे माँ के साथ बात करने बैठे।

जाते समय सबके, खासकर बूनी के रुदन से बहुतों के नेत्रों में आँसू आ गये। माँ ने कहा–''मैं हँस रही हूँ, मेरे लिए तुम रोते क्यों हो?'' फिर दूसरे दिन बेलू आदि के जाते समय हँसते हुए माँ ने कहा–''तुम लोग रो रहे हो और मैं हँस रही हूँ दोनों एक ही बात हैं।'' इस बात से बेलू की रुलाई और भी बढ़ गयी। उसने देखा कि माँ की आँखे भी डबडबायी हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि ढाका लौट जाने पर भी उसे गृहस्थी अच्छी नहीं लगती थी। माँ की दोनों डबडबायी आँखें याद आती थी और वह चाहती थी कि सब छोड़–छाड़कर माँ के पास चली जाये। माँ के भीतर कितने प्रकार के भावों का आकर्षण है, उसे समझना मनुष्य के सामर्थ्य से बाहर है, तो भी हम लोग दूर हट जाना चाहते हैं। कैसा दुर्भाग्य है। ऐसा मौका पाकर भी हम उसे यों ही खो रहे हैं। माँ कितने भावों से लोगों पर कृपा बरसा रही हैं, उसे समझने की शक्ति कहाँ है?

आज तीसरे पहर बात–बात में मैंने कहा–''माँ सब कुछ लेना चाहती हैं।'' माँ ने हँसकर कहा–''देता कौन है? अपना सब कुछ ठीक रखकर जो कुछ बचता है उसमें से भी थोड़ा अंश देता है या नहीं, इसमें भी सन्देह है।'' सभी इस बात की सत्यता को हृदय से अनुभव करने लगे।

श्रीयुत् कुंजमोहन मुखोपाध्याय महाशय का नाम माँ ने **तुरीयानन्द स्वामी** रखा था, परन्तु शास्त्र विधि के अनुसार विरजा होम आदि करके संन्यास ग्रहण नहीं हुआ है। इस कारण आज दो दिन हुए माँ ने उन्हें यथाशास्त्र विरजा होम आदि करके संन्यास लेने के लिए कनखल में मंगलानन्द गिरि के आश्रम में भेज दिया है। आज सुबह माँ के कहने से उनका संन्यास ग्रहण देखने के लिए भोलानाथजी और अखण्डानन्दजी स्वामी वहाँ पहुँचे। आज ही शेष–रात्रि में उनका संन्यास ग्रहण करना निश्चित हुआ है। भोलानाथजी का

शरीर कुछ अस्वस्थ रहने के कारण माँ ने उन्हें न जाने के लिए कहा, परन्तु वह जाने के लिए तैयार हो गये। माँ ने मुझसे एकान्त में कहा-"भोलानाथ को एक रोग लग गया है।" मैंने कहा-"तो मैं उन्हें रोक दूँ?" माँ ने कहा-"फल नहीं होगा। निश्चय जायेगा और रोग भी अवश्य ही होगा।" इतना कहकर फिर आँख मूँदे लेटी रही। इससे कुछ दिनों पहले एक बार माँ ने कहा था-"तुम्हारी दृष्टि में एक बड़ी विपत्ति आ रही है।"

वैशाख 12, सोमवार- आज सुबह माँ उठी हैं। मुँह धुलाकर कुछ दूध पिला दिया गया। इतने में हरिद्वार से बाबा भोलानाथजी, अखण्डानन्द स्वामी, तुरीयानन्द स्वामी, शान्ति आदि आ पहुँचे। कल ही संन्यास ग्रहण हो गया है। भोलानाथजी बहुत बीमार होकर आये हैं। उन्हें ज्वर तथा पेट में दर्द हो रहा है।

श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग

श्रीयुत् अमूल्यचन्द्र दत्त गुप्त महाशय ने **"श्री श्री माँ आनन्दमयी प्रसंग"** नाम से माँ के सम्बन्ध की एक पुस्तक छपवायी है। आज डाक से उसकी एक प्रति यहाँ आयी है। दोपहर को वह पुस्तक मैं माँ को पढ़कर सुना रही थी। बहुत अच्छी पुस्तक हुई है। अमूल्य दादा माँ का दर्शन पाते ही कुछ न कुछ प्रश्न पूछा करते हैं। माँ भी उनकी बातें सुनना पसन्द करती हैं। वह गम्भीर स्वभाव के व्यक्ति हैं। वृथा बात में सहयोग नहीं देते। उनके उपस्थित रहते अच्छी-अच्छी बातें होती हैं। उनकी लिखी हुई पुस्तक मैं माँ को पढ़कर सुनाती हूँ। स्थान-स्थान पर कुछ भूलें रह गयी हैं। इसमें उनका दोष नहीं है। माँ का चरित्र लिखते हुए सभी को भूल होना स्वाभाविक है, क्योंकि अपने भाव और अपनी भाषा, इच्छा न रहते हुए भी अपने आप आ पड़ती है।

उस पुस्तक के एक स्थान पर लिखा है-

माँ कहती हैं-"मुझे भावावेश हुआ।" परन्तु माँ ऐसा नहीं कहती, कहती हैं-"न जाने शरीर कैसा हो गया?" मैं हँसकर बोली-"माँ उतनी ही हमारी अपनी भाषा हो गयी है।" माँ ने कहा-"मुझसे तो ऐसी भाषा नहीं निकलती। भावावेश यदि कहो तो, हर समय ही एक न एक भावावेश है ही-जैसे तुम लोगों के साथ जब तुम्हारी ही तरह होकर बात करती हूँ तब वही एक भावावेश है। तुम लोग जिस समय जो भाव सामने लाते हो, यह शरीर भी

उस समय उसी भाव में भावित हो जाता है। भक्तियोग की बात कहो, कर्मयोग की बात कहो, ज्ञानयोग की बात कहो अथवा किसी भी सांसारिक भाव की बात ही कहो, उस भाव के साथ यह शरीर योगदान देता जाता है। बात में और शारीरिक आकार में भी वही भाव खिल उठता है, इस कारण तुम लोग देखते हो कि माँ का एक-एक समय एक-एक भाव है। असल में तुम लोग जो भाव सामने लाते हो, इस शरीर को उसी भाव में भावान्वित देखते हो। इस कारण सभी तो भावावेश हैं।

उस पुस्तक के एक दूसरे स्थान पर लिखा है-माँ कहती हैं-''मैं खुद भी उसे नहीं जानती थी।'' ऐसा भी माँ नहीं कहती। ''मैं नहीं जानती'' इस बात पर अभी माँ कह रही थी-''इसे क्यों कहती हूँ, जानती हो? शायद वह बात तुम लोगों के सामने कहना उचित नहीं है। इस कारण मैं कहती हूँ-''तुम लोग नहीं कहला लेते हो या मैं कह नहीं सकती अर्थात् कहा नहीं जायेगा। 'नहीं जानती' ऐसी बात कभी कही नहीं गयी है। जिस बात को कहा नहीं जायेगा, उसे हटाकर रख दिया गया, बस।'' इतना कहकर माँ मन्द-मन्द हँसने लगी। वास्तव में इस बात का प्रमाण हम लोगों ने अनेक बार पाया है। न कहने लायक होने पर माँ उस बात को 'बस' कहकर छोड़ देती हैं। अपनी भाषा में हम लोग क्या-क्या कह डालते हैं, उसे माँ भी नहीं जानती। उनका चरित्र बड़ा ही दुर्बोध्य है।

उस पुस्तक के एक स्थान पर काली-पूजा का इतिहास लिखा है। सुनते-सुनते माँ ने कहा-''यथार्थ में ही देखती हूँ कि जैसे छोटा बच्चा माँ की गोद में कूद पड़ता है उसी प्रकार काली-मूर्ति मेरी गोद में आकर बैठ गयी। मैं भी बच्चों की तरह उसे पुचकारने लगी। अच्छा, बताओ तो, ये सब क्या है। यह तो एक मनुष्य का शरीर है और वह क्या करता है? ब्रह्ममयी काली को बच्ची की तरह गोदी में लिए प्यार करता है।'' इतना कहकर हास्यमयी माँ शिशु की तरह मेरी ओर देखने लगी। फिर कहने लगी-''देखो, मैंने देखा था चलती हुई काली-मूर्ति को, परन्तु शिवजी नहीं थे। उसका आशय क्या है, जानती हो? यह तो आद्याशक्ति हैं। मैंने बहुतों से पूछा था कि काली के नीचे शिवजी किस अवस्था में नहीं रहते, परन्तु कोई भी उत्तर न दे सका। क्यों ऐसी मूर्ति देखी, जानती हो? मैंने पहले ही कहा है कि तुम लोग जिस भाव को सामने लाते हो उसी के अनुसार यह शरीर भी वैसा ही हो जाता है

और बात कहता है। उन-उन भावों का पूर्ण प्रकाश मानो इस शरीर के भीतर से हो जाता है। दिवाली आ गई, उस दिन रात को काली-पूजा के लिए तुम लोग इस शरीर से प्रार्थना करने लगे। इस कारण आद्याशक्ति का रूप काली-मूर्ति में प्रकट हुआ।'' उनके मन में किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प नहीं है। इस कारण माँ कहती हैं-''तुम लोग जिस भाव को सामने लाते हो, उसी भाव का खेल इस शरीर में होता रहता है।'' कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि महापुरुषों में समाधि के टूट जाने पर जो सांसारिक भाव प्रबल रहता है, उसी भाव की बात निकलती रहती है। माँ के भीतर वैसा कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। सभी भाव जब खिल उठते हैं, जब बीमार पड़ती हैं तो रोग का भाव ही क्यों न खिल उठेगा? वह भी पूरी मात्रा में खिल उठता है। ज्वर 107 डिग्री चढ़ा, आँखों से कुछ नहीं सूझता, कानों से कुछ नहीं सुनायी पड़ता, सिर के भीतर मानो रेल का इंजन चल रहा है परन्तु बाहर किसी भाव की प्रबलता नहीं है। इस कारण यद्यपि कुछ बातें उस अवस्था में कहती हैं वह बात पूर्व क्षण में जो कुछ किया था, केवल उतना ही, दो एक बात शायद कभी बतायी, नहीं तो और कोई बात नहीं कहती। किसी प्रकार भाव में परिवर्तन नहीं देखा गया।

भोलानाथजी की अस्वस्थता

वैशाख 13, मंगलवार- आज भी भोलानाथजी अस्वस्थ हैं। माँ ने कल ही कह दिया था-''भोर में तुम लोग मुझे घर में अकेले ही बन्द कर देना। जब चाहूँ, मैं उठूँगी।'' वैसा ही किया गया है। भोर से ही माँ के घर का दरवाजा बन्द कर दिया गया है।

लगभग 9 बजे माँ उठी। उसके बाद हाथ-मुँह धोकर थोड़ा टहली। धीरे-धीरे लोग आकर माँ के चारों ओर बैठ गये। दिन के 10 बजे माँ का भोग हुआ। 12 बजे माँ के कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया गया।

मैं अमूल्य दादा की लिखी पुस्तक को आज भी थोड़ा पढ़कर माँ को सुना रही हूँ। साँप की घटना सुन रही हैं। हर समय ध्यान देकर सुन भी नहीं रही हैं। एकाएक बोल उठी-''तुम क्या पढ़ रही हो? मैंने तो सुना नहीं है'' इतना कहकर हँसने लगी। विद्याकूट से लौटते समय रास्ते में साँप के साथ नाव में भेंट की बात पढ़ रही हूँ। माँ कहती हैं-''सच, कैसा आश्चर्य! देखा

न था? नौका चल रही थी, पर साँप नौका से ठीक दस हाथ दूर रहकर तैरता चल रहा था, बहुत दूर भी नहीं, पास भी नहीं, इधर-उधर भी नहीं, एकदम मेरे बराबर दस हाथ दूर रहकर आ रहा था। गतिशील नौका के साथ उसने अपनी गति का वेग भी ठीक रखा था। सन्ध्या होते-होते वह मेरे सामने आया था।'' उसके बाद जब बीरेन दादा ने अनेक बार पूछा-''वह साँप कौन था माँ?'' तो माँ ने उत्तर दिया-''मैं देखती थी कि दस हाथ ऊपर एक साधु और उसके साथ उसका चेला।''

आज पुस्तक पढ़ते हुए मैंने पूछा-''माँ, तुम प्राय: कहा करती हो-तुम लोग शायद मुझे विश्राम लेने के लिए लिटाकर रख जाते हो। तुम लोग देखते हो कि यह शरीर पड़ा हुआ है, परन्तु वैसा नहीं है। प्राय: अनेक प्रकार की आत्मा सूक्ष्म भाव से आती हैं। जिस प्रकार तुम लोगों से बातचीत करती हूँ, ठीक उसी प्रकार उन लोगों से भी व्यवहार करती हूँ। थोड़ा भी अन्तर नहीं है। इस कारण विश्राम कहने से तुम लोग जैसा समझते हो, वह नहीं होता। फिर हर समय तुम्हारे जैसे वे लोग चंचलता प्रकट नहीं करते, तब मैं भी चुप रहती हूँ।'' मैंने पूछा-''उस प्रकार के जीवों का स्वरूप कैसा है? क्या वे हमारे जैसे हाथ-पैर वाले हैं? अथवा वायु में गन्ध की तरह उनके आगमन की सूचना पहले ही मिल जाती है?'' माँ ने कहा-''सब प्रकार की हैं-एकदम तुम्हारे जैसे हाथ-पैर वाले भी हैं, फिर वायु में गन्ध की तरह, तुमने जो अभी बताया वैसे भी हैं। फिर शायद केवल बात ही सुनायी पड़ती है, और कुछ नहीं, फिर कभी बात भी नहीं, उनकी उपस्थिति केवल अनुभव की वस्तुं है, इस तरह अनके प्रकार के हैं। तुम लोग कह सकते हो कि जब हम लोग नहीं देखते तो तुम्हारे कहने से क्या होगा? बहुत से लोग इस ढंग की बात पूछते हैं। परन्तु उत्तर यह है कि तुम लोग यदि देख ही सकते तो तुम लोग भी उसी स्तर में होते। इस निम्न स्तर में रहकर तुम लोग कैसे उन्हें देखोगे? जैसे जल में कितने ही छोटे-छोटे कीट हैं, वायु में भी कितने ही कीट हैं जिन्हें तुम लोग अपनी आँखों से नहीं देख सकते। परन्तु डॉक्टर लोग यन्त्र की सहायता से उन्हें देखते हैं। क्या तुम लोग उस पर अविश्वास कर सकते हो? डॉक्टर उन्हें देखने के लिए सालों तक साधना करते आये हैं। इस कारण उन्हें उनके बारे में ज्ञान हुआ है। वे जानते हैं कि ऐसे सूक्ष्मदर्शक यंत्र से जल और वायु के इन सूक्ष्म जीवाणुओं को देखा जा सकता है। सभी

साधन-सापेक्ष हैं। साधन बिना दृष्टि कैसे खुलेगी?'' इस प्रकार की अनेक बातें हुई।

शाम को 5 बजे अनेक लोग माँ के दर्शनों के लिए आये। माँ अपने कमरे में बिछौने पर बैठी हुई हैं। साढ़े छ: बजे मैंने माँ से कहा-''माँ, बाहर जरा टहलने चलो।'' माँ उठकर बाहर थोड़ा टहलने लगी। भोलानाथजी को लगातार ओकाई आ रही है, दो दिनों से ऐसा ही चल रहा है। माँ टहलते हुए उनके कमरे में भी गयी, फिर बाहर आकर टहलने लगी। रात के 10 बजे माँ के कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया गया।

वैशाख 14, बुधवार – माँ का शरीर एक ही तरह चल रहा है। भोलानाथजी को बहुत ओकाई आती है तथा माता भी निकल आयी है। माँ आज भी 9 बजे उठ बैठी। संज्ञा देवी आयी हैं। माँ को टपकेश्वर ले जाना चाहती हैं। मोटर लायी है। वह माँ, नानीजी और मनोरमा दीदी को लेकर चली गयी। भोलानाथजी बीमार थे, इस कारण मैं नहीं गयी। वे लगभग साढ़े दस बजे लौट आयी। उसके बाद माँ को भोग दिया गया। माँ प्राय: चावल नहीं खाती हैं, कुछ तरकारी और दूध से माँ का भोग होता है। आज बहुत ही थोड़ा खाया है। खाने के बाद माँ बिछौने पर जा बैठी। उपस्थित लोगों के साथ वार्तालाप करने लगी। दिन के 12 बजे उनके कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया गया।

हम जिस भाव को माँ के सामने उपस्थित करते हैं, माँ प्राय: तत्स्वरूप हो जाती हैं। उसके बारे में कहने लगी-''देखो, इस हाथ के लेख तुम लोगों ने न जाने कितने ही प्रकार से पाये हैं। इसका कारण यह है कि एक बार इस शरीर की जो कुमुदिनी बुआ थी, उनका खेल देखकर उसी तरह लिखने की इच्छा से मैं बैठ गयी तो उन्हीं की तरह छोटे-छोटे अक्षर बनते गये। फिर पिताजी के लेख का स्मरण कर लिखने बैठी तो देखा कि उन्हीं की लिखावट की तरह लेख बनते जा रहे हैं। फिर शायद कभी ऐसा खयाल आया कि छापे के अक्षर की तरह लिखूँगी तो सुन्दर अक्षर बनने लगे। कुछ इधर-उधर होने से पसन्द नहीं आता था। बचपन में अकेली बैठी-बैठी (शुद्धि-अशुद्धि का खयाल नहीं था) उस प्रकार लिखने की चेष्टा होती थी। अब समझ तो गयी लिखने-पढ़ने की पण्डिताई।'' इतना कहकर हँसने लगी।

एक दिन नरुन्दी में हाथ का लेख देखकर लोगों ने सोचा बहू बड़ी विदुषी है। हाथ की लिखावट पढ़ने-लिखने की तुलना में अस्वाभाविक थी। माँ के सभी काम तो इसी प्रकार के होते थे। जिन लोगों ने उसे देखा था, उन्हीं के मुख से सुना है कि माँ के समान घर पोतना या चूल्हा तैयार करना और किसी को नहीं आता था। सभी कामों में मानो उनकी एक विशेषता थी। उस समय भी लोगों ने उसे देखा था, परन्तु जिस ढंग से अब देख रहे हैं, उस ढंग से पहले नहीं देखते थे। मानो माँ भावों की एक गुड़िया है। हम लोगों की इच्छा के अनुसार ही उनके शरीर में नाना प्रकार की क्रियायें होती जा रही है, फिर दिखायी पड़ता है कि माँ इन सबसे परे हैं। सभी भावों का एक में समावेश है। इस कारण जब तक हम कहते-''माँ, अपना रोग हटा दो'' तो माँ हँसकर कहती-''खयाल आने पर अवश्य ही हट जायेगा, परन्तु तुम लोग तो उस खयाल को करा ही नहीं सकते।''

आज भी उसी बात की चर्चा होने लगी। माँ और मैं बैठी थी। बात-बात में माँ ने कहा-''देखो, ऐसा जो कहा जाता है कि मैं अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती, यह इच्छा कैसी है, जानती हो? तुम्हारी जैसी सांसारिक इच्छा या प्रवृत्ति इस शरीर में नहीं होती। उस महान् इच्छा के प्रभाव से ही सब कुछ होते जाते हैं। अत: संक्षेप में कहा जा सकता है कि इच्छा करते ही सब कुछ किया जा सकता है, फिर स्वेच्छा से कुछ भी नहीं करती-ये दोनों बातें ही कही जा सकती हैं। इस भाव में दोनों बातें ही सत्य हैं।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। फिर कहना आरम्भ किया-''यह जो स्वेच्छा से कुछ नहीं कहती, यह भी वह महत्ती इच्छा ही है। इस शरीर में इच्छा और अनिच्छा नाम से कोई बात ही नहीं है। तुम लोग इच्छा और अनिच्छा के भीतर हो, इस कारण इच्छा और अनिच्छा का प्रकाशमात्र है। कैसा कहने से ठीक होगा, बस। कार्य आदि देखकर तुम लोग ऐसा न सोचो कि कोई दूसरी शक्ति आकर करा रही है। उस दिन तुम लोगों ने जो भावावेश समझकर क्या-क्या कहा, इस शरीर में नये-नये भावों का आवेश न समझना। इसमें जो कुछ देखते हो, सभी स्वभाव है। जैसे बात करना, हँसना आदि मनुष्य के स्वाभाविक धर्म हैं यह भी उसी प्रकार है, और क्या? फिर भाव-अभाव नाम से कोई वस्तु ही नहीं है।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

खाने के बाद हम लोग बैठे थे, माँ अपने बचपन की कथा सुनाने

लगी–''एक बार एक सम्बन्धी ने मुझे पैर में पहनने के लिए चाँदी का एक गहना दिया था। मैं पोखरे में नहाने जाकर उसको खोलकर किनारे पर रख दिया था। वहाँ जो लड़की खड़ी थी मैं उसे पहचानती थी। उस गहने को मैं वहीं छोड़कर चली आयी। घर आने पर माँ ने उस गहने को लाने के लिए मुझे फिर उस पोखरे पर भेज दिया। वहाँ जाने पर वह गहना दिखाई नहीं पड़ा। मैंने घर आकर माँ से कहा–''माँ, कोई पैर में पहनने के लिए ले गयी है।'' सुनकर माँ हँस पड़ी। मैंने फिर से कहा–''बचपन से ही तुम्हारी बुद्धि ऐसी ही चल रही है।'' अभी भी यदि कोई कपड़ा दे तो माँ कहती है–''अपना कपड़ा मैंने ले लिया। तुमने क्या समझा कि मुझे कपड़ा दिया?'' फिर जब अपना कपड़ा किसी को दे देती तो माँ कहती हैं–''जिसका कपड़ा था वह पहनने को ले गया।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी हैं।

फिर किसी बात के प्रसंग में माँ ने कहा–''अच्छा देखो, जो एक बार समाधिस्थ हो गया है अर्थात् जिसकी समाधि अवस्था परिपक्व हुई है, उसके विषय में ऐसा क्यों कहा जाता है कि 'वह समाधिस्थ हो गये?''

हम माँ की बातों को यथाशक्ति लिखने की चेष्टा कर रहे हैं, सुनकर माँ हँसकर कहती हैं–''इन बातों को लिखकर क्या करोगी? न जाने कितने महात्मा कितना लिख गये हैं। भगवान् तुम्हें अनके प्रकार से शिक्षा दे रहे हैं। उससे पूरा नहीं हुआ क्या? यह भी तो उसी तरह का एक होगा। नया और क्या लिखोगी? कुछ भी नया नहीं हैं, सभी पुराने हैं।'' इतना कहकर माँ बच्ची की तरह हँसने लगी।

तीसरे पहर रोज की तरह माँ आश्रम के सामने थोड़ा टहलने लगी। लोग चारों ओर खड़े थे। माँ को देख-देखकर किसी को भी तृप्ति नहीं होती थी। सन्ध्या समय माँ बरामदे में आ बैठी। कुछ दर्शनार्थी भी आये हैं। रात के 9 बजे तक माँ बरामदे में ही बैठी रही। 'नाम-घर' में सन्ध्या को कीर्तन आदि रोज की तरह सम्पन्न हुआ। माँ को भोग देने के लिए मैं उठा लायी। कुछ सिझायी हुई तरकारी और एक रोटी खिला दी। उस आसन पर बैठकर ही माँ अपने बचपन की दो-चार कहानियाँ कहने लगी–मैं, नानीजी, भूपति दादा, एक ब्रह्मचारीजी (निगमानन्द स्वामी के एक शिष्य जो कुछ दिनों से माँ के पास आकर रह रहे हैं); यतीश बाबू सपरिवार माँ के चारों ओर बैठकर माँ की मधुर हँसी और कथा सुन रहे हैं। बात-बात में माँ ने कहा–''जब बचपन

में मैं ननिहाल जाया करती थी तो सुबह-शाम हमारे घूमने जाने का समय रहता था। तुम्हारी ये सुशीला मौसी साथ ही रहती थी।'' इतना कहकर उन्होंने मौसीजी को दिखा दिया। उसके बाद हँसते हुए कहा-''एक बात कहती हूँ, सुनो, मुझे खयाल आया, क्या करूँ बताओ। सुबह-शाम जब टहलने जाया करती थी तब गायों के बाहर जाने और घर लौटने का समय होता था, परन्तु उधर खयाल ही नहीं जाता था। परन्तु गायें मेरी ही ओर आती, कोई आकर मेरे शरीर को चाटती। एक ओर जंगल और दूसरी ओर पोखरा, रास्ता बहुत तंग, मैं किसी ओर न जा सकती थी। दूसरे बच्चों की तरह मैं 'गौ आयी, गौ आयी' कहकर चिल्ला उठती। जिस पर भी खड़ी रह जाती। दूर से ये (सुशीला मौसीजी को दिखाकर) सब खड़ी-खड़ी हँसती थी। ये भी तो छोटी-छोटी ही थी। बड़ा आदमी उधर कोई दिखायी नहीं पड़ता था। ऐसा ही काण्ड और क्या।'' कहते-कहते खूब हँसने लगती। जमशेदपुर के डॉक्टर यतीश बाबू की पत्नी ने कहा-''कृष्ण-लीला ही होती थी न?'' माँ सुनते ही घबराकर बोल उठी-''ऐसी बातें नहीं कहनी चाहियें। देवताओं की बात के साथ हँसी-मजाक करना अच्छा नहीं है।'' माँ के चेहरे पर अपूर्व हँसी दिख पड़ी।

सोने से पहले माँ भोलानाथजी को देखने गयी। उस समय भोलानाथजी ने कहा-''देखो, ढाका में मेरी उस भारी बीमारी के समय जैसे एक बार तुमने चूड़ा भिगोकर खिलाया था, उसी तरह खिलाने से शायद मैं कुछ ठण्डा हो सकूँगा।'' इतना कहकर माँ की ओर कातर भाव से देखने लगे। ज्वर, चेचक और वमन के कारण वह चार-पाँच दिनों से बहुत ही कष्ट पा रहे हैं। माँ ने कहा-''अच्छा, वही होगा।'' उसी समय चूड़ा भिगो दिया गया। दूसरे दिन खिलाया जायेगा।

वैशाख 15, बृहस्पतिवार- आज भी माँ लगभग आठ बजे उठ बैठी। मुँह-हाथ धुलाकर मैं माँ को थोड़ा जलपान कराने लगी, इतने में ही भूपति दादा ने आकर खबर दी कि तीन पंजाबी भद्रपुरुष माँ का दर्शन करना चाहते हैं। मैंने माँ का आसन बरामदे में लगा दिया। माँ के जाकर बैठते ही उन लोगों ने आकर प्रणाम किया। एक सज्जन माँ के परिचित थे। उन्होंने कहा-''माँ, मेरे साथ के इस सज्जन ने मुझसे पूछा था-'भगवान् की इच्छा के बिना जब कोई कुछ नहीं कर सकता तो पाप-पुण्य का फल मैं क्यों भोगूँ?' मैंने कहा कि माताजी ही तुम्हारे इस प्रश्न की मीमांसा कर देंगी, इसीलिए इन्हें

आपके पास लाया हूँ।'' माँ ने हँसकर कहा-''भगवान् की इच्छा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता, यह विश्वास तुम्हारे अन्दर स्थिर भाव से है न?'' उन्होंने कहा-''जी हाँ।'' माँ ने कहा-''तब तो पिताजी के पाप-पुण्य का प्रश्न ही नहीं है। परन्तु जब आपके भीतर जिज्ञासा आयी है, तो मैं कहूँगी कि इस बात पर आपको दृढ़ विश्वास नहीं है।'' जब उस व्यक्ति ने माँ की बात का अनुमोदन किया। तब माँ ने कहा-''विश्वास सदा ही अन्धा होता है। प्रत्यक्ष हुआ क्या? नहीं, जैसे मैं आपको देख रही हूँ और आप मुझे देख रहे हैं। पहले अन्धविश्वास लेकर प्रत्यक्ष में जाना पड़ता है। पढ़ना चाहिए पिताजी। पढ़ना क्या है? बाहरी पुस्तक पढ़ने की बात मैं नहीं कहती। बाहरी पुस्तक पढ़ने से जिस प्रकार बाहरी विषय का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, मूर्ख शिशु भी पण्डित-विद्वान हो जाता है, उसी प्रकार हर एक मनुष्य के भीतर एक-एक पुस्तक है, उसे पढ़ने की चेष्टा कीजिये। उसे पढ़ने पर किसी विषय में सन्देह नहीं रहेगा, मन में प्रश्न भी नहीं उठेगा। अब जिस विषय में प्रश्न कर रहे हैं, उस विषय को आप स्वयं ही समझ सकेंगे।''

आज भोलानाथजी को कल जो चूड़ा भिगोया गया था उसका शर्बत बनाकर दिया गया। पिलाते समय माँ उसी कमरे के भीतर आकर खड़ी हो गयी थी। टहलते-टहलते कभी-कभी माँ भोलानाथजी के कमरे में चली जाया करती थी। आज पिलाते समय भी माँ उस कमरे में गई थी। पिलाने के बाद माँ ने कहा-''यहाँ बहुत आदमी न रहें।'' रोगी से कहा-''अब चुपचाप पड़े रहो।''

वैशाख 16, शुक्रवार- आज सुबह मैं सबको बुलाकर भोर 6 बजे 'नाम-घर' में जा बैठी। आधे घण्टे तब सब लोग स्थिर भाव से भगवान् के ध्यान में चुपचाप बैठे रहे। कोई चाहे तो वह और भी अधिक समय तक वहाँ ध्यान कर सकता है। हम लोगों के 'नाम-घर' से उठ आने के पहले ही माँ बाहर आकर बरामदे में टहलने लगी थी। समय पूरा होने पर हम लोग चले आये। कुछ लोग वहीं रह गये। माँ उठ आयी हैं यह जानकर ही मैं निकल आयी। माँ का मुँह धुला देना होगा, इस चिन्ता ने मुझे 'नाम-घर' में अधिक देर तक बैठने नहीं दिया। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि माँ की थोड़ी सेवा करने पर मुझे जिस प्रकार आनन्द होता है, ध्यान-जप में उस प्रकार आनन्द नहीं मिलता। मैं इतना तो अवश्य समझती हूँ कि ध्यान-जप ही माँ की बड़ी

सेवा है और उसी से माँ का शरीर पुष्ट होता है। किन्तु हर आदमी हर काम के योग्य नहीं होता। एक-एक का संस्कार ही एक-एक प्रकार का है।

भोलानाथजी की हालत बहुत ही नाजुक हो गयी है। सारा शरीर और चेहरा फूल गया है। दर्द के मारे रात को नींद नहीं आती। सभी का चित्त दुःखी है। बीच-बीच में माँ जाकर देख आती हैं।

तीसरे पहर माँ के दर्शनार्थी लोग आते हैं। श्रीयुत् फणिभूषण चट्टोपाध्याय एम.ए., एल.एल.बी., एल.टी. (अवसर-प्राप्त प्राफेसर) महाशय रोज ही तीसरे पहर आते हैं। अनेक बातें होती हैं। रहस्यमयी माँ कभी-कभी हँसी-मजाक भी करती हैं। फिर कभी स्थिर, धीर और गम्भीर हो जाती हैं। उस समय सामने जाकर बात करने का भी हमें साहस नहीं होता। फिर कभी ऐसा कौतुक करती हैं कि गम्भीर स्वभाव के मनुष्य अथवा जो लोग नये आये हैं उनमें किसी को भी संकोच नहीं रहता। सभी माँ के सामने उस समय के लिए न जाने कैसे हो जाते हैं। अब की बार हरिद्वार के कुम्भ मेले में श्रीयुत् विनयभूषण सेन महाशय अपनी पत्नी के साथ माँ के पास आये थे। एक दिन रात को माँ अपने बिछौने पर बैठी थी। घर में बहुत से लोग थे।

इतने में विनय दादा की पत्नी एक थाली में कुछ मिठाई और फल माँ के लिये लायी। आज पति-पत्नी दोनों व्रत कर रहे हैं; प्रसाद होने पर भोजन करेंगे। थाली को माँ के बिछौने के पास एक छोटी चौकी पर रखकर जल लाने के लिए उनके निकल जाते ही माँ ने विनय दादा से कहा-"तुम थोड़ी-सी मिठाई मेरे मुँह में दो, फिर थाली को हटा ले जाओ। देखूँ, माँ आकर क्या कहती है?" हँसते हुए ऐसी जल्दी से माँ ने इन बातों को कहा कि विनय दादा को कुछ सोचने का अवसर ही नहीं मिला। उसी समय उठकर थोड़ी मिठाई माँ के मुँह में देते ही उन्होंने कहा-"और कुछ नहीं। अब जल्दी-जल्दी थाली को हटा ले जाओ। माँ आ पड़ेगी।" इतनी व्यस्तता का भाव, मानो एक लड़की को शरारत करने का मौका मिल गया है। थाली को उठा ले जाने पर विनय दादा की पत्नी के कमरे में घुसते ही माँ बोल उठी-"हो गया, अब जल दो।" विनय दादा की पत्नी इस घटना से न जाने कैसी हो गयी, उन्हें भी कुछ सोचने का मौका नहीं मिला। माँ को जल पिलाने के लिए वह गिलास को माँ के मुँह के निकट ले गयी। गिलास मुँह के पास ले जाने पर माँ की मृदु मन्द हँसी से मुग्ध होकर वह दोनों हाथों से माँ के

लिपट गई। सबकी ओर पीठ रखकर वह जैसे ही माँ के मुँह के पास अपना मुँह ले जाकर प्यार जताने लगी कि माँ अपने मुँह के भीतर की मिठाई उनके होठों में लगाकर खिलखिलाते हुए हँस पड़ी और बोली–''देखो, देखो, इसके होठों में मिठाई है, क्या तुमने मिठाई खायी है?'' इतना कहकर हँसने लगी और बोली–''यह देखो, इसके मुँह में मिठाई है।'' और उनके मुँह को पकड़कर सबको दिखाने लगी। इसे देखकर सभी हँस पड़े। ऐसे न जाने कितने ही काण्ड माँ कर बैठती हैं।

आज बात–बात में माँ ने कहा–''बचपन में जब मैं जेठजी के डेरे पर थी, उस समय उनके पुत्र आशुतोष को उसके पिताजी ने कहा–'तुम्हारी चाचीजी के हाथ का लेख बहुत सुन्दर है। तुम उनके पास जाकर लिखना सीखो।'' माँ आशुतोष को ककहरा लिखना सिखाती थी। इच्छाशक्ति से क्रिया होती है इस बात के प्रसंग में माँ ने कहा–''आशुतोष को मैं लिखना सिखा रही थी। एक बार ऐसा खयाल आया और कुछ लिखकर मैंने कहा–'इस तरह लिखो तो।'' उसका खयाल उस समय लिखने की तरफ गया। आश्चर्य की बात यह है कि उस बच्चे ने ज्यों का त्यों मेरी लिखावट की तरह लिख डाला। हर रोज ही वह अपने पिताजी को स्लेट पर लिखा अपना लेख दिखाया करता था, आज भी दिखाया। उसके पिता ने देखकर कहा–''यह शायद तुम्हारी चाची का लिखा है।'' आशु ने कहा–''नहीं पिताजी, मैंने ही लिखा है।'' परन्तु उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था, क्योंकि वह अविकल मेरे ही जैसे अक्षर थे। परन्तु फिर कभी वह उस तरह लिख न सका। उसके पिता उसे लिखाने बैठे, परन्तु वह लिख न सका। मेरे अन्दर खयाल आने से ऐसे–ऐसे काम भी हो जाते हैं।''–इतना कहकर माँ हँसने लगी।

वैशाख 17, शनिवार– आज दोपहर को बात–बात में गुरु की बात चली। माँ ने कहा–''लोग सद्गुरु कहते हैं, क्या गुरु असत् भी होते हैं? सभी गुरु सद्गुरु हैं। देखो, जगद्गुरु ही तो गुरु हैं, एक ईश्वर ही गुरु हैं, कुलगुरु हैं कुल के देवता, जहाँ कूल (किनारा) मिलता है। अकूल का प्रश्न ही नहीं रहता, उनका कुल ही तो कूल है, है न? उनका तो कुछ विचार नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त स्व–भाव में जो स्थित हैं वह सद्गुरु हैं, फिर जो स्वभाव में स्थित होने जा रहे हैं वे भी सद्गुरु हैं, क्योंकि जो बी.ए., एम.ए. पढ़ते हैं अपने से नीचे के दर्जे के छात्रों को पढ़ाने से उनके बी.ए., एम.ए. के दर्जे में जाने के सहायक होते हैं। इस हिसाब से वह भी सद्गुरु ही हैं।

फिर जिससे जितनी सत् शिक्षा मिलती है उतने के लिए वह भी गुरु हैं। जो स्वरूप प्राप्ति में सहायक होते हैं, यथार्थ में वही सद्गुरु हैं।''

उसके बाद अनेक बातें चली–'ब्रह्म समुद्र हैं, जीव तरंगें हैं, सगुण–साकार, निर्गुण–निराकार' इत्यादि। मैंने पूछा–''माँ, इस तरंग की सृष्टि किसने की?'' माँ ने उत्तर दिया–''वह तो उनका स्वभाव है। क्योंकि सगुण और साकार शब्द हैं न? फिर निर्गुण–निराकार क्यों कहा जाता है? जिसका आकार, गुण आदि तुम भाषा में प्रकट नहीं कर सकती। जैसे एक फूल देखकर वह कैसा सुन्दर है अथवा एक रसगुल्ला खाकर उसका स्वाद कैसा है, उसे भाषा के द्वारा अच्छी तरह प्रकट नहीं कर सकती। जिसने देखा और जिसने खाया है, केवल वही समझ सकता है। कुछ अंश भाषा से बताया (भाषा से जितना बताया वही स्वभाव का गुण प्रकट हुआ) और बाकी अव्यक्त ही रह गया, किसी तरह भी उसे प्रकट नहीं कर सकी। समझदार जानते हैं कि वह प्रकट नहीं किया जा सकता। फिर भी इसमें एक बात रह गयी–निराकार और साकार–यह भी तो एक भाषा ही है। इस कारण इन सबके परे पहुँचना होगा। फिर जाना–आना, किसी को देखना या दिखाना, ऐसी बातें भी नहीं चलेंगी। स्वयं प्रकाश है न? इस कारण जितना प्रकट हो सकता है, स्वभाव में ही उसका प्रकाश होता है। दूसरी ओर समुद्र के ऊपर ही तरंगे हैं, भीतर धीर–स्थिर–गम्भीर भाव है। तुम लोग कहते हो कि भीतर करेन्ट है, वह रहे, उससे तो टुकड़े नहीं होते। इस कारण भीतर स्थिरत्व, अखण्डत्व और गम्भीरत्व रह ही जाते हैं।'' उसके अनन्तर पुनः कहा–''देखो, इन बातों को कितने ही प्रकार से कहा क्यों न जाय, असली बात किसी तरह भी स्पष्ट नहीं होती।''

अमूल्य दादा की पुस्तक के त्रिताप–ज्वाला के निवारण की बात चली। मैंने पूछा–''अच्छा माँ, त्रिताप–ज्वाला को दूर करने का उपाय क्या है?'' माँ ने उत्तर दिया–''भगवान् को प्राप्त करने की चेष्टा करते हुए जिस प्रकार ताप सहन करना पड़ता है, वह ताप–सहन ही सांसारिक त्रिताप–ज्वाला को दूर करने के सहायक है। जिस प्रकार हवन करते समय आग का ताप सहन करना पड़ता है और उसी अग्नि में आहुति देनी होती है। जप करने के लिए बैठने पर कुछ समय बाद ही जप करने की इच्छा नहीं होती। अस्थिरता रहते हुए भी जो चेष्टा होती है, उसी का नाम ताप–सहन है। फिर उदयास्त या अहोरात्र नाम–यज्ञ करने का संकल्प लेकर नाम आरम्भ किया। नाम–यज्ञ में

क्या हो रहा है? व्यर्थ की चिन्ताओं, वृथा बातों की नाम-यज्ञ में आहुति दी जा रही है। असहनीय होने पर भी संकल्प की रक्षा के लिए ताप की तरह सहन करते हुए भी नाम-यज्ञ चलाया जा रहा है। साधारण मनुष्य को नाम में आनन्द कितना होता है? इसी कारण मैं कहती हूँ कि भगवत्-प्राप्ति के लिए जो ताप सहन करना होता है, उसी से त्रिताप-ज्वाला दूर होती है। इसी को तपस्या कहते हैं। फिर देखो अग्नि जिस प्रकार जल को सुखा सकती है, जल जिस प्रकार ठण्डा कर सकता है, उसी प्रकार यदि एक बार उनका ताप या प्रताप ले सको तो त्रिताप की शान्ति होगी। उन्हें प्राप्त करने के लिए तो बेचैनी या मन की चंचलता होती है, वही उनकी प्राप्ति के सहायक हैं। चंचल मन से उनकी चिन्ता, उनकी पूजा या उनके लिए नाम-जप से क्या फल होगा? उनके लिए अशान्ति हुए बिना शान्ति नहीं मिल सकती।''

माँ ने पुनः कहा-''संसार में जिसे ताप माना जाता है वह भी तपस्या ही है-जैसे धूप या बारिश में लड़के पढ़ने के लिए स्कूल-कॉलेज जाते हैं, नौकरी करने जाते हैं-ये सभी तपस्याएँ हैं, यदि भगवान् की ओर लक्ष्य रहे।'' पुनः कहा-''लक्ष्य रहे या न रहे, एक प्रकार से वह भी तपस्या ही है, क्योंकि सृष्टि-स्थिति और लय हर समय ही होते रहते हैं।'' इतना कहकर हँसते हुए फिर बोली-''मैं तो अंख-बंड बोला करती हूँ, तपस्या शब्द का अर्थ तुम्हारे शास्त्र में क्या है, वह तो तुम्ही लोग जानते हो।''

फिर बात-बात में माँ ने कहा-''अनिच्छा रहते हुए जो सांसारिक कर्म किये जाते हैं, उनसे नये कर्मों की सृष्टि नहीं होती, क्योंकि उससे संचित कर्म का क्षय ही हो जाता है। कामना से ही तो कर्म की सृष्टि होती है। भगवान् की प्राप्ति की कामना को बन्धन के कारण नहीं कहते। सांसारिक कर्मों की अनिच्छा के भीतर यदि भगवत्-प्राप्ति की इच्छा रहे, तो वह बन्धन का कारण नहीं होता। इस कारण भगवत्-कर्म की आकांक्षा का प्रयोजन है। जैसे लोग कहते हैं कि अपना स्वरूप देखने के अर्थ में शरीर का मैल धोने के लिए साबुन लगाया जाता है, परन्तु साबुन भी तो मैल ही है, उसे बिना धोये अपना स्वरूप नहीं दिखायी पड़ता। फिर देखो, इसमें भी ज्ञान, कर्म और भक्ति है। जैसे साबुन लगाने से ही काम न चलेगा, उससे रगड़ना होगा, उसके बाद जल से धोना होगा, तभी स्वरूप दिखायी पड़ेगा न? वहाँ किससे धोया जाता है, जानती हो? ज्ञान-गंगा से धोया जाता है।

''देखो, तुम्हारे भीतर ही सब कुछ है। इस विषय में अनेक बातें कही जाती हैं। आनन्द और शान्ति चाहती हो तो वह भी स्थायी आनन्द न होने से तुम्हें तृप्ति नहीं होती। आज एक नयी चीज देखकर तुम्हें बहुत ही आनन्द हुआ, फिर दूसरे ही क्षण वह तुम्हें वैसा आनन्द नहीं दे सकती। इसी प्रकार साधक का मन स्थायी आनन्द चाहता है। दूसरी ओर स्थायी आनन्द का स्वाद तुम जानती हो। इसी कारण उसकी प्राप्ति के लिए तुम्हारे मन में तीव्र आकांक्षा उठती है। इसी कारण मैं कहती हूँ कि तुम्हारे भीतर ही सब कुछ है। तुम्हारे लिए भीतर और बाहर है, इसी कारण भीतर शब्द कहा जाता है, फिर ऐसा भी कहा जाता है कि यह शरीर जो कुछ देखता है तद्भावापन्न हो जाता है। सोचकर देखो, सभी के भीतर उसका कुछ-कुछ प्रकाश है। जैसे कोई माँ अपने बच्चे को खिलाने बैठी, उसके मुँह में कौर देते समय अपना मुँह भी खुल जाता है। किसी को रोते देखकर तुम्हारे नेत्रों में भी आँसू आ गये। एक आदमी की हँसी देखकर तुम्हें भी हँसी आ गयी, एक व्यक्ति का रोग देखते-देखते तुम्हारा शरीर भी अस्वस्थ मालूम होने लगा। इसी से देखो, जो कुछ सामने आता है, कुछ अंश में तुम लोग भी उसी के भाव में भावित हो जाते हो। क्यों न होगा? भगवान् का चिन्तन करते-करते साधक उन्हीं के भाव में भावित हो जाते हैं। इसी कारण कहा जाता है कि तुम लोग अपने को जानने की चेष्टा करो, तभी सब कुछ जान सकोगे।''

सन्ध्या के बाद आज माँ लेटी हुई हैं। कुछ ज्वर हो गया है। मैं माँ के पास बैठी थी। कमरे में और कोई नहीं था। माँ ने कहा-''देखो, शीतकाल में सिर ठण्डा हो जाता था, किन्तु अब गर्मी पड़ते ही प्राकृतिक क्रिया किस ढंग से चल रही है? प्रकृति भी मानो विविध रूपों में अपने ही में क्रीड़ा कर रही है। रोग भी जिस प्रकार इस शरीर में खेलता रहता है, उसी तरह और क्या? जब जो कुछ होगा, पूर्ण रूप से ही होना चाहिए।'' इतना कहकर माँ मौन हो गयी।

भोलानाथजी की अवस्था बहुत ही भयंकर हो गयी है, देखने से डर लगता है। आँख, मुँह और सारे शरीर में सूजन आ गयी है। हर समय रोग की यातना से छटपटा रहे हैं, पता नहीं क्या होगा? माँ से बीच-बीच में मैं कहती हूँ-''माँ, अब तो सहा नहीं जाता। तुमने क्या शुरू कर दिया?'' माँ स्थिर भाव से हँसते हुए बोली-''वाह, रोग होने पर रोग की मूर्ति न देखोगी?

जिसका जो भोग होना है, वह तो होगा ही।'' निर्विकार भाव से कहती हैं, हमें उनकी धीरता की धारणा भी नहीं होती, रात अधिक होने पर एक-एक करके सभी विश्राम करने के लिए चले गये। भोलानाथजी के कमरे में केवल हम दो-तीन स्त्रियाँ रह गयी।

वैशाख 18, रविवार– आज माँ सुबह लगभग 10 बजे उठी। भोलानाथजी की हालत अच्छी नहीं है। अभय रायपुर चला गया है। निगमानन्द स्वामी और सन्तदास बाबाजी के दो चेले यहीं थे। साधन की सुविधा के लिए माँ ने आज उन दोनों को भी रायपुर भेज दिया। विशु ब्रह्मचारी वहाँ हैं। एक कमरे में माँ के लिए जो आसन बिछाकर रखा गया है उसी पर वह ध्यान-जप आदि करते हैं।

माँ ने कहा–''भोलानाथ को केवल मोतीझरा ही नहीं हुई है, तुम लोग अच्छी तरह से देखो।'' इतना कहकर उन्होंने डाक्टरों को दिखाया। फिर बाहर आकर कहा–''मैं कहती हूँ कि सभी तरह की शीतला प्रकट हुई हैं। हालत अच्छी नहीं है।'' डाक्टरों ने उनकी बात का समर्थन करते हुए कहा–''सब बातें तो कही नहीं जा सकती, माँ।'' माँ ने कहा–''रोगों की मूर्तियाँ प्रत्यक्ष दिखायी पड़ती हैं। इस कारण तुम लोगों ने जिस समय इसे छोटी चेचक कहा तब मुझे वह ठीक नहीं जँचा। क्या होगा न होगा सभी, जैसे किसी समय बाहर से बुलाकर कोई बात कहता तो, फिर कभी सामने बैठकर ही कह देता हो, ऐसा होगा।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

फणि बाबू प्रोफेसर आकर बैठे थे। उन्होंने इस बात को सुनकर कहा–''अच्छा माँ, इन रोगों को रोका नहीं जा सकता?'' माँ ने उत्तर दिया–''हाँ, वह भी हो सकता है। कैसा, जानते हो? भोलानाथ से ही एक उपमा देती हूँ। एक समय क्या दिखायी पड़ा मानो एक बड़े पोखरे में भोलानाथ डूबते-डूबते एकदम अदृश्य हो गया, जटा का थोड़ा अंश ही बाहर दिखायी पड़ता था। उस समय क्या खयाल आया जानते हो? डूबने नहीं दिया जायेगा-ऐसा भाव मन में आते ही दृष्टि उसी जटा के ऊपर स्थिर हो गयी। मैं जानती थी कि यदि दृष्टि हट गयी तो जटा डूब जायेगी, किन्तु दृष्टि इधर-उधर नहीं हटी। एकदम जटा की ओर स्थिर हो गयी। देखते-देखते भोलानाथ उठ के आकर खड़ा हो गया, मानो स्नान कर आया हो। उसके बाद ही सख्त बीमारी हुई, फिर धीरे-धीरे अच्छा हो गया। उसके बाद उसकी बीमारी रहते हुए ही

मैं भोलानाथ को यहाँ छोड़कर सोलन चली गयी। जटा का जितना अंश मेरी दृष्टि के भीतर था, उसे अन्त में काट दिया गया था। परन्तु यह भी ठीक है कि जिसका रोध होने को है, उसका रोध होता है फिर खयाल होने से सब कुछ हो सकता है।'' इतना कहकर चुप हो गयी।

आज दुपहर को माँ लेटी थी। मैं पास बैठी रही। बात-बात में माँ ने कहा-''शास्त्र तो स्व-अस्त्र है। जिस प्रकार स्वभाव में स्थिर होने के लिए जो-जो कर्म किये जाते हैं, उनमें एक लक्ष्य रहता है-आत्मचिन्तन। वही एक धारा का अस्त्र रूपी चिन्तन साधक को खण्ड-खण्ड संस्कारों से मुक्त करता है। इसीलिए शास्त्र को मैं अपनी अण्ड-बण्ड भाषा में कहती हूँ, तुम लोग कैसा ही अर्थ क्यों न करो।''

फिर किसी बात पर बोली-''देखो, पत्थर का भाव रहने से जिस प्रकार शिव-भाव नहीं जगता और शिव-भाव जागने से जिस प्रकार पत्थर-भाव नहीं रहता, उसी प्रकार गुरु में मनुष्य-भाव रहने से काम नहीं चलेगा। क्योंकि एक न एक चिन्तन करना ही मनुष्य का स्वभाव है। जीव के भीतर एक का आभास भी कैसा सुन्दर है!''

अमूल्य दादा की पुस्तक के पृष्ठ 208 पढ़कर बात चलायी गयी कि लोग घर-घर लक्ष्मी और सरस्वती की पूजा क्यों करते हैं? माँ ने कहा-''गृहलक्ष्मियों को लक्ष्मी-पूजा से सांसारिक धन की उपयोगिता है, उसी प्रकार लड़कों को सरस्वती-पूजा से अर्थकरी विद्या की उपकारिता है ही। परन्तु जिस धन से धनी होने पर चिर धनी और जिस विद्या के प्राप्त होने से चिर निवृत्ति होती है वह है महालक्ष्मी और महासरस्वती की पूजा।''

प्रकृति और पुरुष की बात चली। माँ ने कहा-''पुरुष के न रहने से प्रकृति किसके भीतर क्रीड़ा करेगी? परन्तु तुम और तुम्हारी प्रकृति जैसे अभिन्न है (लोग कहते हैं-'तुम्हारी प्रकृति या स्वभाव ही ऐसा है') उसी प्रकार पुरुष के न रहने से प्रकृति नहीं रहती और प्रकृति के न रहने से पुरुष नहीं रहता। प्रकृति क्रियाशील है और पुरुष नित्य निर्विकार है।''

कमला नेहरू की बात

वैशाख 19, सोमवार- आज तीसरे पहर श्रीमती कमला नेहरू की बात चली। सुना है कि कमला नेहरू पहले-पहल देहरादून आकर काशी बाबू के

मकान में ठहरी थी। श्री श्री माँ की बात सुनकर स्वर्गीय पं. मोतीलाल नेहरू की पत्नी स्वरूप रानी ने भी माँ को देखना चाहा था। उस समय माँ आनन्द चौक में थी। एक दिन कमला नेहरू ही अपनी सास को माँ के पास मन्दिर में उतारकर चली गयी, माँ के साथ भेंट नहीं की। उसके बाद एक दिन फल, फूल आदि लेकर कमला नेहरू और उनकी सास माँ के पास आयी थी। माँ के पास आकर कमलाजी एकटक माँ की ओर देखती रही और थोड़ी ही देर में लेट गयी। उनका शरीर काँपने लगा, जिससे वे बैठी नहीं रह सकी। इसके बाद से कमला नेहरू रोज ही माँ के पास आकर फल-मिठाई आदि अपने हाथ से माँ को खिला देती थी। और माँ को देखते ही उन्हें एक नशे की तरह हालत हो जाती थी। उन्होंने कहा था-माँ को उन्होंने कृष्ण की मूर्ति के रूप में देखा था। इसके बाद ऐसा भी हुआ कि वह रात के 12 बजे अपने दो कम्बल और टार्च लेकर माँ के पास आकर उनके बिछौने के बगल में कम्बल बिछाकर लेट जाती और भोर में सबके उठने के पहले ही चली जाती थी। कभी-कभी बात-बात में रात बीत जाती थी। माँ के प्रति उनमें बहुत ही श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हुई थी। कभी-कभी माँ का दर्शन करने जाते ही उनमें वैसी एक शून्य अवस्था हो जाती थी। शायद उस समय पानी बरसता, इससे उनके वस्त्र भीगते, पर उधर उन्हें कोई खयाल ही नहीं रहता था। पास के लोग उनके वस्त्र खींचकर वह न भींग सके, इसकी चेष्टा करते थे। इसके अनन्तर अम्बिका मन्दिर में जाकर माँ को लेकर यज्ञ किया था, उसका विवरण पहले ही लिखा जा चुका है। उसके बाद उनकी बीमारी बढ़ गयी। वह भौवाली जाकर रही। उस समय माँ एक बार अल्मोड़ा जाने लगी। माँ का दर्शन करने के लिए कमला नेहरू बहुत अधीर थी, जानकर माँ जाने के रास्ते में उनसे भेंट करने गयी। उस समय भी वह माँ को देखकर रोने लगी और उनका शरीर काँपने लगा। फिर माँ जब अल्मोड़ा से लौटने लगी, उस समय भी उनकी प्रार्थना से माँ ने उन्हें दर्शन दिया। उस समय उन्होंने माँ से कहा था-''माँ, आपको देखने से मेरी वैसी हालत हो जाती है, इस कारण मेरी नर्स मुझे आपसे भेंट करने से मना करती है। परन्तु मैंने कह दिया कि भेंट न करने से मेरा शरीर और भी खराब होगा। इसलिए राजी हो गयी।'' माँ को देखने के लिए वह इतनी उतावली थी कि माँ के वहाँ पहुँचने के पहले ही वह बरामदे में आ बैठी थी। माँ को लेकर देहरादून में वह प्रायः मोटर से

अनेक सुनसान स्थानों पर घूमा करती थी और कभी एकान्त स्थान पर मोटर छोड़कर दोनों पैदल टहला करती थी। उस समय वह उस प्रकार की भावावस्था में कभी-कभी जंगल में ही माँ के पास पड़ी रहती थी। माँ से कहती थी- ''संसार में आप ही मेरी सबसे प्रिय हैं।'' परन्तु माँ ने जब पूछा-''व्यावहारिक जगत में तुम्हारा सबसे प्रिय कौन है?'' तो वह कहती-''सांसारिक व्यवहार में पति ही मेरे सबसे अधिक प्रिय हैं।'' जब तक वह जीवित थी, माँ को पत्र दिया करती थी और उसमें अपनी श्रद्धा-भक्ति और प्यार माँ को जताया करती थी। असमय में उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी, यह बहुत ही खेद की बात है। उन्होंने एक बार माँ से कहा था-''माँ यदि आप आज्ञा दें तो मैं जाकर महात्माजी से कहूँ कि मुझसे अब देश का काम नहीं चलेगा।'' माँ ने कहा-''नहीं, तुम इस समय महात्माजी से कुछ न कहना। जो कुछ तुम्हारे लिए आवश्यक है, वह होता जायेगा।''

आज तीसरे पहर लक्ष्मी रानी के साथ फैजाबाद के एक जज साहब की पत्नी आयी हैं। वह माँ के पास चार-पाँच दिन रहेंगी, इस आशा से बहुत कह-सुनकर पति को राजी कर आयी हैं। इधर भोलानाथजी कठिन शीतला रोग से पीड़ित हैं, ऐसी स्थिति में किसी को आश्रम में रखना ठीक न होगा, यही बात चल रही थी। वह माँ के साथ एकान्त में बात करने लगी। इतने में सेवा (शारदा) लखनऊ से एक डॉक्टर को लेकर आयी। वह भी माँ का दर्शन करना चाहती हैं। ज्यों ही मैंने ये खबर सुनायी, त्यों ही माँ ने कहा- ''उसे बुलाओ, हमारी बातें खत्म हो गयी हैं।'' सब लोग माँ के कमरे में दाखिल हुए। माँ ने डॉक्टर को देखते ही कहा-''इस बाबा को आज मैंने दुपहर में देखा था।'' उसके बाद उन्होंने जो कुछ कहा, उसका आशय यह है कि इस डॉक्टर के पूर्वजन्म का दृश्य माँ के नेत्रों के सामने स्पष्टत: प्रत्यक्ष हुआ था। यह एक बड़े अफसर थे। हैट, कोट पहनकर मानो माँ के पास आये थे और अंग्रेजी में बातें करते थे। माँ के मुख से भी उसी तरह की भाषा में जवाब दिया गया था। उस समय इनकी दाढ़ी कुछ पकने लगी थी और पेन्शन लेने में भी कुछ समय बाकी था। इसी समय इनका देहान्त हो गया था। देहान्त होने के पहले इनमें एक प्रबल शुद्ध भाव जगा था। इस कारण माँ के नेत्रों के सामने इनके उस समय का दृश्य प्रतीत हुआ था। माँ के पास जाकर इन्होंने पूछा था-''मन क्या है?'' माँ ने उत्तर दिया था-''मन

भी वही हैं, उसकी चंचलता भी वही हैं,- जैसे अन्न ब्रह्म, जल ब्रह्म, एक के सिवाय और कुछ नहीं।''-इस बात से वह बहुत ही प्रसन्न हुए थे।

माँ की इन बातों को सुनकर हम लोग दंग रह गये। इस ढंग से कभी माँ ऐसी बातें किसी को नहीं बताती। यह नये आदमी हैं। स्वेच्छा से ही माँ ने उन्हें इन बातों को बताया। इन्होंने तो कुछ भी नहीं पूछा था। माँ ने कहा-''तुम लोग समझते हो कि यह नया है और वह पुराना है, परन्तु मैं तो देखती हूँ कि सभी पुराने और सभी नये हैं।'' और भी कहा-''पूर्वजन्म के कुछ लक्षण इस जन्म में भी इनके शरीर में दिखायी पड़ते हैं। इन्हें देखकर ही मुझे खयाल आया है।'' फिर कहने लगी-''मुझसे तो तुम लोगों ने कहा नहीं था कि कोई आया है, परन्तु मुझे खयाल आया और जिससे मैं बात कर रही थी, वह बात बन्द कर दी गयी। इतने में तुमने (मुझे दिखाकर) खबर दी कि एक डॉक्टर भेंट करने आये हैं।'' मुझे मालूम था कि यह बाबा आये हैं।'' इतना कहकर हँसने लगी।

लक्ष्मी देवी आयी हैं। माँ के सामने रोने लगी। कुछ शान्त होने पर उन्होंने कहा-''माँ, मन स्थिर नहीं होता, फिर सांसारिक कामों में अनेक बाधायें आती हैं कि भगवान् का काम कुछ भी नहीं कर पाती।'' माँ ने कहा-''कैसे स्थिर होगा? जो बुरी चीजें खायी हैं उससे बदहजमी तो होगी ही। डॉक्टर लोग क्या करते हैं, जानती हो? पहले दस्त की दवा देते हैं। उससे पेट साफ हो जाने पर दूसरी दवा देना शुरू करते हैं। तुम लोग भी वैसा ही करते चलो। जिस प्रकार बहुत अधिक दवा देना ठीक नहीं है, उसी प्रकार एक दिन खूब नाम-जप किया, फलस्वरूप बहुत थक गयी, फिर कई दिनों तक नाम लेने की इच्छा ही नहीं हुई, ऐसा ठीक नहीं है। सभी धीरे-धीरे नियम से करना उचित है जिससे सुफल मिल सकता है। एक दिन में वैसा करने से सुस्ती और नास्तिकता आने का डर रहता है।''

भोलानाथजी को माता निकली है, अब तक कोई समझ नहीं सका या समझने पर भी नहीं कहा। माँ ने स्वयं ही डॉक्टरों को बुलाकर भोलानाथजी का शरीर दिखाते हुए कहा-''तुम लोग इसे मोतीझरा कहते हो, पर यह तो असली चेचक है।'' डॉक्टरों ने उनकी बात मान ली और कहा-''माँ, क्या कहूँ? रोगी डर जायेगा, इसलिए नहीं बताया गया। पर जो कुछ करने का है, वही किया जा रहा है।'' माँ ने कहा-''तुम लोग मोतीझरा कहते हो, पर मैं

रोग की मूर्ति साफ देख रही हूँ। वह मोतीझरा नहीं है। इसलिए स्वयं जाकर तुम्हें दिखा दिया।''

कभी-कभी ऐसा देखा गया है कि ढाका में मन्दिर बनाते समय कान्ट्रक्टर से उनके काम के बारे में माँ ने जो कुछ कहा उन्होंने उसे मान लिया। पहले उनके दिमाग में वह बातें नहीं आयी थी। माँ के कहने पर खयाल आया-सच ही तो ऐसा करना ही अच्छा है। इस प्रकार हर बात में माँ की पूर्णता का परिचय मिलता है।

सूक्ष्म शरीरियों का आगमन

रात को माँ लेटी हुई हैं। मैं पास बैठकर कुछ सेवा करने लगी। भोलानाथजी के कमरे में एक आदमी जागकर सेवा कर रहा था। रात के 1 बजे का समय था। कुछ चाँदनी माँ के बिछौने पर आ पड़ी है। माँ ने कहा- ''इस समय भी कितने आते-जाते हैं।'' माँ सूक्ष्म शरीरधारियों की बात बोल रही थी। हर समय ही तो आते-जाते हैं। मैंने पूछा-''अच्छा माँ, तुम्हारे पास जब अनके मनुष्य बैठे रहते हैं तो क्या उस समय भी वे आते हैं?'' माँ ने उत्तर दिया-''क्यों न आयेंगे। वे कभी भीड़ में और कभी एकान्त में, हर समय ही आते-जाते हैं। उनके साथ बातचीत भी की जाती है। तुम लोग भीड़ देखते हो, पर उनके सामने कैसा है, जानते हो? जैसे सूक्ष्म-दर्शक यन्त्र के द्वारा तुम लोग देखते हो, नहीं तो छोटी चीजें दिखायी ही नहीं पड़ती। उसी तरह उनके काम में तुम लोग बाधा कैसे पहुँचा सकते हो? फिर कोई बाधा भी पाता है। हर प्रकार के ही हैं। किसी के प्रियजन शायद परलोक सिधारे हुए आत्मीय को स्मरण कर रो रहे हैं। उससे परलोकगत आत्मा को कष्ट होता है। परन्तु वह आ भी नहीं सकते। इस कारण कहा जाता है कि परलोकगत आत्मा के लिए दुःख प्रकट नहीं करना चाहिए।'' मैंने कहा- ''अच्छा, तो वह परलोकगत आत्मा यदि किंसी जगह पैदा हुआ हो तो पूर्वजन्म के आत्मीयों के दुःख से उसे क्लेश होता है?'' माँ ने कहा-''होता है, परन्तु वे समझ नहीं सकते कि क्यों क्लेश हो रहा है। पूर्वजन्म के आकर्षण का ही इस प्रकार प्रभाव होता है।'' इतना कहकर माँ फिर बोली-''इसमें कहने का कुछ नहीं है। तुम्हारे साथ मिलन जिस प्रकार स्वाभाविक है, उनके साथ भी ठीक वैसा ही है। तुम लोग सुनना चाहते हो, इसीलिए कहा जाता है।''

माँ बीच-बीच में भोलानाथजी के कमरे में जाकर देख आती हैं और कहती हैं-"सभी का प्रयोजन है, शायद इसीलिए हो जाता है, जो लोग सेवा कर रहे हैं, वे इस शरीर के उपस्थित रहने से कुछ बल पाते हैं नहीं तो सुस्ती आ जाती है। इसलिए ही तो वहाँ जाया जाता है।" यथार्थ में ही कभी-कभी दिखायी पड़ा कि माँ के न जाने से उस समय रोगी को जो कुछ आवश्यक है, वह किया नहीं जाता। किसी की समझ में नहीं आ रहा था। ज्यों ही आवश्यकता हुई, त्यों ही माँ वहाँ जाकर खड़ी हो जाती। हर समय ही ऐसी घटना देखी जाती है।

वैशाख 20, मंगलवार- आज भी माँ की वही हालत चल रही है। आज भी रात को नींद नहीं आयी। मैंने भी जगकर रात बितायी। बीच-बीच में भोलानाथजी के कमरे में जाकर माँ कुछ-कुछ प्रबन्ध करने लगी। माँ की हालत देखकर मुझे आशंका हुई कि जल्दी ही कुछ हो जायेगा।

वैशाख 21, बुधवार- माँ ने आज भी विशेष कुछ नहीं खाया है। केवल जल से कुछ तरकारी सिझाकर आज दो दिनों से खा रही हैं। कभी-कभी कुछ दूध-रोटी भी ले रही हैं। इसी ढंग से चल रहा है। माँ कहती हैं-"जब यह शरीर अपने भाव से चलता था तो खाने-पीने का कुछ भी नियम नहीं था, किसी दिन खाने बैठा जाता था और किसी दिन बिल्कुल नहीं। नियम से खाने की कोई व्यवस्था नहीं थी। जब जो कुछ मिलता था, उसी को खाकर रह जाना पड़ता था। उस समय शरीर अच्छा ही था और इस समय तुम लोग इतनी चेष्टा और व्यवस्था कर रहे हो, तो भी शरीर अच्छा नहीं रहता।" जो हो इसी ढंग से खाना-पीना चलने लगा। हम लोग भी बाधा नहीं देते।

आज दुपहर को माँ का भाव देखकर मुझे बेचैनी मालूम हुई। मैंने पूछा-"क्या हुआ, माँ?" माँ ने उत्तर दिया-"क्या होगा? शरीर अस्वस्थ था। तुम लोगों ने आकर बहुत सेवा-यत्न करके चंगा कर दिया है। अब स्वस्थ शरीर के लिए जो कुछ करने का है, वही करोगे।" फिर से माँ ने कहा-"शची दादा की बहन मनु को बुलाओ, उसे कुछ कहना था।" वह आकर माँ के साथ दरवाजा बन्द करके बात करने लगी। उस समय 3 बज रहे थे। इतने में लक्ष्मी, गोला और उनकी दो आत्मीय कश्मीरी महिलायें आकर माँ के दर्शन के लिए बैठी। 4 बजे के बाद दरवाजा खुला।

नानीजी आदि को दूसरी जगह भेजना

माँ जब अकेले रहना चाहती हैं, तो मैं प्रायः दोपहर को माँ के दरवाजे के बाहर बरामदे में बैठी रहती थी। आज भी दरवाजा खुलने पर लक्ष्मी आदि माँ के पास गयी परन्तु मैं बरामदे में ही बैठी रही। शाम को लगभग 5 बजे माँ ने मुझे बुलाया, माँ के मुँह की म्लान हँसी देखकर ही मेरे मन में कुछ धक्का-सा लगा। ऐसा मालूम हुआ कि माँ अभी कुछ कहेंगी। माँ ने इधर-उधर की दो-एक बातें कहकर मुझसे कहा-''देखो, एक बात है। या तो तुम लोग आज ही जाओ, नहीं तो मैं कहीं जाकर थोड़ा घूम आऊँ।'' सबने देखा-माँ की यह कैसी मूर्ति! माँ हँसती थी परन्तु हमें मालूम था कि उनकी इस आज्ञा को भंग करने की शक्ति किसी में नहीं है।

भोलानाथजी आज दो दिनों से बेहोश से हैं। दिन-पर-दिन हालत बिगड़ती ही जा रही है। ऐसी स्थिति में हम लोग सेवकों की आवश्यकता समझते थे, किन्तु माँ को उसकी परवाह नहीं है। मैंने पूछा-''किस-किस को जाना होगा माँ? हम लोग ही जायेंगे, तुम न जाओ।'' तब माँ ने कहा-''तुम, बाबा (अखण्डानन्द स्वामी), मनु, अपनी दीदी को भी ले जाओ। नवतरु जो आज ही जायेगा, कहा था। वह भी जाये। निधु चाहे तो वह भी जाये या रह ही जाये।'' फिर कहती हैं-''जल्दी बन्दोबस्त कर लो अधिक समय नहीं है। 6 बजे के अन्दर ही रवाना होना होगा। मैं सोच रही थी कि लक्ष्मी मोटर लेकर आए तो, काम बने।'' इतने में लक्ष्मी आ पहुँची।

बाबा जाकर खड़े हो गये। कहा-''माँ, यह कैसी आज्ञा? मानो एकाएक सिर पर डंडा पड़ा हो। मेरा तो शरीर काँप रहा है, भोलानाथजी की ऐसी हालत, आपका शरीर भी ठीक नहीं है। ऐसे समय हमें चला जाना होगा।'' माँ ने कहा-''तुम तो संन्यासी हो, तुम फिर सेवा क्या करोगे? तुम्हारी ही सेवा आवश्यक है। तुम बैठे-बैठे आत्मचिन्तन करते रहो, उसी से काम होगा।'' नानीजी से कहा-''तुम बूढ़ी हो, सेवा क्या करोगी? और ऐसा दृश्य देखने में क्या तुम्हें अच्छा लग रहा है? तुम जाकर बैठे-बैठे मंगल-चिन्तन करो, उसी से मंगल होगा।'' मुझसे कहा-''देखो, मैं तो इसी ढंग से एकाएक चली जाती हूँ और तुम्हीं लोगों को ऐसे जाने को कहती हूँ। सबको तो नहीं कहा जा सकता। मुझे मालूम है, तुम लोग भी इसी ढंग से चल सकोगी।'' इस तरह सब बातें कहकर मानो सबको छोड़-छाड़कर अलग बैठ गयी। मैंने कहा-

''माँ, तुम्हें देखने के लिए तो कोई नहीं रह गया, उधर भोलानाथजी की हालत वैसी ही है।'' माँ ने कहा-''सब हो जायेगा, जो कहती हूँ वह उसे करो। तुम्हारी भलाई के लिए ही कहती हूँ।'' मैंने कहा-''कितना ही कष्ट क्यों न हो, तुम्हारी आज्ञा तो अवश्य ही पालूँगी।'' मैंने एकान्त में कुछ बातें करना चाहा। माँ ने सबको उठा दिया। मैं रो रही थी देखकर माँ ने कहा-''मुझे मालूम है, तुम्हारे यहाँ रहने से इस शरीर की कुछ सेवा होती है। अन्य विषयों में भी लाभ है। परन्तु वह भी होने का नहीं। इसीलिए मुझमें ऐसा खयाल आया है।'' इसके बाद सबके कमरे में आने पर माँ ने कहा-''सभी अपने प्राणों का संग करो, उसी से मुझे आनन्द है। याद रखना, वही मेरी सेवा है।'' आश्चर्य की बात है कि जिस समय अधिक मनुष्यों की आवश्यकता है उसी समय सबको माँ ने हटा दिया। इसके बिना वह नहीं होगा-ऐसी बात माँ के सामने नहीं चलेगी। वह अपने ही खयाल से सब कुछ करती हैं। किसी की बाधा नहीं मानती। सुव्यवस्था करके सब लोग काम करेंगे, इसका वह मौका नहीं देती। जब भी कोई सुव्यवस्था होती है, तभी उसे तोड़ देती हैं। परन्तु जितना समय मिलता है, सुव्यवस्था से ही काम करने को कहती हैं।

अस्तु, गाड़ी आ गयी। घण्टे भर के भीतर ही हम लोग चल पड़े। माँ ने बरामदे में बैठकर सबको विदा कर दिया। इस तरह सब तोड़-ताड़ देने में माँ को क्षण भर का समय भी नहीं लगता। तोड़ना और बनाना मानो माँ के लिए हँसी-खेल है।

वैशाख 22, बृहस्पतिवार-आज तीसरे पहर हम लोग काशी आ गये। स्टेशन से धर्मशाला आने के रास्ते में महामहोपाध्याय पं. श्रीयुत् गोपीनाथ कविराज महाशय के मकान में खबर देने के लिए मैं उतर पड़ी। वहाँ स्वामी शंकरानन्दजी तथा नेपाल दादा भी बैठे थे। हमें देखकर विपत्ति की आशंका से वे घबरा उठे। सारी खबरें सुनी। स्वामी शंकरानन्दजी ने कल ही देहरादून जाने का निश्चय कर लिया। उन्हें एक बार चेचक हो गयी है और उन्होंने कई शीतला रोगियों की सेवा की है। हमारे ऊपर माँ की आज्ञा सुनकर सब लोग दंग रह गये। परन्तु यह तो कोई नयी बात नहीं है। माँ ने हमें ढाका जाने के लिए आज्ञा दी है।

वैशाख 23, शुक्रवार- आज स्वामी शंकरानन्दजी तथा नवतरु दादा माँ

शीतला की पूजा दे आये हैं। आशीर्वाद फूल लेकर स्वामीजी देहरादून चले गये। मैंने ही शंकरानन्दजी को शीतला माता की पूजा देकर आशीर्वादी फूल भेजने के लिए लिखा था। हम लोग दो-चार दिन काशी रहकर कलकत्ते जायेंगे, ऐसा निश्चय हुआ। चित्त बेचैन है, क्योंकि माँ के किसी भाव से भी विश्वास नहीं हुआ कि भोलानाथजी अच्छे हो जायेंगे बल्कि माँ के हाव-भाव देखकर डर ही लगा है और आशंका भी हुई है। मैंने कहा था-''माँ, शिवशंकर कविराज तो कल ही आ पहुँचेंगे। देखूँ, आकर वे क्या कहते हैं?'' माँ कुछ उपेक्षा दिखाते हुए बोली-''कविराज आकर क्या करेगा? देखती नहीं कि हालत दिन-पर-दिन खराब ही होती जा रही है।'' फिर हमारे आने के पूर्व दिन रात को माँ ने स्वयं ही भोलानाथजी का शरीर दिखाकर मुझसे कहा-''देखो, भोलानाथ का शरीर जहाँ-तहाँ कुछ-कुछ फट-सा गया है। मुझे तो लग रहा है कि बहुत ही खराब गोटियाँ निकली हैं। हालत तो देख ही रही हो।'' हमारे रवाना होते समय किसी बात के उत्तर में माँ ने कहा था-''हालत तो देखकर ही जा रही हो, दिन-पर-दिन खराब ही होती जा रही है।'' इन बातों से हमारी आशंका बढ़ ही गयी थी। रात को निद्रा के आवेश में नानीजी 'भोलानाथ-भोलानाथ' कहकर चिल्ला उठी थी।

भोलानाथजी का महाप्रयाण-वैशाख 23, बंगाब्द 1345

वैशाख 24, शनिवार- आज दोपहर को मेरे भीतर बड़ी बैचेनी मालूम होने लगी। माँ-माँ कहकर मानो हृदय रह-रहकर काँपने लगा। नानीजी, मझली दीदी, मैं और अखण्डानन्द स्वामी हरि की बंगाली धर्मशाला में हैं। ऐसी बेचैनी का भाव लेकर ही मैं बच्चू के मकान में गयी। कुछ देर बाद नेपाल दादा भी वहाँ आ पहुँचे। बहुत बुरी खबर सुनायी। नेपाल दादा ने कहा-''भूपति दादा का टेलीग्राम अभी मिला है। कल अर्थात् वैशाख 23, शुक्रवार रात को भोलानाथजी का देहान्त हो गया।'' ऐसी खबर सुनकर मेरे हृदय में बड़ा धक्का लगा। सभी उलट-पलट हो गया। ऐसी अनहोनी हो गयी जिसकी कभी कल्पना भी नहीं थी। अब समझ में आया कि माँ ने वैसी बातें क्यों कही थी। परन्तु उपस्थित लोगों से वार्तालाप करते समय इसका आभास भी नहीं मिला था कि इतनी बड़ी घटना होने जा रही है। स्वाभाविक, सहज, सरल भाव में थोड़ा भी परिवर्तन नहीं हुआ था। माँ हँस-हँसकर बोल रही थी-''विपत्ति आ रही है।'' मैंने उस बात के उत्तर में कहा था-''तुम्हारे मुख

में केवल विपत्ति–विपत्ति।'' माँ ने हँसकर कहा–''मैं क्या करूँ? आकर कह जो जाता है। आकर कह गया–'विपत्ति आ रही है।' जैसे तुम लोग कहते हो ठीक वैसे ही।'' माँ सभी जानती थी और आभास से सभी समझा देती थी, किन्तु उनके भाव में कोई परिवर्तन नहीं होता था। अब मालूम हो रहा है कि माँ ने नानीजी को सामने से क्यों हटा दिया। फिर दुःख भी हो रहा है कि माँ ने ऐसी विपत्ति के समय हमें पास क्यों नहीं रखा?

कभी–कभी माँ सबके साथ ऐसा व्यवहार करती हैं मानो उसको छोड़कर माँ का काम क्षण भर के लिए भी नहीं चल सकता। फिर पलक गिरते ही सब तोड़–ताड़कर स्वयं भी हट जाती हैं। उस समय समझ में आता है कि किसी से माँ का कोई प्रयोजन नहीं है। सदा ही माँ मुक्त हैं। किसी में उन्हें रोकने की शक्ति नहीं है। यह एक अद्भुत चरित्र है। तोड़ने और गढ़ने में क्षण भर की देर भी नहीं लगती। हम लोगों को पास रहते हुए भी सदा ही आशंका होती थी कि न जाने कब कैसा आदेश होता है। तिस पर भी माँ की स्नेह–दया का कितना ही परिचय पाया है और पाते जा रहे हैं, वह भी अतुलनीय है। माँ सभी के भीतर हैं, फिर किसी में भी नहीं हैं। ऐसा ही एक अपूर्व चरित्र माँ के भीतर प्रकट होता है। एक–एक समय माँ ऐसे ढंग का व्यवहार करती हैं और ऐसी बातें कहती हैं कि कोई नया आदमी आ पड़े तो सुनकर माँ को गलत समझ सकता है। माँ भी कभी–कभी हँस–हँसकर कहती हैं–''तुम लोगों ने सर्दी के कारण मेरे हाथ में रूमाल दिया है, पैर में जूता दिया है, पहनने के लिए कुर्ती दी है देखकर कोई–कोई कहते हैं–'तुम्हारी आनन्दमयी माँ को देख आया। खूब बाबू गिरी है।'' इतना कहकर हँसते हुए लोट–पोट हो जाती। पीछे सुना है कि वास्तव में ही किसी–किसी के मन में वैसा भाव आया था। माँ का तो त्याग भी नहीं है, भोग भी नहीं। परन्तु इसकी धारणा करना हमारे जैसे साधारण मनुष्यों के लिए एकदम असम्भव है। एक साथ दो विपरीत भाव माँ के भीतर खिलते रहते हैं। जितना समझ में आता है, उसी से अवाक् रह जाना पड़ता है। फिर माँ की लीला के खेल में सब भूल जाती हूँ। कितने ही अपराध करती हूँ, कैसी–कैसी भूलें होती हैं! माँ की हर एक बात में तथा चरित्र में गीता का असंग भाव पूर्ण रूप से खिल उठता है। जो लोग उनके सम्पर्क में आये हैं, वे सभी मेरे इस कथन की सत्यता की उपलब्धि करेंगे।

भोलानाथजी के महाप्रयाण का समाचार नानीजी को नहीं सुनाया गया। हम लोगों ने देहरादून टेलीग्राम भेज दिया।

वैशाख 25, रविवार– आज भी कोई खबर नहीं मिली। मन बहुत ही घबराने लगा। माँ क्या कर रही हैं, कहाँ जायेंगी, क्या करेंगी, ऐसी अनेक चिन्ताओं से मन व्याकुल होने लगा।

माँ के जन्मोत्सव के पहले ही हमें ढाका पहुँचना होगा। माँ ने ऐसा कह दिया है। इस कारण यहाँ अधिक दिन प्रतीक्षा नहीं की जा सकती। वैशाख 19 से उत्सव शुरू हो गया है। 18 दिनों तक उत्सव चलेगा। अन्तिम दिन कृष्ण चतुर्थी को सुबह की पूजा के बाद श्री श्री काली माता के गह्वर का मन्दिर खोल दिया जायेगा। साधारण जनता उस दिन भीतर जाकर दर्शन कर सकेगी। उसके बाद सन्ध्या से साधारण जनता के लिए मन्दिर का दरवाजा बन्द हो जायेगा। बाद में मन्दिर साफ कर प्रतिमा का अभिषेक करके पूजा की जायेगी। ऐसी व्यवस्था माँ ने शुरू से ही की थी। उसके बाद फिर रात के 3 बजे माँ के जन्म के समय पूजा होगी। उस पूजा के समाप्त होने में भोर हो जाता है, यज्ञ भी होता है। तिथि–पूजा दूसरे दिन भी होती है, फिर काली माँ की पूजा होने के अनन्तर गह्वर मन्दिर का दरवाजा बन्द कर दिया जायेगा, ऐसा ही नियम चल रहा है।

आज सन्ध्या समय योगेश दादा की एक चिट्ठी मिली। हमारे चले आने के दूसरे दिन की चिट्ठी है। उसमें लिखा है ''दीदी, तुम्हारे चले जाने के बाद उसी दिन रात को भोलानाथजी ने तुम्हें बुलाया था। उसके दूसरे दिन सुबह भी उन्होंने तुम्हें खोजा था। अन्त में माँ ने कहा–'खुकुनी को एक स्थान पर मैंने भेज दिया है' उसके बाद नानीजी की खोज की है। माँ से भोलानाथजी ने पूछा–'तुम्हारी माँ कहा हैं?'' माँ ने कहा–'उन्हें भी एक स्थान पर मैंने भेज दिया है; तुम्हारी मंगल–कामना के लिए।'' उस दिन रात को नवतरु कहाँ है पूछने पर माँ ने कहा–'उसके घर से जाने के लिए चिट्ठी आयी थी। उसे भी भेज दिया। अच्छा नहीं किया?'' उत्तर में भोलानाथजी ने कहा–'अच्छा ही किया है?' चिट्ठी में और भी लिखा है–''अब माँ को हर समय माँ–माँ कहकर पुकार रहे हैं। माँ के कमरे में जाकर लेटते ही कहा–'कहाँ, माँ को तो बार–बार पुकार रहा हूँ, माँ तो नहीं आयी।' फिर माँ के सामने

आने पर माँ–माँ कहकर पुकारते थे। माँ भी जवाब देती थी। माँ को देखने से ऐसा लगता है मानो कोई बीमारी ही नहीं है।''

आज सायंकाल नानीजी को भोलानाथजी की मृत्यु का समाचार सुनाया गया। हम लोगों ने उन्हें सान्त्वना दी। अपने ही हृदय में असहनीय वेदना रहते हुए भी सान्त्वना दे रही हूँ। इस वृद्धावस्था में नानीजी को कितना बड़ा आघात लगा, उसी के विषय में सोच रही हूँ। कोई उपाय नहीं है, विधि का विधान सिर झुकाकर मान ही लेना पड़ता है।

वैशाख 26, सोमवार– आज सुबह टेलीग्राम का जवाब मिला। माँ अच्छी ही हैं। भाव में कोई परिवर्तन नहीं है। माँ ने जो कुछ कह दिया था उसी के अनुसार काम करने को कहा। हम लोग आज ही शाम को 6 बजे की गाड़ी से कलकत्ते रवाना हुए।

वैशाख 27, मंगलवार– आज सुबह 8 बजे हम लोग कलकत्ते आ पहुँचे। पहले मझली दीदी को उतार देने के लिए हम लोग शची दादा के घर गये। वहाँ माँ और भोलानाथजी की बात कहते–कहते देर हो गयी। उसके बाद नानीजी को लेकर उनके मकान पर पहुँचे। आज एकादशी है। नानीजी के डेरे में कुछ जलपान कर हम लोग दोपहर के लगभग डेढ़ बजे चलकर दो–तीन मकानों के दरवाजों पर जा भेंट करके बिड़ला के शिव–मन्दिर में पहुँचे। सन्ध्या के बाद रामतारन बाबू, गोपीनाथ बाबू, शची बाबू और यतीश बाबू सपरिवार हमारे साथ मिलने आये। रात के लगभग 11 बजे तक बातचीत होती रही। शची दादा से सुना कि देहरादून से नरेश बाबू की चिट्ठी आयी है। उससे मालूम हुआ कि भोलानाथजी के दिवंगत होने के बाद उनका शरीर हरिद्वार लाकर 'सलिल–समाधि' (जल में समाधि) दी गयी है। माँ अच्छी ही हैं, भाव में कोई परिवर्तन नहीं है। माँ का विस्तारित समाचार नहीं है।

यतीश दादा के मुख से एक घटना सुनी। उन्होंने कहा–आज से कुछ दिन पहले उनकी छोटी लड़की बुट्टू ने स्वप्न में देखा, मानो वह काली–मन्दिर में गयी। वहाँ जाकर उसने देखा कि काली–मूर्ति के दाहिनी ओर श्री श्री माँ आनन्दमयी घुटने टेककर बैठी हुई हैं। पुजारी ने काली–पूजा के लिए बुट्टू के हाथ में फूल दिया। वह मंत्र पढ़कर काली के चरणों में हाथ का फूल देने लगी तो उसने देखा कि फूल जाकर आनन्दमयी माँ के चरणों में

गिरा। तब बुटू के मन में सन्देह हुआ। उसने सोचा कि मैं काली माँ के चरणों में अंजलि देती हूँ और वह जाकर गिरती है आनन्दमयी माँ के चरणों में। यह कैसा हुआ? उसके बाद उसने अच्छी तरह मंत्र पढ़कर फिर एक बार भक्तिभाव से काली माँ के चरणों में अंजलि दी और उसने आशा की कि अब की बार अवश्य ही माँ काली उसकी अंजलि ग्रहण करेंगी। किन्तु देखती क्या है कि अब की बार भी उसकी अंजलि आनन्दमयी माँ के चरणों में जा पड़ी है। अब उसका सन्देह मिट गया। इतना देखते ही वह जग गई।

रात को शची बाबू आकर बोले-''देहरादून से नरेश ने अपने भाई भूपेश को पत्र लिखा है। उससे खबर मिली है कि रात के 2 बजे भोलानाथजी के शरीर की हरिद्वार में ले जाकर सलिल-समाधि दी गयी है। माँ के भाव में कोई परिवर्तन नहीं दिखायी पड़ता।'' और विशेष समाचार नहीं है।

भोलानाथजी के संन्यास ग्रहण का इतिहास

मुझे याद आया हरिद्वार में कुंभ के समय एक दिन रात को लगभग 12 बजे सब लोग सो रहे थे। मैं माँ के पास बैठी थी। एकाएक माँ ने कहा-''भोलानाथ को बुला लाओ।'' मैं उन्हें बुला लायी। माँ ने भोलानाथजी से क्या कहा, मैं बाहर खड़ी थी, नहीं सुन सकी। किन्तु उसके दूसरे दिन से ही भोलानाथजी सबसे कहने लगे-''मुझे तुम लोग और अधिक दिन नहीं पाओगे। इसी संक्रान्ति के दिन मैं क्या करता हूँ, देख लेना।'' मैंने अनुमान लगाया कि कल रात को माँ ने इसी ढंग की कुछ बात कही होगी। शंकरानन्द स्वामी ने माँ से कहा-''बाबाजी तो ऐसी-ऐसी बातें कहते हैं।'' माँ ने कहा-''स्वेच्छा से थोड़े ही कहते हैं। कल रात को इसी भाव की बात हुई है।'' भोलानाथजी कुछ भी क्यों न कहें, पर कुछ नहीं कर पाये।

उसके बाद भोलानाथजी की बीमारी के समय माँ एक दिन देहरादून के आश्रम में अपने कमरे में बैठी थी। फणि बाबू, भूपति दादा और हम लोग पास बैठे थे। भोलानाथजी की बात चलने पर माँ ने कहा-''जब कहा जाता है कि इसके प्रकट न होने पर तुम लोगों की दृष्टि से हानि होगी। किसी-किसी समय उस पर वह ध्यान नहीं देता, उपेक्षा दिखाकर अपने ही भाव से चलता है। देखो न, हरिद्वार के कुंभ के समय रात के 12 बजे उसे बुलाकर एक बात कही गयी, कहा, 'देखा जायेगा'। परन्तु कुछ नहीं किया। बात

कहते समय ही मैं जानती थी कि बात नहीं रखेगा, तो भी कहा गया। क्योंकि मैं देखती हूँ कि बात न रख सकने पर भी भीतर एक क्रिया सभी के शरीर में हो जाती है। एक छाप डालना, और क्या? और किस प्रकार, जानते हो? खयाल होने पर कहना ही पड़ता है। जैसे मुँह में थूक आने पर उसे गिराना ही होता है, उसी तरह, और क्या। उसकी क्रिया भी तो कुछ होगी ही।''

उसके बाद भोलानाथजी को शायद वह बात याद आयी। एक दिन देखा, भोलानाथजी रोग की यातना से बेचैन थे। रात में माँ को बुलाया। माँ के कमरे में पहुँचते ही उन्होंने कहा–''मुझे क्षमा करो।'' और एक दिन माँ ने मुझसे एकान्त में कहा–''देखा न? भोलानाथ के गले में जनेऊ नहीं है।'' उसके अनन्तर और भी एक बात याद आयी। माँ ने मुझसे एक दिन एकान्त में निम्नलिखित घटना की बात बतायी थी (कैलास के रास्ते की घटना)– ''पहले ही पार्वती ने इरादा किया था कि भोलानाथ से दीक्षा लेगी। भोलानाथ मानसरोवर में खड़ा होकर पार्वती को एक मंत्र दे रहा था। इस शरीर को भी कुछ समय के लिए वहाँ खड़ा रखा था। उस समय इस शरीर के मुख से फिर मंत्र निकलने लगे और ऐसा खयाल आया, भोलानाथ से कहा गया–''देखो, मंत्र मुख से निकल रहे हैं, तुम सुनोगे? गेरुआ वस्त्र तो धारण कर लिया है।'' भोलानाथ ने तब कहा–'जब उत्तरकाशी में हम लोग थे, उस समय से और भी अनेक मंत्र मैंने जान लिये थे।' इसे सुनकर यह शरीर चुप हो गया। थोड़ी देर बाद यह शरीर चलने लगा और मंत्र मुख से निकलने लगे। दूसरे ही क्षण भोलानाथ बोल उठा–'बोलो, बोलो, यह तो संन्यास-मंत्र है'–इतना कहकर उसने बहुत आनन्द और एकाग्रता के साथ उस मंत्र को सुना। उस स्थान पर इस भाव से ऐसा हुआ था, इस कारण 'ब्रह्म एक है, द्वितीय नास्ति' इस भाव का एक नाम भी दिया गया था। अभी भी भोलानाथ का वह संन्यास नाम है। उसके आगे हरिद्वार के पूर्ण कुम्भ के समय इस शरीर के साथ उस रात के 12 बजे इस विषय में वार्तालाप भी हुआ था तथा संन्यास क्रिया आदि समाप्त कर देने के लिए कहा गया था। उसने स्वयं ही कार्य आदि करके लौट आकर कहा–''संन्यास क्रिया तो मैं समाप्त कर आया हूँ।'' उसे और भी कहा गया था–'यदि हो सके तो कुछ समय बाहर घूमते-फिरते रहने की चेष्टा करना अच्छा है।' परन्तु वह नहीं हो सका।

इन बातों की याद आने से मैं समझ गयी कि इसी कारण 'सलिल-समाधि' दी गयी है। माँ ने और भी कहा था कि भोलानाथ ने **तीर्थ सम्प्रदाय** का संन्यास ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की थी। इस कारण उसके अनन्तर एक बार देहरादून से उसे तीर्थ सम्प्रदाय में चेष्टा करने के लिए भेजा गया था। परन्तु संयोग नहीं हुआ।

वैशाख 28, बुधवार– आज भूपति दादा के विस्तारित दो पत्र आये हैं। एक शची दादा को और दूसरा मुझको लिखा है। मुझे लिखा है–''जो होने को था वह तो हो गया। भविष्य में क्या होगा, अभी बताया नहीं जा सकता। परन्तु तुम लोग यदि कुछ आभास पा गयी हो तो उसे मैं नहीं जानता। पिताजी की मृत्यु के 5 दिन पहले से ही माँ घण्टे-घण्टे में पिताजी के कमरे में आकर सेवा-शुश्रूषा की देख-रेख करती थी (दो-तीन दिन ऐसी अवस्था हम लोग भी देख आये हैं)। मृत्यु के समय भी माँ सिरहाने बैठकर पिताजी के ब्रह्मरन्ध्र से कपाल तक हाथ से छूकर एक क्रिया कर रही थी। अन्तिम साँस तक ऐसा ही किया। माँ के भाव में जरा भी परिवर्तन नहीं हुआ। किसी प्रकार की चंचलता भी प्रकट नहीं हुई। भोलानाथजी की मृत्यु के बाद उनके कैलास के मार्ग में संन्यास लेने की बात तथा उनके संन्यास का नाम माँ ने बताया था। माँ ने कहा कि इस बात को तुमसे उन्होंने पहले ही कहा है।''

शची दादा के पत्र में लिखा हुआ है–''भोलानाथजी ने माँ से मानसरोवर में ही संन्यास-मंत्र पाया था। माँ ने उनका नाम तिब्बतानन्द तीर्थ रखा था। 6 मई सन् 1938 ई. की रात्रि 9 बजकर 15 मिनट पर बाबा का शरीरान्त हुआ (इन्होंने 56-57 साल की उम्र में शरीर छोड़ दिया)। उसी रात को मैं, हरीराम, योगेश दादा, सदानन्द और शान्ति, बाबा का शरीर लेकर हरिद्वार जाकर जल-समाधि देकर लौट आये हैं। माँ के भाव में कोई परिवर्तन नहीं है। कंगन, सिन्दूर आदि में भी कोई परिवर्तन नहीं। वैसी ही मुख में हँसी, बातचीत, खाना-पीना सभी पूर्ववत् हैं। अर्थात् किसी में कुछ परिवर्तन नहीं हुआ। अविकृत, अचल, अटल भाव है। माँ कहती हैं–''मैं सधवा कब थी और विधवा ही कब हुई? पर तुम लोग मुझे जिस वेश से सजाओगे मैं तैयार हूँ। मैं जानती हूँ कि मैं एक ही भाव में हूँ।'' माँ के लिए तुम लोग कुछ चिन्ता न करो। संन्यासियों के नियमानुसार 16वें दिन अर्थात् 21-5-38 ई. स. को यहाँ और हरिद्वार में भण्डारा दिया जायेगा।''

रात को शची दादा केस्टो बाबू के निकट लिखित योगेश दादा का एक कार्ड लेकर आये। उसमें उन्होंने भोलानाथजी की मृत्यु के दिन की घटना लिखी है-''बाबा ने मृत्यु के दिन सुबह भात खाना चाहा। माँ ने स्वयं खड़ी रहकर नरम भात तैयार कराकर मूँग के जूस के साथ बाबा को खाने के लिए भेज दिया। बाबा ने कहा-'माँ ने खाया है?' मैंने कहा-'नहीं।' तब बाबा बोले-'पहले माँ को खिला आओ।' मैंने माँ से जाकर कहा तो वह वहाँ आयी और बोली-'मेरे मुख में जरा-सा दो।' माँ के मुख में जरा-सा देने पर बाबा ने कहा-'अब मुझे तुम थोड़ा खिला दो।' माँ ने वैसा ही किया। उस समय बाबा का चेहरा खिल उठा। ऐसा लगा मानो अब अच्छे हो जायेंगे। बाबा इधर माँ को माँ-माँ कहकर ही पुकारते थे। माँ भी 'यही तो माँ, क्यों?'' कहकर पास जाती थी। मृत्यु के दिन शाम को माँ जाकर बाबा के सिरहाने बैठी। रात के 9 बजे कीर्तन करने को कहा। हम लोग कीर्तन करने लगे। उसके बाद ही बाबा का देहान्त हो गया। रात के 3 बजे मोटर बस से बाबा का शरीर हम लोग हरिद्वार नीलधारा में जल-समाधि देकर लौट आये हैं।

वैशाख 30, शुक्रवार- आज योगेश दादा की चिट्ठी आयी है। उसमें लिखा है-''मृत्यु के दो-तीन घंटे पहले थोड़ा अवसर मिलने पर माँ ने बाबा से पूछा-'संन्यास-मन्त्र याद है न?' बाबा ने उत्तर दिया-'है'।'' उस पत्र में और भी लिखा है-''इस घटना से तुम लोगों के संकल्पित कर्म आदि की किसी प्रकार अंगहानि न होनी चाहिए। नाम, पूजा, यज्ञ आदि तुम लोग यथा नियम करते रहो। माँ का विधान भगवान् के विधान के समान ही अप्रतिहत है। हर समय ही इस विषय पर उनका ध्यान है। वह कहती हैं-''जो कुछ करने का है, करते चलो, इधर-उधर न ताको।'' जन्म और मृत्यु उनके लिए समान है। इस कारण किसी काम में बाधा नहीं हो सकती। यह भी तो सृष्टि की प्रतिदिन की घटना है। अवाक् होकर देखता हूँ कि माँ वज्र से भी कठोर हैं और फूल से भी कोमल हैं। बार-बार कहती हैं-''तुम लोगों के लिए ही इस शरीर के भीतर से जो कुछ आवश्यक है, होता जा रहा है नहीं तो इस प्रकार होने का कोई प्रयोजन ही नहीं था।'' इस मधुर वाणी की सत्यता ही सबको उनके चरणों में ले जाकर गिरा देती है।

वैशाख 31, शनिवार- आज हम लोग कलकत्ते से रवाना हुए। माँ की आज्ञा है कि उत्सव के भीतर ही ढाका पहुँचना होगा। ज्येष्ठ 3, मंगलवार रात्रि में माँ की तिथि-पूजा होगी।

दसवाँ अध्याय

ढाका में माँ का उत्सव

ज्येष्ठ 1, बंगाब्द 1345 (1938 ई.) रविवार-आज हम लोग ढाका आ पहुँचे। जोटू और कानू हमारे लिये स्टेशन आये थे। माँ को हर समय न पाने के कारण ढाका के भक्त हम लोगों को पाकर भी बहुत आनन्दित हुए। इस आनन्द के भीतर माँ के प्रति उनका श्रद्धा-प्रेम ही खिल उठता है। भोलानाथजी के देहान्त का समाचार सुनकर सब लोगों को बड़ा कष्ट हुआ। गत बार उनके बहुत ही आनन्द मनाने की बात लोग बार-बार कहने लगे। उत्सव यथानियम चल रहा था। स्त्रियाँ तीसरे पहर एकत्रित होकर बहुत देर तक कीर्तन करती हैं। अखण्ड नाम-कीर्तन चल रहा है। स्त्रियाँ सन्ध्या के बाद तक सुन्दर कीर्तन करती हैं। नाम-घर लोगों से भर जाता है। सन्ध्या के बाद जब स्त्रियाँ घूम-घूमकर मंजीरा बजाकर या ताली देती हुई कीर्तन करती हैं तो बहुत ही अच्छा लगता है। कुछ स्त्रियाँ बीच में बैठकर नाम लेती हैं। चन्दन का तिलक सभी को दिया जाता है। उस समय पुरुष बाहर रहते हैं। स्त्रियाँ निःसंकोच होकर आनन्द से नाम-कीर्तन करती चलती हैं। स्त्री-कंठ के मीठे नाम से सभी के हृदय में आनन्द का संचार होता है। ढाका की स्त्रियों की तरह सुन्दर कीर्तन किसी अन्य स्थान पर ऐसे नियमित भाव से नहीं होता है। यही यहाँ की स्त्रियों का गौरव है। सप्ताह में दो दिन (रविवार और गुरुवार) वे गृहस्थी के झंझटों को छोड़कर आश्रम में आकर कीर्तन में सहयोग देती हैं। उस समय नाम-घर में वे माँ का आसन स्थापित कर लेती हैं। बहुत ही सुन्दर पवित्र भाव है। स्त्रियों में उन दो दिन कोई वृथा बात नहीं होती, सभी कीर्तन का भाव लेकर ही आश्रम में आती हैं। वृद्धा, युवती, बालिका सभी यहाँ एक साथ बैठकर नाम-कीर्तन करती हैं। आज भी स्त्रियों ने नाम-कीर्तन किया। उनका भाव देखकर मुझे बहुत ही आनन्द हुआ। इसी कारण इतनी बातें लिख दी।

रात के लगभग 11 बजे स्त्री-पुरुष सभी धीरे-धीरे घर लौट गये। आश्रम में एक-एक व्यक्ति के द्वारा नाम-रक्षा की व्यवस्था है। उसी नियम से नाम चलने लगा। मैं बहुत देर तक मन्दिर के बरामदे में बैठी रही।

ज्येष्ठ 2, सोमवार– आज भी नियमित रूप से पूजा, यज्ञ और कीर्तन आदि हुए। उल्लेखनीय कोई विशेष घटना नहीं हुई। आज भी स्त्रियाँ दो–तीन घण्टे कीर्तन करती रही। उसके अनन्तर आरती उतारी गयी। उसके बाद कानू सभी को बाहर लेकर नाम–कीर्तन करने लगा। कीर्तन बहुत ही उत्तम हुआ। मुझे बहुत अच्छा लगा। आज भी रात के 11 बजे सब लोग आश्रम से चले गये।

काली–मूर्ति की अंग हानि

ज्येष्ठ 3, मंगलवार– आज पिछली रात में कृष्ण चतुर्थी तिथि पर माँ की तिथि–पूजा होगी। दैनिक पूजा के अनन्तर आज गह्वर की काली माता का दरवाजा खोल दिया गया। माँ के निर्देश के अनुसार श्रीयुत् योगेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय महाशय ने आकर दरवाजा खोला। हम लोग मन्दिर में नहीं थे। दरवाजा खोलने के बाद ही हम लोग बुलाये गये। कुलदा भैया मंदिर में थे। हम लोगों के पहुँचते ही उन्होंने कहा–''भयंकर खबर, काली माता की अवस्था देखिए।'' उसी समय बत्ती लाकर हम लोगों ने काली माँ की मूर्ति देखी–माँ के नीचे का बायाँ हाथ टूट कर गिर पड़ा है। अब क्या करना चाहिए, सभी इस विषय की चिन्ता में पड़ गये। निश्चय हुआ कि माँ को तार भेजा जाये, तब तक आदमी बुलाकर हाथ की मरम्मत करायी जाये। मरम्मत हो जाने पर साधारण जनता के लिये दरवाजा खोल दिया जाएगा। माँ ने एक बार कहा था कि काली माता के शरीर में यदि कुछ अङ्ग हानि हो जाए तो उसकी मरम्मत कर ली जाएगी (पहले भी एक बार किसी चोर के द्वारा काली माता का हाथ टूट जाने पर उसकी मरम्मत कर ली गयी थी)। किन्तु यदि ऐसे किसी विशेष अङ्ग की हानि हो जाये (जिस प्रकार की अङ्ग हानि होने से मनुष्य नहीं बचता) तो उसी समय दरवाजा बन्द करके ईंटों से चुनाई कर दी जाएगी। आज इस अवस्था में क्या करना चाहिये इस विषय में बहुत–सी आलोचनायें हुई। अन्त में पहले का ही मत निश्चित हुआ। हाथ किस समय गिरा था, इसका कोई पता नहीं। वह हाथ पहले की तरह जोड़ देना सम्भव न होगा। क्योंकि एकदम जड़ से टूट गया है। इस कारण मरम्मत की जायेगी या नहीं इस विषय में भी संदेह उपस्थित हुआ। जो हो, दोपहर को एक आचार्य को बुलाकर किसी प्रकार उस हाथ की मरम्मत करा ली गई। सुना है कि पहले जो हाथ के कब्जे की मरम्मत की गयी थी उसमें

कुछ विशेष घटना हुई थी। उसके बाद भोलानाथजी ने स्वयं पूजा की थी। इस कारण अब की बार कुलदा भाई को मरम्मत हो जाने पर भी उस मूर्ति की पूजा करने का साहस न हुआ। वे यंत्र पर पूजा करेंगे यही निश्चय किया। माँ को सारी घटना तार से सूचित कर दी गई। तीसरे पहर पाँच बजे जनता के लिये दरवाजा खोल दिया गया। काली माँ की पूजा यंत्र पर ही हुई। बहुत से पुरुष तथा स्त्रियाँ रात्रि में पूजा देखने के लिये आश्रम में रह गये। काली माता की मूर्ति साल भर के बाद एक बार ही दिखाई जाती है। इस कारण माता की इस मूर्ति को देखने के लिये बहुत से लोग बैठे रहे। रात के साढ़े तीन बजे माँ आनन्दमयी के आविर्भाव के समय फिर पूजा शुरू हुई। लड़के 'जय माँ, जय माँ, जय माँ, जय' कहकर खूब कीर्तन करने लगे। पूजा के अन्त में आरती उतारी गई। मंदिर के बरामदे में बहुत-सी स्त्रियाँ बैठकर काली माता के दर्शन करने तथा पूजा देखने लगी। वर्ष भर के बाद दरवाजा खोला गया है। इस कारण सभी अत्यन्त आग्रह से मूर्ति के दर्शन कर रहे थे। पूजा और आरती होते-होते भोर हो गया।

स्त्रियों के द्वारा नाम-रक्षा

ज्येष्ठ 4, बुधवार– आज 16 दिन से जो अखण्ड नाम-कीर्तन चल रहा है वह समाप्त होगा। सभी एक साथ घूम-घूमकर नाम-कीर्तन करने लगे। उसके अनन्तर धूप जलाकर बताशों की लूट हुई। एकाएक नाम-कीर्तन बन्द हो जाने से सभी के हृदय में एक उदास भाव छा गया। प्रसाद लेकर सब लोग धीरे-धीरे चले गये। अब तक सभी को एक काम था। नियम से सभी आश्रम में नाम-कीर्तन करने के लिये आया करते थे। आने पर सबको माला-चन्दन दिया जाता था और (माँ की कुटिया में ही नाम का आसन बिछाया गया था) एक के बाद दूसरा नियमानुसार अपने-अपने आसन पर बैठकर माँ-माँ कहकर कीर्तन करता था। दिन-रात इसी तरह नाम-कीर्तन चलता था। बीच-बीच में कोई-कोई आकर नाम-घर में पदावली भी गाते थे। स्त्रियाँ रोज ही तीसरे पहर आकर कीर्तन करती थी। नगेन्द्रनाथ राय महाशय की कन्या परिमल ही इस विषय में अग्रणी थी। वह बहुत सुन्दर ढंग से कीर्तन करती है। हिरण दीदी, किरण दीदी, हिरण दीदी की लड़की बेलून आदि बहुत-सी स्त्रियाँ बहुत अच्छा कीर्तन करती हैं। अनेक स्त्रियाँ करताल और मंजीरा बजाना सीख गई हैं। मरनी, कुलदा भाई की लड़कियाँ, अमूल्य

भाई की लड़कियाँ, मुक्ता आदि अनेक स्त्रियाँ करताल बजाना जान गई हैं। सभी माला-चन्दन से सजकर नाम-कीर्तन करती हैं। गत बार मैं आकर कह गई थी कि श्री श्री माँ का जन्मदिन गुरुवार है, उस दिन भी तुम लोग आश्रम में एकत्रित होकर कीर्तन करो तो अच्छा हो। कीर्तन में इन लोगों को इतना अधिक आनन्द है कि बात मुँह से निकालते ही सबने सानन्द स्वीकार कर लिया। उसके बाद से गुरुवार को भी कीर्तन होने लगा। सप्ताह में दो दिन कीर्तन में आने से किसी-किसी को गृहस्थी के काम में कुछ बाधा होने लगी। परन्तु उधर उनका खयाल ही नहीं था। लोगों का हँसी-मजाक भी कभी-कभी उन्हें सहना पड़ता था। किन्तु उससे उनका कीर्तन में आना बन्द नहीं हुआ बल्कि दिन-पर-दिन स्त्रियों की संख्या कीर्तन में बढ़ने लगी।

माँ कहती हैं कि घूम-घूमकर अपने भाव से ताल देते हुए ताली बजाकर कीर्तन करने से शरीर की जड़ता नष्ट हो जाती है, ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। इस बात की सत्यता क्रमश: सभी को अनुभूत होने लगी। किसी एक स्त्री को कीर्तन के समय इतना आनन्द होता है कि उसके सारे शरीर से मानो वह प्रकट होने लगता है, उसे देखते ही यह स्पष्ट समझ में आता है। माँ की करुणा का प्रभाव देखकर सभी के शरीर रोमांचित हो जाते हैं। भूदेव बाबू (वकील) प्राय: कहा करते हैं-''स्त्रियाँ इस ढंग से इकट्ठी होकर कीर्तन करेंगी, यह हमारी धारणा से भी परे था। माँ की इच्छा से यह संभव हुआ है।''

अनेक बहिनों के मुख से सुना गया है कि गृहस्थी के सारे काम-काजों में व्यस्त रहने पर भी वे आश्रम में आने के लिये हृदय में तीव्र व्याकुलता का अनुभव करती हैं। खासकर कीर्तन के दिन गृहस्थी की बड़ी-बड़ी झंझटें भी उनके आश्रम में आने में बाधा नहीं डाल सकती। वे और भी कहती हैं कि घर में पति या पुत्र और कन्याओं के बीमार होने पर पहले ही उनको चिन्ता होती है कि शायद आश्रम में जाना रुक जायेगा। भूदेव बाबू की पत्नी कल कह रही थी-''सुबह से ही चिन्ता होती है कि किस प्रकार गृहस्थी की बाधा हटाकर निर्दिष्ट समय पर आश्रम में जा सकूँगी, नहीं तो मन न जाने कैसा हो जाता है।''

श्रीयुत् बरदाचरण सेन महाशय की पत्नी बहुत वृद्धा हैं, आँख से भी उन्हें ठीक नहीं सूझता, तिस पर भी प्रतिदिन आश्रम में आकर वह कीर्तन में सहयोग देती हैं। श्रीयुत् मनमोहन नियोगी महाशय की पत्नी का शरीर भी

अस्वस्थ है, आयु भी अधिक हो गई है। किन्तु आश्रम में आना और कीर्तन में योगदान करना नियमित चल रहा है। इसी तरह सभी के भीतर तीव्र व्याकुलता देखकर श्रीकृष्ण की गोपिकाओं की बात याद आती है। किसी-किसी के सास-ससुर भी हैं। वे अपने घर में अन्य भद्र महिला को घुसते देखकर डर जाते हैं क्योंकि शायद अभी घर की बहू को लेकर वह भद्र महिला आश्रम के लिये रवाना होगी। कोई-कोई इसे प्रकट भी कर डालते हैं। यथार्थ में ऐसा है, कोई किसी के घर अब गृहस्थी की बातचीत करने प्रायः नहीं जाती। आश्रम में जाते समय एक व्यक्ति दूसरे के घर जाकर उन्हें साथ लेते हुए आश्रम पहुँचती हैं, आश्रम में आने पर भी उनमें स्त्रियों जैसा घरेलू वार्तालाप नहीं होता। सब लोग मिलकर माँ का चित्र सजाकर कीर्तन करने लग जाती हैं। माँ की विशेष कृपा के बिना ऐसा नहीं हो सकता। यह मेरा विश्वास है।

काली-मूर्ति की चिर समाधि

ज्येष्ठ 5, बृहस्पतिवार- कल ही माँ के पास से तार का उत्तर आया है। उन्होंने लिखा है-''उस काली-मूर्ति की इस देह की चिर समाधि दी जाये। उस काली-मूर्ति पर अब पूजा करने की आवश्यकता नहीं है।'' आज माँ के आदेश के अनुसार काली-मंदिर का दरवाजा ईंटों से चुन दिया गया। स.1926 ई. में पूजा आरम्भ हुई थी और आज स.1938 ई. में पूजा करके दरवाजा बन्द कर दिया गया। सभी के हृदय में चोट लगी।

ज्येष्ठ 6, शुक्रवार- स्त्रियाँ रोज ही आकर कीर्तन आदि कर रही हैं। अतः उत्सव अभी भी चल ही रहा है। आज भूपति भैया की चिट्ठी भी आई है, लिखा है-''आप लोगों का तार मिलने से पहले ही माँ ने हम लोगों से काली माता की घटना बताई थी।'' उसके बाद तार पाकर माँ ने हँसते हुए कहा-''मैंने तो पहले ही तुम लोगों से कह दिया था। अब इस काली-मूर्ति को चिर समाधि दी जाये, इस बात को पहले ही मैंने खुकुनी से कह दिया था।''

ज्येष्ठ 7, शनिवार- आज यहाँ भोलानाथजी के देहान्त के उपलक्ष्य में साधुओं को भण्डारा दिया गया और उदयास्त कीर्तन हुआ। भूपति भैया की चिट्ठी आई है, लिखा है-''15 मई से माँ को ज्वर हो रहा है। इन दिनों माँ खूब बातचीत करती हैं, शरीर भी अच्छा मालूम होता है, इसमें फिर ज्वर,

कै का भाव भी हुआ था, ज्वर 102 डिग्री तक चढ़ता है।'' इस समाचार से हम सभी बहुत चिंतित हो गए। दुर्बल शरीर में रोग का बार-बार आक्रमण हो रहा है, क्या होगा, माँ ही जानती हैं। सबके हृदय में एक वेदना का भाव जग उठा।

ज्येष्ठ 8, रविवार– भूपति बाबू ने और भी एक विशेष बात कुलदा भैया को लिखी है-''पिताजी के स्थान पर स्वामी अखंडानन्दजी दीक्षा प्रार्थियों को दीक्षा देंगे-यह माँ का कहना है।'' स्वामीजी अपने को दीक्षा दान देने के लिए बहुत ही अनुपयुक्त समझकर दीक्षा देने को राजी न थे किन्तु माँ की उस बात से दीक्षा प्रार्थियों को दीक्षा देना उन्होंने स्वीकार कर लिया। थोड़े ही व्यक्ति दीक्षा प्रार्थी थे।

ज्येष्ठ 9, सोमवार– माँ की और कोई खबर नहीं है। हम सब माँ के लिये चिन्तित हैं। भूपति बाबू ने लिखा है-''शनिवार को हरिद्वार में भण्डारा होगा, रविवार को देहरादून में भण्डारा होगा। उसके बाद माँ क्या करेंगी, पता नहीं।'' इस कारण माँ क्या करेंगी, जानने के लिये सभी उत्सुक हैं किन्तु अभी तक कोई खबर नहीं मिली।

ज्येष्ठ 10, मंगलवार– आज कलकत्ते से रामतारन बाबू के पत्र से ज्ञात हुआ कि शची बाबू गत बुधवार को ही माँ के पास देहरादून चले गये हैं और सोमवार को लौट आने की बात है। चार-पाँच दिन की छुट्टी में गये हैं। और भी लिखा है-''कलकत्ते में बिड़लाजी के मन्दिर में गत शनिवार स्व. भोलानाथजी का भण्डारा किया गया।''

ज्येष्ठ 11, बुधवार– आज शची बाबू का पत्र मिला। वह सोमवार को कलकत्ते लौट गये हैं। उन्होंने लिखा है-''माँ के पास मैं दो दिनों के लिये गया था। परन्तु इन दो दिनों में ही बहुत आनन्द प्राप्त करके आया हूँ। माँ को ज्वर हुआ था, अब अच्छी हैं।'' आज स्वामीजी ने दो व्यक्तियों को दीक्षा दी।

ज्येष्ठ 12, गुरुवार– भूपति भैया ने एक पत्र में लिखा है-''ढाका के आश्रम में भोलानाथजी की स्मृति-रक्षा करनी होगी। सब लोगों के आग्रह से माँ ने एक स्थान का निर्देश कर दिया है।''

आज योगेश भैया के पत्र से पता लगा कि माँ अच्छी ही हैं। हाथ की

वेदना थोड़ी बहुत है, भण्डारा शनिवार को अच्छी तरह से हो गया। माँ संभवत: शीघ्र ही दूसरे स्थान पर चली जायेंगी और कोई विशेष खबर नहीं है।

कल से ही भीषण आँधी-पानी चल रहा है। किन्तु तिस पर भी स्त्रियों के आश्रम में आने में कोई बाधा नहीं हो रही है। आज भी हम लोगों ने आकर कीर्तन किया। खुकी (नगेन्द्र भैया की लड़की) को किसी भी कीर्तन में आने में कोई बाधा नहीं होती। कीर्तन में उसको बड़ा आनन्द आता है, खुकी, बेलून (प्रफुल्ल बाबू की लड़की) और बेलून की माँ-ये सभी अच्छा गान करती हैं। इसलिए उनमें से एक हारमोनियम बजाकर नाम-गान करती है और साथ-साथ दूसरे लोग भी नाम गाते हैं। माँ के चित्र को फूल-चन्दन से सजाकर उसके सामने स्त्रियाँ कीर्तन करती हैं। कानू ब्रह्मचारी ने भी शनिवार को लड़कों को साथ लेकर कीर्तन आरम्भ कर दिया है। प्रत्येक शनिवार को 24 घण्टे माँ-माँ नाम की रक्षा की जा रही है। कुलदा भैया भोर से ही मन्दिर की पूजा, पाठ, होम आदि करके 11 बजे दिन में अवसर मिलते ही ऑफिस चले जाते हैं। वह आजकल फल और खीर खाते हैं, कानू शिव-पूजा करता है और अपना अध्ययन करता है। अतुल ब्रह्मचारी भी भोर से काम में लग जाता है, रसोई करना, पाद पीठ की पूजा, सिद्धेश्वरी में शिव-पूजा आदि करता है। आश्रम के काम नियम से चल रहे हैं। कालाचाँद भैया और उनकी वृद्धा माता भी लगभग 6 महीने से इस आश्रम में आए हुए हैं। कालाचाँद भैया अपनी माता की सेवा करते, श्री श्री माँ की कुटिया साफ करते तथा आश्रम का हिसाब-किताब रखते हैं। गृहस्थ भक्तों में कुछ लोग तीसरे पहर ऑफिस से लौटकर ही आश्रम में आ जाते हैं और हाथ-मुँह धोकर माँ की कुटिया में अथवा मन्दिर के छोटे-छोटे कमरों में ध्यान-जपादि करने के लिये बैठ जाते हैं। संध्या की आरती हो जाने पर कीर्तन के अन्त में सब लोगों के चले जाने पर आश्रम में एक शुद्ध गम्भीर भाव व्याप्त हो जाता है। एक तो स्थान का माहात्म्य, उस पर विशाल मैदान की निस्तब्धता।

ज्येष्ठ 13, शुक्रवार– आँधी-पानी लगातार चल रहा है। ऐसा लगता है मानो सब कुछ बह जाएगा। इसमें भी दो-एक व्यक्ति मिलने आए। आज माँ की कोई खबर नहीं मिली।

ज्येष्ठ 14, शनिवार– आज अमावस्या है, पूर्व नियम के अनुसार आज निशा रात्रि (10 या साढ़े 10 बजे) में कुलदा भैया ने मन्दिर में माँ की पूजा

की। आँधी-पानी संध्या के बाद कुछ घट गया। दो-चार व्यक्ति प्रसाद लेने आए। हेमचन्द्र नाग महाशय की पत्नी और धीरेन्द्र बाबू की माता इस रात्रि के समय भी पूजा देने आई हैं, मन्दिर के बरामदे में बैठकर वे पूजा देख रही हैं और जप कर रही हैं। रात के लगभग साढ़े 12 बजे सब लोग प्रसाद लेकर घर गए।

आज सन्ध्या समय देहरादून से मानिक का पत्र मिला। उसने ज्येष्ठ 10 मंगलवार की चिट्ठी में लिखा है-"बहुत संभव है कि माँ आगामी बुधवार को मसूरी जा रही हैं। आर्य समाज की धर्मशाला में ठहरने की बात है। माँ के साथ बीरेन्द्र भैया, भपूति भैया, अभय, दासू और रूमा देवी जा रहे हैं, मैं भी जा सकता हूँ। माँ ने निशि बाबू और मौसीजी को सोलन तथा गोदावरी को हरिद्वार सेवाश्रम में भेज दिया है।" उस चिट्ठी में श्रीयुत् शिवशंकर कविराज लिखते हैं कि-"मैं निधू को साथ लेकर आज ढाका रवाना हो रहा हूँ। रास्ते में एक-दो दिन की देर हो सकती है। और कोई खबर नहीं है।

ज्येष्ठ 15, रविवार- आज शिवशंकर कविराज महाशय पहुँचेंगे ऐसी आशा थी किन्तु वे नहीं आये। हम लोगों ने निश्चय किया था कि कल हम लोग कलकत्ते के लिये रवाना होंगे किन्तु कविराज महाशय से मिलकर माँ की सारी खबरें सुनेंगे। इस आशा से कल की यात्रा स्थगित कर दी गई।

ज्येष्ठ 16, सोमवार- आज प्रातः अमूल्य भैया और चारु बाबू (वकील) आये हैं। माँ की बात होती रही, उसके बाद अनेक बहिनें आई, दोपहर को हिरन दीदी आ पहुँची। उनके हृदय में कुछ ज्वाला हो रही है, गृहस्थी उन्हें अच्छी नहीं लगती। माँ का संग पाने के लिये उनका चित्त हर समय व्याकुल रहता है। आहार-विहार के बारे में वह बहुत संयमी हो गई हैं। माँ का आकर्षण ही इसका कारण है। वह कहती हैं-"बीच-बीच में माँ का संग न करने से मैं गृहस्थ में रह नहीं सकूँगी। इसके बाद मैं स्वयं ही घर छोड़कर चली जाऊँगी, कोई बाधा नहीं मानूँगी।" उनका हृदय बहुत ही सरल है।

तीसरे पहर यतीन बाबू की पत्नी, मनमोहन नियोगी महाशय की पत्नी, भूपति भैया की पत्नी, नगेन भैया की पत्नी, वरदा सेन महाशय की पत्नी, अमूल्य दादा की पत्नी, अखिल बाबू की पत्नी, हेम बाबू की पत्नी, धीरेन बाबू की माता, कुलदा भैया की पत्नी आदि अनेक बहिनें अपनी-अपनी लड़कियों को साथ लेकर आई। रोज ही ये सभी आती हैं। मुझे पाकर वे

सब आनन्द मनाने लगी। माँ की बात सुनती हैं और कीर्तन करती हैं। सभी नाम-घर में बैठ गई। बहुत से भाई भी आए हैं, वे स्वामी अखण्डानन्दजी के कमरे में बैठे हैं। भूपति भैया की पत्नी का शरीर अत्यन्त अस्वस्थ है। परन्तु वह इस दशा में भी आई हुई हैं। सबके साथ माँ की बातें हो रही हैं।

अमूल्य भैया की पत्नी ने एक बात कही-जो मुझे बहुत अच्छी लगी। मैं उसे बिना लिखे रह न सकी। बात-बात में उन्होंने कहा-''जिसे लोग अधिक प्यार करते हैं, उसी के ऊपर अभिमान, क्रोध आता है। उसे लोग गाली भी देते हैं। इसीलिए आज मैं पूजा के घर में जाकर माँ के ऊपर बहुत बकी। मैंने कहा-''माँ यदि दर्शन ही नहीं दोगी तो हृदय में इतनी व्याकुलता क्यों दी? यदि व्याकुलता ही दी है तो दर्शन दो ताकि तुम्हारा संग मैं अनुभव कर सकूँ। सचमुच ही बहन हृदय में ऐसा हाहाकार उठता है कि लड़कियों या पति की बात कुछ भी याद नहीं रहती, केवल माँ के लिये न जाने कैसा भाव जाग उठता है कि मैं बेचैन हो जाती हूँ।'' उनकी बात के साथ-साथ उनका भाव देखकर मैं मुग्ध हो गई। सत्यता और सरलता मानो खिल उठती है। अनेकों के मुख से सुना है-''माँ ने यह क्या कर दिया, हम तो कुछ नहीं समझती।'' उन्हें इन बातों को सुनाने की इच्छा होती है। अनेकों के हृदय में इसी तरह का भाव जाग उठता है परन्तु किसी में कम और किसी में अधिक। अनेक अपने ही घरों में शुद्ध भाव से रहने की चेष्टा कर रही हैं। कुछ सफल भी हुई हैं।

आज भी शिवशंकर बाबू नहीं आये। हमारा आगामी दिन का जाना स्थगित हो गया क्योंकि उनके मुख से माँ का विस्तृत समाचार बिना पाये हम जा नहीं सकते।

ज्येष्ठ 17, मंगलवार- आज प्रातः शिवशंकर कविराज माणिकगंज होकर आ पहुँचे। उनके मुख से माँ का समाचार मिला। माणिक के पत्र से ज्ञात हुआ कि माँ मसूरी गई हैं। हाथ की वेदना अभी है।

आगामी परसों ज्येष्ठ 19 को माँ के ढाका छोड़ने की स्मृति के उपलक्ष्य में स्त्रियाँ मिलकर माँ को बिना नमक का अन्न भोग देंगी। हर साल ही ऐसा होता आया है। बेबी दीदी ही इस विषय में प्रधान उद्यमी हैं। इस भोग के दिन उपस्थित रहने के लिये लोगों के अनुरोध से उस दिन यहाँ रहकर दूसरे दिन ज्येष्ठ 20 शुक्रवार को कलकत्ते प्रस्थान करने का निश्चय किया गया।

ज्येष्ठ 19, गुरुवार– आज प्रातः स्त्रियाँ स्नानादि करके आ गई। यह भोग कायस्थ और वैद्य ही देती हैं, क्योंकि वे अपने हाथ से रसोई पकाकर माँ को भोग नहीं दे सकती इस कारण आज के दिन वे बिना नमक की तरकारी और पूड़ी बनाकर माँ को देती हैं। सदा नहीं कर सकती इसलिए हो या अन्य किसी कारण से हो परन्तु आज इस काम में उनका बहुत ही आग्रह दिखाई पड़ता है। उन्हें आज बहुत आनन्द है। उन सबने मिलकर रसोई पकाकर दिन के लगभग एक बजे माँ की मूर्ति के सामने भोग लगा दिया। मैंने ही भोग चढ़ा दिया। इसके अनन्तर सब लोग प्रसाद खाने बैठ गए। रात को भी प्रसाद बाँटा गया। लगभग डेढ़ सौ व्यक्तियों ने प्रसाद पाया, संध्या को स्त्रियों का कीर्तन हुआ।

हम लोग कल चले जायेंगे यह जानकर सब लोग दुःख प्रकट करने लगे। माँ के चरणों के पास सब लोग एकत्र होकर आपस में एक–दूसरे के प्रति स्नेह का आकर्षण अनुभव करते थे। यह आकर्षण प्रायः जन्म सम्बन्ध के ऊपर उठ गया दिखाई पड़ता है। इसलिए माँ कहा करती हैं–''जन्म सम्बन्ध से धर्म सम्बन्ध ही बड़ा है।'' यथार्थ में वही देख रही हूँ–हमें पाकर यहाँ के माँ के भक्त जिस प्रकार सेवा यत्न करते हैं, भेंट करने के लिये कष्ट करके रोज आश्रम में आ रहे हैं, अपने कुटुम्बियों से ऐसा निःस्वार्थ प्रेम मिलना सुलभ नहीं है। धर्म का बन्धन ही केवल ऐसा सुन्दर होता है। माँ ही इस बन्धन का मूल हैं, इसी कारण सब सुन्दर है। आधी रात तक सब लोग हमारे लिये आश्रम में रहे। छोटी आयु की लड़कियाँ तक बैठकर तरह–तरह से अपनी मनोवेदना जताने लगी। कुलदा भैया की छोटी लड़की ने जाते समय कहा ''खुकुनी दीदी हमें न भूलियेगा, फिर जल्दी लौट आइयेगा।'' माँ की करुणा सभी घटनाओं में देखकर मैं अवाक् और मुग्ध हो रही हूँ। नाना प्रकार से वह करुणा वितरित करती जा रही हैं। हम अन्धें हैं इस कारण उसे देख या समझ नहीं सकते। कल षष्ठी पूजा है। इस कारण कुछ लोग कल हमारे प्रस्थान करने के समय नहीं आ सकेंगे यह कहकर दुःख प्रकट करने लगे।

ज्येष्ठ 20, शुक्रवार– आज प्रातः ही हिरण दीदी आ पहुँची। कल रात को उन्हें नींद ही नहीं आई। सारे काम छोड़कर भोर में ही चली आई। धीरे–धीरे नगेन दादा अपनी लड़की को लेकर आए। गणेश बाबू की पत्नी जल्दी–जल्दी अपनी पूजा समाप्त करके आई हैं। मनमोहन बाबू की पत्नी का शरीर

अच्छा नहीं है, तथापि वह धूप में हाँफते हुए आकर उपस्थित हुई। अमूल्य दादा और शिवशंकर कविराज आदि भी आ गये, और भी कुछ लोग आये। यतीन बाबू की पत्नी आदि कोई-कोई नहीं आ सकी, इस कारण उन्होंने चिट्ठी लिख भेजी है। हम लोग चल पड़े। कानू, जटू, मारवन (चिन्ताहरण बाबू का लड़का) आदि कुछ लड़के हमें लेकर स्टेशन पर गाड़ी में सवार कराने के लिये आये। हिरण दीदी हमारे रवाना होने के पहले ही चली गई थी। स्टेशन पर जाकर देखा कि अतुल बाबू (भ्रमर के पिता) और चारु बाबू (भ्रमर के चाचा) हमसे भेंट करने आये हैं। उनके साथ हिरण दीदी भी अपनी लड़की बेलून को साथ लिये फिर आ गयी। मैंने देखा कि माँ को न पाकर इनकी व्याकुलता बहुत बढ़ गई है, मुझ तक नहीं छोड़ना चाहते, माँ की करुणा किस ढंग से कार्य करेगी कोई नहीं समझ सकता। सुनीति देवी (बेबी दीदी की भौजाई) हमारे साथ नारायणगंज तक आई।

मैंने देखा कि ढाका की बहुत-सी स्त्रियों में गृहस्थी के काम-काज के भीतर भी आत्मोन्नति की कामना जगी है। उनमें से अनेक महिलायें गुप्त रूप से साधन-भजन का काम करती हैं। मनमोहन नियोगी महाशय की पत्नी एक कन्या की मृत्यु से बहुत ही शोकाभिभूत हो गई थी, उसी समय माँ एक बार ढाका गई थी, उन्हें बहुत कष्ट से घर के लोग माँ के पास उठा लाये, उस दिन माँ के पास जाने के बाद से ही वह भीतर-ही-भीतर एक शक्ति का अनुभव करने लगी। अब तक बिछौने पर पड़ी थी किन्तु इसके पश्चात् वह रोज ही माँ के पास आने लगी। माँ के जाते समय उन्होंने कहा-''माँ, आप तो चली जा रही हैं, मैं कैसे रहूँगी; फिर से कन्या का शोक मुझे अधीर कर डालेगा। इन कई दिनों तक मैं सब कुछ भूल गई थी।''

माँ ने एकान्त में उनकी छाती पर हाथ फेरते हुए कहा-''नहीं फिर शोक नहीं आएगा। तुम भगवान् का नाम लेती रहो।'' यथार्थ में ही इसके बाद से उनके भीतर काया पलट हो गया। वह अब गृहस्थी का काम कुछ भी नहीं देखती थी। पूजा, जप और कीर्तन आदि में उनका अधिक समय बीत जाता है। आश्रम में हर एक कीर्तन में योगदान देना और हम लोगों के ढाका पहुँचने पर प्रतिदिन आश्रम में आना उन्होंने नियम बना लिया था और केवल यही प्रार्थना करती थी कि 'भगवान् के प्रति मेरी भक्ति हो।' इन्होंने बाजितपुर में ही माँ का संग पाया था। माँ के मुख से सुना है कि यह अच्छी गृहिणी

हैं। परन्तु अब गृहस्थी के काम-काज उन्हें अच्छे नहीं लगते। वह कहती हैं- ''क्या जन्म भर गृहस्थी की नौकरी बजानी होगी?'' माँ की करुणा से अनेकों के हृदय में धर्म का भाव जगा है-देखकर बहुत ही आनन्द होता है।

हम लोगों को आने के पूर्व ही मानिक के पत्र से मालूम हो गया था कि, ''माँ संभवतः आजकल ही रायपुर जायेंगी। मुझे लखनऊ जाने की आज्ञा दी है।''

ज्येष्ठ 21, शनिवार– आज हम लोग कलकत्ते आ पहुँचे। शची दादा की मोटर से बिड़ला मन्दिर आए, रास्ते में शची दादा के मकान पर होकर उनके मुँह से माँ की कुछ बातें सुनकर आई।

आज सन्ध्या को खबर मिली कि शची दादा के पास भूपति दादा की चिट्ठी आई है कि माँ गत मंगलवार ज्येष्ठ 17 को रायपुर आ गई हैं।

ज्येष्ठ 24, मंगलवार– आज बीरने दादा ने रायपुर से लिखा–''माँ रायपुर में हैं, माँ का शरीर बहुत ही दुर्बल होता जा रहा है किन्तु उनके चेहरे पर मधुर हँसी वैसी ही है। माँ को देखकर हृदय में शंका उठती है, उसे किसी तरह हटा नहीं सकता।''

ज्येष्ठ 26, गुरुवार– आज सुबह भूपति दादा माँ के पास से यहाँ आ पहुँचे हैं। उनसे सुना कि माँ का शरीर अब कुछ अच्छा मालूम हो रहा है। माँ रायपुर में ही संभवतः कुछ दिन निवास करेंगी, और भी कहला भेजा है– ''खुकुनी को कुछ दुःख और अभिमान हुआ होगा क्योंकि मैंने उसे अपने पास से हटा दिया है। उससे कहना कि इसका बुरा न माने, उसके कल्याण के लिये ही समय-समय पर ऐसा करना पड़ता है, इत्यादि-इत्यादि।'' माँ की इस बात के भीतर कितनी मधुरता है। दुःख-मिश्रित आनन्द से आँखों में आँसू आ गये।

माँ जो कुछ करती हैं सबके कल्याण के लिये ही करती हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। किन्तु मन सम्हलना नहीं चाहता, वेदना पुंजीभूत हो जाती है। फिर विचार से उसे शान्त करना पड़ता है।

ज्येष्ठ 27, शुक्रवार– आज भी प्रातः भूपति दादा ने आकर माँ की बात कुछ-कुछ बताई। बात-बात में उन्होंने कहा–''मैं और बीरेन दादा दोनों ने मिलकर माँ को घेर लिया और आग्रह किया कि शरीर को अच्छा करना

होगा। एक दिन माँ ने बात-बात में हँसते हुए उसका उत्तर दिया-“देखो, जिस प्रकार तुम लोग चाहते हो कि यह शरीर अच्छा हो जाये वैसे ही यह शरीर पंगु हो जाये, एकदम खत्म हो जाये, इस प्रकार की कामना भी कुछ लोग करते हैं। वैसे भाव भी यह शरीर ग्रहण करता है, वैसे तीव्र विद्वेष भाव कभी-कभी तुम्हारी शुभकामनाओं से भी प्रबल हो जाते हैं। यह शरीर उनके लिये भी तो है।

ज्येष्ठ 28, शनिवार- आज माँ के एक भक्त सपत्नीक आकर मुझे रामकमल भट्टाचार्य का कीर्तन सुनाने के लिये एक मकान पर ले गए। मानभंजन का कीर्तन था, कीर्तन के भीतर एक बात मुझे बहुत अच्छी लगी। माँ की बात के साथ बिल्कुल मिल गई। इस कारण उसे लिखती हूँ। सखी राधिका से कहती है-“तुम राजा की कन्या हो और वयस में कुमारी हो।” इस कुमारी शब्द की व्याख्या होने लगी-“कुमारी तीन प्रकार की हैं। एक जिसका विवाह न हुआ हो, दूसरी विवाह होने पर भी ऋतुमती न हुई हो, तीसरी युवा वयस होने पर भी जिस लड़की में अभी “कु” भाव नहीं जगा है अर्थात् जिसका “कु” मार दिया गया है, वही कुमारी है। राधिका इस अन्तिम प्रकार की कुमारी थी।

चिरकुमारी माँ

मुझे याद आया। कभी-कभी माँ प्रसंगवश भक्तों से अपने को दिखाकर कहा करती हैं-“तुम्हारी यह लड़की कुमारी है। क्या यह तुम्हें नहीं मालूम?” फिर भोलानाथजी की मृत्यु के बाद भी बात-बात में माँ ने कहा था-“मैं आरम्भ में कुमारी ही थी, अभी भी कुमारी हूँ। तो तुम लोग जो देखते हो कि इस शरीर का विवाह हो गया था परन्तु वास्तव में मैं कुमारी ही हूँ। कुमारियाँ भी शंख की चूड़ी और सिन्दूर पहनती हैं। वैसा ही तुमने भी इस शरीर को पहिना दिया है। इसी से पहिनती हूँ।

ज्येष्ठ 29, रविवार- आज रायपुर से बीरने दादा का एक पत्र मिला। उन्होंने लिखा है कि, “माँ प्रसन्न हैं। सुबह थोड़ा दूध, दोपहर को दूध-रोटी और कुछ तरकारी, तीसरे पहर कभी-कभी थोड़ा फल और रात को बिना नमक की तरकारी जल में सिझाकर तथा दूध लेती हैं।”

श्रीयुत् नरेशचन्द्र चक्रवर्ती कल माँ के पास चले गए। कुछ दिन वहीं रहेंगे। शिशिर आज तीन दिन हुए एक-वस्त्र में तारापीठ चला गया। भीतर

एक सुन्दर भाव है। एक भाव में वह बहुत देर तक बैठा रह सकता है। कब लौटेगा कुछ नहीं बता सका।

आषाढ़ 3, शनिवार– आज बीरने दादा के पत्र से पता लगा कि माँ दस-बारह दिन रायपुर रहकर देहरादून आश्रम में चली गई हैं। मन्मथ बाबू माँ के आदेश से गृहस्थी छोड़कर देहरादून आश्रम में आकर रहने लगे हैं। माँ के दाहिने हाथ का ग्लैण्ड (ग्रंथि) फूल गया था। उस ओर के पैर में भी दो दिन से वेदना का अनुभव कर रही हैं।

आषाढ़ 6, मंगलवार– आज कई दिनों से माँ की कोई खबर नहीं मिल रही है। हम लोग पुस्तक के कार्य के लिये कलकत्ते में ही प्रतीक्षा कर रहे हैं।

ढाका से श्रीयुत् सुरेन्द्रनाथ मुखर्जी महाशय की पत्नी माँ के पास जाने के लिये यहाँ आई हुई है।

बेबी दीदी की बात

आज बेबी दीदी की बात विशेष रूप से याद आई। उनके जीवन की घटनाएँ उल्लेख-योग्य विषय हैं। पहले ही लिखा गया है कि वह माँ का आदेश यथासाध्य पालन करने की चेष्टा करती है। ढाका में वह रोज नियमित आश्रम में जाकर निर्देश के अनुसार जप-ध्यान आदि करती है। रविवार के स्त्रियों के कीर्तन में वही प्रधान उद्योगी है कहने से अत्युक्ति नहीं होगी। अनेक लड़कियों को उन्होंने अपनी गाड़ी से आश्रम में लाकर कीर्तन कराया है। धर्म के प्रति उनका यथेष्ट अनुराग है। ज्योतिष दादा की मृत्यु के कुछ दिनों के बाद ही बेबी दीदी माँ के पास देहरादून जाने के लिये तैयार हो रही थी। इतने में ढाका से तार आया कि नलिनी बाबू (बेबी दीदी के पति) एकाएक दिवंगत हो गए हैं। बेबी दीदी का अब देहरादून जाना स्थगित हो गया। वह कलकत्ते में ही रह गई। इस घटना के कुछ दिनों बाद ही बेबी दीदी के बड़े पुत्र सुकुमार बाबू (यह आई.सी.एस. पास करके मध्यप्रदेश में जज बने थे) यहाँ पिता का श्राद्धादि कार्य करके माँ को साथ लेकर अपने कार्य स्थल पर चले गए। बेबी दीदी के प्रति उनके इस पुत्र की बहुत ही श्रद्धा-भक्ति थी किन्तु भगवान् की क्या इच्छा है कौन जानता है? कुम्भ-स्नान के बाद देहरादून पहुँचने के दूसरे दिन हमने माँ के साथ मसूरी जाकर सुना कि समाचार-पत्रों में निकला है कि वैशाख 1 को सुकुमार बाबू दौड़ती

हुई मोटर के उलट जाने से स्वर्ग सिधार गए हैं। इस घटना की बात सुनकर बेबी दीदी के लिये हम लोग बहुत ही व्याकुल हो गए। छः महीने के भीतर ही पति–पुत्र हीन होकर न जाने उनकी कैसी भयंकर अवस्था हो गई है। किन्तु कुछ दिनों के भीतर ही उनका एक पत्र माँ के पास आया। पहले ही लिखा है–''माँ, पुत्र को भी ले लिया, अब कहाँ रहूँ; क्या करूँ, लिखकर बतावें।'' उनका यह पत्र पाकर हमने समझा कि अधिक शोक के कारण दिमाग ठीक नहीं है। उसके बाद और एक पत्र आया। अस्थिरता बिल्कुल नहीं, शान्त भाव से माँ का उपदेश माँगा है। माँ ने भी मुझसे जो कुछ कहने को था लिख भेजा, उसके बाद सुना कि बेबी दीदी लड़के की मृत्यु के बाद ऐसी धीर स्थिर हो गई कि लोग देखकर आश्चर्य मानने लगे। कोई–कोई ऐसा समझते हैं कि उनके दिमाग में इतनी बड़ी चोट सहन करने की शक्ति ही नष्ट हो गई है। फिर कोई–कोई ऐसा भी कहते थे कि वह आध्यात्मिक जीवन में बहुत ही उन्नत हुई हैं। अब की बार कलकत्ते आकर मैं बेबी दीदी से मिलने गई। मुझे देखते ही हँसते हुई उन्होंने मुझे दोनों हाथों से कसकर जकड़ लिया। मैं तो एकदम अवाक् रह गई। उसके बाद मुझे एक कमरे में ले जाकर उन्होंने बिठाकर अनेक बातें की। पुत्र की मृत्यु की सारी घटनायें बताई किन्तु आश्चर्य का विषय है कि आँखों में जल की एक बूँद भी न दिखाई पड़ी। उन्होंने कहा–''प्रथम दिन शव डेरे पर लाने पर मैं बहुत रोई थी। किन्तु उसके बाद से फिर कभी रुलाई नहीं आई। कोई कहता है कि मेरा दिमाग खराब हो गया है। कोई कहता है मैंने आध्यात्मिक जीवन में बहुत उन्नति कर ली है। किन्तु मैं जानती हूँ कि माँ की असीम कृपा से मेरी ऐसी अवस्था है। दीदी, जब भी शोक की वेदना मेरी छाती के भीतर उमड़ने लगती है उसी समय माँ को स्मरण करते ही वह लुप्त हो जाती है। मैं अच्छी तरह समझती हूँ कि माँ मुझे इतने बड़े–बड़े शोक के भीतर से ले जा रही है सही किन्तु मुझे उन्होंने पकड़ रखा है। शोक मेरा कुछ भी नहीं कर सका। यथार्थ में मैं बिल्कुल शान्त हूँ।'' ऐसे योग्य पुत्र की मृत्यु के बाद उनकी ऐसी अवस्था देखकर मुझे संदेह न रहा कि इन्होंने माँ की कृपा पाई है। बेबी दीदी की शान्त, सौम्य मूर्ति को देखकर मुझे बहुत ही आनन्द हुआ। इस भेंट के दूसरे दिन ही फिर यतीशचन्द्र गुहा महाशय के मकान पर कीर्तन में बेबी दीदी आई। हम लोग भी गए। माँ की उस करुणा को पाकर उनका रूप मानो

बहुत बढ़ गया है। पवित्र भाव मानो उनके चेहरे पर खिल रहा है। जब वह कीर्तन में स्थिर भाव से बैठी थी तब उस पवित्र मूर्ति ने अनेकों की दृष्टि आकर्षित कर ली थी। माँ की करुणा इसी तरह सबके ऊपर वर्षित हो, माँ के चरणों में यही प्रार्थना है। बेबी दीदी माँ की करुणा पाकर धन्य हो गई हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। अभी हाल ही में वह यहाँ से पुरी चली गई हैं। माँ के पास जाना चाहा था किन्तु माँ ने उस समय मना कर दिया था। अब की बार भूपति दादा के पास माँ ने बेबी दीदी को जाने की आज्ञा भेजी है।

आषाढ़ 10, शनिवार– स्वामी शंकरानन्दजी बहुत अस्वस्थ हो गए हैं, योगेश दादा के साथ उन्हें काशी भेज दिया गया क्योंकि उन्होंने काशी आने की इच्छा प्रकट की थी। काशी से योगेश दादा कलकत्ते लौटकर हम लोगों से मिले। उनके साथ लगभग 3 घण्टे माँ की बातें हुई। वह अपनी माता से भेंट करने के लिये अपने देश (खुलना) चले गए। वहाँ दो-एक दिन रहकर कलकत्ता होकर उनके देहरादून जाने की बात है। उनसे सुना है कि माँ ने रायपुर से देहरादून आते समय कमलाकान्त और रुमा देवी को रायपुर में ही रहने को कहा और कह दिया–''मेरा तो कुछ पता नहीं है, हो न हो मैं फिर यहीं आ जाऊँगी। तुम लोग रहो अगर कहीं अन्यत्र जाना हो तो तुम लोगों को बुला लूँगी।'' कमलाकान्त ने माँ को छोड़कर रहने में आपत्ति प्रकट की। उस पर माँ ने कहा–''अच्छा तो चलो सभी मेरे साथ।'' इतना कहकर सबको साथ लेकर ही माँ देहरादून आई। इस घटना के बाद योगेश दादा से माँ ने कहा था कि–''कमलाकान्त ने मेरी बात नहीं मानी। इस पर भी एक धक्का आयेगा। किन्तु कमलाकान्त को वह सहन न होगा। इस कारण इस शरीर (अपने शरीर को दिखाकर) के ऊपर से जाएगा।'' केवल कमलाकान्त ही नहीं हम सभी इस प्रकार का अपराध करते हैं और दयामयी माँ सब धक्का अपने ऊपर ही ले लेती हैं तो हम कैसे आशा कर सकते हैं कि माँ का शरीर स्वस्थ रहेगा? माँ तो हर समय कहा करती हैं कि ''तुम लोगों के भाव से ही मेरा शरीर पुष्ट हो रहा है। फिर तुम्हारे ही भाव से शरीर ऐसा हो जाता है। तुम लोग चाहो तो इस शरीर को रख सकते हो नहीं तो चला जाएगा। मुझे तो इच्छा- अनिच्छा कुछ भी नहीं।''

आषाढ़ 11, सोमवार– आज नरेन दादा (चौधुरी) हमारे साथ भेंट करने

को आए। वह किसी काम से कलकत्ते आए हैं, उनके मुख से सुना है कि उन्हें चार-पाँच दिन पहले देहरादून से साधन का पत्र मिला और उससे मालूम हुआ है कि माँ रायपुर जा रही हैं, उनके मुख से और भी एक उल्लेखनीय घटना सुनी, उसे लिख रही हूँ। उन्होंने कहा-''कैलास जाते समय इसी मन्दिर में श्रीयुत् दिलीपकुमार राय ने जब माँ को गाना सुनाकर कहा-''माँ फिर कब मैं आपको गाना सुनाऊँगा?'' माँ ने उत्तर दिया-जब भी तुम इस लड़की की बात याद कर गाना गाओगे, तभी मैं तुम्हारा गाना सुनूँगा। माँ की ये बातें मेरे हृदय में बैठ गई। मुझे ऐसी इच्छा हुई कि संगीत सीखूँगी तभी तो माँ पास आयेंगी। कई दिनों तक चेष्टा की परन्तु वृद्धावस्था में क्या वैसी विद्या सीखी जा सकती है? छोड़ दिया। माँ को कैलास रवाना करके लौटते समय हरीराम के साथ एक गाड़ी में बैठकर मैं माँ-माँ का कीर्तन करने लगी। एकाएक मुझे ऐसा लगा कि श्रीयुत् दिलीपकुमार राय से माँ ने जो कुछ कहा था कि माँ को याद कर गाना गाते ही वह आकर उसे सुनेंगी। तो मैं उन्हें याद कर गाऊँ तो वह आकर मेरा गाना भी सुनेंगी। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि माँ स्वयम् आकर मेरी गोदी में बैठी हैं। इतने में सचमुच ही मैंने देखा कि कृष्ण मूर्ति की तरह एक छोटा बालक आकर मेरी गोदी में बैठकर मेरा गाना सुन रहा है। मेरी आँखें खुली थी। साफ-साफ देखा। साथ-ही-साथ न जाने मेरा कैसा भाव हो गया। कुछ क्षण वह मूर्ति रही उसके बाद गाना बन्द होते ही वह मूर्ति गायब हो गई। इतना कहकर फिर से उन्होंने कहा-मैंने अब तक यह बात सबको नहीं बताई। आज बताई है। पहले ही लिखा गया है कि माँ का दर्शन कर लेने के बाद से ये पति-पत्नी गृहस्थी छोड़कर समय-समय पर माँ का संग करने के लिये यहाँ चले आते हैं। बात-बात में जब माँ के कैलास जाते समय वे दोनों अलमोड़ा तक गए थे, उस समय की बात कहने लगे-''देखो दीदी, उस बार ऐसी अवस्था हुई थी मानो माँ को छोड़कर हम लोग किसी तरह रह न सकेंगे फिर बाल-बच्चों को किसके पास छोड़ जायँ? अन्त में जो घर में माँ का चित्र टंगा हुआ था उसी की ओर देखकर कहा-''माँ तुम ही बाल-बच्चों को देखती रहना, हम लोग तुम्हारे ही उद्देश्य से चलते हैं। इतना कहकर निकल पड़े, जाकर माँ को पाया।'' बहुत ही आवेग के साथ नरेन दादा ने इन बातों को कहा। मेरे भी हृदय में इन बातों का बहुत प्रभाव पड़ा। इस कारण लिखने बैठी हूँ।

आषाढ़ 13, मंगलवार– आज ढाका से हिरण दीदी के पत्र से मालूम हुआ है कि उन्होंने भी आश्रम में जाकर सुना है कि माँ पुनः रायपुर गई हैं। अभी तक हम लोगों को चिट्ठी नहीं मिली। ढाका से श्रीयुत् सुरेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय महाशय की पत्नी माँ के पास जाने के लिये यहाँ आई हुई थी। कुछ दिन यहाँ रहकर आज माँ से मिलने के वास्ते रवाना हो गई।

माँ के शरीर में भक्तों के नाना भावों की प्रतिक्रिया

आषाढ़ 23, शुक्रवार– माँ रायपुर में ही हैं, यह खबर मिली। बीरेन दादा और नरेश दादा माँ के पास से चले आए हैं। नरेश दादा परसों आए थे। उनसे सुना है कि माँ का शरीर दिनों–दिन दुबला होता जा रहा है। हाथ का दर्द और हृदय का स्पन्दन (*Palpitation*) बहुत है। आभास से प्रतीत होता है कि किसी भक्त की इच्छा से ही माँ को ऐसा रोग हुआ है। माँ कहती हैं–"जिससे इस शरीर के प्रति तीव्र विद्वेष है उसका वह भाव किसी समय तुमसे भी अधिक इस शरीर पर काम करता है। क्योंकि उसके भाव की तीव्रता अधिक है। ऐसा भी है कि प्रतिक्षण तीव्र विद्वेष के भाव से इस शरीर के विषय में उसने चिन्ता की है। इस कारण तुम लोग जो भक्त–भक्त कहते हो भाव की तीव्रता और निरंतर एक चिन्ताधारा जिसकी है वही बड़ा भक्त है। इस कारण उसके विद्वेष भाव की इच्छाएँ इस शरीर पर प्रभाव डालेंगी ही। सभी तो आनन्द है। एक उनकी ही सब मूर्तियाँ हैं। तुम्हारी भाषा में मैं कहती हूँ "विद्वेष भाव" किन्तु मेरे सामने अभी एक भाव। एक उनके भीतर से ही तो सारे भाव आते हैं और ग्रहण करने वाले भी वही हैं। फिर यह भी जान लो कि किसी का कोई भी भाव इस शरीर का कुछ नहीं कर सकता।" हम लोग माँ के इस भाव की बात से डर जाते हैं, क्योंकि सारे भाव ग्रहण करने से शरीर कैसे रहेगा? न जाने माँ की क्या इच्छा है। सभी भक्त माँ के लिये चिन्तित हो गए।

कल रात को शची दादा और यतीश दादा आए थे। माँ की बात होती रही। बात–बात में शची दादा ने कहा–"देखिए, दीदी, माँ की इच्छा अप्रतिहत है, उसके अनेक प्रमाण मैंने अपने जीवन में पाए हैं। कभी–कभी माँ हमारे साथ व्यावहारिक बातें करती हैं, नहीं तो हम माँ को समझ ही नहीं सकते। किन्तु यथार्थ में जब माँ अपने किसी भाव की बात कहती हैं तो वह कार्य रूप में परिणत अवश्य होगा। वह अन्यथा नहीं हो सकती।"

माँ के भीतर कोई संकल्प–विकल्प नहीं है

शची दादा ने और भी कहा–''माँ की और भी एक दिशा है। उधर ध्यान देने पर मालूम होता है कि उनके भीतर कोई भी तार नहीं बजता अर्थात् उनमें कोई संकल्प–विकल्प नहीं है। किन्तु फिर भी उनके भीतर सब कुछ है। जो जहाँ से जिस भाव पर आघात करता है उनके भीतर वही तार बज उठता है। इस कारण विद्वेषी का विद्वेष भाव भी वहाँ पहुँचकर बज उठता है। माँ सानन्द उसे भी अपना लेती हैं और शरीर में उसे प्रकट करती हैं।'' भाव के आवेग से शचीदादा शिव–मंदिर के बरामदे में बैठकर ये बातें कह रहे थे–''किसी साधु के पास जाने पर देखता हूँ कि उनका एक अपना सुर है। कोई जाकर उसी सुर में सुर मिलाता है तो उन्हें आनन्द मिलता है। परन्तु अपनी माँ के पास देखता हूँ कि सभी सुर हैं, फिर कुछ भी नहीं है। कोई भी सुर बजाओ वही उनके भीतर है, उसी से उन्हें आनन्द है। ऐसी चीज की दुनियाँ में कोई तुलना है? माँ की तुलना केवल माँ ही हैं।'' चाँदनी रात, निर्जन शिव–मंदिर, भक्त के हृदय का उद्गार बहुत ही चित्ताकर्षक लग रहा था। माँ का सान्निध्य जो जितना अधिक पायेंगे, वह इन सब बातों की सत्यता की उपलब्धि उतना ही करेंगे।

इस समय किरण दीदी, कमलाकान्त, रुमा देवी और अभय माँ के पास हैं। नरेश दादा कहते थे कि वह अब की बार बहुत ही आनन्द पाकर आए हैं। जो जितना अधिक माँ के पास से मिलते हैं वे उतना ही गम्भीर आनन्द का अनुभव करते हैं।

आषाढ़ 30, शुक्रवार– माँ की खबर मन्मथ बाबू और कमलाकान्त की चिट्ठियों से जो कुछ पाती हूँ, उनसे सुना है कि माँ के हाथ की वेदना है ही, शरीर भी बहुत दुर्बल है। माँ रायपुर में ही हैं। माँ के भक्तों में प्रायः सभी कहते हैं कि ''खुकुनी दीदी के माँ के पास जाने पर हम बहुत आनन्दित होते हैं और माँ के शरीर के विषय में भी निश्चिन्त रहते हैं। परन्तु न मालूम क्यों माँ ने उन्हें दूर रखा है।'' नरेश दादा ने अब की बार जाकर माँ से अनुरोध किया था कि ''माँ, आप खुकुनी दीदी को बुला लीजिए।'' उसके उत्तर में माँ ने कहा था–''क्या मैं नहीं जानती कि उसके आने पर इस शरीर का हर तरह से सेवा यत्न होता है। किन्तु उनके मंगल के लिये ही तो उसे दूर रखना पड़ा है।'' माँ की बात का प्रतिवाद करने की शक्ति या युक्ति

किसी के पास नहीं है। माँ से प्रार्थना करती हूँ कि माँ हमें उनकी आज्ञा पालन करते रहने की शक्ति प्रदान करें। दूर रहने के कष्ट से उनके आदेश का कभी उल्लंघन न करूँ। वह तो हर समय ही कहती हैं कि आदेश के साथ-साथ ही वह रहती हैं। हम उनका अनुभव कर सकें यही प्रार्थना है।

श्रावण 1, रविवार– रायपुर से कमलाकान्त का एक पत्र आया है। उससे पता चला कि माँ इधर देहरादून गई थी। आश्रम में तीन-चार दिन रही थी। बीरेन दादा और नरसिंह के संकल्प के अनुसार आश्रम में माँ की आरोग्य कामना के लिये श्रीयुत् मन्मथ बाबू होम कर रहे हैं। कीर्तन आदि भी हुए हैं। फिर माँ रायपुर लौट गई हैं। इस समय उनके साथ अभय, रुमा देवी, साधन, कमलाकान्त और निगमानन्द स्वामी के एक शिष्य हैं। अभंय का भी एक पत्र कई दिन हुए आया है। उसने लिखा है-''माँ का शरीर अस्वस्थ ही है, माँ अभी भी कहती हैं-'तुम लोगों के नाम-कीर्तन करने से ही मेरा शरीर स्वस्थ होगा।' इस कारण हम लोगों ने निश्चय किया है कि प्रत्येक व्यक्ति माँ की आरोग्य-कामना के लिए एक लाख जप करेगा। श्रीयुत् मन्मथ बाबू ने कहा है-''माँ के नाम का जप ही अच्छा है, प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा करके जब तक लक्ष जप पूरा न हो तब तक जप करते चलना होगा।'' माँ से यह बात मैंने कही थी। माँ ने कहा-''तेरे मन में जब यह बात उठी है तो सबको लिख दे जिसकी इच्छा हो वह करे।''

अभय का पत्र पाकर सभी भक्त लक्ष जप करना आरम्भ करेंगे, ऐसा निश्चय हुआ। सभी स्थानों के भक्तों को खबर दी गई। जप से चित्त शुद्ध होने पर माँ से ही प्रार्थना की जाय-''माँ तुम अच्छी हो जाओ, भक्तों की यही एकमात्र कामना है।''

श्रावण 5, गुरुवार– आज दोपहर को किरण दीदी मुझसे मिलने आई, दो दिन हुए वह कलकत्ते आई हैं। माँ को वह किशनपुर आश्रम में देखकर आई हैं। माँ उसी दिन रायपुर चली जायेंगी ऐसा स्थिर हुआ है। यज्ञ के समय किरण दीदी उपस्थित थी। सुना है कि माँ का शरीर अब कुछ अच्छा है।

श्रावण 11, बुधवार– कुछ दिन हुए अभय की चिट्ठी आई, माँ सोलन गई हैं। आज शिमला से पंचू दादा का तार मिला कि माँ शिमला में हैं। हमें आज रात को ही शिमला रवाना होने के लिये आदेश दिया है।

श्रावण 14, शुक्रवार– आज गाड़ी की गड़बड़ी से हम लोग तीसरे पहर 3 बजे माँ के चरणों में आ पहुँचे। आकर माँ को प्रणाम करते ही माँ हँसकर बोली–''आज तुम लोग आओगे, जानकर आज मैं दिन में लेटी नहीं, एक बजे से बैठी हूँ।'' माँ की स्नेहपूर्ण बातों से इतने दिनों तक बाहर रहने का दुःख, वेदना और अभिमान मानो क्षण भर में काफूर हो गये। माँ के भक्त बहुत से स्त्री–पुरुष भी हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे। हम लोगों के पहुँचते ही बहुत आनन्द करने लगे। सुना है कि भक्त लोग माँ से कहते थे–''माँ, दीदी को बुलाओ। दीदी के न आने से कुछ भी अच्छा नहीं लगता।'' इत्यादि–इत्यादि। माँ के आदेश देते ही उन लोगों ने हमें तार भेजा। मेरे आने पर माँ ने उनकी तरफ देखकर कहा–''दीदी–दीदी करके सब लोग अस्थिर थे। लो तुम्हारी दीदी को ला दिया।'' इन बातों को लेकर माँ ने बहुत आनन्द किया। हृदय की वेदना भी घट गई।

माँ का शरीर एक ही प्रकार का है, देखा। माँ के शिमला आगमन के उपलक्ष्य में वहाँ के भक्तों ने नाम–यज्ञ का प्रबन्ध किया है। कल नाम–यज्ञ होगा। आज 8 दिन हुए माँ शिमला आई हैं, सोलन में कुल तीन दिन रही थी। सन्ध्या समय अधिवास का अनुष्ठान हुआ। उसके अनन्तर सब लोग माँ को लेकर बैठे, एक महिला ने पूछा–''माँ मन को मैं कभी स्थिर नहीं रख सकती, क्या करूँ?'' माँ ने हँसकर उत्तर दिया–''मैं तो देखती हूँ कि मन तो कभी अस्थिर होता ही नहीं।'' इसके बाद फिर कहा–''उनके लिये मन अस्थिर होता कहाँ है? अस्थिर होने पर ही तो स्थिर होगा।'' रात के 10 बजे मैंने लोगों को समझाया कि माँ का शरीर अस्वस्थ है। अधिक रात तक रहना ठीक नहीं, तो लोग एक–एक कर प्रणाम करते हुए चले गए।

श्रावण 15, शनिवार– आज सुबह 6 बजे से नाम–कीर्तन आरम्भ हुआ। माला–चन्दन से माँ को सजाकर स्वयं भी सजकर लोग गाने लगे–

''श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द।''

आज भी यहाँ के भक्तों के कीर्तन में माँ के भाव का कुछ परिवर्तन होने लगा, किन्तु माँ ने अपने को संभाल लिया। परन्तु शरीर न जाने कैसा हो गया। माँ ने बात–बात में कहा–''ये लोग जितने समय कीर्तन करते हैं एक विशेष अनुराग के भाव से ही करते हैं।

श्रावण 16, रविवार– आज स्त्रियों ने माँ को लेकर दोपहर 12 बजे से शाम 4 बजे तक कीर्तन किया। आज भी माँ के भाव में कुछ परिवर्तन प्रकट हुआ। जिस समय माँ महिलाओं में अपना हाथ हिला-हिलाकर घूमने लगी तो उनका उत्साह बहुत बढ़ गया। अत्यन्त आनन्द से नाचते हुए स्त्रियाँ गाने लगी–

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्रीराधे गोविन्द॥

भोलानाथजी के बारे में विविध बातें

माँ ने आज भी अपने भाव को सँभाल लिया। कीर्तन के अन्त में स्त्रियाँ माँ को लेकर बैठी। उसके बाद धीरे-धीरे एक-एक करके विदा लेकर चली गई। उनके जाने के बाद ही कुछ पुरुष आकर बैठे। भोलानाथजी की मृत्यु के समय की घटना जानने के लिये सभी व्यग्र थे, किन्तु सांसारिक भाव के भक्तों में कोई भी माँ से इन बातों को पूछ नहीं सके। कल सन्ध्या को मेरे उस घटना के सम्बन्ध में कुछ आरम्भ करते ही सब लोग बहुत आग्रह के साथ सुनने लगे। माँ भी मेरे साथ सहयोग देने लगी। माँ हँसते हुए सब बातें कह रही थी। उन लोगों ने कहा–"हमें यह घटना सुनने के लिये बहुत आग्रह था किन्तु माँ से पूछने में कुछ संकोच हो रहा था।" माँ ने हँसकर कहा–"इस समय माँ को हँसते हुए सारी घटना कहते सुनकर तुम लोग शायद समझते होगे कि मैं क्या भोलानाथ की शत्रु थी?" सब लोग एक साथ बोल उठे–"नहीं माँ, हमसे ऐसी भूल नहीं हुई है।" एक ओर एक वृद्धा स्त्री बैठी थी, उनकी ओर देखते हुए माँ हँसकर बोली–"माँ, किसी-किसी के मन में ऐसा भाव नहीं आता।" वृद्धा ने हाथ जोड़कर कहा–"माँ, मुझे ऐसा लग रहा था कि क्या ऐसा भाव रहना संभव है? हम लोग सांसारिक भाव में हैं, आपके उस उच्च भाव की धारणा ही हम नहीं कर सकते।" तब लोग जान गए कि उस महिला के मन का भाव समझकर ही माँ ने वैसी बात कही थी। कैलास की घटना को देवेन्द्र बाबू ने सुनना चाहा। माँ ने मुझसे कहने के लिये कहा। मैं बोलने लगी, माँ भी बीच-बीच में सहयोग देती रही।

काली बाड़ी में हर रविवार को कीर्तन और पाठ होता है। आज सन्ध्या के बाद कुछ लोगों ने रविवार का कार्य आरम्भ किया। माँ को वहाँ ले

जाकर बिठाया। थोड़ी देर बाद ही कीर्तन आरम्भ हुआ। मनोज बाबू ने माँ से अनुरोध किया–''माँ, एक बार हमारे कीर्तन में उतर आइए।'' माँ ऊपर काली–मंदिर के बरामदे में बैठी थी। मनोज बाबू की प्रार्थना से माँ कीर्तन में धीरे–धीरे उतर आई, ताल मिलाकर वह अपने हाथ आन्दोलित करते हुए सबको उत्साहित करने लगी। कल उदयास्त कीर्तन हुआ था। आज भी दोपहर को स्त्रियों ने कीर्तन किया है। माँ का भाव अन्य प्रकार से चल रहा था। यद्यपि माँ अपने को संभाल रही थी तथापि ध्यान देने पर मालूम पड़ता था कि उनका भाव दूसरे ही प्रकार का है। इस अवस्था में माँ को फिर कीर्तन में लाने से उनके भाव में कुछ परिवर्तन प्रकट हुआ। कुछ देर पश्चात् माँ बैठ गई। कीर्तन चल रहा था। माँ के चेहरे पर अपूर्व शोभा विराजमान थी। भक्त लोग मुग्ध नेत्रों से माँ के मुख की ओर निहारते थे। इस समय अधिक देर तक कीर्तन नहीं हुआ। माँ भी उठकर अपने बिछौने पर आ बैठी। भक्त वृन्द भी आ बैठे। माँ चुपचाप बैठी रही, घर नीरव और निस्तब्ध था। कुछ क्षणों के बाद एक भक्त ने माँ से एक–दो बातें पूछी। माँ ने भी उत्तर दिया, परन्तु जिह्वा की जड़ता के कारण वह स्पष्ट नहीं हुआ।

रात अधिक हो रही थी, लगातार पानी बरस रहा था, पहाड़ी रास्ते से सभी को डेरे पर लौटना होगा, परन्तु इस ओर किसी का भी ध्यान ही नहीं था। माँ को छोड़कर जाना कोई भी नहीं चाहता था।

भोलानाथजी के अन्तिम समय की बात

कल स्त्रियों के सामने भोलानाथजी के अन्तिम समय की बात चली थी। आज लड़कों के उसे सुनने की इच्छा होने से फिर वही बात चली। हम लोगों के चले आने के पहिले से ही भोलानाथजी माँ को माँ–माँ कहकर छोटे बच्चे की तरह पुकार रहे थे। सुना हमारे चले आने के बाद भोलानाथजी का वह भाव और भी बढ़ गया था। एकदम बच्चे की तरह माँ को हर समय पुकारते थे। माँ भी उनकी पुकार सुनते ही कमरे में आ जाती थी। मृत्यु के पूर्व दिन माँ भोलानाथजी के कमरे में ही प्राय: थी। मृत्युपर्यन्त यही भाव रहा। माँ ने कहा–''देखो, जब तक भोलानाथ का यह भाव भीतर–बाहर प्रकाशित नहीं हुआ तब तक यह शरीर हर समय भोलानाथ के पास नहीं रहा। ज्यों ही शिशु की तरह यह भाव जगा और वह निष्कपट भाव से

माँ-माँ कहकर बुलाने लगा तो उस पुकार के साथ- ही-साथ यह शरीर भी उनके पास उपस्थित हुआ। मृत्यु के पूर्व दिन रात को उन्होंने कहा-''भात खाने की इच्छा होती है।'' रात्रि का समय था, इस कारण भात नहीं दिया जा सका, दूसरे दिन सवेरे ही भात का प्रबन्ध हुआ। किन्तु जब योगेश भात के साथ मूँग का जूस मिलाकर शरबत की तरह पिलाने गया तो उन्होंने पूछा-''माँ ने खाया है? मैं माँ का प्रसाद छोड़कर और कुछ नहीं खाऊँगा। तब योगेश ने मेरे मुख में थोड़ा-सा दिया। यह देखकर भोलानाथ ने मेरी ओर देखकर कातर भाव से कहा-''तुम मुझे यह प्रसाद खिला दोगी?'' मैंने कहा-''मेरा तो हाथ ठीक नहीं रहता, अच्छा देती हूँ।'' इतना कहकर मैंने ही उसे खिला दिया। बहुत ही तृप्ति के साथ सब खाया। उसके बाद कहा-''मैं जरा तुम्हारे शरीर का स्पर्श करूँगा। मैंने देखा यह भाव भी वैसा ही है जैसा कि एक छोटा-सा शिशु माँ को पकड़ना चाहता है। मैंने हाथ बढ़ा दिया, उन्होंने मेरे हाथ को दोनों हाथों से पकड़ लिया। परन्तु उसी समय काँपते हुए उनके हाथ गिर पड़े। इसके अनन्तर उन्होंने कहा ''तुम्हें देखूँगा।'' पहले साफ नहीं देखा, इसके बाद साफ देखा और कहा-''देख लिया।'' यह वासना जागेगी, यह मैं जानती थी, इस कारण वैद्यजी को पहले ही कह दिया था-''आँखों में मक्खन लगाना और सावधानी से सर्वदा खयाल रखना।'' एक बार मैंने पूछा-''क्या तुम्हें बहुत कष्ट हो रहा है?'' कहा-''हाँ, हो रहा है, लेकिन कहाँ समझ में नहीं आता।'' मैं तो अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती। भोलानाथ बाईं करवट सोया था। मेरे हाथ से दो-तीन बार सिर से लेकर सारे शरीर पर हाथ फेरने की तरह हो गया। इसके पहले तो इस रोगावस्था में स्पर्श नहीं हुआ था। सबके द्वारा सेवा करवा ली जाती थी। किन्तु अब इस ढंग से एक क्रिया हो जाने के बाद देखा-उसका भाव बहुत ही आनन्दपूर्ण था, कोई भी यन्त्रणा नहीं थी। पूछा गया-''अब कोई कष्ट है क्या?'' हँसकर प्रसन्नता के साथ कहा-''आनन्द''। बीच में एक बार कहा था-''मैं जाता हूँ।'' मैंने कहा-''जाना-आना कहाँ है? ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।'' तब फिर कहा-''तुम तो बराबर ही मुझे ऐसी आशा देती आ रही हो।'' सन्ध्या से पहले गोला मुझे एक माला दे गई थी। रोज ही देती थी, आज मैंने उस माला को ले जाकर भोलानाथ के कमरे में रख दिया क्योंकि मैं जानती थी कि रात्रि को माला का प्रयोजन होगा और उस समय माला न

मिल सकेगी। शान्ति ने कहा था कि वह उस माला को स्पर्श करते ही चौंक उठी थी, उसे ऐसा लगा था कि यह माला जीवन्त है। भोलानाथ का शरीर तो एकदम नंगा था। शाम को कहा-''मुझे जाड़ा लग रहा है।'' मैंने उसी के एक गेरुए नए वस्त्र से उनका शरीर ढाँक दिया। कुछ दिन पहले जब संन्यास लेने की बात चली थी तब भोलानाथ ने एक बार मुझसे कहा था-''तुम्हारे ऊपर तो मेरा मातृभाव है ही, किन्तु उसे मैं बाहर प्रकट नहीं कर सकता। यदि संन्यास लूँ तो पहले तुम्हें सबके सामने माँ कहकर अर्थात् माँ शब्द से पुकारकर तुम्हारे ही हाथ से प्रथम भिक्षा लूँगा।'' मैं देख रही थी कि घटनाचक्र से उनकी वह बात पूरी हो गई। अन्न व वस्त्र अन्त में इसी हाथ से लिया।

मैंने सन्ध्या समय पूछा-''तुम तो कीर्तन पसन्द करते हो। कीर्तन सुनोगे?'' बोला-''अच्छा।'' मैंने योगेश को बुलाकर कीर्तन करने के लिये कह दिया, कुछ समय तक कीर्तन हुआ, उसके अनन्तर कीर्तन बन्द कर दिया गया। मैंने एक बार पूछा था कि ''क्या तुम्हें संन्यास का मंत्र याद है?'' बोला-''है।'' मैं देख रही थी प्रणव और मंत्र बाहर उच्चरित न होने पर भी भीतर-भीतर हो रहा था। संन्यास का मंत्र यद्यपि उसने मानसरोवर के तीर पर सुना था किन्तु संन्यास की क्रिया आदि उसे कुम्भ स्नान के दिन करने के लिये कहा गया था। उसी के अनुसार उसने स्वयम् ही उस दिन उस प्रकार की क्रियाएँ की थी। ज्योतिष और भोलानाथ दोनों को ही देखा था कि संन्यास लेने के बाद शरीर अधिक दिन तक नहीं रहा। देहत्याग के कुछ समय पहले उनके सिर (ब्रह्मरन्ध्र) पर हाथ देकर मैं बैठी थी। इसी ढंग से हाथ रह गया। मैं तो अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती, जो कुछ हो जाय। निर्मल बाबू की मृत्यु के समय भी उनके ब्रह्मरन्ध्र का स्पर्श हो गया था। सभी ने उसे देखा था, अन्तिम नि:श्वास निकलने पर मैंने वैद्य से कहा-''तुम्हारे मत से सब ठीक हो गया है न?'' उसने स्तम्भित भाव से मेरे मुख की तरफ ताक कर भोलानाथ की ओर देखा और कहा ''हाँ माँ।'' इस तरह से चुपचाप सब हो गया। घर निस्तब्ध हो गया। वहाँ उपस्थित कोई कुछ समझ न सका, तुम लोगों के द्वारा तुम्हारी नानीजी को इसी कारण मैंने यहाँ से हटा दिया था। तुम्हारी नानीजी रहती तो इस समय उन्हें शान्त नहीं रखा जा सकता था।''

सोलन में आगमन

श्रावण 17, सोमवार– आज भी सुबह से ही सब लोग आकर माँ के पास बैठ गये। दोहपर के 11 बजे माँ को भोग में ले जाकर बिठाया तो माँ बोली–"खुकुनी, आज शिमला छोड़ने का खयाल हो रहा है। तुम लोग तैयारी कर लेना। शाम को चार या पाँच बजे चलना ठीक होगा।" तब दो-एक भक्त लोग ही कालीबाड़ी में उपस्थित थे। दूसरे लोग ऑफिस चले गये थे। भोग के बाद माँ के खयाल की बात दो-एक भक्तों को मालूम होने पर उन्होंने भयंकर आपत्ति की। परन्तु अन्त में माँ की मीठी बातें सुन और दृढ़ता देखकर सब लोग जान गए कि माँ की बात नहीं टलेगी। तब वे सब लोगों को टेलीफोन से खबर देने चले गए। अन्धकार छा गया। लगातार पानी बरसने लगा। किन्तु इसी समय के भीतर फोन से खबर मिलने पर दफ्तरों से एक-एक करके भक्तजन आकर उपस्थित हुए। लोग मुझसे कहने लगे, "दीदी, आपको बुलवाया, सोचा था आप लोग यहाँ अब माँ को लेकर कुछ दिन रहेंगी परन्तु यह क्या हुआ?" मैंने कहा–"क्या करूँ बताइये। माँ के खयाल में बाधा डालना ठीक नहीं है। इस कारण मैं कुछ नहीं बोलती। माँ को अपने भाव में चलने देना ही ठीक है। प्रायः देखा गया है कि माँ शायद दूसरे की बात रखने के लिये रह गई। परन्तु उससे फल अच्छा न हुआ। परन्तु समय पर भक्तों के ऊपर कृपा करके स्वेच्छा से उनकी प्रार्थना पूर्ण करती हैं, वह दूसरी बात है।" मेरी इस बात से तथा माँ की बातचीत सुनकर और कोई कुछ न बोल सका। माँ से सब लोगों ने प्रार्थना की–"माँ, यदि जाना ही है तो कृपा करके हम लोगों के दफ्तरों से लौट आने के पहले न जाइयेगा। हम चार बजे के भीतर ही आ जायेंगे।" माँ ने कहा–"तुम लोग ठीक समय पर मुझे रवाना कर देना।" स्त्रियाँ भी खबर पाकर खाने की चीजें, फूल की माला, चन्दन आदि लेकर एक-एक कर माँ के चरणों के पास आ उपस्थित हुई। सभी कातर भाव से माँ के निकट इतने शीघ्र चले न जाने के लिये प्रार्थना जताने लगी। माँ सभी को मीठी-मीठी बातों से प्रसन्न कर रही थी। परन्तु जाना स्थिर है। जितना शीघ्र हो सका सब लोग दफ्तरों से आकर कालीबाड़ी में इकट्ठे हुए। जाने का सारा प्रबन्ध हो गया। सभी माँ को मोटर में सवार करा देने के लिये आये हैं। मोटर छूट गई। सभी उदास भाव से खड़े रह गये। रास्ते के बीच-बीच में भक्त लोग

खड़े थे। मोटर रोककर लोगों ने पूजा की, इस तरह शिमला का आनन्द-मेला तोड़कर सन्ध्या के बाद ही हम लोगों को साथ लिये माँ सोलन आ पहुँची।

थोड़ी ही देर बाद राजा-रानी माँ के दर्शनों के लिये आये। राज-कर्मचारियों ने सारा प्रबन्ध कर दिया। हम लोग शोगी बाबा के बनाये हुए घरों में आकर ठहरे। माँ के आदेश से निवारण बाबू (यह कुछ दिन हुए घर-गृहस्थी छोड़कर आये हैं) यहीं हैं। राजा ने माँ के लिये यह मकान छोड़ दिया है। पहाड़ के साथ लगा हुआ यह बंगलानुमा मकान बड़ा ही सुन्दर है।

श्रावण 18, मंगलवार- शिमला में भोर छः बजे जीतेन बाबू, धीरेन बाबू, पंकज बाबू आदि कुछ लोग आकर माँ के पास कीर्तन करते थे। अभय के नाम-कीर्तन करते ही ये लोग साथ-साथ सहयोग देते थे। यह नियम यहाँ भी चल रहा है। अभय भोर छः बजे नाम-कीर्तन आरम्भ करता है। हम लोग साथ-साथ गाते-बजाते हैं। अभय बहुत सुन्दर गाता है। छोटा लड़का है, उसका भाव भी बहुत ही उत्तम है। इस कारण उसका संगीत बहुत ही मधुर लगता है। उसके भीतर त्याग और विचार का अच्छा भाव है।

बात-बात में प्रसंग छिड़ा कि माँ की दीक्षा अपने आप हो जाने के बाद प्रथम मंत्र और स्तोत्रादि माँ के मुख से निकलने लगे थे। माँ इस बात पर हँसते हुए बोली-"छुटपन में मैं एक कमरे में बैठकर खेलती और मुँह से अपने आप न जाने कितने मंत्र और श्लोक निकलते जाते थे। फिर अपने आप सब बन्द हो जाते थे। ये सब घटनाएँ इसी तरह उस समय गुप्त हो जाती थी। इसी से कहती हूँ, जिस समय जो आवश्यक है, हो जाता है।"

फिर सुना कि रायपुर और देहरादून में कभी-कभी माँ के मुख से मंत्र, श्लोक आदि अपने आप निकले थे। सुना है कि रायपुर में संगीत के सुर में अनेक स्तोत्र दो दिन निकले थे। रायपुर में वार्तालाप करते हुए भी माँ ने एक गाना रचकर स्वयम् ही सुर देकर गाया था। वह गाना इस प्रकार है-

आमि कारे बा ऐखन डरि।
(आमि) बाहिया चलेछि तरि।।
होक ना कैनो तुफान भारि।
डुबबे ना हय तरि।।
जाँर जात्री ताँरइ तरि।

आमि ताँर भरशाइ करि।।
(आमि कारे बा ऐखन डरि)

अर्थात्- मैं अब किससे डरूँ? मैं नाव चलाकर चल रहा हूँ। भारी तूफान क्यों न हो। न हो तो नाव ही डूब जाएगी। जिनका यात्री है, नाव भी उन्हीं की है। मैं उनका भरोसा ही करता हूँ। (मैं अब किससे डरूँ?)

माँ का भाव कुछ दिनों से न जाने कैसा हो रहा है। आज दोपहर को अभय के बिछौने पर जरा लोटते ही माँ ने कहा-''सारे घर में तू लोट सकता है?'' इतना कहकर हँसते हुए माँ ने न जाने किस प्रकार के भाव से कहा-''मैं लोटूँ? मैं लोटूँ?'' इतना कहते ही माँ कमरे के एक ओर से लुढ़कती हुई दूसरी ओर पहुँच गई। उनका भाव न जाने कैसा हो गया, आँख मूँदकर शरीर को मानो छोड़ दिया। मैंने और अभय ने माँ-माँ कहकर बहुत पुकारा परन्तु कोई उत्तर नहीं। बहुत देर के बाद उस भाव का परिवर्तन हुआ परन्तु सुस्ती का भाव दिखाई पड़ा।

एक बात लिखना मैं भूल गई। कल रात के लगभग बारह बजे अभय, मौसीजी और मैं माँ के कमरे में लेटे थे। माँ उस समय बैठी थी, एकाएक उन्होंने कहा-''हरि का नाम लोगे? मैं जितना हो सके नाम करूँ और तुम तीनों भी नाम लो।'' हम लोग नाम करने लगे। माँ बैठी-बैठी मानो ऊँघने लगी। आँख की दृष्टि और मुख की हँसी न जाने कैसे परिवर्तित हो गई। माँ थोड़ी हँसी के साथ बोली-''मैं इस शरीर को लेकर जरा खेलूँ?'' माँ ने फिर कहा-''बत्ती बुझा दो।'' वैसा ही किया गया। घर में अँधेरा हो गया। कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। बहुत देर तक हम लोगों ने कीर्तन किया। उसके बाद माँ लेट गई। नाम बंद करने के लिये कहा। क्या हुआ पता नहीं लगा। दूसरे दिन फिर उसी तरह कमरे में इधर से उधर लोटने लगी। पूँछने पर माँ ने बताया-''मैंने तो कहा ही था, शरीर को लेकर जरा खेलूँ। यह भी एक खेल हो गया। कल रात को भी थोड़ा हुआ था, तुम लोग समझ नहीं सके।''

श्रावण 19, बुधवार- आज दोपहर को थोड़ा विश्राम लेने के बाद लगभग तीन बजे राजपण्डित, राजा तथा और भी कुछ लोग आकर बैठे। पण्डितजी ने माँ के मुख से निकले श्लोक (एहि भावनायभायम्) की व्याख्या की है उसे माँ के सामने पढ़कर सुनाया किन्तु पहले ही लिखा है कि माँ के भाव में न जाने कैसा परिवर्तन हो रहा था। आज भी आँखें खोल नहीं

सकती थी। क्रमशः शरीर एकदम स्थिर हो गया। लगभग दो घण्टे तक यही भाव चला। सन्ध्या समय माँ उठकर बैठ गई किन्तु नेत्रों की दृष्टि एक ओर लगी हुई है। धीरे-धीरे यह भाव कुछ घट गया। पूछने पर माँ ने कहा-"हर समय भीतर एक ही भाव है। शरीर ही तुम्हारे साथ खेलता है। बीच-बीच में शरीर वैसा दिखाई पड़ता है"-इतना कहकर माँ छोटी बच्ची की तरह हँसने लगी।

माँ के शरीर की बात

रात के लगभग दो बजे माँ लेट गई। हाथ की वेदना के लिये एक तेल की मालिश शुरू की गई थी। आज मालिश करने जाकर देखा-शरीर में तेल सूख नहीं रहा है। मैंने माँ से कहा-"माँ, आज शरीर कैसा हो रहा है, तेल शरीर में सूख नहीं रहा है।" माँ ने कहा-"तमाशा देखो, शरीर तेल नहीं ले रहा है। इसे सब लोग समझ नहीं सकते। ऐसा अनेक बार हुआ है। शरीर कुछ लेता नहीं, लौटा देता है।" मैंने कहा-"माँ, ऐसा होने पर शरीर में औषधादि की क्रिया कैसे होगी?" माँ बोली-"भोलानाथ से मैंने कई बार कहा-'शरीर को तो तुम लोगों के निकट छोड़ दिया है, तुमसे जो हो सके करा लो। परन्तु वे देखते कि शरीर नहीं लेता, लौटा देता है। उस भाव में कोई परिवर्तन होते ही इस शरीर के भीतर एक अस्वाभाविक क्रिया हो जाती थी जिसे देखकर लोग स्तब्ध हो जाते थे। किस तरह उसे ठीक करेंगे इसके लिये वे व्यस्त हो जाते थे।" ऐसी बातें कहकर फिर कहने लगी-"देखो इन बातों की धारणा कोई नहीं कर सकता। तो भी तुम लोग कहलाते हो इसी से शायद मुख से निकल जाता है।"

श्रावण 20, गुरुवार- आज भी भोर में कीर्तन आदि के अनन्तर माँ बहुत देर तक लेटी रही। साढ़े 7 बजे उठ बैठी। लगभग 10 बजे माँ का भोग हुआ।

साधुसिंह नाम के एक सिक्ख बहुत दिनों से माँ के पास आया-जाया करते हैं। वह माँ के सामने पढ़ने के लिये एक दिन अपना 'गुरु ग्रन्थ साहेब' लेकर आये। उन्होंने कहा-"माँ, मैं देखता हूँ कि मेरे ग्रन्थ के भीतर जो कुछ लिखा है आपके मुख से उसी भाव की बात सुनता हूँ। मेरी इच्छा है कि आपके निकट गुरु ग्रन्थ साहेब का कुछ अंश पढ़ूँ।" और भी बहुत से लोग

आये हैं। माँ ने कहा-''अच्छी बात है, तुम्हें इच्छा हुई है तो पढ़ो, सुनकर सभी आनन्द पायेंगे।'' माँ कभी किसी के भाव में बाधा नहीं देती हैं। जो जिस भाव को लेकर आता है, माँ उसी भाव में उसे सहयोग देती हैं। इस कारण सभी लोग माँ के पास आकर शान्ति पाते हैं।

तीसरे पहर माँ उठकर थोड़ा टहलने लगी। बात-बात में प्रसंग चला कि विधवा किसे कहते हैं? माँ अपने शरीर के प्रति अंगुली दिखाकर बोली-''पहले माता-पिता के साथ संयोग अर्थात् जन्म। उसके बाद वि+इया=बिया अर्थात् वियोग। इसी का नाम बिया (विवाह)।'' हँसते हुए से माँ ने कहा-''योग होगा तब तो वियोग?'' जिसका योग ही नहीं है तो वियोग कैसे होगा? बिया वि+इया नहीं हुआ तो विधवा कैसे होगी। और भी कहती हूँ कि धव के साथ योग सदा ही है तो उससे वियोग कैसे होगा?'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

लगभग 5 बजे राजा साहब आकर माँ को मोटर से अपने राजमहल में ले गये। माँ जाकर बाहर से ही थोड़ा घूमकर लौट आई। इसके अनन्तर राजा, रानी, दो राजमाताएँ तथा परिचारिकाओं में से कुछ लोग माँ के पास आकर बैठ गये। अभय सबको साथ लेकर कीर्तन करने लगा। क्योंकि राजमाताएँ कीर्तन सुनना पसन्द करती हैं, उनकी इच्छा से ही नाम-कीर्तन होता है। वह भी साथ-साथ गाती हैं। कुछ दिनों से राजमहल में श्रीकृष्णजी का झूलनोत्सव शुरू हो गया है। रात्रि 8 बजे कृष्णमूर्ति को झूले में बिठा दिया जाता है, कीर्तन भी होता है, इस कारण उस समय सभी माँ से विदा लेकर चले जाते हैं। उनके चले जाने के बाद स्वामीजी, निशि बाबू, जोगेश दादा आदि भक्त लोग आकर माँ के पास बैठ गए, बातचीत में रात्रि के 10 बज गये। माँ के कमरे में हम जितने लोग सोयेंगे, सबने अपना-अपना कम्बल बिछा लिया। माँ ने कहा-''इस कमरे में सोने से कर देना होगा, वह कर है भगवान् का नाम। तो आओ हम लोग कीर्तन करें, शयन बाद में होगा। अभी सोकर क्या करोगे?'' वैसा ही हुआ। माँ नाम बोलने लगी और पीछे-पीछे हम लोग भी नाम करने लगे। लगभग साढ़े 11 बजे सभी सोये।

आज काक्स बाजार से देवेन बाबू और उनकी पत्नी तथा उनके आत्मीय और भी कुछ लोग आये। माँ के दर्शनों के लिये ये लोग देहरादून गये थे। वहाँ से खबर पाकर यहाँ आ गये। देवेन बाबू की पत्नी (जिनकी अनेक

संतानें मर गई हैं और जो भयानक अस्थिर अवस्था में थी, माँ को पाकर कुछ शान्त हुई हैं) की बात पहले लिखी गई है।

श्रावण 21, शुक्रवार– आगामी श्रावण 23 रविवार को ज्योतिष दादा की मृत्यु के एक साल बाद का श्राद्ध होगा। उस दिन अनेक स्थानों पर कीर्तन, होम आदि करने का प्रबन्ध हुआ है। यहाँ भी उदयास्त कीर्तन होगा, आगामी कल शनिवार को शिमला से 20–25 भक्त आएँगे। वे यहाँ पहुँचकर कीर्तन करेंगे। राजा बहुत ही आनन्द से कीर्तन का प्रबन्ध कर रहे हैं। राजा की इच्छानुसार सारा इन्तजाम हो रहा है।

माँ के मुख से अनेक पुरानी बातें

माँ सोने के कमरे में टहल रही हैं। मैंने बात चलाई कि माँ के मुख से बाजितपुर में 'पूर्णब्रह्म नारायण' शब्द निकला था। उस पर माँ ने कहा– ''देखो, मुख से प्रथम ही पूर्णब्रह्म नारायण शब्द निकला था किन्तु जिसमें जो भाव था वह उसी भाव से आलोचना करने लगा। क्योंकि यह स्त्री शरीर है न? उसके बाद जिज्ञासा और आलोचना से नारायणी, महादेव, महादेवी आदि शब्द भी निकले थे।

फिर मैंने बात चलाई–बाजितपुर में काली–पूजा के समय की घटना–एक शुक्ल–वर्ण (लाल आभायुक्त) ब्राह्मण माँ के दाहिनी ओर से जाकर घर में प्रविष्ट हुए थे। इस बात पर माँ ने कहा–''क्या हुआ था जानते हो, दाहिनी ओर से जाकर घर में प्रविष्ट हुए। यही समाप्ति नहीं। सब बातें तो पूर्णतया हर समय नहीं निकलती। कुछ–कुछ रह जाती हैं। घटना कैसी थी, जानती हो? इस शरीर के दाहिनी ओर से ही वह ब्राह्मण की मूर्ति शून्य में प्रकट हुई थी–मैंने साफ देखा था।'' यह बात पहले नहीं निकली थी। माँ की अनेक बातें ही इसी तरह असंपूर्ण रह जाती हैं। क्योंकि सम्भवत: अभी प्रकट करने का समय नहीं आया है। मैंने कहा–''माँ, संन्यासियों के मुख से भी नारायण शब्द सुनाई पड़ता है, यह नारायण शब्द किसी मूर्ति विशेष को लक्ष्य करके तो कहा नहीं जाता। इस कारण तुम्हारे मुख से पूर्णब्रह्म नारायण शब्द निकला था।'' माँ ने कहा–''देखो, जिस समय की बात कही जा रही है, उस समय यह शरीर ग्रामीण वधू रूप से था। बाहर की ओर से ब्रह्म शब्द सुनने का कोई उपाय ही नहीं था। किन्तु मुख से वह बात निकल आई। इस

कारण बाहर से जिन लोगों ने सुना वे भी उस शब्द को सुनकर आश्चर्य-चकित होकर आपस में कहने लगे थे कि पूर्णब्रह्म नारायण, नारायणी, महादेवी कौन है।'' मैंने कहा-''माँ, तुम्हारा तो सभी उस ढंग का है, तुम तो ग्रामीण गृहस्थ घर की बहू थी, जो वृद्धावस्था में भी घूँघट काढ़ती हैं। इस अवस्था में इस समय की ऐसी लज्जाशून्यता भी तो कम आश्चर्य का विषय नहीं है। यदि शुरू से ही लज्जा न रहती तो कहा जाता कि निर्लज्जता ही तुम्हारा स्वभाव था। किन्तु वैसा नहीं है, बल्कि तुम में साधारण स्त्रियों से एक सीढ़ी ऊपर लज्जा थी। उस अवस्था से इतने शीघ्र इस अवस्था में आना क्या सहज बात है?''

माँ ने कहा-''उस समय इन बातों को मैं किससे सुनती? अपने चारों ओर जो लोग थे उनमें ऐसी बातों की चर्चा नहीं थी। केवल घूँघट काढ़कर गृहस्थी के काम में निरन्तर यह शरीर खटता था।''

ढाका के आश्रम की काली-मूर्ति की समाधि की बात चली। माँ ने कहा-''देखो जो होने को था वह ठीक ही हुआ है। शरीर के किसी अंग की हानि होने से तो चिकित्सा ही करनी चाहिए, उसी कारण मरम्मत हुई है। अभी भी जीवन है किन्तु आगामी जन्मोत्सव तक वह काली-मूर्ति बिल्कुल नष्ट हो सकती है। जो होने को था वह ठीक-ठीक हो ही गया है। यंत्र पर भी तो उनकी ही पूजा हुई है। तार का उत्तर उसी दिन पाने पर तो ऐसा न होता। जब यह काम समाप्त हो गया है तो उसके बाद जो कुछ करने की आवश्यकता है तार से वही समाचार गया है। ठीक समय पर तो तार पाया था, आगामी वर्ष तो फिर पूजा नहीं हो सकेगी। यह तो जानी हुई बात है, सब ठीक-ठीक हो जायेगा।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

भोग आदि के अनन्तर माँ को थोड़ा विश्राम देने के लिये कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया गया। अपराह्न 3 बजते ही लोग आने लगे। रोज की तरह आज भी तीसरे पहर राजा, रानी, दो राजमाताएँ, सेविकाएँ तथा अन्य स्त्रियाँ आकर माँ के कमरे में बैठ गई। सन्ध्या के पूर्व अभय ने नाम-कीर्तन आरम्भ किया। साथ-साथ सभी सहयोग देने लगे। रात के लगभग 9 बजे सब लोग एक-एक करके प्रणाम करके चले गये। अभय ने माँ से गान करने के लिये अनुरोध किया। माँ गाने लगी-

हृदय दुआरे आजि के डाकिलो?
काहार मधुर वाणी शुनिलाम? (3)
ओ कि शुनिलाम? (3)

शुनिया शे वाणी ताँर, (आमि) रहिते ना पारि आर,
हृदय आकुल आजि हइलो (3)
मोह मदिरा पिये (आमि) अचेतने छिनु शुये
के आजि आशिया मोरे जागालो (3)

अर्थात्- हृदय-द्वार पर आज किसने पुकारा? किसकी मधुर वाणी सुनी? वह क्या सुनी? उनकी उस वाणी को सुनकर मैं रह नहीं सकता। आज हृदय व्याकुल हो रहा है। मोह-मदिरा पीकर मैं अचेतन होकर सोया था। आज किसने आकर मुझे जगाया?

भटियारी सुर में बहुत ही मधुर भाव से माँ ने इस गाने को गाया। ज्योतिष दादा के गान करने के लिये कहने पर वे प्राय: यही गान गाया करते थे। उनके मुख से यह भावपूर्ण गान बहुत ही मधुर लगता था। रात के लगभग 12 बजे हम लोग सोये।

श्रावण 22, रविवार- आज सन्ध्या को शिमला से सभी आ पहुँचे, राजा के दरबार हॉल में आज कीर्तन होगा। बीरेन आदि कुछ लड़के आकर मंच तैयार करने के काम में लग गये। रात के 10 बजे तक मंच तैयार होने पर लोग माँ को वहाँ ले गये। माँ के वहाँ पहुँचने पर नियमित रूप से अधिवास करके कीर्तन आरम्भ हुआ। आगामी दिन भोर 6 बजे कीर्तन आरम्भ होकर उदयास्त निरविच्छिन्न कीर्तन चलेगा। आगामी कल ज्योतिष दादा की तिरोधान तिथि के उपलक्ष्य में यह कीर्तन होगा। देहरादून, ढाका, जमशेदपुर आदि सर्वत्र ही इस उपलक्ष्य में कीर्तन होगा। देहरादून में होम तथा भण्डारा होगा। कीर्तन घर में मंच पर माँ और राधाकृष्णजी के चित्रों के नीचे ज्योतिष दादा का भी एक छोटा चित्र रखा गया है।

सोलन में नाम-कीर्तन, माँ की भावावस्था

श्रावण 23, सोमवार- आज भोर 6 बजे से **"श्रीकृष्ण चैतन्य"** का नाम-कीर्तन आरम्भ हुआ। लोगों की भीड़ यथेष्ट थी। माला-चन्दन में सजकर राजा-प्रजा सभी मिलकर कीर्तन करने लगे। उधर शिमला के नाम-यज्ञ की

तरह मंदिर की एक कोठरी में भोग की व्यवस्था हुई है। पाँच आसन बिछाकर उनके सामने **निमाई, निताई, अद्वैताचार्य, श्रीनिवासाचार्य और गदाधर** का भोग दिया गया। एक वैष्णव (ब्राह्मण) ने पूजा आदि की। बाद में आरती के समय सब लोग मिलकर प्रदक्षिणा करते हुए भोग का गान गाने लगे। माँ को भी वहाँ ले जाया गया। बहुत ही उत्तम नियम है। माँ को भी उपरोक्त पाँच व्यक्तियों के साथ-साथ उसी नियम से भोग दिया गया। माँ को आसन पर बिठाया गया। माँ तथा दूसरों के उद्देश्य से आरती उतारी गई। कीर्तन खूब जम जाने पर माँ को वहाँ ले गये। दोपहर को माँ फिर शोगी बाबा की बनाई हुई धर्मशाला में आई। माँ को मैंने भोग पर बैठाया। किन्तु आज माँ के भाव में पुनः परिवर्तन दिखाई पड़ने लगा। पर वह अपने को सम्हाल रही थी।

तीसरे पहर साढ़े 4 बजे लोग माँ को फिर कीर्तन के घर में ले गये। 6 बजे के पश्चात् माँ को आगे रखकर सब लोग रास्ते में कीर्तन करते हुए चलने लगे। थोड़ी दूरी पर ही मन्दिर है और माँ जिस धर्मशाला में ठहरी हुई हैं वह धर्मशाला है। कीर्तन का दल माँ को आगे लेकर मंदिर में लौट आया और बाहर के आँगन में बहुत देर तक कीर्तन करता रहा। उसके बाद धीरे-धीरे फिर कीर्तन का दल मन्दिर से कीर्तन घर की ओर चला। उस घर में जाकर अब कीर्तन के अन्तिम पद गाये जाने लगे -

गौर एलो घरे, आमार निताई एलो घरे,
धेये एशे शचीमाता गौर कोले करे।
(आर) लक्ख लक्ख चुम्ब दिलो वदन कमले-इत्यादि

अर्थात्- गौरांग घर आये, मेरे नित्यानन्द घर आये, शची माता दौड़कर आकर गौर को गोदी में लेती हैं और लाखों चुम्बन उनके बदन-कमल में दिये-इत्यादि। उसके बाद-

''जय राधे राधे गोविन्द जय,
जय राधे राधे गोविन्द जय।''

बीरेन ने इस गाने को आरम्भ किया। सन्ध्या के समय यह गान बहुत ही सुन्दर लग रहा था। माँ के भाव में परिवर्तन होने लगा। माँ उठकर खड़ी हो गई। कीर्तन का दल माँ को बीच में रखकर मंच के चारों ओर घूमने

लगा। देखते-देखते माँ के सारे शरीर से कीर्तन होने लगा। खड़ी अवस्था से ही वह एकाएक गिर पड़ी। मैं पीछे से पकड़ने गई तो मैं भी गिर गयी। उसके बाद माँ लोटने-पोटने लगी। अल्प समय तक होने पर भी इस भाव का थोड़ा आभास पाकर लोग जी-जान से चिल्ला-चिल्लाकर कीर्तन करने लगे। नाम की ध्वनि से पार्वत्य राजधानी गूँजने लगी। दोपहर को माँ ने धर्मशाला के रास्ते में खड़ी होकर कहा था कि ''नाम की ध्वनि यहाँ तक आ रही है। ध्वनि के साथ-साथ एक ज्योति और ताप आ रहा है।'' सचमुच ही वैसा ही लग रहा था। राजा साहेब कीर्तन के साथ घूम रहे थे, साथ-साथ दीवान साहेब, उनके पुत्र तथा अन्यान्य प्रजावर्ग और कर्मचारी वृन्द ने भी सहयोग दिया था। राज्य भर में मानो एक हलचल-सी हो रही है। मानो आज राजा-प्रजा में कुछ भेद न रहा। राजा की पौशाक आज साधारण लोगों की तरह सादी है। नाम करते हुए चेहरा भी बदल गया है। एक तो राजा साहेब धर्मात्मा हैं, फिर माँ के साथ! इस नाम-कीर्तन में सभी लोग विभोर हो गये। माँ का यह भाव राजा साहेब या दूसरे लोगों ने कभी नहीं देखा था। इस कारण सभी आनन्द-विस्मय से एकदम अभिभूत हो गये, माँ जमीन पर पड़ी रही। बाद में उठकर बैठ गयी। दृष्टि स्थिर, आँखों में आँसू और आँखें लाल थी, उन अपूर्व नेत्रों की ओर निहारते हुए सब लोग हाथ जोड़े खड़े हो गये।

सन्ध्या बीत गई। माँ को पकड़कर बरामदे में लाया गया और मोटर में बिठाकर हम लोग उन्हें डेरे पर लाये। राजा साहेब और दूसरे भक्त लोग माँ को घेरकर बैठे रहे। किन्तु अधिक समय तक बैठने का अवकाश नहीं था। आज ही रात के 8 बजे सबको शिमला लौटना होगा। राजा साहेब ने ही मोटर भेजकर सबको बुलाया था और अब वही मोटर से सबको भेज रहे हैं। माँ को पुकारने पर भाव में विभोर अवस्था में वह उठकर बैठी रही, सब लोग प्रणाम करके चले गए। माँ ने अस्पष्ट शब्दों में दो-एक बातें भी कही। ऐसा भाव कुछ नया मालूम हुआ। पहले ऐसा भाव होने पर इतनी जल्दी माँ उठ नहीं सकती थी। किन्तु आज इतने अल्प समय में उठकर बैठ गई। इसे देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। याद आया कि माँ ने एक बार बहुत दिन पहले इसी प्रकार के कीर्तन की भावावस्था में कहा था-''देखो, इस शरीर की गति कब कैसी होती है, कुछ कहा नहीं जा सकता, ऐसा नहीं है कि एक स्तर पार हो गया फिर उसी स्तर में नहीं जा सकेगा। हर एक दशा में हर समय यह शरीर खेल सकता है।'' आज इस अवस्था को देखकर मुझे

याद आया कि पहले इसी भावावस्था के स्तर में यह शरीर उस दिन खेला था। इस कारण उस समय वह भाव पूरी मात्रा में होता था। साधारण भाव में लाना कठिन हो जाता था। क्योंकि उस समय उसी भाव का खेल चल रहा था और अब मानो दूसरे स्तर में आकर इस भावावस्था के स्तरों में शरीर को लेकर खेल खेला गया। इसी कारण इतने अल्प समय में इस भाव का परिवर्तन आज दिखाई पड़ा। जिसका मैंने अनुमान किया था, केवल उसी को यहाँ लिख दिया। अपार समुद्र का पार निर्णय करना मेरे जैसे व्यक्ति के लिये पागलपन है।

श्रावण 24, मंगलवार– आज भोर में उठकर माँ थोड़ा टहलने निकली। अभय साथ गया। थोड़ी देर इधर–उधर घूमकर माँ फिर धर्मशाला लौट आई। माँ को भोग दिया गया। भोग के बाद माँ थोड़ा लेट गई।

लगभग 3 बजे माँ ने मुझे होम और पूजा के काम के लिये मन्दिर में भेज दिया। वहाँ ही सुना कि माँ को खयाल जगा है कि आज ही देहरादून जायेंगी। उस समय तक सबका भोजन भी नहीं हुआ था। कल माँ का शरीर उस दशा में बीता। आज ही कैसे रवाना होंगी, कोई समझ न सका। परन्तु शुरू से ही मैं देख रही हूँ कि कोई भी विषय माँ के खयाल में बाधा नहीं डाल सकता। जो कुछ वह करेंगी और बोलेंगी कोई भी सुविधा या असुविधा क्यों न उपस्थित हो, माँ को उसकी परवाह ही नहीं है। हम लोग कुछ कहने जायें तो कहती हैं–''चिन्ता क्यों करती हो। इसी तरह हो जाएगा।'' पहिले ऐसी बात सुनकर चिंतित होती थी किन्तु अब देखते–देखते समझ गई हूँ कि सचमुच ही कोई एक अचिन्तनीय घटना उपस्थित होकर माँ का सब कुछ ठीक हो जाता है।

यह खबर राजा साहब के कानों में पहुँची और दूसरे जिस किसी के कान में पड़ी वह दौड़कर आने लगा। नये लोग अवाक् रह गये। किन्तु राजा साहब दुःखी होने पर भी आश्चर्यचकित नहीं हुए। माँ के इस प्रकार का आना–जाना उन्होंने बहुत बार देखा है। इस देश की कुछ स्त्रियाँ आई हैं। माँ ने उन लोगों से कहा–''नाम–कीर्तन करो, खाली मन और मुख से केवल बैठे रहना उचित नहीं है।'' एक महिला ने माँ से कहा–''माँ गृहस्थी के अनेक काम करने पड़ते हैं, तो नाम कैसे लूँगी।'' माँ हँसते हुए ताली देकर स्वयम् ही गाने लगी –

मन में हरि का नाम,
हाथ में दुनिया का काम,
इसी से मिलेगा परमात्मा राम।

मैंने हँसकर कहा–''तुम्हें तो देखती हूँ कि बात–बात में कविता आती है।'' माँ बच्चों की सी हँसी हँसने लगी।

नाम से ही माँ का शरीर स्वस्थ रहता है

कल दोपहर को जब माँ कीर्तन में बैठी थी तब कुछ समय माँ के मुख का भाव देखकर भक्त लोग डर गये थे। अखण्डानन्दजी की बात से पंचू दादा और मनोज दादा जाकर माँ को उठा लाये। धर्मशाला में आकर उन लोगों ने माँ से कहा–''माँ, आपका शरीर कमजोर है, उसके ऊपर कीर्तन में वह न जाने कैसा हो गया था, हमें डर लगता है। आपका शरीर अच्छा न होने तक हम लोग नाम–कीर्तन नहीं करेंगे।'' माँ ने कहा–''नाम–कीर्तन नहीं करूँगा ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए। तुम लोग नाम–कीर्तन करके ही तो इस शरीर को चंगा कर रहे हो। तुम लोग जो जप करते हो वह औषध का डोज और जो कीर्तन करते हो वह है इन्जेक्शन। इन्जेक्शन देते समय रोगी ऊह–आह करता है किन्तु उसके बाद फल दिखाई पड़ता है। यह भी ऐसा ही है।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

माँ चली जा रही हैं, इस कारण राजा साहब ने थोड़ी देर के लिये माँ को राजमहल में ले जाने की प्रार्थना की। हम लोग माँ को लेकर राजभवन में गये। वहाँ घण्टे भर रहकर फिर लौट आये। राजा साहब ने माँ की फोटो खिंचवाई। रात के 8 बजे हम लोग राजा साहब की दो मोटरों में कालका के लिये रवाना हो गये। लगभग 26 मील का पहाड़ी रास्ता तय करने में दो घण्टे का समय लगेगा। अब की बार माँ अभय को सोलन में छोड़कर चली, कह आई–''जब इच्छा हो वह चला आवे।'' किस पर कब कैसा आदेश होगा, वह कहा नहीं जा सकता। अभी देखा है कि पास रखकर बहुत ही प्यार जता रही हैं। अभय का सुन्दर भाव देखकर माँ उसे बहुत ही स्नेह दिखा रही हैं। सोलह–सत्रह वर्ष का लड़का है और उसमें बहुत ही त्याग का भाव देखकर सबने समझा कि अभय अब बराबर माँ के साथ ही रहेगा। किन्तु दूसरे ही क्षण माँ का जो आदेश होगा उसकी धारणा भी कोई नहीं

कर सकता। अभय हमारे साथ कालका तक आया। हम लोग रात के दस बजे कालका पहुँचे। निवारण बाबू थोड़े ही दिन पहले माँ के आश्रम में आये हैं। माँ ने इन्हें भी साधन-भजन के लिये सोलन में रखा है। माँ के लिये जो धर्मशाला बनाई गई है उसी में यह रहते हैं। यह एकाउन्टेंट थे। अब पेन्शन पाते हैं। यह भी हमारे साथ कालका तक आये। रात के 11 बजे हमारी गाड़ी छूटी। अभय और निवारण बाबू राजा की मोटर से सोलन लौट गये। माँ के साथ अखण्डानन्दजी, मैं और रूमा देवी चले। काक्स बाजार के देवेन्द्र बाबू सपरिवार माँ के साथ आए, मौसीजी और निशि बाबू सोलन में रह गये।

देहरादून आगमन

श्रावण 25, बुधवार– आज दिन के लगभग 7 बजे हम लोग देहरादून आ पहुँचे। राजा साहब के फोन से माँ के आने का समाचार जानकर जोशीजी, काशी बाबू की पत्नी लक्ष्मी रानी, शारदा आदि कुछ लोग स्टेशन पर माँ की प्रतीक्षा कर रहे थे। माँ को लेकर सब लोग किशनपुर आश्रम आये। आश्रम में श्रीयुत् मन्मथ बाबू, जोगेश दादा और कमलाकान्त हैं। माँ के आगमन से सभी को आनन्द है।

लगभग 1 बजे माँ का भोग हुआ। उसके बाद थोड़ा विश्राम लेने के लिये माँ के कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया गया। तीसरे पहर कुछ लोग माँ के दर्शनों के लिये आये। सन्ध्या समय नाम-घर में कीर्तन हुआ। साधन ब्रह्मचारी एकाएक रायपुर से आकर माँ को देखकर बहुत ही आनन्दित हुए। रात को लगभग 11 बजे सभी विश्राम करने के लिये गये।

श्रावण 26, गुरुवार– रोज ही माँ के नाम से अनेक चिट्ठी-पत्रियाँ आती हैं। समय पर माँ को पढ़कर सुनाई जाती हैं। माँ को खयाल होने पर उत्तर देते समय दो-एक बातें हमें बतला देती हैं। आश्चर्य की बात यह है कि वह दो-एक बातों से ही लम्बी-लम्बी चिट्ठी का उत्तर ठीक-ठीक हो जाता है। सभी चाहते हैं कि चिट्ठी के उत्तर में माँ के मुख की दो-एक वाणी रहे परन्तु मुश्किल यह है कि खयाल न होने पर एक भी बात नहीं मिलती। फिर खयाल हुआ तो चिट्ठी पढ़कर सुनाते ही दस पन्द्रह चिट्ठियों के उत्तर में कुछ न कुछ बतलाती रहती हैं। पहिले ही कहा गया है कि उनकी दो-चार बातों से ही सारी चिट्ठी का सुन्दर उत्तर हो जाता है।

दो-तीन दिन हुए, श्रीयुत् महेशचन्द्र भट्टाचार्य ने विन्ध्याचल से माँ को पत्र लिखा। उसका आशय यह है कि माँ बतावें-''विन्ध्याचल या काशी कहाँ मृत्यु होना अच्छा है। माँ का व्यक्तिगत मत प्राप्त होने पर अपने को अनुगृहीत समझूँगा। मुझे तो विन्ध्याचल ही अच्छा लगता है किन्तु पण्डित लोग कहते हैं कि काशी के तुल्य स्थान नहीं है।'' इन्होंने पहले कभी माँ को पत्र नहीं लिखा था, यही प्रथम है। माँ के पास इनका आना-जाना नहीं था किन्तु एक बात दिखाई पड़ती थी कि बीच-बीच में कहीं-न-कहीं भेंट हो जाया करती थी और माँ की बताई हुई एक-दो बातों का पालन उन्होंने श्रद्धा के साथ किया। बाहर की ओर से इतना ही परिचय था। यह अपनी चेष्टा से बड़ी गरीबी से लखपती हुए थे। बाहरी दृष्टि से यह एक दुनियादार व्यापारी हैं परन्तु माँ कहती हैं-''इनके भीतर वस्तु है।'' आज इस भाव का पत्र पाकर माँ के प्रति उनकी आन्तरिक श्रद्धा का परिचय मिला। उत्तर के विषय में पूछने पर माँ ने कहा-''लिख दो बाबा, सबके लिये एक बात नहीं है। यथार्थ बात क्या है जानते हो? काशी तो तुम्हारे अन्तर में है। तुम्हारे लिये काशी, विन्ध्याचल एक ही है। इसे याद रख जहाँ शान्त भाव से उस एक की स्मृति जागृत रखने की चेष्टा कर सको उसी स्थान पर रहना। जिस स्वधन में धनी होने से मनुष्य यथार्थ धनवान होता है, उसी धन से तुम धनवान हो (पर तुम अपने अन्तःपुर की खबर नहीं जानते) पर वर्तमान में तुम्हारे पास वह प्रकट नहीं है। इस कारण तुम्हारे लिये काशी-विन्ध्याचल को समान बताया गया। प्रत्येक निःश्वास-प्रश्वास में उस एक की स्मृति जागृत रखने की चेष्टा करना ही आवश्यक है, बाबा।''

अब की बार आकर सुना है कि इलाहाबाद के एक वकील शिवप्रसादसिंह माँ को देखकर माँ के प्रति बहुत ही अनुरक्त हुए हैं। वह प्रायः रोज ही चिट्ठी-पत्री लिखते हैं, तारों की भी कमी नहीं है।

तीसरे पहर हरीराम और एक पंजाबी सज्जन (यह पंजाब से माँ का नाम सुनकर देहरादून आये थे और वहाँ माँ का दर्शन न पाकर सोलन जाकर माँ का दर्शन किया। अब माँ के साथ देहरादून आकर किराये के मकान में रह रहे हैं) तथा अन्य कई लोग नाम-कीर्तन में सहयोग देने लगे। लगभग 1 घण्टे नाम-कीर्तन हुआ। उसके बाद लोग माँ के साथ बातचीत करने लगे।

भोलानाथजी की बात

भोलानाथजी की मृत्यु की बात चली। सुना है कि मृत्यु के बाद माँ ने सबसे कहा था–''माला–चन्दन आदि जो कुछ आवश्यक है, ठीक करो।'' फिर कहा–''रामकृष्ण मिशन से कोई जाकर पूछ आओ कि इस अवस्था में क्या–क्या करना आवश्यक है।'' माँ के भाव में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। माँ हँसकर बोली–''वाह–वाह, शरीर की अवस्था का एक परिवर्तन मात्र हुआ है इसमें भाव के परिवर्तन होने का कारण क्या है? मानो एक वस्तु इस घर से उस घर में रखी गई–तुम्हारी दृष्टि में। आत्मा का आना–जाना कहाँ? वह तो सदा सर्वत्र पूर्ण है।'' स्व. भोलानाथजी के शरीर को दाह करने के लिये ले जाने पर लक्ष्मीरानी ने माँ से कहा था–''माँ, तनिक हाथ–मुँह धो लीजिए।'' माँ के हाथ–मुँह धुला देने पर एक गिलास जल पिला दिया गया। माँ ने उसे पी लिया। बाद में लेटकर बातचीत करने लगी।

वेश परिवर्तन करने की बात पर माँ ने हँसते हुए कहा–''सांसारिक नियम यह है कि ऐसी घटना होने पर आत्मीय परिजन तथा पास–पड़ोस के लोग आकर नये वेश में सजा देते हैं अथवा मन के दुःख से मैं अब किसके लिये साज पहनूँ? इस भाव से वे खुद ही सब खोल डालती हैं। यह एक नियम–सा बन गया है कि दूसरा कोई आकर भी नये वेश में सजा देता है। परन्तु यहाँ किसी ने भी वैसा नहीं किया। अपने भीतर से भी कुछ हो गया है समझकर कोई भाव नहीं जगा। इस कारण जैसा था वैसा ही है।'' मैंने कहा–''माँ तुम यदि शुरू से ही भोलानाथजी की किसी प्रकार की अवज्ञा करती आती तो लोग कह सकते थे कि उसी कारण उनकी मृत्यु से तुम्हारे भीतर ऐसा भाव रहा, तुमने उसका भी अवसर नहीं दिया। तुम्हारी ऐसी पति भक्ति संसार में दुर्लभ है। उस भाव के अनन्तर इस समय ऐसा भाव देखकर लोग अवाक् रह गये। खासकर जबकि शत्रु होने पर भी इस समय किसी को अपना चित्त स्थिर रखना कठिन है, यह सभी जानते हैं। माँ तुमने न जाने कितने खेल खेले हैं?'' माँ हँसती हुई बोली–''क्यों, यह भी कोई विशेष घटना है? यह तो मामूली बात है। तुम लोग इसे भयानक बात क्यों समझ रहे हो?'' स्व. भोलानाथजी के साथ माँ का व्यवहार देखकर लोग शायद माँ के इस भाव की धारणा ही नहीं कर सकते, केवल इसी घटना के विषय में नहीं। माँ शायद किसी एक व्यक्ति को बड़ा स्नेह आदर कर रही हैं किन्तु

दूसरे ही क्षण सांसारिक भाव से देखने पर माँ ने उसे ऐसी वेदना दी कि किसी की धारणा में भी वह नहीं आता। तोड़ने और गढ़ने में माँ को क्षण भर भी समय नहीं लगता। ऐसे हँसते-खेलते माँ इस तरह से तोड़ने-गढ़ने की लीला करती हैं कि देखकर लोग स्तब्ध हो जाते हैं। संसार में इस भाव का रहस्य समझना साधारण मनुष्यों के लिये बहुत ही कठिन है। माँ की तुलना केवल माँ ही हैं।

रात को माँ लेटी हुई हैं। मैं उनके पास बैठी हूँ। बात-बात में माँ ने कहा-''देखो, इस शरीर (अपने शरीर को दिखाकर) की गति कैसी है जानती हो? जैसे-छोटे बच्चे को पढ़ाते हुए लोग ककहरा की किताब हाथ में लेकर खुद भी बच्चों की तरह पढ़ना शुरू कर देते हैं। क ख लिखना सिखाने के लिये पटिया पर अपने हाथ से बच्चों की तरह लिखने लगते हैं। क्या वह पढ़ना-लिखना नहीं जानते? तो भी दूसरों को सिखाने के लिये वैसा ही करना पड़ता है। इस शरीर में भी उसी तरह आवश्यकता के अनुसार सब कुछ हो जाता है। एक बात और है, जिस किसी के लिये क्यों न हो, चाहे किसी सम्प्रदाय का साधक ही हो (यहाँ तो सम्प्रदाय नाम से कोई वस्तु है ही नहीं)। उस साधक के इस पथ की सहायता के लिये जो कुछ आवश्यक है, इस शरीर से वह हो जाता है। सहायक कर्म अर्थात् उनकी सेवा और क्या? कृपा करके करा लेते हैं।''

श्रावण 27, शुक्रवार- माँ ने कल तीसरे पहर कहा था-''खुकुनी, क्या मैंने तुमसे कुछ कहा नहीं है? मैं शायद कह रही थी कि एक अशुभ तार आया है।'' मैंने कहा-''फिर कहाँ से अशुभ तार आ रहा है?'' माँ ने कुछ नहीं कहा। आज बात-बात में उन्होंने बताया-''देखो यहाँ जो बात होती है, उसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी समय की बात हो जाती है। तुम लोग उसे पकड़ नहीं सकते और सभी बातों को वर्तमान या भविष्य की समझते हो।''

दिन के लगभग 11 बजे माँ का भोग हुआ। भोग हो जाने पर डाक की कुछ चिठ्ठियाँ लोग माँ को सुनाने लगे। किसी-किसी का उत्तर तो उसी समय सुनते ही संक्षेप में दे दिया गया। सारी चिठ्ठियाँ सुनी भी नहीं। 12 बज गये, घर का दरवाजा बन्द करके माँ को विश्राम देने का प्रबन्ध किया गया। हर समय, हर बात कहना तो दूर की बात है, माँ कभी-कभी सुन भी नहीं सकती। इस कारण मौका देखकर दो-चार चिठ्ठियाँ ही सुनाई जाती हैं।

माँ के आज 4 बजे उठने के पहले ही फैजाबाद से गोला के पिता पं. मानकेश्वरनाथ रैना का तार आया है कि गोला की हिस्टीरिया की सी हालत है। माँ ने कल ही एक अशुभ तार आने की बात कही थी।

आज माँ तीसरे पहर मुझसे कहने लगी–"मैं क्या देख रही थी जानती हो? मैं देख रही थी कि एक व्यक्ति अपमृत्यु से मर रहा था। ठीक उसी समय यह शरीर वहाँ जा पहुँचा और खयाल आया कि अपमृत्यु से मरने नहीं दिया जाएगा। इस खयाल के साथ-ही-साथ उस व्यक्ति के भीतर एक आनन्द का भाव जगा और अपमृत्यु का भाव उसके भीतर एकदम ही नहीं रहा।" मैंने कहा–"माँ, तो बाहर से यद्यपि दिखाई पड़ा कि वह व्यक्ति अपमृत्यु से मरने जा रहा था, पर यथार्थ में उसे अपमृत्यु से मरने के संकल्प से पाप नहीं, गति उसकी अच्छी ही हो गई।"

माँ ने कहा–"ठीक ऐसा ही है किन्तु हर समय वह भाव नहीं आता।" मैं बोली–"माँ, इसीलिए तो कहा जाता है कि जो बाहर से दिखाई पड़ता है, यथार्थ में वह वैसा नहीं है।" माँ ने कहा–"वह किन्तु भीतर की अवस्था समझकर होता है।"

भोलानाथजी आदि की मृत्यु के समय माँ की उपस्थिति

रात को माँ बाहर थोड़ा टहलने लगी। भोलानाथजी की बात चली। माँ कहने लगी–"देखो, भोलानाथ के प्राण जिस ढंग से निकले थे, कोई समझ नहीं सका। ऐसा भी हो सकता है कि मैं शायद दूसरी जगह बैठी हूँ और इतने में प्राण छूट गये। और बाहर से कोई समझ न सका कि अभी प्राण निकलेंगे। मैं कीर्तन करने के लिये कह रही थी, इसे उसे ठीक करने के लिये बताती। सब समझते थे कि ऐसे ही कर रही हूँ। भोलानाथ उस दिन पहले से अच्छे थे, ऐसे ही लोगों का विश्वास था। बातचीत करते हुए प्राण निकल गये। उसके बाद प्राय: देखा जाता है कि प्राण-त्याग के पूर्व पैर सीधे हो जाते हैं, और भी न जाने क्या-क्या होता है। परन्तु यह कुछ भी नहीं, पैर समेटकर लेटे थे। शरीर छूटने के पहले कुछ देर तक सहज भाव से चित्त होकर लेटे थे। उसके बाद प्राण छूटे। एक बार उठाकर बिठा देने के लिये कहा था। अगर बिठा दिया जाता तो बैठे-बैठे ही प्राण निकल जाते।"

इतना कहकर माँ फिर कहने लगी–"देख, जो होने को होता हैं वह

अच्छा ही हो जाता है। भोलानाथ तो कितने ही समय मेरे साथ नहीं रहे किन्तु मृत्यु के समय पास में थे। संतोष मृत्यु के समय मेरे पास था। निर्मल बाबू ठीक मृत्यु के समय कहीं से आकर मेरे पास पहुँच गए। ज्योतिष भी अनेक स्थानों पर था किन्तु मृत्यु के समय पास ही में रहा। जो होने को होता है, हो जाता है।''

श्रावण 28, शनिवार– आज बेबी दीदी और टुनू की माँ (स्व. अतुलदत्त महाशय की पत्नी) माँ के दर्शनों के लिये कलकत्ते से आ पहुँची। रायपुर से विशु ब्रह्मचारी, शची और वहाँ के और भी तीन आदमी माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। श्रीमत्स्वामी निगमानन्द के एक शिष्य ब्रह्मचारी शशांक माँ के आश्रय में कुछ महीनों से हैं। माँ ने उन्हें रायपुर में रखा है। वह भी दो दिन से यहाँ माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। सब लोग तीसरे पहर माँ के पास बैठे हैं। शची ब्रह्मचारी मौन हैं। माँ उसकी ओर देखकर बोली–''मौन रहकर क्या फल हुआ? मौनी होकर यदि मन में नाम का जप न हुआ तो वृक्ष में फूल कैसे होगा? हम तो फूल–फल सभी चाहते हैं। केवल बीज को धरती में गाड़ देने से अच्छा वृक्ष नहीं होता? उसके लिये यत्न चाहिए।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

आर्य समाज की सरस्वती देवी चार स्त्रियों को साथ लिये आयी हैं। सरस्वती देवी आचार्य का काम करती हैं। वे और बेबी दीदी आदि सब लोग माँ को लेकर पूर्व के बरामदे में जा बैठी हैं। बेबी दीदी पति–पुत्र खोकर यहीं पहले–पहल माँ के पास आयी हैं। आँखों में आँसू हैं तो भी शान्त भाव से बैठी हैं। माँ सबके सामने बेबी दीदी की बात कहकर बोली–''योगिनी बना दिया, इसलिए कि उनके साथ योगयुक्त हो जाय। यह हृदय उनका आसन है। वह इस आसन पर विराजमान हैं ही। इस विषय को अच्छी तरह समझने के लिये ही साधन–भजन करना होता है। वह नित्य ही अपने आसन पर हैं। वहाँ अनित्य अर्थात् जिन चीजों का आना– जाना है, उन्हें बिठाने पर उनके आसन के सम्मान की रक्षा कैसी होगी? उस अनित्य वस्तु का आना–जाना है ही, इस कारण हृदय में वेदना होती है। जिनका आसन है उन्हें न बिठाकर दूसरे को बैठाने से कष्ट भोग करना ही होगा।'' ऐसी–ऐसी बातों में शाम हो गई। माँ ने सरस्वती देवी को एक गान करने के लिये कहा। उन्होंने अपनी भाषा में एक गाना गाया। अँधेरा होते देख लोग इच्छा

न होते हुए भी विदा लेकर चले गये। रात को भी कीर्तन आदि के बाद काक्स बाजार के श्री देवेन्द्र बाबू माँ के पास बैठकर विविध वार्तालाप करने लगे। रात के 10 बजे माँ लेट गई।

श्रावण 29, रविवार– आज दोपहर को बात–बात में भोग–त्याग की बात चली। मैंने कहा–''माँ, तुम्हारे जैसा भोग भी तो कोई नहीं कर सकता। ढाका में जब तुम्हें बनारसी साड़ी तथा अनेक आभूषणों से सजा देते थे तो तुम वह सब पहनकर ही कई दिन रही। चार–पाँच हार गले में एक साथ लटकते रहे। उससे गला कटकर रक्त भी निकला, उसमें इसकी भी तुम्हें परवाह नहीं थी। हारों को पहिने ही रही।'' माँ सुनकर हँसने लगी।

शाहबाग के बकरे की बात

फिर बात चली कि शाहबाग में जो बकरा था (माँ ने जिसकी बलि बन्द कर दी थी) उसके विषय में माँ ने हँसकर मुझसे कहा–''तुम लोगों ने देखा ही था कि कीर्तन के समय मेरे जाकर बैठते ही कैसे एक घुटने पर वह बकरा और दूसरे घुटने पर कुत्ता सिर रखकर पड़े रहते थे और बताशे की लूट के पश्चात् दोनों पैर उठाकर नृत्य करते हुए आनन्द प्रकट करते थे।'' मैंने कहा–''माँ तुमने तो बताया था कि वह बकरा पूर्व जन्म में संन्यासी था।'' माँ ने कहा–''हाँ, संन्यासी वेशधारी था। यथार्थ संन्यास होता तो हो ही गया होता।''

एक लड़के ने कविता में अपने दुःख की बात जताकर माँ को पत्र भेजा। उसमें लिखा है–''माँ, मुझे कोटि–कोटि मनुष्यों के दुःख दूर करने की शक्ति दीजिये। जगत् को उलट–पलट कर देने की सामर्थ्य दीजिए।'' इन बातों के उत्तर में माँ ने कहा–''लिख दो, पहले तुम अपनी जगत्–बुद्धि और अपने कष्ट को दूर करने की चेष्टा करो। उस भाव की सहायक चेष्टा और कर्म आदि को साथ–साथ रखना।'' वह लड़का साधन–भजन के लिये तारापीठ में था। उसके बाद नौकरी की खबर पाकर चला गया। इसीलिए माँ ने यह लिखवाया–''कोई भी अन्य कर्म करते रहो तो भी इस भाव के सहायक कर्मादि साथ–साथ रखना।'' जीवन की व्यर्थता के विषय में अनेक प्रकार की कविताएँ रचकर भेजी हैं। माँ लेटे–लेटे वह कविता सुन–सुनकर हँसते हुए बच्चों की तरह कविता मिला–मिलाकर कहने लगी और खुद ही बच्चों की

तरह खूब आनन्द प्रकट करने लगी-

जाँके निये तारापीठे बोशेछिले
(ताँके) फेले कैनो गैले?
(एकटु आशार आलोक पेये)

*   *   *

कि आशाय घुरछो, फिरछो, नाइको तथाय शुख
जतोइ घोरो जतोइ फिरो, पाबे केबोल दुख।
(खनिकेर शुखे भूलोना भूलोना)
(घरेर छेले घरे चलो)

*   *   *

जदिओ उपस्थित तोमार लागछे भालो
स्मरणे राखिओ शदा, नाइ जे शेथाय आलो

*   *   *

आशिते दिओना नामेर धारा
(तबेइ जानते पारबे)
तिनि आछेने जे तोमाय धरा
जेखाने शेखाने थाकोना कैनो दाँड़ाये
(मोने रेखो) तिनि जे आछेन शदा तोमार पाने चेये।''

अर्थात्- जिन्हें लेकर तुम तारापीठ में बैठे थे, उन्हें छोड़कर क्यों गये? (आशा का थोड़ा प्रकाश देखकर) किस आशा से घूम-फिर रहे हो, वहाँ सुख नहीं है। जितना ही घूमते और जितना ही फिरो केवल दुःख ही पाओगे। क्षणिक सुख में मत भूलना, मत भूलना। घर का लड़का घर में चलो। यद्यपि तुम्हें इस समय अच्छा लग रहा है परन्तु याद रखना वहाँ प्रकाश नहीं है। अपने नाम की धारा मत आने दो (तभी जान सको)। वह तुम्हारे भीतर अवस्थित हैं जहाँ कहीं भी क्यों न खड़े रहो (याद रखो), वह सदा तुम्हारी ओर देख रहे हैं।

उस लड़के ने और भी लिखा था-

के कोरेछे भोग सृष्टि नानान भावेते
के गोड़ेछे तार मूर्ति रुपेर आभाते
छेड़े थाका शे शबइ यदि तोमार बिधान
शे बिधि–पालने तबे दाओ दृढ़ प्राण

अर्थात्– किसने भोग की नाना प्रकार से सृष्टि की? किसने उनकी मूर्ति रूप की आभा से बनायी है। यदि उन सबको तुम्हारे खयाल से छोड़ देना चाहिए तो उनके विधान का पालन करने के लिये हृदय में दृढ़ता दो।

माँ ने उत्तर दिया–''संसार में जो कुछ सुन्दर है उसे क्यों नहीं देखते? याद रखना, वे सभी उन्हीं के नाना भावों के स्फुरण हैं।''

माँ का शरीर अस्वस्थ है जानकर उस लड़के ने लिखा था–''माँ, तुम्हारे सारे रोग, शोक, ताप और ज्वाला मुझे दो।'' इस बात के उत्तर में माँ ने कहा–''बाबा को लिख दो, यहाँ से देने योग्य रोग, शोक, ताप और ज्वाला कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है। कैसे भेजूँ तुम्हीं बताओ?''

श्रावण 30, सोमवार– सोलन से अभय आज आ पहुँचा। माँ के हाथ का दर्द अब विशेष नहीं है, कल रात को उस हाथ पर मैं थोड़ा हाथ फेर रही थी, कमरे में और कोई नहीं था। आँखें मूँदकर माँ लेटी थी, कहने लगी–''तुम लोग इस शरीर को रखना चाहते हो, अच्छी बात है, देखने के लिये रखना चाहो तो रखो। किन्तु भीतर से न जाने कैसा 'चुप' होने का भाव आ रहा है। तुम देख रही हो कि अधिक बात–चीत नहीं होती है।'' मैंने कहा–''माँ, अधिक बातचीत नहीं होती, वह तो मैं देख रही हूँ। परन्तु ऐसी बातें क्यों कहती हो माँ? तुम स्वस्थ रहो, जब जो कुछ आवश्यकता हो सबको बतला दो, यह भी हमारे लिये कम सौभाग्य की बात नहीं है।''

श्रावण 31, मंगलवार– आज उल्लेख योग्य कुछ घटना नहीं है। आज शाम को अभय ने बहुत देर तक कीर्तन किया। साथ में सभी ने योग दिया।

श्रावण 32, बुधवार– आज इलाहाबाद से वकील श्रीयुत् शिवप्रसादसिंह 12 घण्टे का समय पाकर माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। दिन के लगभग 1 बजे वह माँ को लेकर रायपुर घूमने गये। बेबी दीदी और देवेन्द्र बाबू की पत्नी ने रायपुर नहीं देखा था, इस कारण वे दोनों भी साथ गये। लगभग दो घण्टे के बाद लौट आने पर माँ का भोग हुआ।

माँ के मुख से स्तोत्रादि का प्रकाश

आज अभय और कमलाकान्त से सुना है कि इस बीच में चार दिन (रायपुर में दो दिन और किशनपुर में दो दिन) माँ के मुख से पहले की तरह अनेक स्तोत्रादि निकले थे। प्रथम दिन रायपुर में रात के लगभग 11 बजे माँ के मुख से एकाएक नीचे लिखा हुआ स्तोत्र निकला। अभय ने जहाँ तक संभव हो सका, उसे लिख लिया है। परन्तु अनेक शब्द ही नहीं लिख सका।

आज माँ के साथ अनेक बातें हुई। बेबी दीदी शोकार्त हैं परन्तु बहुत ही शान्त हैं। काक्स बाजार के देवेन्द्र बाबू की पत्नी सात सन्तानों को खोकर पागल की तरह हो गई थी। काक्स बाजार में माँ को पाकर वह कुछ शान्त हुई है। कुछ दिनों से वह यहाँ आई हुई है। माँ के निकट एक विशेषता यह है कि यहाँ शोक-दु:ख नहीं मिलेगा, ऐसा नहीं है बल्कि उसके विपरीत अनेक स्थानों पर दिखाई पड़ता है, किन्तु सहन करने की शक्ति माँ के निकट ही मिलती है। माँ को यह बात बताने पर वह हँसती हुई बोली- ''यहाँ आने पर किसी को तुम्हारी दृष्टि में विपत्ति नहीं होगी, ऐसा न समझो। रोग-शोक संसार का नियम है, कितनी ही विपत्ति क्यों न आये उसे सहन कर सकना ही बड़ी बात है।'' मैंने सोचा-माँ ने ठीक ही कहा है। श्रेष्ठ प्रार्थना तो यही है कि सहन करने की शक्ति मिले। महाभारत तथा अन्यान्य स्थानों पर दिखाई पड़ता है कि जो लोग इस पथ के पथिक हैं सांसारिक हिसाब से दु:ख-कष्ट उन्हें ही अधिक भोगना पड़ा है, किन्तु वे उसमें विचलित नहीं हुए। बल्कि वीर की तरह चलते गए हैं। श्रीकृष्ण के आश्रित पाण्डवों के दु:ख-कष्टों की सीमा नहीं थी। उन्हें सहन करने की शक्ति उन्होंने दी थी। इसी कारण वे कभी अविश्वासी या विचलित नहीं हुए थे। यही तो यथार्थ कृपा है। जो लोग इतना बड़ा दान (शक्ति संचार) नहीं कर सकते, वे ही मामूली दो-एक रोग-शोक से बचाकर अपनी कारगुजारी दिखाते हैं। किन्तु कितनी सहायता वे इस ढंग से कर सकते हैं। यथार्थ सहायता देने की उनमें शक्ति ही नहीं है।

फिर बात चली कि अनेक विपरीत भावों के भीतर से माँ सामंजस्य देकर चलती आई हैं और आ रही हैं। सब बातें प्रकट नहीं की जा सकती। कुछ लोग शायद इसे अस्वीकार करेंगे। परन्तु यह भी सत्य है कि माँ के

संपर्क में जो कोई भी आया हो, वही माँ के उक्त भाव का परिचय पाता है और आश्चर्यचकित हो जाता है।

कामाख्या पहाड़ पर माँ के शरीर से अनेक ऋषि-मुनियों का प्रकाश

आज बात-बात में 'कामाख्या' पहाड़ की बात चली। वहाँ निर्मल बाबू की पत्नी माँ के साथ बाहर जाकर न जाने कैसे डर गई थी। बाद में माँ ने प्रकट किया था कि उस समय माँ ने पहाड़ पर सर्वत्र छोटी-छोटी ऋषियों की मूर्ति, और भी न जाने क्या-क्या देखा था। माँ के मुख से ऐसी बात और भी साफ-साफ निकली थी कि 'ये सब ऋषि-मुनि आदि कामाख्या पर्वत पर भरे पड़े हैं, इसी तरह मैंने देखा था। मानो इस शरीर से सब प्रकट हो रहे थे। ऐसा मैंने देखा था।' आज भी बात-बात में मुझे एकान्त में इसी ढंग की अनेक बातें बताई। मैं अवाक् होकर माँ के मुँह की ओर देख रही थी। आगामी कल जन्माष्टमी है। आश्रम में अष्ट प्रहर कीर्तन की बात हुई है।

भाद्र 1, गुरुवार- आज जन्माष्टमी है। भोर साढ़े 5 बजे से अखण्ड कीर्तन शुरू हुआ। संध्या समय माँ को एक बार मनोहर मंदिर ले जाया गया, वहाँ जन्माष्टमी का महोत्सव होता है। रात को माँ ने स्त्रियों को साथ लेकर लगभग 3 घण्टे कीर्तन किया। पाँच-सात स्त्रियाँ आयी थी। खूब आनन्द हुआ। प्राय: रात भर सब लोग जागे। 24 घण्टे का कीर्तन समाप्त हुआ। माँ प्राय: रात भर कीर्तन में बैठी रही।

आज हर वर्ष की तरह जन्माष्टमी के दिन आनन्द चौक माँ के यज्ञ-मंदिर में यज्ञ होगा, पहले ही इस यज्ञ के आरम्भ की बात लिखी गई है। आनन्द चौक में श्रीयुत् काशीनाथ तन्खा (कश्मीरी) महाशय इस विषय में प्रधान उद्योगी हैं। उनकी चेष्टा से यहाँ प्रतिवर्ष नियमित यज्ञ होता है। आज भी प्रात: 8 बजे आश्रम से श्रीयुत् मन्मथ बाबू, योगेश ब्रह्मचारी और कमलाकान्त ब्रह्मचारी यज्ञ करने के लिये मनोहर मन्दिर चले गये। यज्ञ आरम्भ होने के पहले लगभग 12 बजे एक बस से माँ के साथ सब लोग यज्ञ देखने गये। माँ के वहाँ पहुँचने पर मन्मथ बाबू ने माँ को मन्दिर में बिठाकर पहले उनकी पूजा की। उसके बाद माँ की आज्ञा लेकर यज्ञ आरम्भ किया। इधर सत्य बाबू (प्रोफेसर), हरीराम, अभय आदि सब लोग मिलकर कीर्तन करने लगे। अनेक व्यक्ति कीर्तन करने आये हैं। यज्ञ के अन्त में

मन्मथ बाबू ने माँ की आरती उतारी। आज माँ का भोग श्रीयुत् काशी बाबू के घर में हुआ। एक पण्डितजी बहुत अच्छा पाठ करते हैं उन्होंने आकर कुछ समय पाठ करने के लिये माँ की आज्ञा माँगी। माँ की तो हर समय एक ही बात है। कोई आकर आश्रम तैयार करने की बात कहता है तो भी माँ की एक ही बात है–"जिस काम को करने से तुम लोग आध्यात्मिक जीवन में उन्नति कर सको उसी काम में सदा आनन्द, वह कीर्तन से हो या जप से हो अथवा सत्संग करके हो, जैसे बने अपनी उन्नति का साधन करते चलो।" माँ की आज्ञा पाकर कुछ देर तक पाठ भी हुआ।

सब लोग माँ को लेकर बैठे हैं। इतने में माँ ने हरीराम से कहा–"खुकुनी दीदी से कहो कि आज ही मसूरी जाने का खयाल हो रहा है।" मैं यज्ञ-मंदिर में थी, माँ सबको लेकर मनोहर मन्दिर के बीच के स्थान पर बैठी थी। मैंने माँ के समीप तुरन्त जाकर पूछा। माँ ने कहा–"समय अधिक नहीं है, इसी से जा न सकोगी?" मैंने कहा–"क्यों नहीं जा सकूँगी। मैं अभी आश्रम में जाकर सब प्रबन्ध कर लेती हूँ।" इतना कहकर हम लोग कई एक के साथ आश्रम के लिये रवाना हो गये। माँ ने कहा–"मैं यहीं से चलूँगी, रास्ते में तुम लोगों को ले लूँगी।" तीसरे पहर लगभग 4 बजे हम लोग मसूरी के लिये रवाना हुए। श्रीयुत् मन्मथ दादा, योगेश दादा और साधन ब्रह्मचारी आश्रम में रह गये। काक्स बाजार के देवेन्द्र बाबू साथ नहीं आ सके। वे आश्रम से ही लौट जायेंगे। बेबी दीदी और टुनू की माँ साथ में आयी।

हम लोग मसूरी आकर पहले सनातन धर्मशाला में उतरे। बारह-तेरह आदमी साथ हैं। यहाँ असुविधा होने के कारण मनसारामजी का जो नया मकान बन रहा था, (अभी पूरा नहीं बन पाया) उसी के एक हिस्से में रात को ही चले आये। माँ आयी हैं इसकी खबर रात में ही प्रचारित हो गयी। अनेक लोग दर्शनों के लिये आये। मकान मालिक के मैंनेजर, चौकीदार माँ की सेवा के लिये सब इन्तजाम करने में लग गये। किन्तु विशेष कुछ आवश्यकता न हुई।

चट्टग्राम से शशी दादा भी कई दिन हुए माँ के पास आये हैं। वह आगामी कल कलकत्ते जायेंगे। आज माँ के साथ आये हैं।

भाद्र 2, शुक्रवार– आज सुबह मकान के मालिक और बहुत से लोग

माँ के दर्शनों के लिये आये। एक भद्र महिला ने गत बार माँ को पाकर उन्हें अपनी लड़की बना लिया था। वह और उनकी माता आकर माँ को अनेक प्रकार से स्नेह जताने लगी।

एक बार एक घटना हुई थी। एक भक्त ने सपरिवार आकर माँ से कहा–उन लोगों को एक विशेष दुःख का कारण हुआ है। वह यह है कि उनकी एक शिक्षिता लड़की ने उनकी असम्मति से अपने ही घनिष्ठ संपर्क के भीतर विवाह कर लिया है। इस घटना से लड़की की माँ मर्माहत हो गई है। फलस्वरूप उस घटना के आघात से माता का हृदय भगवान् के प्रति आकृष्ट हुआ और गृहस्थी से विरक्त हो गया। यह आज से 7 वर्ष पहले की बात है। अब वह महिला धर्म–जीवन में बहुत उन्नति कर रही है। लड़की के लिये उन्हें अब कोई क्लेश नहीं है। किन्तु उस लड़की और दामाद की बार–बार कातर प्रार्थना से कई साल बाद उन्होंने श्री श्री माँ को जताया–''माँ अब मैं क्या करूँ, मेरा चित्त और कुछ नहीं चाहता, मैं इस पथ में बहुत अच्छी हूँ।'' माँ ने कहा–''देखो, तुम एक काम करो। तुम दीक्षा लेकर उसके बाद ही लड़की–दामाद दोनों को दीक्षा दो और उन्हें लड़की–दामाद के रूप में अथवा शिष्य के रूप में अपना लो।''

उन्होंने वैसा ही किया।

यह बात आज तीसरे पहर चली। माँ मुझसे कहने लगी–''देख, मैं देख रही थी कि माँ का हृदय पिघलकर मोह के कारण लड़की–दामाद को अपनाना चाहता था, यहाँ ऐसा नहीं है। माँ का हृदय स्थिर, धीर है इसीलिए यह व्यवस्था दी गई। हर स्थान पर ऐसा होगा, सो नहीं। और भी एक बात के ऊपर खयाल करो। इस लड़की के कारण उसका चित्त आज इस ओर आया है। संसार असार है, यह भाव उसके भीतर जगा है और तरह–तरह की भगवद्–अनुभूतियाँ पा रही है। इस कारण इस कन्या का कल्याण उसे करना ही होगा।'' इतना कहकर मधुर हँसी हँसते हुए माँ ने कहा–''जब जो आवश्यक है, इसी तरह हो जाता है।'' उसके बाद फिर बोली–''देख, जिसके भीतर जिस भाव का संस्कार रहता है वह वैसा ही हो जाता है, इस विषय में कोई संदेह नहीं है। जैसा भाव रहता है वैसा ही योगायोग हो जाता है।''

आटपाड़ा की विविध बातें

फिर बात-बात में माँ कहने लगी-"देख, बचपन में मैं जब दुलहिन बनकर आटपाड़ा ग्राम में आशु की माँ के पास थी, तब पड़ोसी शूद्रों की स्त्रियाँ मेरे काम में सहायता कर देती थी। यह बात तुम लोगों से मैं कह चुकी हूँ। ऐसा सुन्दर भाव उनमें था। वे तो उस समय एक छोटी बहू को इतना अधिक काम करने में कितना कष्ट होता है यह सोचकर ही मदद करने आ जाया करती थी। इस गुण के कारण ही उनकी बातें तुम्हें बार-बार बताई जाती हैं। कल मसूरी पहाड़ पर खयाल के रूप में वे स्त्रियाँ मेरे पास आई थी। इसी कारण आज तुमसे कहती हूँ। देखो, कैसा सुन्दर भाव है! मुझे काम करने में कष्ट होता था। इस कारण वे मदद देती थी। परन्तु छिपकर, ताकि आशु की माँ को पता न लग सके। वे बर्तनों को मलकर पोखरे के जल में डुबोकर रख जाती थी। मैं घाट पर जाकर केवल उठा लाती थी। कोई नहीं जानता था कि वे इस ढंग से मदद कर रही हैं। ग्रामीण स्थान पर अनेक प्रकार की बातें उठ सकती हैं। इस कारण छिपकर वे इस शरीर के लिये इतना काम कर देती थी और क्या करती थी जानती हो? मसाला पीसकर टट्टर के नीचे से रसोई घर में दे जाती थी। किसी को पता नहीं लगता था। फिर बहुत यत्न से दूध औटाकर अच्छे-अच्छे आम अनेक मकानों में घूम-घूमकर जुटाकर रखती थी और मौका पाकर मुझे किसी को पता न लगे ऐसे ले जाकर उन्हें खाने को बाध्य करती थी। परन्तु मैं उन लोगों से बात नहीं करती थी। सदा घूँघट काढ़े रहती थी। भोलानाथ के घर के पास ही उन स्त्रियों का घर था। अनेक प्रकार से वे इस शरीर की सेवा-यत्न करती थी। एक थी रबी की माँ, दूसरी थी माऊजार की माँ, ये दोनों ही अधिक मदद करती थी। मैं भी अपने हिस्से में जो अच्छी चीज मिलती थी उन लोगों को दे देती थी। कभी खाने बैठी हूँ, थोड़ा बहुत खाकर थाली उन्हें दे देती थी। वे लोग बहुत गरीब थे, आपत्ति करती थी तो मैं घूँघट काढ़े रहने पर भी ऐसे व्यवहार करती थी कि दे लेने को बाध्य होती।" मैंने हँसकर कहा-"माँ, देखती हूँ कि शुरू से ही तुम पूजा पाती आई हो। कोई जाने या न जाने जो आवश्यक था वह हो ही जाता था।" माँ भी हँसने लगी और मैं भी हँसने लगी।

तीसरे पहर माँ को लेकर मैं सनातन धर्मशाला (शिवालय) में गयी। वहाँ

के पुजारी प्रणाम करके माँ से बोले-"माँ, हमारा दुर्भाग्य है कि आप हमारी धर्मशाला में आकर इसे छोड़कर चली गयी।" माँ ने कहा-"बाबा, इस लड़की के लिये ऐसा क्यों कहते हो। एक भाव लाओ, सभी स्थान ही तो एक ही जन के हैं, बाबा के मकान ही में तो हूँ।" इस प्रकार की बातों से सबको प्रसन्न कर माँ चली आयी।

जो पंजाबी सज्जन माँ की खोज में पंजाब से देहरादून, सोलन, फिर देहरादून माँ के साथ-साथ चल रहे थे, उन्हें माँ के देहरादून से आते समय खबर नहीं मिली थी। आज बाहर निकलते ही देखा कि वह माँ के लिये फिर देहरादून से यहाँ आ पहुँचे हैं। ये सज्जन सिक्ख सम्प्रदाय के हैं। माँ उन्हें देखते ही बोल उठी-"यह तो बाबा आ गये, मुझे खयाल हो रहा था कि बाबा अभी आएँगे।"

सन्ध्या को इस देश के कुछ लोग माँ के सामने कीर्तन करने के लिये आये। बहुत देर तक कीर्तन चला। रात के लगभग 10 बजे माँ सोने चली गयी। मैं, बेबी दीदी और अभय तीनों माँ के पास सोते हैं। बिछौने में आने पर अभय ने गाना गाया। माँ ने भी एक-दो गाने गाये। अनेक प्रकार के वार्तालाप हुए। इसी तरह रात के 12 बज गये तब सब लोग सो गये।

भाद्र 3, शनिवार- आज सुबह उठने पर माँ को थोड़ा टहलने ले गये। पहाड़ी शहर घर से निकलते ही चढ़ाई-उतराई करनी होती है। माँ का शरीर दुर्बल है। इसलिए अधिक दूर नहीं जाना हुआ, लौट आए। आने पर दिखाई पड़ा कि अनेक व्यक्ति माँ के दर्शनों के लिये आए हैं। कई बंगाली भी थे। लगभग 10 बजे माँ का भोग हुआ।

सूक्ष्म में माँ का शरीर नष्ट करने का प्रयास

तीसरे पहर बात-बात में माँ हँसते हुए कहने लगी-"कल मैं क्या देख रही थी जानती हो? तीन आदमी इस शरीर को समाप्त करने के लिये आये-'जो होना है, वह होगा ही, इस शरीर को आज खत्म ही करेंगे।' उनके हाथ में छोटी-छोटी बन्दूकें थी (बाद में कहा भाव रूपी बन्दूक हैं और क्या)। एक आदमी ने समीप आकर बन्दूक उठायी। इतने में इस शरीर में कुछ परिवर्तन हुआ, नेत्र उज्ज्वल और बड़े हो गये। मैंने उसके निकट जाकर हाथ से उसका भ्रूमध्य स्थान स्पर्श किया और भ्रूमध्य में कुछ खरोंच दिया। ऐसा

होने मात्र से वह आदमी अवश हो गया। उसे उस तरह गिर जाते देखकर साथ के दो आदमियों ने आकर उससे कहा–'क्यों तू ऐसा काम कर रहा था, तुझे बाँधकर रख जाते हैं–इतना कहकर उसे बाँधकर वे चले गये। परन्तु मैं उनके भीतर का भाव देखकर मन में हँस रही थी, क्योंकि मैं देखती थी कि बाहर यद्यपि उन लोगों ने उस भाव की बात कही थी; परन्तु भीतर का भाव यह था कि उसे ढीला-ढीला ही बाँधकर वे चले जायेंगे। मतलब यह था कि सब लोगों के चले जाने के बाद वह आदमी इस शरीर को अनायास खत्म करके जा सकेगा। यही असली भाव था। परन्तु बाहर ढोंग रचा जा रहा था। उस आदमी को बाँधकर रखकर चले गये। सब लोगों के चले जाने पर मैं उस आदमी (जिसे बाँधकर रख गये हैं) के पास घूमने लगी। क्योंकि उसके मन में जितना ही इस देह को खत्म करने का आग्रह हो रहा था उतना ही यह शरीर उसके निकट पहुँच रहा था। इस तरह कुछ समय बीत जाने पर तुम्हारी नानीजी ने आकर मुझसे कहा–'खाने चलो।' मैं उनके साथ चली आई। उस आदमी का वह तीव्र भाव उस समय घट गया था। क्योंकि उसने समझा कि यह शरीर जब सामने से दूर चला गया, तो अब उसे खत्म करने के लिये तीव्र भाव को जगाए रखने की और क्या आवश्यक है? इतना कहकर माँ ने हँसते हुए और भी कहा–''वह आदमी इस शरीर को खत्म करने के लिये बन्धन दशा में रह गया?'' मैं और अभय बैठकर यह सब बातें कर रहे थे। अभय और मैंने पूछा इसके बाद क्या हुआ? ये आदमी आपको रोष करने के लिए भीतर रह गया। यह तो अच्छी बात नहीं है। माँ ने और कुछ नहीं कहा।

भाद्र 4, रविवार– आज शाम को माँ को लेकर बहुत दूर तक घूमने जाना हुआ। और कुछ विशेष उल्लेख योग्य घटना नहीं है। मन्मथ दादा आज यहाँ माँ के आदेश से आये हैं।

भाद्र 5, सोमवार– आज माँ सुबह उठकर बैठ गई। उसके बाद कुछ दर्शनार्थी आये। माँ सबके साथ बीच के हॉल में बैठकर बातचीत कर रही हैं। दिन के साढ़े 10 बजे माँ का भोग हुआ। आज दोपहर को सोने का भाव नहीं है। अभय एकान्त में कुछ कहना चाहता है, इस कारण सब लोग हटा दिये गये। कल रात को भी माँ का सोने का भाव नहीं था। अधिक समय तक बैठी रही। तीसरे पहर हम लोग उत्तरकाशी के रास्ते में कुछ दूर

तक माँ को साथ लिये घूमने गये थे।

कुछ दिनों से माँ का भाव न जाने कैसा भीतर से ही चुप मालूम हो रहा है। बाहरी बातचीत बहुत जोर देकर करती हैं तो भी किसी तरह शरीर चला रही हैं। आज सुबह से ही वह निस्तब्ध भाव और भी बढ़ गया। आँखों को मानो खींचकर खोल नहीं सकती, शरीर भी मानो अवश है।

अपराह्न में माँ उठकर बैठी। थोड़ी बातचीत करते देखकर कुछ चिट्ठियाँ सुनाने की गरज से एकान्त में उठा ले गई। परन्तु थोड़ी ही देर में दिखाई पड़ा कि माँ के भाव में परिवर्तन हो रहा है और आँखें मूँदती जा रही हैं। वह पंजाबी सज्जन और उनके लड़के (दोनों ही मास्टर हैं) आ बैठे हैं। रोज ही दोनों शाम को आकर माँ के पास बैठे रहते हैं। आज भी माँ बीच के हॉल के भीतर जाकर बैठ गई। उसके बाद आकर लेट गई। सन्ध्या के समय फिर उठकर बैठी किन्तु शरीर शिथिल है, आँखें मूँदकर बैठी हैं। पुकारने पर माँ मानो चौंककर उत्तर देती हैं–'क्यों?' बात भी स्पष्ट नहीं निकलती है। रात्रि भी इसी भाव से बीती।

माँ के बचपन की बात

भाद्र 6, मंगलवार– आज भोर में माँ का भाव बहुत कुछ स्वाभाविक हो गया। अभय और मैंने नित्य की भाँति नाम–कीर्तन किया। बाद में अभय ने दो गाने गाये। कुछ समय के अनन्तर माँ ने भी लेटे–लेटे दो गाने गाये। मैं, बेबी दीदी और अभय माँ के पास बैठे थे। अनेक प्रकार के वार्तालाप होते–होते माँ के बचपन की बात चली। माँ ने कहा–''खेवड़ा में मैं उन दिनों बहुत छोटी लड़की थी। पिताजी तथा अन्य लोगों का गान सुनती थी। उसके बाद जब अकेली ग्रामीण पथ से चलती थी तो गला छोड़कर चिल्ला–चिल्लाकर गान गाया करती थी। कृष्ण का गान, माँ का गान और साथ–ही–साथ आँखों से आँसुओं की धाराएँ बहा करती थी। इसे देखकर और मेरे गाने की आवाज सुनकर लोग मुझे प्यार से गोदी में उठा लेते थे तथा पुनः गान करने के लिये कहते। किन्तु मैं वहाँ गाती न थी। गान करते हुए अकेली रोती थी यह देखकर इस शरीर के पिता के एक मामा अपनी आँख में जल देकर मुझे चिढ़ाया करते थे।

फिर मुझसे माँ ने कहा–''तुम लोगों ने भी तो देखा है। यह शरीर जब

खेवड़ा में या विद्याकूट गया था तब ग्राम के लोग, यहाँ तक कि मुसलमान भी दल–के–दल आकर अनेक प्रकार से स्नेह जताते थे। भगवान् की इच्छा से इस शरीर को सभी प्यार करते थे। यहाँ तक कि जिन्होंने लड़कियों के ससुराल जाते समय भी कुछ दुःख प्रकट करते नहीं देखा। वे भी इस शरीर के चले आते समय कहते कि न जाने क्यों मन विकल हो रहा है और इस शरीर का भी ऐसा स्वभाव था कि जब रोता था तो बच्चों की तरह चिल्लाकर रोने लगता था, किसी तरह की लज्जा या संकोच नहीं था।''– इतना कहकर माँ हँसने लगी। मैंने कहा–''होगा ही तो, सबको बिना रुलाये तुम क्यों जाओगी। दिल खोलकर स्वयम् रोते हुए जो लोग कभी नहीं रोते, उन्हें भी रुलाकर यह लड़की ससुराल आती थी।'' इस बात से सब लोग हँस पड़े और माँ भी हँसने लगी। बिछौना छोड़ने के पूर्व भोर में कीर्तन के बाद ही यह सब आनन्द की बातें चल रही थी, वेला बढ़ती हुई देखकर बिछौने छोड़ उठ पड़े। सुबह करीब 8 बजे माँ का मुँह धुला दिया। दिन के लगभग 10 बजे माँ को सिक्खों के गुरुद्वारा में ले चली। वहाँ इस समय भजन–पाठ इत्यादि होते हैं, वहाँ जाकर देखा कि भजन समाप्त हो गया है, व्याख्यान चल रहा है। माँ और हम लोग थोड़ा बैठकर चले आये। कई भद्र महिलाएँ आई हैं, बातचीत तथा गान इत्यादि सब हुए। उसके बाद माँ का भोग हुआ। कुछ देर बाद माँ के कमरे का दरवाजा बन्द किया गया। परन्तु माँ को सोने का भाव ही नहीं रहा। एक–एक बार हमारे कहने से आँखें बन्द कर लेती हैं, पुनः कभी आँखें थोड़ी–थोड़ी खोलकर, कभी आँखें मूँदकर ही शिशु की भाँति दो–एक बात कर हँसती हैं और हँसाती हैं–इस प्रकार देर तक चलता रहा।

डाण्डी वालों से माँ की विविध बातें

तीसरे पहर माँ बीच के हॉल में जा बैठी। बहुत से लोग आये हैं। बातचीत चल रही है, बात हुई कि यहाँ के सर्वोच्च स्थान 'डिफो' में चलना होगा। दो रिक्शे किराये पर लिये गये। माँ, मैं, बेबी दीदी और अभय चले। पंजाबी सज्जन भी पुत्र के साथ पैदल चलने लगे। माँ के साथ–साथ रहना ही उनका मुख्य उद्देश्य है। रास्ते में बीच–बीच में कुहरा होकर अँधेरा होने लगता था। खूब आनन्द करते हुए हम लोग जाने लगे। गिरजा (चर्च) के सामने जाकर सुना कि रिक्शा अब ऊपर नहीं जायेगा। डाण्डी लेनी पड़ी।

अभय और मैं पैदल चलने लगे। डाण्डी में कभी माँ और कभी बेबी दीदी बैठने लगी। 'डिफो' में पहुँचकर देखा–चारों ओर कुहरे से आच्छन्न है। कुछ दिखाई नहीं पड़ा, सुना है यहाँ से बद्रीनारायण भी दिखाई पड़ता है। कुछ देर इधर–उधर घूम–फिरकर हम लोग नीचे उतर आये। गिरजा के पास आकर हम लोग बैठ गये। डाण्डी वालों में से एक ने माँ से कहा–''देखिये माताजी, (ये लोग माँ को नहीं जानते, सभी स्त्रियों को पहाड़ी लोग माताजी कहते हैं) यह गिरजा है, यहाँ साहेब लोग भगवान् को बुलाते हैं, हम लोग ईश्वर को बुलाते और वे लोग खुदा को।'' तुरन्त एक दूसरा डाण्डी वाला आगे आकर बोला–''माताजी, सभी तो एक हैं, जैसे एक माँ के चार बेटे, सब बेटों की माँ एक ही है।'' पहले के कुली ने भी कुछ आगे आकर कुछ तत्त्व की बात बतायी। सभी लोग माँ को धर्मोपदेश देने लगे। माँ भी छोटी बच्ची की तरह मानो अत्यन्त आग्रह से सुनने लगी। माँ तो किसी का भी भाव नष्ट नहीं करती। वे माँ का भाव देखकर दुगुने उत्साह से परमात्मा का तत्त्व अपनी बुद्धि के अनुसार कहने लगे। फिर संसार में सभी माया और नाशवान हैं। इन्हें छोड़ना उचित है किन्तु छोड़ा नहीं जा सकता, ऐसा भी कहते हैं। माँ ने कहा–''क्या यह सत्य है पिताजी, सभी माया है? इस भोग का त्याग करना चाहिये?'' उन लोगों ने कहा–अवश्य। रहस्यमयी माँ उसी समय मन्द–मन्द हँसकर डाण्डी से उठ खड़ी हुई और बोली–''पिताजी, तुम लोगों से ऐसा उपदेश पाकर मैं भोग का त्याग करती हूँ। अभी डाण्डी छोड़कर पैदल चलती हूँ।'' इतना कहकर माँ पैदल चलने लगी। हम लोग भी पीछे–पीछे चले, अब डाण्डी वाले डर गये, वे लोग दौड़ते हुए जाकर माँ से बोले–''नहीं माताजी, आप डाण्डी में बैठ जायँ।'' माँ ने कहा–''नहीं गुरुजी, आपकी बात से मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया है। कुछ समय के लिये डाण्डी में नहीं जाऊँगी, पैदल ही चलूँगी।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। माँ कुलियों को 'गुरुजी–गुरुजी' कहकर पुकारने लगी और हाथ जोड़कर प्रणाम करने लगी। वे भी माँ को हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए कहने लगे–''माताजी, हमारे ऐसे अनपढ़ कुलियों की बात से आपको ज्ञान हुआ, आप धन्य हैं और माताजी हमारी बात से आपको ज्ञान हुआ, इसलिए हम भी धन्य हैं।'' इस तरह अनेक लीलाएँ करती हुई माँ चलने लगी। दोनों गुरुजी भी अनेक उपदेश सुनाते हुए साथ–साथ चलने लगे। सत्संग का माहात्म्य प्रत्यक्ष होने लगा। कुछ नीचे

आकर रिक्शे पर बैठते समय माँ ने पुकारा–'गुरुजी'। तुरन्त दोनों डाण्डी वाले माँ के पास आकर खड़े हो गये। उसके बाद माँ को कुछ पढ़कर सुनाया। माँ रवाना होने से पहले बोली–''गुरुजी इस लड़की की बात याद रखना। नहीं तो मैं कैसे जाऊँगी? और गुरु से ज्ञान लाभ करके मेरे मुख से यह बात निकलती है कि तुम लोग थोड़ा ईश्वर का नाम लेना।'' इतना कहकर शिष्यों को उपदेश देने लगी। उन्होंने भी सिर झुकाकर माँ की बात रखेंगे, स्वीकार किया। उसके बाद माँ ने कहा–''खुकुनी गुरुओं का प्रसाद तो नहीं मिला।'' मैंने उधर देखा कि फल और मिठाई की दो दुकानें पास में हैं। माँ की बात से उनका उद्देश्य समझकर मैंने उसी समय उतरकर कुछ मिठाई खरीदकर लोगों में बाँट दी। माँ ने कहा–''सबके बाद मैं लूँगी।''–वही हुआ। लगभग 17-18 कुलियों तथा 5-10 उपस्थित व्यक्तियों को मिठाई बाँटने के बाद माँ ने भी थोड़ा लिया। माँ ने पुनः हाथ जोड़कर उन लोगों से कहा–''इस लड़की की बात याद रखना।'' उन्होंने भी आग्रह के साथ कहा–''हम लोग आपको नहीं भूल सकेंगे। अगले साल शायद इसी समय आपकी याद आयेगी। ऐसा संयोग तो हर समय नहीं होता।'' उसके बाद उन्होंने कहा–''माताजी, तो अब हम लोग विदा लेते हैं।'' माँ तुरन्त बोल उठी–''आप लोग तो गुरु हैं, मैं कैसे कहूँ कि आप लोग जाइये।'' तब एक आदमी ने गुरुपन के घमण्ड से कहा–''अच्छा-अच्छा, हम कहते हैं कि तुम अब जा सकती हो।'' माँ ने हँसकर कहा–''अच्छा तो अब मैं चलूँ।'' हमारे रिक्शे चल पड़े। वे लोग भी खड़े-खड़े देखने लगे। कुहरा छाने लगा। एकान्त स्थान, उसमें माँ की ऐसी अनोखी लीला तथा सत् चर्चा में रास्ता तय करना अच्छा लग रहा था। सन्ध्या से पहले ही हम लोग डेरे पर लौट आये।

भाद्र 7, बुधवार– आज सुबह माँ बिछौने में बैठ कर ही हरिबोल, हरिबोल बोलने लगी, बोलते-बोलते चेहरे में परिवर्तन होने लगा और कुछ उल्लेख योग्य घटना नहीं है।

भाद्र 8, गुरुवार– बेबी दीदी ने पति के वार्षिक श्राद्ध की तिथि के उपलक्ष्य में आगामी कल उदयास्त कीर्तन और प्रसाद वितरण करने का प्रबन्ध किया है। इस उपलक्ष्य में देहरादून से आज योगेश दादा, साधन, शशांक, शशी, कमलाकान्त तथा अन्य ब्रह्मचारी आये हैं। कीर्तन का आयोजन होने लगा। सन्ध्या को अभय ने गाना आरम्भ किया–

गाहो रे, गाहो रे, शबे गुरु ब्रह्म नाम हे,
ऐ नाम लभिबे भाई, चिदानन्द धाम हे।
(गाहो रे गाहो रे)
गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु अपार प्रेम सिन्धु,
गुरु नारायण शम्भु, गुरु माता पिता हे
(गाहो रे गाहो रे)
एशो प्रभु परात्पर, डाके तोमाय चराचर
हृदय-कमले बोशो, एशो प्रभु एशो हे
(गाहो रे गाहो रे)

अर्थात्- सब लोग गुरु रूप ब्रह्म नाम गाओ रे, गाओ रे, भाई वह नाम लाभ करोगे, वह चिदानन्द धाम है। गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु अपार प्रेम सिन्धु, गुरु नारायण शम्भु, गुरु माता-पिता है। आओ प्रभु परात्पर, तुम्हें चराचर विश्व पुकारता है, मेरे हृदय-कमल में आ बैठो, आओ प्रभु आओ। गाओ रे, गाओ रे......।

सभी साथ दे रहे हैं। बहुत सुन्दर गान हुआ। रात्रि में हॉल सजाकर कीर्तन का अधिवास (प्रारम्भिक गौराङ्ग नाम का कीर्तन) करके कीर्तन आरम्भ किया गया। रात के 12 बजे हम लोग सो गये, माँ भी सो गयी।

भाद्र 9, शुक्रवार- आज भोर होते ही कीर्तन आरम्भ हुआ। पहले माँ-माँ नाम गाया गया, उसके अनन्तर आरम्भ हुआ-

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे।।

सूर्योदय से सूर्यास्त तक कीर्तन चला। कीर्तन के अन्त में सन्ध्या के बाद सब लोगों का भोजन हुआ। तय हुआ कि आगामी कल अभय और योगेश दादा उत्तरकाशी जायेंगे। उत्तरकाशी से माँ के दर्शनों के लिये एक साधु और उनके साथ सदानन्द माँ का आदेश पाकर आ पहुँचे हैं।

भाद्र 10, शनिवार- आज खाने-पीने के बाद दोपहर के 1 बजे अभय और योगेश दादा उत्तरकाशी के लिये चल पड़े। अभय की उम्र 17-18 वर्ष की होगी। किन्तु उसके भीतर बहुत ही उत्तम त्याग और वैराग्य का भाव है। उसकी इच्छा है कि एकान्त में साधन-भजन करके आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त

करे। इस कारण माँ की आज्ञा लेकर चला गया। हमारे साथ 17-18 वर्ष का एक दूसरा लड़का कलकत्ते से काम करने के लिये आया था। यहाँ आकर वह भी सबसे कहने लगा कि-''मैं भी देश नहीं जाऊँगा।'' उस बालक का नाम अनुकूल है। उन दोनों को उत्तरकाशी जाते देखकर उसे भी वहाँ जाने की इच्छा हुई। किन्तु कहने का साहस नहीं हो रहा था। मैंने पूछा-''तू जाएगा?'' उसने आनन्द के साथ कहा कि जाने दें तो जाऊँगा। मैं जल्दबाजी में उसकी बात माँ से नहीं कह सकी थी। अभय और योगेश दादा के चले जाने पर मैंने उसकी बात जाकर माँ से कही। सुनते ही माँ ने कहा-''अच्छा, जल्दी बुलाओ अनुकूल को।'' वह जल लाने गया था। माँ को देर सहन नहीं हो रही थी। अनुकूल आया। उससे पूछा गया। वह जाने को आनन्द से राजी हुआ। माँ ने उसी समय अपने शरीर की गरम चादर, कम्बल आदि देकर तथा और जो आवश्यक वस्तु है दूसरे लोगों से लेकर उसे भेजने का प्रबन्ध कर दिया। एक कुली साथ कर देने को भी कहा। ताकि वह इसके साथ जाकर योगेश दादा आदि से मिला दे। ऐसी व्यवस्था कर माँ हँसने लगी। सब लोग अवाक् रह गये। कहाँ तो वह छोकरा नौकरी करने के लिये आया और कहाँ उसे साधन- भजन के लिये उत्तरकाशी भेज दिया गया और उस विषय में विचार विवेचन नहीं। उपस्थित क्षेत्र में तुरन्त सारी व्यवस्था हो गई?

आगामी कल इलाहाबाद से बाबू शिवप्रसादसिंह कुछ घण्टों के लिये माँ के दर्शनों के लिये आयेंगे। वह बार-बार लिख रहे थे-''माँ यदि देहरादून आश्रम में आ जाये तो माँ के निकट दो घण्टे अधिक रह सकता हूँ।'' इस विषय में मैंने माँ से अनुरोध किया तो माँ ने कहा-''देखा जाएगा वर्तमान में क्या होता है।''

शिवप्रसादसिंह में माँ के दर्शनों के बाद से अद्भुत परिवर्तन हुआ है। इलाहाबाद से वकील श्रीयुत् जितेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय महाशय शिवप्रसादसिंह की बात लिखते हैं-''शिवप्रसाद के अद्भुत परिवर्तन से यहाँ के बड़े-बड़े लोग आश्चर्यचकित हो गये हैं। शिवप्रसाद बाबू हाईकोर्ट के एक प्रतिष्ठित वकील हैं। माँ को उन्होंने दो-तीन दिन ही देखा है। देखते ही इनमें अपूर्व परिवर्तन हुआ है। मदिरा-मांस न होने से जिनका काम ही नहीं चलता था, उन्होंने अब प्याज-लहसुन तक छोड़ दिया है। साधु को देखते ही जो

दिल्लगी करते थे आज वह माँ के नाम से सब कुछ छोड़ने को तैयार हैं। देखते ही ऐसा परिवर्तन होना नाटक उपन्यास में ही सम्भव है। वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं दिखाई पड़ता है। माँ के साथ-साथ रहने से धीरे-धीरे जीवन की गति परिवर्तित हो गई है-ऐसे अनेक उदाहरण देखे गये हैं। परन्तु यह तो देखने मात्र से अपूर्व परिवर्तन।'' और भी लिखा है-''शिवप्रसाद बाबू जहाँ-तहाँ माँ की महिमा का कीर्तन करते रहते हैं। बच्चों की तरह अपने को माँ का पुत्र समझते हुए उनका हृदय गर्व से भर उठता है। यदि कोई दिल्लगी से उनके विरुद्ध कुछ कहता है तो वह वहाँ से उठकर चले जाते हैं अथवा उसे चुप करा देते हैं-इत्यादि, इत्यादि।

तीसरे पहर 4 बजे माँ ने उठकर कहा-''चलो देहरादून जाएँ।'' उसी समय तैयारी कर ली गई। मैं, कमलाकान्त और श्रीयुत् मन्मथ भैया माँ के साथ चले, और सभी मसूरी में रह गये। देहरादून से शैलेन्द्र चक्रवर्ती नाम का एक लड़का कीर्तन में मसूरी गया था, वह भी हमारे साथ लौट चला। देहरादून आश्रम के पास ही इसका मकान है। दो घण्टे में ही हम लोग देहरादून पहुँच गये।

भाद्र 11, रविवार- आज सुबह शिवप्रसाद बाबू आ पहुँचे। उस समय माँ सो रही थी। उन्होंने जाकर माँ के चरणों में माथा टेककर प्रणाम किया। उनका हृदय इसी के लिये व्याकुल हो रहा था। शिवप्रसाद बाबू जब भी यहाँ आते हैं, माँ को साथ लेकर घूमने के लिये एक मोटर किराये पर लाकर रख देते हैं। किसी काम से वह मोटर दिन में 11 बजे मसूरी जाएगी, सुनते ही माँ ने कहा-''खुकुनी, मसूरी घूमने जाएगी?'' मैंने कहा-''चलो।'' दिन के 10 बजे यह बातचीत हुई। थोड़ा जलपान कर हम लोग मसूरी चले। साथ में शिवप्रसाद बाबू भी चले। कभी-कभी देखा है-बच्चों की तरह मोटर देखते ही माँ निकल पड़ती हैं, फिर कभी-कभी अनेक मोटरें आकर खड़ी रहती हैं, लोग माँ को घूमने ले जाने के लिये बहुत अनुरोध करते हैं, किन्तु माँ जाना नहीं चाहती। आज भी रास्ते में हँसते हुए वही बात चली। आश्चर्य का विषय है कि मसूरी रहते समय दो-तीन दिनों से माँ ने विशेष कुछ नहीं खाया। इस कारण शरीर अस्वस्थ है। माँ को देहरादून आने देने में स्वामीजी तथा मन्मथ दादा की सम्मति नहीं थी। किन्तु माँ का खयाल है, इस कारण कुछ बोल न सके। फिर 3 बजे दरवाजा खुलते ही लौट आने की बात थी।

मसूरी जाकर केवल एक घण्टा विश्राम लेकर लौट आना होगा। स्वामी अखण्डानन्दजी माँ का संग छूट जाने से हृदय में आघात पाते हैं और कोई भी विषय उन्हें इस प्रकार आघात नहीं दे सकता। माँ के निकट रहने पर भी सदा माँ के पास ही बैठे रहना या कुछ न कुछ बातें कहना वह नहीं चाहते हैं। चुपचाप यथाशक्ति माँ की सेवा करते जाते हैं। माँ पास ही हैं, इसी से उनको आनन्द है। प्राय: सभी समय वह अपने कमरे में बैठे रहते हैं। कल भी आते समय उन्होंने किसी प्रकार की बाधा नहीं दी और न साथ आने के लिये प्रार्थना ही की। किन्तु हृदय की वेदना चेहरे पर दीख उठी थी। माँ ने उस पर ध्यान दिया था। आज चलते समय माँ ने कहा–"बाबा को देख आऊँगी।" मालूम नहीं स्वामीजी के हृदय की वेदना माँ के इतने कम समय के लिये मसूरी जाने का कारण है या नहीं।

मसूरी जाते ही सब लोग अचम्भे में आ गये। लगभग एक घण्टा वहाँ रहकर ही माँ देहरादून की ओर चली। एक बार बात हुई थी कुछ अधिक समय मसूरी विश्राम करके शाम को 6 बजे दरवाजा खुलते ही लौटा जाएगा। माँ ने कहा–3 बजे ही चलो, 3 बजे आकर देखा–बहुत से लोग माँ के दर्शनों के लिये बैठे हैं। सहारनपुर से दो भद्र महिलाएँ माँ के लिये बहुत-सी मिठाई लाकर उपवासी बैठी हैं। माँ के आते ही धीरे-धीरे शारदा, लक्ष्मी रानी, हरीराम जोशी आदि आ पहुँचे। तब समझ में आया कि माँ ने क्यों 3 बजे लौट आने के लिये कहा था। हर समय ही ऐसा माँ नहीं करती परन्तु बीच-बीच में ऐसा हो जाता है।

भाद्र 12, सोमवार– आज श्रीयुत् शिवप्रसाद भाई ने माँ को लेकर रायपुर जाने की प्रार्थना की। दिन के 9 बजे मैं, श्रीयुत् मन्मथ दादा तथा शिवप्रसाद भाई माँ के साथ रायपुर चले। बिशू ब्रह्मचारी वहाँ हैं। माँ के पहुँचते ही बिशू ने सब प्रबन्ध कर दिया। हम लोगों ने वहाँ रसोई करके भोजन कर लिया। फिर तीसरे पहर 3 बजे किशनपुर आश्रम लौट आये।

एक 'महिला-आश्रम' बनाने की बात हो रही है। श्रीयुत् शिवप्रसादसिंह इस विषय में हमें सहायता देने के लिये तैयार हो गये।

भाद्र 13, मंगलवार– माँ का शरीर अस्वस्थ है, तथापि विश्राम नहीं है, एक के बाद दूसरा आता है और जाता है।

माँ के मुख से विविध बातें

आज दोपहर को माँ आँख मूँदे लेटी थी और मैं पास बैठी थी। एकाएक माँ हँसती हुई कहने लगी-''कैसा चमत्कार, देखो, यह जो स्थूल शरीर देखती हो (अपना शरीर दिखाकर) तमाम स्थूल वस्तुओं को लेकर एक शरीर। वह कैसा जानती हो? जो स्थूल में प्रकट नहीं है उसे लेकर एक सूक्ष्म शरीर है। फिर कारण शरीर अपनी सत्ता में स्थित है। इन्हें जो भिन्न-भिन्न देखा जाता है ऐसा नहीं है। मानो एक ही के भीतर सब ओत-प्रोत भाव से हैं। फिर उस कारण का कारण महाकारण जो है, वह है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण नाम की कोई चीज भी नहीं है। क्या है, क्या नहीं है, कहा नहीं जा सकता, बस।'' इतना कहकर छोटी बच्ची की तरह महान् आनन्द से हँसते हुए ताली पीटकर मानो सब कुछ उड़ा दिया, फिर कहा-''यह भाव नया नहीं है, इस तरह बराबर ही था एक ही भाव। परन्तु अब केवल प्रकट रूप से बताया गया।'' इतना कहकर माँ चुप हो गई।

तीसरे पहर माँ के पास मैं कमरे में बैठी हूँ। अनेक बातें हो रही हैं। कृपा और कर्म की बात चली-माँ ने कहा कृ-पा। कृ का अर्थ कृत, पा का अर्थ जो पाया गया है। अर्थात् जैसा कर्म वैसा फल। वह भी कैसे प्रकट होता है। तुमने ऐसा कर्म नहीं किया जिससे यह फल पाते, किन्तु तुम्हारा ऐसा कर्म था जो अब कर्म रूप से प्रकट न होने पर भी पहले जो किया गया था उसके फलस्वरूप तुमने पाया। दूसरी ओर से देखो, कृ-पा जो करते हैं। कृ-पा अर्थात् वहाँ इसे कर सकते हो। मेरी तो अंडबंड बातें हैं, ये समझ लो कि इसे तुम कर सकते हो जो कृ-पा करते हैं, अर्थात् स्वयम् करके तुम्हें प्राप्त करा दिया। सब तुम्हारे कर्म का फल नहीं है। जैसे-एक मजदूर तुम्हारे घर में काम करने के लिये आया। बहुत दुर्बल होने के कारण अधिक काम नहीं कर सका किन्तु धनाभाव उसे बहुत अधिक है। तुमने उस पर कृपा करके उसके कर्म के अतिरिक्त कुछ पुरस्कार भी दिया। यह है कृपा, और भी देखो मोटर में चल रहे हो, रास्ते में कोई यंत्र बिगड़ गया। मोटर रुक गई, ड्राइवर उसे ढकेलकर ले जाने लगा। साथ-साथ तुम भी उतरकर उसे ढकेलने लगे। इसी तरह मदद देकर मोटर को ठिकाने पर पहुँचा दिया और भाड़ा भी दे दिया। इतना कहकर माँ हँसने लगी।

फिर माँ ने कहा–"जब कृपा पूर्ण मात्रा में अनुभव करने का अनुग्रह वह पा जाता है तब वह देखता है कि जैसे एक आग की चिनगारी जितनी चीजों को जला सकती है, उतनी चीजों को कोई एकत्र नहीं कर सकता, उसी प्रकार कृपा भी उसके निकट अनन्त अखण्ड भाव से वर्षण के रूप में प्रकट होती है। उस समय वह देखता है–'मैं सांसारिक साधन–भजन कितना ही क्यों न करूँ, उसके द्वारा इतना अधिक फल प्राप्त करने की सामर्थ्य मुझमें नहीं है।' केवल उन्हीं की दया और कृपा है, उस समय वह दया और कृपा के समुद्र में निमज्जित रहता है। ऐसी दया और कृपा प्राप्ति का अनुभव होने पर किस प्रकार के कर्मों के रूप में वह प्रकाशित हो सकता है, यह समझ में आता है।" इतना कहकर पुनः गम्भीर भाव से माँ ने कहा–"जहाँ लेना और देना, कार्य–कारण भाव की बात होगी वहीं इस प्रकार की बात होती है। फिर यथार्थ बात सुनो–एक मात्र भगवान् का ही जब यंत्र है तब कर्म होने से ही कृपा आती है–और क्या है, एकमात्र कृपा ही सब कुछ है, वहाँ कोई हेतु नहीं है।"

सेवा (शारदा), लक्ष्मी, कौशल्या, हरीराम आदि अनेक लोग आये हैं। सेवा आते ही आँखें मूंदकर बैठी रहती है। आसानी से आँखें नहीं खोल सकती, न जाने कैसी अवस्था हो जाती है। माँ दूसरे लोगों से वार्तालाप कर रही हैं। सेवा ने भी आँखें खोली। माँ ने कहा–"गुप्त काम कुछ न करना, ऐसा करने पर बात गुप्त न रहेगी।" मैंने कहा–"इष्ट–मंत्र।" माँ ने कहा–"वही एक चीज गुप्त भाव से रखनी होती है। इधर–उधर जिससे न हो जाय। जैसे जमीन में बीज डाल दिया, यदि ढाँककर न रखा जाय तो वृक्ष नहीं होता। नित्य उठा–उठाकर देखने से भी पेड़ होने की आशा नहीं होती। इस कारण बहुत यत्न से बीज को मिट्टी के अन्दर डालकर उसकी सेवा करोगे तो यथासमय देखोगे कि उससे अंकुर निकल आया है और धीरे–धीरे बढ़ने लगा है।" सेवा ने कहा–"माँ यदि जोर की आँधी आए तो वह वृक्ष नष्ट हो जाएगा तो उस समय उसकी रक्षा करने का उपाय क्या है?" माँ ने कहा–"तब छोटे–छोटे पौधों को ढाँककर रखना होता है। तुमने देखा होगा कि ओले–पानी से छोटे पौधों को बचाने के लिये लोग कितना यत्न करते हैं उसके बाद चारों ओर टट्टर का घेरा देकर गाय–बकरे आदि से उसकी रक्षा करनी होती है। इस रीति से रक्षा करने से वह पेड़ ही फिर बहुत लोगों का रक्षक हो जाता है।"

माँ के मुख से पुरानी बातें

आज एक समय माँ के पास बैठी हूँ। बात-बात में आउट-शाही में माँ की जो भावावस्था हुई थी वह चर्चा चली। पहले इस सम्बन्ध में संभवत: कुछ उल्लेख किया गया है। उस दिन की अवस्था बहुत अद्‌भुत हुई थी। शरीर के सारे लोम यहाँ तक कि सिर के केश तक इस ढंग से खड़े हो गये थे कि रोम-कूप की जड़ में गिलटी-सी सूजन दिखाई पड़ती थी। रोमकूपों से मानो खून निकल रहा था, शरीर लाल हो गया था। भावावस्था में ऊँचे बरामदे में माँ लुढ़क गयी। उस अवस्था में सर्प की गति से लुढ़कते हुए शरीर तो बरामदे में ही रहा और सिर आँगन में जा पड़ा। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि शरीर कितना लम्बा हो गया था। वह एक अद्‌भुत अवस्था थी।

उसके बाद ढाका के धानकोड़ा के मकान में माँ ने जो कीर्तन आरम्भ किया था उसकी बात चली। एक बार धानकोड़ा के दिनेश बाबू के घर में माँ की कीर्तन में बहुत ही भावावस्था हुई थी। उसी दशा में माँ ने वहाँ कहा था-"हफ्ते में कम-से-कम एक दिन तुम लोग इस मकान में कीर्तन करना।" जिस दिन माँ का वैसा भाव हुआ था, उस दिन से ही उन लोगों ने हर हफ्ते कीर्तन की व्यवस्था की। यह आज से 10-12 साल पहले की बात है। अभी भी वे वहाँ कीर्तन की रक्षा कर रहे हैं।

इसके अनन्तर बात चली कि माँ शाहबाग रहते समय एक दिन सिद्धेश्वरी के भवन में गई थी। एक आदमी ने माँ की परीक्षा लेने के लिये ही हो या दूसरे किसी भाव से हो, जाकर माँ से कहा-"मैं किसलिए आया हूँ बताइये। मैं अपने मुँह से नहीं कहूँगा, आप तो अन्तर की बात जानती हैं, बताइये न?" माँ हँसकर बोली-"मैंने मुख से उत्तर नहीं दिया, तुम अपने अन्तर में समझ लो।" उस आदमी ने घर जाकर देखा कि जो प्रार्थना लेकर वह माँ के पास गया था, वह पूर्ण हो गयी है। इस कारण दूसरे दिन माँ के पास जाकर माँ से रोते हुए उसने क्षमा माँगी थी।

माँ का शरीर बहुत ही अस्वस्थ हो गया है। परन्तु हर समय इन सब बातों का उन्हें खयाल ही नहीं होता। माँ ने कहा-"गोलमाल क्या हुआ, जानते हो? तुम लोगों ने पूछा-इसी से तो कहती हूँ कि ऐसी-ऐसी बातें हुई हैं, हर समय वह भी नहीं बता सकती और यह जो बीमारी हुई है, तुम

लोग कहते हो मुझे तो कोई असुविधा नहीं है, जैसी थी वैसी ही हूँ।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

भाद्र 14 बुधवार– आज सुबह 9 बजे माँ ने कहा–''11 बजे फाटक खुलते ही चलो आज मसूरी जाया जाय।'' वैसा ही हुआ। जल्दी-जल्दी कुछ खा-पीकर हम लोग माँ को लेकर मसूरी की ओर चल पड़े। मन्मथ दादा को इस बार किशनपुर आश्रम में ही छोड़ दिया गया। माँ के साथ मैं, कमलाकान्त और शैलेन्द्र चले। डेढ़ घण्टे के भीतर ही हम लोग मसूरी पहुँच गये।

भाद्र 16 शुक्रवार– अभय के यहाँ रहते हुए ही माँ ने कहा था–''एक आदमी यहाँ पछाड़ खायेगा देखती हूँ।'' अभय ने मुझसे आकर कहा–''दीदी, माँ कहती हैं कि एक आदमी पछाड़ खायेगा।'' कई दिन बीत गये, किसी को वह बात याद नहीं रही। कल मैं एकाएक गिर पड़ी। शरीर कई जगह कट गया, माँ को आकर बताया गया तो माँ हँसकर बोली–''इतने दिनों के बाद वह पछाड़ खाया गया।'' तब मुझे याद आया कि माँ ने तो कुछ दिन पहले ही यह बात कही थी।

माँ के मुख से विविध बातें

बात-बात में माँ कहने लगी–''देखो एक छोटा-सा बीज जमीन में डालकर यत्न करते-करते क्या हुआ? उसके भीतर से खड़ा होकर वृक्ष ऊपर निकल आया है, मानो कोई योगी सीधा बैठा हो। तपस्या करते-करते वह स्थिर-धीर योगी (वृक्ष), उसके बाद क्या हुआ? फल, फल और फलों के भीतर लाखों बीज। उन बीजों में से एक ही बीज से फिर पेड़-फूल और फल होंगे। प्रारम्भ में जो था, एकदम अन्त में भी वही है, इसी से कहती हूँ कि आरम्भ में भी बे-दन्त और अन्त में भी बे-दन्त। बीच के दाँतों को ही लेकर ही (जितना गंडगोल सब) एक के सिवाय और क्या है?'' इतना कहकर माँ हँसते हुए फिर से बोली–''यह जो मैंने कहा कि पहले और पीछे यहाँ पूर्वापर नाम की कोई बात ही नहीं है। यह जो बीच में देखते हो वह सब माया का ही खेल है। असली तत्त्व तो एक ही है।''

माँ के पास मैं बैठी हूँ। बात चली कि हम लोग जो कहते हैं वे करायेंगे तभी तो हम करेंगे। वे जानते हैं–इस विषय में माँ ने कहा–''सबसे

पहले वह कौन हैं, उसे जानने की चेष्टा करो, उनके साथ क्या सम्बन्ध है इसकी खोज करो, तभी यह कहने के अधिकारी होंगे कि 'वह जो कराते हैं, वही करता हूँ'-इस समय तो उनके साथ परिचय ही नहीं है तो भी वह-वह कहते-कहते उनकी खोज का भाव जाग भी सकता है।''

माँ के पेट में दर्द है, सर्दी इत्यादि भी है। माँ को लोग उलाहना देते हैं कि 'माँ बीमारी लेकर क्यों बैठी हो, इच्छा करते ही तो उसे भगा सकती हो।' माँ ने हँसकर कहा-''सभी मेरी गुड़िया हैं, गुड़ियों से खेले बिना मैं नहीं रह सकती। एक न एक गुड़िया के साथ मेरा खेल चलता है। कभी तुम लोगों से खेलती हूँ, कभी ये देखो न तीन-चार गुड़ियों (सर्दी, खाँसी, धड़कन, दर्द) को लेकर खेल हो रहा है और जब शरीर मौन हो जाता है तो मौन रूप गुड़ियों से खेल होता है। फिर जब बातचीत होती है तो वाक्य रूप गुड़िया से खेल चलता है, इसी तरह प्रयोजन के अनुसार एक-एक गुड़िया लेकर खेल होता जाता है।'' इतना कहकर बच्चों की तरह हाथों से ताली पीटकर हँसते हुए फिर माँ बोली-''तुम्हारी दृष्टि से जब तक यह शरीर है खेल भी तब तक ही है।'' प्राय: देखा जाता है कि पारमार्थिक, सांसारिक, आध्यात्मिक आदि किसी भी भाव के साथ मानो माँ का कोई सम्पर्क नहीं है। एकदम शान्त, यह भी एक खेल है। माँ कहती हैं-''खेल जो कुछ है, अपने को लेकर ही तो है। कैसा है, जानती हो? जैसे-पैर की अंगुली हिलती है, फिर हाथ की अंगुली हिलती है, फिर खुद ही ताली पीटकर हँस रहा है। ये जो कुछ देखते हो, यह शरीर भी तुम लोगों के देखने से ही है।'' फिर कहती हैं-''खेल भी जिसका है, देखना भी उसी का है, फिर देखो खेलना और देखना नाम से कोई बात ही नहीं है।''

सन्ध्या समय कुछ लोग आये हैं। कुछ पंजाबी स्त्रियाँ भी आई हैं, इन लोगों ने पहले माँ को कई स्थानों पर देखा है। उन्होंने कहा-''माँ आपके पास से जाने की इच्छा नहीं होती।'' एक पंजाबी महिला ने कहा-''दीदी, मैं जब घर से माँ से मिलने के लिये रवाना होती हूँ तो छाती धड़कने लगती है कि कब जाकर माँ के चरणों में अपना शरीर और मन उड़ेल दूँगी।''

निर्मल बाबू की मृत्यु की बात

बात-बात में स्व. निर्मल बाबू की मृत्यु की बात चली। माँ ने मुझसे

कहा–''ये सब पंजाबी स्त्रियाँ उस समय थी।'' इतना कहकर हिन्दी में कहने लगी–''देख कैसा चमत्कार है जब निर्मल बाबू ने हरिद्वार आकर मसूरी चिट्ठी लिखी–''माँ, आज्ञा दीजिए, आपके पास आऊँ'', तो मैंने ज्योतिष से लिखवा दिया–''जब समय होगा तभी भेंट होगी।'' इस चिट्ठी को पाकर निर्मल बाबू चले आये, आकर रास्ते में ही मुझे देखते ही बोल उठे–''मैं आ गया हूँ माँ, मेरा समय हुआ है न?'' मैंने कहा–''हाँ, हुआ है।'' हम लोग सनातन धर्मशाला में थे। वहाँ स्थान न मिलने से वे लोग पंजाबियों के गुरुद्वारे में रुक गये। रोज ही मेरे पास आते थे। रात्रि का भोजन कभी–कभी वहीं कर लेते थे। एक दिन तरु के गोपाल को लेकर नटखटी की जा रही थी तो उस समय निर्मल बाबू ने कहा–''मेरा घर–द्वार सब गोपाल का है, मेरा कुछ भी नहीं है।'' बहुत कृपण थे, ऐसी बात मुख से निकलना सहज नहीं था। एक दिन उन्हें इच्छा हुई–'सब लोग माँ को रसोई बनाकर खिलाते हैं, मैं भी आज माँ को परांठा–तरकारी बनाकर खिलाऊँगा।' वैसा ही किया। उसके बाद एक दिन कहीं से वह घूमकर आये। मैंने देखा कि सारे चेहरे पर जैसे गाढ़े लाल रंग पर कुछ काली आभा छा गई है। मैंने कहा–''क्या तुम्हारी तबीयत खराब हुई है?'' उन्होंने कहा–''नहीं माँ। आज मैं दस–बारह मील चलकर आया हूँ।'' उसके बाद वह पैखाने गये, पानी बरस रहा था। उसने आकर कहा–''मेरे पेट में दर्द उठा है।'' कालिक (शूल) की वेदना उन्हें थी। लेटने के लिये कहा गया। कुछ देर बाद गुरुद्वारे में जाने की इच्छा प्रकट की। कहा गया डाण्डी ला दी जाय। उत्तर में कहा–''क्यों माँ, मेरे शरीर में आज भी इतनी शक्ति है कि दो–तीन आदमियों को उठा ले जा सकता हूँ।'' उसके बाद वे लोग चले गये। खबर मिली कि ज्वर हुआ है, उसकी स्त्री ने आकर कहा–''माँ एक बार चलिए। जाकर देख आइए वह तो गुरुद्वारे की धर्मशाला है, आपको तो वहाँ जाने में बाधा नहीं है।'' परन्तु न जाने कैसा खयाल हुआ कि मैंने कह दिया–''नहीं, जाने का खयाल नहीं हो रहा है।'' दुःखी होकर वह लौट गयी। सदा ही वे लोग मेरे पास रहते थे। सभी ने मुझे उन्हें देख आने के लिये कहा। किन्तु जाने का खयाल ही नहीं हुआ। निर्मल बाबू के पास लौट जाकर स्त्री ने उनसे कहा–''देखो, माँ से कितना कहा कि एक बार चलकर देख जाइये, माँ किसी तरह नहीं आई।'' निर्मल बाबू ने कहा–''घबराती क्यों हो? माँ समय पर आएँगी।'' उसके बाद तीसरे पहर एक

पंजाबी स्त्री के साथ मैं टहलने निकल गयी। लौट आकर धर्मशाला के दरवाजे पर मैं खड़ी हो गयी, उस समय मन में ऐसा भाव उठा कि यदि कोई एक बार कहे तो अब निर्मल बाबू को देखने जा सकती हूँ। इतने में भोलानाथ ने निर्मल बाबू को देख आकर मुझसे कहा–"चलो न, एक बार देख आओगी। उसकी ऐसी अवस्था है।" यह बात सुनते ही मैं निकल पड़ी। रास्ते में भोलानाथ से पूछा–"डाक्टर लोग क्या कहते हैं।" उसने कहा–"डाक्टर लोग कहते हैं कि अभी ऐसी कुछ खराब अवस्था नहीं है। दो-तीन दिन तक कुछ नहीं होगा।" मैंने उसके बीमार होते ही ज्योतिष से कहा था–"अच्छी तरह चिकित्सा का प्रबन्ध होना चाहिए।" उसके बाद आज कह दिया–"उन्हें खेद न रह जाय, सिविल सर्जन को बुलाकर दिखा देना चाहिए।" उसका प्रबन्ध किया गया। मेरे पहुँचते ही निर्मल बाबू ने चारपाई पर लेटे हुए ही हाथ बढ़ाकर मेरे पैर की धूल ली। उसके बाद दो-एक बात भी बोले, अच्छे-अच्छे दो-चार शब्द भी निकले। इतने में सिविल सर्जन आ पहुँचे। घर में अधिक स्थान भी नहीं था। अवस्था से प्राय: शेष काल समझकर भोलानाथ डर गये कि पीछे मेरा शरीर जाने कैसा हो जाय। तुम लोगों ने देखा है भोलानाथ को सदा ही भय लगा रहता है कि इस शरीर में न जाने कब कैसा परिवर्तन हो जाय। रोने से नहीं किन्तु शरीर छोड़ने में क्षण भर समय भी न लगेगा–वह ऐसा समझते थे। इस कारण डरकर मेरा हाथ पकड़कर उठाने की चेष्टा करते हुए कहा–'चलो, जाएँ।' मैं भी उठ खड़ी हुई। रोगी के चेहरे की ओर देखा, आँखें ऊपर खिंच गई थी। मैं तो अपनी इच्छा से कुछ करती नहीं। उस समय मेरे हाथ से उनके ब्रह्मतालु का स्पर्श किया गया और उसके अनन्तर हम लोग घर से बाहर निकल आये। प्राणवायु उसी समय निकल गई। सुना है कि सिविल सर्जन ने एक इन्जेक्शन उसी अवस्था में दिया था। निर्मल बाबू की बराबर ही एक बात थी–'मेरा अन्तिम समय देखने पर भी कोई सूई (इन्जेक्शन) न दे।' किन्तु उस समय किसी को उसकी याद ही नहीं थी।

इतना कहकर पुन: माँ बोली–"देखा प्राय: लोग कहते हैं कि माँ अन्तिम समय आप उपस्थित रहियेगा।" निर्मल बाबू बहुत संयत व्यक्ति थे। प्राय: वह प्रकट में उसी तरह की बात हल्के भाव से किया करते थे किन्तु उनके भीतर की बात यही थी। मानो वह कहते थे–'माँ अन्तिम समय

उपस्थित रहियेगा।' परन्तु लोग उनकी बात समझ नहीं सके। सोचते थे कि शायद परिहास करते हैं परन्तु वह उनके हृदय की बात थी। वह सब लोग नहीं समझ सके। मैं तो इच्छा से कुछ नहीं करती, जो होने को है वह हो जाता है।

माँ के साथ विविध पुरानी बातें

भाद्र 17, शनिवार– भोजन के बाद मैं माँ के साथ बातचीत कर रही थी। मैंने कहा–''माँ, **रमण** के आश्रम में समाधि–स्थान के ऊपर तुम्हारे चरण–चिह्न जो ज्योतिष दादा ने स्थापित किया है।''–इतना सुनते ही माँ बोल उठी–''समाधि–स्थान के ऊपर, यह बात तुमने कहाँ सुनी?'' मैंने कहा–''अनेक लोगों के मुख से सुना है कि वह एक समाधि है, किससे सुना उसका नाम नहीं बता सकती।'' माँ ने कुछ नहीं कहा सही। परन्तु उस बात के विषय में बार–बार पूछने पर भी उस स्थान का कुछ भी परिचय नहीं पाया। वह यथार्थ में किसी का समाधि–स्थान है या नहीं, यह भी माँ के मुख से अभी तक नहीं सुना गया।

फिर बात चली कि माँ जमीन पर भात रखकर खाती थी। हम लोग जब उन्हें खिलाते थे तो थोड़ी जगह साफ कर देते थे। किन्तु उसके पहले माँ जब अपने हाथ से खाती थी, उस समय भूमि पर भात रखकर खाया करती थी। जिस समय ऐसा करती थी, उस स्थान को साफ भी नहीं करती थी, जमीन पक्की ही हो या मिट्टी की, कितने भी लोगों के पैर की धूल वहाँ हो, केश–तिनके आदि भी हों, उसी में जितना भात खाना था उड़ेल देती थी। न जाने कितने दिन इसी तरह बीते। तिनके, केश और धूल आदि के साथ भात मुँह में डालती थी। साफ कर लेने का भाव जगने की भी अवस्था उस समय नहीं थी।

प्रथम भाग में लिखा गया है कि माँ कहती थी–''मैंने कुछ हाथ ऊपर शून्य में दो महात्माओं को बैठे देखा–एक गुरु दूसरे शिष्य। शिष्य खड़ा था।''

इस बात पर माँ ने कहा–''हाँ, एक महात्मा बैठे थे और दूसरे उनके शिष्य खड़े थे।''

प्रथम भाग में और भी लिखा है–''खाने–पीने के बाद माँ पहाड़ के नीचे ज्योतिष दादा के डेरे पर चली गई।'' इस विषय में माँ के साथ

बातचीत करते समय माँ ने कहा-"ऐसा नहीं, अष्टभुजा आदि स्थानों से आकर मैं नीचे ज्योतिष के डेरे पर चली गयी थी। जाते समय कह गयी थी कि मैं आज खिचड़ी खाऊँगी। खाने से पहले ही ज्योतिष के डेरे पर गयी थी। दाहिने पैर में साँप ने काटा था परन्तु ज्योतिष ने बायें पैर पर दवा डाल दी।"

इस स्थान पर मैं और एक बात लिखती हूँ। प्रथम भाग में एक बात अशुद्ध लिखी गयी है। वह अशुद्धि हमारी गलती से हुई थी। बात यह लिखी हुई है-'कामाख्या पहाड़ पर चढ़ते समय आरम्भ में माँ बहुत जल्दी-जल्दी चढ़ती जा रही थी, कुछ दूर चढ़ने पर श्वास कष्ट होने से आगे न चढ़ सकी। हम लोग पकड़कर किसी तरह ऊपर ले गये।"

बात ऐसी नहीं थी। बात यह हुई थी-"माँ ने बहुत जल्दी-जल्दी चढ़ते हुए श्वास की गति के साथ शरीर को छोड़ दिया, मानो शिथिल शरीर में एक भयानक परिवर्तन हो गया। और भी एक विशेष बात है, साथ के हम लोग हाँफने लगे, चढ़ना कठिन हो रहा था। माँ के भाव में ऐसा परिवर्तन देखकर उनकी शरीर-रक्षा के लिये हम लोग ऐसे व्यस्त हो गए कि उस चिन्ता में हमारा क्लान्ति का भाव कहाँ चला गया पता ही न लगा। शेष रास्ता माँ के शरीर को सहारा देकर तय करते हुए हम लोग अनायास ही ऊपर चढ़ आये थे। कौन जाने हमारी क्लान्ति दूर करने के लिये माँ के शरीर में वैसा भाव प्रकट हुआ था कि नहीं?

हमारे टिकाटूली के डेरे में दुर्गा-पूजा की बात भी उस प्रथम खण्ड मैं है। उस पूजा में बलि की बात लिखी है। आज प्रंसगवश वह बात चली। माँ के साथ बात करते हुए मुझे भी याद आया कि एक घटना लिखी ही नहीं गयी है। वह घटना बहुत ही सुन्दर है। घटना इस प्रकार है-जब देवी के सामने बकरा काटते समय उसका गला आधा नहीं कटा तो घर के लोग भविष्य में अमंगल होने की आशंका से बेचैन हो गए। उस समय माँ ने नन्दू से कहा-"अभी कच्चा नारियल मँगाओ।" वैसा ही किया गया। बाद में माँ ने कहा-"इनमें से एक नारियल की बलि दी जाय और उसके सिर के अंश में जो जल है उसी से पूजा में रुधिर का काम होगा।"

सुरेन मुखोपाध्याय महाशय ने नारियल की बलि दी। आश्चर्य का विषय है कि उस नारियल के दो अंश दो तरफ गिर गये। नीचे का अंश लुढ़क

गया। सिर का अंश चित पड़ा रहा। इस कारण इसमें कुछ जल रह गया। उस जल से ही देवी पूजा में रुधिर का काम लिया गया। इसके बाद देखा गया कि जो लोग भावी विपत्ति की आशंका से बेचैन हो गए थे, उनके मन में आशंका का चिह्न नहीं रहा। फिर पहले की तरह पूजा-भवन में आनन्द का प्रवाह चलने लगा।

माँ के अनेक भावों के खेल देखती हूँ। कभी-कभी माँ को भी जो खयाल होता। सैकड़ों विघ्न-बाधा होने पर भी वह करना ही होगा। फिर विघ्न नाश करने की विधि भी मानो साथ-ही-साथ चलती थी। जो बना रही हैं, वही तोड़ भी रही हैं। इसी कारण माँ कहा करती हैं कि "जो उठाना जानते हैं वह डुबाने का खेल भी खेल सकते हैं।"

आज सुबह एक घटना हुई है। सुबह 8 बजे माँ के लिये जलपान तैयार करके मैं माँ को बुलाने लगी। परन्तु माँ कम्बल ओढ़कर लेटी थी। कुछ देर बाद वह उठ बैठी। परन्तु मुँह धोने के लिये नहीं जाना चाहती थी। इस तरह 9 बज गये। 9 बजे के बाद देहरादून से शशांक ब्रह्मचारी कुछ पटुए की पत्ती लेकर आ पहुँचे। माँ के लिये किसी ने भेजी हैं। माँ तब हँसकर बोली-"देखो तो, मुझे 8 बजे तुम खिलाना चाहती थी, यह जो पटुए की पत्ती आयी है, इसे कैसे खिलाती?" हम लोग समझ गये कि माँ भक्त की इच्छा पूर्ण करने के लिये ही इतनी देर तक बैठी थी। इस पटुए की पत्ती की और भी घटना है। माँ ने कुछ दिन पहले मसूरी के रास्ते में चलते हुए मुझसे कहा था कि "पटुए की पत्ती मँगा सकती हो।" इधर पटुए की पत्ती के मिलने का कोई उपाय नहीं है। इस कारण हमने उनकी बात को हँसी में उड़ा दिया। उसके बाद इस बीच में कई दिन पहले देहरादून जाना हुआ। वहाँ से लौटते समय एक सज्जन (श्रीयुत् यतीशचन्द्र-माँ उन्हें कर्मयोगी कहती हैं) आश्रम में बैठकर बात कर रहे थे। उन्होंने पटुए के पौधे लगाये हैं। इस बात को सुनकर श्रीयुत् मन्मथ बाबू ने कहा-"माँ को कुछ पत्ती भेज देना।" तब माँ भी हँस पड़ी और मुझसे बोली-"खुकुनी, उस दिन मैंने पटुए की पत्ती की बात कही थी न?" मुझे भी तब याद आ गया।

आज फिर सन्ध्या को पटुए की पत्ती के विषय में और एक घटना हुई। एक भद्र महिला ने आकर कहा-"माँ, स्वामीजी (एक स्वामीजी यहाँ हैं, माँ के साथ उनकी कई बार भेंट हुई है) के एक भक्त कलकत्ते से नीबू, चालता

(एक खट्टा बड़ा फल) आदि लेकर आये हैं।'' स्वामीजी ने कहा है-''माँ से कहना कि वह जो खाना चाहती हैं, यहाँ से भेज दूँगा।'' माँ ने यह सुनकर कहा-''पिताजी, लड़की को जो देंगे वही खाऊँगी, तो एक काम पहले करो। पिताजी को कुछ पटुए की पत्ती भेज दो।'' पटुए की पत्ती भेज दी गई। स्वामीजी ने उसे पाकर बहुत ही प्रसन्न होकर कहा-''मैं कई दिनों से कह रहा था कि देखो तो पटुए की पत्ती मिलती है या नहीं।'' उसी समय अपने एक सेवक से उन्होंने माँ के लिये नीबू, चालता आदि भेजे। भद्र महिला ने जाकर स्वामीजी से कहा-''बाबा आप जो पटुए की पत्ती की बात कहते थे, आपके मन का भाव जानकर ही माँ ने शायद आपको पटुए की पत्ती भेजी है।''

सन्ध्या के समय कीर्तन आदि हो जाने पर सब लोग चले गये।

भाद्र 18, रविवार- दिन के 12 बजे तक कीर्तन हुआ। उसके बाद सब लोग माँ को लेकर बैठे। आजकल लोग माँ के गले में माला और पैरों में फूल देते हैं। उस सम्बन्ध में बात होने लगी, अब तो इन सब चीजों के देने से माँ कुछ नहीं कहती परन्तु शुरू में ऐसा होता था कि माला तो दूर की बात है एक फूल या बेल की पत्ती भी शरीर पर लगने पर शरीर शिथिल पड़ जाता था। अवस्था में एक भयानक परिवर्तन हो जाता था, मानो पत्थर की मूर्ति हैं। इसी ढंग से पड़ी रहती थी। उत्सव के बीच में जब भोलानाथजी माँ की पूजा करते थे, तब माँ का शरीर माला, फूल, बेल की पत्ती, जल आदि से बिल्कुल ढक जाता था। माँ उन फूल-पत्तियों के नीचे इस ढंग से पड़ी रहती थी कि मानो पत्थर की मूर्ति हों, नीरव और निस्पन्द। घण्टों इसी तरह बीत जाते थे। उसके बाद हम लोग उठा लाते थे और कपड़े बदलवाकर, बिछौने पर लिटा देते थे। उसके पूर्व कभी किसी को फूल मालादि देने नहीं देती थी, कहती थी कि ये सब मनुष्य के पैर में नहीं देना चाहिए, देवता को देना। इसके अनन्तर फूल, पत्ती, फल, जल आदि किसी चीज के देने में बाधा नहीं देती थी। किन्तु पहले इस तरह की कोई चीज देने से शरीर की अवस्था उसी तरह परिवर्तित हो जाती थी। उठाने में बहुत समय लगता था।

प्रसंगवश माँ ने कहा-''यह जो लोग सदालोचना करते हैं वह किसके लिये? आलोचना करते हैं 'अ-लोचन' होने के लिये तो। जब तक दृष्टि तब तक सृष्टि है।''

और भी एक बात उन्होंने कही-''तुम्हारी गद्वर की काली-मूर्ति का

दरवाजा खोलने का भार योगेश वन्द्योपाध्याय के ऊपर था और उस समय प्रणामी के रुपये-पैसे का हिसाब भी उसी के पास रहने की बात थी, अब तो दरवाजा खोलना बन्द हो गया है किन्तु प्रणामी के रुपये-पैसे का हिसाब अभी भी पहले की तरह योगेश बाबू के पास ही है उसके अभाव में उसके पुत्र अथवा सुरेन बाबू के पुत्र इस कार्य का भार ले सकते हैं।''

भाद्र 19, सोमवार– आज सुबह माँ उठी है। आज भी माँ ने भात या रोटी नहीं खायी। कुछ दिनों से दूध-साबूदाना या तरकारी का जूस पिलाया जाता है, आज भी वही पीया। दोपहर के 12 बजे मैंने कुछ चिट्ठियाँ पढ़कर माँ को सुनायी। दो-एक आवश्यक बातों का जवाब दिया, उसके बाद कहा– ''चलो, कुछ टहल आऊँ, उसके बाद सोऊँगी।'' रिक्शे पर उष्ट्र पृष्ठ (*Camel's Back*) देखने गयी। बेबी दीदी ने भी उस स्थान को नहीं देखा था। लगभग डेढ़ बजे हम लोग निकले। निकलते ही मूसलाधार पानी बरसने लगा, किसी तरह जाया गया। तीसरे पहर 4 बजे हम लोग लौट आये। माँ लेट गयी। सन्ध्या के पूर्व माँ उठी। सन्ध्या समय आज भी रोज की तरह थोड़ा कीर्तन हुआ। रात के 10 बजे माँ के कमरे की बत्ती बुझा दी गयी।

माँ के साथ विविध आलोचनाएँ

भाद्र 20, मंगलवार– रोज की तरह आज भी तीसरे पहर बहुत से दर्शनार्थी आये। लखनऊ से एक इंजीनियर (उत्तरप्रदेश के वासी) सपरिवार माँ की खबर इलाहाबाद में महारतन और बाबू शिवप्रसाद के निकट पाकर माँ की खोज करते हुए यहाँ आये। सिख संप्रदाय के एक सरदार भी माँ के साथ वार्तालाप करने के लिये आये हैं; और भी अनेक बंगाली, पंजाबी स्त्री-पुरुष आये हैं। सिख संप्रदाय के सरदार ने कहा-''माँ, मैं आपके पास आया हूँ, साधु-संग कर सका हूँ, अब भिखारी क्यों रहूँगा?'' माँ ने उत्तर में कहा- ''उनका संग कर सकने से तो कोई बात ही नहीं रह जाती। संग करना होता कहाँ है?'' इंजीनियर ने कहा-''तो क्या कुछ भी नहीं होता?'' माँ ने कहा- ''कुछ भी नहीं होता, यह बात मैं नहीं कह सकती, तेज धूप में पेड़ की छाया में खड़े होने पर पेड़ का स्वभाव ही छाया देना है। छाया तुम अवश्य पाओगे, जब तक पेड़ के नीचे रहोगे, पेड़ का प्रभाव तुम्हारे ऊपर निश्चय ही पड़ेगा। इस विषय में संदेह नहीं है। परन्तु यदि तुम पेड़ की छाया में एक बार खड़े होकर फिर धूप में दौड़ते रहो तो अवश्य ही क्लान्त हो जाओगे।''

इंजीनियर ने कहा–''माँ, लोग कहते हैं कि कलियुग में नाम–कीर्तन ही साधन है। परन्तु मैं देखता हूँ कि अनेक स्थानों पर लोग वर्षों तक नाम–कीर्तन करते हैं किन्तु अवस्था में विशेष उन्नति नहीं दिखाई पड़ती इसका कारण क्या है? मुझे ऐसा लगता है कि नाम–कीर्तन करने की भी शायद कोई खास विधि है, उसे जानकर उसी ढंग से नाम–कीर्तन करने से काम होता है, नहीं तो कुछ भी नहीं होता।''

माँ ने कहा–''देखो, नाम और नामी तो एक ही हैं। जैसे–यदि मैं तुमको तुम्हारा नाम लेकर पुकारूँ तो तुम आकर हाजिर हो जाओगे। अत: नाम से ही काम होता है। इस विषय में कोई सन्देह नहीं है। फिर भी कभी–कभी देखा जाता है कि कोई लड़का पढ़ता जाता है, किन्तु दिमाग में कुछ नहीं घुसता, ठीक उसी तरह और क्या? और भी देखो, उस प्रकार नाम गान करके बहुत कुछ पवित्र हो गया है। यदि नाम न लेता तो शायद और भी खराब हो जाता।'' इंजीनियर ने माँ की बात से संतुष्ट होकर कहा–''हाँ माँ, यह तो बहुत ही ठीक बात है।'' बात–बात में सरदारजी ने कहा–''माँ, जीवन्मुक्तों को क्या स्वप्न होता है?'' माँ ने हँसकर कहा–''जो लोग चिर जाग्रत हैं, उन्हें स्वप्न कैसे होगा? और यदि स्वप्न की बात करते हो तो यह जो हम लोग देख रहे हैं सभी तो स्वप्न हैं।'' सरदारजी ने अनुमोदन करते हुए कहा–''ठीक माँ, ठीक''–इतना कहकर वह सिर हिलाने लगे। फिर सरदारजी ने कहा–''अच्छा माँ, जीवन्मुक्तों को रोग होता है कि नहीं?'' माँ ने कहा–''जो लोग जीव भाव से मुक्त हो गये हैं, उनके विषय में रोग–भोग का प्रश्न ही कहाँ है।'' माँ ने और भी कहा–''देखो, देहरादून में मुझे मलेरिया ज्वर हो गया था। मैं काँपने लगी। इस अवस्था में एक संन्यासी यहाँ आये। उन्होंने मुझसे आकर कहा–''माँ, आप बहुत दिनों से रोग भोग रही हैं। आपको मैं एक दवा ला दूँ।'' मैं हँसकर बोली–''बाबा, वेदान्त के मत में समवृत्ति और समदृष्टि में रहना होता है। तुम संन्यासी और वेदान्तवादी हो, तुम रोग से द्वेष क्यों रखते हो? बाबा, मैं तो तुमको भगा नहीं देती, तो रोग को ही क्यों भगा दूँगी? जिसका जो काम है वह उसे करेगा, रोग यदि इस शरीर को ले भी जाये तो भी उसमें हानि क्या है? एक आनन्द की ही तो सारी मूर्तियाँ हैं, किसी को बुलाकर नहीं लायी और किसी को भगा भी नहीं देती हूँ। किसे भगाऊँगी? एक के सिवाय तो दो नहीं हैं और देखो बाबा

केवल संन्यास लेकर साज-सज्जा करके शरीर की रक्षा करते हुए स्वस्थ शरीर में देख-सुनकर, खा-पीकर घूमने-फिरने के लिये संन्यास तो नहीं लिया जाता और तुम्हारे वेदान्त का मूल तत्त्व भी वह नहीं है। समवृत्ति, समदृष्टि में स्थिति, आत्मस्थिति अर्थात् स्वरूप लाभ करना, यही तो उद्देश्य है तो रोग से द्वेष क्यों रखते हो। यदि द्वेष और प्रिय भाव रह गये तो फिर असली तत्त्व का क्या हुआ?'' इतना कहकर माँ मधुर हँसी हँसने लगी। इंजीनियर तथा सरदार साहब इन बातों से बहुत संतुष्ट हुए और बोले-''माँ यह बहुत ही अद्भुत भाव है, ऐसा भाव प्राय: देखा नहीं जाता।'' बात-बात में सन्ध्या हो गई, एक लड़की ने गाना गाया। वह बहुत सुन्दर गाती है। उसके बाद कीर्तन हुआ। रात्रि के लगभग 10 बजे सभी चले गये।

भाद्र 21, बुधवार- आज तीसरे पहर माँ को लेकर थोड़ा घूमने जाने की तैयारी कर रही थी कि इतने में ही सिख सम्प्रदाय के वह सरदार साहब एक दूसरे सिख साधु को लेकर आ पहुँचे। नये साधु ने कहा-''माँ मैंने अपने साथी इस महात्मा से सुना है कि यहाँ एक बीबी आई हैं, जो देखने योग्य हैं। इस कारण मैं आपके दर्शनों के लिये आया हूँ।'' उन्हें देखकर हम लोग माँ को लेकर लौट आये और कमरे में आ बैठे। नये साधु हिन्दी बोल सकते हैं। वहीं बातचीत करने लगे। उन्होंने माँ से पूछा-''आप क्या उपासना करती हैं?'' माँ ने हँसकर उत्तर दिया-''पिताजी, मुझे देखकर क्या आप कुछ समझ नहीं सके?'' उन्होंने कहा-''नहीं, मैं इतने अल्प समय में कुछ नहीं समझ सका।'' माँ हँसकर बोली-''यदि उपासना कहो तो **मैं स्वयं ही अपनी उपासना करती हूँ।**'' गुरु की बात चलने पर माँ ने कहा-''प्रथम माता और पिता गुरु हैं, इसके बाद उन्होंने जिसके हाथ में देकर कहा था-'यही तुम्हारे गुरु हैं'-उन्हें भी गुरु मान लिया, उसके अनन्तर तुम लोग सभी यहाँ तक कि पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी गुरु हैं। क्योंकि एकमात्र वे ही गुरु हैं और जो कुछ देख रहे हो सभी वे हैं। इस कारण यदि गुरु की बात कहो तो एकमात्र वे ही गुरु हैं, फिर मैं ही अपना गुरु हूँ। फिर गुरु की कोई बात ही नहीं है, जो कहो वही है।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। उसके बाद उस साधु ने पूछा-''आप किसे मानती हैं-राम, कृष्ण या देवी को?'' माँ ने हँसकर उत्तर दिया-''कृष्ण, राम या देवी तो एक ही हैं, उनके ही भिन्न-भिन्न नाम रूप और गुण प्रतीत होते हैं। एक के सिवाय तो कुछ नहीं है।'' उन्होंने कहा-

''दशरथ का पुत्र राम था, नन्द का पुत्र कृष्ण?'' माँ ने झट रोककर कहा-''मैं दशरथ के पुत्र या नन्द के पुत्र को नहीं जानती, एकमात्र राम या एकमात्र कृष्ण को ही मैं जानती हूँ।'' साधु आनन्दपूर्ण नेत्रों से माँ की ओर देखते हुए दो-चार बात कहने लगे। कुछ देर के बाद उन्होंने कहा-''अच्छी बात है। तो बताइये पंच महाभूतों के साथ आपका क्या सम्पर्क है?'' माँ तुरन्त हँसकर बोली-''अब की मैं पिताजी से ही पूछती हूँ।'' बताइये तो पंचभूतों के साथ मेरा क्या संपर्क है?'' साधु ने कहा-''यह कैसी बात है, मैं आया हूँ आपसे कुछ लेने के लिये, मैं भिक्षुक हूँ, आप भिक्षुक के पास क्या माँगती हैं? एक घर में भिक्षुक भिक्षा लेने आए तो गृहस्थ अपने घर में जो कुछ रहे भिक्षा दे देता है। उससे कुछ माँगता नहीं है। आप उल्टा काम क्यों कर रही हैं?'' माँ ने हँसकर कहा-''बाबा, मैं तो जानती हूँ कि सभी एक ही घर के हैं, कौन किसे भिक्षा देगा और कौन लेगा? मैं तुम्हारी लड़की हूँ, मुझसे ऐसी बात न कहो।'' साधु ने कहा-''माँ फल के भार से पेड़ नीचे झुक जाता है, कितना ही लाठी-डण्डों से डालों को ऊँचा कर दिया जाय परन्तु वह पेड़ नीचे की ओर ही झुकता है और जिसके भीतर का भाग पोला है वह सीधा ही खड़ा रहता है-जैसे बाँस।'' ऐसी बातचीत और कुछ देर तक चली। साधु ने माँ की बातचीत सुनकर कहा-''यह तो एकदम वेदान्त की बात है।'' पढ़ना-लिखना नहीं जानती, साधन-भजन भी करते बाहर की ओर से किसी ने कभी देखा नहीं है। गुरु भी साधारण मनुष्यों की तरह नहीं किया है, ऐसी माँ के मुख से इन सब बातों को सुनकर साधु आश्चर्यान्वित हो गये।

बात-बात में साधु ने फिर कहा-''माँ, गुरु तो एक चाहिए ही।'' दो-चार प्रमाण देकर उन्होंने कहा-''गुरु के सिवाय तो कोई काम हो ही नहीं सकता।'' माँ ने कहा-''पिताजी, आप ठीक बात ही कहते हैं किन्तु इस शरीर के सभी काम अपने आप हो गये हैं। गुरु यदि कहो तो गुरु पाँच हैं-गुरु, माता-पिता, पति, तुम सब, उसके अनन्तर एकमात्र, ईश्वर यही पाँच गुरु हैं।'' इतना कहकर छोटी बच्ची की तरह माँ हँसने लगी।

साधु ने और कुछ समय तक वार्तालाप करने के बाद कहा-''अच्छा आप घूमने जा रही थी, मैंने आकर कष्ट दिया, अब जाता हूँ।'' इतना कहकर हाथ जोड़कर प्रणाम करते हुए उठ खड़े हुए। माँ ने भी हाथ जोड़कर

कहा–''इसी तरह बीच–बीच में कष्ट देने के लिये आइयेगा। अच्छी–अच्छी बातें हुई। कितना आनन्द आपने दिया और देखिए बाबा गैर होने पर ही लोग 'कष्ट दिया'–ऐसा कहते हैं। अपने घर के लोग बातचीत करते समय ऐसा नहीं कहते। हम लोग तो सब एक ही घर के मनुष्य हैं।''–इतना कहकर माँ फिर हँसने लगी। दोनों साधु भी विदा लेकर चले गये।

हम लोग माँ को लेकर उत्तरकाशी के रास्ते में लगभग डेढ़ मील चलकर सन्ध्या के पहले ही लौट आये। कीर्तन आदि भी हुआ। सब जज योगेन्द्र बाबू की पत्नी, कृष्ण बाबू (राजपूताना के पशु–चिकित्सक) की माँ, आशु बाबू (यह कश्मीर में प्रिंसिपल थे, अब पेंशन पा रहे हैं) की पत्नी और कन्या, ढाका के बरदा बाबू की एक कन्या और यहाँ के कुछ बंगाली सज्जन सपरिवार प्राय: रोज ही माँ से मिलने आया करते हैं।

माँ के हाथ में सुगन्ध

भाद्र 22, गुरुवार– तीसरे पहर कुछ लोग आये। बातचीत चली। माँ को थोड़ा जलपान कराने के लिये मैं भीतर ले गयी। एक भद्र महिला माँ के लिये कुछ खाने की चीज तैयार करके लायी है। माँ हँसकर मेरी नाक के पास अपना दाहिना हाथ लाकर हँसती हुई बोली–''हाथ में किसकी गन्ध है?'' मैंने उनके हाथ में बहुत ही उत्तम एक इत्र की गन्ध पाई। तब उपस्थित सभी लोग एक–एक कर माँ के हाथ की सुगन्ध लेने लगे। किसी ने कहा–''चन्दन की सुगन्ध'', किसी ने कहा–''बहुत अच्छी धूप की सुगन्ध'', किसी ने कहा–''इत्र की सुगन्ध''। इसी तरह सभी ने एक–एक उत्तम गन्ध पायी। बायें हाथ में सुगन्ध नहीं थी। कुछ घण्टों के बाद फिर सुगन्ध नहीं मिली। ऐसी सुगन्ध का मिलना नई बात नहीं है और भी कभी–कभी माँ के शरीर से बहुत सुन्दर गन्ध मिला करती थी।

भाद्र 23, शुक्रवार– आज पूर्णिमा है। इस कारण सब लोग मिलकर उदयास्त कीर्तन करने लगे। इस देश के एक सज्जन ने भोग का सारा प्रबन्ध कर दिया। शाम को सबने प्रसाद पाया।

आज दोपहर को फिर से माँ के बायें हाथ से सुगन्ध निकली। आज दाहिने हाथ में गन्ध नहीं है। सुबह माँ को साथ लेकर मैं रिक्शे से उत्तरकाशी के रास्ते में लगभग दो मील घूम आयी थी। आज 'माँ' ने कहा

है कि कुछ नहीं खायेंगी इस कारण मैं अपने लोगों के लिये खिचड़ी पकाने की इच्छा से चूल्हे पर दाल चढ़ाकर चली गई थी, आकर देखा कि दाल के नीचे का अंश जल गया है। माँ ने देखकर कहा–''मैं आज यही दाल खाऊँगी।'' शरीर अस्वस्थ था, इस कारण बहुत सावधानी के साथ पथ्य दिया जाता है, किन्तु आज उनकी इच्छा है कि जली हुई दाल पीयेंगी। उन्होंने कहा–''चीजें शाप देती हैं, क्यों चीज नष्ट करोगी।'' सचमुच उस जली दाल से ही माँ ने कुछ कौर भात खाया, और कोई चीज बनाने नहीं दी। दो भद्र महिलायें माँ से वह प्रसाद लेकर बोली–''यह तो अमृत है। किसी तरह की जले की गन्ध नहीं है।'' परन्तु माँ को खिलाते समय उन्होंने कहा था–''दीदी, यह जली हुई दाल माँ को नहीं दीजिएगा।'' माँ से भी कहा था–''माँ, इसे न खाइयेगा।'' माँ ने खाते हुए हँसकर कहा–''अच्छा तुम्हें भी खिलाती हूँ।'' इतना कहकर उन्हें खिलाया। वे माँग–माँगकर सब प्रसाद खा गयी। इस बात को लेकर खूब आनन्द किया गया।

सुकुमार के सम्बन्ध में विविध बातें

भोग के बाद सब लोग चले गये। माँ और बेबी दीदी के पास मैं बैठी हूँ। बात चली कि माँ ने बेबी दीदी आदि के देहरादून पहुँचने के पूर्व दिन भोग पर बैठकर मुझसे कहा था–''एक व्यक्ति की अपमृत्यु हो रही थी, उस समय माँ मानो वहाँ पहुँच गई। उन्हें खयाल हुआ कि अपमृत्यु नहीं होने दी जाएगी। वैसा ही हुआ। बाहर से यद्यपि दिखाई पड़ा कि अपमृत्यु हुई है परन्तु वास्तव में उसकी अपमृत्यु नहीं हुई। इस बात पर एक दिन माँ ने रिक्शे पर बैठे–बैठे बेबी दीदी से कहा था–''सुकुमार (बेबी दीदी का बड़ा लड़का, जिसकी गत वैशाख में मोटर दुर्घटना से मृत्यु हुई थी, वह लड़का आई.सी.एस. पास करके मध्यप्रदेश में ऐडिशनल जज के पद पर नियुक्त हुआ था) की बात से माँ को वैसा खयाल हुआ था और कुछ विशेष विस्तार के साथ नहीं बताया। कोई विशेष बात भी प्राय: माँ प्रकट नहीं करती। बात–बात में शायद दो–तीन बार में किसी एक विशेष घटना की बात माँ के मुख से साफ सुनी जाती थी। माँ ने कहा–''घटनाएँ तो बहुत हैं, उन्हें बताऊँ, ऐसा भाव मन में नहीं उठता। इस कारण नहीं कहा जाता। बात–बात में तुम लोग थोड़ा बहुत निकाल लेते हो। इसी से बाहर निकलता है।'' सुकुमार की घटना भी खाने के लिये बैठकर मुझसे कुछ–कुछ बताई, रिक्शे पर बेबी दीदी

से भी कुछ कहा था किन्तु कुछ साफ-साफ नहीं मालूम हुआ, आज बहुत कुछ साफ हो गया। माँ ने कहा-'देखो, सुकुमार तो मेरे पास बहुत बार नहीं आया, सब मिलाकर शायद चार बार आया था। प्रथम बार बेबी लायी थी। शाहबाग में तब वह लड़का ही था, आँखें कुछ खराब थी, उसी को दिखाने लायी थी। हर समय तो हर बात नहीं आती किन्तु उस दिन मैंने बताया था कि ओस का जल साफ कपड़े से उठाकर उसकी आँखों में दो-तीन बार लगावें। वैसा किया तो आँखें अच्छी हो गयी। और एक बार लायी थी सिद्धेश्वरी में, जब मेरा शरीर अस्वस्थ था उस समय वह विलायत जा रहा था। बेबी ने मुझसे कहा-''माँ तुम उसके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दो।'' मैंने कहा-''मैं तो उस तरह किसी को नहीं करती। तुम्हारे करने से ही होगा।'' बेबी के बार-बार अनुरोध करने पर मैंने बेबी का हाथ पकड़कर उसके सिर पर रख दिया। इस बात के बाद ही बेबी दीदी बोली-''तब एक काण्ड हो गया, उसके सिर पर मेरा हाथ देते ही मेरा हाथ गिर गया। माँ का हाथ ही उसके सिर पर रह गया था।''

माँ फिर कहने लगी-''तीसरी बार कलकत्ते में भेंट हुई थी। बेबी की बात से उसने मेरे पैर पर मुट्ठी भर फूल दिया। चौथी बार कलकत्ते में जब भेंट हुई तब यह बात हुई कि बेबी ने मुझे अपनी लड़की मानकर मेरा नाम गौरी रखा था। तब मैंने कहा-''मैं तुम्हें (सुकुमार को) कैसे पुकारूँगी।'' बेबी ने कहा-''तुम्हीं छोटी हो, तुम तो केवल तीन साल से लड़की हुई हो। इस कारण वह बड़ा है।'' तब मैंने हँसकर कहा-''अच्छा तो मेरे यह छोटे भाई साहब हैं।'' इतना कहकर आनन्द किया गया। उसके बाद उससे मेरी भेंट नहीं हुई। किन्तु जितनी बार भेंट हुई एक-एक घटना हो गई।''

माँ ने फिर से कहा-''सुकुमार के अन्तिम समय में बेबी को बड़ा आघात लगा था। यह शरीर (अपना शरीर दिखाकर) वहाँ उपस्थित हुआ। उपस्थित होते ही मुझे देखकर बहुत दिनों पहले मैंने जो उसे छोटे भाई साहब कहकर पुकारा था। वे बातें, यहाँ तक कि इस शरीर के सम्बन्ध में सभी स्मृतियाँ उसके मन में जाग उठी और मुझे खयाल हुआ कि अपमृत्यु नहीं होने दी जाएगी। उसके बाद सुनो, उसने घूमकर मुझे देखा, देखते ही वह आघात, यहाँ तक कि उसकी वर्तमान अवस्था की बात तक वह भूल गया। इस कारण उसकी अवस्था में भी परिवर्तन हुआ। इस शरीर की ओर देखते

हुए उसकी मृत्यु हो गई। इस कारण अपमृत्यु नहीं हुई। यह जो मैंने कहा–"मैं अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती। जिसका जो कर्म है, वह तुम करा लेते हो, उस तरह आघात पाना भी उसका कर्म था। फिर छोटा भाई कहकर पुकारने की अवस्था का स्मरण होगा, वह भी कर्म था। इस कारण ऐसा हुआ। संतोष की भी उसी तरह अपमृत्यु थी किन्तु ऐसे स्थान पर हुई कि अपमृत्यु का दोष नहीं हुआ। सुन्दर ढंग से श्राद्ध शान्ति हो गई।

बेबी दीदी ने महान् आनन्द के साथ कहा–"माँ, तुम्हारी इतनी कृपा है, वह तो मैं स्वयम् ही समझती हूँ। मैं तो सभी से कहती हूँ कि पुत्र–शोक कोई इस तरह हँसते हुए सह नहीं सकता। मैं मानो आग में गिरने लगती हूँ परन्तु न जाने कौन मुझे खींच लेते हैं और शान्त कर देते हैं। मैं तो पति के शोक से बहुत रोई थी किन्तु पुत्र का शोक बिल्कुल नहीं लगा। वह केवल तुम्हारी कृपा से। किन्तु आज मैंने अच्छी तरह समझ लिया है कि क्यों मैं पुत्र की मृत्यु होने पर भी स्थिर रह सकी हूँ, और भी देखो माँ तुम्हारी बात से मुझे अनेक बातें याद आ रही हैं। पुत्र की मृत्यु के कुछ देर बाद ही मैं स्नान करके पूजा करने जाकर दो–तीन घण्टे स्थिर भाव से पूजा कर आई। सब लोग आश्चर्यचकित हो गये। मैं स्वयम् भी समझ न सकी। किन्तु भीतर किसी तरह की बेचैनी का अनुभव नहीं हुआ, मानो शान्त भाव है। माँ तुमने जिस पर उस प्रकार की कृपा की है, तुम्हारी मूर्ति देखकर जिसका जीवन गया है, जिसकी मृत्यु के समय तुम जाकर खड़ी हो गई, वह तो साधारण मनुष्य नहीं था, और भी देखो माँ आश्चर्य है कि इस ढंग से मृत्यु हुई। परन्तु उस पर किसी का खयाल ही नहीं गया। श्राद्ध, शान्ति भी पण्डितों ने सविधि करायी। कोई बात नहीं उठायी। वह कैसे सम्भव हुआ? आज समझ में आता है कि उसकी अपमृत्यु हुई ही नहीं थी। इस कारण उस प्रकार की बात नहीं चली। मैंने कहा–"कहाँ किस भाव से माँ किस पर कृपा करती हैं कौन बतायेगा? लोग कह सकते हैं कि जो आता–जाता है उसी पर कृपा होती है किन्तु सुकुमार तो अधिक बार आया भी नहीं था। केवल चार दिन की भेंट थी। कौन किस कर्म–फल से माँ को बाँधता है कौन जाने?"

रात को माँ ने लेटे–लेटे गाना गाया–

मन चलो जाइ रजकेर घाटे
चैता धोपा दिच्छे भाटि, निताई गंजेर घाटे।

(मन रे, ओरे अबोध मन)
पाँच रकमेर शाजिमाटि, परिपाटि घाटे,
भाटि बेलाय भाटि दिले, भाटिर फल कि घटे?
वेद चिठि सब तेलेर दागे, मन सने रटे,
आड़ि करे बाड़ि दिले, वसन जाय रे फेटे।
(मन चलो रजकेर घाटे)

अर्थात्–"हे मन रजक गुरु के घाट पर चलो। जैसे धोबी कपड़े से मैल छुड़ाता है वैसे ही गुरु भी मन का मैल छुड़ा देंगे। चैता (चित्त) धोबी भाटी दे रहा है–निताइ गंज के घाट (भक्त नित्यानन्द के स्थान पर)। (मन रे, अरे अबोध मन)। पाँच इन्द्रिय रूप पाँच प्रकार की सजावट से स्वच्छ घाट में यदि ढलती उमर में भाटी चढ़ाई जाय तो उत्तम फल मिल सकता है। अधिक पढ़ने–लिखने से मन रूपी वसन में तेल जैसा दाग लग जाता है। जोर से कपड़ा पटकने से कपड़ा फट जाता है अर्थात् जबरदस्ती मन को संयत करने की चेष्टा करने से वह फट पड़ता है।

आज सन्ध्या समय पूर्वोक्त दोनों पंजाबी सिक्ख साधु अन्य तीन पंजाबी सिक्ख साधुओं को लेकर आये। पहले के एक साधु ने माँ से कहा–"हम लोग आपसे असली चीज लेने आये हैं। आप पूर्ण होकर बैठी हैं।" माँ ने कहा–"बच्ची को इस तरह नहीं कहा जाता।" उनमें से एक साधु के हाथ में एक लोहे के तीर के समान अस्त्र था; माँ को उसे देखने के लिये देकर उस साधु ने कहा–"इससे बाहर के शरीर की रक्षा की जा सकती है। क्योंकि यह मनुष्य शरीर ही भगवान् को प्राप्त करने का उपाय है। आज जो आपको हम लोग देख सके, वह भी तो शरीर के रहने के कारण ही संभव हुआ है। अब आपके निकट अपने को जानने और षड्रिपु का नाश करने का अस्त्र लेने आया हूँ।" माँ ने कहा–"आप लोगों के पास पिताजी, वह अस्त्र है। इसी से इस मूर्ति में दर्शन देने आये हैं।" ऐसी बातें कहकर माँ आनन्द करने लगी। साधु ने कहा–"माँ आप ही हमारे लिये एकमात्र प्रकाश हैं, हम लोग पतंगा हैं। इस कारण आपके पास आये हैं। प्रकाश तो पतंगा के पास नहीं जाता। पतंगा ही प्रकाश के पास आता है और देखिये अग्नि तो सर्वत्र ही है। किन्तु चूल्हे के भीतर उसका विशेष प्रकाश है। इस कारण उससे अनेक काम होते हैं उसी प्रकार हम लोगों के पास सब कुछ है किन्तु आपके भीतर

उसका विशेष प्रकाश है। इस कारण हम लोग आपके पास आये हैं। आपके भीतर जो पूर्णानन्द है उसका स्पर्श हमें दीजिये। आप आनन्द से भरपूर हैं। इस कारण हम इतने आदमी आपके पास आकर आनन्द और शान्ति पाते हैं।''

माँ हँसकर बोली–''पिताजी, यदि आप उस आनन्द की खबर कुछ भी नहीं जानते तो उसकी खोज क्यों करते हैं? अवश्य ही वह आपके भीतर है।'' इतना कहकर माँ मौन हो गयी किन्तु उनके बार-बार अनुरोध करने पर माँ कहने लगी–''देखो, एक लक्ष्य ही उपाय है। **उस एक को पाने के लिये एक लक्ष्य होना ही उत्तम उपाय है और देखो पिताजी, हम लोग एक-एक कौर खाते हैं, एक-एक कदम चलते हैं, एक ही रास्ते से जाते हैं, एक-एक अक्षर लिखते हैं, इस कारण हम एक को लेकर ही हैं, फिर हम लोगों के भीतर ही अव्यक्त और अनन्त सब कुछ है।''** वे लोग खुश हो गये। और भी कुछ देर तक बातें हुई। उपस्थित सभी लोगों को बहुत आनन्द मिला।

इसके अनन्तर माँ ने कहा–''पिताजी, आप लोगों के मुँह से थोड़ा भजन सुनना चाहती हूँ।'' उन्होंने भी माँ के मुख से कुछ भजन सुनना चाहा। माँ ने दो-एक बंगला गाना गाकर उसका आशय हिन्दी में समझा दिया। बाद में कमलाकान्त आदि के द्वारा कीर्तन करने के अनन्तर सिक्ख साधुओं ने थोड़ा भजन गाकर माँ को सुनाया। कुछ दिन पहले एक बौद्ध लामा ने आकर श्री श्री माँ को भजन सुनाये थे। इसी तरह से आनन्द चल रहा है। माँ ने सिक्ख साधुओं से कहा–''आप लोगों ने बहुत ही आनन्द दिया। आप लोग कृपा करके दर्शन देने आये हैं।'' उन लोगों ने कहा–''हम लोग आपके दर्शनों के लिये आये हैं। दर्शन करके अपार आनन्द मिला।'' रात के लगभग 10 बजे सब लोग विदा लेकर चले गये।

आज और भी कुछ बातें हुई। प्रथम भाग में स्व. ज्योतिष दादा के शाहबाग में मत्स्य भेजने की बात लिखी हुई है। माँ ने पहले ही मसाला तैयार कर रखा था। उस घटना के सम्बन्ध में एक विशेष बात नहीं लिखी गयी है। बात यह है कि स्व. ज्योतिष दादा के घर में उस दिन कौन मत्स्य दे गया था, उसे कोई नहीं जानता था। एक आदमी उसे दे गया था और कह गया था कि 'फिर आऊँगा' किन्तु सन्ध्या तक उसकी कोई खबर नहीं मिली और वह आया भी नहीं।

द्वितीय भाग में माँ की बीमारी की बात लिखी है, उसके भीतर कुछ रहस्य है, बात यह है कि एक दिन सन्ध्या समय लड़कियों के साथ हँसते-खेलते एकाएक माँ कह उठी-"मुझे ज्वर होगा क्या? मुझे ज्वर हुआ है।" लड़कियाँ एकाएक उनके मुख से इस तरह की बात सुनकर चौंक उठी। छाना ने कहा-"देखूँ तुम्हें कैसा बुखार हुआ है?" इतना कहकर उसने थर्मामीटर लगाकर देखा-सचमुच ही कुछ ज्वर हो गया है। उस समय माँ ने नानीजी से कहा-"मुझे जल्दी ज्वर की दवा दो नहीं तो ज्वर बढ़ जाएगा। औषध क्या है जानती हो डाक्टर ने भोलानाथजी को दो शीशियों में जो दवा दी है, उनमें से एक में मेरी औषध है।" माँ को ऐसा खयाल हुआ है कि एक शीशी में केवल जल है। इस कारण वैसा कहा। बाद में डाक्टर से पूछने पर उन्होंने भी स्वीकार किया कि माँ जो कहती हैं, सो ठीक है। अस्तु, माँ ने नानीजी से कहा-"मुझे जल्दी जल दो अन्यथा बीमारी बढ़ जाएगी।" माँ बच्चों की सी ऐसी जिद्द करने लगी कि नानीजी ने लाचार होकर माँ को जल पिलाया और कहा- "और कितना जल पीयेगी?" माँ ने हँसकर कहा-"इतना-सा ही जल पिलाया? तुम समझ गई न यह बीमारी कुछ दिनों तक अच्छी तरह रहेगी।" यथार्थ में माँ को ज्वर का भाव भी नहीं था। खेलते-खेलते ज्वर का नाम लिया और साथ-ही-साथ ज्वर आया। दूसरे दिन से ज्वर बढ़ने लगा।

देहरादून में प्रत्यावर्तन

भाद्र 26, सोमवार- आज माँ की आज्ञा से 3 बजे हम लोग देहरादून उतर आये। गत पूर्णिमा के कीर्तन के दिन वहाँ की लड़कियों के स्कूल की प्रधान शिक्षयित्री मिस मुखर्जी के साथ हमारा परिचय हुआ। इनकी उम्र 23 वर्ष है, कुमारी हैं। साथ में पाँच छात्राएँ थी। लड़की बहुत ही अच्छी है। आज आते समय वह लड़कियों को साथ लिये माँ को मोटर में सवार करा गई।

आकर देखा कि दासजी (गोला का नाम हुआ है) को लेकर उसकी माँ आई हैं। खबर पाकर हरीराम, हंस आदि कुछ लोग माँ के दर्शनों के लिये आये। आज भी रात भर माँ के सोने का भाव नहीं है।

माँ के शरीर के सम्बन्ध में विविध प्रसंग

भाद्र 27, मंगलवार- आज माँ दिन के लगभग 11 बजे उठी। आज

बात-बात में 1336 बंगाब्द में हुई माँ की बीमारी की बात चली। जब शरीर अवश हो गया था, तब एक दिन शनिवार का कीर्तन हो रहा था। माँ एकाएक बरामदे में निकल आयी। आते ही बैठ गई। इस बात पर माँ ने कहा-''वह जाना कैसा था जानती है? जैसे हवा में कागज या सूखी पत्ती उड़ जाती है।''

अद्‌भुत-अद्‌भुत अवस्थाएँ माँ के शरीर में मैंने देखी हैं और देखती जाती हूँ। जिस समय अधिक शिथिल भाव दिखाई पड़ता है, उस समय ऐसा ही भाव होता है, मानो शरीर और पैर के लोम या सिर के केश तक झड़ने लगते हैं। लोम खींचकर उन्होंने दिखाया कि वह धीरे से शरीर से अलग हो जाते हैं। मानो किसी ने ऊपर से लगा दिया हो। एक बार माँ बैठी थी कि पैर के लोम कपड़े में लगकर इस ढंग से निकल आये मानो किसी ने छुरे से काटकर कपड़े में लगा दिये हों। सिर के केश भी ऐसे हाथ में उठ आये मानो पहले से ही किसी ने काट रखा हो। किसी-किसी खास अवस्था के बाद ऐसा होते देखा गया है। और भी एक अवस्था देखी गई है। रमणा के आश्रम में जब माँ के सिर के केश बहुत छोटे-छोटे काट दिये गये थे, तब किसी-किसी खास अवस्था के अनन्तर सिर के केश कदम्ब के फूल की तरह खड़े हो जाते थे। नानीजी उसे देखकर डर जाती थी, क्योंकि लोग कहते हैं कि जिसके सिर के केश इस तरह खड़े हो जायँ वह बहुत दिन तक जीवित नहीं रहता। नानीजी हाथ से उन केशों को बार-बार दबा देने की चेष्टा करती थी किन्तु वह पुनः खड़े हो जाते थे। बाद में फिर धीरे-धीरे वे केश अपने आप उतर जाते थे। जब लम्बे केश थे तब भी केशों की जड़ें उसी तरह खड़ी होकर फूली रह जाती थी। इसी तरह अनेक प्रकार की अवस्थायें हो गयी हैं।

त्रिवेन्दम् की बात चली। वहाँ जाकर माँ ने अनेक प्रकार की मूर्तियाँ देखी किन्तु उनकी दृष्टि पड़ी-झूले में वटपत्र पर लेटे हुए नारायण के ऊपर। सृष्टि के प्रारम्भ की यह मूर्ति है। माँ उस मूर्ति के बिछौना आदि बदलवा आयी। माँ से मैंने हँसकर कहा-''माँ तुम्हारी दृष्टि आदि वस्तु पर ही अधिक पड़ती है।'' माँ ने सुनकर हँसते हुए कहा-''जो हो जाय। मैं तो तुम्हारी तरह अपनी इच्छा से कुछ करती नहीं।''

उसके बाद उस दिन की बात चली जब बाजितपुर में निशि बाबू और

जानकी बाबू से बात करते समय माँ के अपने मुख से अपना परिचय निकल आया था। माँ ने हँसकर कहा–''जब जानकी बाबू ने कहा कि शैतान है क्या?'' मैं जानती हूँ कि इसी ढंग की बात कही थी। तब कहा गया, ''अच्छा तुम लोग शायद परीक्षा ले रहे हो? तो तुम जो चाहो कह सकते हो। परन्तु जो असली सत्य बात है वही कही गई है।''

बात-बात में माँ ने पूछा–''बाउल बाबू के प्रथम बार इस शरीर के पैर में फूल, बेलपत्र और गले में फूल की माला देते ही यह शरीर गिर गया। बाद में देखा गया कि चाहे फूल दो, चाहे जल दो, या मिट्टी–कीचड़ ही दो और कोई धूल ही दो हर समय यह शरीर समभाव से ही रहता है।'' आज इस प्रकार की अनेक बातों की आलोचना हुई।

मन स्थिर करने का उपाय

आज श्रीयुत् हरिदास मुखर्जी (इलाहाबाद वाले) किसी काम से दो–तीन दिनों के लिये देहरादून आये हैं। विक्टोरिया होटल में ठहरे हैं। माँ से मिलने के लिये रोज ही आते हैं। आज भी आये हैं। मन स्थिर नहीं होता इत्यादि अनेक विषयों पर आलोचना हुई। बात–बात में माँ ने कहा–''यद्यपि मस्तक ही मूल स्थान है तथापि सुख–दु:ख का अनुभव हृदय में होता है। अत: हृदय से भ्रूमध्य पर्यन्त श्वास की गति पर लक्ष्य रखकर इस पर ध्यान रखने से काम होता है। एक बार तो वह बैठेगा ही चाहे हृदय में बैठे या भ्रूमध्य में। जैसे–पेड़ की जड़ में मिट्टी के ऊपर जल दिया जाता है किन्तु वह जाता है मूल में और मूल में पहुँचने पर समूचा वृक्ष ही हरा–भरा हो उठता है और पत्र–पुष्प से भर उठता है। उसी तरह मन हृदय में बैठे तो भ्रूमध्य में जाएगा। फिर भ्रूमध्य में जाने पर वह सहस्रार में पहुँचेगा। यही उसकी स्वाभाविक गति है। मन स्थिर करना ही उद्देश्य है। प्रथम उसे शरीर के भीतर ही निबद्ध रखने की चेष्टा करो, फिर देखो जैसे प्राणवायु का स्पन्दन होता है। यद्यपि कहा जाता है कि प्रकृति–जात चंचल गति की तरह मन चंचल है तथापि उसी चंचल गति के भीतर से ही रास्ता बनकर चंचल–अचंचल का प्रश्न ही जहाँ नहीं उठता, उस तत्त्व के संधान में स्थित होना होगा। और भी देखो, इस संसार में जो कुछ है सभी एक प्राणवायु का खेल है। यदि निज प्राणवायु को उस धारा में मिला दे सको तो वह जो है सो पकड़ में आ जाएगा?'' इतना

कहकर माँ हँसने लगी। उसके बाद माँ ने तर्जनी उठाकर कहा–''वह कौन है? न, वही जो एक है।''

बात–बात में रात के दस बज गये। सब लोगों ने विदा ले ली। माँ आज रात्रि में हमें लेकर बरामदे में सोई।

एकाएक हरिद्वार की यात्रा

भाद्र 28 बुधवार– आज खाने–पीने के बाद ही माँ के पेट में कुछ दर्द हुआ है। इतने में उन्होंने कहा–''आज ही हरिद्वार जाऊँगी।'' माँ के साथ रूमा देवी, मैं और साधन ब्रह्मचारी चले। माँ बोली–''यदि शरीर अच्छा रहे तो मैं लौट आऊँगी नहीं तो तुम लोगों को खबर दूँगी, तुम लोग आ जाना।''

4 बजे रवाना होकर 6 बजे हरिद्वार पहुँचकर माँ ने नानकी बाई की धर्मशाला में जाने के लिये कहा। धर्मशाला में पहुँचकर देखा कि नानकी बाई कल ऋषिकेश से आकर आज ही लौट जाने की तैयारी कर रही हैं। किन्तु माँ को देखकर ऋषिकेश जाना बन्द कर दिया। माँ उनकी धर्मशाला में अपने आप आई हैं, इससे वे बहुत प्रसन्न हैं। उनके साथ की एक महिला ने कहा–''आज ही दोपहर को मैं माँ की बात सोच रही थी। डॉक्टर पन्त को खबर देने के लिये उतरते ही धर्मशाला के दरवाजे पर उनसे भेंट हो गई। वह भी आगामी कल अपने घर भीमताल रवाना हो जाएँगे, ऐसा निश्चय किया था। उन्होंने माँ को पीत कुटी में ले जाना चाहा। पीत कुटी दो महीने के लिये लड़कियों का स्कूल बन्द हो जाने से खाली पड़ी है। माँ ने कहा–''आज यहाँ रहूँगी, कल देखा जाएगा।''

माँ ने मुझसे कहा–''यह जो दर्द हुआ है कल रात को उसकी विकट मूर्ति देखी अर्थात् पूर्णरूप।'' मैं तो चौंक उठी। हरिद्वार आने पर दर्द बढ़ गया। आज रात इसी तरह बीती।

भाद्र 29, गुरुवार– आज माँ का दर्द और बढ़ गया है। माँ ने कहा–''शायद भीतर के यंत्रों में कुछ हुआ है। डॉक्टर ने भी जाँच कर वैसा ही अनुमान किया। भीतर कहाँ क्या हो रहा है, माँ सच बतला रही हैं, डॉक्टर के मत से भी वह मिल जाता है। भीतर फोड़ा पकने पर जैसा होता है, उसी तरह दर्द की बात कहते हैं और श्वास छोड़ने तक में चोट लगती है।'' डॉ.

ने हिलना-डुलना बन्द कर दिया है। देहरादून जाने को भी मना किया है। माँ दो दिनों से बिछौने पर ही पड़ी हैं, बहुत थोड़ा तरल पथ्य दिया जा रहा है। पेट में कुछ सूजन भी दिखाई पड़ती है। अवस्था देखकर डॉक्टर ने कहा-''यदि यह अवस्था और किसी की होती तो बड़ी मुश्किल हो जाती।'' श्वास अत्यन्त मृदु है। माँ बोली-''ऐसा श्वास दूसरे के लिये बहुत ही सांघातिक होता। इस शरीर को अभ्यास है, इसलिए चल रहा है।''

शाम को डॉक्टर पन्त माँ को पीत कुटी ले आये। अखण्डानन्द स्वामी, कमलाकान्त और सदानन्द को आने के लिये लिख दिया गया।

भाद्र 30, शुक्रवार- आज भी माँ की अवस्था एक जैसी ही है। खबर पाकर हरीराम आया। स्वामीजी आदि भी आ गये।

माँ के पास सुबह मैं बैठी हूँ। माँ ने कहा-''कल रात को मैं देख रही थी कि एक मुण्डित मस्तक संन्यासी इस शरीर के प्रति लक्ष्य करके कहते हैं-'मैं मुक्ति की प्रार्थना करता हूँ।' कैसी कड़ी आवाज थी, अभी भी कानों में गूँज रही है।'' इतना कहकर फिर नटखटी की हँसी हँसकर बोली-''ये सब क्या है? तुम लोग दिमाग का विकार समझती हो क्या?'' मैंने भी हँसकर कहा-''दिमाग तो तुम्हारा विकार से ही भरा है।''

आज बात-बात में माँ हँसकर कहने लगी-''देहरादून में एक भद्र पुरुष ने अच्छी-अच्छी बातों की आलोचना करते हुए एकाएक मुझसे कहा-अच्छा देखिए, एक माननीय साधु के साथ मेरी आलोचना होते-होते आपकी बात चलते ही आपके प्रति उनमें ईर्ष्या और उपेक्षा का भाव इंगित देखा। फलस्वरूप आपकी आलोचना से उनका उपकार न होकर अपकार ही हुआ।'' उनसे कहा गया-''इस शरीर से तो साधारण रूप से किसी की सेवा नहीं होती। साधु के भीतर यदि ईर्ष्या के बहाने इस शरीर के विषय में सोचकर उच्चाकांक्षा जगाती है तो मैं कहूँगी कि साधु ने कृपा करके इस शरीर को अपनी सेवा में लगा लिया। यह तो बहुत ही आनन्द की बात है।''

माँ ने जो कहा था वही हुआ। उदर (*Stomach*) में फोड़ा हुआ है, ऐसी शंका डॉक्टर को हुई है। पेट के ऊपर भी कुछ सूजन आ गई है। माँ ने वेदना का पूर्ण रूप देखा था, फिर देहरादून में कह आई थी-''मैं यदि बीमार पड़ूँ तो तुम लोगों को जाने के लिये लिखा जाएगा।''-वही हुआ। माँ का तो सभी ठीक है। माँ की अवस्था देखकर सभी को भयंकर आतंक हुआ।

माँ के भीतर विविध भावों का खेल

आज बात-बात में चर्चा चली कि माँ के भीतर तो कितने ही भावों का खेल देखा है। कभी-कभी अट्टहास और कभी भीषण रुदन। फिर कभी ऐसा भी देखा है कि इतना गंभीर भाव कि हमें भी बात करने में डर लगता है। फिर कभी देखा है कि बिल्कुल बच्चों की तरह भाव। बात करने का ढंग, अंगों का हाव-भाव सभी बच्चों की तरह है। फिर कभी ऐसा भी देखा है कि एक भयंकर बेपरवाह भाव है, विशाल महान् उदासीनता के भाव में अवस्थिति जिससे संसार तो क्या कोई भी उन्हें विचलित नहीं कर सकता। फिर ऐसा भी देखा गया है कि किसी समय बिजली के क्षणिक प्रकाश की भाँति एक भाव मातृ मूर्ति में तीव्र दृष्टि के साथ कौंध गया। कभी देखा है कि वज्रादपि कठोर, फिर देखा है कि कुसुम से भी कोमल करुणामयी जगज्जननी मूर्ति में मेरी माँ स्नेह-प्रेम उड़ेलती जा रही हैं। संसार में उस प्रकार का स्नेह अतुलनीय है। माँ इन सब भावों की बात चलने पर कहती हैं-''तुम लोगों के लिये जो आवश्यक है, उसी भाव का प्रकाश इस शरीर से करा लेते हो।'' कोई-कोई शायद झगड़ा कर रहे हैं, सुनकर माँ आनन्द से हाथ से ताली देकर बोल उठी-''सुनो-सुनो शब्दब्रह्म का कीर्तन हो रहा है।'' इस बात को सुनकर या माँ का भाव देखकर कभी-कभी वह झगड़ा एकदम रुक गया। परन्तु यह भी सत्य है और लोगों ने देखा है कि इन भावों के भीतर भी माँ का एक धीर स्थिर भाव हर समय एक ही सा है, उस भाव का कभी परिवर्तन नहीं होता।

भाद्र 31, शनिवार- आज माँ के पेट में दर्द कुछ कम है। डॉ. पन्त कहते हैं-''मैंने अनेक रोगी देखे हैं किन्तु रोगी के हिसाब से भी माँ आदर्श रोगिणी हैं।'' ऐसे कठिन रोग में इस प्रकार खिलता हुआ चेहरा उन्होंने कभी नहीं देखा। माँ से डॉ. कहते हैं-''माँ इस रोग की पूर्ण मूर्ति बहुत ही विकट है। आप चाहें तो अपनी इच्छा शक्ति के प्रभाव से इसे अनायास ही हटा सकती हैं।''

जब माँ डॉक्टर के कहने में चलती हैं, तो इस ढंग से नियम का पालन करती हैं कि तनिक भी इधर-उधर नहीं हो पाता। गत बार डॉ. ने माँ को चुप रहने के लिये कहा था। माँ ऐसी मौन हो गई कि डॉ. के पूछने पर भी बात नहीं निकली। सभी निर्दोष रूप से हो जाता है।

डॉक्टर पन्त, स्वामी अखण्डानन्दजी, मैं, कमला और साधन माँ के पास बैठे हैं। डॉ. पन्त के साथ माँ बातें कर रही हैं, बात-बात में माँ ने कहा-''इस शरीर का छुटपन में माँ-बाप पालन करते थे, उसके बाद कई वर्ष तक योग क्रियाएँ इस शरीर के भीतर होती जाने लगी। उस समय बाहर के भोजन आदि का प्रयोजन नहीं हुआ। शरीर की रक्षा के लिये भोजन के साथ जो-जो चीजें ली जाती हैं, वे सभी पंचभूतों में मिली हुई हैं। जो योग क्रियाएँ होती थी, उन्हीं के द्वारा वे चीजें शरीर ग्रहण करता था। उसी से देह की रक्षा हो जाती थी। इसमें और भी अनेक प्रकार की बातें हैं। इसलिए तुम्हारी दृष्टि से भोजन नहीं होता था, निद्रा का तो कोई प्रश्न ही नहीं था किन्तु शरीर ठीक था। इन लोगों ने (हमें दिखाकर) देखा है, उस समय शरीर जल, मिट्टी और कीचड़ में पड़ा रहता था किन्तु कोई बीमारी नहीं हुई।'' माँ फिर कहती हैं-''अब फिर से बचपन की तरह इस शरीर को मैंने तुम्हारे हाथ में छोड़ दिया है, तुम लोग रख सको तो रहेगा, नहीं तो जाएगा।'' इतना कहकर हँसने लगी।

माँ के शरीर में अद्‌भुत क्रियादि

रात के 8-9 बजे एकाएक दिखाई पड़ा कि माँ के हाथों और पैरों में कोई क्रिया हो रही है। डॉ. पन्त भी अच्छी तरह देख रहे थे। हाथों, पैरों, सिर तथा सारे अंगों में क्रियायें होने लगी। कुछ क्षणों के अनन्तर मन्द-मन्द हँसते हुए माँ कहने लगी-''कैसा तमाशा है। शरीर न जाने कैसा होता जा रहा है। भीतर भी ठीक ऐसे मरोड़ता जा रहा है।'' डॉक्टर की ओर देखकर हँसते हुए माँ ने कहा-''बताओ तो ऐसा क्यों हो रहा है?'' डॉक्टर ने कहा-''मैं तो कुछ भी नहीं जानता, आप ही जानती हैं कि ये क्या है?''

डॉक्टर माँ की बहुत श्रद्धा-भक्ति करते हैं सही किन्तु उनमें अन्धविश्वास नहीं है। उन्होंने कभी इस प्रकार के भाव नहीं देखे थे। इनके सम्बन्ध में कोई धारणा भी उनमें नहीं है। विलायत पास डॉक्टर सहज में इन बातों में विश्वास नहीं करते किन्तु आज यह सब देखकर वह कहते हैं-''थोड़ी देर पहले जो बात करने से जरा-सा हिलने-डुलने तक से भीतर आघात पाती थी, अच्छी तरह श्वास नहीं ले सकती थी, करवट बदलना कठिन था, इस समय लम्बी-लम्बी श्वास ले रही हैं। सारा शरीर उलट-पलट हो रहा है, परन्तु पेट की

वेदना जरा भी अनुभव नहीं कर रही हैं, कैसे ऐसा सम्भव है?'' शरीर का प्रत्येक अंग इस ढंग से उलटता जाता है कि डॉक्टर अवाक् रह जाते हैं। माँ ने कहा–''पेट के भीतर इतने दिनों तक जो भयानक वेदना चल रही थी अब उसका लेशमात्र भी नहीं है।'' इसी तरह घण्टे भर तक चला। इसके अनन्तर हम लोग हाथ पकड़कर अंगुलियाँ खींचने लगे। परन्तु माँ हँसकर बोली–''कुछ भी जोर नहीं है। मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम हो रहा है।'' इतना कहकर अट्टहास कर उठी, चेहरे पर उज्ज्वल ज्योति खिल उठी। डॉ. साहब ने उसे देखकर कहा–''माँ, मुझे ऐसा लगता है कि आज से ही आपका रोग चला गया। ऐसी सुन्दर उज्ज्वल मूर्ति रोगी की नहीं हो सकती। आपका यही रूप सर्वदा बना रहे, यही प्रार्थना है। यथार्थ में ही दोनों कपोल और नेत्र मानो चमक रहे हैं। माँ ने हँसते हुए कहा–''देखो इस अवस्था में हँसते–हँसते या रोते–रोते प्राणवायु निकलकर जा सकती है और आराम भी हो सकता है (सभी हो सकता है)। डॉक्टर ने हाथ जोड़कर कहा–''नहीं माँ, वैसी बात न कहें।'' माँ ने कहा–''इस शरीर की सारी ही ग्रंथियाँ खुली हुई हैं। ऐसी क्रियाएँ हो सकती हैं।''

डॉक्टर ने कहा–''माँ आज ही मैंने हरीराम से तर्क किया था। हरीराम कहता था–''माँ चाहें तो अभी रोग आराम कर सकती हैं।'' और मैंने कहा–''नहीं, गत बार मेरी दवा से ही बुखार छूटा था।'' उस बार भी मेरे दो–चार दिन दवा देने के बाद जिस दिन औषधि देना समाप्त हो गया था उस दिन आपके शरीर में इसी तरह की अद्‌भुत क्रियाएँ हुई थी। उसके बाद से बुखार उतर गया। किन्तु आज इस ढंग से यह भयंकर रोग यदि अच्छा हो जाय तो मैं निश्चय समझूँगा कि मेरी दवा से कुछ भी नहीं हुआ। आपकी इच्छा से ही सब कुछ हुआ है। मुझे अनुमान होता है कि परसों इस रोग का चिह्न भी नहीं रहेगा।''

माँ ने तुरन्त हँसकर कहा–''अच्छा ऐसी बात है? तो देखा जाएगा। तुम थोड़ी उम्र से ही विपत्नीक हो, उसके बाद से सात्त्विक जीवन बिता रहे हो, उत्तम ब्राह्मण गंगा के तट पर बैठे ही देखूँ कि तुम्हारी बात कैसी सत्य होती है। यदि रोग न रहे तो मैं कहूँगी कि पिताजी की बात से रोग चला गया। क्यों ठीक है न?'' इसी तरह बातचीत होते–होते रात के 11 बज गये। माँ का खूब फुर्तीला भाव, बातचीत में भी तेजी आ गई। एक समय माँ बोली–

''देखो, भीतर अभी भी वह भाव ही क्रिया कर रहा है इसी से इस तरह बातचीत हो रही है।''

माँ बहुत सावधानी से पेट को दबाकर पाखाने जाती थी। चल नहीं सकती थी। थोड़ा हिलने से भी पेट में भयानक दर्द होता था। आज इन अवस्थाओं के बाद रात के लगभग 12 बजे बाहर जाने के लिये उठी। स्वाभाविक ढंग से बाहर चली गई। मैंने हँसकर कहा–''मैं देखूँ कि रोगिणी इस समय किस ढंग से चलती है?'' माँ ने हँसकर कहा–''नहीं-नहीं तुम लोग ऐसा न बोलो। बात यह है कि अभी भीतर वही भाव चल रहा है, इसी कारण भीतर क्या रोग है उस पर खयाल ही नहीं है, इसी से चलना-फिरना वैसे ही हो रहा है।''

आज माँ को सोने का भाव ही नहीं है। इस कारण दो-चार बातें भी कर रही हैं। इन कई दिनों के रोग-भोग से माँ का चेहरा बहुत ही खराब हो गया था तो भी डॉक्टर ने कहा–''जैसा रोग हुआ था वैसा किसी दूसरे को होता तो उसका चेहरा बहुत ही खराब हो गया होता। अब तो रोग का कोई लक्षण चेहरे पर प्रकट नहीं हो रहा है।'' मैं एक छोटा दर्पण माँ के हाथ में देकर बोली–''माँ देखो, तुम्हारी कैसी सुन्दर उज्ज्वल मूर्ति हुई है। अपने दोनों नयनों से तो सबका सर्वनाश करती हो।'' मैंने बत्ती जला दी, माँ भी बच्चों की तरह दर्पण में अपना मुँह देखने लगी। फिर हँसते हुए बोली–''ठीक ही तो है रोग का चेहरा तो नहीं है।'' फिर कहा–''कहाँ, तुम लोग कहते हो कि आँखों में कुछ है, पर मैं तो नहीं देखती।'' इतना कहकर दर्पण को घुमा-फिराकर देखने और मुस्कुराने लगी। मैंने फिर कहा–''उन आँखों से तुम लोगों का सर्वनाश करती हो।'' माँ ने हँसकर कहा–''सर्व का नाश मैं कहाँ कर सकी हूँ, यदि तुम लोगों का सर्वनाश होता तो बहुत मंगल की बात होती।'' इस प्रकार की बातचीत में अधिक रात हो गई। मैंने बत्ती बुझा दी, माँ भी चुपचाप लेटी रही।

आश्विन 1, रविवार– आज दिन के 9 बजे माँ उठी। डॉक्टर पंत, स्वामीजी आदि सबने माँ के पास जाकर पूछा–''माँ, आज कैसी तबीयत है आपकी?'' माँ ने उत्तर दिया–''अच्छी हूँ।'' आश्चर्य का विषय यह है कि सारा शरीर, सिर के केश तक इतने उज्ज्वल थे कि मानो किसी ने तेल लगा दिया हो।

रोग की मूर्ति का प्रकाश

डॉक्टर साहब ने हाथ जोड़कर कहा–"माँ, मैं एक अत्यन्त सत्य घटना की बात बताता हूँ–मुझे इस पर विश्वास नहीं था। कल भी इस विषय पर मैंने बहुत तर्क किया था किन्तु आज मेरा अहंकार चूर–चूर हो गया है। कल रात को माँ की उन क्रियाओं के हो जाने के बाद मैं जब सोने के लिये छत पर गया, उस समय स्पष्ट देखा था कि माँ के कमरे से एक काला कुत्ता, ठीक कुत्ता नहीं, बन्दर जैसा एक जानवर निकलकर गंगा में कूद पड़ा। मैंने सोचा क्या मुझे भ्रम हुआ है? किन्तु बाद में अच्छी तरह देखा कि मुझे भ्रम नहीं हुआ है। मैंने ठीक ही देखा है। यह कैसी आश्चर्य की घटना थी? माँ जो कहती हैं कि रोग की मूर्ति है, मुझे ऐसा लगा कि यह वही है और अब माँ के शरीर में रोग नहीं रह सकता, रोग तो गंगा में डूब गया है। इस दृश्य को देखकर और कल माँ के शरीर में जो क्रियाएँ हुई हैं उन्हें देखकर मैं तो स्तब्ध हो गया हूँ। मलेरिया आदि विशेष बात नहीं है परन्तु वह जो भयंकर रोग हुआ था। कैसे वह अवस्था इस ढंग से बदल गयी, मैं आश्चर्य में पड़ गया।"

माँ अच्छी हैं। बातचीत कर रही हैं, आनन्द मना रही हैं। माँ की बीमारी की खबर पाकर इलाहाबाद से शिवप्रसाद बाबू आ पहुँचे। देहरादून से लक्ष्मी और दासजी (गोला) तथा उसकी माँ और बहनें आ गयी हैं। हरिराम भी आया है। आकर सब लोग देखते हैं कि माँ अच्छी हैं। डॉक्टर साहब ने सारी घटना बताकर उन लोगों से कहा ऐसी अवस्था हुई थी कि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो न जाने क्या हो जाता? मेरी जो–जो धारणाएँ थी, अब माँ की कृपा से समझ गया कि वह सब गलत थी।

कल उस अवस्था के समय माँ ने चटपट कुछ बातें डॉक्टर साहब से प्रश्न के ढंग से कही थी, वह बात चली। माँ ने कहा–"देखो तुम्हारे ही भाव से शरीर चल रहा है। जैसी अवस्था हुई थी उससे डॉक्टर को हिस्टीरिया (मिरगी) की शंका हो सकती थी। इसी कारण उस तरह का प्रश्न हुआ था और उसी प्रश्न से डॉक्टर की भ्रान्त धारणा नष्ट हो गयी है।"

आश्विन 2, सोमवार– आज बात–बात में दोपहर को माँ ने कहा–"देखो, ऐसा सुना जाता है कि ऋषि–मुनि ध्यान में बैठकर सब कुछ जान

सकते थे। तुमसे मैंने शाहबाग में भी कहा था, अब भी कहती हूँ कि यह शरीर कैसा है जानती हो? मैं ध्यान-अध्यान कुछ नहीं कहती, एक के अतिरिक्त और कुछ रहे तब तो? अलग कुछ हो भी तो?'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। मैं अवाक् होकर माँ के चेहरे की ओर देखते हुये सोचने लगी कि किसके साथ हम लोग खेल रहे हैं।

भोलानाथजी के देहत्याग की बात

आज भोलानाथजी के शरीर छोड़ने के दिन की बात चली। एक के बाद एक घटना कैसे सुन्दर ढंग से हो गयी है, वही सुन रही थी। माँ कहने लगी-''सन्ध्या के समय मैंने कमरे में जाकर धूप जलाने के लिये कहा। गंगा जल छिड़क दिया गया। उपस्थित लोगों के शरीर पर भी गंगा जल डाला गया। उसके बाद मैं जाकर बैठ गयी। एक दिन एक बूंद जल शरीर में लगते ही भोलानाथ ने कहा था-''गंगा जल है क्या?'' उसके बाद गंगा जल छिड़का जाने लगा, आज भी दिया गया। मैंने थोड़ा ग्लुकोज (*Glucoes*) देने के लिये कहा। जो लोग कमरे में थे उनमें से कोई-कोई ग्लुकोज तैयार करने के लिये बाहर चले गये। तब मैंने पूछा-''देखो तुम्हें संन्यास-मंत्र याद है न? उत्तर में कहा-'है।' दिन में वह मुझे छूना चाहते थे। यह छूना मानो पुत्र का माता को स्पर्श करना था। तब मैंने ही कहा-यही तो मेरा हाथ है, पकड़ोगे?'' यह कहते ही उसने हाथ बढ़ाकर मेरा हाथ पकड़ा किन्तु हाथ काँपते हुए गिर पड़ा। तब कहा-''मैं जाता हूँ।'' मैंने कहा-'यह क्या कहते हो? जाना-आना क्या है?' तब फिर कहा-'तुम तो बराबर ही मुझे आशा देती आ रही हो।' इस बात से समझ में आया कि जीवन भर जो उससे कहा गया है कि मृत्यु नहीं है वे भाव और बातें सब मन में जगी हैं। यह भी शुद्ध संस्कार है तब वह करवट बदल कर लेटा था। मेरे हाथ से उसके सिर से पैर तक हाथ फेरने की तरह हो गया। उसके बाद ग्लुकोज खाने के अनन्तर कहा-'क्या मुझे जाड़ा नहीं लगता? मुझे जाड़ा लगता है।' सभी कपड़ों को फाड़कर हाथ- मुँह पोंछने के काम में लगा दिया गया था। एक गेरुए रंग की चादर सन्दूक में थी। उसे मँगवाकर ओढ़ा देते ही चित् होकर लेट गये। दूसरों के न समझने पर भी मैं जान गई कि प्रणव और संन्यास-मंत्र का जप कर रहे हैं। इस बीच में एक बार मैंने कहा-''तुम कीर्तन सुनना पसन्द करते थे। कीर्तन सुनोगे?'' कहा-'अच्छा।' मैंने योगेश को बुलाकर

कीर्तन करने के लिये कहा। कुछ देर बाद मैंने फिर कहा–''रहने दो अब जरूरत नहीं है।'' मैंने जो कुछ किया लोग नहीं समझ सके कि क्यों कर रही हूँ? उसके बाद प्रणव का उच्चारण होने के साथ-साथ मेरे हाथ ने उनके सिर का स्पर्श किया। किसी प्रकार मुख का विकृत होना या हाथ-पैर फैल जाना कुछ भी नहीं हुआ। दोनों पैर सिमटे ही रहे। इस अवस्था में प्राण निकल गये। कमरे में वैद्य या डॉक्टर कोई नहीं था। इस कारण कोई जान न सका कि किस समय प्राण निकल गये। मैंने पहले ही एक घड़ी नीचे बिछौने पर रखने को कहा था। प्राण त्याग के बाद पैर सिमटे हुए ही जरा-सा हिल गये। कोई-कोई बैठे हुए ही प्राण छोड़ते हैं। यह भी वैसा ही था। एक बार भोलानाथ ने कहा था 'मुझे बिठा दो।' परन्तु शरीर की जैसी अवस्था थी उसमें उठाना मुश्किल था। इसलिये उठाया नहीं गया किन्तु उठाकर बैठा देते तो बैठी हालत में ही प्राण त्याग हो जाता। मैं तो तुम्हारी तरह अपनी इच्छा से कुछ नहीं करती। जिसका जो प्रयोजन है वह इस शरीर से वैसा ही करा लेता है। देखो एक के बाद एक सब कैसे सुन्दर भाव से हो गया। देहत्याग के बाद मैंने वैद्यजी से पूछा-'आपकी राय में ठीक हो गया न?' मानो कोई किसी की बात कह रहा है। सब लोग मेरे मुँह की ओर देखते रह गये मानो बोली बन्द हो गई हो। कुछ देर बाद उसने कहा-'हाँ माँ।' तब मैंने संस्कार की व्यवस्था के विषय में पूछने के लिये रामकृष्ण मिशन में भेजा है। मैं माँ के मुँह से सब सुनकर अवाक् रह गयी।

आज सोलन से निवारण बाबू माँ के आदेश से यहाँ आये हैं। वह यज्ञ-रक्षा के लिये विन्ध्याचल जा रहे हैं। वहाँ के ब्रह्मचारी अनंग भट्टाचार्य कुछ दिनों के लिये तीर्थ-भ्रमण करने जायेंगे। निवारण बाबू ने आकर कहा–''माँ कैसी आश्चर्यजनक घटना है? परसों सुबह जल में हाथ देने पर मेरा हाथ सुन्न हो गया था। मुझे ऐसा लगा कि यहाँ की ऐसी ठंडक में मैं क्या करूँगा? फिर दूसरे ही क्षण मन में आया कि माँ ही सब व्यवस्था करेंगी। मुझे चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? उसके दूसरे दिन ही माँ का तार मिला कि उन्होंने मुझे आने की आज्ञा दी है।''

आश्विन 3, मंगलवार– डॉक्टर साहब ने माँ से पूछा था–''माँ, मैंने जिस मूर्ति को गंगा में कूदते देखा था, क्या वही इस रोग की मूर्ति है?'' माँ ने उत्तर दिया, ''अभी कुछ नहीं आ रहा है। बाद में आने पर बताऊँगी।''

आज शाम को 4 बजे दरवाजा खोलते ही देखा कि माँ जगी हुई हैं। मैंने कहा–''माँ, तुम आँखें खोले हुए ही थी? आज शायद सोने का भाव नहीं है।'' माँ ने कहा–''हाँ अभी वे लोग आये थे, बातचीत हो रही थी।'' मैंने बात को स्पष्ट करने के लिये कहा–''दरवाजा तो बन्द था, कौन आया था तुमसे बात करने के लिये?'' माँ ने मुस्कुराकर कहा–''उस दिन जो रोग की मूर्ति गयी थी, वही सब। देखो, प्रत्येक रोग की तीन मूर्तियाँ हैं–सत्त्व, रज और तम। इस रोग के लिये भी वही बात है। डॉक्टर पन्त ने उस दिन पूछा था।'' माँ ने और कुछ नहीं कहा। धूप ढल जाते ही हम लोग माँ को कुछ टहलवाने के लिये छत पर ले गये। साथ-साथ डॉक्टर पन्त भी आये। माँ ने उस समय पन्तजी से कहा–''पिताजी, उस दिन आपने पूछा था कि वह मूर्ति इस रोग की थी या नहीं। बात यह है कि हर एक रोग की सत्त्व, रज और तम इन तीन भावों की तीन मूर्तियाँ हैं। उस दिन जो आपने देखा था उसकी पीठ कुछ बिल्ली की सी थी और चेहरा बन्दर का सा था। भ्रू में बड़े-बड़े रोयें थे–वह उस रोग के विषाक्त अंश की मूर्ति थी। आज वे ही तीन मूर्तियाँ मिलने आयी थी। मैंने और कोई विशेष बात नहीं पूछी।'' डॉक्टर पन्त से कहा–माँ मैंने भी तो कहा था कि ''वह मूर्ति कुत्ते या बन्दर की सी थी। ऐसी बड़ी लम्बी-लम्बी उसकी अंगुलियाँ थी। वह गंगा में उछल पड़ा था। किन्तु गंगा के जल में कोई शब्द नहीं हुआ। मानो छाया मूर्ति थी।'' माँ कुछ मुस्कुरायी। मानो डॉक्टर पन्त की बात का समर्थन किया हो। शाम को फिर सब लोग माँ के कमरे में आकर बैठ गये। बातचीत होते-होते रात 10 बजते ही दरवाजा बन्द कर दिया गया।

आश्विन 4, बुधवार– आज श्रीयुत् योगेश वन्द्योपाध्याय के ऊपर जो काली घर का दरवाजा खोलने का भार दिया गया था उसकी बात चली। माँ ने कहा–''क्यों उस पर यह भार सौंपा गया था, जानती हो? जिस दिन पहले-पहल शाहबाग के गोल घर से काली को हटाया गया उसके पूर्व दिन मैंने योगेश, विनय और कुलदा से कहा था–''कल सूर्योदय के पहले आकर काली को उस घर से हटा लाना होगा।'' वे अँधेरा रहते ही डेढ़ मील दूर से शाहबाग आ पहुँचे। बगीचे का दरवाजा खुला नहीं था। वे बाहर खड़े रहे। बाद में सुना गया कि बाहर खड़े-खड़े बात-बात में योगेश ने कहा था कि–''काली को उठा लाना होगा। यदि मिट्टी की काली-मूर्ति को उठाते ही हाथ

से टूट जाए तो भाई किसका सर्वनाश होगा पता नहीं।'' इसके बाद बगीचे का दरवाजा खोला गया। इसके बाद वे भीतर आकर (अमूल्य और कमलाकान्त के साथ पाँच व्यक्ति मिलकर) जैसे कहा गया काली–मूर्ति को दूसरे कमरे में ले गये। योगेश ने जो बाहर कहा था कि यह काली–मूर्ति जिसके हाथ से टूटेगी उसका सर्वनाश हो जाएगा। उसकी इस बात के भीतर एक सुन्दर विश्वास का तीव्र भाव मैंने देखा। उस विश्वास के पुरस्कार के रूप में मानो मेरे मुख से निकल पड़ा–जब तक योगेश जीवित रहेगा वही काली के प्रयोजन के अनुसार दरवाजा खोलेगा और प्रणामी दक्षिणा का हिसाब रखेगा। अब तो दरवाजा बन्द हो गया। अभी भी कहा गया है कि उस मन्दिर की प्रणामी दक्षिणा के रुपये–पैसे का हिसाब साल के अन्त में योगेश वन्द्योपाध्याय के सामने ही होगा और रुपया यथास्थान पहुँचा दिया जायेगा। जितने दिनों तक इस काम की आवश्यकता होगी। उसके अभाव में उसके पुत्र या सुरेन वन्द्योपाध्याय (पोस्टमास्टर) के लड़कों के सामने यह काम हो सकेगा। आश्रम के इस दरवाजे के खोलने के प्रसंग में माँ ने कहा–''आश्रम के शुद्ध काम का भार जिस पर जितना पड़े सभी को उसमें सहायता देनी चाहिये क्योंकि इस शुद्ध काम का भार पाकर जिसका जितना कल्याण है उतना ही मंगल है। इस कारण आश्रम–निवासियों के लिये आनन्द के साथ इन आध्यात्मिक कर्मों में सहायक होना विशेष आवश्यक है।''

और एक बात चली कि माँ जिस बार उत्सव के बाद भोलानाथजी और ज्योतिष दादा को साथ लेकर इस ओर आयी थी उस बार के उत्सव के अन्तिम भाग में सुरेन दादा (पोस्टमास्टर), कमलाकान्त, विनय दादा (विनय वन्द्योपाध्याय), अमूल्य चौधरी और मुझसे आश्रम की स्थायी यज्ञाग्नि में आहुति दिलायी थी। इस बात पर माँ ने कहा था–मैं देख रही थी–इन पाँचों का किसी समय इस प्रकार का एक साथ मिलकर आध्यात्मिक कर्म था। इसी कारण इस समय उनके द्वारा इस प्रकार का कार्य हुआ।'' माँ कब, किसको, किसलिये क्या आज्ञा देती हैं कौन जाने? कोई शायद इसके लिये दुःखी होता है, कोई रूठ जाता है। माँ ने कहा– ''यह काम मुझसे नहीं कराया, उससे कराया।'' किन्तु इन कर्मों का निगूढ़ कारण केवल माँ ही जानती हैं। उस विषय की धारणा करने की चेष्टा करना हमारे लिये वातुलता मात्र है।

आश्विन 6, शुक्रवार– माँ की अवस्था एक ही भाव से चल रही है। आज आठ–नौ दिन से भात या रोटी एकदम बन्द है। सात–आठ दिन से दूध और थोड़ा फल दिया जा रहा है। इसी ढंग का भोजन चल रहा है।

कल और आज दोनों दिन श्रद्धेय श्रीयुत् सुरेन्द्रनाथ ठाकुर अपनी लड़की और दामाद को लेकर माँ के पास आये। कल कोई खास बात नहीं हुई। किन्तु आज अनेक बातें हुई। उनमें से कुछ बातों का विवरण मैं यहाँ लिखती हूँ। श्रीयुत् सुरेन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा–''यह जो बहुत से कुसंस्कार हैं, उन्हें बिल्कुल छोड़ देना चाहिये क्योंकि उनका पालन करते–करते अज्ञान ही बढ़ता है, जैसे जाति–भेद–प्रथा आदि।'' माँ ने कहा–''सबके लिये एक बात नहीं। किसी–किसी में ऐसा संस्कार है कि उसे इन भावों के भीतर होकर चलना ही पड़ेगा। उन भावों के भीतर से न जाने पर बन्धन से मुक्त नहीं हो सकेगा। इस कारण उसे कैसे नियम पालन के लिये ही कहा जाता है। सब लोग एक ही स्थान पर जायेंगे किन्तु जो जहाँ है उसे वहीं से चलना होगा। इस कारण हर एक का पथ एक नहीं है। उद्देश्य एक ही है, एक के सिवाय दूसरा तो कुछ नहीं है।''

श्रीयुत् सुरेन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा–''हम लोग भी उस अखण्ड के अंश हैं।'' माँ ने कहा–''अंश क्यों बाबा? तुम ही तो पूर्ण अखण्ड–स्वरूप हो। देखो न यदि तुम्हारे भीतर वह अखण्ड भाव न होता तो तुम लोग अखण्ड आनन्द और अखण्ड शान्ति क्यों माँगते? जो जिस चीज का स्वाद नहीं जानता क्या वह उस चीज के लिये लालायित होता है? और देखो बाबा, तुम लोग तो एक के भीतर ही हो। एक–एक कदम चलते हो, एक–एक अक्षर लिखते हो, एक–एक ग्रास खाते हो।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। श्रीयुत् सुरेन्द्रनाथ ठाकुर ने फिर कहा–''अच्छा माँ, गुरु करना क्या आवश्यक है?'' माँ ने कहा–''हाँ, एक उपलक्ष्य के बिना काम चल ही नहीं सकता।'' उन्होंने पूछा–''सद्गुरु को कैसे पहिचाना जाएगा?'' माँ ने उत्तर दिया–''सच कहना हो तो प्रोफेसर को क्या छात्र पहचान सकता है? इसीलिये कोई–कोई कहते हैं कि एक साल तक संग करके किसी को गुरु पद में वरण करना चाहिये। इससे भी क्या ठीक–ठीक पहिचाना जा सकता है? फिर भी एक बात है कि जिसके साथ जो संयोग है उससे उतना ही मिलेगा। उसी के अनुसार योगायोग होता है। ऐसा भी होते देखा गया है कि गुरु करके अन्त

में अफसोस करना पड़ता है। फिर अच्छा नहीं लगता। तब कहा जाता है कि उनसे जो कुछ पाना था उतना प्राप्त हो चुका है। और एक बात है, तुम घोड़े की गाड़ी से जाकर ट्रेन पर सवार हुये अब ट्रेन पर चढ़कर घोड़े की गाड़ी को तुच्छ नहीं समझना चाहिये, क्योंकि उसी की सहायता से तुम ट्रेन पकड़ सके हो। और भी एक बात है, गुरुजी की पाठशाला में पढ़कर वहाँ की विद्या समाप्त होने से तुम स्कूल में आये हो। स्कूल की पढ़ाई खत्म होने पर कॉलेज में पढ़ने की आकांक्षा हुई। अत: कुछ भी व्यर्थ नहीं है। तुम्हारी पिपासा शायद पाठशाला मिटा नहीं सकी, परन्तु वहीं की विद्या ने तो तुम्हारे भीतर स्कूल-कॉलेज में पढ़ने की आकांक्षा जगा दी। फिर सद्गुरु स्वयं ही उत्तम विषय को आश्रय देते हैं। वह खोज करा लेते हैं। सद्गुरु का स्वभाव ही ऐसी करुणा है। इष्ट, गुरु और मंत्र तीनों ही तो एक हैं, इसीलिये ऐसा है।''

कन्याश्रम प्रतिष्ठा के प्रसंग में

आश्विन 7, शनिवार– आज उल्लेखनीय विशेष कोई घटना नहीं है। अभय, योगेश दादा, अनुकूल आदि कल उत्तरकाशी से देहरादून आकर पहुँचे। अभय तथा अनुकूल कल रात को ही आ पहुँचे हैं। योगेश दादा किशनपुर आश्रम में हैं।

आश्विन 8, रविवार– एक कन्या-आश्रम की स्थापना करने की बात चली। निश्चय हुआ कि देहरादून आश्रम के पीछे का एक छोटा मकान इसी उद्देश्य से लिया जाएगा। श्रीयुत् शिवप्रसादसिंह और स्वामी अखण्डानन्दजी के अर्थ-साहाय्य से इस काम की नींव डाली गयी। ढाका से श्रद्धेय कुलदा दादा अपनी दो लड़कियों को कन्या आश्रम में रखने के लिये भेज रहे हैं ऐसी खबर आयी है। कुलदा दादा ने अपने बड़े पुत्र को ब्रह्मचारी कर दिया है, अब कन्या आश्रम में भी पहले लड़कियों को वे ही भेज रहे हैं। धर्मपरायण लड़कियों को धर्म पथ पर चलने में सहायता देना ही इस आश्रम का उद्देश्य होगा। बाहरी शिक्षा विशेष रूप से नहीं दी जाएगी। आगामी रविवार को लड़कियों को लेकर श्रीयुत् यतीशचन्द्र गुहा महाशय के पहुँचने की बात है। इसी जगह गंगा तीर पर लड़कियों को नये ढंग से व्रती किया जाएगा।

आश्विन 8, रविवार– आज कलकत्ते से श्रीयुत् यतीशचन्द्र गुहा महाशय के साथ ढाका के कुलदा दादा की दूसरी और तीसरी कन्याएँ आश्रम में

आयी। श्रीयुत् मन्मथ दादा ने आश्रम-प्रवेश के उपलक्ष्य में श्री श्री माँ की पूजा, होम तथा उन कन्याओं के ऊपर कुमारी पूजा की। कीर्तन भी हुआ। कन्याओं का नाम भक्तिप्रिया और शान्तिप्रिया रखा गया।

एक विषय पर लक्ष्य करती हूँ-उस दिन रात्रि में माँ के शरीर में क्रिया आदि हो जाने के अनन्तर माँ के चेहरे पर कुछ विशेष उज्ज्वलता प्रकट हुई थी। यद्यपि उसके दूसरे दिन जैसी थी वैसी अब नहीं हैं। किन्तु तथापि यथेष्ट हैं। थोड़ा-थोड़ा दूध और कुछ फल ही लेती हैं। उस प्रकार के भयंकर रोग में तीन-चार दिन के भीतर जिस प्रकार चेहरा उतर गया था उसे देखकर डॉक्टर पन्त डर गये थे। परन्तु क्रिया के समय से ही चेहरे का अपूर्व परिवर्तन हो गया। यहाँ तक कि यतीश दादा (श्रीयुत् यतीशचन्द्र गुहा) ने यहाँ आकर माँ को देखकर कहा-''दीदी की चिट्ठी से हम जिस प्रकार डर गये थे आकर माँ का चेहरा देखकर ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि कुछ विशेष रोग हुआ था।'' माँ इस बात पर हँसकर मुझसे बोली-तुझे अब लोग झूठा बनायेंगे अर्थात् मैंने सबको माँ के इस भारी रोग की बात लिख भेजी थी और वे अब यहाँ आकर देखेंगे कि माँ को विशेष कुछ नहीं हुआ। वह अच्छी ही हैं। मैंने हँसकर कहा-'अच्छी बात है, मैं झूठी ही सही पर तुम तो अच्छी हो गई।'

आश्विन 9, सोमवार- आज कलकत्ते से आशु (भोलानाथजी का भतीजा) माँ की अस्वस्थता की बात सुनकर देखने आया है। धीरे-धीरे अनेक लोग माँ के दर्शनों के लिये आ रहे हैं। फिर से डॉक्टर पन्त का सेवा सदन लोगों के कोलाहल से भर गया। दुर्गा पूजा की छुट्टी थी। इस कारण लोगों को आने का मौका मिला है।

आज दोपहर को माँ से बातें हो रही थी। माँ ने मुझसे कहा-''कल दोपहर में मैं लेटी थी। अपराह्न 3 बजे का समय था। मैं आँखें खोलकर देखती थी कि धूप से सारी दिशायें भर गयी हैं। मैं सोचने लगी-'अभी तक खुकुनी हाथ-मुँह धोने के लिये क्यों नहीं बुलाने आयी? दिन इतना चढ़ गया।' तू और अभय दोनों रात को मेरे पास सोते हो परन्तु देखा कि कोई पास नहीं है। दोनों उठकर न जाने कब चले गये हैं।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। मैंने कहा-''माँ, मसूरी में भी एक दिन सुबह मैंने तुम्हारा मुँह धुला दिया था परन्तु तुमने 10 बजे खाने पर बैठकर पिताजी से कहा था-

''खुकुनी ने आज मेरा मुँह नहीं धुलवा दिया।'' केवल इतना ही नहीं, तुमने खाने के बहुत पहिले से कहा था और शायद सोचा भी था कि मैंने तुम्हारा मुँह नहीं धुला दिया है। फिर तुमने ऐसा भी सोचा था कि 'मैं पहले कुछ न बोलूँगी, जब बुलाकर खिलाने बैठायेगी और मुँह में कुछ अन्न देगी उस समय कहूँगी।' यह सुनकर माँ हँसकर बोली-''क्या मेरा दिमाग बिगड़ गया है? बूढ़ों को जैसे खाकर भूल हो जाती है, क्या यह भी वैसी ही बातें हैं?'' मैंने कहा-''तुम्हारी बात तुम ही जानती हो, प्राय: एक साल पहले तुमने मुझसे कह रखा था कि ऐसा होगा। मैं पहले ही कहकर रखती हूँ।'' माँ इन बातों को सुनकर हँसने लगी। फिर बोली-''देखो, तुम लोगों की तरह समय का हिसाब किसी-किसी समय बिल्कुल नहीं रहता। इसी कारण ऐसा हो जाता है। यह भी एक ओर का प्रकाश है। यह विस्मृति या भ्रम के घर में नहीं जाता।'' इस ढंग के और भी अनेक वार्तालाप हुए।

आश्विन 11, गुरुवार- आज कलकत्ते से एक सज्जन सपरिवार गिरि महाराज के आश्रम में आये हैं। वहाँ से माँ का नाम सुनकर माँ को देखने आये। उन्होंने बात-बात में कहा-''स्वामी असीमानन्द (यह रामकृष्ण मिशन के हैं) के मुख से एक घटना सुनकर आपको देखने का बड़ा आग्रह हुआ। मैंने सुना है कि वह आपके साथ उत्तरकाशी मन्दिर प्रतिष्ठा के समय गये थे। उसके बाद देहरादून आकर आप सबको साथ लेकर रायपुर गयी। वहाँ से लौटते समय वृष्टि के कारण पथ की नदी में भीषण स्रोत चलने लगा। मोटर में सवारियों को लेकर नदी पार होना असम्भव था। उस समय आप सबको साथ लेकर वृष्टि के भीतर ही उतर पड़ी और नदी के बीच में खड़ी होकर ऐसे ढंग से सबको उस पार उतार रही थी कि आपका उस समय का रूप देखकर लगता था कि संसार समुद्र के कर्णधार के रूप में आप सबको पार कर रही हैं।'' यह बात उन्होंने बड़े ही सुन्दर ढंग से कही थी मानो उनके चित्तपट पर उस घटना की छाप अच्छी तरह पड़ गयी है।

हमें भी इस घटना को सुनकर उस दिन की बात याद आयी। वास्तव में उस दिन भयंकर अवस्था थी। साथ में बहुत से लोग, छोटे-छोटे बच्चे, वृद्धा सभी प्रकार के लोग थे। स्रोत ऐसा तीव्र था कि दो-तीन आदमी एक-एक को पकड़कर बहुत कष्ट से पार कर रहे थे। उस समय माँ नदी के बीच में दृढ़ता के साथ खड़ी होकर व्यवस्था करा रही थी। किसी-किसी का हाथ

पकड़कर सहायता दे रही थी, वह एक अपूर्व दृश्य था। बारिश हो रही थी, बिजली चमक रही थी, बीच-बीच में बिजली के गिरने की कड़ी आवाज भी सुनाई पड़ती थी। उसी के बीच में माँ की यह लीला चल रही थी।

आज तीसरे पहर सब लोग माँ के पास बैठे हुए थे। बात-बात में एक आदमी कहने लगा कि माँ के पास बहुत से खराब आदमी भी आते हैं। किन्तु वे भी माँ से किसी प्रकार अनादर नहीं पाते हैं इस कारण सब में घमंड बढ़ जाता है। दुष्टों का दमन भी होना चाहिये, इत्यादि। माँ ने हँसकर कहा-''देखो, तुम लोग मुझे तरह-तरह के उपदेश देते हो किन्तु मैं उसकी रक्षा नहीं कर पाती। क्या करूँ, बोलो। बात क्या है, जानते हो? साधु संन्यासी लोग दुष्टों को अपने पास नहीं रखते। दूर हटा देते हैं। उसका कारण यह है कि दुष्टों के संसर्ग से साधुओं की हानि होने की संभावना है यह बात ठीक है। और एक श्रेणी के मनुष्य हैं जो सम्भवत: ऐसे उच्च स्तर पर पहुँच गये हैं कि दुष्टों के प्रभाव से उन्हें कोई हानि नहीं हो सकती तो भी लोक शिक्षा के लिये वे दुष्टों से दूर ही रहते हैं। पर इस शरीर का सभी कुछ विपरीत है न। क्या खयाल होता है जानते हो? हाथ में घाव हुआ तो क्या उसे काट डालना चाहिए? नहीं, औषध देकर लोग उसे आराम करने की चेष्टा करते हैं। यहाँ वैसी कोई चेष्टा नहीं है, जो हो जाय। किसे कहूँ कि हट जाओ। और किसे हटा दूँ, कहाँ हटा दूँगी,एक के सिवाय कोई दूसरा नहीं है।''

फिर माँ हँसती हुई बोली-''इसी से तो कहती हूँ कि रोगों को कहाँ हटा दूँगी? और किसे हटा दूँगी? जिस प्रकार तुम लोग आते हो इस शरीर से खेलते हो उसी प्रकार रोग भी आते हैं और खेलते हैं। तुम कह सकते हो कि शरीर सूख जाता है, उसे दुर्बल कर देता है। वह तो करेगा ही क्योंकि वही उसका स्वभाव या स्वरूप है जो आयेगा वह अपना प्रभाव तो दिखाएगा ही।'' माँ के मुख से इन बातों को सुनती हूँ और स्तम्भित हो जाती हूँ। कितने बड़े भाव की बात है? जो विश्वमय होकर विराजमान हैं, महान् असीम, अनादि और अनन्त हैं केवल वही ऐसी बात कह सकते हैं।'' परन्तु सब भूल जाती हूँ। उनके लीला-चक्र में पड़कर ये बातें याद ही नहीं रहती। माँ अपनी माया से सब भुला देती हैं।

आश्विन 14, शनिवार- आज महाष्टमी है। भक्त लोग यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं। योगेश दादा, निरोज दादा, आशु, नरसिंह और डॉक्टर पंत इन

पाँच व्यक्तियों ने आहुति दी। कमलाकान्त ने दुर्गा सप्तशती का पाठ किया। साधन, शशांक तथा स्त्रियों ने बैठकर जप किया। पूजा, यज्ञ और भोगादि सुन्दर रूप से हो गये। यज्ञ आदि के बाद कीर्तन हुआ।

बहुत आनन्द चल रहा है। माँ को फूल मालाओं से खूब सजा दिया गया है। कितने ही लोग नये-नये कपड़ों से माँ को सजा रहे हैं और उसके बाद ही वह वस्त्र बाँट दिए जा रहे हैं। आज श्रीयुत् शिवप्रसादसिंह सपरिवार आये हैं। माँ सन्ध्या से पहले छत पर जा बैठी। वहाँ भी कीर्तन हुआ। सन्ध्या के बाद माँ फिर कमरे में आ बैठी। सब लोग माँ के पास बैठ गये, नाना प्रकार की कथा-वार्ता होने लगी। रात के 10 बजे लोगों के चले जाने के बाद माँ के कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया गया। माँ अपने बिछौने पर लेट गई।

माँ के शरीर में क्रिया का प्रकाश

आश्विन 15, रविवार– कल रात के 3 बजे माँ बाहर आ गयी। उसके बाद फिर बिछौने पर जाकर सोने का भाव नहीं रहा। माँ बैठी हुई हैं। एकाएक उनका शरीर भीषण भाव से काँपने लगा। कुछ देर बाद शरीर में क्रिया आदि होने लगी। आसन करके बैठी। एक-के-बाद एक आसन होने लगे। अपूर्व भाव से माँ का शरीर संचालित होने लगा। एक-एक करके सभी आकर माँ का यह भाव देखने लगे। इसके माधुर्य से सभी मुग्ध हो गये। आज भी लगभग एक घण्टा क्रिया चली। उसके बाद माँ स्थिर होकर बैठी। सुबह हो गयी। साढ़े 5 बजे माँ को लेटे रहने के लिये कहा गया। माँ भी छोटी बच्ची की तरह बोली-"लेट जाऊँ? अच्छा।" इतना कहकर लेट गयी।

बेला लगभग 8 बजे माँ ने आँखें खोली। हम लोग उठकर हाथ-मुँह धुलाकर माँ से कुछ जलपान करने के लिये कहने लगे। किन्तु देखा कि आज शरीर से मानो उनका कोई सम्पर्क ही नहीं है। बड़ी कोशिश से उन्हें उठाकर बिठाया, किन्तु दिन भर वही भाव चला, आँखों में मानो नींद भरी हुई है। कल के काँपने से उनके शरीर के मांस के भीतर एक भयंकर आलोड़न हुआ था। ऐसा प्राय: नहीं होता, इस कारण आज शरीर का यह भाव हो गया है।

दोपहर को मैं माँ के पास बैठी हुई थी। कमरे में और कोई नहीं था। बात-बात में कल रात्रि में शरीर में जो क्रियायें हुई थी उनके सम्बन्ध में बात चली। माँ ने कहा-''देखो, ये जो क्रियादि हो जाती हैं, तुम लोगों ने देखा है कभी-कभी ऐसा होता है कि रोग चला जाता है। कैसे, जानती हो? जैसे कहीं जाने के समय मनुष्य धोती-कुर्ता ठीक से पहिन लेता है। परन्तु यह तो तुम्हारी तरह स्वयं अपनी इच्छा से कुछ नहीं लेता, न करता है-यह हो जाता है। किन्तु वह भाव-अर्थात् जिस गति से चलेगा इन क्रियाओं के द्वारा उस गति से चलने के लिये मानो तैयार हो गया। जैसे वायु में धोती इधर-उधर जाती है, हम बैठे देखते हैं। यह शरीर भी तो उसी धोती की तरह है। ठीक उसी तरह दिखाई पड़ता है। क्रियादि होकर जिस गति से चलेगा उसी के लिये मानो तैयार हो गया।''

तीसरे पहर अनेक लोग माँ के सामने आ बैठे। आज भी सन्ध्या से पूर्व माँ छत पर जा बैठी। वहाँ अभय के साथ सब लोगों ने कीर्तन किया। और भी कुछ लोग आ गये। उनके साथ बातचीत में और कीर्तन में बहुत आनन्द से समय बीत गया।

आज नवमी है। इस वर्ष दो दिन अष्टमी थी अत: आज नवमी है। आज भी आनन्द उत्सव चल रहा है।

आश्विन 16, सोमवार- सन्ध्या से पहले आज माँ सबको लेकर ब्रह्मकुण्ड चली। ब्रह्मकुण्ड में सब लोग एक घण्टा रहे। भक्तों में किसी-किसी ने सुयोग पाकर गंगा-जल और जवा पुष्प से माँ के चरणकमलों की पूजा की। सन्ध्या के बाद सब लोग सेवा सदन लौट आये। कीर्तन आदि भी हुआ।

आश्विन 17, मंगलवार- आज विजया दशमी है। आज मैं योगेश दादा को साथ में लेकर 'खेवड़ा' जा रही हूँ। माँ के जन्म-स्थान का कुछ किया जा सकता है या नहीं, यह देखना है। आश्रम की लड़कियों को आज देहरादून छोड़कर हम 'खेवड़ा' जायेंगे ऐसा निश्चय हुआ। सोलन से मौसीजी और श्रीयुत् निशि बाबू भी माँ के आदेश से यहाँ आये हैं। वे भी लड़कियों के साथ देहरादून आश्रम में ही रहेंगे। माँ फिलहाल यहीं रहेंगी।

मसूरी में जो माँ की माँ बनी थी और उनकी माँ (श्रीयुत् आशुतोष वन्द्योपाध्याय महाशय की पत्नी अर्थात् माँ की नानी बनी थी) बाल-बच्चों

को लेकर यहाँ आ गये हैं। माँ, 'नानीजी'-'नानीजी' कहकर खूब आनन्द मनाने लगी। यह नानीजी माँ को 'गोपाल' कहकर स्नेह जताने लगी। इन्होंने माँ को मालाओं से खूब सजाया। फिर विजयादशमी होने के कारण सिद्धि (सूखी भाँग) पैरों में तथा मिठाई मुँह में दी। कृष्ण सबको नचा रहे हैं इस भाव का एक गान शुरू होते ही माँ ने कहा-"नानी तुम भी नाचो तो।" वह वृद्धा भी आनन्द से नाचने लगी। माँ उनके पास जा खड़ी हुई और बोली-मैं बायीं ओर खड़ी हो गयी। उन्होंने नानीजी को फूलों की माला और मुकुट से कृष्ण बनाया। वह भी माँ को राधिका मानकर प्रेम जताने लगी। ऐसी लीला देखकर सबको अपार आनन्द हुआ। मैंने कहा-"माँ, आज तुम बायीं ओर जाकर राधिका कैसे बनी? माँ ने कहा-"क्यों, नहीं जानती? वह मुझे कृष्ण गोपाल रूप में सजा रही थी इसी कारण उसी भाव में गोपाल बनी। हर काम में तन्मय हो जाना चाहिये।"

इस प्रकार आनन्द मनाकर सब लोग कीर्तन करने बैठे। दिन के 12 बजे तक कीर्तन चला। मैं माँ के पास बैठी हूँ। दो-चार बातें होने लगी। श्रीयुत् नीरजनाथ मुखोपाध्याय महाशय सपरिवार आये हैं। श्रीयुत् शिवप्रसादसिंह की पत्नी माँ के पास रहेंगी। इसलिये यहीं रह गयी। दूसरे लोग चले गये।

गृहस्थ, ब्रह्मचारी, संन्यासी, स्त्री और पुरुष सबको साथ लेकर माँ जिस तरह सामञ्जस्य के साथ खेल रही हैं वह संसार में दुर्लभ है। यह केवल माँ के लिये ही सम्भव है। इतनी बड़ी शक्ति के सिवाय इस भाव से सबको साथ लेकर खेलना कितनी भयंकर बात है भुक्तभोगी ही इसका साक्ष्य देंगे। अनेक विरोधी मतों के भीतर से माँ का जीवन आरम्भ से ही एक ढंग से चल रहा है। किन्तु सभी खेलों में सबने माँ को प्यार किया और माँ को चाहा। यदि माँ के भीतर कहीं थोड़ी-सी भी अपूर्णता रही होती तो इस भाव का खेल नहीं चल सकता था। उस दिन और भी एक भाव की बात माँ ने कही-"देखो, कभी-कभी देखा जाता है कि किसी का केवल इस शरीर पर तीव्र आकर्षण है। तब वहाँ शरीर का भाव कुछ ऐसा हो जाता है कि यह शरीर उनकी पकड़ में नहीं आता। मानो पिछड़ जाता है। यह भी तो एक भोग है। इसीलिये शायद वैसा हो जाता है उसके लिये वही आवश्यक है।" मैं हँसकर बोली-"और जिनको अपने शरीर के प्रति कम आकर्षण होता है, उनकी पकड़ में सहज में ही आ जाती हो।" माँ ने हँसकर कहाँ-"हाँ, सचमुच में

वैसा ही हो जाता है। शायद वे इस शरीर पर विशेष ध्यान दे रहे हैं किन्तु उस एक लक्ष्य में स्थिर भाव से हैं उनके पास यह शरीर अपने आप पहुँच जाता है। ऐसा हो जाता है।'' इतना कहकर माँ मधुर हँसी हँसने लगी।

कलकल नाद से गंगा माता इस मकान के नीचे से निरन्तर बहती चली जा रही हैं। एक स्वर शब्द से, थोड़ा स्थिर होकर बैठते ही मन शान्त हो जाता है। उस पर महाशक्ति माँ पास ही बैठी हुई हैं। भक्तों के हृदय में आनन्द उमड़ने लगता है।

माँ के हाथ की दो-तीन अंगुलियों के नाखून खराब थे। इस घटना का भी कारण था-बचपन में अपने शरीर के प्रति उपेक्षा करके सेवा का भाव। मेरा तो प्रथम दर्शन से ही इन नाखूनों की खराबी से बहुत उपकार हुआ था। माँ के सिर के केशों में उन दिनों कुछ जूं थी। उससे भी मेरा बहुत उपकार हुआ था। मैं जूं बीनने के उपलक्ष्य में तथा नाखून में तेल लगाने के बहाने माँ का अंग स्पर्श बहुत देर तक पाती थी। इस उपलक्ष्य में मैं माँ के पास बहुत समय तक रह सकती थी। कोई कुछ बोल नहीं सकता था। रात को माँ के लेटने के बाद लोगों के चले जाने पर मैं नाखूनों में तेल लगाने के बहाने उस हाथ को लेकर बैठी रह सकती थी। बाद में जब मुझे माँ दूर रखने लगी तो जूं भी गायब हो गयी, हाथ के नाखून भी न जाने कैसे अच्छे हो गये। माँ यह गल्प अभी भी लोगों से कहकर आनन्द लेती हैं।

आज भी दोपहर को माँ के कमरे का दरवाजा बन्द करके मैं उनका हाथ लेकर बैठी हूँ। माँ ने हँसकर कहा-ज्योतिष से एक दिन मैंने कहा था कि खुकुनी के लिये ही इन नाखूनों को इस ढंग से रखा है। वह इन्हें लेकर रहना पसन्द करती है। मैं इस बात को सुनकर आँसू भरी आँखों से माँ की ओर देखती रह गयी। मैं सोच रही थी कि समस्त सांसारिक स्नेह-प्रेम एकत्रित होने पर भी इस प्यार की तुलना नहीं हो सकती। कितनी घटनायें हो गयी हैं। हर बार ही मन में ऐसा भाव आया कि संसार की कोई भी माँ अपनी सन्तान को इस प्रकार के प्यार का एक कण भी नहीं दे सकती। यह स्नेह तो अतुलनीय है। इसी कारण तो संसार के अनेक स्त्री-पुरुष, पापी-पुण्यवान तथा विभिन्न धर्मावलम्बी, विभिन्न जातियों के लोग आज मेरी माँ के चरण-कमलों के नीचे आ रहे हैं। मेरी माँ सब ओर सामञ्जस्य रखकर चलती हैं। सभी समझते हैं कि माँ मुझे ही अधिक प्यार करती हैं और कुछ

लोग रूठकर माँ से नाराज होकर कुछ बात कहते हैं, मालूम होता है कि माँ का मुँह फिर नहीं देखेंगे। फिर देखो इसके बाद 2-4 मिनटों के लिये माँ का एकान्त संग पाने पर उनके भाव में आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाता है। माँ के सिवाय वे कुछ नहीं जानते, ऐसा भाव प्रकट होता है।

श्रीयुत् मन्मथ दादा का पुत्र ज्योति (नरसिंह) भी आया है। उस दिन वह कहता था-''माँ से हम क्रोधवश जो चाहे कह देते हैं, कुछ भी कसर नहीं रखते, इसका कारण यह है कि हम अच्छी तरह जानते हैं कि हम कुछ भी क्यों न कहें माँ क्रोध नहीं करेंगी और बोलेंगी भी नहीं। इस कारण जो चाहे कह जाते हैं।'' इस तरह अपने माँ-बाप को भी कोई ऐसी बात नहीं कह सकता क्योंकि वहाँ से उस भाव की प्रतिध्वनि आयेगी, ऐसा डर है। यहाँ उसका कोई भय नहीं है। किसी से भी माँ के स्नेहपूर्ण सदानन्दमय भाव में कोई परिवर्तन नहीं होता।

अपराह्न के 3 बज गये। हमारे जाने का समय हुआ। जानती हूँ कि कुछ दिनों के बाद ही माँ के पास लौट आऊँगी। तो भी माँ का संग छोड़ना होगा यह सोचकर हृदय रोने लगा। यथासाध्य इस भाव को भीतर दबाकर माँ के चरणों में प्रणाम करते हुए विदा ली। माँ ने भी 'जाना नहीं है, जाकर लौट आना' कहकर सान्त्वना दी। कन्या-आश्रम की लड़कियों की देखरेख के लिये मसूरी से आई हुई इन्दू दीदी, मौसीजी और निशि बाबू देहरादून आश्रम में रहेंगे ऐसा निश्चय हुआ। माँ ने मुझसे कहा-''तू जाकर लड़कियों को आश्रम में पहुँचा आ।'' इस कारण हम 4 बजे की ट्रेन से देहरादून चले।

देहरादून पहुँचकर आश्रम में 2-4 मिनट रहकर माँ का आदेश पालन करते हुए उसी समय फिर देहरादून एक्सप्रेस पकड़ने के लिये मैं स्टेशन लौट आयी। देखा, हमारे लिये स्वामी अखण्डानन्दजी, मन्मथ दादा, यतीश दादा, साधन और सदानन्द स्टेशन पर आये है। हम इसी ट्रेन से खेवड़ा रवाना हो रहे हैं। आशु भी हमारे साथ कलकत्ते चला।

आश्विन 18, बुधवार- ट्रेन में आशु के साथ अनेक बातें हुई। माँ ने ससुराल आकर उसे कुछ महीनों का बच्चा देखा था। माँ के स्नेह यत्न से वह आज इतना बड़ा हुआ है। आशु की कुछ बातें यहाँ लिखती हूँ। आशु कहता है-''मुझे बराबर ही ऐसी धारणा थी कि माँ के पास कितने ही आदमी क्यों न आवें मेरे ऊपर माँ के भाव में कुछ न कुछ विशेषता अवश्य

रहेगी। किन्तु जितना ही माँ को देखता हूँ मेरी वह धारणा मिथ्या है, यह समझ में आ रहा है। माँ के सामने सभी समान हैं। कुछ भी भेद नहीं है-यह दिन-पर-दिन समझ रहा हूँ। मेरी इतने दिनों की धारणा नष्ट हो गई है। चाचाजी के दिवंगत होने के अनन्तर माँ को देखने के लिये जब मैं देहरादून पहुँचा तो माँ का भाव देखकर मैं अवाक् रह गया। मेरी चाचीजी ही यह माँ हैं, ऐसा मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था। चाचाजी के स्वर्ग सिधारने की बात जब माँ कहती थी तो माँ का भाव देखकर मुझे पहले की चाचीजी का व्यवहार, बातचीत सभी मानो स्वप्न जैसा प्रतीत होने लगा। देखा, इनके सामने सभी समान हैं। थोड़ा भी भेद नहीं है। तथापि बहुत स्नेह-यत्न हमने पाया है, उस समय भी कोई त्रुटि नहीं दिखाई पड़ी। फिर इतने अल्प समय के भीतर कैसा परिवर्तन। वह और यह धारणा ही नहीं होती। परन्तु आज भी स्नेह पाता हूँ, पर है वह बिल्कुल अन्य प्रकार का। जितना ही सोचता हूँ आश्चर्यचकित हो जाता हूँ।''

उसने और भी कहा-''मुझे शाहबाग की एक बात याद आती है। जब लोगों ने आना शुरू किया तो एक दिन माँ चौकी पर बैठी थी, मैंने पास जाकर क्रोध के स्वर में कहा-''इतने आदमियों का आना मुझे अच्छा नहीं लगता। बाहर के आदमी आकर दिन-रात हल्ला मचाते हैं, यह मुझे एकदम अच्छा नहीं लगता।'' माँ ने मेरी ओर न देखकर ही उठकर धीरे-धीरे जाते हुए कहा-''अभी क्या है? और भी कितने लोग आयेंगे?'' यह बातें अभी मेरे कानों में गूँज रही हैं।''

इसे सुनकर मैंने कहा-''फिर भी देखो, माँ की आँखों पर सब कुछ खेलता है तो भी उस अवस्था में बड़ी ही निपुणता के साथ वधूपन का अभिनय करती जाती थी। तुम्हारी माँ या तुम लोग इनके व्यवहार में कभी कोई त्रुटि नहीं पा सके थे। पूर्ण हुए बिना क्या कोई इस ढंग से व्यवहार कर सकता है? स्वेच्छा से माँ सबके साथ खेल रही हैं।'' आशु ने भी मेरी बात का समर्थन किया। और भी कहा ''कितनी बार देखा है, रसोई करने गई, शरीर एकदम टेढ़ा-मेढ़ा होने लगा किसी तरह जाकर लेट गई। उसके बाद मुझसे बीच-बीच में कहा-''चूल्हे पर से भात उतार ले''-मैं खाली आलू नमक पड़ा भात खाकर स्कूल चला गया। इस कारण मुझसे प्रायः अपनी माँ के पास जाने के लिए कहती थी। परन्तु मैं चाचीजी को छोड़कर जाने को

राजी नहीं हुआ। मैंने कहा–"मैं पानी में भिगोया हुआ बासी भात खाकर स्कूल चला जाऊँगा फिर भी यहाँ से नहीं जाऊँगा।" एक–दो दिन तो इसी तरह चला, तीसरे दिन देखा कि चाचीजी ने किसी तरह उठकर मेरे लिये कुछ पका रखा है।

माँ की निपुणता के साथ काम करने की और भी कुछ कहानियाँ सुनी। जब भी जो कुछ सुना वही आश्चर्यजनक और अपूर्व है। परन्तु इसी आशु ने दूसरों की तरह माँ के किसी व्यवहार को देखकर अपनी बुद्धि के द्वारा उसका विचार कर क्रोध, दुःख और अभिमान से कितनी ही बातें कह डाली थी, उस समय ऐसा मालूम होता था कि वह फिर कभी माँ का मुँह नहीं देखेगा। उसके थोड़ी देर बाद माँ का एकान्त संग पाकर उसके भीतर धीरे–धीरे विचार आया। आज भी वह कहता था–"माँ को समझने की शक्ति किसी में भी नहीं है।" यह एक आश्चर्यजनक चीज है। माँ के कुटुम्बियों में कोई–कोई माँ को अपना स्वजन समझकर जब दो–चार बातें सुना देते हैं तब मैं अपने मन में हँसकर सोचती हूँ कि किसी ने भी माँ को नहीं पहचाना।

आश्विन 19, गुरुवार– तय हुआ कि माँ अक्टूबर 11 को हरिद्वार से चलकर इलाहाबाद जायेंगी। वहाँ दो दिन रहकर अक्टूबर 15 को कलकत्ते रवाना होंगी और अक्टूबर 16 को कलकत्ते पहुँचेंगी।

जन्म–स्थान खेवड़े की ओर

हम लोग आज कलकत्ते पहुँचे। श्रीयुता संज्ञा देवी खबर पाकर स्टेशन आई थी। माँ के भक्त प्रेमगोपाल भी (मौलाना साहब) हमारे साथ चले। संज्ञा दीदी के यत्न और सेवा से पथ श्रम दूर करके आधे घण्टे के भीतर ही हावड़ा से सियालदह जाकर चट्टग्राम मेल पकड़ी। सन्ध्या को चाँदपुर और रात्रि लगभग ढाई बजे हम लोग कसबा पहुँचे। इसी स्थान पर माँ की दादी पौत्र की प्रार्थना करने आकर पौत्री की प्रार्थना कर गयी थी। स्टेशन के पास ही वह प्रसिद्ध काली–मंदिर है। इस घटना की स्मृति से हृदय भर आया। दूर से काली माता को प्रणाम करके हम लोग नाव की तलाश में चले। मील भर जाकर नाव लेनी होगी। ग्रामीण पथ, चारों ओर चाँदनी खिली हुई थी। रात प्रायः समाप्त हो चली थी। स्थान सुनसान था। एक कुली के सिर पर सामान रखकर उसी के बताये रास्ते से मैं योगेश दादा और प्रेमगोपाल के

साथ धीरे-धीरे चलने लगी। घाट के पास आकर देखा अनेक नावें खड़ी हैं। एक नाव किराये पर लेकर नहर के रास्ते से हम लोग खेवड़ा ग्राम की ओर चलने लगे। रात के तीन बज गये थे। माँ के विरह से हृदय बार-बार विकल हो पड़ता था। फिर माँ के काम से जा रही हूँ, इस भावना से मन में कुछ आनन्द भी हो रहा था।

माँ का जन्म-स्थान इस समय मुसलमानों के अधिकार में है। इस कारण प्रेमगोपाल उन्हें माँ की बात ठीक से बतलाने तथा उस स्थान की कुछ विशेष स्मृति रक्षा करने के लिये जा रहे हैं। प्रेमगोपाल को माँ के प्रति यथेष्ट श्रद्धा-भक्ति है। माँ के काम में लग रहे हैं इसी से उन्हें महान् आनन्द है। समय-समय पर उन्होंने माँ को स्वप्न में देखने की अनेक कथाएँ बताई हैं। प्रेमगोपाल मक्का-मदीना हो आये हैं। उनका भाव बहुत ही उत्तम है। सत्य वस्तु को पकड़ना चाहते हैं। इसीलिये माँ के प्रति आकृष्ट हुए हैं। तारापीठ और कलकत्ते के मुसलमानों ने हिन्दुओं की माताजी को मानने के कारण इनके विरुद्ध अभियोग किया था। किन्तु उन्होंने उनका धर्म के असली तत्व की बात भाषण के द्वारा बताकर सबको चुप करा दिया था। वह माँ को कलकत्ते की मस्जिद में भी ले गये थे। हृदय के सत्यभाव को लेकर यह बात करते हैं इस कारण इनकी बातें बहुत ही मर्मस्पर्शी होती हैं।

हम लोग तीन घण्टे के भीतर ही ग्राम में पहुँचे। उस समय भी कुछ अन्धकार था। माँ का जन्म-स्थान और इसके अणु-परमाणु हमारे लिये पवित्र हैं। इस ग्राम में मैं दो बार आई थी किन्तु बहुत ही अल्प समय तक थी। इस कारण यहाँ के हाट-बाट अच्छी तरह नहीं पहिचानती हूँ। घाट पर एक गृहस्थ परिवार के लोग अपने आत्मीय जनों को एक दूसरी नाव में चढ़ा देने के लिये आये थे। एक आदमी के हाथ में लालटेन थी। नहर में एक मुसलमान मछली पकड़ रहा था। हम लोग कहाँ से आये हैं पूछने पर मैंने उत्तर दिया-"आनन्दमयी माँ के पास से हम लोग आ रहे हैं।" सुनते ही सब लोग हमें आदर के साथ नाव से उतार कर ले चले। देखा कि माँ ने सभी जगह ठीक-ठीक प्रबन्ध कर रखा है। लालटेन लेकर इस परिवार के लोग घाट पर हाजिर न होते तो अँधेरे में हमें कुछ असुविधा होती। किन्तु उसके लिये कष्ट भी नहीं करना पड़ा। हम लोग स्व. लक्ष्मीचरण भट्टाचार्य महाशय के घर पहुँचे। भट्टाचार्य महाशय के दोनों लड़के जीवित हैं। एक ही मकान में

हैं, नाम श्रीयुत् अखिलचन्द्र भट्टाचार्य, दूसरे चट्टग्राम में नौकरी करते हैं, नाम श्रीयुत् ललितमोहन भट्टाचार्य है। यही ललित बाबू काक्स बाजार के दीनबन्धु बाबू के मकान में थे। उसी समय उनके साथ अच्छी तरह परिचय हुआ था। माँ ने इन्हें बचपन में देखा था।

इसी भट्टाचार्य परिवार के लोग माँ को बड़े आदर से षष्ठी के दिन ले जाते और दुर्गापूजा के तीन दिन माँ उसी मकान में रहती। नानाजी के मामा का घर इसी ग्राम में है किन्तु वह मकान इस ग्राम के एक ओर था।

आश्विन 20, शुक्रवार– हमारे आते ही लोग बहुत आनन्द प्रकट करने लगे। कुछ लोगों ने मुझे पहिचाना। थोड़ा उजाला होते ही हम माँ के जन्म-स्थान को प्रणाम करने के लिये चले। इस साल ग्राम के भीतर आसपास बहुत जल है। इस कारण हमें और कुछ दूर तक नाव में जाना पड़ा। प्रेमगोपाल और योगेश दादा ने इस स्थान को पहले नहीं देखा था। सबने मिलकर उस स्थान पर माथा टेककर प्रणाम किया। अखिल बाबू और उनके चचेरे भाई वामाचरण बाबू आदि कुछ लोग हमारे साथ आये थे। थोड़ी देर बाद ही हम लोग लौट आये। बात तय हुई कि स्व. लक्ष्मीचरण भट्टाचार्य महाशय की पत्नी अपने नाम की थोड़ी जमीन हमें आश्रम बनाने के लिये दे देंगी। उस स्थान को भी माँ गत बार देख गई थी और कहा था कि ''इस तालाब के किनारे मैं प्राय: खेलती थी।'' अत: हम लोगों के निकट यह स्थान भी अमूल्य है। हम लोग आनन्द के साथ उस स्थान पर आश्रम बनाने के लिये राजी हो गये। माताजी के मामा का घर इस समय मुसलमानों के अधिकार में है। इस कारण उसे आश्रम के लिये प्राप्त करने में कुछ बाधाएँ थी। इसलिए हम लोगों ने ग्राम के बीच के इस स्थान को ही चुन लिया। सबने आनन्द से इस काम में सहयोग दिया।

आश्विन 21, शनिवार– आज कार्तिक की कोजागर लक्ष्मी पूर्णिमा है। निश्चय हुआ कि आज रात्रि को आश्रम के लिये निर्दिष्ट स्थान पर ग्राम के सब लोग मिलकर कीर्तन करेंगे। कल रात्रि में भी 'माँ' नाम का कीर्तन हुआ था। प्रेमगोपाल दादा उस कीर्तन में इतने विभोर हो गये थे कि बहुत देर तक सिर झुकाये बैठे रहे। उसके बाद आज सुना कि कल रात भर वह रोते रहे। आज उन्होंने कहा-''मेरा हृदय आज आनन्द विभोर हो रहा है।'' इनका घर दिल्ली में है, जीवन में एक बार चटगाँव गये थे। तब उन्हें स्टीमर पर सवार

होना पड़ा था। यहाँ माँ का जन्म स्थान है। यहाँ के जल और कीचड़ में अनेक असुविधाओं के होते हुए भी इन्हें महान् आनन्द है।

मैं आगामी कल कलकत्ते रवाना होऊँगी ऐसा निश्चय हुआ। आश्रम के लिये मकान बनाया जायेगा। इस कारण योगेश दादा यहीं रहेंगे।

अनेक लोगों के मुख से माँ के बचपन की बातें सुनी। मध्यवयस्का स्त्रियाँ कहती थी कि बचपन में **निर्मला** हम लोगों के साथ बहुत खेलती थी। वृद्ध लोग आँसू भरे नेत्रों से कहते थे–''हमें भैया, आदि कहकर पुकारती थी। हम लोगों ने उसे गोदी में बहुत खिलाया है। उसका चेहरा बहुत सुन्दर था। दूसरे लड़के-लड़कियों की तरह वह चंचल नहीं थी, बहुत शान्त थी। इसी से ग्राम के सभी लोग उसे प्यार करते थे। परन्तु हम पहिचान नहीं सके।'' एक ने मुझसे कहा–''माँ, ऐसा लगता है कि हम लोगों ने रात जगकर पहरा दिया और अब भोग कर रहे हो तुम लोग। ऐसी माँ को हम लोगों ने नहीं पहिचाना। यदि और एक बार उन्हें ला सको तो हम उनका चरण दर्शन करते।'' वृद्धों और वृद्धाओं के निष्कपट भाव की अनेक बातें सुनी। स्व. लक्ष्मीचरण भट्टाचार्य महाशय की पत्नी सीधे-सादे स्वभाव की महिला थी। उन्होंने कहा–''विपिन भट्टाचार्य की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। माँ जब भी हमारे घर आती तो मैं उन्हें अपने यहाँ रख लेती थी। घर में कोई अच्छी चीज बनती तो उसे बुलाकर मैं खिला देती थी।'' मैंने कहा–''जानकर हो या अनजान में आग से खेलने में कुछ आँच अवश्य लगती है। माँ को आप लोगों ने आदर यत्न किया है इसलिये आपके स्थान पर ही माँ के आश्रम का प्रबन्ध हुआ है।'' ग्राम के लोग इस कारण भट्टाचार्य महाशय की पत्नी की यथेष्ट प्रशंसा करने लगे।

खेवड़े में आश्रम स्थापन का श्रीगणेश

ग्राम के कुछ लोग मुझसे बहुत आग्रह के साथ माँ के चित्र माँगकर ले गये और ले जाकर उन्होंने पूजा के आसन पर बैठाया। आज घर-घर लक्ष्मी देवी की पूजा हो रही है। पूजा के बाद सब लोगों ने मिलकर आश्रम के लिये निर्दिष्ट स्थान पर जाकर कीर्तन किया। हम लोगों ने बताशा, संदेश आदि की लूट करी। माँ का चित्र मेज पर बिठाकर सजा दिया गया। बहुत ही आनन्द के साथ मध्य रात्रि पर्यन्त कीर्तन चला।

आश्विन 22, रविवार– माँ के पास से आयी हूँ जानकर बहुत से लोग हमें देखने आ रहे हैं। माँ की कथा सुन रहे हैं।

सन्ध्या 6 बजे स्व. लक्ष्मीचरण भट्टाचार्य महाशय के भतीजे श्रीयुत् वामाचरण भट्टाचार्य महाशय को लेकर मैं खेवड़ा से रवाना हुई। माँ का जन्मस्थान मुसलमानों से खरीदने का इन्तजाम करने के लिये मौलाना साहब (प्रेमगोपालजी) वहीं रह गये।

आश्विन 23, सोमवार– आज रात को हम लोग कलकत्ते आ पहुँचे। आगामी कल ही इलाहाबाद चल देने का निश्चय हुआ।

श्रीयुत् यतीशचन्द्र गुहा महाशय की चिट्ठी से मालूम हुआ कि माँ एक दिन कनखल जाकर दक्षालय, श्री **रामकृष्ण मिशन** और **स्वामी मंगलानन्द गिरि** महाराज के आश्रम में हो आयी हैं। माँ इस समय अच्छी हैं।

यहाँ आकर देखती हूँ कि माँ के आगमन का प्रबन्ध हो रहा है। 50-60 आदमी उनके साथ आ रहे हैं। भ्रमर और दूसरे लोग मिलकर उनके लिये सुप्रबन्ध कर रहे हैं। भ्रमर के स्कूल अर्थात् रसा रोड स्थित देशबन्धु बालिका विद्यालय में ही माँ तथा उनके भक्तों के रहने की व्यवस्था हो रही है।

मुझे संज्ञा दीदी विशेष आदर के साथ अपने घर ले गयी। उन्होंने बहुत ही सेवा-यत्न किया। मैं इस सबके भीतर माँ की असीम करुणा ही देखने की चेष्टा करती थी।

आश्विन 24, मंगलवार– आज अनेक स्थानों पर घूमते-घूमते दिन के 2 बज गये। उसके बाद ननी के घर जाकर भिक्षा ली। आज सन्ध्या के बाद 8 बजे रात को दिल्ली मेल से इलाहाबाद जाऊँगी। ननी से एक गल्प सुनी। वह भी एक अद्भुत घटना है।

सन्ध्या साढ़े आठ बजे की गाड़ी से मैं इलाहाबाद के लिये चल पड़ी।

आश्विन 25, बुधवार– आज सुबह 10 बजे इलाहाबाद पहुँचकर देखा कि श्रीयुत् शिवप्रसाद सिन्हा बहुत भारी इन्तजाम में लगे हैं। माँ आयेंगी, इसी चिन्ता में बेचारे पागल की तरह हो रहे हैं। उनके मकान के अहाते में बहुत बड़ा शामियाना खड़ा किया गया है। किस प्रकार माँ की सेवा करेंगे, इसके लिये वह बहुत बेचैन हैं। जितेन दादा के घर दोपहर की भिक्षा लेकर मैं शिवप्रसादजी के घर गयी। माँ आज तीसरे पहर आ पहुँचेंगी।

इलाहाबाद में तीन दिन

तीसरे पहर 5 बजे की गाड़ी से माँ आ पहुँची। जितेन दादा और उनकी पत्नी को साथ लेकर मैं प्रयाग स्टेशन जाकर माँ के दर्शनों की प्रतीक्षा करने लगी। इलाहाबाद गाड़ी पहुँचते ही स्त्रियों ने माँ के गले में मालाओं का बोझ चढ़ा दिया। "**माँ आनन्दमयी की जय**" ध्वनि करते हुए लोग उनके ऊपर फूल बिखेरने लगे। हाईकोर्ट के जज तथा वकीलों में से कुछ लोग स्टेशन पर आये थे। माँ को शिवप्रसादजी के मकान पर लाया गया। शामियाने के नीचे अनेक व्यक्ति उपस्थित थे। किन्तु डॉक्टर पन्त ने माँ के विश्राम के लिये सबको जल्दी-जल्दी विदा कर दिया।

आश्विन 26, गुरुवार– आज सुबह 8 बजे माँ को उनके खेमे से लाकर एक दूसरे खेमे में ले जाया गया। शिवप्रसादजी ने तीन खेमे लगाये हैं। एक में माँ रहेंगी, दूसरे में माँ सबको लेकर बैठेंगी और तीसरे में स्वामी अखण्डानन्दजी, डॉक्टर पन्त आदि माँ के भक्त रहेंगे। अपना एक मकान भी उन्होंने भक्तों के लिये खाली कर दिया है। माँ को लेकर सब लोग बैठ गये। शिवप्रसादजी माँ को लेकर 9 बजे घूमने के लिये निकल गये। घण्टे भर के बाद ही वे लौट आये। तीसरे पहर वह माँ को जज वाजपेयीजी के यहाँ ले गये। वहाँ से लौट आने पर दिखाई पड़ा कि वहाँ बहुत लोग जमा हो गये हैं। एक कीर्तन का दल भी आया। कीर्तन शुरू हुआ। यहाँ के विख्यात वकील राईट आनरेबल सर तेजबहादुर सप्रू, श्रीयुत् पन्नालाल, आई.सी.एस., कमिश्नर सर सी.वाई. चिन्तामणि, जस्टिस वर्मा, जस्टिस मुल्ला खाँ, बहादुर सैयद आबू मुहम्मद खाँ, डॉक्टर एन.पी. अस्थाना, आनरेबल पी.एन. सप्रू, डॉक्टर एल.डी. जोशी, ए.एम. ख्वाजा, डॉ. ताराचन्द, श्रीयुत् एम. लाहिड़ी (अवसर प्राप्त पोस्टमास्टर जनरल, बंगाल और आसाम) आदि प्रधान व्यक्ति माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। खबर बिना दिये ही आज लोगों की इतनी भीड़ हो गई।

कमिश्नर श्रीयुत् पन्नालालजी माँ के साथ बातचीत करने लगे। माँ का शरीर बहुत दुर्बल है, इस कारण अधिक बात न हो सकी तो भी दो-चार अच्छी-अच्छी बातें हुई। वह बहुत ही आनन्दित हुए। उन्होंने पूछा-"मन को स्थिर करने का क्या उपाय है? जो लोग कुछ नहीं जानते, गुरु भी नहीं है, वे कैसे साधन करेंगे? वे कैसे समझेंगे कि उन्हें कौन-सा साधन आवश्यक

है?'' माँ ने उत्तर दिया–''देखो, जैसे छोटे–छोटे बच्चों को उनकी इच्छा न रहते हुए भी तुम लोग बड़े यत्न से पढ़ना–लिखना सिखाते हो, क्रमशः वे विद्वान हो जाते हैं उसी प्रकार मन रूप बच्चे को भी तुम सिखाने की चेष्टा करो। जिस प्रकार मन का चंचल स्वभाव है उसी प्रकार स्थिरता भी मन का ही स्वभाव है। वह चाहता है यथार्थ शान्ति। इसीलिये वह इस सांसारिक विषय में भी शान्ति नहीं पाता। दौड़-धूप करता रहता है।''

''और गुरु न रहने पर भी साधन–भजन का प्रथम उपाय यह है कि जो अच्छा लगे वही करते चलो। जैसे छोटे–छोटे बच्चों को तुम शुरू में सब विषयों की थोड़ी–थोड़ी शिक्षा देते हो, उसके बाद समझ में आता है कि किसकी किस ओर रुचि है वह उसी विषय को चुन लेता है और दूसरे विषयों को छोड़ देता है तथा उसी रास्ते से चलकर उन्नत हो जाता है। उसी प्रकार तुम लोग अनेक विषय पढ़ना आरम्भ करते हो, साथ–साथ सत्संग, कीर्तन, जप आदि भी करते हो, उसके बाद किस ओर तुम्हारी रुचि है, किस मार्ग पर चलना तुम्हारे लिये सुगम है वह समझ सकोगे। तब उसी मार्ग पर चलते रहोगे। उसके बाद देखोगे कि जो कुछ आवश्यक है वह सब मिलता जाता है।'' रात को 9 बजे सबको विदा कर माँ के विश्राम की व्यवस्था की गई। सभी अनिच्छा रहते हुए भी इस नियम को मान लेते हैं, क्योंकि माँ के कमरे का दरवाजा तो कभी बन्द ही नहीं होता। दिन–रात सभी लोग माँ को लेकर बैठे रहते हैं। कोई भी क्लान्त नहीं होता। आज बहुत ही थोड़े समय के लिये लोगों ने माँ को पाया है। डॉक्टर पन्त की सहायता से ही ऐसी व्यवस्था हो सकी है। नहीं तो इस नियम से माँ को रखना कठिन हो जाता। लोग जिस ढंग से माँ के पास बैठे रहते हैं और जिस प्रकार तीव्र आग्रह से माँ के पास आते हैं, उन्हें हटा देने की शक्ति नहीं थी। डॉक्टर साहब केवल माँ के शरीर पर दृष्टि रखकर ही यह काम करते जा रहे हैं। इसलिये हमारे ऊपर गालियाँ भी बरसती रहती हैं। माँ के सम्बन्ध में कोई–कोई कटाक्षपात भी करते थे। किन्तु कोई उपाय नहीं है। इस कारण सब सिर झुकाकर सह लेना पड़ता है। डॉक्टर पन्त ने कल माँ से कहा था–''माँ, अनेक लोगों को आपके दर्शन से वंचित करने के कारण मैं जो पाप बटोर रहा हूँ उससे आप मेरी रक्षा कीजियेगा।'' माँ ने कहा–''तुमने तो कुछ अनुचित उद्देश्य से नहीं किया है। तुम्हारा अपराध कुछ भी नहीं है।''

आश्विन 27, शुक्रवार– आज भी कमिश्नर श्रीयुत् पन्नालालजी अपनी लड़की और दामाद आदि सबको लेकर आये हैं। कल रात को माँ का सोने का भाव ही नहीं था। इस कारण आज माँ को कुछ अधिक समय विश्राम करने देकर दिन के 9 बजे बाहर लाया गया। कुछ समय बैठने के बाद श्रीयुत् शैलनाथ मुखोपाध्याय वकील के घर माँ को ले जाया गया। वहाँ स्त्रियों ने उनके स्वागत के लिये बहुत बड़ा आयोजन किया था। माँ के पास सब लोग मिलकर गाने लगे–

शंखे शंखे मंगल गाओ जननी एशेछे दारे।

(शंखों में मंगल गान गाओ, जननी द्वार पर आ गई हैं।)

वहाँ माँ आधे घण्टे तक रही। बाद में श्रीयुत् हरिदास मुखोपाध्याय महाशय अपने रसूलाबाद के मकान पर माँ को ले गये। वहाँ भी उनके लड़के, लड़की, पत्नी, माँ आदि सभी खड़े थे। उन्होंने फल, फूल, माला आदि से माँ की पूजा की। उनकी इच्छा पूर्ण करके माँ फिर खेमे में लौट आयी। वहाँ बहुत से लोग प्रतीक्षा में बैठे थे।

माँ के साथ लोग वार्तालाप करने लगे। बात-बात में माँ ने कहा–"तुम लोग जो कर्म करते हो यह मानो रिटर्न टिकट है–फिर लौट आने का प्रबन्ध कर जाते हो।" यह कहकर माँ हँसने लगी। एक सज्जन ने पूछा–"माँ, शास्त्रों में कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग आदि की बात कही जाती है। क्या ये भिन्न-भिन्न पथ हैं? अथवा एक ही पथ है।" माँ ने उत्तर दिया–"देखो, हम एक मन्दिर में जायेंगे, मन्दिर के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान रहे बिना हम मन्दिर में क्यों जाना चाहेंगे? फिर मन्दिर में देवता हैं उन पर मेरी भक्ति न होती तो मैं नहीं जाती। और भी देखो मैं जा रही हूँ–यह कर्म है। अतः ज्ञान, भक्ति, कर्म एक ही साथ रहते हैं। वे भिन्न-भिन्न नहीं हैं।" और भी अनेक बातें हुई। परन्तु खेद की बात है कि मुझे सुनने का मौका नहीं मिला। आगामी कल ही माँ के यहाँ से चल देने की बात है। आज तीसरे पहर माँ को बेसेन्ट हॉल में ले जाने की व्यवस्था हुई है।

कमिश्नर श्रीयुत् पन्नालालजी ने सपरिवार आकर माँ के साथ एकान्त में कुछ बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। कुछ लोग एकान्त में भेंट करना चाहते हैं। किन्तु समय कम है, इस कारण वैसा अवसर नहीं दिया जा

सकता। श्रीयुत् तेजबहादुर सप्रू के बड़े पुत्र माँ के साथ 5 मिनट एकान्त में बात करके बाहर आकर खूब आनन्द प्रकट करने लगे।

तीसरे पहर माँ को बेसेन्ट हॉल में कुछ लोग लिवा ले गये। वहाँ अनेक स्त्री-पुरुष एकत्रित थे। दरवाजे पर पहुँचते ही माँ को फूल मालाओं से भर दिया। सब लोगों ने उठकर माँ का स्वागत किया। दरवाजे पर माँ के पधारते ही कीर्तन आरम्भ हुआ। माँ को ले जाकर कुर्सी पर बिठाया गया। माँ सबके साथ नीचे ही बैठ गयी। बाद में सब लोग नहीं देख सकेंगे, इस कारण विशेष अनुरोध करके माँ को पुनः कुर्सी पर बिठा दिया गया। शिवप्रसादजी ने माँ के सम्बन्ध में कुछ भाषण दिया। नाम-कीर्तन हुआ, लोगों की अपार भीड़ हुई थी। समय अधिक नहीं था, इस कारण लगभग 1 घण्टे के बाद ही बहुत मुश्किल से माँ बाहर लायी जा सकी।

यहाँ के बालिका कॉलेज की प्रधान शिक्षयित्री माँ को लेने आयी हैं। वह माँ को वहाँ ले गयी। लड़कियों ने नाच, गाना, आरती आदि से माँ की पूजा की। शिक्षयित्रियों ने माँ का कुछ उपदेश सुनना चाहा। माँ ने कहा-''तुम लोग इतना पढ़ती-लिखती हो उस ओर के पढ़ने-लिखने में भी कुछ समय देना। यही मेरी अर्जी है।'' हाथ जोड़कर हँसती हुई जब इन बातों को माँ ने कहा तब सबने माँ का आदेश पालेंगी ऐसा स्वीकार किया।

रात के साढ़े सात बजे हम लोग लौट आये। आकर देखा अनेक स्त्री-पुरुष बैठे हुए हैं। यहाँ भी कुछ देर तक बातचीत होने के बाद 8 बजे से पहिले ही माँ को हम लोग विश्राम के लिये उठा लाये। डॉक्टर पन्त ही इस काम में अग्रणी हैं। लगभग 9 बजे तक कुछ लोगों ने माँ से एकान्त में बातचीत की। उसके बाद माँ के विश्राम के लिये सब लोग विदा लेकर चले गये।

आश्विन 28, शनिवार- आज सुबह 9 बजे से पहले महारतन के घर, बाद में स्वर्गीय ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती महाशय की भांजी श्रीमती प्रतिमा देवी और भतीजे आकर माँ को स्वर्गीय ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती महाशय के मित्र किटली साहब से भेंट कराने के लिये ले गये। वृद्ध ने माँ के गले में फूल की माला पहनाकर प्रणाम किया और माँ को देखकर बहुत आनन्द प्रकट किया। समय कम था इस कारण कुछ मिनट वहाँ रहकर माँ को अन्य दो-एक स्थान पर घुमा-फिराकर हम लोग माँ को डेरे पर लाये। श्रीमती प्रतिमा देवी साथ ही थी। वे ही आजकल किटली साहब की सेवा में नियुक्त हैं।

डेरे पर लौट आने के बाद सब लोग माँ के पास बैठ गये, 12 बजे तक बातचीत हुई।

सन्ध्या को गाड़ी से हम लोग कलकत्ता रवाना हुए। स्टेशन पर माँ को गाड़ी में सवार करा देने के लिये बहुत से लोग आये थे। उनमें छतारी के **नवाब कैप्टन सर अहमद सैयद खाँ,** जस्टिस वर्मा, जस्टिस बयानी, जस्टिस मुल्ला, खाँ बहादुर सैयद आबू मोहम्मद, डॉक्टर पन्नालाल, डॉक्टर एल.डी. जोशी आदि अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति थे।

कलकत्ते में माँ

आश्विन 29, रविवार– आज सुबह हम लोग कलकत्ता आ पहुँचे। स्टेशन पर अनेक भक्त स्त्री–पुरुष फूलों की माला लेकर माँ की प्रतीक्षा कर रहे थे। माँ के गाड़ी से उतरते ही भक्त लोगों ने जय–ध्वनि की और फूल मालाओं से माँ को ढक दिया। हम लोग 100 रसा रोड देशबन्धु बालिका विद्यालय में आये। गाड़ी के दरवाजे पर आते ही कीर्तन, शंख ध्वनि और ऊलू ध्वनि (मंगल ध्वनि) से माँ के आगमन का प्रचार कर दिया गया। हर एक द्वार पर मंगल घट स्थापित थे। माँ के लिये निर्दिष्ट कमरे में भ्रमर ने माँ को ले जाकर बिठाया। यहाँ की महिलाओं ने बहुत ही यत्न से माँ की सेवा का प्रबन्ध कर रखा था। मकान के भीतर भी हर एक दरवाजे के बगल में मंगल–कलश और केले के पौधे रखे हुए हैं। कीर्तन के लिये बहुत ही सुन्दर शामियाना लगाया गया है। सभा में लोगों की बहुत बड़ी भीड़ थी। सन्ध्या समय माँ को वहाँ ले जाकर बैठाया गया। बाहर का फाटक बन्द कर दिया गया। माँ का स्वास्थ्य अच्छा नहीं था, इस कारण भीड़ में उन्हें बहुत देर तक बिठाकर नहीं रखा जा सका। इससे लोग बहुत ही अस्थिर हो गए। कोई–कोई तो उत्तेजित हो उठे।

इलाहाबाद में सुना गया था कि कभी–किसी ने ताना देकर कहा था– "हम लोग माँ को देखने नहीं जायेंगे। माँ तो 9 बजे निकलेंगी। उसके बाद थोड़ी देर दरबार में बैठेंगी, फिर चेले उन्हें उठाकर खेमे में ले जायेंगे। ऐसी माँ के पास हम लोग नहीं जाना चाहते"–इत्यादि–इत्यादि। जो हो, यहाँ भी हम लोग इतनी बातचीत के भीतर भी माँ के विश्राम का प्रबन्ध करने को बाध्य हुए।

आज अधिवास हुआ। सब लोगों ने मिलकर मध्यस्थल में बहुत ही सुन्दर मंच तैयार किया है। उसके चारों ओर घूम-घूमकर लोगों ने कीर्तन किया। शिमला और दिल्ली के भक्तों का कीर्तन बड़ा ही सुन्दर था। उसे देखकर मुझे इच्छा हुई थी कि बंगाल के माँ के भक्त लोग भी यदि मिलकर कीर्तन करें तो बड़ा ही आनन्द होगा। तभी व्यवस्था हुई। दिल्ली और शिमला के बहुत से भक्त आये हुए हैं। ढाका, बहरमपुर, जमशेदुपर आदि सभी स्थानों से भक्त लोग आये हुए हैं। आगामी कल अहोरात्र नाम-कीर्तन होगा।

आश्विन 30, सोमवार- आज अहोरात्र नाम-कीर्तन चल रहा है। लोगों का आनन्द वर्णनातीत है। माँ के सामने सब लोग एकत्रित हुए हैं। माँ के साथ भी कुछ लोग आये हैं। महारतन, जितेन दादा की पत्नी, बाबू शिवप्रसादसिंह की पत्नी, भावज, कन्या, दामाद, भांजे आदि बहुत से लोग इलाहाबाद से आये हैं। सभी लोग आनन्द से कीर्तन में सहयोग दे रहे हैं। बीच-बीच में माँ को सभा में ले जाकर बिठाया जाने लगा। दोपहर को भोग हुआ। माँ को बैठाकर आरती और कीर्तन आदि हुए। विविध प्रकार से आनन्द का प्रवाह चल रहा है। एक बार यदि माँ बाहर निकलती तो उनके पैरों की धूल लेने के लिये इतने आदमी झुक पड़ते थे कि शरीर की रक्षा करना कठिन हो जाता था। बहुत मुश्किल से युवकों का दल माँ के शरीर की रक्षा कर रहा है। यह एक अपूर्व दृश्य था। आज सन्ध्या समय माँ की कुछ भावावस्था हो गई। माँ को कीर्तन से लाकर घुमाने के लिये बाहर लाते ही रास्ते में माँ का शरीर बिल्कुल शिथिल पड़ गया। माँ कीर्तन में कुछ समय सबके साथ घूमी थी। कमरे में लाने पर डॉक्टर पन्त के निर्देश के अनुसार विश्राम के लिये छोटी बच्ची की तरह लेट गयी। किन्तु उसके दूसरे दिन बाहर से भक्तों का कातर आह्वान सुनकर माँ स्थिर नहीं रह सकी। अपने कमरे का दरवाजा खोलकर कभी-कभी बाहर निकल पड़ती थी। दुर्बल शरीर के प्रति खयाल ही न था।

आज रात 11 बजे के बाद माँ बाहर निकल आयी। डॉक्टर 10 बजे कमरे का दरवाजा बन्द करा गये थे। माँ के बाहर निकलते ही भक्तों में आनन्द-कोलाहल मच गया। अब तक वे दरवाजे के बाहर ही खड़े थे। माँ को न पाकर सभी व्याकुल थे। माँ भी महान् आनन्द से सबके साथ कुछ समय तक कीर्तन में घूम-फिरकर रात्रि के लगभग 2 बजे विश्राम करने

आयी। डॉक्टर पन्त सो रहे थे। छत पर उनके पास जाकर माँ ने उन्हें जगाया और कहा–''गुप्त भाव से कुछ करना उचित नहीं है इसलिये तुम्हें जताने आयी हूँ कि मैं बाहर निकल आयी थी।'' डॉक्टर पन्त ने भी प्रणाम कर कहा–''माताजी की जैसी इच्छा।''

कार्तिक 1, मंगलवार– आज भोर में अहारोत्र का कीर्तन समाप्त करने के लिये सब लोग नगर–कीर्तन करने निकल पड़े। कुछ देर के बाद पंडाल में लौट आकर दही का बर्तन फोड़ देने पर वैष्णवों की रीति के अनुसार कीर्तन समाप्त करने के पहिले स्त्रियों ने 'माँ–माँ' कीर्तन शुरू किया। पंडाल के एक ओर सब लोग माला–चन्दन से सजकर कीर्तन में बैठ गये। माँ भी जाकर बीच में बैठ गई। सुबह का नाम–कीर्तन बहुत ही मधुर लग रहा था। आज भी दोपहर को सब स्त्रियों ने मिलकर बहुत सुन्दर ढंग से माँ को भोग दिया। आरती उतारी गयी। माँ के सामने भोग रखकर उनके चारों ओर बैठकर महिलाओं ने कीर्तन किया। भ्रमर ने दुर्गा सप्तशती से देवी–स्तोत्र का पाठ किया। स्त्रियों ने मिलकर माँ के स्तोत्र का पाठ किया। इस तरह लगभग डेढ़ घण्टे तक माँ की अर्चना चली। उसके बाद विश्राम के लिये माँ के कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया गया। सन्ध्या तक स्त्रियों का कीर्तन समाप्त हुआ। माँ के दर्शनों के लिये इतने अधिक लोगों की भीड़ जमा हुई थी कि इतने बड़े स्कूल–भवन तथा पंडाल में लोग अटते नहीं थे। अनेक व्यक्ति प्रतिदिन प्रसाद पाते थे।

आज भी रात को 10 बजे माँ के कमरे का दरवाजा बन्द कराकर डॉक्टर पन्त अपने कमरे में जाकर लेट गये। किन्तु थोड़ी देर बाद ही माँ उठकर बाहर निकल आयी। पंडाल में बहुत ही सुन्दर कीर्तन हो रहा था। लड़के सोच रहे थे कि देखें इस कीर्तन के होते हुए माँ कमरे में कैसे रहती हैं? सचमुच ही छोटी बच्ची की तरह माँ 'कीर्तन सुनूंगी' कहकर हँसती हुई बाहर आकर एकदम पंडाल में जा बैठी। सबको महान् आनन्द हुआ, उनका उद्देश्य पूर्ण हुआ। आज भी माँ रात के लगभग 2 बजे आकर लेटी। शरीर दुर्बल है किन्तु सबके भीतर जो शुद्ध भाव का प्रवाह चल रहा है उसी से माँ का चेहरा उज्ज्वल है। आनन्द का विराम नहीं है। दिन–रात कहाँ निकलते जा रहे हैं किसी को उस पर खयाल नहीं है। कहीं रसोई हो रही है, तो कहीं कीर्तन का आनन्द चल रहा है। फिर माँ के दरवाजे पर दल–

के-दल लोग आकर माँ के दर्शनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसी भाव से आनन्द का प्रवाह चल रहा है।

कार्तिक 2, बुधवार– आज विश्राम के लिये दोपहर के समय माँ को बिड़ला के शिव-मन्दिर में ले जाया गया। साढ़े चार बजे लोग उन्हें लेकर वापस आये। माँ कमरे में लेटी रहती हैं, उसी में लोगों को आनन्द है। किन्तु आज माँ के बाहर चले जाने से सब लोग मानो विद्रोही हो गए। माँ को मोटर से उतार लाना कठिन हो गया। जन-संघ को रोका नहीं जा सकता था। माँ के दर्शनों के लिये, चरण धूलि लेने के लिये लोग उतावले हो रहे थे। इसी ढंग से आनन्द मेला चल रहा था।

माँ के पास सुभाषचन्द्र

कार्तिक 3, गुरुवार– आज माँ को सुबह लगभग नौ-साढ़े नौ बजे दक्षिणेश्वर ले जाया गया। लोगों को खबर नहीं दी गयी थी इसके फलस्वरूप भीड़ कम हुई। गंगा के किनारे श्री श्री माँ जहाँ रहती थी उस मन्दिर में माँ को ले जाया गया। वहीं भक्तों के प्रसाद-भोजन की व्यवस्था हुई। खुली जगह, गंगा के किनारे माँ को लेकर लोगों ने खूब आनन्द मनाया। अपराह्न के लगभग ढाई बजे श्रीयुत् सुभाषचन्द्र बसु और भ्रमर माँ के पास आये। पंचवटी में माँ को ले जाकर बिठा दिया गया। वहाँ सुभाष बाबू भी आकर बैठे। माँ को इन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। श्रीयुत् अमूल्य कुमार दत्त गुप्त ने माँ से पूछा-"माँ, देश के काम में क्या भगवान् नहीं मिलते?" माँ ने उत्तर दिया-"यथार्थ सेवा का भाव जगने पर उस पथ से भी भगवान् मिलते हैं।" इतना कहकर माँ ने सुभाष बाबू से पूछा-"अच्छा बाबा, तुम जो देश का काम कर रहे हो, क्यों कर रहो हो बताओ तो।" उन्होंने धीर भाव से उत्तर दिया-"आनन्द पाता हूँ।" माँ ने फिर पूछा-"यह नित्य आनन्द है या खण्ड आनन्द है?" श्रीयुत् बसुजी ने कहा-"सो तो नहीं बता सकता।" माँ ने हँसकर कहा-"इस काम के साथ-साथ उस काम को भी थोड़ा करना बाबा। परन्तु तुम लोग कह सकते हो कि यह काम तो मैं अपने लिये नहीं कर रहा हूँ, बल्कि सबके उपकार के लिये-किन्तु मैं कहूँगी।" इतना कहकर फिर कहने लगी-"तुम लोग जो कहलाते हो वही मैं कहती हूँ। मैं पढ़ना-लिखना कुछ नहीं जानती-तो ऐसा कहा जाता है कि ये सभी अपने लिये हैं।

सभी उस अखण्ड आनन्द को ही चाहते हैं। क्यों चाहते हैं? क्योंकि उस रस का अनुभव हमारे भीतर है। इस कारण उसे चाहते हैं। तो भी तुम लोग कह सकते हो कि यह सब करने से क्या होगा? किन्तु उत्तर में कहा जाता है कि यदि इस ओर का काम किया जाय, अपने को जाना जाय तो उससे जगत् का भी यथेष्ट उपकार किया जा सकता है-जैसे बी.ए., एम.ए. पास करके अनेक प्रोफेसर मूर्खों को विद्वान बना देते हैं।''

माँ हँसकर फिर बोली-''बाबा, तुम तो अनेक स्थानों पर भाषण देते हो। यहाँ भी कुछ बताओ न, हम लोग सुनें।'' श्रीयुत् सुभाष बाबू ने कहा-''मैं यहाँ सुनने के लिये आया हूँ। सुनाने के लिये नहीं।'' माँ तुरन्त हँसकर बोली-''तो यह लड़की जो कहेगी उसे सुनोगे बाबा?'' उन्होंने कहा-''चेष्टा करूँगा।'' .माँ ने कहा-''केवल बाहर की ओर ध्यान मत दो। जरा भीतर की ओर भी दृष्टि रखो। तुम्हारे भीतर तो शक्ति है।'' उन्होंने कहा-''वह पथ क्या है?'' किन्तु अनेक व्यक्ति उपस्थित थे, इस कारण माँ के मुख से इस बात का स्पष्ट उत्तर नहीं निकला। प्राय: देखा गया है कि केवल जिसकी बात है उसी के सामने स्पष्ट निकलता है। सबके सामने सब बातें नहीं होती। बातचीत और आगे न बढ़ी। सुभाष बाबू माँ को प्रणाम करके चले गये। उसके बाद माँ गंगा में उतरकर स्नान करने लगी और बोली-''गंगा के किनारे आने पर स्नान करना होता है।'' तब अन्य लोग भी स्नान करने के लिये गंगा में उतर पड़े। डॉक्टर पन्त से भी माँ ने स्नान करने को कहा। उसके बाद माँ को लेकर सब लोग नाट-मन्दिर में आ बैठे। श्रीयुत् यतीशचन्द्र गुहा महाशय की कन्या यूथिका ने माँ को फूलों से सजा दिया। स्थान, काल, पात्र मिलकर बहुत ही मधुर लग रहा था। एक भद्र पुरुष मातृ विषयक गाना गाने लगे, सब लोग मुग्ध थे। माँ की कैसी अपूर्व मूर्ति थी। कोई दृष्टि नहीं फेर सकता था। रायबहादुर श्रीयुत् सुरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय ने उन सब लीलाओं को फिल्म में खींच लिया। शाम को लगभग 5 बजे हम लोग दक्षिणेश्वर से रवाना हुए।

माँ की बातचीत और संगीत आज रेकार्ड करने का प्रबन्ध किया गया था। स्कूल लौटते समय रास्ते में वह काम करके हम लोग लौट आये। माँ का तो भरोसा नहीं है-ऐसा भी हो सकता है कि रेकार्ड आरम्भ हो गया और माँ चुप ही रही, इस कारण शची दादा और मैंने माँ से अनेक प्रार्थना

श्री श्री माँ भाव अट्टाहास अवस्था में।

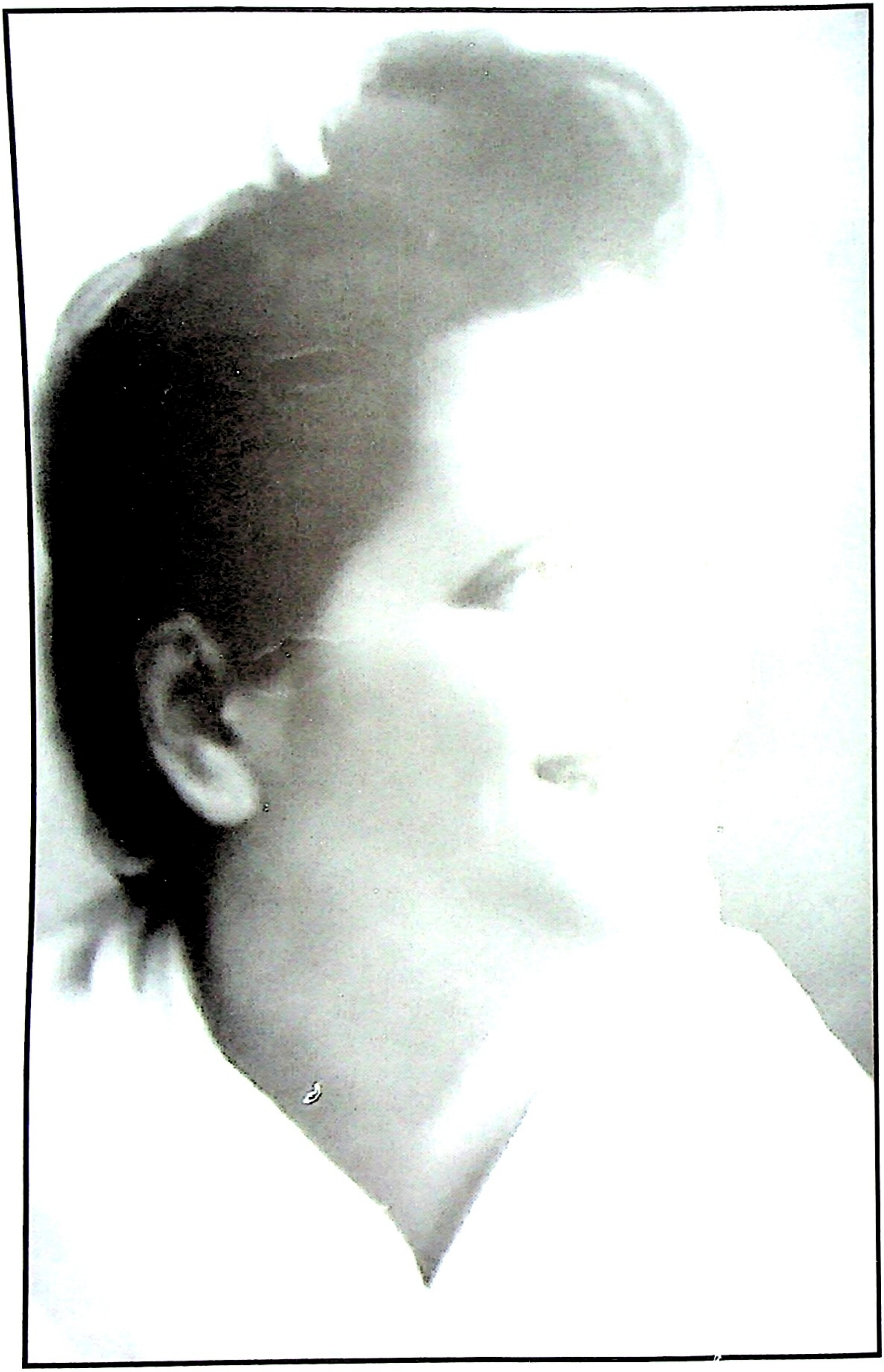

श्री श्री माँ के साथ स्वामी अखण्डानन्दजी।

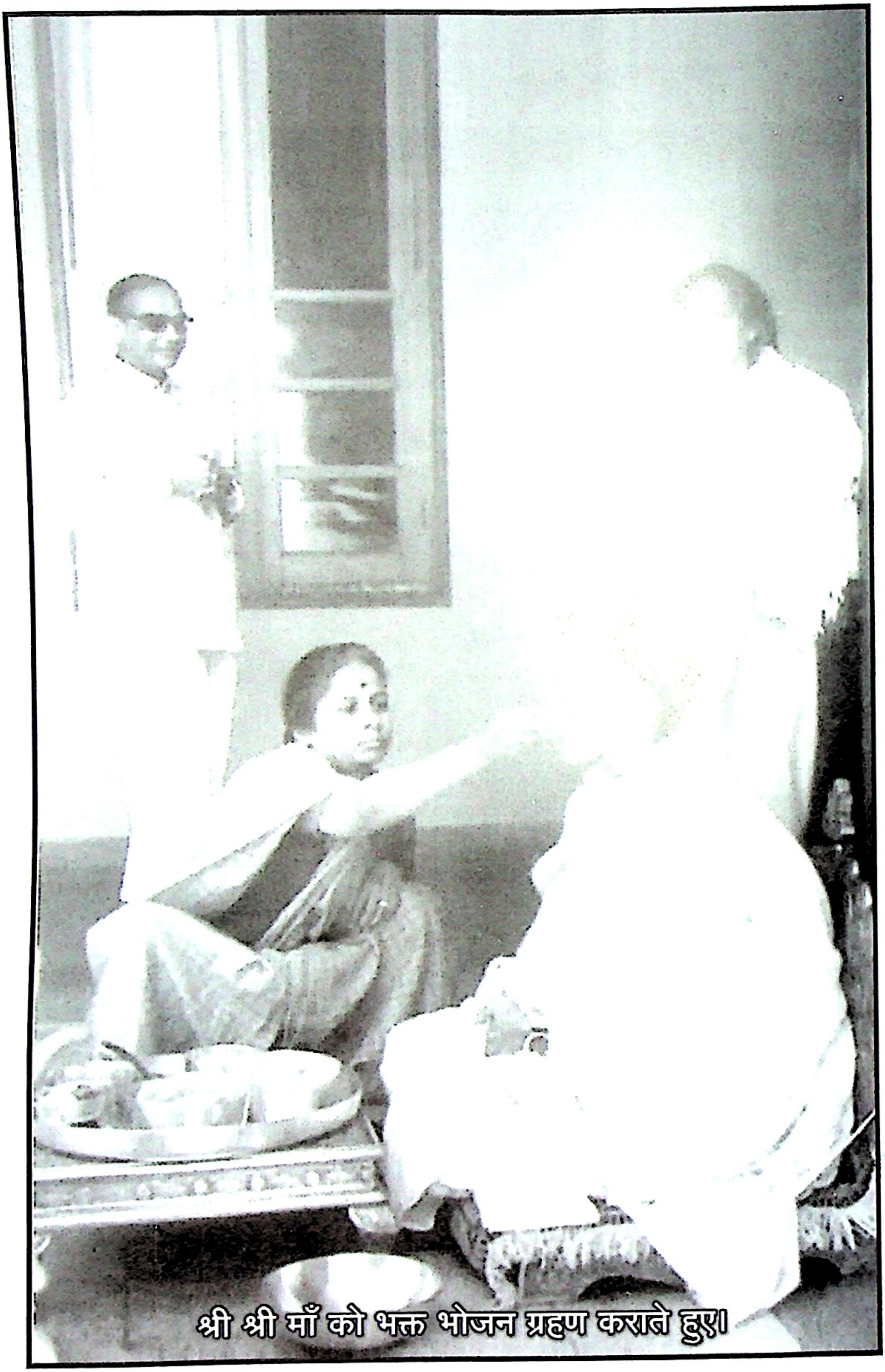

श्री श्री माँ को भक्त भोजन ग्रहण कराते हुए।

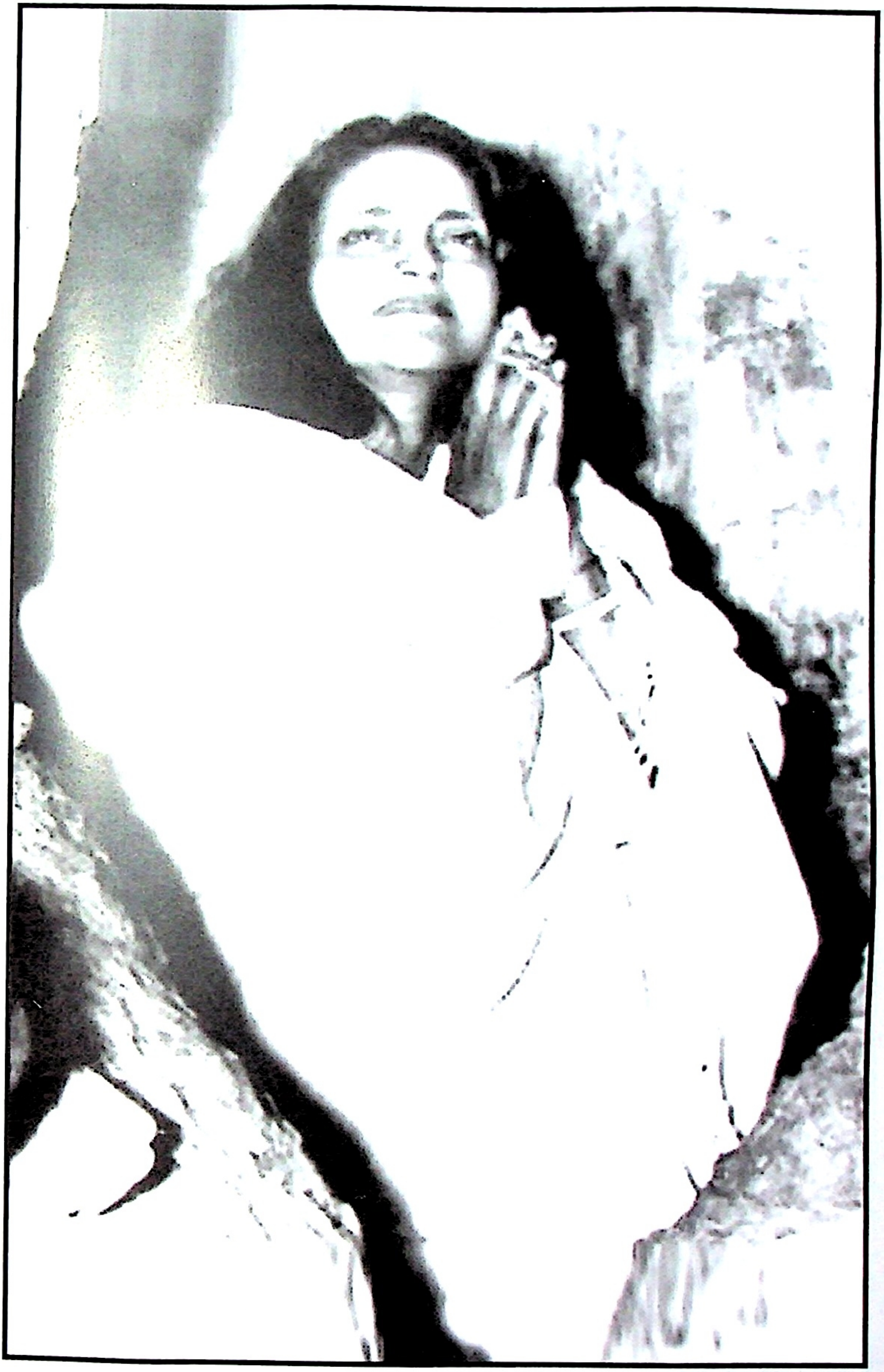

की थी कि जिससे हमारा उद्देश्य सिद्ध हो। तीन साल की चेष्टा से आज यह काम हुआ। माँ को मोटर में बिठाकर हम लोगों ने हाथ जोड़कर, पैर पकड़कर बहुत विनती की। मोटर उचित स्थान पर लायी गयी। रेकार्ड बहुत ही सुन्दर हुआ।

स्कूल में लौटकर देखा कि माँ के आने में देर होने से लोग उतावले हो रहे हैं। बड़ी भीड़ थी। माँ को बहुत कष्ट के साथ मोटर से उतारकर पण्डाल में ले जाया गया। श्रीयुत् बृजेन्द्रनाथ गांगुली महाशय का कीर्तन आरम्भ हुआ। रात को लगभग 10 बजे माँ को हम लोग उठा लाये। कमरे में दो-चार व्यक्तियों को रखकर दरवाजा बन्द कर दिया गया।

माँ के साथ विविध बातें होने लगी। किसी प्रसंग से माँ ने कहा- "धर्मशाला में और कितने दिन रहोगे? अपने घर नहीं जाओगे? कैसा सुन्दर है-स्वयं ही घर है, फिर स्वयं ही यात्री, पर वासी भी स्वयं ही है फिर देखो अपने में ही आप?" इतना कहकर माँ हँसने लगी। कीर्तन समाप्त होने के पहले रात्रि के लगभग 12 बजे माँ को फिर से पाण्डाल में ले जाया गया। लगभग साढ़े बारह बजे कीर्तन समाप्त हुआ। माँ कमरे में आयी परन्तु सोने में रात्रि के प्राय: 2 बज गये।

कार्तिक 4, शुक्रवार- एक घटना की बात नहीं लिखी गई है। गत परसों श्रीयुत् जितेन्द्रनाथ ठाकुर महाशय के शिष्य श्रीयुत् धीरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय माँ के दर्शनों के लिये अपने मित्र काली बाबू (जमींदार) को सपत्नीक लेकर आये थे। धीरेन बाबू ने माँ को पहले अनेक बार देखा है। उन्होंने कहा- "माँ, यह मेरे परम मित्र हैं और जहाँ तक मुझे मालूम है यह बहुत ही धर्मात्मा हैं। इनका परिवार भी अच्छा है।" माँ ने पूछा-"मकान कहाँ है?"धीरेन बाबा ने कहा-"बाग बाजार" में। बहुत लोग दूर-दूर से आते हैं परन्तु माँ ऐसी बातें नहीं पूछती किन्तु माँ आज पूछ बैठी कि इनके मकान का नम्बर क्या है? धीरेन बाबू ने कहा-"65"। उसी समय माँ ने मेरी ओर देखकर कहा-"खुकुनी, यह 65 नं. बाग बाजार दस-बारह साल हुए शायद मुख से निकला था। तेरे पास शायद लिखा है।" तब मुझे याद आया कि माँ के मुख से 65 नं. बाग बाजार शब्द दो-तीन बार निकला था, इसी कारण इतने आदमियों के बीच में भी माँ ने इनके मकान का नम्बर पूछा है। "इतने दिनों के बाद 65 नं. बाग बाजार आकर उपस्थित हुआ।" इतना कहकर माँ

हँसने लगी। तब धीरेन बाबू ने कहा-''माँ, इनके घर **परमहंसजी** आये थे। **स्वामी विवेकानन्द** भी इनके मकान में कुछ दिन रहे थे।''

कलकत्ते में माँ के आगमन से देशबन्धु बालिका विद्यालय में आनन्द की बाढ़-सी आ गयी। मानो सभी नशे में विभोर हैं।

डॉक्टर पन्त माँ के शरीर की दुर्बलता के कारण प्राय: उन्हें दरवाजा बन्द करके विश्राम देने की चेष्टा करते थे। इससे दर्शनार्थियों का दल माँ को न पाकर अत्यन्त उत्तेजित हो उठा। कोई-कोई तो व्याकुलता के साथ बाहर से ही माँ को पुकारने लगे। तब माँ ने डॉक्टर पन्त से कहा-''तुम कुछ न बोलना।'' उन्होंने फिर माँ की आज्ञा से उन्हें नहीं रोका। कमरे का दरवाजा खोल दिया गया। इसी में जहाँ तक सम्भव हो सका, माँ के विश्राम का प्रयत्न किया गया किन्तु दिन-पर-दिन लोगों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि विश्राम प्राय: नहीं होता था। कभी तो रात के 12 बजे लिटा दिया गया, परन्तु उसी समय सब लोगों ने मिलकर पंडाल में कीर्तन आरम्भ कर दिया। लड़कों में किसी-किसी के मन में माँ को उठा लाने की इच्छा हुई। करुणामयी माँ भी रात को 1 बजे नीचे उतरकर एकदम पंडाल में जा पहुँची। लड़कों को तो महा आनन्द हुआ। उनमें से एक ने कहा-''माँ, हम जानते थे कि यहाँ बैठकर कीर्तन करने से और प्रार्थना करने से माँ दौड़कर यहाँ अवश्य आ जायेंगी। उनकी साधना में सिद्धि हुई। फिर बड़े उत्साह से कीर्तन होने लगा। इसी तरह महान् आनन्द से दिन-रात कहाँ बीतते जा रहे थे, किसी को पता भी नहीं लगा। फिर पुराने भक्त ज्यादा होने से तथा माँ का शरीर अस्वस्थ रहने के कारण माँ को अधिक समय तक न पाकर जाने क्या-क्या बोल रहे हैं। इस तरह के विविध भाव लेकर लीलामयी की लीला चल रही है। आज भी रात को माँ सबको साथ लेकर पंडाल में ही रही। सबको इससे महान् आनन्द है। शची बाबू आदि कुछ लोगों ने घूम-घूमकर रात बिता दी।

कार्तिक 5, शनिवार- आज माँ ढाका चली जायेंगी। ढाका से भी कुछ लोग आये हैं। सब लोग माँ को लेकर ढाका जायेंगे। कलकत्ते के उत्सव में वे लोग सहयोग देने आये थे। सुबह कीर्तन, दोपहर को माँ की भोग आरती, कीर्तन और सन्ध्या में भी कीर्तन चला। लोगों ने बहुत आनन्द किया। सात दिनों तक दिन-रात उत्सव चला। भोग का भी भारी आयोजन था। जमशेदपुर, बहरमपुर, ढाका आदि सभी स्थानों के भक्त आकर इस उत्सव में सम्मिलित

हुए थे। आज दीपावली की रात में काली माता की पूजा होगी। सब लोग मिलकर पूजा का आयोजन कर रहे हैं। बहरमपुर के अवनी बाबू आज श्री श्री माँ की पूजा करेंगे। कुछ लोग उपवासी हैं। माँ के चरणों में सब लोग एक साथ पुष्पांजलि देंगे। भ्रमर ने पूजा का सारा प्रबन्ध किया है। सन्ध्या समय माँ की पूजा आरम्भ हुई। फूलों और मालाओं से माँ को सजा दिया गया। माँ आसन पर लेट गयी। चारों ओर बाँस का घेरा बाँध दिया गया था। जिससे माँ के शरीर पर भीड़ का दबाव न पड़ सके। पूजा के बाद ही माँ को लेकर हम लोग स्टेशन की ओर चल पड़े।

ढाका में तीन रात्रि

कार्तिक 6, रविवार– आज दिन के ढाई बजे हम लोग ढाका पहुँचे। कुछ लोग माँ को लाने के लिये नारायणगंज आये थे। माँ के आगमन के उपलक्ष्य में मंगल कलश आदि द्वारा आश्रम सजाया गया था। माँ केवल दो–तीन दिनों के लिये यहाँ आयेंगी। सबको खबर भी नहीं लगी। जिन्हें खबर मिली है वे तुरन्त आश्रम में माँ से मिलने आये। **'ढाका की माँ'** परन्तु ढाका निवासी ही माँ को नहीं पाते। आगामी कल अन्नकूट होगा। काशी में इसी तिथि को श्री श्री माँ अन्नपूर्णा का अन्नकूट होता है। यहाँ भी हमारी अन्नपूर्णा माँ को 108 प्रकार के व्यंजनों के द्वारा भोग दिया गया।

कार्तिक 7, सोमवार– आज अन्नकूट है। आज प्रायः सात–आठ वर्षों से इसी तरह भोग होता आया है। यह सभी को मालूम है। दस ब्राह्मण स्त्रियाँ रसोई करने के लिये आयी। लगभग 136 प्रकार के व्यंजनों के द्वारा श्री श्री माँ का भोग दिया गया। बहुतों ने प्रसाद पाया।

आज माँ के आगमन का समाचार अनेक लोगों ने पाया। इस कारण लोगों की संख्या बहुत बढ़ गई। इतने में ही माँ को एक खयाल आया। उन्होंने मुझे बुलाकर कहा–"खुकुनी, तुम लोग तो कम्बल पर मुझे सुलाते हो। वह भी तो जानवरों का लोम है। मुझे ठंड लगती है इसलिये मैं बालों के तकिये पर सोऊँगी।" इतना कहकर माँ हँसने लगी, फिर बोली–"क्या करूँ मुझे तो ठण्ड लग जाती है, उनसे पूछकर देखूँ वे मुझे बाल देंगी कि नहीं।" इतना कहकर दो–तीन विधवाओं को दिखा दिया। मैंने देखा वे खूब तेल लगाकर कंघी से केश सँवारकर आयी हैं। मैं समझ गयी कि इसीलिये

माँ को ऐसा खयाल आया है। कुछ साल पहले शची दादा की बहिन के बाल माँ ने कटवाये थे। उसी समय से बालों का खयाल चल रहा है। विधवाओं से कहने पर वे आनन्द से बाल देने को राजी हो गई। माँ लेटेंगी इसलिये आनन्द से अपना-अपना बाल काटेंगी। देखकर सधवा भी अपने-अपने बाल देने का आग्रह करने लगी, कुमारियाँ भी देंगी। भूदेव बाबू ने कहा-''क्या माँ पुरुषों के बाल नहीं लेंगी? हम लोग भी देंगे।'' तब माँ के आदेश से चार कैंचियाँ मँगवाई गई-सधवाओं, विधवाओं, कुमारियों और पुरुषों के अलग-अलग बाल काटने के लिए। बाल काटने का उत्सव चलने लगा। माँ ने मुझसे बाल कटवाना शुरू करा दिया। पंचवटी में अशोक वृक्ष के नीचे सधवाओं के, पीपल के वृक्ष के नीचे कुमारियों के, बरगद के नीचे विधवाओं तथा पुरुषों के बाल काटने का प्रबन्ध हुआ। यह एक उत्सव चलने लगा। माँ ने कहा-''सधवाओं के बालों का लाल तकिया, विधवाओं के बालों को सफेद तकिया, कुमारियों के बालों का पीला तकिया और पुरुषों के बालों का भी तकिया होगा।'' माँ ने कहा-''लड़कियों के बालों का गद्दा, सधवाओं के बालों का तकिया और विधवाओं के बालों का बगल का तकिया बनेगा।'' भूदेव बाबू ने तुरन्त कहा-''माँ, हमारे बालों का पैर का तकिया बनाइयेगा।'' इस तकिये का तत्त्व भी माँ ने कुछ-कुछ बताया। बाल काटने की धूम मच गयी। कोई चार आने, कोई आठ आने, कोई बारह आने केश देने लगा।

माँ आज सुबह सबको साथ लेकर सिद्धेश्वरी हो आयी। मुक्ता को देखने के लिये उसके घर के दरवाजे पर गयी। मुक्ता बहुत गरीब स्त्री है। उसके ऊपर उसे राजयक्ष्मा (टी.बी.) हो गया है। इस कारण माँ स्वयं ही उसे देखने गयी।

कार्तिक 8, मंगलवार- आज भी माँ ढाका में ही रही। आगामी कल रवाना होने की बात है। माँ को देखकर किसी को तृप्ति नहीं होती। फिर कब माँ को देखेंगे इसी चिन्ता से सभी का हृदय व्याकुल था। स्त्रियाँ आज माँ को लेकर रात भर कीर्तन करेंगी, ऐसा प्रबन्ध हुआ।

कार्तिक 9, बुधवार- कल रात भर कीर्तन चला। स्त्रियों ने बहुत उत्तम कीर्तन किया। रात को दो बजे जब हीरन दीदी की लड़की बेलून ने सबके साथ कीर्तन शुरू किया-''कृष्ण कन्हैया, बंशी बजैया, गौ चरैया, हारे रे रे रे

रे....'' तो स्त्री-कण्ठ के स्वाभाविक मीठे सुर में यह नाम सुनसान गहरी रात में बहुत ही मधुर लग रहा था। माँ भी मन्दिर से उठकर कीर्तन के कमरे में आ बैठी। कल माँ के निकट ही स्त्रियों ने यह नाम गान सीखा है। रात भर नाम-गान अति सुन्दर भाव से चला। आज सुबह कोई घर नहीं गयी क्योंकि आज माँ ढाका से चली जायेंगी। माँ को गाड़ी में चढ़ाकर सब स्त्रियाँ आँसू बहाते अपने-अपने घर लौट गयी।

कार्तिक 10, गुरुवार– आज सुबह कलकत्ते पहुँचकर हम माँ के साथ बिड़ला के शिव-मन्दिर में गये। ओ. एन. मुखर्जी के पुत्र यामिनी बाबू माँ को अपने स्थापित एक मन्दिर में ले जाने के लिये बहुत दिनों से अनुरोध कर रहे थे। आज सन्ध्या समय वहाँ जाया जायेगा। वहाँ श्रीयुत् रामकमल भट्टाचार्य महाशय का कीर्तन होगा, ऐसा निश्चय हुआ है। आज शाम को 5 बजे हम लोग बिड़ला के शिव-मन्दिर से रवाना हुआ। इलाहाबाद से बाबू शिवप्रसाद सिन्हा भी आये हैं। माँ की बात, हँसी आदि का रेकार्ड करने की चेष्टा कई सालों से चल रही थी। अब की बार वह काम सम्पन्न हुआ। बड़ी कठिनाई से 10 रेकार्ड बनाने का प्रबंध हुआ था, उनमें से 5 नष्ट हो गये। हमारे लिये तो पहले से किसी प्रकार का प्रबंध करके रेकार्ड उतारना सम्भव नहीं था। उपस्थित क्षेत्र में जो कुछ हो गया उसी को सौभाग्य समझा। माँ तो रेकार्ड करने गयी नहीं थी। इस कारण माँ का जो नित्य स्वभाव है वही हमें मिला। माँ का तो खयाल है कभी हँसी, कभी बात, कभी गान-इसी ढंग से रेकार्ड हुआ। हमारे लिये वही अमूल्य वस्तु है। इस कार्य को सम्पन्न करके सन्ध्या समय हम लोग यामिनी बाबू द्वारा प्रतिष्ठित मन्दिर में पहुँचे। वहाँ गणेशजी की मूर्ति बहुत ही सुन्दर लगी। यामिनी बाबू ने सपरिवार माँ और उनके साथ के लोगों का यथेष्ट सेवा यत्न किया। उनके अनुरोध से वह रात्रि वहीं बितायी गयी।

नवद्वीप होकर विन्ध्याचल गमन

कार्तिक 11, शुक्रवार– आज भोर में कीर्तन आदि करके हम लोग माँ को लेकर पुनः बिड़ला मन्दिर आये। आज दोपहर की गाड़ी से नवद्वीप जाने की बात है। यामिनी बाबू के विशेष आग्रह से दोपहर के भोग के समय माँ फिर उनके मन्दिर में जायेंगी, ऐसा निश्चय हुआ था। वैसा ही हुआ। यामिनी

बाबू के मकान से ही माँ को स्टेशन ले जाया गया। साथ में 60-65 व्यक्ति चले। सन्ध्या को नवद्वीप पहुँचकर हेतमपुर की धर्मशाला में सब लोग ठहरे। माँ धर्मशाला जाने के पहले समाज-मन्दिर में गयी थी। वहाँ ललिता सखी के साथ भेंट हुई। वह माँ को पाकर बहुत ही आनन्द प्रकट करने लगी। उन्होंने कहा-"मेरा अहोभाग्य है कि माँ आज लड़की को देखने आयी हैं।"- इत्यादि, इत्यादि। डॉक्टर पन्त माँ के साथ 'सखी-माँ' की बातचीत सुनकर इतने मुग्ध हुए कि आनन्द से गदगद होकर बोले-"मैंने ऐसा सुन्दर मिलन पहले कभी नहीं देखा था। मेरा हृदय आनन्द से कम्पित हो रहा है। आनन्द से मेरा हृदय भर उठा है।" बहुत देर तक बातचीत हुई। सभी रसमय था। आज नवद्वीप निवास ही स्थिर हुआ।

कार्तिक 12, शनिवार- आज सुबह मझली दीदी (शची दादा की बहिन मनोरमा) ने माँ को अपने हाथ के बने साज से अति सुन्दर भाव से कृष्ण रूप में सजाया। फोटो ली गयी। हम लोग दिन के 11 बजे यहाँ से रवाना होकर अपराह्न लगभग साढ़े 3 बजे हावड़ा पहुँचे। उसी समय माँ के साथ हम लोग बोटोनिकल गार्डन देखकर शाम तक बिड़ला मन्दिर आये। वहाँ से स्टेशन जाना होगा। फिलहाल विन्ध्याचल जाना ही स्थिर हुआ है। शिवप्रसाद बाबू भी माँ को विन्ध्याचल ले जाने के लिये बहुत आग्रह कर रहे हैं। सबकी राय से विन्ध्याचल चलना ही तय हुआ।

रात के 8 बजे बम्बई मेल से माँ के साथ हम लोग विन्ध्याचल रवाना हुए। स्टेशन पर अनेक व्यक्ति माँ को गाड़ी में बैठाने के लिये आये। सभी लोग माँ के मुख की ओर आँसू-भरे नयनों से देख रहे थे। ठीक समय पर गाड़ी छूटी।

कार्तिक 13, रविवार- आज सुबह 8 बजे हम लोग मिर्जापुर पहुँचे। स्टेशन पर शिवप्रसादसिंहजी, जितेन दादा आदि बहुत से लोग उपस्थित थे। सारा प्रबन्ध करके माँ को विन्ध्याचल लाये। काशी से बच्चू की माँ और बच्चू आये हैं। मिर्जापुर से कुलदा दादा, उपेन बाबू आदि भी आये हैं।

कार्तिक 15, मंगलवार- आज कलकत्ते से शची दादा, यूथिका, अनू, यतीश दादा की माँ और स्त्री आये हैं। शची दादा दो दिन की छुट्टी पर आये हैं। बाकी लोग यहीं रहेंगे।

संसार के दुःख–कष्टों का माँ के ऊपर प्रभाव

आज मिर्जापुर से इस देश के कुछ सज्जन आये हैं। माँ के साथ शाम को कुछ बातचीत हो रही है। एक सज्जन ने पूछा–"माँ इस संसार में लोगों को अनेक दुःख–कष्ट होते हैं। उसकी छाप या प्रभाव आपके ऊपर किस प्रकार पड़ता है?" माँ ने उत्तर दिया–"देखो, तुम यहाँ बैठे हो। पहाड़ पर बहुत से लोग आते हैं, जाते हैं, झगड़े होते हैं, मारपीट भी होती है, और न जाने क्या–क्या होता है, तुम केवल देखते जाते हो, 'द्रष्टा' मात्र हो। यह भी एक ओर की बात है।" इतना कहकर माँ चुप हो गयी।

बाद में रात को सोने जाते समय इस विषय पर मुझसे एकान्त में माँ ने कहा–"देख, हर समय सब बात नहीं निकलती। उन लोगों ने जो कहा कि सांसारिक सुख–दुःख का प्रभाव मेरे भीतर कैसे पड़ता है? बात क्या है, जानती हो? अपने शरीर के हाथ–पैर या और कोई अंश जिस प्रकार देखती हूँ हिलाती–डुलाती हूँ ठीक उसी तरह और क्या? यदि कोई इस शरीर को तुम्हारी दृष्टि में गाली दे या हिंसा करे तो कैसा होता है, जानती है? जैसे अपने ही नाखून से अपने ही शरीर में खरोच लग गयी। इसलिये किस पर क्रोध होगा? फिर खरोंच का कोई प्रश्न नहीं है। एक के सिवाय दूसरा नहीं है। फिर 'मैं तुम' यदि कहती है तो कैसा होता है, जानती हो? वही सर्व रूपों में है इस तरह वही हिंसा करते हैं, इसलिये दुःख या क्रोध का कोई कारण नहीं रह सकता।" फिर बात–बात में कहने लगी–"सभी की आवश्यकता है, किसी की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। देखो न पहले किसी पौधे या लता को उठाने के लिये कुछ डंठलों या सूखी डालों का घेरा लगाना होता है उनकी सहायता से पौधा या लता बढ़ सकती है। बाद में उस पौधे या लता से अनेक फल–फूल पैदा होते हैं। इसी से कहा जाता है कि सभी जरूरी है। फिर देख, समय हुये बिना कुछ नहीं होता। बीज रौंदकर कितना ही यत्न क्यों न करो समय की प्रतीक्षा करनी ही होगी, खींचकर पेड़ को बड़ा नहीं किया जा सकता। केवल समय की प्रतीक्षा करते हुए धैर्य से सेवा करते चलो। उसी से समय पर वृक्ष तथा फल–मूल मिल जायेंगे। साधना का प्रधान अंग ही धैर्य है।

इसी बीच में एक दिन माँ ने मुझसे एकान्त में कहा–"न जाने कितनी अवस्थायें इस शरीर के भीतर से हो गयी हैं। मैं क्या देखती थी जानती हो?

तुम लोगों के मुख से सुनती हूँ, अनेक देव-देवियों की मूर्ति की बात-वे सब इसी शरीर से न जाने कैसे प्रकट होते हैं। फिर इसी शरीर में मिल जाते हैं। जाने क्या-क्या होता था। वे मूर्तियाँ कैसी-कैसी थी, उसे मैं तुम लोगों को नहीं समझा सकूँगी।'' मैं स्तब्ध होकर सुनने लगी। बच्चों की तरह निष्कपट भाव से हँसते हुए माँ यह सब कहती जाती हैं।

इस बार कलकत्ते में श्रीरामपुर के गोवर्धन की माँ आई थी। उन्होंने कहा-''एक विशेष घटना घटी है; कुछ दिन हुए गोवर्धन का एक लड़का बहुत बीमार हो गया था। मरणासन्न जानकर बाहर निकाला गया। श्मशान में ले जाने के लिये सब लोग तैयार हो गये। इतने में गोवर्धन चिल्लाकर रोने लगा और कहने लगा-''माँ आनन्दमयी अब अपना प्रभाव दिखाओ, मेरे लड़के को बचा दो।'' कितने आश्चर्य की बात है कि कुछ देर के बाद ही लड़के की साँस थोड़ी-थोड़ी चलने लगी, धीरे-धीरे लड़का बच गया। अपनी 62 वर्षों की उम्र में ऐसी घटना मैंने कभी नहीं देखी थी। ऐसी हालत में भी कोई बच सकता है, शायद किसी ने भी कभी नहीं देखा है। यह घटना लिखने के लिये गोवर्धन की माँ विशेष अनुरोध कर गयी है।

कलकत्ते के उत्सव के समय तारापीठ से श्रीयुत् यतीन्द्रनाथ पंडाजी आये थे। वह भी एक घटना को पुस्तक में देने के लिये विशेष रूप से अनुरोध कर गये हैं। घटना इस प्रकार है-''कई साल पहले श्री श्री माँ जब एक बार तारापीठ गयी थी तो अनेक भक्त स्त्री-पुरुष साथ थे। एक दिन आनन्दमयी माँ का प्रसाद वितरित किया जा रहा था। श्रीयुत् यतीन्द्रनाथ पंडाजी प्रसाद लेने से आनाकानी करने लगे, क्योंकि तंत्र में आदेश है कि तान्त्रिक लोग गुरु के सिवाय किसी दूसरे का उच्छिष्ट नहीं खा सकते। इधर आनन्दमयी माँ विशेष शक्ति सम्पन्न होने पर भी वह देवी हैं या तांत्रिक या वैदिक कुछ भी जाना नहीं जाता। अत: कोई यदि प्रसाद हाथ में देता है तो 'नहीं लूँगा-' कहना भी ठीक न होगा। ऐसा सोचकर पंडाजी वहाँ से सरक गये। उस दिन सन्ध्या से ही पंडाजी बीमार पड़ गये और प्रसाद ग्रहण न करना ही उस बीमारी का कारण है। ऐसी धारणा उसके मन में हुई। आगामी दिन सबसे पहले प्रसाद ग्रहण करने के लिये उनका मन उद्विग्न हुआ। परन्तु दूसरे दिन सुबह श्रीमती विराजमोहिनी देवी से माँ ने उन्हें प्रसाद भिजवाकर कहला दिया कि ''पंडाजी को दे आओ।'' सादर प्रसाद ग्रहण कर उनका शरीर स्वस्थ

हुआ और मन की शंका दूर होकर मन आनन्द से भर गया।''

माँ तो अपना प्रसाद किसी को नहीं देती। कभी-कभी देखा जाता है कि कोई चीज खाते हुए माँ ने कहा-''यह चीज फलाने को दे आओ। तुम्हारी समझ में जो-जो अच्छी चीज है क्या केवल इसी शरीर को खिलाओगे?'' इसी ढंग से देती थी। फिर कभी मुँह में देने के पहले उस चीज को सबको बाँटकर बाद में अपने मुँह से देती हैं। बहुत कह सुनकर भी हम लोग उन्हें पहले कुछ खिला नहीं सकते।

माँ सुबह और शाम को आश्रम के पास षष्ठी देवी के पास वाली पक्की जगह पर जा बैठती हैं। अनेक बातें होती हैं। कीर्तनादि भी होता है। नवद्वीप में कृष्ण के रूप में सजाने के सम्बन्ध में माँ ने कहा था-''सुन खुकुनी, आसन मुद्रा आदि जिस प्रकार अपने आप हो जाया करते थे यह साज-सज्जा भी तो कोई बतला नहीं देता। जिसके भीतर जैसा भाव आता है वह उसी तरह सजाता है। शायद इस समय वैसा होना आवश्यक है। इस कारण यह अपने आप हो जाता है।

कार्तिक 17, गुरुवार- आज सुबह यूथिका और अनु षष्ठी देवी के स्थान पर बैठकर नाम-कीर्तन कर रही है। माँ ऊपर से उतरकर उस ओर गयी किन्तु उनके पास न जाकर एक छोटे करौंदे के पौधे के नीचे बैठ गयी। वह स्थान बहुत ही गन्दा था। काँटे भी थे। किन्तु माँ के वहाँ बैठ जाने पर दूसरे लोग भी वहाँ जाकर बैठ गये। नरेश दादा आये हैं। वह और बच्चू न जाने किस बात पर माँ से रूठकर रो रहे थे। माँ ने पुकारा तो भी वे नहीं गये। कमरे में ही बैठे रहे। कुछ देर के बाद नरेश दादा गये किन्तु बच्चू नहीं गया। यूथिका को भी कुछ अभिमान का भाव था। किन्तु मेरे कहने से वह जाकर कीर्तन में शामिल हुई। माँ स्वयं भी कुछ समय तक कीर्तन करती रही। साथ-साथ हम लोगों ने भी सहयोग दिया। बाद में अभय ने भी शुरू किया। साथ-साथ हम सब भी गाने लगे। माँ आँखें मूँदकर बैठी हैं। लगभग एक घण्टे के बाद कीर्तन बन्द करके माँ को लेकर हम लोग कमरे में आ गये। उस समय भी रूठने वालों का अभिमान दूर नहीं हुआ था। उनकी आँखों में आँसू थे। माँ कमरे में आकर बिछौने पर लेट गयी। दो-चार बातों के बाद माँ ने कहा-''तुम लोग हँसते हो तो मैं भी हँसती हूँ, अब तुम लोग रो रहे हो तो मैं भी रोऊँ! हँसी और रोना एक ही है। तुम लोग जैसा कराओगे वैसा ही तो

होगा।'' इतना कहकर माँ चुप हो गई। किसी-किसी ने आपत्ति की किन्तु माँ ने कहा-''आओ भाई आओ।'' इतना कहकर चद्दर ओढकर लेटी रही। कुछ देर के बाद चद्दर उठा देने के साथ-साथ माँ बच्चों की तरह रो पड़ी। इस रुलाई में कृत्रिमता नहीं थी। आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। माँ का रुदन देखकर अनेक लोग भी रोने लगे। रूठने वालों का दल आकर माँ के चरणों में प्रणाम करते हुए अपना-अपना दोष स्वीकार करने लगा। लगभग 10-15 मिनट के बाद माँ आँखें खोलकर आँसू पोंछते हुए मधुर हँसी के स्वर में बोली-''यह क्या? तुम लोग सबके सब मुझे घेरकर रो क्यों रहे हो? क्या हुआ है?'' उसके बाद माँ ने कहा-''हँसी और रोना तो एक ही है। तुम लोग जैसा चाहो, करा लेते हो। अनेक लोग हँसते थे तो मैं भी हँसी। अब रोने लगे तो रोने लगी।'' इतना कहकर हँसने लगी। दिन भर आज माँ का भाव न जाने कैसा रहा। कुछ परिवर्तन आ रहा है, मालूम होने लगा। माँ क्या कर बैठेंगी इस आशंका से सब लोग घबराने लगे। किसी-किसी ने प्रश्न भी किया किन्तु माँ ने उत्तर दिया-''मैं तो एक ही तरह हूँ।''

रात साढ़े ग्यारह बजे सब लोग सो गये। माँ नरेश दादा को लेकर बाहर जाने लगी तो यूथिका और मैं उठकर माँ के पास पहुँची। माँ ने कहा-''तुम लोग रहो, मैं थोड़ा टहल आऊँ।'' जिन्हें शरीर की अस्वस्थता के कारण बहुत ही सावधानी से रखा जा रहा है और जो स्वयं भी हमारे निषेध कुछ दिनों से नियमित मानती आ रही हैं आज कई दिनों से धीरे-धीरे कुछ जैसे तोड़ने लगी हैं। भाव का परिवर्तन थोड़ा-थोड़ा दिखाई पड़ता था। भयानक सर्दी थी उसी ठंड में निकल पड़ी। लाचार होकर हम लोग कमरे में बैठे रहे। हमें मालूम है कि कुछ दिन शायद माँ सबकी राय से चलती रही। एकाएक सब तोड़-ताड़कर निकल पड़ी। तब किसी को पहचानती हैं ऐसा भी मालूम नहीं होता। रात्रि के लगभग डेढ़ बजे अभय को बुलाकर माँ ने कुछ बातचीत की। यूथिका भी गयी। मैं माँ के आदेश की रक्षा करने के लिये कमरे में ही बैठी देखने लगी। माँ घर से निकलकर षष्ठी देवी के स्थान पर जा बैठी। इसी तरह रात बीत गयी। सबने भोर का कीर्तन शुरू कर दिया। माँ पेड़ के नीचे ही लेटी रही।

कार्तिक 18, शुक्रवार- आज भी माँ कमरे में नहीं आयी। कहने पर बोली-''कुछ दिनों से पेड़ के नीचे रहने का खयाल हो रहा था इसलिये पेड़

के नीचे रहूँगी।'' एक कम्बल बिछाकर पेड़ के नीचे ही लेटी रही। दोपहर भी इसी तरह बीत गया। माँ क्या करेंगी, कहाँ जायेंगी इसी चिन्ता से हम लोग उद्विग्न होने लगे। जानती हूँ कि शारीरिक अस्वस्थता या अन्य किसी भी कारण से माँ के खयाल में कोई बाधा नहीं दे सकता। आज भी रात को माँ पेड़ के नीचे ही रहेंगी। ऐसा निश्चय हुआ।

कार्तिक 19, शनिवार– कल रात को ही बाबू शिवप्रसादसिंह आये हैं। आज सुबह ही उनकी मोटर से कुछ लोग माँ को लेकर अष्टभुजा और विन्ध्यवासिनी गये। माँ मोटर में ही बैठी रही। साथ के जिन लोगों ने नहीं देखा था वे उतरकर दर्शन कर आये। मोटर में बैठे-बैठे माँ कहने लगी– ''रुपये-पैसे की भी तो उमर है। चलाचल है, देखती नहीं हो? आज यहाँ है तो कल वहाँ है। शुरू-शुरू में जब पैसा तैयार हुआ तभी हुआ उसका जन्म और फिर पैसा गलाकर कवच तैयार हुआ, तब हुई उसकी मृत्यु या एक विशेष परिवर्तन, ऐसा कहा जाता है। तभी तो देखो, इन सब परिवर्तनशील वस्तुओं का संग करने से तुम्हें भी फिर परिवर्तित अवस्था में गतागति करनी होगी।''

विन्ध्याचल में माँ की बान्धवी की बात

हम लोग विन्ध्याचल से आश्रम लौट रहे थे रास्ते में हनुमानजी के मन्दिर के सामने से आने लगे। तब बात चली माँ की 'बन्धु' की। बात यह है कि इस मंदिर में एक वृद्धा संन्यासिनी रहती थी। माँ को देखते ही वह बका करती थी। उसका कारण यह था कि माँ उनसे वार्तालाप करने जाती थी। वह शायद सोचती थी कि माँ गृहस्थ हैं और गृहस्थों के साथ आती हैं। ऐसी स्थिति में उनके साथ माँ परिचित की तरह वार्तालाप करने जाती हैं। यह संन्यासिनियों के अपमान का विषय है। इस बात को लेकर बड़ी हँसी होती थी; किन्तु आश्चर्य का विषय है कि घर में जाकर माँ को गाली देती हैं, फिर जब हम लोग अन्यमनस्क हो जाते तो खिड़की से झाँककर माँ को देखती थी। कभी माँ भी उन्हें देख लेती और हमें भी दिखाती थी। इनसे वह बुढ़िया बहुत चिढ़ जाती थी। काम करते-करते बीच-बीच में आँखें घुमाकर माँ को थोड़ा देख लेती थी। किन्तु माँ की दृष्टि पड़ते ही वह बक-झक शुरू कर देती थी। कभी माँ कहती-''कि उसे कुछ पैसे दे आओ।'' हम लोगों के पैसे देते ही वह गाली देने लगती थी। किन्तु ज्यों ही माँ चलकर कुछ दूर

गयी त्यों ही वह बाहर आकर जहाँ तक देखा जा सके माँ को देखती थी। केवल माँ को ही वह गाली देती थी और किसी को नहीं। इन बातों को लेकर माँ ने खूब आनन्द किया। अभी भी माँ कहती हैं–"वह देखो, मेरी बन्धु का मकान।"

उसके बाद केश काटने की बात चली। पहले तो ढाका में दो–तीन विधवाओं के बाल बनाने का ढंग देखकर माँ ने मुझे बुलाकर कहा–"देख खुकुनी, कहाँ तो ये लोग ब्रह्मचारिणी रहकर जीवन बितायेंगी, उस परम पिता को ही पति रूप से पाने की चेष्टा करेंगी वह न करके अत्यन्त भोग–विलास में दिन बिता रही हैं।" इतना कहकर ही बच्चों की तरह मुँह टेढ़ा कर जिद के ढंग से फिर कहा–'मुझे जाड़ा लग रहा है, मैं बालों के तकिये पर सोऊँगी। कौन–कौन केश देंगी पूछो तो।' विधवाओं ने अपना–अपना केश देना स्वीकार किया। उसके बाद सधवाओं–गणेश बाबू की पत्नी, प्रफुल्ल बाबू की पत्नी आदि ने भी कहा–हम लोग भी देंगी। भूदेव बाबू ने कहा–"माँ, हम लोग नहीं देंगे? हमारे बालों से पैर का तकिया बना लीजियेगा।" इसी तरह सभी के केश काटने का उत्सव चला। तकिये तैयार हो गये, उसके बाद वे कहाँ पड़े रह गये कौन जाने? असली उद्देश्य माँ ने पूर्ण कर लिया। कुमारियों का केश काटना तो पहले ही शुरू हो गया था। मैंने हँसकर कहा–"माँ, जिन लोगों ने केश दिया है, क्या सिखों की तरह साथ–साथ सिर भी यहाँ दे गयी?"

काशी में गंगा पर नाव में अवस्थान

आज काशी जाने की बात चली। तीसरे पहर काशी चलने की बात तय हुई। शाम को 5 बजे हम लोग माँ को लेकर शिवप्रसादजी की मोटर से काशी रवाना हुए। साथ के दूसरे लोग ट्रेन से चले गये। वीरेश्वर पाण्डेय धर्मशाला में सबको रखकर माँ पाँच–सात व्यक्तियों को साथ लेकर गंगा में नाव पर रहने के लिये चली।

एक बजरा किराये पर लेकर माँ के साथ हम लोग नौका में रहे। बात तय हुई कि सुबह और शाम को घाट पर नौका लगने पर सब लोग माँ के दर्शन पायेंगे। चाँदनी रात में गंगा पर माँ के साथ रहना कैसे सौभाग्य की बात है और कितनी आनन्ददायक है यह वर्णनातीत है। महान् आनन्द से रात बीत गई।

कार्तिक 21, रविवार– सुबह दरभंगा घाट पर नौका लगाते ही दल–के–दल लोग माँ का दर्शन करने के लिये नाव पर चढ़ने लगे। सबको मधुर व्यवहार और दर्शन से तृप्त करके नाव फिर छोड़ दी गयी। यहाँ की सिद्धि माता की बात सुनी। वह बहुत ऊँची अवस्था में हैं। माँ ने अभय और नरेश दादा को वहाँ भेज दिया और कह दिया–''तुम लोग जाकर मेरी माँ का दर्शन कर आओ।'' वे सिद्धि माता को देखकर आनन्दित हुए। लौट आकर माँ से उनकी बातें बतायी। सभी को माँ कहती हैं–''तुम लोग जहाँ जाकर आध्यात्मिक राज्य में कुछ उन्नति कर सको, वहीं जाना। यहाँ तो कोई रुकावट नहीं है। जो जहाँ जाकर आनन्द पा सको वहीं जाना।'' कोई कहता है–''माँ, तुम फिर हमें दूसरी माँ के पास क्यों भेजती हो?'' माँ हँसकर बोली–''अच्छा, तुम लोग ऐसे भिन्न भाव क्यों रखती हो? सभी मेरे माँ–बाप हैं।'' फिर बात हुई–''सब अब कुछ नहीं, उन सबों को लेकर मेरे एक ही माँ–बाप हैं, जो कहो।''

एक महिला आयी हैं। वह कहती हैं–''माँ, मैं कुछ फल ला दूँ तो आप खायेंगी न?'' माँ हँसकर बोली–''बहुत अच्छा मेरी कोई अलग जमींदारी है ऐसा तो मैं नहीं जानती कि उस जमींदारी की खाऊँगी अन्य किसी की कोई चीज नहीं खाऊँगी। मैं तो जानती हूँ कि सभी एक घर की चीज हैं। यदि भिन्न कहो तो सभी के घर–घर में मेरे खाने का, पहनने का सब कुछ है। फिर यहाँ से जब किसी को कोई चीज लेने को कहा जाता है वह गैर समझकर लेने में संकोच करता है। मैं कहती हूँ–''तुम्हारा घर ही मेरा घर है, तुम्हारा सन्दूक ही मेरा सन्दूक है। मेरे जो सन्दूक तुम्हारे घर में हैं उन्हीं के भीतर ये चीजें भी ले जाकर रख दो।'' इतना कहकर माँ बच्चों की तरह हँसने लगी।

फिर हँसते हुए कहती हैं :–
''सभी मेरे दोस्त
जिसने जो पाया उसी में है मस्त''

इतना कहकर हँसने लगी। आज का दिन भी नाव में आनन्द से बीत गया।

कार्तिक 22, सोमवार– आज चूड़ामणि योग है। देश–विदेश से अनेक लोग स्नान करने की आशा से गंगा तीर पर एकत्रित हुये हैं। रात को दो बजे के बाद ही ग्रहण लगेगा।

सन्ध्या समय हरिहर बाबा के पास जाने के लिये नाव छोड़ दी गयी। दो बड़ी नावें ली गयी हैं। साथ में इतने अधिक लोग जुटे हैं कि नावें चलाना कठिन है। रात को एक बजे एक स्थान पर नाव बालू में फँस गयी। घण्टे भर की चेष्टा से भी नाव नहीं निकाली जा सकी। बाबाजी के पास भी जाना सम्भव नहीं हुआ। क्योंकि मल्लाहों ने कहा कि इतनी बड़ी नाव वहाँ नहीं जायेगी परन्तु बहुत दूर आ चुके हैं, सब लोग स्नान करेंगे इस कारण दो बजे के भीतर नाव को किसी घाट पर ले जाना होगा। रात भर माँ सो न सकी क्योंकि साथ में बहुत से लोग थे। माँ को नाव में कष्ट होने पर भी सब लोग बैठे हैं तो भी माँ का संग छोड़कर दूसरी नाव में कोई नहीं गया, इस कारण नाव बहुत भारी हो गयी है। कुछ देर के बाद माँ बाहर आकर खड़ी हो गई। आश्चर्य का विषय है कि दो-चार मिनट में नाव छूट गयी। नाव एक घाट पर जा लगी। साथ के लोग स्नान करके जप-ध्यान आदि करने बैठ गये। ग्रहण लगभग दो घण्टे रहा। देखते-देखते भोर हो गयी।

कार्तिक 22, मंगलवार– आज माँ को कुछ विश्राम देने के लिये तड़के ही नाव छोड़कर गंगा के बीच में लंगर डाल दिया गया। हम लोग माँ के पास बैठे रहे। दिन के नौ बजे फिर नाव को दरभंगा घाट पर लाया गया। इस ढंग से गंगा पर बहुत आनन्द से दिन बीतने लगे।

सभी सम्प्रदायों पर माँ का सम भाव

कार्तिक 23, बुधवार– आज का दिन भी गंगा पर बीता। मैंने कहा– ‘‘लोग कहते हैं कि सभी महात्माओं का एक-एक सम्प्रदाय है। वे दीक्षा भी देते हैं उस हिसाब से सभी के एक-एक चिह्न हैं। उन सम्प्रदायों में कोई-कोई बहुत उन्नत भी हुए हैं किन्तु हमारी माँ का वैसा कुछ भी नहीं है। और दल में विशेष उन्नत ही कौन है?’’

माँ ने कहा–‘‘देखो, तुम लोग इस तरह एक अलग घेरा क्यों बना लेती हो? तुम तो जानती हो उस प्रकार के नामी महात्माओं के आश्रित लोगों में कोई-कोई आकर इस शरीर से साधन-भजन के सम्बन्ध में पूछ जाते हैं। तुम्हें उनकी खबर नहीं है। वे छिपकर आकर पूछ जाते हैं और कहते हैं– ‘‘हम यहाँ आये हैं यह बात प्रकट न हो जाय’’ क्या कहूँ, सुनो। ऐसे भी एक-एक व्यक्ति की अवस्था है कि साधन में उन्नति न होने से आत्महत्या करने के लिये तैयार, शायद कुछ कहा गया, मैं तो नहीं कहती तुम लोग

कहलवा लेती हो–उस बात को सुनकर वह शान्त भाव से चला गया और काम करने लगा, फिर आकर खबर दे गया कि साधन में अच्छा फल पा रहा है। तो बात क्या है जानती हो? इस शरीर के लिये तो सभी एक हैं। इस कारण जो लोग पास रहते हैं यदि वे उन्नत हुए तो इस दल का नाम होगा और दूसरे सम्प्रदाय के मनुष्य को साधन की बात बता देने से यदि वह उन्नत हुआ तो इस शरीर का नाम नहीं होगा, ऐसी बातें तो यहाँ कुछ भी नहीं है, इतना कहकर हाथ को बच्चों की तरह घुमा–फिराकर मुस्कुराने लगी। फिर बात चली कि कोई–कोई महात्मा कह देते हैं कि अमुक व्यक्ति अमुक स्तर में है, उनकी अवस्था ऐसी–ऐसी है। माँ ऐसी बातें नहीं कहती, इस बात पर माँ ने कहा–"देखो, मैं क्या कहूँ? शरीर में हाथ, पैर, अंगुलियाँ अपनी–अपनी जगह पर हैं। तो क्या कहना पड़ेगा कि मेरा हाथ इस स्थान पर है, पैर उस स्थान पर है और अंगुलियाँ इतनी बड़ी–बड़ी हैं। किसी भी महापुरुष का नाम लो अथवा जीव–जन्तु, वृक्ष–लता कुछ भी कहो सभी तो उस एक के सिवाय और कुछ नहीं है। इसलिये ऊपर–नीचे तो खयाल होने से इतना हो सकता है कि मेरी इस अंगुली में जख्म हो गया है और वह अंगुली अच्छी है।"–इतना कहकर माँ हँसने लगी। माँ ने फिर से कहा–"शंकराचार्य का मत भी इस शरीर की तरह है। सारे मत ही यहाँ एक हैं। अबाध गति है और क्या?" मैंने कहा–"शंकराचार्य का नाम लिया गया।" माँ हँसकर बोली–"हाँ, बाबा का नाम मुख से निकल गया।" इतना कहकर फिर बोली–"सबको लेकर ही इस शरीर का सम्प्रदाय है। फिर पृथक्–पृथक् भी व्यवहार में है। सब रूपों में और पृथक्–पृथक् रूप में भी है।"

कार्तिक 24, गुरुवार– माँ के भीतर का भाव बीच–बीच में चुपचाप होता जाता है। बीच–बीच में बात भी होती है। कल परम श्रद्धेय श्रीयुत् गोपीनाथ कविराज महाशय माँ को तीसरे पहर अपने यहाँ ले गये थे। बातचीत करके रात को 9 बजे माँ लौट आयी। सिद्धि माता के पास भी माँ कल फिर लौटते समय गयी थी। वह खालिसपुरा की माँ के नाम से भी परिचित हैं। ऊँची अवस्था है। उनके पास माँ ने एक लड़के को दीक्षा देने के लिये भेज दिया और बात–बात में कहा–"देखो, जिसके पास जो–जो पाना रहता है वह उसे अवश्य लेगा। परन्तु इस शरीर की बात है कि यहाँ से जिसका जो कुछ पाना है दूर रहने पर भी वह पायेगा। ऐसा नहीं है कि जो पास रहेगा केवल वही पायेगा।"

कार्तिक 25, शुक्रवार– आज भोर में बड़ी नाव से एक छोटी नाव में उतरकर कुछ समय तक हम लोग माँ को लेकर गंगा में घूम आये। उसके बाद ही माँ के भाव में परिवर्तन दिखाई पड़ा। शरीर मानो अवश है। इस तरह कुछ घण्टे बीते। उसके अनन्तर माँ का भाव कुछ स्वाभाविक होने पर भी मानो कुछ तन्द्रा का भाव था। माँ ने आज ही विन्ध्याचल चलने की बात कही। अत: हम लोग तीसरे पहर विन्ध्याचल रवाना हुए।

कार्तिक 26, शनिवार– आज सुबह आश्रम का मकान तोड़ा जा रहा है। दो मंजिल बनेंगी। उस दृश्य को दिखाकर माँ ने कहा–''यह देखो नया बनाने के लिये कितना तोड़-फोड़ करना पड़ता है, पर मूल भित्ति एक ही रहती है– जैसे सत्य निरंतर एक ही भाव से है। और बाहर का अंश तोड़-फोड़कर बनाया जाता है। बनाने के पहिले तोड़ना-फोड़ना आवश्यक है। तभी तो नया बनता है।'' एक ने कहा–''माँ बड़ी जलन है।'' माँ ने कहा–''जलन तो अच्छी है।''

आज भी माँ का वैसा ही तन्द्रालु भाव है। दोपहर को माँ जाकर पेड़ के नीचे बैठ गयी। तीसरे पहर घूमने निकली। कुछ दूर चलकर लौट आयी।

सन्ध्या समय श्रीयुत् गोपीनाथ कविराज महाशय काशी से आये। रात्रि में उनके साथ बहुत-सी बातें हुई। माँ के शरीर में जो क्रिया आदि हुई थी उनके बारे में बात चली। षष्ठी देवी के स्थान पर बैठकर ही बातचीत होने लगी। पहाड़ की गम्भीर निस्तब्धता-रात्रि में वह स्थान और भी निस्तब्ध हो गया। माँ वैसी बातें कविराज महाशय से कहने लगी। स्थान, काल और पात्र का उत्तम सम्मिलन हो गया। रात के लगभग डेढ़ बजे तक बातचीत हुई।

माँ के साथ कविराज महाशय की विविध बातें

गोपीनाथ बाबू ने कहा–''माँ, उस झूलन पूर्णिमा के दिन दीक्षा की तरह जो हो गया था उसके बाद क्या शरीर की क्रियादि में कोई परिवर्तन हुआ?'' माँ ने उत्तर दिया–''दीक्षा तो नहीं''। गोपीनाथ बाबू ने इस बात का समर्थन करते हुए कहा–''वह तो नहीं ही है माँ। किन्तु जो घटना हुई थी उसे केवल इतना ही कहा जा सकता है।'' माँ ने कहा–''उस घटना के बाद से आसन-मुद्रा आदि अनेक क्रियाएँ विशेष रूप से होने लगी। कैसा चमत्कार है देखो, मैं उस समय क्या देखती थी, जानते हो? साँस एक-एक समय एकदम बन्द हो जाती थी। तो उस समय अनजान की तरह व्यवहार चला। साधन की

क्रियाएँ चल रही थी। साधक की प्रथम अवस्था की तरह सब ठीक-ठीक होने लगा। उस अवस्था में भोलानाथ से मैं कहा करती थी कि तुम तो कभी-कभी अन्य स्थान पर चले जाते हो किन्तु मुझे इस तरह हो जाता है। मैं तो अकेले ही रहती हूँ।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी। इसी को तुम लोग कुम्भक या क्या कहते हो? गोपीनाथ बाबू ने हँसकर कहा-''हाँ, माँ।''

उसके बाद माँ ने कहा-''उसके बाद उस झूलन पूर्णिमा के दिन शरीर में कुछ शिथिल भाव प्रतीत होने लगा। मैंने भोलानाथ को बताया। उसके बाद रात को भोजन आदि कराया, इतना कहकर फिर बताने लगी-''दीक्षा आदि होने पर क्या भोजन हो सकता था? भोजन के बाद मैंने आकर भोलानाथ को कहा-देखो, मेरा शरीर आज न जाने कैसा हो रहा है। मैं जमीन पर बैठती हूँ इतना कहकर मैं जमीन पर बैठ गयी। अनेक क्रियाएँ होने लगी। जैसी तुम्हारे यज्ञ आदि में करनी होती है उसी तरह की क्रियाएँ करने लगी। उसके बाद जो बीज उस दिन उदित हुआ वह बीज बाद में मध्य स्थान में लिखा गया था। उसके बाद उस बीज पर ही आहुति भी हुई। उस दिन भीतर से उस समय एक बीज निकला। वह बीज कुछ दिन स्थायी था। उसके अनन्तर और भी अनेक बीज निकले। उन बीजों के द्वारा पूजा आदि होकर फिर सब खत्म हो गये। किन्तु प्रथम बीज तीन साल तक के मौन को तोड़ने पर भी कुछ दिन तक था। कंठ से कभी-कभी उसका उच्चारण भी होता था। फिर देखो, बीज पाने के बाद जप भी होता था यहाँ तक कि सिर पर और छाती पर हाथ रखकर जप होता था।'' गोपीनाथ बाबू ने पूछा-''उस जप के बन्द हो जाने पर क्या अवस्था हुई?'' माँ ने उत्तर दिया-''उसके बाद एक शून्य अवस्था।''

इसके अनन्तर दीक्षा समय की और भी अनेक बातें हुई। सारी बातों को मैं ठीक से लिख नहीं सकूँगी। उसके बाद गोपीनाथ बाबू ने कहा-''माँ, उस दिन काशी में बगीचे के भीतर बैठकर जब मेरे साथ आप बातें कर रही थी उस समय वहाँ कौन गये थे? आपने इस समय नहीं जाऊँगी इस प्रकार का एक शब्द बोला था, मुझे ऐसा ही प्रतीत हुआ था।'' माँ थोड़ा हँसकर बोली-''तुम कुछ समझ गये थे, कोई अशरीरी वहाँ गये थे? तुमने किस प्रकार देखा था बताओ?'' गोपीनाथ बाबू ने कहा-''मैंने तो उधर ध्यान ही नहीं दिया था। बाद में एक ज्योति की तरह देखा।'' गोपी बाबू ने माँ की बात के उत्तर में यह भी स्वीकार किया कि बीच-बीच में वह इस प्रकार के

भाव समझ सकते हैं। उस दिन उनके रोंगटे खड़े हो गये थे। माँ ने पूछा था क्या तुम्हें डर लगा है?'' ऐसी और भी अनेक बातें हुई। माँ ने कहा-''जो आये थे वह सदा ही वहाँ जाते हैं। उस दिन भी गये थे।'' शंकरानन्द स्वामीजी ने पूछा-''माँ, क्या वह साधना में सहायता दे सकते हैं?'' माँ ने गोपीनाथ बाबू से कहा-याद कर देखो, उस समय हम लोगों में किस भाव की बात हो रही थी? जिस-जिस भाव की बात जहाँ होती है उस-उस भाव के अशरीरी लोग भी उस समय बिना बुलाये वहाँ आकर जमा हो जाते हैं। एक-एक समय तुम देखते ही हो कि बातचीत अच्छी तरह जम गई, तब समझना होगा कि वे अशरीरी लोग वहाँ आकर उस बात के भाव में सहयोग दे रहे हैं। इस कारण वहाँ का भाव जम गया है। इस समय यहाँ जो बातें हो रही हैं यहाँ भी वे हैं। रात्रि सुनसान, चाँदनी फैली हुई चारों ओर स्तब्ध होकर मानो माँ की बात सुन रही है-अनिवर्चनीय रूप देख रही है। मैं, माँ, गोपीनाथ बाबू और शंकरानन्द स्वामीजी इन चार आदमियों की षष्ठी देवी के स्थान पर बैठकर बातें हो रही थी। उस समय की बात को मैं भाषा में प्रकट नहीं कर सकूँगी, वह केवल अनुभव करने का विषय था।

कार्तिक 27, रविवार- आज दिन के 8 बजे हम लोग माँ को साथ लेकर घूमने निकले। जो लोग विन्ध्याचल के अष्टभुजा पहाड़ पर आये हैं वे ही जानते हैं कि इस पहाड़ की शोभा कैसी अपूर्व है। हम लोग चलते समय समतल भूमि में एक पेड़ के नीचे जाकर बैठ गये। नेपाल दादा भी काशी से उसी समय आ पहुँचे। नेपाल दादा ने कहा-''प्राचीन समय के ऋषियों की बात याद आती है। उसी तरह खुले स्थान में माँ को लेकर सब लोग वृक्ष के नीचे बैठे हैं।''

श्रीयुत् गोपीनाथ कविराज महाशय ने आज भी माँ से विविध भावों की बात सुनने के लिये प्रश्न पूछे। उपयुक्त पात्र थे इस कारण माँ के मुख से अनेक बातें निकल रही थी। आज की बातें भी मैं मिलाकर लिख नहीं सकूँगी। यदि कविराज महाशय इस सम्बन्ध में कुछ लिखें तभी लोग उसे जाने सकेंगे। मैं असमर्थ हूँ। केवल दो-एक बातें ही यहाँ लिख रही हूँ। बात-बात में माँ ने कहा-''देखो बाबा, दीक्षा आदि के अनन्तर जब पूजा आदि होती थी तब घर में कुछ न होने पर धूप, दीप, नैवेद्य आदि सजाकर पूजा हो जाती थी और क्या होता था जानते हो?'' एक प्रकार की क्रिया दिखाकर माँ ने फिर पूछा-''इस तरह अपने भीतर से देवता को बाहर

निकालकर पूजा करके फिर अपने में मिला दिया जाता था।'' गोपीनाथ बाबू ने कहा-''माँ, शास्त्र में भी ठीक ऐसी ही बात है।''

उसके बाद माँ ने कहा-''यह एक प्रकार की बात हुई। फिर अपने भीतर ही मंत्र आदि निकलने लगे। तुम लोग मंत्र-द्रष्टा ऋषि की बात कहते हो। बाबा, क्या यह वही है?'' गोपीनाथ बाबू ने कहा-''हाँ माँ, यह भी वैसा ही है।'' माँ ने कहा-''प्राय: मेरे मुख से 'सोऽहं' शब्द निकला करता था। खुकुनी ने भी सुना है।'' गोपीनाथ बाबू ने पूछा- ''अच्छा माँ, अपने भीतर से भी मंत्र आदि निकलते हैं। फिर समय-समय पर बाहर से भी कोई-कोई आदेश मिलता है वह किस अवस्था में?'' माँ बोली-''वह जो बताया कि अपने भीतर से ही देवता को बाहर निकालकर पूजा होती थी उस समय देवता ऐसे प्रत्यक्ष होते हैं कि वरदान, आदेश आदि सुनाई पड़ते हैं। कितना कहूँ बाबा, यह तो अनन्त हैं।'' ऐसी बातें कहते हुए माँ को मानो कुछ भावान्तर हुआ। गोपीनाथ बाबू ने उसे देखकर कहा-''इन बातों से अब कोई प्रयोजन नहीं है। माँ फिर उसी भाव में डूब जायेंगी। इस समय नीचे रखना ही अच्छा है।'' माँ ने कहा-''कोई गोलमाल तो नहीं है, जैसे तुम्हारी हँसी में, बात में सहयोग देती जाती हूँ यह भी वैसा ही उस भाव में योग देना है।''

इतना कहकर माँ फिर बोलने लगी-''देखो, वैसी क्रिया आदि जब अपने आप हो जाती थी तब इच्छाशक्ति का प्रयोग करते ही शरीर अस्त-व्यस्त हो जाता था। तभी तो द्रष्टा स्वरूप में सब कुछ दिखाई पड़ता था। मेरी इच्छाशक्ति की कोई सामर्थ्य ही नहीं है, वह जैसा कराते हैं, वैसा ही हो जाता है,उस महाशक्ति की क्रियायें इस शरीर में हो जाती हैं और मैं बैठी-बैठी देख रही हूँ। यही तो द्रष्टा है। कोई गोलमाल नहीं, अभाव बोध, कष्टबोध नहीं है। जो बाहर निकलने योग्य है वह निकल जाता है, जो बाहर निकलने के योग्य नहीं है उसे कहने की चेष्टा करने पर भी जिह्वा को दाँत से काट लेने का भाव होता है अथवा दो अंगुलियों से मुँह दबाकर रखा जाता है। इस तरह कितना कहूँ? सभी अनन्त हैं। ऐसे न कह सकने के कारण भी दु:ख नहीं है। अभाव बोध भी नहीं है। कहने के लिये मन में कोई आवेग भी नहीं है। इसलिये कोई गड़बड़ी भी नहीं है। तुम लोग जिस प्रकार का आघात देते हो उसी प्रकार का शब्द निकाल लेते हो बस।'' इतना कहकर माँ छोटी बच्ची की तरह हाथ से ताली बजाकर हँस पड़ी।

दिन को 10 बजे हम लोग आश्रम लौट आये। माँ के भीतर कहीं जाने का भाव बहुत है। हमें आशंका हो रही है कि न जाने किस समय निकल पड़ेंगी? इलाहाबाद से भी जितेन दादा, शिवप्रसाद दादा आदि लोग आये हैं।

कुछ दिनों से दूध ग्रहण करने का भाव भी घट गया है और डॉक्टर पन्त ने जो खाने और विश्राम लेने का नियम कर दिया था उसे भी उन्होंने तोड़ दिया। आज श्री श्री माँ ने कहा–''खुकुनी सब नियम तोड़ दो। जब मैं उठूँगी तब खाऊँगी। जब सोने का भाव होगा, तब सोऊँगी। अपना समय अब तोड़ दो। मैं अब सोऊँगी। मैंने झट थोड़ा-सा दूध पिला दिया। एक कश्मीरी भक्त स्त्री कुछ फल लेकर आई थी। कुछ माँ को खिला दिया बाकी सबको बाँट दिया। तीन खेमे डाले गये थे। माँ के लेटते ही सब लोग अपने-अपने खेमों में जा बैठे।

विन्ध्याचल में जिससे माँ कुछ दिन रहें उसके लिये लोग बहुत प्रबन्ध करने लगे। माँ से भी अनुरोध किया गया ताकि शरीर स्वस्थ न होने तक माँ कुछ दिन विन्ध्याचल में रहें किन्तु माँ के भाव से मालूम होता है कि माँ यहाँ अधिक दिन नहीं ठहरेंगी, कब उतर जायें पता नहीं। चारों ओर का प्रबन्ध देखकर माँ केवल हँसती हैं और कहती हैं–''एक साँस का तो भरोसा नहीं है और मैं भी कहाँ कितने दिन रहूँगी उसका भी ठिकाना नहीं है। इतना प्रबन्ध देखकर हँसी आती है''–तो भी किसी को संतोष न होता था इस कारण वे यथासाध्य सेवा की व्यवस्था कर रहे हैं। माँ का शरीर भी बहुत दुर्बल है किन्तु हम सब लोग जानते हैं कि माँ को कोई बाँध नहीं सकेगा, कब सब तोड़-ताड़ कर चल देंगी, पता नहीं।

कार्तिक 28, सोमवार– आज सुबह माँ घूमने निकली हैं, लौटते समय कहा–''आज उतरना होगा।'' जितेन दादा और शिवप्रसाद भाई कल ही चले गये। वे माँ का भाव देखकर समझ गये कि किसी तरह भी माँ को रखा नहीं जायेगा। इस कारण वे अनुरोध कर गये हैं कि उतरने पर माँ एक बार इलाहाबाद होकर जायें। इस कारण आज माँ ने कहा–''देखो, किस गाड़ी से जाना अच्छा ठीक होगा?'' निश्चय हुआ कि सन्ध्या 7 बजे की गाड़ी से सब लोग एक साथ चलेंगे। श्रीयुत् गोपीनाथ कविराज महाशय और उनकी लड़की आज दो दिनों से यहाँ आये हुए हैं। वे भी उसी समय काशी जायेंगे। इस कारण सब लोग एक ही साथ उतरेंगे। अभय कुछ दिन कविराज महाशय के पास रहेगा।

सन्ध्या के पहले ही हम लोग पहाड़ से उतरे। शिवप्रसाद बाबू के परिवार की स्त्रियाँ साथ हैं। उनके सिवाय श्रीयुत् यतीशचन्द्र गुहा महाशय का परिवार भी हमारे साथ चला। सबको साथ लेकर ही इलाहाबाद रवाना हुए। काशी जाने वाले पहले ही चले गये। उसके बाद हम लोग इलाहाबाद रवाना हुये। रात के 10 बजे हम लोग इलाहाबाद पहुँचे। जितेन दादा और शिवप्रसाद बाबू आदि स्टेशन पर थे। वे हमें लेकर बजरे में गये।

इलाहाबाद में गंगा पर नाव में अवस्थान

कार्तिक 29, मंगलवार– आज माँ को कुछ ज्वर का भाव है। अनेक लोग माँ के दर्शनों के लिये नाव में आ रहे हैं। आज दोपहर को यहाँ के दो सम्पन्न व्यक्ति माँ के दर्शनों के लिये आये हैं। सुना है कि वे दोनों चाचा, भतीजे हैं (कन्हैयालाल)। माँ से उन्होंने पूछा–"माँ, हमारा एक कीर्तन का स्थान है। वहाँ रोज कीर्तन होता है। आप एक बार वहाँ पधारें तो हम कृतार्थ होंगे। महीने में एक बार अष्ट प्रहर कीर्तन होता है– इत्यादि।" कीर्तन की दिन–प्रतिदिन वृद्धि हो रही है इस विषय में भी बहुत कुछ कहा।

माँ ने कहा–"देखो बाबा, तुम्हारी बात सुनकर बहुत ही आनन्द हुआ। तुम लोग दिनों–दिन कीर्तन में अधिक समय दे रहे हो, यह बहुत ही प्रसन्नता का विषय है। तुम चाहो तो और एक काम कर सकते हो। कीर्तन आरम्भ करने के पूर्व शान्त भाव से कुछ समय तक स्थिर होकर बैठने से सबका एक स्थिर भाव जगेगा और आनन्द मिलेगा। समझ लो कि कम–से–कम महीने में एक दिन। धीरे–धीरे समय बढ़ा सकते हो, कोई हानि नहीं है। महीने में कम–से–कम एक दिन सब स्त्रियाँ मिलकर एक समय ध्यान–जप आदि करें। पुरुष लोग दूसरे समय मिलकर ध्यान–जप करें। सच कहा जाय तो ध्यान करने से नहीं होता अपने आप हो जाता है। ध्यान है स्वयं प्रकाश। परन्तु जिस प्रकार यथार्थ संन्यासी होने के लिये संन्यास वृत्ति लेनी पड़ती है उसी प्रकार ध्यान होने के लिये भी ध्यान की वृत्ति लेनी होती है। होना और करना दोनों में बहुत भेद है।"

शाम को माँ को घूमने के लिये ले जाया गया। थोड़े समय के लिये शिवप्रसाद बाबू के घर भी जाना हुआ। थोड़ी देर बाद ही माँ को लोग नौका में ले गये। जाने के रास्ते में कीर्तन के स्थान पर माँ कुछ समय तक बैठ गई थी। शिवप्रसाद बाबू ने माँ के लिये अपने अहाते में खेमा खड़ा

किया था। परन्तु माँ ने नाव में रहने की इच्छा प्रकट की।

आज एक घटना घटी। वह ऐसी है-एक बहुत ही सीधी-सादी बुढ़िया संज्ञा दीदी के यहाँ काम करती थी। वह माँ की सेवा करने के लिये माँ के साथ चली आई। कल वह बुढिया माँ से कुछ कहने जाकर रोने लगी। मैंने कहा-''तुम्हारी बात माँ बाद में सुनेंगी। माँ ने भी कहा-''खुकुनी, समय निकालकर इसकी बात मुझे बताना। नहीं तो तुम्हारा दोष होगा।'' वैसा ही हुआ। आज गंगा किनारे माँ नाव से उतरकर खड़ी हो गई। बुढ़िया कहने लगी-''माँ, मैंने कुछ दिन पहले कलकत्ते में जप करने बैठकर देखा था कि मानो एक बहुत ही सुन्दर पुरुष सामने खड़े हैं। गले में सफेद जनेऊ है। मानो किसी ने कहा-नारायण, मैं साफ देख रही थी यकायक शिव-मूर्ति दिखलाई पड़ी। फिर देखी माँ, तुम्हारी यह मूर्ति। पीछे मानो अभय लड़का खड़ा है। मैंने बहुत देर तक देखा। किन्तु खेद की बात है कि मैं नारायण का चरण दर्शन नहीं कर पाई और उन्होंने कोई बात भी मुझसे नहीं कही।'' इतना कहकर वह रोने लगी। माँ ने कहा-''तुम रोओ मत, अपने इष्ट-मंत्र का सदा जप करती रहो।'' मैंने कहा-''तुम मत रोओ, माँ के चरणों का दर्शन करो। यही तो माँ तुम्हारे साथ बातें कर रही हैं। तुम शान्त हो जाओ।'' उसने माँ को प्रणाम किया। एक बात सोचकर मैं अचम्भे में आ गई। ढाका से आते समय स्टीमर में एक अपरिचित लड़की ने माँ से दीक्षा पाई है कहकर जो बात प्रकट की थी उसका उल्लेख पहले ही किया गया है। वह लड़की भी माँ को नहीं जानती थी। वही उसका प्रथम दर्शन था। उस लड़की ने भी कहा था कि माँ ने उसे **'नारायण'** मंत्र दिया है। और माँ के मुख से अपना परिचय **'पूर्ण ब्रह्म नारायण'** निकला था। फिर इस वृद्धा ने भी नारायण मूर्ति देखी, कौन जानता है कि इसके भीतर कहाँ किस तरह का योगायोग है?

श्री अरविन्द और महर्षि रमन के साथ भेंट हुई है क्या

आज डॉक्टर पन्नालाल आई.सी.एस. कमिश्नर और दूसरे बहुत से लोग आये हैं। एक महाशय माँ की बहुत-सी बातें लिख रहे हैं। उनमें से एक ने पूछा-माँ **अरविन्द घोष** महाशय सबके साथ भेंट नहीं करते। आपकी भेंट उनसे हुई है या नहीं? बाहर की ओर से माँ की भेंट उनसे नहीं हुई है। परन्तु माँ ने उत्तर दिया-''पिता के साथ क्या लड़की की भेंट नहीं होती?'' फिर एक ने पूछा-''माँ दाक्षिणात्य के **रमण महर्षि** हैं। उनसे आपकी भेंट होती है?''

बाहर की ओर से उनसे भी माँ का साक्षात्कार नहीं हुआ। परन्तु इस बात पर भी माँ ने पहले का सा उत्तर दिया। इस बात को सुनकर कमिश्नर श्रीयुत् पन्नालाल के हृदय में न जाने कैसा आकुल भाव हुआ, उन्होंने हाथ जोड़कर कहा–''माँ, हम आपके साथ कितने ही खेल खेलते हैं। हमें आप क्षमा कीजियेगा।'' इस भाव को देखकर ऐसा लगा कि मानों गीता में श्रीकृष्ण और अर्जुन का कथोपकथन चल रहा हो। श्रीयुत् पन्नालाल की आँखों से आँसू गिरने लगे। माँ ने हँसकर कहा–''क्या बाप बेटी को इस तरह कहते हैं? यह तो गैर की तरह बात हुई।''

एक व्यक्ति ने कहा–''माँ, कार्य करके गुरु की कृपा प्राप्त करनी होती है।'' माँ ने कहा–''गुरु की अहैतुकी कृपा है ही। भीतर ही तो गुरु हैं। कार्य करने की इच्छा जब जागती है तो वह भी तो गुरु की ही कृपा है। इस कारण कहना होगा कि गुरु की कृपा से सब कुछ होता है तथापि एक अवस्था ऐसी है जब गुरु की कृपा का अनुभव होता है।''

वैद्यनाथ धाम की यात्रा

कार्तिक 30, बुधवार– आज माँ रवाना होंगी, इनके भाव से ऐसा मालूम पड़ता है। किन्तु कहाँ जायेंगी, कुछ नहीं बता रही हैं। तीसरे पहर जितेन दादा को बुलाकर माँ ने कहा–''देखो तो कहाँ की गाड़ी कब?'' अन्त में निश्चय हुआ कि माँ रात को 9 बजे की गाड़ी से वैद्यनाथ जायेंगी, साथ में मैं, रूमादेवी और महामाया (यह स्त्री अब की बार कलकत्ता से माँ की सेवा के लिये साथ आई है) जायेंगी। स्वामी अखण्डानन्दजी, मनोरंजन (एक ब्रह्मचारी यह भी अब की बार कलकत्ते से माँ के साथ आया है।) आदि विन्ध्याचल चले जायेंगे। माँ ने कहा–''मैं कहाँ जाऊँगी कुछ ठीक नहीं है।'' सभी ने समझ लिया कि माँ को बाधा देने से वह बाधा नहीं मानेंगी। इसलिये सब लोग चुप रह गये। अखण्डानन्दजी को बड़ा कष्ट हुआ, किन्तु माँ का आदेश सिर पर लेना पड़ा।

रात को 9 बजे हम लोग रवाना हुए। यतीश दादा की माँ, पत्नी और लड़की यूथिका तथा प्राणकुमार बाबू की छोटी लड़की अनु भी हमारे साथ चली।

* * *

ग्यारहवाँ अध्याय

(सन् 1345 बंगाब्द)

वैद्यनाथ धाम में श्री श्री माँ

1 अगहन, गुरुवार– आज सवेरे साढ़े दस बजे हम लोग वैद्यनाथ धाम पहुँच गए। सभी संभवत: यह अनुमान कर रहे थे कि यहाँ श्रीयुत् प्राणगोपाल बाबू हैं, माँ उन्हें दर्शन देने के लिये वैद्यनाथ धाम आयी हैं। लेकिन आश्चर्य तो यह है कि इस चरित्र को समझना बहुत ही मुश्किल है। माँ कर्निबाग आश्रम में न जाकर नयी धर्मशाला में आकर ठहरी। ट्रेन से आते समय मार्ग में अनेक नये-पुराने मकान दिखलाई पड़े। उन्हें देखती हुई वे मुझसे कहने लगी–"देख, खुकुनी! यह जो देख रही है, कितने मकान कितने सुन्दर ढंग से बनाये गये हैं, फिर कितनी सुन्दर-सुन्दर शक्लों में, कितने रूपों में, क्या सुन्दर गठन है। इन्हें देखकर तू आनन्दित होती है, लेकिन प्रत्येक के भीतर भोग करने जाकर परिणामों की चिन्ता करती है। लेकिन इधर देख नये मकानों के सामने ही पुराने और टूटे मकान मौजूद हैं। एक दिन ये भी नये थे, यही है गति। नये देखते-देखते पुराने हो जाते हैं। इसी को कहते हैं-गतागति जगत्। अगर इस भावना को खाते-सोते समय चिंतन करती रहे तो काफी हद तक अलग रह सकती है।"

पुन: बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी–'उपनिषत्' ना उप जहाँ है, वहीं निषेध है। इसलिए जो कुछ उप है, उसे तुम लोग अलग कर दो। भाषा के द्वारा कहने पर 'अलग कर दो', कहना पड़ेगा।

माँ के श्रीमुख से सूर्य त्राटक की व्याख्या

फिर सूर्य त्राटक के बारे में समझाने लगी–'एक बार अन्तर से यह भाव उत्पन्न हुआ कि त्राटक करना चाहिए पूर्ण रूप से वस्त्रादि त्यागकर, मुक्त स्थिति में। रात को सोते समय जो स्थिति रहती है, प्रात:काल आँखें जैसी लाल रहती हैं, इसी भाव की आँखें लेकर, परिधान शून्य होकर, सूर्योदय के समय सीधे रूप में जब तक हो सके खड़ा रहना चाहिए। इस शरीर में सब

कुछ अपने आप हो जाता था, ऐसा भी होता था कि एक महीन वस्त्र पहनकर, उसी भाव में सुधिहीन होकर खड़ी रहती थी। धीरे-धीरे दोनों हाथ ऊपर की ओर उठ जाते, फिर सीधे रूप में कुछ देर ठहरकर नीचे की ओर झुकते हुए गिर पड़ते थे। इस प्रकार सुधिहीन स्थिति में सूर्य की ओर लक्ष्य रहता और सुधिहीन भाव में आवश्यकतानुसार यह शरीर स्थिर रहता था। सूर्य प्रणाम के समय भौहों के मध्य जिसे तुम मुद्राएँ कहती हो, हाथों के द्वारा वह सब कुछ होकर सूर्य प्रणाम हो जाता था। जो ज्योति दिखाई देती थी, वह इस त्राटक भाव के पूर्व का आरम्भ है। त्राटक मात्र तो कुछ समय के लिये हुआ था। त्राटक के पश्चात् जो ज्योति रोशनी आदि की तरह चमक उठती है, वह पहले-पहल अधिकतर दिखाई देती है, सूर्य की ओर देखने का संस्कार भाव रहता है न, इसीलिए उसी तरह और तरह-तरह की अन्य रोशनियाँ दिखाई देती हैं। शरीर के यंत्रों में उसकी छाप रहती है न, और यों भी देखो, आग की ओर एकटक काफी देर तक देखते रहने के बाद आँखें बन्द करने पर देखोगी कि वही रंग दिखाई देता है। फोटो आदि की ओर देखने पर ऐसा होता है, आँखें मूंद लेने पर भी वही रूप दिखाई देता है। लेकिन यह सब बाहरी चीजें हैं। दूसरी ओर अंधेरे में और अन्य समय में भी उसी प्रकार का प्रकाश प्रकट होता है। इसके भीतर और भी है, यह सब विचार में आते थे। यह जो सूर्य का तेज रंग तत्स्वरूप होकर प्रत्यक्ष भाव से प्रकट होता था, वह पूर्ण रूप में तद्भावापन्न हो जाता था, जिस प्रकार बच्चों को पढ़ाते समय उसके अन्तर में जो-जो बाते हैं, उसके साथ मिलकर प्रकट होती हैं, ठीक उसी प्रकार सूर्य के सहयोग से अपने अन्तर का सूर्य स्वरूप तद्भावापन्न होकर प्रकट हो जाता है, वास्तविकता यही है। इसके भीतर और न जाने कितने विषयों का योगायोग है। असल बात तो यह है कि हमारे भीतर जो चन्द्र-सूर्य है, उनका प्रभाव और उनकी गतिविधियाँ प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होती हैं। आँख आदि का कोई विघ्न न हो, इसे जो गुरु पूर्वापर के माध्यम से निर्द्वन्द्व प्रत्यक्ष रूप में देख लेते हैं, वे ही सब बता सकते हैं। इस शरीर के भीतर जितने समय तक जिस रूप में रहने की आवश्यकता है, वह अपने आप हो जाता था। इसे साधारण तौर पर गुरु पूर्वापर देखकर बता देते हैं। संशय उत्पन्न होने पर गुरु को सब कुछ बता देना चाहिए।''

इतना कहने के पश्चात् वे मुझसे कहने लगी–''खुकुनी याद है एक बार कलकत्ता में एक लड़का न जाने किसकी बातों में आकर सूर्य त्राटक कर अपनी आँखों को गंवा बैठा था। डॉक्टर ने उसे देखकर बताया कि अगर एक दिन पहले आते तो कोई उपाय करता। अब इस वक्त कुछ नहीं किया जा सकता।''

आगे माँ पुनः कहने लगी–''होता क्या है जानती है? आसन–मुद्रादि क्रियाओं के समय जो भावनाएँ रहनी चाहिएँ जब तक वह नहीं रहती तब तक उससे लाभ नहीं मिलता; ठीक उसी प्रकार हम त्राटक का संपूर्ण लाभ प्राप्त नहीं कर पाते। अधिकतर इससे हानि ही होती है। जैसे पथ्य और औषध के साथ–साथ चलने पर ही हम रोग–मुक्त होते हैं।''

हम लोग धर्मशाला में ठहरे हैं। पण्डों के उपद्रव से मैं परेशान हो गयी। कहाँ मकान है? क्या नाम है, आदि प्रश्नों से हमें तंग कर रहे हैं। खैर, यह सब झंझट समाप्त हो जाने के बाद खाने–पीने का प्रबन्ध कर मैं माँ का मुँह धुलाने के लिये ले गयी। माँ का मैं मुँह धुला रही हूँ, यह देखकर एक महिला माँ से बोली–''तुम्हारे हाथ नहीं है क्या? तुम क्या स्वयं नहीं धो सकती?''

माँ हँसकर उसके हाथों की ओर इशारा करती हुई बोली–''ये भी तो मेरे हाथ हैं।''

वह जरा भौचक्क हो गयी। मैंने कहा–''आप एक साधु माँ हैं।''

इतना सुनना था कि उक्त महिला न जाने क्यों जरा परेशान–सी हो गयी। पास आकर बोली–''मैं पैर छू सकती हूँ?''

मैंने कहा–''छू सकती हो।''

तुरन्त वे पैरों पर गिरकर प्रणाम करने के पश्चात् माँ से लिपटकर चिर परिचितों की भाँति रोने लगी। माँ हँसती हुई उसकी पीठ सहलाने लगी।

बोली–''तुम कहाँ रही?''

वह बहुत देर तक रोती रही, थमती नहीं थी। मैं यह देखकर अवाक् रह गयी। थोड़ी देर बाद वह अपने अन्य साथियों को ले आयी और माँ के चरणों में प्रणाम करवाने लगी। पता चला कि ये लोग नासिक की रहने वाले हैं। माँ अगर कभी नासिक की ओर जायें तो इन लोगों को अवश्य सूचित

किया जाय। ये लोग आज ही चली जा रही हैं। माँ जब मुँह धोकर वापस आयी तो उक्त महिला ने माँ को माला पहनायी, फल खिलाये। बाद में चरण-सेवा करने बैठी।

मैंने हँसकर कहा-''जहाँ कहीं भी छिपी क्यों न रहो, तुम्हारा माला-चन्दन सर्वत्र चलता रहेगा।''

कलकत्ते में किसी को खबर देने के लिये माँ की मनाही थी। यहाँ कब तक ठहरेंगी, पता नहीं। शाम को 4 बजे वे महिलाएँ अन्यत्र चली जायेंगी। माँ के विश्राम के लिये दरवाजा बन्द कर दिया गया। उक्त महिला घबराने लगी। साढ़े तीन बजे दरवाजा खोलकर वह माँ के कमरे में गयी और उनसे बातचीत करने लगी। इसी प्रकार माँ की आकर्षण-शक्ति नाना रूप में फैल गयी।

2 अगहन, शुक्रवार- शंकरानन्दजी को आने के लिये तार भिजवाया था, वे आज आ गये हैं। श्रीयुत् प्राणगोपाल बाबू ने समाचार पाकर माँ को आश्रम में लाने के लिये गाड़ी भिजवा दी है और उनकी पत्नी माँ को साथ ले जाने के लिये आयी हैं।

वे आते ही बोली-''माँ, यह कैसी बात हुई? तुम यहाँ आकर धर्मशाला में क्यों ठहरी? तुम्हें देखने के लिये हम लोग कितना व्याकुल रहते हैं और तुमने जरा-सी खबर तक नहीं दी। मैं तुम्हें ले जाने के लिये आयी हूँ।''

माँ तुरन्त हँसती हुई बोली-''माँ तो हमेशा अपनी बेटी के पास दौड़ी हुई आती है। यही तो माँ का स्वभाव है। उसकी पगली बिटिया कहाँ-कहाँ चक्कर काटती है, अगर माँ आकर उसे गोद में न उठा ले तो कैसे बने? अब मैं माँ की गोद में जाऊँगी।'' यह कहकर माँ ने वृद्धा को संतोष दिया।

यह तय हो गया कि 4 बजे सभी आश्रम में जाएँगे। पहले साथी-संगी वैद्यनाथजी दर्शन करने जाएँगे, इसके बाद आश्रम में जाएँगे। शाम के समय पुनः प्राणगोपाल बाबू की पत्नी आकर सभी के साथ माँ को आश्रम में ले गयी। प्राणगोपाल बाबू को दूर से देखते ही माँ हँसती हुई बोली-''मुझे डाँटोगे क्या? मैं तो आपके पास नहीं आयी हूँ।''

माँ की मोटर देखते ही प्राणगोपाल बाबू पास आकर बोले-''यह क्या

माँ? मुझे तुमसे झगड़ना है। तुम उस बार भी बिना दर्शन दिये चली गयी थी। इस बार आने के बाद से खबर नहीं भिजवायी। आखिर बात क्या है? यहाँ न आकर आखिर तुम धर्मशाला में क्यों चली गयी?''

माँ उसी तरह हँसती हुई बोली–''लेकिन मैं तो वहाँ भी तुम्हारे पास ही रही। तुम तो आश्रम में रहते हो। तुम्हारे लिये यहाँ–वहाँ की क्या बात है? मैं एक ही स्थान पर घूमती–फिरती रहती हूँ। वह भी तो एक आश्रम है।''

प्राणगोपाल बाबू हँसने लगे। माँ के रहने के लिये कामधेनु माता के मंदिर का परकोटा साफ कर दिया गया है। मोहनानन्द ब्रह्मचारी इस आश्रम के महन्त हैं। इनके एवं प्राणगोपाल बाबू के जिम्मे आश्रम की देखरेख का भार था। दोनों ही व्यक्ति अच्छे कर्मठ हैं। सन्ध्या के समय मोहनानन्दजी आये और माँ के गले में माला–फूल पहनाकर उन्हें प्रणाम करने के पश्चात् कहा–''माँ को इतने दिनों बाद अपने बेटों की याद आयी।''

इसके बाद माँ को साथ लेकर वे आश्रम का दिग्दर्शन कराने लगे। बाद में कहा–''इस बार हम माँ को जल्दी जाने नहीं देंगे।''

माँ के आने का समाचार सुनकर काफी लोग आये हैं। दर्शनार्थियों की भीड़ देखकर मोहनानन्दजी तथा प्राणगोपाल बाबू माँ को मोटर में बैठाकर घुमाने ले गये। उन्होंने तपोवन का नया स्कूल दिखाया। हमारे साथ दो–तीन व्यक्ति और थे। शाम के बाद हम लौट आये। माँ यहाँ कितने दिनों तक रहेंगी कोई निश्चित नहीं है।

3 अगहन, शनिवार– आज कलकत्ता से इस आशय का समाचार आया है कि वे लोग स्वामी अखण्डानन्दजी के पत्र से माँ के देवधर ठहरने का समाचार जान गये हैं। माँ का समाचार पाकर कुछ लोग दर्शन करने चले आये हैं। सुबह लगभग 9 बजे माँ को यहाँ पर रहने वाली एक माताजी अपने मन्दिर में ले गयी। ये लोग वानप्रस्थी हैं। दोपहर के बाद काफी लोग माँ से मिलने के लिये आये, बातचीत चल रही है। माँ बरामदे में बैठी हुई हैं।

एक डिप्टी मजिस्ट्रेट हैं जो बालानन्द महाराज के शिष्य हैं। नाम है–सुरेन्द्रनाथ सेन। वे कह रहे हैं कि यहाँ एकान्त स्थानों पर कुछ ऐसे पत्थर हैं जिनमें तरह–तरह की मूर्तियाँ प्रकट हुई हैं। बहुत से लोगों को उन्होंने यह

दृश्य दिखाया है। कल माँ को वहाँ एक बार ले जाना चाहते हैं। उन्होंने बताया कि सूर्योदय और सूर्यास्त के समय वे मूर्तियाँ स्पष्ट रूप से प्रकट होती हैं।

माँ की तबीयत अच्छी नहीं है, इसलिए हम लोग जरा देर से चलेंगे। यह इच्छा प्रकट करने पर सुरेन बाबू को नागवार-सा लगा, क्योंकि उन्हें इस बात पर विश्वास है कि सूर्योदय के समय वे मूर्तियाँ अच्छी तरह दिखाई देती हैं। उनके मन का भाव समझकर माँ बोली-''पिताजी, आपकी जब इच्छा हो तब आइयेगा। अगर मैं सोई रहूँ तो बुलाकर जगा लीजियेगा।''

सुरेन बाबू के साथ माँ की अनेक प्रकार की बातचीत हुई और इसी सिलसिले में उन पत्थरों की चर्चा चल पड़ी थी।

शाम के बाद आज भी श्रद्धेय प्राणगोपाल बाबू, मोहनानन्द ब्रह्मचारीजी, आश्रम के संस्कृत कॉलेज के अध्यापक और दो-एक छात्राएँ आयी थी। कुछ देर बातचीत करने के बाद वे लोग चले गये।

रात के समय स्वामी शंकरानन्द और मैं माँ के पास बैठी थी। तरह-तरह की बातचीत हो रही थी। हम लोगों के पूछने पर माँ अपनी स्थिति के बारे में बताने लगी। उस दिन भी त्राटक के बारे में चर्चा हुई।

त्राटक कैसे होता है

माँ हँसती हुई बोली-''त्राटक के समय दोनों हाथ ऊपर की ओर उठ जाते थे। देखो, संन्यास लेते समय तुम लोगों को दोनों हाथ ऊपर उठाना पड़ता है अर्थात् जिसे सम्यक् प्रकार से न्यास कहते हो। इस शरीर के द्वारा जब जो हुआ जैसे पूजा-अर्चना, त्राटक, योग की क्रियाएँ आदि सब कुछ उसी तरह, सभी प्रकार के न्यास की तरह होकर, अपने आप एक के बाद एक होता हुआ, उन्हीं-उन्हीं कर्मों का समाधान हो जाते रहे।''

आगे वे कहने लगी-''यह जो ज्योति दिखाई देती रही। वह कैसी है जानती है? पहले भौहों के मध्य बादाम की आकृति में प्रस्फुटित होने लगी, बाद में ज्योति क्रमशः बड़ी होती गयी। फिर अनेक छोटी-छोटी ज्योतियाँ कितने रंगों में और कितने आकारों में परिवर्तित हो गयी, पुनः क्रमशः आपस में मिलकर एक ज्योति। इसी तरह धीरे-धीरे एक ही ज्योति विराट आकार में

प्रकट हो गयी। दूसरी ओर अंधेरे में आँखें खुली या बन्द रखने पर दोनों ही स्थिति में शरीर की ज्योति चमकती रहती। अंधेरा नाम की कोई बात ही नहीं है।''

माँ के शरीर में क्रिया और पूजादि कैसे होता था

फिर पूजादि कैसे हो जाता था, यह प्रश्न पूछने पर माँ कहने लगी– ''जिन–जिन देवताओं की पूजा होती थी, उन देवताओं के प्रत्येक अंग के गुण–रूप और ज्योति के साथ सब कुछ ठीक–ठीक रूप में इस शरीर में (अपने शरीर को दिखाती हुई) प्रकट होती रही। ठीक वही मैं हूँ। पुनः दूसरे रूप में पूजा करते समय वही रूप–गुण सम्पन्न देवता इस शरीर से ही प्रकट करके, फिर मैं ही पूजा कर रही हूँ और मैं ही देख रही हूँ। इसे मस्तिष्क की विकृत स्थिति मत समझ लेना, पहेली भी नहीं है, सत्य प्रत्यक्ष है। जितना ही अग्रसर होंगे, उतना ही सब कुछ व्यक्तिगण तक सत्य प्रत्यक्ष रूप में स्पष्ट होते जाएँगे। वही जिसे तुम लोग ऋषिलोक, देवलोक आदि कहते हो न? देवता कहो, ऋषि कहो, मानव कहो, सभी अपने–अपने भाव गतियों को उन्हीं स्तरों में, इसी रूप में प्रत्यक्ष होते रहते हैं। रूप–गुण–भाव आदि से परे होने के लिये यह भावनाएँ जिनमें हैं, वे अपनी उन्हीं–उन्हीं धाराओं में क्रियादि होकर निर्द्वन्द्व रूप में प्रकट होते हैं। एक बार फिर क्या हुआ, जानती है? इस शरीर के भीतर प्रति अंग में पूजा हो रही है। समस्त अंग में बीज एवं यथास्थान पर तृतीय नेत्र–नाक आदि सब कुछ अंकित होते जा रहे हैं। अपनी अंगुली से आँक रही हूँ। अपने आप सब कुछ होता जा रहा है। अंगुली किस तरह रखनी चाहिए, किन–किन स्थानों को स्पर्श करना चाहिए, सब कुछ ठीक–ठीक ढंग से होते जा रहे हैं। देवता इसी शरीर के भीतर से प्रकट किया जा रहा है और फिर ठीक–ठीक रूप में पूजा आदि होता जा रहा। अंकित करने के साथ ही चक्षु दान के समय से ही उस वक्त तीनों आँखों से देख रही थी। भौहों के मध्य बादाम की शक्ल में जो ज्योति पहले–पहल दिखाई दे रही थी, उसी जगह तृतीय नेत्र देख रही हूँ। यह रक्त–माँस का शरीर देख रही है न, यह न जाने कैसे परिवर्तित हो जाता था। अंकित करने के साथ–ही–साथ प्राण संचार के समय, जो–जो रूप रेखांकित करती रही, वे प्रत्यक्ष होते रहे। एकदम जीवन्त रूप में उनका रूप–गुण सब प्रकट होते रहे। फिर पूजा के अन्त में देवता को इसी शरीर में मिला लिया

जा रहा है। इस शरीर का भाव तथा गति देखकर कुछ लोग भयभीत हो उठते थे, इसलिए कमरे में आना तो दूर की बात, लोग आँगन में भी नहीं आते थे। और अपने भाव से एकान्त में क्रियाएँ हो जाती रही। जैसे तुम लोगों का यह शरीर या पेड़-पौधों का तुम सब साल, माह, दिन का हिसाब रखती हो, जबकि तुम लोगों के आगे क्या था और पीछे क्या रहेगा-जरा सोचकर देखो। तुम सब जैसे आवागमन करती हो, वे मूर्तियाँ जीवन्त रूप में, उसी तरह प्रकट होते-होते फिर जहाँ की तहाँ.......''

मैंने पूछा-''यह तो कुछ देर की पूजा की बात हुई। इसके बाद क्या हुआ?''

माँ ने कहा-''फिर इतने सुन्दर समाधानों के पश्चात् एक ही सत्त्वावस्था के एक के बाद एक लीला-दर्शन आदि सृष्टि-स्थिति-लय एक 'मैं' से जितने सब तरह-तरह से प्रकट होते हैं, एकमात्र मैं ही जो सर्वव्यापी हूँ, इसे लोक-लोकान्तर सर्वव्यापी कहने पर भी कहना नहीं हुआ जब यह प्रकट होता है तब सृष्टि-स्थिति-लय की बात नहीं रहती; क्योंकि सृष्टि होने पर स्थिति और लय होगा ही। वह जो निस्तरंग, अविकृत नित्यस्थित है, इसका न आगम है और न निगम, दूसरी ओर सब कुछ है। यह है या नहीं है, कहने पर भी कहना नहीं हुआ, इसीलिए तो कहती हूँ कि भाषा कहाँ है? भाषा तो भासमान है। ज्ञान का प्रकाश कैसे स्पष्ट हो उठता है जानती है? जैसे छितराये हुए बादलों के बीच से सूर्य का प्रकाश दिखाई देता है और सहसा पानी बरस जाने के बाद जिस तरह चमकता हुआ सूर्य उठता है, निर्मल आकाश में सर्वत्र-उनकी उपमा नहीं दी जा सकती।''

इतना कहने के बाद माँ बच्चों की तरह खिलखिला कर हँस पड़ी। बोली-''इस शरीर का गौर रंग देखकर माँ ने सौरी में निर्मला नाम रखा था। इसलिए मान लें कि निर्मल आकाश अर्थात् जिसमें मैल नहीं, मेघ-सेघ नहीं, पूर्णरूप से स्वच्छ है।

कुछ देर चुप रहने के बाद माँ पुनः कहने लगी-''ये सभी बातें आभास मात्र हैं। कहने जाकर जैसे कुछ कहा नहीं गया। शरीर की साधना की क्रियादि प्रकट हुई थी, इसीलिए ये सभी बातें हैं।''

बातचीत के सिलसिले में माँ आगे कहने लगी-''और एक बात सुन।

जो जिस धारा का काम करता है, उसके मन में क्रियाएँ रहती हैं न? वह सोचता है कि यही मार्ग परमपद प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। जैसे शिव पुराण में शिव को, विष्णु पुराण में विष्णु को बड़ा कहा गया है। गणपति के उपासक जानते हैं कि गणेश ही एकमात्र सिद्धिदाता हैं, इसी तरह और क्या। असल में सर्वधर्म समन्वय में जब निर्द्वन्द्व होता है तभी प्रस्फुटित हो उठता है। किस तरह जानती है? सूर्योदय होने पर जिस प्रकार अन्धकार चला जाता है, जहाँ जो कुछ है, वह साफ रूप में प्रकाशमान हो जाता है। यह भी केवल आभासमात्र दे रही हूँ। असल में कैसे होता है, यह जानती हो।''

इतना कहकर बात को समाप्त कर वे पुन: कहने लगी–''सभी मेरे अंग-प्रत्यंग हैं। एक के न रहने पर अंग–हानि होती है। ऋषि कहो, मुनि कहो, अभी उस दिन बातें हो रही थी कि वे लोग मिलने आते हैं। सभी जो कुछ है, इसी से ही (अपने शरीर को दिखाती हुई) सृष्टि–स्थिति–लय।''

इतना कहकर वे चुप हो गयी। फिर जरा मुस्कराती हुई बोली–''तुम सब इसे केवल शरीर ही मत समझना।''

4 अगहन, रविवार–आज भोर होने के काफी पहले ही सुरेन बाबू दो मोटर लेकर आये। माँ के साथ हम सब पाँच–सात व्यक्ति चल पड़े। सूर्योदय के पूर्व ही निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच गये। सुरेन बाबू बड़े उत्साह के साथ माँ को दिखाने लगे हम लोग भी देख रहे थे। पत्थरों में वे अपनी भावनाओं के अनुसार नाना प्रकार की मूर्तियाँ देख रहे थे। हम लोग भी उनकी भावनाओं के अनुसार काफी हद तक उसी तरह जरूर देख सकी, लेकिन इस सम्बन्ध में माँ से प्रश्न करने पर वे बोली–''जब तक पिताजी की भावना और दृष्टि से न देखी जाय तब तक कोई उसे देख नहीं सकेगा।''

बात ठीक है। सुरेन बाबू की भावनाएँ अपूर्व हैं। वे निस्संशय रूप से सब कुछ देख रहे हैं और दिखा रहे हैं। माँ भी उनकी भावना और दृष्टि के अनुसार एक ही बात को दुहराती जा रही हैं। बहुत सुन्दर भावनाएँ हैं। दो–तीन जगह हमें वे ले गये। साढ़े आठ बजे हम लोग आश्रम लौट आये।

मोहनानन्दजी और प्राणगोपाल बाबू ने जब माँ से यह पूछा कि माँ, क्या देखकर आ रही हो, तब माँ ने कहा–''वे जब दिखा रहे थे तब उनकी भावना और दृष्टि से मैं देखती रही; इसीलिए उन्हीं की तरह देख सकी। **एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।** यह तो उन्हीं का दर्शन है। सचमुच यही देख पायी।''

दो-एक स्थान पर वे किसी एक को दिखाने गये तो माँ सहसा बोल उठी-''पिताजी, यही तुम दिखाओगे क्या? यह तो मैं पहले ही देख चुकी हूँ।''

आज तीसरे पहर ध्यान-मन्दिर में मोहनानन्दजी पाठ करने बैठे। माँ को हम वहाँ ले गये। शाम तक माँ वहीं रही, बाद में मोहनानन्दजी ने माँ से कहा-''चलो माँ, जरा आश्रम को देख लो।''

माँ चल पड़ी, हम भी साथ-साथ चल पड़े। आश्रम बहुत बड़ा है। यहाँ की सारी व्यवस्था सुन्दर ढंग से होती है। संस्कृत कॉलेज का बोर्डिंग, दवाखाना सब कुछ है। सभी कार्य व्यवस्थित ढंग से होता है। सुबह-शाम कीर्तन होता है। एक वृहत् मन्दिर का निर्माण हो रहा है। सुना है कि इस मन्दिर में गोपाल और गुरु महाराज की मूर्ति स्थापित होगी।

श्रीयत् प्राणगोपाल बाबू माँ को साथ ले जाकर सभी जगह दिखा लाये। रात हो जाने के कारण हम कामधेनु के मन्दिर में वापस चले आये। नित्य रात को मोहनानन्दजी, श्रीयुत् प्राणगोपाल बाबू और दो-चार व्यक्ति जो इनके साथ रहते हैं, माँ के पास आते हैं। तरह-तरह की बातें होती रहती हैं। इसके बाद जब वे लोग चले जाते हैं तब सभी लोग प्रसाद पाते हैं। रात 11 बजे सभी सो जाते हैं। हमारे सभी साथी आश्रम में प्रसाद पाते हैं। सेवा-यत्न में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है।

मोहनानन्दजी माँ से कह रहे हैं-''इस बार तुम्हें जल्दी नहीं छोड़ूँगा। ग्यारह वर्ष बाद तुम अपने बेटे के पास आयी हो। एक बार यहाँ आकर बिना मुलाकात किये चली गयी। इस बार कुछ दिनों तक रहना पड़ेगा।''

माँ ने हँसकर जवाब दिया-''जानते ही हो कि तुम्हारी लड़की का दिमाग खराब है। न जाने कब क्या खयाल हो। ऐसा होता है पिताजी! यही तुम लोग कितने आदर-यत्न और अनुरोध कर रहे हो, पर जैसे किसी ओर ध्यान नहीं है। जिधर गया उधर चला ही जा रहा है। दिमाग खराब है न, क्यों पिताजी?''

इतना कहने के पश्चात् वे बच्चों की तरह हँस पड़ी। सभी समझ गये कि खयाल होने पर रोकना मुश्किल हो जाएगा। रात के समय शंकरानन्द स्वामीजी और मैं माँ के पास बैठे थे। आज भी माँ के बारे में पूर्व की बातें चल पड़ी। पूजादि अपने आप कैसे हो जाता था, यही विषय था।

मैं जो पूजा कर रही हूँ, मैं वही हूँ, सब कुछ एक है

माँ कहने लगी–''ऐसा किस तरह होता था, जानते हो? जो कुछ फल-फूल पूजा की सामग्री जिससे पूजा कर रही हूँ, सब कुछ एक ही है। मैं जो पूजा कर रही हूँ, मैं भी वही हूँ, इसलिए सब कुछ एक है। इसके बाद शरीर न जाने कैसा होकर गिर पड़ता। शरीर जब उठता था तब शक्तिहीन-सा रहता। और भाव ऐसा जैसे पेड़-पौधे, लता, पत्तियाँ, यहाँ तक कि खरपतवार तक सब कुछ एक है।''

माँ आगे पुनः कहने लगी–''कुछ भी नहीं है, लेकिन इस तरह से पूजादि हो रही है, मानो इसके द्वारा (अपना शरीर दिखाती हुई) ही सब सजाया गया है। पूजा इस ढंग से हो रही है कि देवताओं की सृष्टि, स्थिति, लय, भाव, गुण सब कुछ जिन-जिन देवताओं की पूजा हो रही है, वे सभी देवता सम्पूर्ण रूप से इस शरीर (अपने शरीर को दिखाती हुई) से प्रकट हो रहे हैं। इस ढंग के किसी एक भाव में स्थित रहने पर, कोई-कोई शायद यह सोच सकता है कि उसके उक्त देवता सिद्ध हो चुके हैं, लेकिन ऐसा नहीं होता। क्योंकि एक भाव में स्थित रहने पर पूर्ण सिद्धि नहीं कहा जा सकता। कहीं-कहीं वाक्य इत्यादि सिद्धि जरूर हो जाती है, लेकिन उक्त देवता की वास्तविक सिद्धि इस प्रकार नहीं होती। क्योंकि उस भाव में उत्तीर्ण हो जाना पड़ेगा।''

आगे कहने लगी–''अभी उस दिन त्रिनयन की बातें हुई, यह कितने क्षण तक? जब तक मूर्त्तभाव तब तक मात्र। लेकिन मूर्तियों के भी प्रत्येक देवता की भिन्न रंगों की खण्ड ज्योतियाँ देखने में आयी हैं। इसके बाद फिर मूर्त्त अवस्था नहीं। पूर्ण विराट् ज्योति। वह ज्योति भी कैसी है?''

इतना कहने के पश्चात् माँ चुप हो गयी। पुनः आगे कहने लगी–''कितने प्रकार और ढंग से यह शरीर खेलता रहा, क्या बताऊँ। जब मूर्त्त अवस्था में मूर्तियाँ एक के बाद एक करके आ और जा रही थी; उस समय भी उन मूर्तियों पर किसी प्रकार के आकर्षण का प्रकाश नहीं रहता था। मूर्तियों के चले जाने के साथ-साथ शरीर में एक अनजाना भाव और खण्ड शून्य भाव उत्पन्न होता था। इस शून्य भाव में दिन-पर-दिन बीतते गये जैसे ध्यान-मग्न। क्या, कौन, कहाँ? कौन किसकी खबर लेता है? इन अवस्थाओं में भी आनन्द की लहरें आकर जैसे विभोर करती रही। विभिन्न प्रकार से

आनन्द की जो लहरें, इस शरीर पर किस तरह इन सभी कार्यों के साथ-साथ खेल खेलती रही, उसका वर्णन क्या करूँ? भय का भी आभास होता रहा। ऐसा भी अनुभव होता कि यह शरीर है या नहीं, स्मरण नहीं रहता। सिर्फ किस समय हूँ, यही एक भाव-मात्र रहता। इस तरह का भाव उत्पन्न होता, समय-समय पर सभी के साथ व्यावहारिक काम चलता जा रहा है, लेकिन भाव ऐसा जगता जैसे मैं अकेली हूँ। आत्मीय-स्वजन, किसी के साथ कोई आकर्षण नहीं, कोई नहीं है। एक विराट् शून्य एवं विराट् ज्योति। और एकमात्र ज्योति ही है और कुछ नहीं। और मैं भी एक वही ज्योति हूँ।''

''फिर से बता रही हूँ, सुन। वह जो खण्ड-खण्ड भाव में शून्य भाव आ रहे थे, उसी के साथ लज्जा-भय आदि दूर होते गये, जिसे देखकर माथा ढाँक लेती थी, उस समय ऐसा हुआ कि देखता है तो देखे। सिर ढाँकने की चिन्ता नहीं है। जिसे घृणा कहते हैं, वह भी दूर होता गया। इसके बाद जब सब मूर्त्त भाव चला गया, ज्योति भी चली गयी, उस वक्त एक महाशून्य भाव। न जाने कैसा एक महाशून्य, अकेला। उस समय स्वयं पुनः वही एक, यही शून्य। और क्या, उसे तो उस प्रकार के प्रकाश के निकट शून्य कहने पर भी कहना नहीं हुआ। एक के बाद एक चलते-चलते खोजकर देख लो, यहाँ तुम्हारा वेदान्त-सेदान्त कहाँ है?''

इसके बाद शंकरानन्दजी के साथ बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी-''देखो पिताजी, उस दिन कृष्ण-लीला की चर्चा हो रही थी। यह जो कृष्ण हैं, कृष्ण का अर्थ तुम सब आकर्षण कहते हो। तुम लोगों की कथा में कहा गया है कि कात्यायनी पूजा करके कृष्ण को पायी थी। कात्यायनी अर्थात् शक्ति। शिव को छोड़कर शक्ति नहीं है। शिव-शक्ति को तो अभेद कहते हो, शक्ति-पूजा करने पर आकर्षण स्वरूप कौन है? एकात्म सच्चिदानन्द प्रेम स्वरूप वही जो नित्य लीला है।''

इतना कहने के बाद उन्होंने ताली बजायी। आगे कहने लगी-''देखो, तुम लोगों ने लीला की चर्चा की थी। जो जितने का अधिकारी है, उसके निकट उसी भाव में प्रकाश होता है।''

माँ आगे कहने लगी-''और देखिये पिताजी, शक्ति-पूजा कर शक्ति की मिलनात्मक परम ब्रह्म-परम शिव, वे भी एकात्मक सच्चिदानन्द प्रेम स्वरूप हैं। आकर्षण को भी कहीं अलग नहीं किया जा सकता।''

बातचीत के सिलसिले में माँ मुझसे कहने लगी-''देख, तुम सब एक-एक जनी एक-एक धारा की साधना कर रही हो, सावधान रहना। लेकिन जानती है कि किस तरह गति का प्रकाश होता है? किसी-किसी समय भाव की गतियाँ परिवर्तित हो जाती हैं। केवल खयाल रखना कि अभाव-बोध कहाँ है? और अभाव बोध जब तक रहेगा तब तक पूर्ण मीमांसा नहीं हो सकती, क्योंकि अभाव-बोध ही यह बतायेगा कि मेरे लिये कितना अनजाना और कितना अप्राप्य रह गया है। लिहाजा जरा-सा समझकर एकदम से कोई मीमांसा मत कर लेना। और होता भी नहीं। उस समय भी मीमांसा का अधिकार नहीं हुआ, यह जान लेना। और एक बात सुन, मीमांसा करने का अर्थ है-एक प्रकार का अहंकार प्रकट करना। जब अधिकार प्राप्त होता है तब कैसा होता है, जानती है? जैसे घड़ा भर जाने पर पानी छलक कर अपने आप गिरता रहता है। नल पर पानी भरने जाती है तो देखा होगा कि घड़े के भर जाने के बाद अपने आप पानी जमीन पर गिरता रहता है। पेड़ पर फल पक जाने के बाद अपने आप गिर पड़ते हैं। यही स्वाभाविक प्रकाश गति है। भावों की गतियाँ इसी तरह आती हैं। यही जो **कृष्ण, राम, शिव, शक्ति-उपासक** आदि नाना धाराओं की उपासनाएँ हैं, इनके अलावा अन्य कोई मार्ग नहीं है। यही भाव आकर साधक को विभोर कर देता है। यही उनकी साधना का सहायक है। यह न होने पर भी होता नहीं। दूसरी ओर यह विचार आता है कि वह हमारे जो इष्ट या गुरु हैं, उनकी साधना के अलावा अन्य कोई धारा इतनी ऊँची नहीं हो सकती। लेकिन इसका विचार रखना कि यह अनन्त धारा है, वे किस मार्ग से किसे ले रहे हैं, यह वही जानते हैं। अन्य मार्ग के उच्च अवस्था वाले साधकों के नाम सुनकर या देखकर वे यह सोच सकते हैं कि मेरी तरह इस तरह का रस ये प्राप्त नहीं कर पाये हैं। साधकों के लिये यह भावना स्वाभाविक है। साधक के लिये ये भावनाएँ कल्याणकारी होती हैं जबकि उनकी एक देश-दृष्टि न रहे। ऐसा भी हो सकता है कि विशेष-विशेष प्रसिद्ध प्रचलित नामी महात्माओं के बारे में उनके मन में यह धारणा उत्पन्न हो सकती है कि क्या वे इतने ऊँचे स्तर तक उठ सके थे? फिर भी एक ओर हो सकता है, वह यह कि और उन्नत होने पर उनकी तरह समान भाव धारा में जो लोग साधना करते हैं, वे लोग उसी प्रकार उन्नत स्थिति के हैं, इसीलिए उनके निकट प्रकट होता है। क्योंकि वह

साधना की आनन्द-धाराओं और संतोष के आभास में आ गया है न। इस धारा के अन्तर्गत कोई-कोई न जाने कितना समय व्यतीत कर देते हैं, पता नहीं। क्योंकि संतोष में भी रहा जा सकता है। समान भाव की धारा वाले साधकों की ओर दृष्टिपात करने से वे काफी ऊँचे हैं, यह धारणा स्पष्ट हो सकती है। लेकिन उस भाव के अन्तर्गत क्या गड़बड़ी रहती है, जानती है? वह सभी दिशाओं में तन्न-तन्न कर सामंजस्य नहीं रख पा रहा है, क्योंकि एक दिशा में भिन्नत्व जो मौजूद है। जिसमें छोटा-बड़ा, अपना-पराया दो भाव रहते हैं, इसीलिए उसकी समदृष्टि समभाव से प्रकट नहीं होती। शिव, काली, दुर्गा आदि जिस किसी भी धारा में क्यों न रहें, वह समालोचना नहीं कर पाता। समभाव कैसे प्रकाश हो सकता है, जानती है? उस समय साम्प्रदायिकों अर्थात् काली, दुर्गा, शिव, कृष्ण, राम आदि किसी भी भाव के साधकों में असमंजस नहीं देख पाएगा। क्योंकि अपने शरीर के किसी अंग या भाव का अभाव रहने पर अपनी अंग हानि होती है। तब वह पूर्ण दृष्टि कहाँ है? आलोचना कौन किसकी कर सकता है? वह तो उस वक्त स्वयं अपने को लेकर है। कौन, किसका यह सब कहाँ रहता है? अगर कुछ प्रकाश होता है तो समझ लेना कि अपने शरीर की आलोचना अपने निकट स्वयं ही कर रहा है। उसका समभाव समदृष्टि में खण्ड एवं समष्टि में निर्द्वन्द्व रूप में सृष्टि, स्थिति, लय, प्रलय प्रकट हो, तभी न।''

''यह जो........और सुन, सृष्टि, स्थिति, लय, प्रलय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि सिर्फ लय में रहने से कुछ होता नहीं।''

रात 12 बजे हम सोने गये। उस समय भी माँ कथा के प्रसंग में कह रही थी-''कोई-कोई महात्मा जगत् के कल्याण के लिये एक-एक धारा की साधना पर विशेष जोर देते हैं।

यहाँ एक बात लिख देना आवश्यक समझती हूँ कि इस अवस्था की सारी बातें मैं शृंखलाबद्ध रूप में लिख नहीं सकी। जहाँ तक सम्भव हो रहा है लिख रही हूँ।

5 अगहन, सोमवार- आज शाश्वतानन्द स्वामीजी आकर माँ को अपनी गुरु माँ के (ब्रह्मज्ञ माँ) आश्रम में अर्थात् निर्वाचन मठ में ले गये। आज दिन भर हम वहीं रहे। अत्यन्त शान्त वातावरण था। सिर्फ दो-चार ब्रह्मचारी हैं। सात ब्रह्मचारियों के रहने योग्य स्थान है। एकान्त स्थान है। यहाँ के

ब्रह्मचारियों में अत्यन्त सौम्य भाव है। सभी का पर्याप्त आदर-सत्कार किया गया। माँ से कई दिन आश्रम में रहने के लिये ब्रह्मचारीगण अनुरोध करने लगे।

माँ ने कहा-''अगर यहाँ अधिक दिनों तक ठहरना पड़ा तो देखा जाएगा।''

शाम के समय हम लोग **बालानन्द ब्रह्मचारी** बाबा के आश्रम में लौट आये। यहाँ आने पर देखा कि बहुत से लोग बैठे हुए हैं। माँ की गाड़ी देखते ही अधिकतर लोग कह उठे-''जान में जान आयी।''

इनमें अधिकतर ब्रह्मचारी महाराज के शिष्य और शिष्याएँ हैं। वे लोग कहने लगे-''गुरु महाराज के देहावसान के पश्चात् से हमें किसी के निकट कोई उपदेश सुनने को नहीं मिला। माँ के आगमन से हमें काफी प्रसन्नता हुई।''

आज भी रात 8 बजे के बाद मोहनानन्दजी और प्राणगोपाल बाबू आये। मोहनानन्दजी ने माँ से कहा-''आज तो दिन भर माँ को अपने बच्चों की याद नहीं आयी?''

माँ ने कहा-''कुछ दूर चले जाने का अर्थ क्या उन्हें भुला देना हुआ?''

इन सभी प्रकार की बातचीत के बाद आलोचना प्रारम्भ हुई। मोहनानन्दजी ने पूछा-''अच्छा! प्राणवायु स्थिर करने का क्या उपाय है?''

प्राण वायु स्थिर करने का उपाय

माँ ने कहा-''उस दिन जो चर्चा हुई थी कि प्राणवायु में तरंगें हैं, उस ओर लक्ष्य रखते हुए मन, मंत्र, श्वास एकाकार करने को कहा जाता है। देखते ही हो कि लता, पेड़, पत्थर, जीव-जन्तु इत्यादि हवा में ही पुष्ट होते हैं, वही एक योग की हवा लेकर हैं, इसलिए तो बैठे हैं। इस हवा-बतास का मूल केन्द्र कहाँ है? जहाँ तरंग नाम की कोई वस्तु नहीं है, वही चिर शान्तत्त्व भी माँग रहा है, क्यों माँगता है? नहीं, यह भी जीव का एक स्वभाव है।''

इसके आगे वे कहने लगी-''सभी एक हैं। एक विराट् महान् भाव कहने

पर भी कहना नहीं हुआ।''

इसके बाद माँ ने यात्रा के सम्बन्ध में न जाने कौनसी बात कही जिसे सुनकर मोहनानन्द ब्रह्मचारीजी ने कहा-''वे अनन्त हैं, उनके मार्ग में यात्रा करने पर यात्रा भी तो अनन्त ही होगी, तो क्या इस यात्रा का अन्त नहीं है।''

माँ ने कहा-''यह सब सोचो मत, अनन्त के मध्य अनन्त है, अनन्त के भीतर ही अन्त-सभी कुछ है।''

इस कथा के पश्चात् अन्य साधारण बातें हुई। मोहनानन्दजी के विदा लेते समय माँ ने कहा-''उस अनन्त की बातें नहीं हुई?'' पुनः स्वयं बोली- ''अच्छा, रहने दो। उन कथाओं की चर्चा करने पर बहुत-सी बातें निकल पड़ेंगी।''

मोहनानन्दजी के चले जाने के बाद माँ ने बातचीत के सिलसिले में हमसे कहा-''उस दिन पानू पिताजी (प्राणगोपाल बाबू) के साथ प्रेम के सम्बन्ध में बातचीत हुई थी न? मैं तो अगड़म-बगड़म बकती हूँ। जो कुछ मन में आता है, वही कहती हूँ और कहती रहूँगी। बात यही है, अपने को स्वयं ही प्यार करते हैं। अपने प्राण से अधिक किसी को प्यार नहीं करते। जैसे कोई कहता है कि अमुक के कहने पर मैंने एक काम किया है। अमुक की बातों के साथ अगर उसकी भावनाओं का जरा भी मेल न रहे तो ऐसा नहीं करता। सूक्ष्म रूप में होने पर भी इच्छा रहती है। और अगर अनिच्छा रहने पर कोई कुछ करा लेता है तो उसमें कुछ गड़बड़ी रह जाती है और हो जाती है। कारण शायद उसमें कुछ था। कर्म के भीतर जितनी इच्छा-अनिच्छा रहती है, उतने ही परिमाण में उसी के अनुसार प्रकट होता है। कर्मस्थल है न, इसीलिए जिस-जिस ढंग से कर्म गड़बड़ाता है, वैसा हो जाना स्वाभाविक है।

असली मित्र वही है जो परमार्थ में सहायक बनता है

साधारण दृष्टि से देखो-**जिसके साथ जिसका अपना काम और मन के भावों का मेल होता है, वही उसका मित्र बन जाता है। असली मित्र तो वही है जो परमार्थ में सहायक बनता है। उसी को धर्म मित्र कहा जाता है।** तब देखो, तुम लोग प्राणमय भावनाओं पर जोर देकर जागतिक व्यापार में भी चल रहे हो। प्राण तो एक ही है, आत्मा एक है, जैसे पानी एक है। दूसरी ओर समुद्र का

पानी, पोखरी का पानी, गड़ही का पानी कहते हैं, पानी तो कहना ही पड़ेगा।''

हँसती हुई माँ पुन: कहने लगी–''अब इसमें फिल्टर लगाओ।''

आगे आपने कहा–''यह देखते हैं कि राम का प्राण चले जाने पर श्याम का नहीं जाता। यह क्या है, जानती है? जहाँ वायु को तरंग के रूप में अप्रकट रहते देखती हूँ अर्थात् जिसका प्राण चला गया है कहती हूँ असल में जड़ में तो वही एक सत्ता चैतन्य रूप में स्थित नित्य ही है। दूसरी ओर बाहर की ओर देखो, जिस प्रकार कुआँ से एक लोटा पानी ले जाकर समुद्र में उडेलने पर न तो उसका पानी बढ़ता है न घटता है। कारण और नीचे देखो–जहाँ खोदोगे, वहीं पानी मिलेगा। इसी दृष्टि से कुआँ और समुद्र का एकत्र योग है। बढ़ना–घटना कहाँ? और सुनो, उस दिन पानू पिताजी के साथ बातें हो रही थी। एक बीज से पेड़ ने जन्म लिया और उसी पेड़ में न जाने कितने सैकड़ों फल पैदा हुए। एक–एक बीज में ही असंख्यत्व, एकत्व, अनन्तत्व रह गया। इस हिसाब से आत्मा बहुत हैं, तुम सब कहते हो, क्योंकि एक–एक बीज से एक–एक पेड़ होगा, लेकिन उसमें ही बहुत्व रह गया। अगर पूर्ण से अलग प्रकार का प्रकाश देखना तो समझ लेना कि वहाँ भी पूर्ण ही रहता है। सोचो, तुम लोगों का क्या हुआ? जैसी दृष्टि तैसी उसके निकट सृष्टि का प्रकाश होता है। दृष्टि–सृष्टि के बाहर जाना पड़ेगा। पूर्ण–अपूर्ण की बात नहीं आयेगी। तू इस वक्त एक कह, एक को ही बहु कह, बहु ही जो कह, वही। फलस्वरूप सब कहा नहीं जा सकता। जो जिस दृष्टि से जो कुछ कहता है, सब ठीक है।''

मैंने कहा–''माँ, मोहनानन्दजी के साथ अनन्त यात्रा के बारे में बातें होते–होते रह गयी।''

अनन्त की कहानी अनन्त है

माँ ने कहा–''देख, तू अनादि, अनन्त है, दूसरी ओर जब तक दृष्टि है तब तक सृष्टि है। शरीर की सृष्टि हुई, इस हिसाब से शरीर की धाराओं में, भाव की धाराओं में आदि, मध्य, अन्त सब कुछ है। देख, अनन्त की कहानी भी अनन्त है। कितनी–सी बात में पूरी होगी? और बाहर से भी कितना सुन पायेगी। साधना की गति अनन्त है। तुम सब जिसे अनन्त कहती

हो, तुम लोगों के निकट अनन्तत्व कब प्रकट होता है? वह अनन्त का बोध होता है तभी न? बोध आने पर ही स्वरूप का प्रकाश, उसे पाने पर ही अनन्त यात्रा की सफलता है। तुम स्वयं ही अनन्त हो, तुम एक हो। स्थूलता भी तो देख पाती है, तेरा हाथ पकड़ने पर-यह कौन है? कहती है-मैं हूँ। पैर पकड़ने पर कहती है-मैं हूँ। कोई भी अंग पकड़ने पर कहती है-मैं हूँ। देख तेरे शरीर-रूप में जो प्रकट हुआ है, वही तेरी सृष्टि की जड़ है, यह नहीं कह सकती। तेरे पैदा होने की बात न हो छोड़ देती हूँ, पर अपने शैशव के प्रथम ज्ञान होने के बाद से क्या-क्या करती रही, सब बता सकती है? बहरहाल, इसे भी नहीं पूछती। पिछले पाँच वर्षों के बारे में बता सकती है। इन दिनों तेरे जीवन में कौन-कौनसी घटनाएँ हुई थी, उसे नहीं बता सकती। एक साल की घटनाएँ बता? एक महीने की बातें बता? मैं इसे भी छोड़ देती हूँ, पाँच मिनट की बातें बता? इस समय तेरा मन कहाँ-कहाँ गया था, ये सारी बातें भी नहीं बता सकती। स्थूलता तो तेरे शरीर में है, क्षण-क्षण में न जाने कितनी सृष्टि-स्थिति और लय होते जा रहे हैं, इनकी संख्या भी तू नहीं बता सकती। स्थूलत: सामान्य मन की गति जब इस तरह की है तब अनन्त समझ ले। जबकि यात्रा भी अनन्त है फिर एक की गति की धारा भी तो है। किस क्षण में उस ज्ञान का योग आ सकता है, कौन बता सकता है? फलस्वरूप अपनी तलाश में स्वयं यात्रा कर रही है। असल बात है अपने को पहचानना। मैं अनन्त गति रूप में एक हूँ और मैं ही बहुरूप में प्रकाशमान हूँ।

''इस संसार में तुम सब बहु रूप में जो कुछ देख रहे हो, जहाँ रूप-अपरूप का द्वन्द्व नहीं है, उसी की चाह जीव का स्वभाव है। जैसे जंगल के बीच से जंगल को ही काटकर रास्ता बनाकर बाहर निकलना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार तुम लोग हर वक्त संसार के बीच हो, इसीलिए अस्थिरत्व है। लेकिन तरंग शून्य जो स्थिरत्व है, उसका आभास पाने के लिये, हर वक्त तुम लोगों की वही तरंग-रूपी श्वास-प्रश्वास उसकी ओर स्थिर लक्ष्य में ध्यान रखने पर सहायता प्राप्त होती है।''

''यह सब कुछ एक है, मेरा स्वरूप क्या है, जानना ही लक्ष्य है।'' इतना कहकर वे हँसती हुई बोली-''अखण्ड मण्डलाकार क्या है? साधकों को देखो, इसी एक लक्ष्य के लिये, इसी मन के द्वारा ही एकत्व में पहुँचने

के यात्री बनते हैं। उसी समय एक गुरु की कृपा से खण्डत्व और अखण्डत्व, क्षमा और असीम, अनन्त गति, अनन्त मार्ग, अनन्त भाव, सब कुछ निर्द्वन्द्व रूप में उसके निकट स्पष्ट हो जाता है। सृष्टि-दृष्टि के बीच जब तक रहोगी तब तक ये बातें आती रहेंगी। यह आना भी मंगलकारी है। अगर ये सब विचार उत्पन्न न हों तो निर्द्वन्द्व रूप से वाक् निर्वाकातीत कैसे होगा?''

6 अगहन, मंगलवार- आज तीसरे पहर के समय मोहनानन्द ब्रह्मचारी ने माँ को तपोवन में भेजा। वहाँ पूर्णानन्द स्वामी की स्मृति में एक स्कूल की स्थापना की गयी है। माँ को पहले स्कूल दिखाने ले गये। लड़कों ने खड़े होकर माँ का स्वागत किया। माँ का स्तवन गायन किया, माँ को कीर्तन सुनाया। इसके बाद वहाँ की एक पहाड़ी पर माँ को सत्यानन्द ब्रह्मचारी ले गये। माँ कुछ कमजोर है, इसलिए कुर्सी पर बैठाकर ले जाने की व्यवस्था पहले से कर दी गयी थी। इस पहाड़ी पर **श्री श्री बालानन्दजी** का तपस्या-स्थान है, इसीलिए जगह-जगह सुन्दर व्यवस्था है। यहाँ दो ब्रह्मचारी रहते हैं। ब्रह्मचारीजी का आसन वहाँ स्थापित किया गया है। प्रतिमूर्ति रखी गयी है। एक घण्टे तक वहाँ रहने के बाद माँ धीरे-धीरे पैदल ही नीचे उतर आयी। ब्रह्मचारियों का रहन-सहन बहुत सुन्दर है। सभी साधन-भजन करते हैं।

उन लोगों ने माँ से अनुरोध किया कि माँ, हमें शक्ति दो। हम सब इसी पथ पर बराबर आगे बढ़ते रहें। माँ मीठे शब्दों में सभी को प्रसन्न कर आश्रम में लौट आयी।

आश्रम में आने के बाद माँ बोली-''खुकुनी, आज ही रवाना होने का इन्तजाम कर। इस वक्त हम इलाहाबाद चलेंगे, आगे फिर देखा जाएगा। यात्रा का प्रबन्ध शीघ्र कर।''

माँ के दर्शन करने के लिये काफी लोग आये हुए थे। माँ उनके पास जाकर बैठ गयी। मैं यात्रा का प्रबन्ध करने लगी। आज रात को 3 बजे जसीडीह जाने की बात है। जसीडीह में गाड़ी पकड़नी है।

शाम के समय प्राणगोपाल बाबू और मोहनानन्द ब्रह्मचारीजी आये। माँ को वापस जाते देख वे आपत्ति करने लगे। लेकिन माँ का रुख समझकर फिर वे कुछ नहीं बोले।

मोहनानन्द ब्रह्मचारी ने कहा-''माँ, भोर में जाने से ठण्ड लगने का भय है।''

माँ ने जवाब दिया–"कुछ नहीं होगा।"

उन्होंने कहा–"तुम्हें भले ही कुछ न हो, पर शरीर के लिये हमें चिन्ता है।"

माँ ने कहा–"चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है। सिर्फ एक की चिन्ता करते रहना। जाने की सारी तैयारी होती रहे, आगे देखा जाएगा।"

रात 9 बजे के बाद सभी विदा लेकर चले गये। बुनी, तरु बहन, अनु आदि माँ के साथ थी। अब ये लोग भी जायेंगी। माँ से विदा लेने के लिये सभी माँ के निकट आकर बैठ गयी। इस तरह रात के 12 बज गये।

इसी बीच माँ ने कहा–"उस दिन मन में आया था कि मोहन पिताजी के घर जाऊँगी।"

प्राणगोपाल बाबू के छोटे लड़के गोविन्द को साथ लेकर माँ मोहनानन्दजी के घर चली गयी। महिलाओं को अधिक रात गये आश्रम में जाने की मनाही है, इसलिए मुझे वे अपने साथ नहीं ले गयी। गोविन्द से उन्होंने कहा–"महिलाएँ नहीं जाती, पर मैं जाऊँगी।"

गोविन्द ने हँसते हुए कहा–"यह आप क्या कह रही हैं माँ, आपके जाने में कौनसी बाधा है?"

माँ गोविन्द के साथ चली गयी। वापस आने के बाद बोली–"मोहनानन्द ने मुझे फल खिलाया।"

गोविन्द की जबानी पता चला कि मोहनानन्द ब्रह्मचारी ने माँ को फल खिलाया है। वे फल खाते हैं। महीने में सिर्फ तीन–चार दिन अपने हाथ से भोजन बनाकर खाते हैं। एक बार श्री श्री बालानन्द ब्रह्मचारीजी माँ को अपने हाथ से फल खिला चुके हैं। आज शाम को मोहनानन्दजी ने आकर माँ को एक आसन दिया। उसके ऊपर उन्हें बैठाया। इसके बाद माँ से बोले–"आज आपको वैरागी बनना पड़ेगा।" यह कहकर उन्होंने माँ को सिल्क का नामावाली चद्दर ओढ़ाया।

मोहनानन्दजी का घर देखकर जब वापस आयी तब माँ उनकी सामान्य शय्या की प्रशंसा करने लगी। सचमुच इस आश्रम की सुशृंखला और ब्रह्मचारियों की प्रकृति–प्रवृत्ति अति उत्तम है।

वैद्यनाथ से प्रस्थान

हम लोग रात साढ़े तीन बजे रवाना हुए। श्रद्धेय प्राणगोपाल बाबू सपरिवार और मोहनानन्दजी स्वयं उपस्थित रहकर सब लोगों ने माँ को अपनी मोटर में बैठाया। पुनः आने का वे अनुरोध करने लगे। माँ इतनी जल्दी चली जाएँ, यह वे नहीं चाहते थे। आश्चर्य की बात यह रही कि तीन-चार दिन के परिचय में ही रात को 9 बजे जब लड़कियाँ वापस जाने लगी तो वे माँ के लिये बुरी तरह रो पड़ी। कुछ औरतें माँ को घेरकर दुःख प्रकट करने लगी। मानो सभी का दिल दर्द से भर गया था। एक महिला गाने लगी। उक्त गीत समयोपयोगी होने के कारण सभी के दिलों में चोट पहुँचाने लगा। गीत का भाव यों हैं –

''जाओगी जब मुझे छोड़कर तब हम कैसे रोक सकेंगे। नयनों के पानी से कपड़े भीग उठे हैं, सिर्फ विदा माँगूगी। तुम्हें इन नयनों से फिर देख नहीं पाऊँगी। दिल से कैसे दूर हो जाओगी। कैसे दूर रहोगी तुम। सिर्फ तुम्हारी स्मृति की हम पूजा करते रहेंगे। अन्त में निवेदन करूँगा कि अपने अन्तर में हम बच्चों के लिये अपना स्नेह सजोये रखना। यद्यपि हममें कोई गुण नहीं है, फिर भी हम तुम्हारी स्मृति की पूजा करते रहेंगे।''

रात 10 बजे सभी विदा लेकर चले गये। जसीडीह में गाड़ी पर चढ़ते समय देखा कि यतीश गुहा, नानीजी (दीदी माँ) और त्रिगुण बाबू माँ का दर्शन करने के लिये इसी गाड़ी से आये हैं। वे लोग भी इसी गाड़ी से हमारे साथ इलाहाबाद रवाना हो गये।

माँ इलाहबाद में

7 अगहन, बुधवार– आज शाम को 5 बजे हम इलाहाबाद पहुँच रहे हैं, इस आशय का एक तार मैं भेज चुकी थी। टिकट भी इलाहाबाद तक का ही था। विन्ध्याचल में अखण्डानन्द स्वामीजी को भी तार भेज चुकी थी।

विन्ध्याचल पहुँचने के कुछ पहले ही माँ बोली–''खुकुनी, जिल्लत करती है। तार भेजना मेरी गतिविधि में पोसाता नहीं। आगे विन्ध्याचल में हम उतर सकते थे।''

मैंने कहा–''अच्छी बात है, इसमें हुआ क्या? चलो, चला जाय।''

वही हुआ। माँ विन्ध्याचल में उतर गयी। शंकरानन्द स्वामी को खबर देने के लिये इलाहाबाद भेज दिया गया। माँ यह समझती थी कि उनके लिये लोग स्टेशन पर प्रतीक्षा करेंगे। उधर अखण्डानन्दजी, निवारण बाबू, उपेन बाबू वगैरह स्टेशन गये, ये लोग इलाहाबाद जायेंगे और इधर माँ बीच में उतर गयी।

8 अगहन, गुरुवार– आज दोपहर को मोटर से शिवप्रसादजी, स्वामीजी और जितेन भैया चले जाना चाहते हैं। महिलाओं के आश्रम के लिये एक जगह ठीक की गई है। माँ को वहाँ एक बार पद–धूलि देनी पड़ेगी–यही उन लोगों की प्रार्थना है। कुछ भी ठीक से निश्चित नहीं हुआ। जो कुछ होना है, हो जाएगा–यही निर्णय हुआ।

9 अगहन, शुक्रवार– आज सुबह माँ को साथ लेकर लोग कुछ दूर तक टहल आये। इसके बाद मोटर द्वारा घूमने गयी। शिवप्रसाद बाबू माँ के जाने के लिये मोटर छोड़ गये थे। आज शाम को इलाहाबाद जाने की बात तय हुई है।

कैसे आत्म–उन्नति हो, यही उद्देश्य होना चाहिए

आज दोपहर के वक्त बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी–"सर्व रूप में वही एक है। देख खुकुनी, अभी–अभी तू नीचे देख आयी कि वहाँ अनेक साधु हैं–कहीं–कहीं क्या होता है, जानती है? गँजेड़ियों का अड्डा रहता है, इसलिए लालच वश साधु एकत्रित होते हैं। कुछ साधन–भजन करते हैं और रह–रहकर दम लगाते रहते हैं, गलचौर भी करते हैं। यही सब चलता है। दूसरी ओर कुछ साधु ऐसे भी हैं जो साधन–भजन करते हैं, उनकी कुछ बातें सही हो जाती हैं, इसलिए लोग उसी लालच से वहाँ जाते हैं। कहने का मतलब वे अपने जीवन के भविष्य की बात जानने जाते हैं। ये लोग सोचते हैं कि इससे बढ़कर और अन्य कोई बात नहीं हो सकती। तुम सब भी कभी–कभी कहती हो कि वहाँ भविष्य के बारे में बताया जाता है। यह क्यों नहीं सोचती कि सांसारिक सुख के लिये दो–चार भविष्य की बात जानना ही क्या तुम्हारे जीवन का उद्देश्य है? यह उद्देश्य होना चाहिए कि कैसे आत्म–उन्नति हो, कैसे चिर–शान्ति मिले। सभी कर्मों के बीच उद्देश्य को सर्वोपरि मानना चाहिए। ध्यान जितना बड़ा रहेगा, ज्ञान पाने की उतनी ही

आशा रहेगी। ये लोग भी प्रयत्न कर रहे हैं जितनी देर तक आनन्द करते हैं, उतनी देर तक लाभ उठाते हैं। सर्व रूप में तुम्हीं हो।''

साधुओं के भेद

दूसरी ओर एक प्रकार के साधु होते हैं, जो बड़े-बड़े साधुओं की तरह पोशाक-पहनावा अपने पास रखते हैं, उनके भीतर विशेष वस्तु कुछ नहीं रहती। पाने पर क्या होता है, जानती है? उनकी संकुचित प्रवृत्ति रह जाती है, क्योंकि ग्रंथि तो खुली नहीं है। और सुन, अभी जो तरह-तरह के भावों की बातें बतायी, कभी-कभी किसी शुभ मुहूर्त्त में इस बाहरी आवरण को जो समझ लेते हैं, इसी से किसी-किसी का ऐसा होता है, अचानक ऐसा भी होता है कि बाहरी चीजें अच्छी नहीं लगती। सत्य-पथ की दिशा खोलकर विराट् महान् भाव में चला जाता है। इसीलिए कहती हूँ कि किसी की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। अगर कोई साधु-भाव में है तो उसके प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन करना उचित है। जिसमें जो अच्छाई रहे, उसे ग्रहण करना चाहिए। गुलाब के फूल को तोड़ते समय उसके काँटों की ओर नजर नहीं उठानी चाहिए। उस विराट् महान् का भी यही एक रूप है, यह समझते हुए उन्हें प्रणाम करना चाहिए। श्रद्धा सहित करना चाहिए। श्रद्धा की भावना दोनों के लिये मंगलकारी है। उसी रूप में बातें करनी चाहिएँ। इससे उनके भीतर तपस्या की जो भावनाएँ हैं, उनका एक प्रभाव तुममें आ सकता है। इस भावना से तुम्हारा भला होगा। सभी के भीतर उसी एक की सत्ता देखने की चेष्टा करते-करते देखोगी कि उस विराट् महान् को भावना के जरिये, पास का मार्ग अनुकूल आशापूर्ण है।

''लेकिन एक बात और है, जिसका साथ या जिसे प्रणाम करोगी, उनका पूर्ण स्वभाव अर्थात् गुण-दोष सब-कुछ अपने में आ सकता है, इसलिए अपने-अपने गुरु इष्ट एवं जिन लोगों की दीक्षा नहीं हुई, उन लोगों को भगवत् भावना की जो भावनाएँ मन में स्वभावतः अंकित रहती हैं, उसी रूप में प्रणाम करना चाहिए। उन्हीं को तो करना हुआ। फिल्टर करने से पानी साफ होता है, वही साफ पानी जैसे इस पानी में है, उसी तरह वे सभी में हैं। उन्हें प्रणाम करना चाहिए, उन्हीं का सत्संग करना चाहिए। किन्तु यह भी एक दिशा की बात है।''

अपराह्न के समय हम दो-तीन जनी माँ को लेकर मोटर से इलाहाबाद की ओर चल पड़ी। और लोग ट्रेन द्वारा रवाना हो गये थे। संध्या के समय हम इलाहाबाद पहुँच गये। दारागंज में जो मकान महिलाश्रम के लिये सम्प्रति लिया गया है, माँ वहाँ जाकर ठहर गयी। शिवप्रसादजी को समाचार देने के लिये मोटर वापस भेज दी गयी।

बगीचा बड़े सुन्दर ढंग से सज्जित है। माँ वहाँ एक बेल के पेड़ के नीचे जाकर खड़ी होती हुई बोली-''वाह, बहुत सुन्दर स्थान है। खुकुनी, मेरा बिस्तर यहीं बिछा दे। मैं यहाँ रात को आराम से रहूँगी।''

बड़ौदा जाने की बातचीत हुई थी। आज कोई गाड़ी नहीं है, इसलिए कल शाम वाली गाड़ी से हम यात्रा करेंगे।

इधर शिवप्रसाद बाबू ने अपने यहाँ तम्बू लगवाकर माँ के लिये काफी अच्छा इन्तजाम कर रखा था। माँ वहाँ जाएँगी या नहीं, यह पता नहीं। अगर गयी भी तो कुछ देर ठहरेंगी, लेकिन इन सब बातों की ओर उनका ध्यान नहीं था। वे श्रद्धा से काफी तैयारी करते रहे। मानो माँ वहाँ कुछ दिनों तक रहेंगी। माँ के लिये कुछ करने में ही उन्हें आनन्द मिल रहा था। श्री श्री माँ की आगमन-वार्त्ता सुनते ही भाई शिवप्रसादजी आ गये। अनेक अनुरोध करने के बाद वे अपने यहाँ माँ को ले जाने में समर्थ हुए। यह तय हो गया कि रात को माँ यहाँ आकर रहेंगी। शिवप्रसादजी अभी माँ को ठीक से समझ नहीं पाये हैं। उनका खयाल था कि इस वक्त किसी सूरत से माँ को वहाँ ले चलूँ, जब वे वहाँ जाकर यह देखेंगी कि कितनी मेहनत से सब सजाया है, उनके लिये तम्बू टँगवाया है तब विशेष अनुरोध करने पर वे वहीं ठहर जाएँगी।

लेकिन तम्बू में आते ही माँ बोल उठी-''मैं कितनी बार कह चुकी हूँ कि यह सब मत करना। मुझे कालीबाड़ी या अन्यत्र कहीं रात को ठहरा देना। थोड़े समय के लिये यह सब करने की क्या जरूरत थी? बहरहाल, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। मैं उसी बेल के पेड़ के नीचे रहूँगी।''

शिवप्रसादजी ने पुनः अनुरोध किया, परन्तु माँ ने सभी लोगों को मीठी बातों के द्वारा यह समझा दिया कि उनके लिये यहाँ ठहरना सम्भव नहीं है। अब लोग क्या करते। लाचारी में पुनः लोग उक्त बगीचे वाले मकान में माँ

को वापस ले आये। सभी लोग बेल के पेड़ के नीचे सोयेंगे जानकर माँ बरामदे में आकर रहने को राजी हो गयी। हम लोग माँ के पास ही अपना-अपना बिस्तर लगाने लगी। माँ के साथ काफी लोग आये थे। रात 11 बजे जितेन भैया और भाई शिवप्रसादजी विदा लेकर चले गये।

काफी एकान्त स्थान है। हम लोग बड़े आनन्दपूर्वक माँ के साथ सोयी। यह तय हो गया था कि देहरादून से मन्मथ दादा महिलाओं को लेकर यहाँ आकर रहेंगे। फिलहाल सभी इसी मकान में ठहरेंगी। बाद में नया आश्रय स्थान बनाया जाएगा। सुना गया कि इस मकान में कोई नहीं रहता।

10 अगहन, शनिवार– आज सवेरे 10 बजे हम लोग माँ को साथ लेकर शिवप्रसाद भाई के मकान में स्थित तम्बू में आये। यह तय हो गया है कि आज शाम को 6 बजे वाली गाड़ी के लिये यहाँ से रवाना होंगे। आगरा होकर जाने से सुविधा होगी। जानकर यह निश्चय किया गया कि उधर से ही जाएँगे।

12 बजे से लेकर 3 बजे तक माँ को विश्राम करने दिया गया। तम्बू के चारों तरफ लोग आकर बैठ गये हैं। माँ सोकर उठ गयी तब उन्हें नाश्ता करवाया गया। इसके बाद सभी को भीतर जाने के लिये कहा गया। काफी लोगों से माँ घिर गयी। तम्बू के चारों ओर का पर्दा उठा दिया गया।

ठीक समय पर वहाँ से माँ को लेकर स्टेशन की ओर हम लोग चल पड़े। काफी लोग स्टेशन पर मौजूद थे। बहुत से लोगों ने फूलों से माँ को सजाया। कुछ लोग फूलों की वर्षा करने लगे। इस प्रकार सभी से विदा ले, माँ मुझे और रूमा देवी को साथ लेकर बड़ौदा की ओर रवाना हो गयी।

11 अगहन, रविवार– आज सुबह हम लोग आगरा पहुँची। निरोज दादा और वीरेन दादा स्टेशन पर आये थे। निरोज दादा के डेरे पर तम्बू लगाया गया था। माँ को वहाँ ले जाया गया। माँ आज बड़ौदा रवाना हो जाएँगी। माँ के आने की सूचना पाकर अनेक लोग दर्शन करने आये। रात 9 बजे हमें रवाना होना है।

बातचीत चल रही है, काफी बातें हुई। एक सज्जन पूछ रहे थे-''इस शरीर में रहकर क्या अशरीरियों का ध्यान किया जा सकता है?''

माँ ने कहा-''ध्यान किया जा सकता है। लेकिन ध्यान करना और ध्यान

मग्न होना अलग-अलग बातें हैं। जब ध्यान हो जाएगा तब कौन किसका ध्यान करता है?''

एक अन्य सज्जन ने कहा-''मुझे कुछ नहीं पूछना है। मैं ठाट से खाता-पीता हूँ। धर्म तत्त्व की बातों से दिमाग परेशान करने की क्या जरूरत है?''

माँ हँसती हुई बोली-''बड़े मजे में रहते हो, पर रह कहाँ पाते हो? कुछ तो इधर-उधर करते हो, वर्ना दिमाग परेशान करने की क्या जरूरत? आखिर यह प्रश्न पैदा कैसे हुआ?''

उपस्थित सभी लोग हँस पड़े। वे सज्जन हँसते हुए बोले-''अच्छी बात है, तब मैं यह बात नहीं कहूँगा।''

माँ हँसती हुई बोली-''यह जो 'नहीं कहूँगा, नहीं कहूँगा' कह रहे हो, यह भी उसी भावना का प्रतीक है, इसीलिए कह रहे हो कि नहीं कहूँगा। नहीं कहूँगा कहने पर भी कहना हुआ।''

पुन: उक्त सज्जन अन्य लोगों के साथ हँस पड़े। अन्त में माँ की बातों को उन्होंने मान लिया।

छोटे-छोटे बच्चों की ओर देखती हुई माँ बोल उठी-''तुम सब मेरे दोस्त हो। बोलो, दोस्त बनने को राजी हो?''

सभी बच्चों ने सिर हिलाकर स्वीकार किया।

माँ बोली-''देखो, दोस्त बनने पर दोस्त की बात सुननी पड़ती है। वह बात क्या है सुनो-तुम लोग पाँच काम करते रहना। पहला-सवेरे उठकर हाथ-मुँह धोने के बाद पहले जिसे जो नाम अच्छा लगे वह नाम लेना। भगवान् से प्रार्थना करना कि मैं अच्छा लड़का या अच्छी लड़की बनूँ। दूसरा-हमेशा सच बोलना। तीसरा-माता-पिता एवं अन्यान्य गुरुजनों की आज्ञा मानोगे। चौथा-मन लगाकर पढ़ोगे-लिखोगे। पाँचवाँ-इसके बाद थोड़ी-सी बदमाशी कर सकते हो यानी खेल-कूद और क्या?''

इतना कहने के बाद माँ खिलखिला कर हँस पड़ी। बच्चों के मन लायक आखिरी बात रही, इसलिए वे सब किलकारी मारते हुए हँस पड़े।

रात 9 बजे वीरेन दादा और निरोज दादा स्टेशन तक आकर हमें गाड़ी

में बैठा गये। यहाँ यह भी तय हो गया कि वीरेन दादा का मझला लड़का देवीदास और निरोज दादा का चपरासी हमारे साथ भरतपुर तक जाएँगे। वहाँ दो घण्टा इन्तजार करने के बाद रात साढ़े दस बजे हमें बड़ौदा वाली गाड़ी पर बैठाकर वापस चले आएँगे।

स्टेशन आने पर माँ का एक आभास पाकर देवीदास बड़ौदा तक सैर कर आयेगा, यह तय हुआ।

बड़ौदा में श्री श्री माँ

12 अगहन, सोमवार– आज रात साढ़े नौ बजे हम लोग बड़ौदा पहुँच गये। सैयादीगंज स्थित चिमनलाल की धर्मशाला में आकर सभी लोग ठहरे और यह निश्चय किया गया कि रात यहीं व्यतीत की जाए।

रात अधिक हो जाने के कारण दुकानें खुली नहीं हैं। खाने-पीने का क्या प्रबन्ध होगा? साथ में देबू है, इसलिए श्री श्री माँ भोजन बनाने को कह रही हैं। लेकिन क्या करूँगी? बाद में श्री श्री माँ की आज्ञानुसार दरबान से चावल माँगे और साथ में कुछ फल परोस दिये। इस तरह खाने-पीने का प्रबन्ध कर, रात 12 बजे हम सो गये।

श्रीयुत् गंगाचरण दासगुप्त महाशय यहीं के ट्रेनिंग कॉलेज के प्रिंसीपल हैं। लेकिन माँ ने आज उन्हें सूचना भेजने के लिये मना किया। बोली–''जो कुछ होगा अब कल होगा। कल कब खाना-पीना हो कोई निश्चित नहीं है, इसलिए आज हम लोगों ने थोड़ा-बहुत खा-पी लिया।''

आज रेलगाड़ी में विशेष रूप से पूछने पर और भी बातें मालूम हुईं। हर समय सभी प्रकार की बातें नहीं निकलती। मुमकिन है कि हम सब उन बातों के अधिकारी नहीं हैं, इसलिए वे बातें नहीं निकलती।

भोलानाथजी की दीक्षा की बातें

बात यह है कि माँ की जबानी बाजितपुर में अपना परिचय प्रकट हुआ था, उसका जिक्र छेड़ती हुई मैं बोली–''अच्छा माँ, भोलानाथजी और निशि बाबू जब तुमसे तुम्हारा परिचय पूछ रहे थे, उस समय तुम किस स्थिति में थी?''

माँ ने जवाब दिया–''उस समय अपने आप पूजा-जप आदि क्रियाएँ इस

शरीर में हो जाती थी।''

मैंने पुनः पूछा–''जानकी बाबू आकर जब तुमसे बातचीत करने लगे तब तुम किस स्थिति में थी?''

माँ बोली–''वाह, उस समय तो भोलानाथजी की दीक्षा के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर, उन बातों की चर्चा हुई थी।''

मैंने कहा–''भोलानाथजी की दीक्षा की तारीख, महीना, दिन, नक्षत्र आदि बातें तुममें कैसे आयी?''

माँ हँसकर बोली–''सुन, भोलानाथजी और निशि बाबू के पूछने पर जब मुँह से यह प्रकट होने लगा कि अमुक दिन, अमुक महीना, अमुक तिथि, अमुक तारीख तब उन लोगों ने पत्रा की तलाश की और उसमें से एक-एक कर सब मिलाते गये। सभी उत्तर ठीक थे। वे लोग यह बात अच्छी तरह जानते थे कि यह शरीर पत्रा-सत्रा न कभी देखा और न जाना। यह देखकर वे दोनों प्रश्न-सूचक दृष्टि से एक-दूसरे की ओर देखने लगे। जाँचने के लिये उन्होंने पूछा–'अच्छा बताओ तो उस दिन कौनसा नक्षत्र होगा?' मुँह से नक्षत्र का नाम निकल गया, लेकिन वे ठीक से समझ नहीं सके।''

मैं हँसती हुई बोली–''ठीक हुआ था। वे लोग तुम्हारी परीक्षा लेने की भावना से आये थे, इसलिए धोखा खा गये। कभी-कभी देखा है कि तुम्हारी परीक्षा लेते समय मैं स्वयं धोखा खा जाती हूँ। खैर, आगे क्या हुआ?''

माँ पुनः कहने लगी–''अन्त में मुँह से निकला कि जानकी बाबू को बुला लाओ। वे अमुक जगह तालाब के किनारे बैठे मछली पकड़ रहे हैं। उन्हें बुलाया गया। उन्होंने पुनः आकर जब नक्षत्र के बारे में पूछा तब नक्षत्र की बातें प्रकट हुई। जानकी बाबू नक्षत्र के बारे में समझ गये और लोगों को समझा भी दिया। देखा गया कि पत्रा के साथ ठीक-ठीक मिल गया। जानकी बाबू संस्कृत जानते थे। बाद में उन लोगों से सारी बातें सुनने के बाद जानकी बाबू के मन में न जाने कैसा एक प्रकार का कौतूहल उत्पन्न हुआ। कारण इस शरीर को पहले कभी उन्होंने नहीं देखा था, मैं आड़ में ही रहती थी और उस वक्त माथे पर कपड़ा नहीं था, किसी किस्म का संकोच नहीं था। जैसे छोटी बिटिया अपने बाप से बातें कर रही हो। तभी जानकी बाबू ने पूछा–''आप कौन हैं?''

मैंने प्रश्न किया–''उस समय भी क्या पूजादि कोई क्रिया होती रही?''

माँ ने उत्तर दिया–''नहीं, उस समय मैं अपने भाव में रहती हुई, उनकी बातों का जवाब दे रही थी।''

पुनः बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी–''देख, छिपाने का भाव कब तक रहता है? जब तक अभाव का बोध होता है। अभाव का बोध क्या है? साधक को लगा–कहीं साधना की क्षति हो और सर्वसाधारण को लगा–कहीं हमारी प्रतिष्ठा नष्ट न हो जाए। फलस्वरूप छिपाने की भावना रह जाती है। इसके अलावा महात्माओं का दल कभी–कभी सभी बातें नहीं कहते, क्योंकि उसे सुनने के सभी अधिकारी नहीं होते। जैसे मैट्रिक पास व्यक्ति के निकट एम.ए. पास होने का समाचार कहने से समझेगा नहीं।''

मैंने कहा–''माँ, कुछ लोग कभी–कभी कहते हैं कि माँ जी हमारी तरह घर–गृहस्थी के चक्कर में नहीं पड़ी, फिर वे सांसारिक झंझटों को कैसे समझ लेती हैं?''

माँ ने जवाब दिया–''वाह, कैसे जानती हूँ? मैं ही तो तुम हूँ, तुम ही मैं हूँ–यही और क्या। न समझने का प्रश्न कहाँ रहा?''

ट्रेन के संडास में वे साढ़े पाँच बजे शाम के समय गयी थी। वापस आकर कहने लगी–''देख, कैसा होता है, जानती है? यह जो संडास का दरवाजा है, उसे कैसे खोलना चाहिये, मैं अच्छी तरह जानती हूँ। लेकिन कभी–कभी ऐसा होता है कि उसे कैसे खोलना चाहिए, यह भावना इस शरीर में नहीं जागती। जैसे मैं दरवाजा खोलना नहीं जानती, ठीक इस तरह होता है। दिल्लगी की बात यह है कि ऐसा हो सकता है, मैं समझ लेती हूँ। यहाँ तक कि उस वक्त दरवाजा नहीं खोल सकूँगी और बच्चों की तरह हरकत करती हुई अवाक् होकर खड़ी रहूँगी। सब जान लेती हूँ। इस शरीर की मूर्ति भी मेरी आँखों के सामने आ गयी है और तुमसे किसी–किसी समय कह रही हूँ–बन्द मत कर। खोलने की भावना न आने पर मैं खोल नहीं सकूँगी। वास्तव में उस वक्त इस शरीर में एक अनजान की तरह पूर्ण भाव दिखाई देने लगता है। हम लोग सगुण–निर्गुण कहते हैं न? किसी भी गुण का प्रकाश नहीं होता और दूसरी ओर सभी गुणों का प्रकाश होता है। यह भी स्वभाव है और क्या? कितने सुन्दर हैं। यह गतागति की क्रियाएँ देख रही है, यह

सब शरीर में हैं, इसलिए थोड़ी-बहुत हो जाती हैं। दूसरी ओर कभी-कभी देखती होगी कि शरीर रहते हुए भी क्रियादि नहीं हो रही है।''

देवीदास को लेकर परेशानी

ट्रेन में एक घटना और हुई थी। चूँकि उसका वर्णन करना आवश्यक है, इसलिए लिख रही हूँ। देबू हमारे साथ आया है, यह पहले ही बताया जा चुका है। माँ के अस्वस्थ रहने के कारण सैकेण्ड क्लास में ही हम सफर कर रहे हैं। देबू थर्ड क्लास में था। भोर में एक बार देबू हमारे पास आया था। उसके बाद 10 बजे तक फिर नहीं आया। न जाने कौनसी बात कहने के लिये मैं देबू को खोजने लगी, पर वह नहीं मिला। चिन्तित हो उठी। लड़का है, कभी इस तरह घर से बाहर नहीं निकला। इधर तो कभी आया ही नहीं। माँ मुझसे अधिक चिन्तित होती हुई बोली कि अच्छी तरह तलाश किया जाय। फिर भी न दिखाई दे तो आगरा में तार भेज दे। अगले स्टेशन पर मैं उतर जाऊँगी। ये सभी बातें हो गयी।

माँ भी चिन्ता के सागर में डूबी थी। दूसरी ओर प्रत्येक स्टेशन पर उतर कर मैं देबू की तलाश करती रही। इसी तरह तीन-चार स्टेशन के बाद जो स्टेशन आया, वहाँ उतरने के वक्त मैं बोली-''अगर यहाँ भी वह न मिला तो अब कोई प्रबन्ध करना पड़ेगा।''

इतना कहकर ज्यों ही मैं गाड़ी के नीचे उतरी त्यों ही माँ अपना गंभीर रूप त्यागकर हँस पड़ी। मैं माँ की ओर देखती हुई, हँस पड़ी-''तुम हँस रही हो, क्या बात है? अब तक तो तुम मुझसे अधिक चिन्तित दिखाई दे रही थी। क्या इस बार उससे मुलाकात हो जाएगी?''

माँ कुछ न कहकर सिर्फ हँसती रही। मैं उतर गई। कई डिब्बे खोजने के बाद देखा कि एक डिब्बे में श्रीमान्‌जी खड़े हैं। उतरने की तैयारी कर रहे हैं। मैं वहाँ से वापस आकर माँ से बोली-''सब जानती-समझती हुई ऐसा व्यवहार क्यों करती रही, आश्चर्य है! अन्त में जब रहा नहीं गया तब हँस पड़ी।''

माँ हँसती हुई बोली-''हँसी आ गयी।''

गोकि माँ की शक्ल अगर कोई पहले-पहल देखता तो कहता वे भी बहुत चिन्तित हैं। मैंने सोचा शायद मुझसे कर्मक्षय कराने के लिये माँ को

जब जिस रूप में रहना चाहिये, वही हो जाता है। शुरू से ही माँ का हँसता हुआ चेहरा देखने पर शायद मैं चिन्तित न होती, इसीलिए यह भाव उत्पन्न हुआ। जब मेरा जितना कर्म था, समाप्त हो गया तब माँ हँस पड़ी। क्योंकि माँ जानती थी कि देबू गाड़ी में ही है और मैं व्यर्थ में चिन्तित हो रही हूँ।

इन सभी भावों की आवश्यकता होती है, समझते देर नहीं लगी। दो भावों का खेल माँ का हमेशा से चल रहा है, यह बराबर देख रही हूँ। मेरे साथ-साथ माँ भी व्यस्त हो उठी।

मैंने पूछा-"सब कुछ जानती हुई कैसे अनजाना भाव दिखाती रही?"

माँ हँसती रही। यह झूठ नहीं है, पर कौन इसे समझेगा? हम लोगों की धारणा के परे है।

13 अगहन, मंगलवार- आज सवेरे उठकर धर्मशाला के बगल में कमलेश बाबू की पत्नी को समाचार दे आयी। इनके बारे में पहले ही लिख चुकी हूँ। माँ के लिये ये बड़ी व्याकुल रहती हैं। इसके बाद श्रीयुत् गंगाचरण बाबू को खबर देने चली गयी। नया दरबान माँ को नहीं पहचानता था। नीचे का कोठा हम लोगों को रहने के लिये दे दिया। सुबह धर्मशाला के मालिक को जब माँ के आने की सूचना मिली तब वे आये और ऊपर वाला कोठा दे दिया। वे तुरन्त अपने आदमियों से सारा सामान ऊपर ले जाने के लिये तैयार हो गये।

माँ ने कहा-"अभी रहने दो। अगर यहाँ रहना पड़ा तो ऊपर चली जाऊँगी। अभी देखो क्या होता है।"

मैं जब वापस आयी तब इन सभी बातों का पता चला। कमलेश बाबू की पत्नी माँ के लिये दूध ले आयी थी। मेरे साथ गंगाचरण बाबू की पत्नी और कन्या आयी थी। गंगाचरण बाबू ने कहा-"मैं कॉलेज जाते वक्त माँ के पास जाऊँगा, अभी माँ को यहाँ कुछ दिन रखने का प्रबन्ध करूँगा।"

ज्यों ही मैं वापस आयी त्यों ही माँ ने पूछा-"चान्दोद जाने वाली गाड़ी कब छूटती है?"

पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि एक घण्टे के भीतर अगर हम रवाना हो जाएँ तो गाड़ी मिल सकती है।

माँ ने कहा-"चलो चला जाय।"

तुरन्त तैयारी होने लगी। यहाँ से 5-6 मील दूर गोया गेट से गाड़ी पकड़नी होगी। जल्दी से बस द्वारा चल पड़ी। गंगाचरण बाबू को स्वप्न में भी खयाल नहीं था कि माँ इतनी जल्दी चल देंगी। वे जब धर्मशाला में आये तब माँ के चले जाने का समाचार सुनकर विश्वास नहीं कर सके। बाद में स्टेशन पर आकर माँ के श्रीचरणों का दर्शन किया।

चांदोद की ओर

पंजीलाल बाबू हम लोगों को लेकर स्टेशन पर आये थे। सारी तैयारी ठीक ढंग से की गयी थी। दिन के 11 बजे हम रवाना हुए। दो या ढाई घण्टे बाद हम चान्दोद पहुँच जाएँगे। बीच में गबई स्टेशन पर गाड़ी बदलकर दूसरी गाड़ी पर जा बैठे सैकेण्ड क्लास के डिब्बे में सिर्फ एक महिला बैठी थी। माँ को देखते ही वे उन्हें बैठने के लिये अपनी जगह छोड़कर दूसरी बेंच पर जा बैठी। यहाँ से गन्तव्य पथ थोड़ी दूर है। इन चन्द घड़ियों में उक्त महिला से घनिष्ठता हो गयी।

माँ को देखते ही उनके मन में भक्ति-भाव जाग उठा। वे एक लम्हे में समझ गयी कि माँ साधारण महिला नहीं है। बाद में मालूम हुआ कि इनका नाम जानकी बाई है। आप राजपिपला की रानी के साथ रहती हैं, कुमारी हैं। इस वक्त उदयपुर से आ रही हैं। माँ के लिये एकान्त स्थान का पता लगाकर सूचना देंगी।

हम लोग व्यास भी जाएँगे। सुबह साढ़े दस बजे हम लोग चान्दोद पहुँच गये। यहाँ से टीकमजी के मन्दिर तक पैदल चलने के अलावा और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि यहाँ कोई सवारी नहीं मिलती। इस धूप में माँ को वहाँ ले जाना उचित नहीं होगा समझकर, उन्हें स्टेशन पर रख, मैं और उमा देवी सामान उठाने की तैयारी करने लगी। ठीक इसी समय एक व्यक्ति ने आकर कहा-''मैं राजपिपला स्टेट का कर्मचारी हूँ। मुझे यहाँ जानकी बाई ने भेजा है। उन्होंने कहा है कि माताजी व्यास जाएँगी। चान्दोद से अभी तुरन्त 'बोट' व्यास जा रही है। अगर मेरी जरूरत हो तो मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ।''

जानकी बाई गाड़ी से उतरकर चली गयी थी। सारी बातें सुनने के बाद माँ बोली-''तब अभी चलो रवाना हो जायँ।''

इतना कहने के पश्चात् वे इस धूप में चलने को तैयार हो गयी। रास्ते में टीकमजी के मन्दिर में महन्तजी को और वहाँ पर रहने वाले साधन ब्रह्मचारी को सारा समाचार देती हुई जाऊँगी। माँ घाट की ओर बढ़ी। ज्यों ही वे वेटिंग रूम से बाहर निकली त्यों ही उस व्यक्ति ने आकर कहा– ''जानकी बाई के लिये स्टेट की ओर से गाड़ी आयी थी। उन्होंने कहलवाया है कि उन्हें पहुँचाकर अभी माताजी को घाट तक पहुँचाने के लिये गाड़ी भेज देंगी। माताजी पैदल न जाने पायें।

माँ वेटिंग रूम से बाहर निकल आयी थी, इसलिए पुनः भीतर नहीं गयी। स्टेशन के एक बेंच पर बैठ गयी।

मैंने कहा–''सारी तैयारी ठीक है। आप चुपचाप अपनी जगह बैठी रहें।''

माँ हँसती हुई बोली–''अच्छा, पहले से इतनी बातें कही जा सकती थी कि जानकी बाई से अचानक मुलाकात होगी। कुछ दूर जाने के बाद उन्हें गाड़ी भेजने की बात याद आयेगी। इसके बाद वह इतना इन्तजाम करेंगी। इतनी बातें कैसे कही जा सकती हैं? थोड़ी देर की मुलाकात में इतनी बातें कैसे कही जा सकती हैं? तब तो तन्न-तन्न कर तुम्हारे मन की गति कब किस रूप में होगी, बताकर समय भली-भाँति गुजारा जा सकता है। यह भी अनन्त है, क्या कहूँगी? बोल।''

चान्दोद में वे नहीं ठहरी। सीधे घाट पर आ गयी। चान्दोद के महन्त महाराज अत्यन्त सज्जन और धार्मिक प्रकृति के व्यक्ति हैं। इनसे पहले से परिचय था। अब माँ एकदम अपरिचित स्थान पर जा रही हैं। साधन भी हमारे साथ हो लिया।

व्यास में नर्मदा तट पर अज्ञात वास

एक घण्टा बाद यानी 4 बजे के लगभग हम लोग व्यास पहुँचे। यहाँ काफी सुनसान है। नर्मदा के किनारे जंगलमय स्थान है। परसाल यहाँ एक रात हम गुजार चुके हैं। अब यहाँ दो-तीन मकान भी तैयार हो गये हैं। यहाँ सिर्फ कई मन्दिर और आश्रम है। एक प्रकार से यह स्थान द्वीप की तरह है। पास ही नर्मदा के उस पार शुकदेव और अनसूया गाँव है। कहा जाता है कि काशी से अधिक इस स्थान का माहात्म्य है। इस तपोभूमि में न जाने कितने महात्मा तपस्या कर चुके हैं। अब वह सब लुप्त हो गये हैं। फिर भी स्थान

की गम्भीरता ने हमारा मन मोह लिया।

हम लोग राम मन्दिर में ठहरे। यहाँ महन्तजी और दो-एक ब्रह्मचारी हैं। कुछ देर बाद माँ घूमने के लिये बाहर निकली। साथ में देबू और साधन था।

शाम के समय वापस आने के बाद माँ ने कहा-''खुकुनी, रहने लायक एक और जगह देख आयी हूँ। जा, तू भी देख आ।''

पता चला कि पास ही **योगानन्द स्वामीजी** का आश्रम है। वहाँ नये मकानों का निर्माण हुआ है। अभी कोठरियाँ नहीं बनी हैं। आश्रम में स्वामीजी महाराज और कई शिष्याएँ हैं। महिलाएँ यहाँ हमेशा नहीं रहती। कभी-कभी गुरुजी के आश्रम में आकर कुछ दिनों तक निवास करती हैं। सभी गुजराती हैं।

माँ को देखने के बाद महिलाएँ उन्हें अपने आश्रम में ठहरने के लिये आग्रह करने लगी। रात को आकर मैं स्वामीजी और उनकी शिष्याओं से बातें कर, कल आने की वायदा कर वापस आ गयी। रामजी के मन्दिर में हमें किसी प्रकार का कष्ट नहीं था। यहाँ के सभी व्यक्ति बहुत ही अच्छे हैं। लेकिन ऊपर ठहरने के कारण सीढ़ी से बार-बार चढ़ने-उतरने से कहीं माँ की धड़कन वाली बीमारी बढ़ न जाय, इस भय से हम लोगों ने अन्यत्र रहने की व्यवस्था की।

यहाँ के सभी लोग हमारी सहायता कर रहे हैं, फलस्वरूप हमारे लिये जंगल में भी मंगल है। माँ की कृपा से सारा काम ठीक ढंग से हो रहा है। यहाँ खाने-पीने की चीजें नहीं मिलती। सभी सामान चान्दोद से मँगाना पड़ता है। यहाँ से चान्दोद जाने के लिये एक रास्ता है जो 3-4 मील के लगभग है। यहाँ एक धर्मशाला भी है। जहाँ अन्न-सत्र है। दण्डी और परमहंस संन्यासी नित्य यहीं भिक्षा ग्रहण करते हैं।

फलाहारी माँ से परिचय

एक अग्निहोत्री ब्राह्मण परिवार भी यहाँ रहता है। उन्होंने अपने लिये पक्का मकान बनवा लिया है। थोड़ी दूर पर एक बुढ़िया ने एकान्त में साधन-भजन करने के लिये एक पक्का मकान बनवाया है। वे फलाहार करती हैं। नाम है-सरस्वती प्रकाश और उम्र 70-75 वर्ष के लगभग है। कुछ दूर आगे एक मन्दिर और एक पक्का चबूतरा है। यहाँ अनेक शिवलिंग हैं। इस स्थान

का नाम कैलास है। इसके अलावा और भी कई बरामदे वाले खाली मकान हैं। चारों तरफ शरीफे का जंगल है। यहाँ एक लक्ष्मीनारायण का मन्दिर है जहाँ पिछली बार आकर ठहरी थी।

रामजी के मन्दिर में हम रात के वक्त माँ के पास बैठे हैं। एक-एक वृद्ध संन्यासी में गृहस्थ की भावनाएँ देख आयी थी, मैं उन्हीं बातों को माँ से कह रही थी।

साधन भाई ने पूछा-''क्यों माँ, इतने दिनों तक संन्यासी जीवन व्यतीत करने के बाद भी ये भावनाएँ क्यों रहती हैं? ऐसी हालत में हमारी क्या स्थिति होगी?''

माँ ने कहा-''देखो, युवावस्था में अनेक विषयों में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। इस उम्र में सभी ओर व्यवस्थित ढंग से काम करने की शक्ति रहती है। लेकिन बचपन और बुढ़ापे में अन्तर की समस्त प्रवृत्तियाँ स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाती हैं। उसे वे रोक नहीं पाते। फिर भी वे इस ढंग से जीवनयापन करते जा रहे हैं। इसमें भी आशा है।''

योगानन्द स्वामीजी के आश्रम में

14 अगहन, बुधवार- आज सुबह योगानन्द स्वामीजी के आश्रम में हम लोग चले आये। उनके आश्रम में जहाँ नये कमरे बने हैं, वहीं हमें ठहराया गया। बिल्कुल नया है। अभी तक बरामदे में काम बाकी है। अगर हम दो-चार दिन पहले यहाँ आते तो शायद आश्रम न मिलता। यहाँ का प्रबन्ध बहुत सुन्दर है।

माँ ने कहा-''देख रही है, तुम लोगों के लिये पहले से घर-द्वार तैयार करके रखा गया है। अब तुम लोग बेकार की चिन्ता छोड़कर उनके ऊपर सब कुछ छोड़ दो तो देखोगी कि सब ठीक है। इस जंगल में आने पर भी नया भवन तैयार मिल रहा है। अगर दो-चार दिन पहले आती तो शायद यह स्थान नहीं मिलता। अगर दो-चार दिन बाद आती तो और कोई साधु यहाँ आ जाता।''

माँ हँसने लगी। मैंने सोचा कि यह सच है। न जाने कितनी असुविधाओं के मध्य हमारे बगैर कोई प्रयत्न किये, सिर्फ माँ के ऊपर भरोसा रखने के कारण सारी मुश्किलें आसान हो गयी हैं। कभी-कभी तो ऐसा हुआ है

जिसकी संभावना नहीं थी। यहाँ भी यही बात देख रही हूँ।

माँ आगरा, बड़ौदा, चान्दोद आदि स्थानों पर देरी न कर ठीक समय पर यहाँ चली आयी। सारा सामान ठीक-ठाक कर मैं भी बाहर निकल पड़ी। साधन और देबू बड़ौदा रवाना हो गये।

माँ सबसे पहले माता सरस्वती प्रकाश के आश्रम में आयी। यहाँ कुछ देर तक बैठी। माताजी एकान्त में साधना करती हैं। सुना है कि वे लगभग 40 वर्षों से साधना कर रही हैं। पहले भिन्न-भिन्न स्थानों पर थी। अब यहीं स्थायी रूप से रहने लगी हैं। आप सूरत की रहने वाली हैं।

माँ को अपने पास पाकर वे बातचीत करने लगी। चूंकि उस वक्त उनके पूजा का समय हो गया था, इसलिए हम लोग चली आयी।

शाम के समय हम पुनः उनके पास गयी। स्थान काफी निर्जन है। इस बार यह वृद्धा बहुत-सी बातें कहने लगी। बार-बार आने के लिये कहने लगी। माँ से उन्होंने कहा-''मुझे तुम बहुत अच्छी लग रही हो।''

माँ हँसती हुई बोली-''क्यों नहीं लगूँगी। मैं तो तुम्हारी लड़की हूँ। लड़की को देखने पर माँ को अच्छी लगती है।''

इस तरह की दो-चार बातें और हुई। इसके बाद माँ वहाँ से चल पड़ी। मैं हँसती हुई धीरे से बोली-''इस वृद्धा का दिमाग अब खराब करोगी। बेचारी एकान्त में है, अब इसे परेशान करोगी।''

माँ हँस पड़ी।

रात को सोते समय माँ हँसती हुई बोली-''कितने साहस की बात है। देखो, इस निर्जन स्थान पर तीन औरतें कहाँ से कहाँ आ गयी।''

इस तरह की और भी बातें कहती रही।

मैंने कहा-''क्या बात करती हो। सोचने पर बात सही लगती है। चूंकि तुम हमारे साथ हो, इसलिए मेरे मन में ये सब बातें नहीं पैदा होती। आते समय न जाने कितने लोग चाहते थे कि हमें बड़ौदा तक पहुँचा आयें, क्योंकि हमारे साथ कोई पुरुष नहीं था। मैंने उनसे हँसकर कहा था कि अब भी आप लोग ये सब बातें सोचते हैं क्या? आप मर्द होकर कितना इन्तजाम कर सकते हैं? माँ साथ में हैं, क्या यह काफी नहीं है?''

15 अगहन, गुरुवार – इस निर्जन स्थान पर दिन मजे में गुजर रहा है। आज कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई।

16 अगहन, शुक्रवार– आज भी कोई घटना नहीं हुई। माँ का आहार सिर्फ दूध है। यहाँ गाय का दूध नहीं मिलता। एक प्रकार से वे कुछ भी नहीं खाती हैं। शरीर कमजोर है इसलिए डरती रहती हूँ। लेकिन माँ कहती हैं– ''चिन्ता क्यों करती है? जहाँ जो कुछ है, उसी से काम चल जाएगा।''

देखूँ, क्या होता है। तरकारी भी यहाँ नहीं मिलती। चान्दोद में नाममात्र की तरकारियाँ मिलती हैं। फल–फूल तो हैं ही नहीं। क्या करूँ समझ नहीं पाती। थोड़ी–सी सूजी उबालकर, रोटी और यहाँ के पेड़ से कुछ पपीते तोड़कर, उसका रसा बनाकर दिया। दो दिन से रोटी भी नहीं खायी। इसी तरह दिन बीत रहे हैं।

क्यों इतनी असुविधा सहती हुई माँ यहाँ रह रही हैं, यह वे ही जानें। आश्रम की महिलाएँ माँ की मूर्ति देखने के बाद से अपने यहाँ उन्हें ले आयी हैं। इस वक्त मेरी जबानी कुछ बातें सुनकर वे माँ के समीप आकर बैठ गयी। वे माँ से कुछ सुनना चाहती थी। माँ हँसती हुई दो–चार अमूल्य उपदेश देने लगी। सभी महिलाएँ आनन्द से विभोर हो उठी। ये सभी महिलाएँ यद्यपि गुजराती हैं, फिर भी हिन्दी कुछ–कुछ समझ लेती हैं। मैं भी गुजराती समझ लेती हूँ। इसी प्रकार काम चल रहा है।

आजकल माँ अक्सर यह कहती हैं–''तुम लोग वापसी टिकट लेकर आती हो इसलिए आवागमन चालू रहता है। अब ऐसा काम करो कि रिटर्न टिकट न लेना पड़े।''

सरस्वती प्रकाश माताजी के आश्रम में कल और आज न जा सकी। माताजी स्वयं एक बार हालचाल पूछने आयी थी कि माँ हैं या चली गयी। समझ गयी कि इस वृद्धा के मन में हलचल उत्पन्न हो गयी है।

17 अगहन, शनिवार– आज सुबह मैं और माँ चहल–कदमी करती हुई, व्यासदेव के मन्दिर, धर्मशाला, सत्यनारायण मन्दिर आदि स्थानों को देखती हुई अग्निहोत्रीजी के घर पर आकर कुछ देर के लिये बैठी। वे लोग हमारा आदर–सत्कार करते हुए बोले–''जब जिस चीज की जरूरत हो, हमसे कहा जाय।''

यहाँ से हम पैदल ही चल पड़े। चलते-चलते फलाहारी माताजी (सरस्वती प्रकाश) के आश्रम के पास आये। माँ को देखते ही तपस्विनी व्यस्त भाव से बुलाने लगी। इसके बाद अपनी भाषा में कहने लगी-''यह कैसी लड़की है जो अपनी माँ के पास न आकर इधर-उधर घूमती रहती है।''

माँ उसके आश्रम में प्रवेश करते हुई बोली-''माँ का स्वभाव बेटी ने ले लिया है। जैसी माँ, वैसी उसकी बेटी।''

वृद्धा अत्यन्त प्रसन्न हो गई। माँ को बैठने को कहने के पश्चात् वह बोली-''इधर दो दिन से तुम नहीं आयी तो सोचा कि कहीं चली तो नहीं गयी? फिर सोचा-मुझे बिना बताये क्यों चली गयी?''

वृद्धा की अधिकारपूर्ण वार्ता सुनकर हम हँस पड़ी। मैंने माँ से कहा-''यह वृद्धा एकान्त में अकेली रहती है, साधना-भजन करती है, ऐसी हालत में तुम हो या चली गयी, इसे लेकर क्यों परेशान है? फिर कितना अधिकार समझती है, देखो। दो दिन के परिचय में ही कहती है कि मुझे बिना बताये कैसे चली गयी?''

वृद्धा बंगला भाषा नहीं समझ पायी। माँ और मैं अपनी बातों पर हँसने लगी। मैंने कहा-''मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि इस वृद्धा के मस्तिष्क को बदलने के लिये यहाँ आयी हो।'' माँ हँस पड़ी।

वहाँ कुछ देर तक बैठने के बाद हम दोनों चली आयी। चलते वक्त वृद्धा पुनः आने के लिये अनुरोध करती रही।

दोपहर को यह वृद्धा माँ के कमरे में आकर बैठ गयी और माँ से कहने लगी-''तुम मुझे बहुत अच्छी लग रही हो, पर उसे मौखिक रूप से व्यक्त नहीं कर पा रही हूँ, सिर्फ मेरे ह्रदय में अंकित है।''

माँ हँसती हुई बोली-''माँ को कहीं अपनी लड़की खराब लग सकती है?''

माँ किसी को नहीं छोड़ती। अनेक बार यह देख चुकी हूँ कि माँ के पास आते ही लोगों के भीतर के भाव अनायास प्रकट हो जाते हैं। सामंजस्य रखने का लोग प्रयत्न करते हैं, परन्तु यहाँ आने पर वे ऐसा नहीं कर पाते। खैर, इस जंगल में भी आनन्द से हमारे दिन गुजर रहे हैं।

19 अगहन, सोमवार– आज 10 बजे नाव से माँ के साथ मैं और साधन चान्दोद की ओर चल पड़े। देवीजी को व्यास में छोड़ गये। चान्दोद में हम टीकमजी के मन्दिर में आकर ठहरे। महन्त महाराज माँ को देखकर गद्गद् हो गए और चान्दोद में रहने के लिये विशेष रूप से अनुरोध करने लगे।

माँ ने कहा–''पिताजी, आपकी यह पागल बिटिया घूमते-घामते जब इच्छा होगी तब खुद ही आ जाएगी।''

दोपहर के समय माँ थोड़ी देर के लिये आराम करने गयी। दो बजे वाली गाड़ी से गंगाचरण बाबू सपत्नीक आये, साथ में अभय भी था। अभय 15-16 दिन काशी में श्रद्धेय गोपीनाथ बाबू के यहाँ था। 4 बजे माँ कर्णाली से घूम-घामकर वापस आ गयी। शाम के समय हम व्यास की ओर रवाना हुए।

नाव से व्यास जाने में तीन घण्टे लगते हैं। चाँदनी रात, नर्मदा में माँ के साथ सैर करने में काफी आनन्द प्राप्त हुआ। दोनों ओर के दृश्य अत्यन्त निर्जन हैं। सोचने लगी कि न जाने कितने साधक यहाँ साधना करते रहे, आज भी उनके प्रभाव इस स्थान को प्रभावित किये हुए हैं। रात साढ़े नौ बजे हम व्यास पहुँचे। चारों तरफ गहरा सन्नाटा छाया हुआ था।

20 अगहन, मंगलवार– आज गंगाचरण बाबू बड़ौदा वापस लौट गये। माँ के साथ बड़े आनन्द से दिन बीता।

21 अगहन, बुधवार– आज काफी भोर के वक्त माँ अचानक मुझसे कहने लगी–''एक मूर्ति दिखायी दी। इस वक्त कितना बजा है?''

मैंने कहा–''चार।''

माँ बोली–''सवा चार बज गये हैं। यही नाम लेने का समय है।''

मैंने पूछा–''किस मूर्ति के बारे में आप कह रही थी?''

माँ ने जवाब नहीं दिया।

22 अगहन, गुरुवार– माँ, मैं, अभय, साधन और श्रीयुत् गंगाचरण बाबू की पत्नी बैठी हैं। बातचीत के सिलसिले में हर तरह की बातें हो रही थी।

मैंने कहा–''कभी-कभी बात करने की इच्छा न होने पर माँ का मुँह अंगुली से दबा रहता है।''

माँ हँसकर बोली–''हाँ, शायद ऐसा होता है। न जाने कितने लोग बैठे रहते हैं, बातें हो रही हैं। अचानक जो चर्चा नहीं करनी चाहिए, वह प्रसंग चल जाने पर कोई जवाब नहीं पाता और ये दोनों अंगुलियाँ कसकर मुँह से सट जाती हैं। इसके पश्चात् एक-एक भाव के समय अपने आप एक-एक प्रकार का आसन स्वाभाविक हो जाता है। आसन देखने पर सहज ही समझ में आ जाता है कि उस व्यक्ति के अन्तर में इस वक्त कौनसी भावनाएँ उमड़-घुमड़ रही हैं।'' आदि अनेक बातें माँ कहती रही।

इस आश्रम के योगानन्द स्वामीजी की कई शिष्याएँ (गुजराती) अपने गुरुजी के यहाँ अक्सर आकर रहती हैं। इन शिष्याओं में से एक शिष्या हमारे बारे में विशेष रूप से खोज-खबर लेती रहती है। महिला अत्यन्त धार्मिक है। माँ का वास्तविक परिचय एक प्रकार से ये सब नहीं जानती। फिर भी माँ की मूर्ति देखकर अत्यन्त आकृष्ट हो गयी हैं। यह बात उनके व्यवहार से स्पष्ट हो रही थी। वह महिला बार-बार नहीं आती थी। वे बीच-बीच में आती रही और माँ के मुँह से निकली दो-चार बातें उन्हें काफी अच्छी लगती रही।

एक महिला का माँ को अलौकिक रूप में दर्शन करना

महिलाओं का दल पास ही सिनोरा नामक स्थान पर गया था और अब लौट आया है। वह महिला आयी और आकर माँ से बोली–''आज मैंने एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा है। हम सब नाव पर बैठी हुई थी। अचानक मैंने देखा कि आप अर्द्धशायित स्थिति में जैसे कि आप अक्सर लेटी रहती हैं, ठीक उसी तरह लेटी हुई हैं। मैं अपनी नजर जिधर ही घुमा रही थी, उधर ही आप दिखाई दे रही थी। अन्त में जब मुझसे नहीं रहा गया तब मैंने अपनी बहनों से कहा, परन्तु उन्हें कुछ दिखाई नहीं दिया।''

उस महिला ने टूटी-फूटी हिन्दी भाषा के जरिये किसी तरह ये बातें हमें समझायी। माँ सारी बातें सुनकर हँसने लगी।

माँ ने मुझसे कहा–''ये क्या कही है, सुन लिया?''

शाम को माँ के साथ कुछ दूर टहल आयी। शाम के वक्त माँ अक्सर सामने के इमली के पेड़ के नीचे नर्मदा नदी की ओर मुँह किये बैठती है। पेड़ के नीचे पक्का चबूतरा है। हम सभी माँ के साथ बैठती हैं, आज भी बैठी।

23 अगहन, शुक्रवार– आज भी दैनिक कार्य एक तरह से चलता रहा। शाम के समय इमली के पेड़ के नीचे जाकर सभी महिलाएँ बैठ गयी। आज माँ की तबीयत कुछ अच्छी नहीं थी।

कह रही हैं–''न जाने कैसा–कैसा लग रहा है।''

शाम होने के कुछ पहले फलाहारी माताजी (सरस्वती प्रकाश) के पास गयी। साथ में अभय और मैं थी।

वृद्धा माँ को देखकर खिल उठी–''बेटी, देर से क्यों आयी?''

माँ बरामदे में जाकर काफी देर तक बैठी रही। वृद्धा जरा छुआछूत का ज्यादा खयाल रखती है। माँ ने कहा–''मैं पानी पीना चाहती हूँ।'' इसके बाद मुझसे माँ ने कहा–''माँ के साथ जरा शैतानी करूँ।''

वृद्धा इस वक्त जरा दूर रहना चाहती है, क्योंकि स्नान कर आयी है। मन्दिर दर्शन करने जाएगी। क्या करे, कुछ समझ नहीं पा रही थी। बोली– ''मुझे माया के चक्कर में फँसाना चाहती हो?''

जब उसने यह बात अच्छी तरह समझ ली कि माँ सचमुच पानी पीना चाहती है तब वह एक कटोरे में पानी लाकर मुझसे बोली कि लो, इन्हें पिला दो। इधर माँ बच्चों की तरह मुँह खोले उनके बिल्कुल पास बैठ गयी। बेचारी क्या करती। किसी सूरत से एक घूँट पानी मुँह में छोड़ने के बाद परेशानी की मुद्रा में मुझसे पानी पिलाने का अनुरोध करने लगी।

मैंने हँसते हुए कहा–''ये माँ के हाथ से पानी पीना चाहती हैं। मैं नहीं पिलाती।''

वृद्धा काफी परेशान–सी दिखायी दी। यह देखकर मैं पानी पिलाने लगी। बाद में माँ ने वृद्धा से कहा–''माँ–माँ, हर कोई मेरी माँ नहीं बनना चाहती। तुम तो मेरी माँ बन गयी हो। अब अगर मैं तुम्हें माँ–माँ कहकर पुकारूँ तो नाराज मत होना।''

वृद्धा अत्यन्त आदर के साथ बोली–''ऐसा कैसे हो सकता है कि मैं नाराज हो जाऊँ? फिर साधु का वेष धारण कर नाराज होना ठीक नहीं है।''

माँ हँसती हुई बोली–''ठीक है। यह तो अच्छी बात है।'' इसके बाद ठीक बच्चों की तरह वे 'माँ–माँ–माँ' कहकर पुकारने लगी और उनमें जरा भाव परिवर्तन हो गया। आँखों से पानी बहने लगा।

अभय और मैं डर गयी। यह क्या हो रहा है?

इस वृद्धा की एक लड़की थी। 15 साल की उम्र में दो महीने का गर्भ लेकर वह विधवा हो गयी। वही लड़की 20 वर्ष की होकर मर गयी। विधवा अपनी लड़की के शोक में गृहत्यागी बनी। कल यही सब बातें वह माँ से कहती रही। उसने यह भी पूछा था कि तुम क्या मेरी वही लड़की हो? तुम यहाँ कहाँ से आ गयी? मैं यहाँ एकान्त में रहती हूँ–कहीं नहीं जाती आदि बातें बताती रही।

आज माँ उसे पुकारती हुई कहने लगी–''तुम अपनी उस लड़की के लिये बहुत रो चुकी हो, इसीलिए आज मैं रो रही हूँ।''

वृद्धा पहले–पहल काफी प्रसन्न दिखाई दे रही थी। उसके अन्तर में कुछ दर्द है, इसका आभास मुझे नहीं लग पाया था। लेकिन माँ को इस तरह पुकारते देखकर वह उनके पास आकर स्थिर भाव से खड़ी हो गयी। देखते ही देखते वृद्धा की आँखें भर आयी।

शाम हो गयी है, देखकर मैंने तथा अभय ने कहा–''यह क्या माँ, बेचारी इस जंगल में अकेली रहती है। यहाँ आकर आप यह सब क्या करने लगी?''

माँ के ओठों में मुस्कराहट, आँखों में पानी था। वे कुछ बोली नहीं। कुछ देर बाद वृद्धा को साथ लेकर बाहर निकली। वृद्धा का नित्य–कर्म, सन्ध्या का ध्यान–भजन, सब कुछ माँ के साथ चल पड़ा। हम भी साथ–साथ चल पड़े।

इस वक्त माँ बिल्कुल बच्चों की तरह पीछे–पीछे द्रुतगति से चल रही हैं। वृद्धा की आकृति पर हँसी नहीं है। काफी गंभीर है। सभी मन्दिरों का दर्शन करने के पश्चात् वृद्धा वापस चली गयी।

मैंने माँ से पूछा–''भीतर जो कुछ है, उसे बाहर कर दे रही हो?''

माँ ने कहा–''भीतर वाला बाहर निकल जाय तो अच्छा है।''

वृद्धा अपने आश्रम के भीतर चली गयी और हम अपनी–अपनी जगह पर खड़े रहे।

फलाहारी माता का माँ में अपनी बेटी का रूप देखना

वृद्धा के आश्रम में किसी काम से मैं गयी तो वह बोली–"मैं यहाँ एकान्त में अपने देवता को लेकर रहती हूँ। अकेली रहने पर मुझे आनन्द मिलता है। यह बिटिया न जाने कहाँ से आ गयी। इसकी शक्ल मेरी बेटी से काफी मिलती है। कहाँ बंगाल और कहाँ गुजरात, पर कैसे भेंट हो गयी। क्या संयोग है, नहीं जानती। जब मैं दर्शन करने गयी थी तब मेरे दिल में किस तरह के भाव उत्पन्न हो रहे थे, यह भगवान् ही जानते हैं। यह बिटिया तो अब मेरी हो गयी है।"

मैं सोचने लगी–यह कैसा व्यवहार? कहाँ, किसलिए, किसके लिये, क्या–क्या व्यवहार कर रही है, मेरे लिये समझना मुश्किल हो गया है। सिर्फ देखती जा रही हूँ।

आज चान्दोद के मन्दिर के पुजारी हमारे लिये कुछ चीजें ले आये हैं। उन्होंने आज शाम को कीर्तन किया। अभय साथ देने लगा। देख रही हूँ कि माँ के साथ–साथ कीर्तन भी चलता रहेगा। पुजारीजी एसराज साथ ले आये हैं, माँ को कीर्तन सुनायेंगे।

24 अगहन, शनिवार– कल रात माँ की इच्छा सोने की नहीं थी। हमारे सो जाने के बाद वे उठकर काफी देर तक जागती रही। बाद में मुझे एक बार जब पुकारने लगी तब मैं जागकर बैठ गयी। काफी बातचीत हुई। रात तीन बजे के लगभग माँ सो गयी और मैं भी सो गयी।

आज कह रही हैं–कल रात एक घटना हो गयी थी। सूक्ष्म शरीर वाले आकर माँ को ले गये थे। फिर रख गये। कैसे तीन व्यक्ति उन्हें पकड़कर ले जा रहे थे, ये साफ–साफ देख पा रही थी और उसे बता रही हैं। एक स्थान पर जहाँ ले गये, वहाँ माँ की बँगला भाषा और अन्य भाषाओं में बातचीत हो रही थी। इतना उन्होंने कहा।

माँ कह रही हैं–"साफ हाथों को जोर से पकड़ रहे हैं, देखा।" माँ हँसने लगी।

हम नहीं जानते कब क्या होता है। माँ से मैंने कहा–"अगर हम लोग जागते रहते तो कैसा होता?"

माँ बोली–"शायद तुम सब डर जाते, भय से सिकुड़ जाते। विशेष कुछ

न देखने पर ऐसा होना स्वाभाविक है।''

कम्बल वाले बकरे को सूक्ष्म शरीर में देखना

आज शाम को मैं, अभय और साधन माँ के साथ फलाहारी माँ के यहाँ गये। वहाँ से वापस आकर माँ बिछौने पर सो गयी। हम लोग पास ही बैठे थे। माँ सूक्ष्म शरीर वालों की चर्चा करती हुई बोली–''एक बार बरेली में एक कम्बल ओढ़कर मैं लेटी हुई थी। मैं स्पष्ट रूप से देख रही थी कि एक बड़े-बड़े बाल वाला बकरा आकर मुझसे सटकर खड़ा है। उसका स्पर्श स्पष्ट रूप से अनुभव कर रही थी। यह समझ गयी कि इसी के बालों से यह कम्बल तैयार किया गया है। स्पर्श से समझ में आ जाता है कि यह स्थूल शरीर का और यह सूक्ष्म शरीर का है। फिर उन सूक्ष्म शरीर वालों के साथ व्यवहार हो जाने के बाद मैं हाथ-पैर ठीक करती हुई उठ बैठी या लेटी रही। फिर तुम लोगों को बुलाकर, सबसे व्यवहार करने लगी। कभी-कभी दोनों ओर से इस तरह का व्यवहार जारी रहता है।

पुनः प्रश्न उठता है। अभय कह रहा है–''कोई-कोई व्यक्ति गोपीनाथ बाबू के पास आकर कहते हैं कि आनन्दमयी माँ इतना इधर-उधर घूमती-घामती क्यों हैं? इसके जवाब में वे कहते हैं–''माँ कहीं घूमती-घामती नहीं। वे एक ही जगह रहती हैं। आपने देखा होगा-लट्टू जब चक्कर काटता है तब उसका मध्य स्थान स्थिर रहता है, चारों तरफ चक्कर भी काटता रहता है, उसी प्रकार के संग के साथ सिर्फ चक्कर काटती हैं, माँ स्थिर रूप में ही रहती हैं।''

गोकि माँ अपना चक्कर काटना स्वयं अनुभव नहीं करती। जैसे वे एक ही स्थान पर स्थिर हैं। यह बात जरा गौर से देखने पर समझ में आ जाती है। कारण कुछ नहीं है, कारण सिर्फ माँ हैं। वे इस तरह स्थिर हैं, हम अनुभव नहीं कर पाते। माँ तो हमेशा कहती रहती हैं–''मैं कहीं चक्कर नहीं काटती। मैं हमेशा एक ही जगह स्थिर रहती हूँ। अपनी चक्कर काटती हुई दृष्टि में तुम अगर चाहो तो कह सकते हो कि एक ही घर में चल रही हूँ, बैठ रही हूँ, सो रही हूँ।''

यह तथ्य केवल बातचीत के माध्यम से ही नहीं, वास्तव में उनके शरीर से भी स्पष्ट होता रहता है।

25 अगहन, रविवार– कल रात को भी माँ में सोने का भाव नहीं था। रात साढ़े दस बजे वे बिछौने पर से उठकर मिट्टी वाले कमरे में जहाँ अभय सोया हुआ था, उसके पास जाकर बैठ गयी। लगभग साढ़े चार बजे अपने बिछौने पर आकर बैठी। पाँच बजे सो गयी।

बातचीत के बीच यह सवाल उठा कि हम लोगों की तरह बचपन में माँ इस तरह नींद लेती रही कि नहीं?

माँ बोली–''देखो, क्या वह वजह है कि इसे न जाना जाय? तुम लोगों के भाव में जो है, उस नींद के बारे में न जानने की कोई वजह तो नहीं है। अगर इस शरीर के बारे में कुछ जानना चाहती है तो कह सकती हूँ कि अभी जो तुम सबकी दृष्टि में, बचपन की नींद जिसे कहा जाता है, अभी भी आती है। बीच में जब समस्त योग क्रियाएँ इस शरीर में हो गयी थी, उस समय इस तरह की नींद का भाव दिखाई नहीं देता था और शरीर यों पड़ा नहीं रहता था। उस वक्त जागृत भाव दिखाई देता था। और अगर अब तुम सब इसे नींद समझो तो तुम्हारी दृष्टि में बचपन की नींद भी इसी तरह होती रही।''

26 अगहन, सोमवार– आज माँ को साथ लेकर कुछ दूर टहल आयी। फलाहारी माताजी के प्राण में उस दिन माँ ने क्या कर दिया है, फिर भी वे गंभीर प्रकृति की हैं और इस एकान्त स्थान पर बहुत दिनों से साधन–भजन करती आ रही हैं। इसीलिए बहुत कम प्रकट होती हैं। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि चेहरा काफी बदल गया है।

आज मैं वहाँ गयी थी। बातचीत के सिलसिले में वे बोली–''अन्दर की बात रामजी जानें।'' इसके बाद माँ को दिखाती हुई बोली–''यह सब जानती है।''

पुनः माँ से बोली–''तुम तो मेरी हो गयी हो। मेरा प्राण तुम्हारे ही पास रहता है, पर मुझमें बाहर दिखाने की आदत नहीं है, दिखाकर क्या करूँगी? उस दिन तुमने मेरे भीतर न जाने क्या कर दिया कि आज तक मैं ठीक से समझ नहीं सकी।''

गंभीर रूप में कुछ दूरी पर बैठी हुई जब ये बातें उदास भाव से कह रही थी तब उनकी सारी बातें मर्मस्पर्शी लग रही थी। इधर के निवासी इन्हें

काफी श्रद्धा से देखते हैं। हमेशा तपस्या में लीन रहती हैं, कहा–''लड़की ही मेरी गुरु थी। उसी शोक में आज 40–50 वर्ष से बाहर रहकर, भगवान् की सेवा कर रही हूँ।''

वृद्धा की शक्ल देखने पर भक्ति करने की इच्छा होती है।

श्री श्री माँ की दीक्षा की बातें

अभय आज बातचीत के सिलसिले में माँ की दीक्षा की बात जानना चाहा। सुना है कि माँ कह रही थी–''पहले यज्ञ का मण्डलादि तैयार किया गया, बाद में यज्ञ के पूर्व जैसे पहले मण्डलादि पूजा एवं अन्यान्य पूजा होती है, उसी तरह हुआ। इसके बाद अन्यान्य सब कुछ अपने अनुरूप (तुम लोगों की दृष्टि से कोई बाहरी वस्तु नहीं ली गयी) स्वयं से ही और क्या–क्या होता गया।''

बात–बात में अभय कह रहा है–''सुना है कि योगैश्वर्य प्रकट करने पर प्रायश्चित करना पड़ता है।''

''देखो, बात ठीक है कि प्रायश्चित करना पड़ता है।'' इतना कहने के पश्चात् और भी बातें निकल पड़ी। माँ कहने लगी–''जो प्रायश्चित करना पड़ता है, वह भी इस शरीर के भीतर हो गया है।''

इस बात पर अनेक बातें हुई। माँ के दो–तीन निशान हैं, कभी आग से और कभी क्षत करके निशान बनाये हैं। इन्हीं बातों के बीच श्रद्धेय निशिकान्त मित्र महाशय के दौहित्र की जिसे कर्णमूल हुआ था, चर्चा हुई।

वे माँ के पास आये। उसी दिन शाहबाग में हाथ के दूसरी ओर एक क्षत माँ ने कर दिया और दूसरे दिन लड़के का कर्णमूल फट गया।

फिर चर्चा चल गई कि रायबहादुर योगेशचन्द्र घोष महाशय माँ को अपने घर ले गये हैं। माँ भोग बना रही थी। ठीक इसी समय भूदेव बाबू ने आकर कहा–''नवाबजादी प्यारीबानू एक भयंकर मुकदमे में फँस गयी है। काफी डर रही है। नवाबजादी जीत जाये, ऐसा कुछ माँ को करना होगा। इस वक्त उस मुकदमे का कलकत्ते में क्या हो रहा है, जानना चाहता हूँ।''

श्री श्री माँ के हाथों पर जलते हुए निशानों के कारण

भोलानाथजी भी इसके लिये माँ के पीछे पड़ गये। माँ ने उसी समय

चूल्हे से जलता हुआ एक अंगारा लेकर अपनी हथेली के दूसरी ओर रखकर, उस स्थान को दाग दिया (अभी तक वह निशान उनके हाथ में है)। बाद में बोली–"यह हो गया। अब जीत जाएगी।"

आगे माँ कहने लगी कि योगैश्वर्य का व्यवहार वे नहीं करती थी। अपने आप जो कुछ होना होता था, वह हो जाता था। भोलानाथजी के पीछे पड़ जाने के कारण क्या करना उचित होगा, यह तय कर चुकी थी। इसीलिए तुरन्त जलते हुए अंगारे से अपने शरीर के कुछ अंश को उन्होंने जला डाला।

कुछ समय बाद समाचार आया कि उन सबकी प्रार्थना पूरी हो गयी है। इसके अन्तर्गत न जाने क्या-क्या रहता है। इतने दिनों तक ये बातें प्रकट नहीं हुई थी। आज हो गयी।

माँ से विशेष रूप से पूछने पर वे बोली–"एक है योगैश्वर्य, विभूति प्रकाश किया जाता है, इसीलिए प्रायश्चित करना पड़ता है। इसके अलावा एक और है जो शरीर के अंश को जलाकर एक क्रिया की जाती है। इस क्रिया का फल उक्त कर्मस्थान में जाकर तुरन्त प्रार्थना करने वालों को सहायक एक फल प्रदान करती है। कहने का मतलब जो कुछ हो रहा था, उसमें परिवर्तन होकर प्रार्थनाकारियों के अनुकूल क्रियाएँ होने लगी। इस वक्त जो चाहे समझ लो।"

आगे उन्होंने कहा–"कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि मुँह से कुछ निकल रहा है, कोई क्रिया नहीं हो रही है, परन्तु वह काम अनिवार्य रूप से हो जाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि भविष्य के गर्भ में क्या है, अगर यह कोई जानना चाहता है तो बता दिया जा रहा है कि होगा या नहीं।"

इस तरह की अनेक बातें हैं।

आज रात को माँ दो-एक घण्टा चुप रहकर फिर उठ गयी। मैं और साथ ही अभय भी उठकर बैठ गये। बातचीत, हँसी-ठट्ठा चलने लगा। मानो जैसे दिन का वक्त है। इसी बीच माँ ने कहा कि कुछ देर चुपचाप हम दोनों बैठे रहें। माँ झूमने लगी। माँ जब इस तरह झूमती थी तब उनके कलेजे की हड्डियों के खिसकने की आवाज सुनाई देती थी।

आज शाम को हम लोग फलाहारी माताजी के पास गये। आज

बातचीत के सिलसिले में वृद्धा अपनी गंभीरता बनाये नहीं रख सकी। हाथ जोड़ती हुई माँ से बोली–''मैं जल्दी चली जाऊँगी। जितने दिनों तक हूँ, रोज दो–एक घण्टे के लिये मेरे पास आकर बैठना।'' मेरी ओर देखती हुई बोली–''माँ को अपने साथ लेती आना।''

मैं इस वृद्धा में नित्य प्रति होते हुए परिवर्तन को देखकर चकित रह जाती हूँ। गोकि वे बराबर माँ के कमरे में आकर नहीं बैठती, बल्कि अपने दैनिक कार्यों में, अपने आश्रम में व्यस्त रहती हैं। बाहर कहीं जाने की आदत नहीं है। लेकिन ज्यों ही माँ उनके निकट पहुँच जाती है तो ऐसा लगता है जैसे कहीं का खोया हुआ राज्य मिल गया हो। माँ जब चलने को उद्यत होती तब वे पुनः कुछ देर बैठने के लिये अनुरोध करती।

माँ अब तक इनके साथ परिहास करती रही, पर अब वे भी यहाँ आकर स्थिर हो जाती हैं। बड़ी आत्मीयता के साथ वृद्धा अपनी बातें कहती हैं। वृद्धा ने एक कुआँ बनाने का संकल्प किया है। उसकी चर्चा करते हुए कहती है–''इस कुएँ को बनाना बाकी है। कुआँ बनवा लेने पर मुझे छुट्टी मिल जाएगी। 40–45 वर्ष हो गये गाँव गये। एक बार सबसे मुलाकात करने जाऊँगी।''

27 अगहन, मंगलवार– आज सुबह उठते ही चान्दोद जाने का निश्चय किया गया। माँ फलाहारी माताजी के यहाँ जाकर मुलाकात कर आयी। हम लोग 10 बजे नाव से रवाना हुए। आते समय हमने देखा कि अपना दैनिक काम–काज, पूजा–अर्चना छोड़कर, इस कड़ी धूप में फलाहारी माताजी नदी किनारे खड़ी होकर माँ की ओर देख रही हैं। हमें यह दृश्य अत्यन्त आश्चर्यजनक लगा। वह इसलिए कि उन्हें इस तरह का व्यवहार करते कभी देखा नहीं गया था।

अभय शिकायत करते हुए कह उठा–''मुझे यह सब पसन्द नहीं है। इससे क्या फायदा होता है? बेचारी स्थिर भाव से थी, उसे परेशान करने की क्या जरूरत है?''

माँ मृदु मुस्कान के साथ बोली–''उसके भीतर जो ज्वाला (कन्या शोक) है, उसका निकल जाना ही अच्छा है।''

इधर वृद्धा के मन में इस तरह ऊहापोह उत्पन्न करने के बाद वे चान्दोद

के लिये रवाना हो गयी। दो-चार दिन बाद वृद्धा चली जाएगी, लेकिन तब तक वे प्रतीक्षा नहीं कर सकी। इस चरित्र को देखते-देखते विस्मय के पुलक से स्तम्भित रह जाती हूँ। एक ओर सभी को ये नचा रही हैं, वहीं दूसरी ओर स्वयं स्थिर-धीर और अविकृत हैं। शायद इसीलिए इतने लोगों को अस्थिर कर देती हैं।

हम लोग विष्णु मन्दिर में आकर ठहरे, हमें देखकर महन्त रामरतनदासजी बड़े आनन्दित हुए। हर तरह से हमारा आदर-सत्कार करने लगे। यहाँ माँ कितने दिनों तक ठहरेंगी, पता नहीं।

29 अगहन, गुरुवार– आज शाम के बाद माँ के शरीर में जरा बेतरतीब ढंग से क्रियाएँ हो गयी। कई दिनों से माँ कह रही थी कि मेरा शरीर जरा बेतरतीब हो सकता है। तुम लोग डरना नहीं। इस तरह होकर कभी-कभी शरीर स्वस्थ हो जाता है।

भोलानाथजी की आज्ञा से पर-पुरुष का मुँह देखना बन्द

30 अगहन, शुक्रवार– आज माँ बचपन की कहानी सुनाती रही। मैं और अभय माँ के पास बैठे थे। वे बचपन की कहानी सुना रही हैं–''भोलानाथजी ने बताया कि किसी पुरुष की ओर नहीं देखना चाहिए। बस, नहीं देखना चाहिए तो नहीं चाहिए। बाप-भाई की तरफ भी नहीं देखती थी। एक बार इस शरीर के जेठा भाई (ताऊजी का लड़का) ने कहा–'एक पान ले आ, मैं पान लेकर गयी। उस वक्त वे किसी जरूरी काम में व्यस्त थे जिसकी वजह से उनके दोनों हाथ फँसे थे। मुँह खोलते हुए बोले–'ले, मुँह में डाल दे।' इधर मैं उनका मुँह नहीं देखना चाहती थी। मेरा शरीर काँपने लगा। अचानक यह सोचा कि सिर्फ मुँह के भीतर की ओर लक्ष्य करके पान डाल दूँ। यह करने के बाद तुरन्त वहाँ से दौड़ती हुई भाग आयी। आश्चर्य की बात यह रही कि मुँह के किसी और भाग पर मेरी दृष्टि नहीं पड़ी। सिर्फ भीतरी हिस्से को देखा।

बचपन की बातें

1 पौष, शनिवार– आज माँ 10 बजे सवेरे जागकर उठी। भोजन के पश्चात् बैठकर वैष्णवी स्वर में गाने लगी–

"मैं ब्रज में जाऊँगी, माँगकर खाऊँगी
ब्रज की चरण धूलि बदन में पोतूँगी।
मेरी माँ को माँ कहना भाई निताई।"

ताली बजा रही थी और गा रही थी। सिर्फ इन पंक्तियों को छोड़कर अन्य कुछ नहीं कह रही थी। थोड़ी देर बाद कहने लगी-"सुन, बचपन के दिनों गाँव में जब किसी-किसी दिन वैष्णव-वैष्णवियों को टुन-टुन कर कुछ बजाती हुई, सवेरे के वक्त घर-घर गाती हुई चली जाती देखती तब वे क्या गा रही हैं, कुछ समझ नहीं पाती, पर यह शरीर उनके पीछे-पीछे दौड़ता रहा।"

इतना कहने के पश्चात् वे हँसने लगी। फिर आगे कहने लगी-"जिस दिन सुबह गीत गाती हुई चली जाती थी, उसी दिन बाद में आकर वे सब घर-घर से भीख माँगती थी। यही उन लोगों का नियम था।"

3 पौष, सोमवार- आज ढाई बजे माँ के साथ नाव से व्यास वापस लौट आयी। साधन और रूमा देवी चान्दोद में रह गये। यहाँ माँ के साथ अभय और मैं लौट आये।

श्री श्री माँ के शरीर में क्रियाएँ

4 पौष, मंगलवार- आज यहाँ के कई स्थानीय व्यक्ति माँ का दर्शन करने के लिये आये। सुबह एक प्रौढ़ महिला माँ को प्रणाम कर उनकी प्रदक्षिणा करने लगी। आज से पहले ये कभी दिखाई नहीं पड़ी थी। कुछ बोली नहीं। उस वक्त माँ सोयी रही। आज रात को साढ़े दस बजे माँ के शरीर में क्रियाएँ होने लगी। अभय के साथ मैं बैठी देख रही हूँ। माँ रह रहकर जवाब दे रही हैं और क्रियाएँ होती जा रही हैं।

एक घण्टे तक क्रम चलता रहा। आज रात 2 बजे बातचीत करने लगी, पर अधिकांश समय चुप रही। सोने का भाव न रहने के कारण कभी सोती हैं तो कभी उठकर बैठ जाती हैं। इस तरह रात गुजर गयी। मैं और अभय रात भर जागते ही रहे।

5 पौष, बुधवार- आज भोर में उठकर मैं अभय को साथ लेकर माँ के साथ नर्मदा नदी के किनारे-किनारे टहलती हुई व्यास द्वीप की प्रदक्षिणा कर आयी। जंगल के भीतर वाले रास्ते से आयी।

7 पौष, शुक्रवार– कल केशव (यह बालक ब्रह्मचारी बनने के लिये आया है, काक्स बाजार में माँ को देखा था) आया है। यह कुछ दिनों तक ढाका आश्रम में था। आज हम तीनों माँ के साथ पैदल ही नर्मदा नदी के किनारे-किनारे काफी दूर तक टहल आये। वापस लौटने के बाद माँ सो गयी।

8 पौष, शनिवार– आज भोर में माँ के साथ मैं नर्मदा नदी के किनारे-किनारे काफी दूर जाकर एक जगह बैठ गयी। यहाँ अनेक प्रकार की बातचीत हुई। लगभग 9 बजे हम वापस आयी। आज भी थोड़ा-सा भोजन करने के बाद माँ सो गयी। दोपहर को 1 बजे सोकर उठी। अपराह्न में नाव द्वारा काफी दूर तक घूमने गयी। शाम को नर्मदा में नाव पर, खासकर माँ के साथ न जाने एक कैसा अनिर्वचनीय आनन्द का उपभोग करती रही। शाम के समय आश्रम में वापस लौट आयी।

9 पौष, रविवार– आज सुबह मैं माँ के साथ नाव द्वारा उस पार नदी किनारे शुकदेव नामक स्थान पर गयी और काफी देर तक वहाँ रही। यहाँ मन्दिर है, पुजारी है, नित्य पूजा होती है। पुजारीजी ने माँ को रहने के लिये अनुरोध किया, लेकिन हम सब 12 बजे के लगभग लौट आये। उस पार काफी सन्नाटा है। प्राचीन मन्दिरों के कारण निर्जनता में वृद्धि हुई है। नर्मदा की ओर मैं माँ के साथ एक बरामदे में बैठी थी। इसी तरह नर्मदा के तट पर माँ के साथ हमारे दिन बड़े आनन्द से गुजर रहे थे।

10 पौष, सोमवार– कल रातभर माँ एक प्रकार से बैठी रही। आज सुबह थोड़ी दूर पैदल टहल आयी, बाद में उन्हें थोड़ा दूध पिलाया। अभय को लेकर वे एक कमरे में गयी और कुछ देर बातचीत करने के बाद साढ़े ग्यारह बजे के लगभग माँ की शारीरिक क्रिया प्रारम्भ हो गयी। इसके बाद वे आराम करती रही।

शाम को 5 बजे के लगभग उन्हें बुलाकर जगाया और थोड़ा-सा दूध तथा तरकारी का जूस पिलाया। लेकिन शरीर की स्थिति दूसरे ढंग की देख रही थी। माँ बोली–''किसी कमरे में मेरे लिये बिस्तर लगा दे और बाहर से दरवाजा बन्द कर देना।''

आज्ञा का पालन किया। माँ सो गयी। आजकल क्रियाएँ जल्दी-जल्दी हो रही हैं।

11 पौष, मंगलवार– कल रात से ही वे अकेली सो रही हैं। बातचीत के सिलसिले में कहने लगी कि आज दोपहर को एक बौद्ध साधु माँ के पास आया था (सूक्ष्म शरीर वाला)। उससे कोई बात नहीं हुई।

आज देहरादून से हरिराम जोशी, गोविन्द पाण्डे और दिल्ली से शिशिर आये हैं। माँ आज काफी देर तक सोयी रही।

12 पौष, बुधवार– आज दोपहर के वक्त माँ मुझसे कहने लगी–"देख, भीतर एक रूप रहता है, लेकिन तुम सब तो बाहरी भाग देखती हो, सभी भाव आपस में मिलकर घुलमिल जाते हैं। यहाँ तक देख रही हूँ कि आग-पानी आदि की उपमा दे रही हूँ, यह शारीरिक क्रिया जिसे तुम देखती हो, वह मानो कैसे बन्द-बन्द-सी हो जाती है। इसीलिए कभी-कभी देखती होगी कि किसी-किसी बात में भूल हो जाती है, पर वह भूल नहीं है। न जाने किस तरह वह गड़बड़ा जाता है।"

इतना कहकर वे एकाएक चुप हो गयी। फिर थोड़ी देर बाद सो गयी।

13 पौष, गुरुवार– आज बड़ौदा से गंगाचरण बाबू आये हैं। कल रात को माँ जिस ढंग से बातें करती रही, उसे सुनने के बाद से मेरे मन में आशंका उत्पन्न हो गयी है, पता नहीं क्या करें। व्यवहार बन्द हो जाने पर क्या होगा, कौन जाने?

कल से माँ की तबियत कुछ भारी-भारी है। अकेले कमरे में सोयी हुई हैं। अधिकतर अपने भाव में रहती हैं। आज भी 10 बजे सो गयी और 3 बजे उठी। बाद में नर्मदा में नौका पर भ्रमण कर जब वापस आयी तब कीर्तन प्रारम्भ हुआ।

हरिराम भाई ने स्तोत्र पाठ करना आरम्भ किया। माँ के संबंध में एक स्तोत्र की रचना इन लोगों ने की है, उसका भी पाठ किया। वह स्तोत्र यों है–

जय-जय माता, जय जय माता
जय जननी जग बन्दनी हे

तुम रुद्राणी, जग महारानी, जय जय विश्व विनोदिनी हे।
विश्व विनोदिनी मंगल कारिणी, जय-जय वीणा वाणी हे।
(तुम) रूप शिरोमणि शान्ति प्रदायिनी जय-जय मंगलकारिणी हे।
पाप संहारिणी शक्ति प्रसारिणी, जय-जय कमल विहारिणी हे।

निबिड़ निशामय जग में अब तुम चमके नभ से दामिनी है।
शत-शत बार प्रणाम करूँ मैं जय-जय केहरी आसनी है।

कीर्तन आदि के बाद रात के करीब 10 बजे माँ ने शयन किया।

14 पौष, शुक्रवार- आज सुबह त्राटक के बारे में चर्चा चली।

माँ कहने लगी-"त्राटक जब होता था तब दृष्टि पूर्णरूप से तिरछी हो जाती थी। कभी ऊपर की ओर, कभी नीचे, सामने, बायीं ओर, दायीं ओर स्थिर हो जाती थी। फिर इधर से (हृदय की ओर दिखाती हुई) होती हुई दृष्टि धीरे-धीरे शरीर के नीचे की ओर जाते-जाते सामने की ओर उठ जाती थी। कितने तरह से होती थी, कितना बताऊँ?"

उस समय कमरे में गंगाचरण बाबू, हरिराम भाई, गोविन्द पाण्डे, अभय, शिशिर, साधन और मैं सभी लोग मौजूद थे। बातें हो रही थी।

अपराह्न में 3 बजे के लगभग हम लोग माँ के साथ अनसूया देखने गये। पिछले दो-चार दिन के भीतर हमारा दल काफी बड़ा हो गया है। शाम के समय कीर्तन, साधन-भजन के लिये जो महिलाएँ एकत्रित होती हैं, सभी साथ थी। आज नाव यात्रा के समय काफी लोग साथ चल पड़े।

मैंने हँसकर कहा-"अब ठीक हुआ। माँ के साथ सिर्फ दो-एक आदमी के चलने से कैसे बनेगा?"

रात साढ़े नौ बजे अनुसूया देखकर हम लोग व्यास लौटे। अनसूया में दो मन्दिर हैं। एक **अनुसूया देवी** का और दूसरा यज्ञकुण्ड काली माता का है। इसके अलावा **दत्तात्रेय ऋषि** का आसन आदि है। एक धर्मशाला और सदाव्रत स्थान भी है। सुना है कि बड़ौदा सरकार की ओर से यहाँ सदाव्रत चलता है। यहाँ पर कुष्ठ रोगियों के लिये एक दवाखाना है, वह सरकारी है।

अत्यन्त एकान्त स्थान है। कहा जाता है कि यहाँ की मिट्टी बदन पर पोतने पर कुष्ठ रोग में आराम हो जाता है। बाहर एक बड़ा वृक्ष है। इसके बारे में बताया गया है कि इसकी जड़ें अनुसूया मन्दिर के भीतर तक चली गयी हैं, उसी के ऊपर अनुसूया देवी स्थापित हैं।

नाव पर माँ की पूजा

व्यास का यहाँ से दो घण्टे का रास्ता है। शुक्ला अष्टमी तिथि, चाँदनी

रात में नाव पर हम लोग कीर्तन करते हुए लौट रहे थे। जाते समय भी कीर्तन करते हुए गये थे। गोविन्द पाण्डे अष्टमी को उपवास करते हैं। उन्होंने नाव पर ही माँ की पूजा की। स्तोत्र आदि पाठ करने लगे। व्यास पहुँचने के कुछ पहले माँ नाव के एक ओर जाकर बैठ गयी। मैं पास ही खड़ी थी।

माँ पहले-पहल स्तोत्र पाठ की तरह न जाने क्या बोली, फिर हँस पड़ी। मैं भी हँस पड़ी। बाकी लोग कुछ दूरी पर नाव के दूसरे किनारे बैठे हैं। कुछ देर बाद माँ भजन गाने लगी-**'हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे।'**

इसी पद को वे बार-बार घुमा-फिराकर गाती रही। आँखें बन्द कर तन्मय होकर उसी पद को भजती हुई माँ कहने लगी-''हरि बोल-हरि बोल।''

काफी देर तक माँ गाती रही। आँखों से आँसू गिरने लगे। सभी लोग स्तब्ध होकर सुन रहे थे। प्रकृति भी मानो स्तब्ध हो गयी। एक अपूर्व अनिर्वचनीय आनन्द में हम सभी डूब गये।

इसके कुछ पूर्व माँ के मुँह से अचानक निकला-''आह।'' जरा हँसकर बोली-''एक दिन और इसी तरह का शब्द निकला था न?''

मैंने बताया-''हाँ, इस बीच एक दिन आपके मुँह से यही शब्द निकला था।''

इसके बाद वे पुनः **'हरे मुरारे'** भजन करने लगी। आश्रम में आते ही मैंने कहा-''काफी देर तक बैठी रही, अब जरा आराम करो।''

माँ ने कहा-''अच्छा।'' इसके बाद वे सो गयी।

बम्बई से शान्ति अपने पति के साथ आयी है। इनसे अहमदाबाद में हमारी भेंट हुई थी। शान्ति और मैं माँ के पास बैठी हुई हूँ। अचानक सामने के बरगद के पेड़ से उल्लू की आवाज सुनाई पड़ी।

माँ ने पूछा-''क्या बोल रहा है?''

मैंने जवाब दिया-''उल्लू बोल रहा है। मुझे यह अच्छा नहीं लगता।''

माँ हँसती हुई बोली-''कभी-कभी खराब समाचार भी आते हैं।''

मैंने कहा-''तुम्हारे मुँह से 'आह' शब्द निकल रहा है, दूसरी ओर

आँखों से पानी निकल रहा है। यह देखकर मैं आशंकित हो रही हूँ।''

माँ मृदु मुस्कान के साथ बोली–''सच तो–आँख से फिर पानी गिर रहा है।''

आज भी कीर्तन हुआ। पाण्डेजी ने माँ की आरती उतारी। यहाँ काठियावाड़ निवासी एक विधवा महिला कई दिन हुए आयी हुई हैं। ये राम मन्दिर के ब्रह्मचारी बाबा की शिष्या हैं। यहाँ एकान्त में साधन–भजन करने की इच्छा से एक मकान बनवाया है। काफी शान्त प्रकृति की हैं। गुजरात काफी धर्म प्रवण प्रान्त है। ये लोग बड़े सरल और विश्वासी होते हैं। हर परिवार खाता–कमाता है, इसलिए किसी के यहाँ कोई अभाव नहीं है। सभी मौजी हैं।

उक्त महिला अक्सर माँ के पास आती रहती है। सुना है कि कल वे सपने में माँ को दुर्गा मूर्ति के रूप में देख चुकी हैं। वे माँ को अपनी कुटिया में कल ले जाने के लिये अनुरोध कर रही हैं।

स्वामी योगानन्द और उनकी शिष्याओं के आदर–यत्न के कारण हम आनन्दपूर्वक दिन व्यतीत कर रहे हैं।

15 पौष, शनिवार– आज सुबह माँ को साथ लेकर सभी लोग नर्मदा नदी के किनारे तक टहल आये। वहाँ से वापस आने के बाद मुँह–हाथ धुलाये। लगभग 10 बजे काठियावाड़ वाली महिला आकर माँ को अपनी कुटिया में ले गयी। वहाँ जाकर देखा कि पूजा का समस्त सरंजाम तैयार है। व्यास के सभी लोग वहाँ उपस्थित हैं। उन्होंने माँ की पूजा की। बाद में थोड़ी देर कीर्तन हुआ। माँ भी भजन गाती रही, गवाती रही अर्थात् सभी एक साथ गा रहे थे–

''कृष्ण कन्हैया बंशी बजैया
गउ चरैया हा रे रे...रे...रे...रे''

आगे दूसरा पद यों शुरू हुआ –

''जय शिव शंकर बम–बम हर–हर''

सभी लोग दो घण्टे तक बैठे रहे। उक्त महिला हिन्दी अच्छी तरह नहीं बोल पाती थी। गुजराती भाषा में कहने लगी–'माँ यहाँ आयेंगी, इसलिए कल

दो बजे रात से सफाई करती रही। माँ को मैं कितनी मूर्तियों में देख चुकी हूँ, क्या वर्णन करूँ? कीर्तन करते-करते सब कुछ भूले जा रही थी। रोज ही तो यह भजन गाती हूँ, फिर क्यों आज आँखों में पानी आ रहा है, क्यों सब भूल रही हूँ?''

मैंने हँसते हुए कहा-''भुलवा देना ही माँ का काम है।''

माँ तुरन्त बोली-''कहाँ? भूल हो जाय तब तो। जरा-सी भूल से क्या होता है?''

माँ को कुछ लोग 'भगवती माई' कहते हुए प्रणाम कर रहे हैं। नित्य यह सब दृश्य देखती हूँ, फिर भी आश्चर्य अनुभव कर रही हूँ। इस छोटे से जंगल में भी दिन-प्रतिदिन माँ का प्रभाव प्रकाशमान होता जा रहा है। जबकि दो-एक के अलावा कोई भी हिन्दी भाषा नहीं समझता है और न बोल पाता है। हम लोग भी न तो गुजराती बोल पाते हैं और न समझ पाते हैं। बम्बई से शान्ति नामक जो लड़की आयी है, वह भी एक प्रकार से हिन्दी नहीं समझती। दूसरी ओर माँ की सेवा करने के लिये विशेष आग्रह दिखाती है।

अहमदाबाद में सिर्फ दो दिन मुलाकात कर पायी थी। यहाँ न जाने कहाँ से पता पाकर तलाश करती हुई आ गयी है। माँ की बात वह समझ नहीं पाती और माँ को उसकी बातें समझाना भी काफी कठिन काम है। बाहर की ओर से मैं देख रही थी कि यह बड़ा दुःसाध्य काम है जबकि माँ के प्रति उसकी भक्ति, विश्वास बहुत गहरा है। अत्यन्त सरल प्रकृति की विश्वासी महिला है।

वहाँ से वापस आकर माँ लेट गयी। आज शाम को हम सब माँ के साथ नर्मदा नदी के तट पर टहलने गये थे।

16 पौष, रविवार- माँ का फोटो यहाँ हर कोई ले रहा है। नित्य शाम को कीर्तन होता है। शाम के समय सभी कीर्तन में आकर सम्मिलित हो जाते हैं।

17 पौष, सोमवार- आज राम मंन्दिर के ब्रह्मचारी बाबा के एक शिष्य (सिनोर के चुन्नीलाल सेठ) माँ को राम मन्दिर ले गये और उनकी पूजा की, कीर्तन भी हुआ। सेठ महोदय अपने गुरुजी के यहाँ कई दिन हुए आये हैं।

यहाँ गृहस्थों में एक विशेष खूबी यह देख रही हूँ कि ये लोग कुछ दिन तीर्थ स्थान पर या अपने गुरु के यहाँ जरूर व्यतीत करते हैं।

अल्मोड़ा के एक साधु जिनका नाम नारायण स्वामी है*, कल यहाँ आये। आप मैसूर के रहने वाले हैं। एक ओर से वे मौन रहते हैं, दूसरी ओर इनके अनेक शिष्य हैं। रूमा देवी के अनुरोध पर वे यहाँ आये हैं। सरसरी निगाह से देखने पर साधु अच्छे व्यक्ति प्रतीत हुए। लम्बे से, बदन पर कोई आवरण नहीं, सिर्फ बोरे का आवरण है। माँ को उन्होंने प्रणाम किया।

माँ के हाथ से फल खाने की इच्छा प्रकट करने पर माँ ने उनके हाथ पर फल रख दिया। आज वे लोग (साथ में दो सेवक हैं) चले जा रहे हैं। सवेरा होने के पहले ही से वे नाव के भीतर जाकर बैठ गये हैं।

माँ को जब राम मन्दिर में ले जाने लगी तभी उन्होंने कहा–''पिताजी को बुला लाओ।''

वही किया गया। माँ के बैठने के लिये जरी का आसन बिछाया गया है। फूलों की माला और कंगन लाया गया है। माँ के हाथों में फूलों का कंगन पहनाया गया। ज्यों ही लोग माँ के गले में फूलों की माला पहनाने गये त्यों ही उसे हाथ में लेकर वे खड़ी हो गयी और नारायण स्वामी के गले में डालती हुई बोली–''मैं हाथों में पहनी हूँ और पिताजी गले में पहनेंगे।''

उन्होंने हाथ जोड़े। माँ जरी के आसन पर नहीं बैठी। स्वामीजी के पास बैठती हुई बोली–''मैं पिताजी के पास बैठूँगी। पिताजी की गोद में सोऊँगी।'' यह कहकर वे उनकी गोद में सो गयी।

माँ के सहज-सरल व्यवहार से वे क्षण भर के लिये संकुचित हुए, पर दूसरे ही क्षण वह भावना दूर हो गयी। माँ उनके पास बैठी रही।

माँ को दूध-फल खाने के लिये दिया गया तो वे बोली–''पहले पिताजी को दो।''

स्वामीजी को कुछ फल वगैरह दिया गया बाद में माँ ने ग्रहण किया। माँ का प्रत्येक कार्य इसी तरह का होता है। हम लोग वहाँ डेढ़ घण्टे तक रहने के बाद चले आये।

---

* रूमा देवी के परिचितों में हैं। इन लोगों ने मिलकर खेल नामक स्थान में आश्रम बनवाया था।

आज दोपहर को 1 बजे स्वामीजी के साथ हरिराम, गोविन्द पाण्डेजी और गुजराती सज्जन (शान्ति के पति) ने विदा ली। जाने के पहले स्वामीजी ने माँ के हाथ से फल की माँग की, माँ ने उनकी इच्छा पूर्ति की। हरिराम वगैरह जाते समय रो पड़े। यह दृश्य देखकर स्वामी योगानन्द महाराजजी की शिष्या मंगल गौरव और शान्ति की आँखें छलछला आयी। सभी की स्थिति एक-सी हो गयी।

माँ हँस रही थी। यह देखकर मंगल गौरव माँ का हाथ पकड़ती हुई बोली-''माँ, तुम हँस रही हो, पर हमारी आँखें आँसुओं से भर गयी हैं।''

माँ हँसती हुई बोली-''लो देखो, जो हँस रही है, उसके लिये भला रोना चाहिए?'' इतना कहकर वे पुन: हँसने लगी।

18 पौष, मंगलवार- आज रात को माँ अभय से बातचीत कर रही थी। साढ़े दस बजे मैंने उन्हें सो जाने के लिये कहा। कल रात 3 बजे के लगभग सोयी थी। सोने की इच्छा नहीं है। आजकल दिन या रात में दो-चार घण्टा चुपचाप बैठी रहती हैं, सोने की इच्छा नहीं होती। आज जब सो जाने को कहा तो बोली-''मैं जरा घूम-फिर आऊँ।''

अभय और मैं साथ-साथ चल पड़ी। पहले जाकर इमली के पेड़ के नीचे बैठ गयी। हम दोनों भी बैठे। एकादशी का चाँद, चारों तरफ चाँदनी फैली हुई थी। चारों तरफ नीरव निस्तब्धता थी। कुछ देर बाद माँ उठती हुई बोली-''तुम दोनों यहीं बैठो, मैं जरा नर्मदा के किनारे तक टहल आऊँ।''

मैंने पूछा-''मैं भी चलूँ।''

माँ बोली-''मैं तो मना कर रही हूँ।''

मैं इमली के पेड़ के नीचे बैठी रही, पर अभय ने निषेध नहीं माना और पीछे-पीछे चल पड़ा। माँ कुछ दूर तक जाकर एक जगह बैठ गयी। मैं अपने स्थान पर बैठी देखती रही। एक घण्टा इसी तरह बीत गया। माँ बगैर ओढ़नी लिये चली आयी थी। जब मैं ओढ़नी देने गयी तो देखा कि वे सर झुकाये बैठी हैं। माँ के आदेशानुसार मैं वापस आकर इमली के पेड़ के नीचे बैठ गयी। देख रही हूँ कि माँ खुली जगह पर बैठी हैं।

माँ वापस लौट आयी। आकर सो गयी। मैं और अभय बैठे हैं। अभय कहने लगा-''मैंने सोचा कि शायद मुझसे बातचीत करने के लिये जा रही

हैं। बाप रे! वहाँ जाकर देखा कि यह बात नहीं है। वहाँ न जाने किससे बातचीत करने लगी।'' अभय हँसने लगा।

कुछ देर बातचीत करने के बाद अभय सोने चला गया। मैं बैठी रही। धीरे से पूछा-''क्यों माँ, जो (अशरीरी) आते हैं, अगर तुम हम लोगों के पास बैठी रहो तो क्या उन्हें कुछ बाधा पहुँचती है?''

माँ ने कहा-''बाधा क्या? पर अधिकतर तो तुम लोगों के पास ही बैठी रहती हूँ। होता क्या है, समझती है? मैं कभी हँसती हूँ तो कभी नाना प्रकार के शब्द निकलते हैं। इस तरह होता है, जानकर ही कभी-कभी अपनी खास-खयाली के मुताबिक अकेले दूर चली जाती हूँ।''

आज भी हँसी अस्पष्ट थी, शब्द निकले थे। इसीलिए अभय माँ को उस तरह हँसते और अस्पष्ट ढंग से बातें करते देखकर हँसते-हँसते लोटपोट हो गया था-यह सब सुन चुकी हूँ। इधर कुछ दूरी पर मैं अकेली बैठी थी और उधर माँ बालू के ढेर पर बैठी हुई थी।

श्री श्री माँ के निकट स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े का भेद नहीं है

आज अपराह्न में पूर्व कथा की चर्चा चल पड़ी। बातचीत के सिलसिले में माँ ने कहा-''तेरी दीदी ने एक बार कहा था कि माँ, तुम हमारे निकट बच्चों की तरह शरीर छोड़ देती हो, पुरुषों के निकट शायद ऐसा नहीं कर सकती? उस समय जवाब दिया था-स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े का भेद तुम्हारी दृष्टि में है, इस शरीर के निकट कोई पार्थक्य नहीं है। सभी बराबर हैं। फलस्वरूप सभी के निकट एक रूप में, छोटी लड़की की तरह यह शरीर रह सकता है। लेकिन तुम लोगों के लिये जितनी आड़ या पर्दे की जरूरत है, हो जाती है।''

माँ पुन: कहने लगी-''संतान के भाव में आकर मातृभाव प्राप्त हुआ और प्राप्त होता रहेगा।'' आगे हँसती हुई बोली-''यह शरीर मानो पत्थर-लकड़ी की तरह है।'' कहती हुई वे हँस पड़ी।

आगे कहने लगी-''तेरी दीदी यह सब सुनकर बोली-माँ जी, तुम्हारे शरीर में हम लोगों की भाँति कोई जागतिक विकार प्रकट नहीं हुआ है न इसीलिए हाथ, पैर, सिर, सर्वांग तुम्हारे निकट इसी तरह है।''

भोलानाथजी के साथ माँ का जीवनयापन

बहुत से लोग अक्सर कहा करते हैं कि एक माने में हम काफी भाग्यशाली हैं जो माँ का यह शरीर स्पर्श कर लेते हैं। हम लोगों के पूछने पर माँ एक दिन कहने लगी–''जीवन का प्रथम चरण तो भासुर की गृहस्थी में सेवा करते बीता। पुलिस की नौकरी छूट जाने पर भोलानाथजी दूसरी नौकरी की तलाश में ढाका में ही थे। भोलानाथजी के बड़े भाई को बहुमूत्र की बीमारी थी। लिहाजा कभी हालचाल जानने तो कभी इलाज के लिये भोलानाथजी आया करते थे। इसके बाद बड़े भाई की मृत्यु हो गयी, उस समय भोलानाथजी मौजूद थे। इस दुर्घटना के बाद हम लोगों को गाँव के मकान में रखकर भोलानाथजी नौकरी की तलाश में बाहर चले गये। अष्टग्राम में नौकरी मिल गयी, वे वहीं रह गये। यह शरीर जेठानी के यहाँ 6 महीने तक रहा। भोलानाथजी की भ्रातृवधू अपने छोटे-छोटे बच्चों को लेकर गाँव के मकान में रहने लगी। पुरुष कोई नहीं था। भोलानाथजी के कहने पर विद्याकूट में शरीर के माँ-बाप के निकट मुझे ले जाया गया। वहाँ भी काफी दिन बीत गये। इसके बाद कुछ दिनों के लिये भोलानाथजी जब अपने कर्मस्थान अष्टग्राम में ले गये, तब कुछ दिन स्वस्थ रहने के बाद यह शरीर इस प्रकार अस्वस्थ रहने लगा कि भोलानाथजी को अक्सर स्वयं भोजन बनाकर इस शरीर को खिलाना-पिलाना पड़ा है। कई माह इसी तरह बीत गये। कुछ लोग कहते रहे कि बेचारे को दूसरा विवाह कर लेना चाहिए। इसके बाद स्वस्थ होने के साथ-साथ हरि नाम से शरीर न जाने कैसा हो जाने लगा।''

''भोलानाथजी की बाजितपुर में बदली हो गयी। वहाँ गृहस्थी रखने की सुविधा न होने के कारण फिर माँ-बाप के निकट विद्याकूट में काफी दिन गुजारना पड़ा। उसी अष्टग्राम से ही कीर्तन आदि के समय शरीर में नाना भाव प्रकट होने लगे। विद्याकूट में काफी दिन रहने के बाद भोलानाथ के गाँव आटपाड़ा में गयी। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद फिर वहाँ से बाजितपुर गयी।''

हमारे पुनः प्रश्न करने पर माँ कहने लगी–''पहले-पहल भोलानाथजी इस शरीर की भाव-गति देखकर कहते–तुम्हारी उम्र बहुत कम है, कुछ उम्र बढ़ने पर तुम्हारे सभी भाव ठीक हो जायेंगे। किसी-किसी में अधिक उम्र में जाकर भाव-परिवर्तन होते हैं। भोलानाथजी इसी आशा में थे। किन्तु उम्र और बढ़

जाने के बाद भी जब इस शरीर में कोई परिवर्तन उन्हें दिखाई नहीं दिया तब डाक्टर के पास चलने की चर्चा उन्होंने की थी।''

भोलानाथजी को माँ के बारे में एक उत्सुकता बराबर बनी रही कि आखिर यह सब क्या है? यही वजह है कि जब कभी कोई साधु-संन्यासी अचानक आ जाता तो वे उससे पूछते। क्योंकि वे यह देखते कि लड़की अभी काफी छोटी है, पर धर्म-कथा कहती है। और सच तो यह है कि स्वामी की सेवा, प्रसाद, चरणामृत आदि लेना बचपन से ही करती थी। सेवा-निष्ठा पूर्ण रूप से होने के कारण वे अधिकतर मुग्ध रहते थे। उन दिनों पुनर्विवाह करने की चर्चा इसलिए चल पड़ी थी कि माँ का यह बाल-सुलभ सरल सत्य स्वभाव में सन्तानादि लेकर पिता अपना सारा जीवन पुनर्विवाह बिना किये, संयमित रहकर जैसे बिता देते हैं, ठीक वैसा ही भाव था। किस रूप में, किसे लेकर, किस तरह का खेल खेलना चाहिए, माँ ने हमें दिखा दिया। माँ की लीला तो हमारे लिये ही है।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी-''कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि भोलानाथजी को देखने मात्र से ही शरीर भयानक रूप से काँपने लगता था। लेकिन यह डर के कारण नहीं। जैसे मलेरिया का रोगी काँपता है, उससे अधिक काँपता रहा। इस तरह काँपते-काँपते यह शरीर कभी काला तो कभी सफेद, कभी पीला तो कभी रक्त शून्य हो जाता था। इस तरह होकर सर्वांग से पसीना निकलता और फिर शरीर गिर पड़ता। घण्टों बीत जाया करता था।''

''कभी-कभी ऐसा भी होता कि यह शरीर सोया हुआ है। भोलानाथजी इस शरीर के पास बिछावन पर आकर बैठ गये बस, तुरन्त शरीर की निश्वास-गति परिवर्तित होकर पूरक, रेचक और कुंभक इत्यादि होकर मत्स्यासन तथा अन्यान्य उत्कृष्ट आसन, दृष्टि की उत्कृष्ट प्रखरता आदि प्रकट होने लगते थे।''

''उस वक्त भोलानाथजी बच्चों की तरह डरकर परेशान हो उठते थे और कैसे इस शरीर को ठीक करें, समझ नहीं पाते थे। हाथ-पैर रगड़ते हुए कहते-''आखिर मैंने क्या किया? मैं तो चुपचाप बैठा रहा। ओफ! किसे, कहाँ लेकर फँस गया हूँ।'' इतना कहने के पश्चात् वे यह शरीर जिससे ठीक

हो जाए, वही उपाय करते थे। भीतर के भावों का अनुमान वे प्रत्येक समय नहीं कर पाते थे।''

''कभी-कभी ऐसा होता कि यह शरीर पड़ा है और घण्टों समय बीतता जा रहा है। फिर उन दिनों शरीर की उम्र कम थी। बाजितपुर वाले मकान में अकेली रखकर वे कस्बे में चले जाते थे। जब कभी उनसे पूछा जाता कि कैसे अकेली इस घर में यह शरीर रहेगा, इसका तुमने कोई इन्तजाम क्यों नहीं किया? लोग तुम्हें क्या कहेंगे? इस बात पर ध्यान नहीं देते थे, क्योंकि भोलानाथजी इस शरीर को नाना भाव धारण करते देख चुके थे, इसलिए किसी प्रकार की आवश्यकता का अनुभव नहीं करते थे।''

''अक्सर भोलानाथजी कहते-'यह सब क्या है? तुम्हारी तरह ऐसी भाव वाली कोई महिला है, कभी नहीं सुना।' बाद में साधन-भजन की लीलाएँ इस शरीर में देखने लगे और सेवा की भावनाएँ न जाने कैसे विस्तृत होती गयी। शरीर की माँ (दीदी माँ) ने कहा था कि पति गुरु होता है, इसीलिए शरीर के पति की सेवा भी न जाने कैसे विशेष रूप से प्रकट होती गयी। जो गुरु हैं, उनके साथ झूठ, मजाक, चतुराई आदि नहीं चलती और असल में तो मिथ्या, चतुराई, मजाक आदि करने का इस शरीर का स्वभाव नहीं था। फलस्वरूप सेवा और आदेश का पालन करना न जाने कैसे इस शरीर में प्रकट होते रहे। भोलानाथजी को पहले-पहल 'तुम' कहकर सम्बोधन इस रूप में हुआ कि भगवान् को भी 'तुम' कहा जाता है। भोलानाथजी यह व्यवहार देखकर अवाक् भी होते और साथ ही संतुष्ट भी रहते।''

भोलानाथजी स्वयं इन बातों को अच्छी तरह परख चुके हैं। भोलानाथजी के सामने भी इन बातों की चर्चा की जा चुकी है और वे स्वयं भी इन सभी बातों का उल्लेख हमारे निकट कर चुके हैं।

भोलानाथजी का जीवन माँ की कृपा से किस रूप में परिवर्तित हुआ है, माँ ने इसे प्रत्यक्ष रूप में दिखाया है। माँ को कितने भावों के बीच से गुजरना पड़ा है, इसे प्रत्यक्षदर्शियों में अनेक लोग जानते हैं और कहते भी हैं। माँ से थोड़ा-बहुत सुना भी है। माँ की कृपा से भोलानाथजी के जीवन का साधना-क्षेत्र अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रकट हुआ था। उनके जीवन का क्षेत्र अत्यन्त सुन्दर और उन्नत हुआ था, इसे देखकर काफी लोग मुग्ध हो उठे थे।

रात 11 बजे के लगभग हम सब सोने चले गये।

19 पौष, बुधवार– आज भी अपराह्न के समय भोलानाथजी के बारे में चर्चा हुई। हम लोगों के पूछने पर माँ कहने लगी–''कितने भावों के अन्तर्गत इस शरीर को गुजरना पड़ा है, तुम सब उन सारी बातों को नहीं जानते।''

यह जानकर कि जागतिक भावों का प्रकाश कभी भी न पाने पर अक्सर भोलानाथजी की स्थिति न जाने कैसी होती रही होगी? और उन्हीं परिस्थितियों और भावों के अन्तर्गत माँ को गुजरना पड़ा है। यह सब सोचने पर मैं चकित रह जाती हूँ।

लेकिन माँ हँसती हुई बोली–''वाह! इसमें चकित रहने की क्या बात है? इस शरीर के निकट कुछ भी भयानक नहीं है, क्योंकि यही जगत् का स्वाभाविक रूप है। मैं सिर्फ देखती रहती और नचाते हुए भोलानाथजी को आगे बढ़ाने लगी। जैसे माँ अपने बच्चे को हानिकारक वारदातों से दूर रखती है।''

एक ने पूछा–''माँ, भोलानाथजी को इस तरह नचाने के बदले उनकी इन भावनाओं को पूर्णत: स्थायी रूप से परिवर्तित क्यों नहीं कर दिया? स्पर्श करने के साथ ही जिस प्रकार भाव में परिवर्तन हो जाता था, वह स्थायी क्यों नहीं हो पाता था?''

माँ ने जवाब दिया–''वह नहीं हो सकता था, ऐसी बात नहीं है। लेकिन इस तरह के सभी भावों की तुम लोगों को जरूरत थी, इसीलिए इस भाव में हो गया है। इस शरीर में जो कुछ हो रहा है, वह सब तुम्हारे भाव हैं, तुम्हारे लिये हैं, तुम्ही लोग करवा ले रहे हो।''

भोलानाथजी में विभिन्न भावों का जागृत होना

माँ आगे कहने लगी–''भोलानाथ का कोई दोष नहीं है। इस शरीर की प्राथमिक लीलाएँ और उसमें जो सुन्दर भाव जागृत हुए थे, बाद में किसी-किसी के सांसारिक भाव की सहायक बातचीत और संग-गुण से, उसके उन सुन्दर भावों में किसी-किसी समय के लिये जरा परिवर्तन हो गया था। इस अवस्था में कभी बच्चों की तरह रोने का भाव जगता जबकि मैं पास ही सोयी हूँ, बैठी हूँ, कुछ भी कहने का साहस वे नहीं कर पाते थे। फिर कैसा होता था, जानती है? कीर्तन के पश्चात् पत्थर की तरह इस देह को तुम

लोग भोलानाथजी के बिछौने पर सुला देते थे। शरीर की उसी एक स्थिति में रात गुजर जाती थी। दूसरे दिन आकर तुम सब उठाते थे। उस अवस्था में बच्चे को लेकर जैसे लोग सोते हैं, उसी तरह का भाव लेकर वे किसी-किसी दिन सो जाया करते थे। कभी-कभी पास रहने में डरते भी थे। और कभी-कभी सोने के साथ ही इस देह के प्रभाव में जिस जागतिक भाव को लेकर वे सोने जाते थे, सोने पर वह भाव भोलानाथजी में नहीं रहता था। शान्त होकर सो जाते थे। इसके अलावा कभी-कभी क्या होता था, जानती है? जैसे बिजली के करण्ट का झटका लगने पर दूर गिर जाता है, ठीक उसी प्रकार छिटककर दूर गिर जाते थे।''

आगे माँ धीर, स्थिर, शान्त, अटल और गंभीर स्वर में कहने लगी- ''जैसे कितना सुन्दर तमाशा देख रही है, ठीक इस तरह कितने भाव हो गये हैं, उसका अन्त नहीं है। कभी ऐसा भी हुआ है कि लकड़ी, पत्थर, पेड़-पौधे आदि छूने से जैसे तृप्ति नहीं होती, ठीक उसी प्रकार इस शरीर में भी जागतिक भाव का कोई इशारा न पाने पर वे चकित रह गये हैं। कभी-कभी भोलानाथ को बहकाने के लिये धूम, कीर्तन, पूजा, यज्ञ, भोग, मौन, राग और जप की सृष्टि से सहायता की गयी है। इसके बाद फिर विभिन्न स्थानों पर घूमने के लिये चल देते ताकि इन सब भावों की सूचना कोई न जान सके। क्योंकि सरल प्रकृति के व्यक्ति होने के कारण वे बहुत से लोगों के इन भावों के सहायक-परामर्शों को स्वीकार कर लेते थे। ऐसे लोगों की संगति से उन्हें दूर रखा जाता था।''

''सिद्धेश्वरी में एक बार अचानक वे अस्वस्थ हो गये। रात के वक्त भयानक रूप से पेट में पीड़ा शुरू हुई। उसका भी कारण यही है। पहले मैं भोलानाथजी को ढाका में छोड़कर शरीर के पिताजी को साथ लेकर बाहर चली गयी थी ज्यों ही वे वापस ले आये त्यों ही क्रोध में ज्ञानशून्य हो गये। तुम लोगों ने भी सुना होगा, सिर्फ कहते रहे-'घर की बहू बनाऊँगा'- 'मैं छोड़ूँगा नहीं' यह स्वभाव औरों की सहानुभूति के कारण ही बन गया था। इसके बाद कुछ दिनों तक तुम लोगों में से किसी को भी सिद्धेश्वरी में रहने नहीं देते थे। मुझसे खाना बनवाने का प्रयत्न करते। शरीर कब्जे में नहीं है, फिर भी मेरी बातें हैं, मैं कह रही हूँ कि मुझसे जो कुछ करवा सकते हो, करवा लो। अधिकतर अकेली रहती थी, उन दिनों मेरे निकट बैठकर घर-

गृहस्थी की बातें कहते रहते। यह शरीर उस समय मौन रहता, इसलिए दु:ख और क्रोध में और भी उत्तेजित हो उठते थे। इसके बाद जब मैं थोड़ी-बहुत बातें करने लगी तब एक दिन सुबह इस तरह की बातें करने लगे तब कि क्या बताऊँ? एक दिन गुस्से में कहने लगे कि तुम्हें लेकर मेरी तमाम जिन्दगी इस तरह कट रही है, अब मैं दूसरी शादी करके नयी गृहस्थी बसाऊँ या नहीं, सोचता हूँ।''

''रात के वक्त आश्रम में आसन के पास बैठकर ये बातें कह रहे थे और अपने भाग्य को कोस रहे थे। न जाने क्या-क्या कह रहे थे। मैंने कहा-'देखो, आसन वाले इस कमरे में बैठकर सांसारिक बातों की चर्चा करना गलत काम है जो कुछ तुम उच्चारण कर रहे हो, इससे आसन की अमर्यादा होती हैं।''

''इस बात को सुनते ही वे अत्यधिक नाराज होकर इस शरीर को जो मन में आया, कहने लगे। मेरी तमाम जिन्दगी इस तरह बीत रही है। इन सभी मामलों में तुम मुझे धोखा देती रही, आदि बातें कहते रहे। उसी दिन उनके पेट में असह्य पीड़ा प्रारम्भ हुई। अच्छे-खासे थे, खाना खाने बैठे थे कि अचानक पीड़ा शुरू हो गयी। रात-भर छटपटाते रहे। इन घटनाओं की वजह से यह हुआ कि अब उस आसन वाले कमरे में रहना नहीं हो सका। दूसरे मकान में जाना पड़ा। इस तरह की न जाने कितनी घटनाएँ हुई हैं, यह सब तुम लोग नहीं जानते। मैं तो कुछ कहती नहीं। लेकिन उपस्थित कर्मों का फल न जाने कैसे भोगना पड़ गया।''

''कभी-कभी भोलानाथजी कहते-''अगर कोई पूर्णस्थ हो तो वह सब कुछ कर सकता है। तुम्हारे समस्त जीवन में इस भाव का प्रकाश नहीं हुआ। वह महाशक्ति भी तो पूर्ण होती है, यद्यपि उसका किसी दिन, कोई भाव प्रकाश न भी हो तथापि वह महाशक्ति अपनी इच्छा मात्र से ही सब-कुछ कर सकती है।'' प्राचीनकाल के ऋषि-मुनियों की उपमा भी वे अक्सर दिया करते थे।''

''मैं तो आज भी कहती हूँ कि तुम लोगों को जो जरूरत है, वह इस शरीर से पूरी हो गयी है।''

माँ के इस कथन पर हम लोगों में बहस चल पड़ी कि अगर यही

अपूर्णता के लक्षण हैं तो माँ में अनेक अभाव हैं। जैसे माँ क्यों नहीं अंग्रेज हुई? किंवा और भी बहुत से मुल्क हैं, उनमें से किसी और मुल्क की महिला क्यों नहीं बनी। फिर यह भी कहा जा सकता है कि मर्द क्यों नहीं बनी? पशु-पक्षी, कीट-पतंग कुछ भी तो नहीं हुई। माँ बाहर से बी.ए., एम.ए. पास नहीं हुई। ये सब अनेक प्रश्न हैं। इसके अलावा इनमें क्रोध, हिंसा, द्वेष की भावना दिखाई नहीं देती। अगर इन बातों पर विचार करें तो न जाने कितनी अपूर्णताएँ हैं। लेकिन सवाल यह नहीं है। शरीर के रूप में प्रकट होने पर उसमें सब कुछ इस तरह नहीं देखा जा सकता। जबकि उनकी पूर्णता के भीतर सब कुछ है और कुछ भी नहीं है। इसीलिए माँ ने बताया कि तुम लोगों की जो आवश्यकता है, वह इस शरीर में प्रकाश होता जा रहा है।

''मेरी ये बातें कोई गलत न समझ ले। इसके अन्तर्गत किसी प्रकार का भाव नहीं है। जो कुछ हुआ है, उसे ही प्रकट किया गया है।'' जैसे कोई भाव होने पर माँ से जब इस बारे में कुछ पूछा जाता था तब वे बताती नहीं थी। माँ निन्दा करने की दृष्टि से कोई बात नहीं कहती थी। जो कुछ सच है, वही बताती हैं और जो कुछ घटनाएँ हुई हैं, वही लिखा जा रहा है।

भोलानाथजी के जीवन के प्रथम साधारण और स्वाभाविक भाव तथा उनके इस प्रकार परिवर्तन में हम माँ की लीला ही देख सकते हैं। चारों तरफ प्रकाश करेंगी, इसीलिए माँ शायद यह खेल हमारे निकट खेलती हैं। भोलानाथजी में जो एक सुन्दर परिवर्तन हुआ था, उसे माँ अपनी बातों के माध्यम से व्यक्त कर चुकी हैं। स्वयं भोलानाथजी किसी-किसी के निकट यह कह चुके हैं कि माँ उन्हें नाना भावों के माध्यम से ऐसी स्थिति में ले गयी हैं जिसकी वजह से अब उनमें पूर्व की तरह जागतिक भाव या बातें नहीं हैं। एक प्रकार से वह बुझ गया है। माँ की लीला के सम्बन्ध में अगर इन बातों की जानकारी प्राप्त न होती तो उनके बारे में ठीक धारणा बना लेना सम्भव नहीं होता। शायद अपूर्ण रह जाता। यही वजह है कि अब तक जो कुछ सुन चुकी हूँ, उसे लिखकर रखना आवश्यक समझा।

इसके अलावा एक बात और है। वह यह कि भोलानाथजी के भीतर से अगर वे भाव प्रकट न होते तो माँ की लीला का यह क्षेत्र इतने सुन्दर ढंग से प्रकट न होता। यही वजह है कि माँ अक्सर कहा करती हैं कि सब कुछ की जरूरत है, किसी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। हम पहले भीतर

की इतनी बातें नहीं जानते थे। लेकिन कभी कदापि भोलानाथजी का क्रोध से लाल-पीला होना, तरह-तरह की बातें कहना आदि देख चुके हैं, भीतरी बातें भी उपरोक्त कारणों से होती रही। परन्तु इन भावों के मध्य भी स्थिर-धीर और अविकृत रहती रही। इस संसार में यह भाव अतुलनीय है, इसमें रत्ती भर भी सन्देह नहीं है। लेकिन कभी अपने पति को त्यागकर कहीं नहीं गयी। एक बिछौने पर सोती रही, अपनी देह के पास रखती रही, पूर्णतः निश्चिन्त, निर्भर और निर्विकार रूप में।

श्री श्री माँ के प्रभाव से भोलानाथजी में जागतिक भाव का दूर हो जाना

अब भी माँ कहती हैं-''किसे कहाँ हटाऊँगी! जगह कहाँ है! अन्य स्थान जिसे कहा जाता है, इस शरीर के निकट वह कुछ भी नहीं है। और किसे हटाऊँ! सब कुछ वही-वही। कितने सुन्दर रूप में हैं ये तरह-तरह के नाना भाव। मैं तो तुम लोगों के पास ही हूँ। तुम लोग जिस तरह अपना सकते हो, अपना लो। कह चुकी हूँ कि ऐसा भी हुआ है, शायद भोलानाथजी का इस तरह का भाव बाहर कुछ भी प्रकट नहीं हुआ था। लेकिन भीतर उत्पन्न होते ही इस शरीर के ऐसे परिवर्तन हो गये हैं कि भोलानाथजी में भय के कारण समस्त जागतिक भाव तुरन्त गायब हो गये हैं। फिर एक दिन ऐसा भी आया हो जब तुम सबको बुलाकर इस शरीर को ठीक करने के लिये वे कीर्तन करवाते रहे तुम सब तब तक यह नहीं जान पाये थे कि किसलिए क्या हुआ है।''

सचमुच, एक दिन की घटना मुझे अच्छी तरह याद है। शाहबाग में हम लोग तालाब के किनारे वाले कमरे में सो रहे थे। माँ और भोलानाथजी सड़क के किनारे वाले गोल कमरे में सोये हुए थे। अचानक भोलानाथजी चीत्कार करते हुए हमें बुलाने लगे। मैं, बाबूजी और कमलाकान्त ने दौड़ते हुए माँ के कमरे में आकर देखा-भोलानाथजी माँ का सिर अपनी गोद में लिये रोआँसा मुद्रा में बैठे हैं।

हमें देखते ही वे बोले-''आप लोग जल्दी में **हरि नाम** लेना प्रारम्भ कर दीजिये।'' फिर माँ को आवाज देते हुए बोले-''अजी, अब तुम ठीक हो जाओ।''

भोलानाथजी की वासना को माँ के द्वारा ग्रहण करना

मैंने देखा–माँ के सर्वांग में काली आभा नाच रही है। अब समझी कि माँ भोलानाथजी की वासना को अपने शरीर में ग्रहण कर काली हो गयी थी। सारा शरीर अचेतनावस्था में था, नाखून तक नीले पड़ गये थे। यह दृश्य देखकर हम भय से काँप उठे, रोने लगे। हमारे मन में शंका उत्पन्न हुई कि शायद माँ शरीर को छोड़ रही हैं। भोलानाथजी जल्दी से मेरी गोद में माँ को देकर स्वयं जरा दूर जा बैठे और नाम जपने लगे।

अब मैं समझ रही हूँ कि शायद भोलानाथजी ने यह सोचा–कहीं उनके स्पर्श से माँ की कोई हानि हो, इसीलिए वे माँ को मेरी गोद में डालकर दूर जा बैठे। इस तरह के कितने भावों के चमत्कार माँ के शरीर में हो गये हैं। यह सब मैं इतना देख चुकी हूँ जिसका अन्त नहीं है। लिखने की क्षमता कहाँ है? समुद्र की लहरों को कोई भला गिन सका है?

इस बारे में माँ कह रही हैं–''यह शरीर कैसा हो जाता था, जानती है? जिस प्रकार कोई बात ठीक ढंग से अपने किसी व्यक्ति से कहने जा रहे हों ठीक इसी प्रकार सांसारिक बात कहने के लिये भोलानाथजी मेरे पास आये; बस, इस शरीर की निश्वास और प्रश्वास की गति इतनी दीर्घ और कभी-कभी इतनी तीव्र हो जाती थी जैसे कीर्तन के समय शरीर उलट-पुलट करवटें लेता है, इसी तरह होती थी।'' इतना कहकर उन्होंने एक बार ताली बजायी।

आगे कहने लगी–''और कभी-कभी इसी समय योग-क्रियादि इतने उत्कट रूप में आरम्भ हो जाता था कि भोलानाथजी भय से घबराकर कह उठते–''मैंने क्या कहा? मैंने क्या किया? मैं तो ठीक ढंग से बातें कह रहा हूँ। उसके ऊपर भी तुम्हारा ऐसा भाव है, यह हालत है, मैं क्या करूँ? क्या तुमसे कोई भी बात नहीं कह सकता?'' और कभी-कभी भोलानाथ ज्यों ही कुछ कहने लगते त्यों ही यह शरीर पत्थर की तरह स्थिर हो जाता था। घण्टों इस तरह बीत जाते थे। इस तरह कि कितनी ही बातें हो गयी हैं।

''आगे चलकर भोलानाथजी आध्यात्मिक चर्चा के अलावा सांसारिक या और किसी प्रसंग के बारे में इस शरीर से कुछ नहीं कहते थे। भोलानाथजी स्वयं भी पूर्णत: बदल गये। तुम सब इस शरीर की गतिविधि देखोगे, इसीलिए भोलानाथजी का यही रूप, एक ओर का प्रकाश, पहले अक्सर विशेष रूप

से दिखाई देता था। यह बात सच है कि वे साधारण जीव नहीं थे। आजकल अनेक लोगों में जिस तरह की बातें सुनने में आती हैं, जो स्वयं अपने को सुधारने के लिये आते हैं, इस तुलना का कोई मूल्य ही नहीं है। भोलानाथजी को विशेष संयमी कहना ही पड़ेगा। यह शरीर उन्हें हमेशा देखता रहा। उनके व्यवहार के भीतर यह भाव था जैसे मैं एक छोटी लड़की हूँ और सेवा करती जा रही हूँ। किसी प्रकार की वाचालता आदि नहीं थी। यह सब भाव उनमें देख चुकी हूँ।''

20 पौष, गुरुवार– आज भोर में उठकर माँ ने अभय को बरखाल गाँव के प्रभास मन्दिर में भेजते हुए कहा–''हो सके तो वहाँ कुछ दिन रहना।''

लेकिन अभय रह नहीं सका। कुछ देर बाद वापस आ गया। अभय को वहाँ भेजा गया था, यह बात कोई नहीं जान सका। उस वक्त सिर्फ मैं जाग रही थी, इसलिए यह सब देख सकी। माँ अभय को साथ लेकर कुछ दूरी तक पहुँचाने गयी थी। उन्होंने अभय को कहाँ भेजा, यह नहीं बताया। अभय के लौट आने के बाद पता चला कि उसे एकान्त में साधन-भजन करने का प्रयत्न करने के लिये भेजा था। माँ जिसके बारे में जो बातें कहनी है, उसी से कहती हैं, यह बात पहले लिख चुकी हूँ।

दोपहर को माँ ने मुझसे कहा–''बरखाल चलना है। सामान यहीं रहेगा। कन्धे पर कम्बल रख ले और थैली में कुछ सामान ले ले।''

माँ के गले का एक हिस्सा ठण्ड से या और किसी कारणवश फूल गया है। हल्का बुखार है। प्रभास तक जाने के लिये लगभग डेढ़ मील चलना पड़ेगा। कई लोगों ने मना किया, पर माँ बोली–''मन हुआ है, जा रही हूँ।''

बरखाल में श्री श्री माँ

शाम होने के कुछ पहले हम रवाना हो गये। साथ में योगानन्द स्वामीजी की दो शिष्याएँ और राम मन्दिर के ब्रह्मचारी बाबा के शिष्य चुन्नीलाल भी चल पड़े। यहाँ आकर देखा कि यह स्थान और भी निर्जन है। चारों तरफ पीपल, बेल आदि के पेड़ हैं। एक शिव मन्दिर है और अत्यन्त सुन्दर है। मन्दिर, शिवलिंग, वृष सब कुछ सुन्दर ढंग से बनाया गया है। मन्दिर में संगमरमर के पत्थर लगाये गये हैं।

मन्दिर के दोनों ओर दो लम्बे कमरे हैं। ऊपर टीन का छाजन है, मिट्टी से बनाया गया है। साधु और यात्रियों के रहने के लिये मन्दिर के पास ही दो अन्य छोटे-छोटे मन्दिर हैं। इसके अलावा और कुछ नहीं है। एक बड़े पीपल की जड़ को पक्का बनवा दिया गया है। चाँदनी रात है। हमें यहाँ तक पहुँचाकर और इस स्थान में जितना इन्तजाम किया जा सकता है, करने के बाद व्यास के साथी लोग वापस चले गये।

यहाँ दो-एक साधु हैं। एक साधु की एक शिष्या साथ में है। यहाँ आकर माँ कुछ देर तक सोई रही। रात 9 बजे बाहर निकली। उनके पीछे-पीछे मैं, शिशिर, गुजराती लड़की जो हमारे साथ आयी थी, चल पड़े। पीपल के पेड़ के नीचे स्थित चबूतरे पर जाकर माँ बैठ गयी। एक साधु और उनका चेला भी वहीं आ गया।

कहा जाता है कि आज से 200 वर्ष पूर्व **अमरपुरी** के एक नागा बाबा ने इस मन्दिर की स्थापना की थी। वर्तमान समय के दोनों संन्यासी उसी सम्प्रदाय के हैं। सामने बालू का विस्तृत क्षेत्र और उसके आगे नर्मदा नदी बह रही है। नर्मदा नदी पास में नहीं है, पर स्थान काफी खुला होने के कारण नर्मदा नदी दिखाई दे रही है। आँखें कहीं ठहरती नहीं। अस्वस्थ शरीर को लेकर शाम के समय इतनी दूर पैदल, यहाँ माँ क्यों आयी हैं, कौन जाने।

रात 10 बजे हम लोग घर के भीतर आये। रात को सोते समय माँ बोली-''उस दिन व्यास में यह स्थान आँखों के सामने तैरता रहा। मन्दिर बनने के पूर्व जैसा स्थान था, ठीक उसी प्रकार का स्थान है। इसलिए इसे देखने चली आयी।''

इस स्थान के बारे में दो-एक प्रश्न पूछे, पर कोई जवाब नहीं मिला।

21 पौष, शुक्रवार- आज माँ जरा देर से उठी। उठकर पैदल बाहर निकल पड़ी। पेड़ों के नीचे टहलती हुई, एक बेल के पेड़ के नीचे आकर बैठ गयी। मैं शिशिर को एक काम से अन्यत्र भेजकर, माँ का मुँह धुलाने के लिए पानी लेने ऊपर गयी। माँ को वहीं छोड़ आयी थी। लौटकर गयी तो देखा-माँ वहाँ नहीं है। जरा चिन्तित हुई, क्योंकि माँ का कोई पता नहीं, इसके लिये हम लोग बराबर शंकित रहते हैं।

ढाका में अधिकतर माँ जब कमरे में अकेली सोती थी तब बाहर से

भोलानाथजी साँकल चढ़ाकर बरामदे में कमलाकान्त को सोने को कहते थे। स्वाभाविक स्थिति में वे उठकर काफी दूर तक चली जाती थी और जब भेंट होती तब ऐसा भाव दिखाती जैसे कुछ नहीं किया है। घर के भीतर घूम फिर रही हैं और हम लोग खोजते-खोजते घबराकर पागल बन रहे हैं।

आज भी चारों तरफ निगाहें दौड़ाने पर देखा कि माँ रेती पर गाल पर हाथ रखे बैठी है? मैंने पानी वाला लोटा बेल के पेड़ के नीचे रखकर दौड़ती हुई माँ के पास आकर देखा-सामने पता नहीं कौन टट्टी कर गया है। उस गन्दगी के सामने वे बैठी हैं। हँसती हुई माँ बोली-''यहाँ बैठी हूँ, टट्टी की महक अनुभव कर रही हूँ, परन्तु पास ही गन्दगी है, इसका खयाल नहीं है। लगभग 10 मिनट के बाद यह मैला देख पायी। देख तो कहीं मैले के ऊपर तो नहीं बैठी हूँ।''

यह कहकर माँ हँसने लगी। मैंने गौर से देखा-चारों तरफ मैला-ही-मैला है। माँ को उठने के लिये अनुरोध करने लगी। माँ हँसती हुई बोली-''जब बैठ गयी हूँ तब कुछ देर बैठी रहूँ।''

कुछ देर बाद माँ उठकर खड़ी हो गयी। अभय और देवीजी व्यास से आये हैं। माँ अस्वस्थ हैं, बुखार है, गले के किनारे का सूजन कुछ बढ़ गया है। आज भी रात को माँ मन्दिर के बगल में एक पेड़ के नीचे जाकर बैठी। हम कई लोग पास ही बैठे हैं। आज भी रात 10 बजे हम लोग घर के भीतर गये। चाँदनी रात, निर्जन स्थान, माँ के साथ आज का दिन बड़े आनन्द से बीता।

22 पौष, शनिवार- आज माँ के शरीर की वही हालत है। राम मन्दिर के ब्रह्मचारी बाबा दवा देते हैं। वे माँ की बीमारी का समाचार सुनकर योगानन्द स्वामी के आश्रम में आये। चूंकि माँ उस समय सोयी थी, इसलिए मुलाकात न हो सकी। अपने शिष्य चुन्नीलाल सेठ के हाथ लगाने वाली दवा भिजवा दी है। माँ ने कहा-''रख दो, जरूरत होने पर लगा देना।''

अपराह्न में 5 बजे माँ पुनः व्यास वापस आ गयी। साधन ब्रह्मचारी को प्रभास में छोड़ आयी। नर्मदा के तीर पर ये सब स्थान तपोभूमि हैं। साधन एकान्त में साधन-भजन करना चाहता है, इसीलिये उसे वहीं रख आयी। योगानन्द स्वामीजी के आश्रम में जाने के पूर्व माँ राम मन्दिर गयी। मन्दिर के बिल्कुल पास ही उक्त स्वामीजी का आश्रम है। राम मन्दिर में ब्रह्मचारी बाबा

और महन्तजी ने माँ को देखकर आसन दिया। गले की सूजन देखकर दवा का प्रबन्ध करते देख माँ बोली–''अभी रहने दीजिये, अगर सूजन बढ़ गयी तो पिताजी हैं ही। दवा खाने की जरूरत होगी तो पिताजी बाबा से ले लूँगी। पिताजी के मन में लड़की को चंगी बनाने के लिये जो भावना उत्पन्न हुई है, उसी से अच्छी हो जाऊँगी। देखा जाय, क्या होता है।''

इस तरह की दो–चार बातें करने के बाद माँ उठकर खड़ी हो गयी। व्यास में जितने लोग हैं, लगभग सभी माँ को देखकर उन्हें प्रणाम करने आये हैं। माँ के पुनरागमन पर सभी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं।

23 पौष, रविवार– आज माँ के गले की सूजन और बुखार काफी कम है। अहमदाबाद के लॉ कॉलेज के प्रिंसीपल मुकुन्द ठाकुर महाशय सपत्नीक माँ के दर्शन करने के लिये आये हैं। कल प्रभास भी गये थे। आज वे चले जायेंगे। बड़े भक्त प्राण हैं। कल रात में कीर्तन के समय माँ बहुत देर तक नाम करती रही। बाद में दो–एक गीत गवाती रही। आज सुबह वे लोग माँ को लेकर बैठ गये। दो–चार बातें हुई।

आज लगभग साढ़े दस बजे माँ ने भोजन किया। अभय के साथ माँ बातचीत के सिलसिले में कह रही थी–''सचमुच यह शरीर न जाने कैसा अलग–अलग–सा लग रहा है।''

अभय ने हँसते हुए कहा–''आप वृद्धा हो गयी हैं न, इसीलिए कान से कम सुनती हैं और स्मरण शक्ति भी नहीं रही।''

माँ ने हँसकर पूछा–''क्यों री खुकुनी, बायें कान से कुछ कम सुनती हूँ, क्या? और तुम लोगों की दृष्टि में अभी स्मरण शक्ति में और कमी ज्ञात होगी।''

अभय ने कहा–''तब तो सत्यानाश हो जाएगा।'' इस तरह की बातचीत होने के बाद हम लोग भोजन करने गये। बाद में सोने वाले कमरे में आकर चहल–कदमी करती हुई न जाने किस बात पर माँ कहने लगी–''शरीर अलग–अलग भाव होते–होते बिल्कुल शेष हो जाएगा।'' इतना कहकर उन्होंने एक बार चुटकी बजायी, फिर अन्यमनस्क भाव से जैसे अशरीरियों से बातचीत करती हैं या भविष्य के बारे में जिस तरह बातें करती हैं, उसी तरह बगैर किसी को लक्ष्य किये, बोली–''जल्दी।''

फिर हँसती हुई बोली–''जल्दी से काम निपटा लो। वक्त गुजरता जा रहा है।''

कमरे में अभय और मैं थी। मैंने पूछा–''यह सब क्या कह रही हो?''

माँ बोली–''देखो, तुम लोगों पर कितना बिगड़ती हूँ, नाराज मत होना। तुम लोगों पर न बिगड़ूँगी तो किस पर बिगड़ूँगी।'' इतना कहते-कहते उनकी आँखें छलछला आयी।

माँ कहने लगी–''अरे! यह क्या? आँखों में पानी क्यों? क्या मैंने कुछ बुरा कहा है?''

मैं उन आँसुओं को पोंछने लगी। माँ पुनः बोली–''तब मैं आँखों से कुछ आँसू निकालूँ।''

इतना कह पायी थी कि मैं बाधा देती हुई बोली–''नहीं, नहीं, तुम्हें आँखों से आँसू निकालने की जरूरत नहीं है।''

माँ ने कहा–''तब आँखें पोंछ दे। पानी से साफ कर दे।''

इसी बीच अभय ने कहा–''अच्छा माँ, तुम कैसे रोती हो, जरा देखूँ।''

मैंने बाधा दी, लेकिन अभय के विशेष आग्रह पर माँ पहले हँसी-खुशी भाव से रोने का पूर्वाभ्यास करने लगी। फिर बोली–''आओ भाई, आओ।''

इतना कहने के पश्चात् अचानक सोकर भयानक रूप से रोने लगी। मैं उनके शरीर पर हाथ फेरने लगी। अभय बैठा देखता रहा। कुछ देर बाद माँ का शरीर रुलाई से पस्त हो गया। वे भयानक रूप से रोती रही। पुनः कुछ देर बाद उठकर बैठ गयी। उस समय आँखें और नाक का अगला हिस्सा लाल हो गया था।

अभय ने हँसते हुए कहा–''वाह, वाह, क्या तमाशा दिखाया आपने।''

माँ भी हँस पड़ी। लेकिन रुलाई का भाव भीतर रहने के कारण दिल को कँपाती हुई श्वासें निकल रही थी। कुछ देर इसी तरह बीत गया। अभय ने कहा–''अच्छा, अब हम तीनों (कमरे में शान्ति भी थी) एक साथ अगर रोना शुरू कर दें तब कैसा हो? लोग क्या सोचेंगे?''

माँ बोली–''आओ भगवान् के लिये रोना शुरू करें। दरवाजे बन्द कर दो और स्थिर होकर बैठ जाओ।''

माँ के रोने का भाव

अब देवीजी भीतर आ गयी। हम चारों माँ के पास बैठे रहे। कमरे को अन्धकारमय बना लिया। माँ झूमती हुई कहने लगी–"**हरि बोल–हरि बोल।**"

एक ही सुर में कहते–कहते माँ में रोने का भाव आ गया। इसके बाद अचानक रूप से श्वास चलने लगी। श्वास के साथ–साथ शरीर में क्रियाएँ होने लगी। वे लेट गयी।

इसी जिले के रहने वाले दो युवक जो यहाँ से तीन मील दूर स्थित बुरयज नामक स्थान पर रहते हैं और माँ का नाम सुनकर उन्हें देखने आये हैं, वे भी माँ के निकट बैठे हुए थे। काफी देर बाद माँ ने उनसे दो–चार बातें की। इसके बाद उन्होंने आँखें बन्द कर ली। शाम होने से पहले उठकर बैठ गयी।

रात 10 बजे सभी लोग सोने चले गये। सिर्फ मैं ही माँ के पास बैठी थी। इधर–उधर की बातचीत के सिलसिले में ढाका के अश्विनी बाबू के मकान में (सिद्धेश्वरी) स्वामी निगमानन्द के आने की चर्चा चल गई। अश्विनी बाबू की पत्नी उनकी शिष्या थी। वे भी माँ की भक्त थी, इसीलिए माँ और अपने गुरुदेव को एक साथ मिलाने के लिये ये गयी। माँ वहाँ जाकर काफी देर तक जमीन पर बैठी रही तब स्वामीजी बाहर निकले। स्वामीजी आकर कुर्सी पर बैठ गये। मामूली बातचीत हुई।

माँ के भक्तों को यह व्यवहार देखकर बड़ा मानसिक कष्ट हुआ। लेकिन माँ में कोई भावान्तर नहीं हुआ। वे बोली–"पिताजी तो ऊपर ही बैठते हैं, इससे क्या हुआ?"

जबकि ऋषिकेश स्थित स्वामी पूर्णानन्दजी के आश्रम में माँ जब कभी गयी हैं तब वे अस्वस्थ स्थिति में भी नीचे चले आते थे। माँ को भोजन करने को कहकर वे तब तक स्वयं नहीं खाते थे जब तक माँ खाना प्रारम्भ नहीं करती थी। कभी–कभी काफी देर हो जाती थी, स्वयं भी अवस्थ हैं, पर वे कभी भी माँ को खाना खिलाने के लिये बैठाये बिना स्वयं भोजन नहीं करते थे। माँ को भोजन पर बैठाकर वे स्वयं पास ही बैठकर खाना खाते थे। एक गलती हो गयी है। वह यह कि स्वामीजी स्वयं अपने हाथों से बनाया भोजन न जाने कितनी बार माँ को खिला चुके हैं। लेकिन यह बात भी

गलत है। मैंने गलत सुना है। आज सुना है कि स्वामीजी स्वयं खड़े होकर दूसरों से खाना बनवाते और माँ को खिलाते थे।

आज भी विशेष-विशेष बातों की चर्चा हुई। माँ में सोने का भाव नहीं है। रात एक बजे हम सोने गये। स्वामीजी माँ का काफी आदर करते हैं।

24 पौष, सोमवार– अभय उस दिन बात-बात में माँ से पूछने लगा- ''अच्छा माँ, आपके निकट जितने सूक्ष्म शरीर वाले आते हैं, वे सब क्या हमारे बारे में भी कुछ कहते हैं?''

माँ ने कहा-''विशेष कुछ नहीं कहते, पर एकदम नहीं कहते, ऐसा नहीं है। कभी-कभी तो वे हाथ से इशारा कर जाते हैं।''

ज्ञानचन्द्र दे का श्री श्री माँ को बहन के स्थान पर माँ बनाना

आज भी माँ सुबह 8 बजे जागी। अभय आज भी पुरानी बातों को सुनना चाहता है। बातचीत में बाजितपुर के ज्ञानचन्द्र दे महाशय की चर्चा चल गई। ये बाजितपुर में ही नौकरी करते थे। भोलानाथजी के साथ साला-जीजा की तरह परिहास होता रहा, ताश-पासा खेलते। अन्त में एक दिन ज्ञानचन्द्र दे ने भोलानाथजी से कहा-''बचपन से ही मेरी माँ नहीं है। मैं आपकी पत्नी को 'माँ' कहकर पुकारना चाहता हूँ। अब तक उन्हें बहन कहता था। अब हम आपस में मजाक नहीं करेंगे।''

माँ किसी के सामने नहीं निकलती थी। लेकिन इस बातचीत के बाद से भोलानाथजी ज्ञानचन्द्र दे को भीतर लाने लगे। इधर माँ नित्य की तरह घूँघट काढ़े रहती थी। ज्ञान बाबू को बाल-बच्चा नहीं हुआ था, इसीलिए उनके पिता दूसरी शादी करवाना चाहते थे। इधर ज्ञान बाबू को इस प्रस्ताव पर घोर आपत्ति थी, परन्तु वे पिताजी को मना करने का साहस अपने में नहीं पाते थे।

साधु से जन्तर लेने की बात चली। इसी बीच ज्ञान बाबू ने एक दिन भोलानाथजी से कहा-''अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा। माँ जब अपने काम से खाली हो जाएँगी तब उनके चरणों का स्पर्श करूँगा और जो कुछ कहना है, मन-ही-मन कहूँगा।''

श्री श्री माँ के चरण स्पर्श से अपूर्व आनन्द और मनोकामना की पूर्ति

भोलानाथजी ने एक दिन यह सुयोग उपस्थित कर दिया। ज्यों ही ज्ञान

बाबू ने चरण स्पर्श किये त्यों ही न जाने कैसे लुढ़क पड़े। माँ इस तरह खड़ी रही जैसे कुछ भी नहीं हुआ है। भोलानाथजी घबराकर बोले–"यह क्या हुआ? जल्दी से इसे ठीक करो।"

बार–बार इन्हीं बातों को दुहराने पर ज्ञान बाबू उठकर बैठ गये। आँख–मुँह के भाव में परिवर्तन हो गया था। बाद में उन्होंने भोलानाथजी को बताया–"मुझे न जाने क्या हो गया था। मैं एक अपूर्व आनन्द की उपलब्धि कर रहा था। मैं जो कुछ कहना चाहता था, कह नहीं सका।"

भोनानाथजी ने पूछा–"आखिर क्या कहने आये थे?"

वे बोले–"सन्तान–कामना करने आया था।"

माँ हँसकर बोली–"एक साल बाद होगा।"

वही हुआ था।

25 **पौष, मंगलवार–** आज कोई विशेष घटना नहीं हुई थी। विगत कई दिनों से माँ का भाव चुपचाप–सा है। आज भी वैसा ही रहा।

26 **पौष, बुधवार–** आज अपराह्न में हम लोग माँ के साथ इमली के पेड़ के नीचे जाकर बैठे। बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी–"बाजितपुर में एक सज्जन की पत्नी (नाम नहीं बतायी) मुझे बहुत मानती थी। मैं भी अभिभावक की भाँति उनसे सभी बातें कहती या पूछकर अपना काम करती थी। हम आपस में इसी तरह खुले दिल से व्यवहार करती रही। एक बार ऐसा हुआ कि साल के अन्त में नवाब–स्टेट के कर्मचारियों को प्रत्येक बार कुछ अतिरिक्त रुपये मिलते हैं। यह बात वे जानती थी। सिर्फ उस महीने में घर खर्च के रुपये छोड़कर अतिरिक्त रुपयों से महिलाएँ अपने लिये जेवर बनवाया करती थी। इस शरीर को इन सब बातों की न कोई फिक्र थी और न इसकी जरूरत ही थी। मैं अपना काम–काज करती रही, उन दिनों क्रियादि प्रारम्भ हो गये थे, इन्हीं सब में मशगूल रहा करती थी।"

हुआ यह कि एक दिन उक्त महिला के यहाँ गयी तो वे बोली–"कहिये, इस बार के रुपये से आप कौन–सा जेवर बनवा रही हैं?"

मैं बोली–"कैसा रुपया मिलेगा? इस बारे में कुछ कहना मेरे लिये संभव नहीं है।" उन्हें मेरी बातों पर यकीन नहीं आया। उन्होंने समझा कि इतना मेलजोल रहने के बावजूद भी मैं उनके निकट यह बात छिपा रही हूँ। उनका

विश्वास जैसे बदल गया। उन्होंने कहा–''ऐसा कैसे हो सकता है? आप समझ नहीं पा रही हैं कि आप मेरे निकट कुछ छिपा रही हैं।''

''उनके इस झूठ के ऊपर दृढ़ विश्वास देखकर मैं न जाने कैसी हो गयी। दो–तीन बार उन्हें समझाने का प्रयत्न करती रही। परन्तु वे उपेक्षा करती हुई मौन रह गयी।''

''वापस घर आकर मैंने भोलानाथजी से इस बारे में पूछा तब उन्होंने कहा–'हाँ, कुछ रुपये मिलने वाले हैं, पर वह तो दुकानदारों के उधार चुकाने में समाप्त हो जाएँगे।' यह सुनकर मैंने सारी कहानी सुना दी। इसके बाद एक दिन मैं उक्त महिला के घर जाकर बोली कि पता लगाने पर मालूम हुआ है कि उन्हें कुछ रुपये मिलने वाले हैं। मुझे इस बारे में कोई जानकारी नहीं थी।''

''मैंने अनुभव किया कि जैसे मैं झूठ बोल रही हूँ, ऐसा वे भीतर ही भीतर सोच रही थी। इस घटना के बाद से हमारा दिल खोलकर मिलना या बातचीत करने की आदत दूर हो गयी। मैं कर भी क्या सकती थी।''

''दुर्गा पूजा के समय वह अपने घर चली गयी। छुट्टी के बाद उनके पति वापस आ गये, पर वह नहीं आयी। पता चला कि जब वह प्रतिमा दर्शन करने गयी थी तभी अचानक देवी का एक भयंकर रूप देखने के कारण उनका दिमाग खराब हो गया, इसलिए वह नहीं आयी। उन दिनों इस शरीर के भीतर पूजा–आसन आदि क्रियाएँ तेजी से हो रही थी। शायद उनके पति ने सोचा कि यहाँ सब कहने पर शायद कुछ लाभ हो सकता है। एक दिन वह आकर बोले कि मेरी पत्नी अच्छी हो जाय, ऐसा कुछ करिये।''

मैंने पूछा–''इसके बाद क्या हुआ?''

माँ ने कहा–''पता नहीं, कैसे वह अच्छी हो गयी।'' कहने के साथ ही माँ हँस पड़ी।

हम लोग भी हँस पड़े। इस तरह की न जाने कितनी छोटी–छोटी घटनाओं के बारे में चर्चा हुई है। उनमें बहुत–सी अनजानी रह गयी हैं। यह घटना इसके पूर्व सुन चुकी हूँ, ऐसा नहीं लगता।

27 पौष, गुरुवार– आज सुबह माँ के हाथों के नाखून काट दिये। माँ के बायें हाथ की तीन अंगुलियों के नाखून काफी खराब हैं। पहले दाहिने हाथ

के नाखून खराब थे। एक दिन माँ की इच्छा से दाहिने हाथ के नाखून अच्छे हो गये, पर बायें हाथ के नाखून खराब हो गये।

भोलानाथजी के हैजा को दूर करने के लिए माँ का इच्छा से अंगूठे का नाखून खराब करना

आज कहने लगी–''यह अँगूठा बिल्कुल अच्छा हो गया था। एक बार भोलानाथजी को हैजा हुआ तो ऐसा भाव हुआ कि इस अंगूठे का नाखून खराब हो जाए। तुरन्त नाखून खराब होने लगा और भोलानाथजी अच्छा होने लगे।'' माँ हँस पड़ी।

नाखून खराब होने की घटना और वधू-जीवन में प्राणपण से सबकी सेवा करना, इन सभी बातों की विस्तृत रूप से यहाँ चर्चा न करना ही अच्छा है।

आज भी माँ अस्वस्थ हैं। अपराह्न के समय माँ सो गयी। शाम होने के पहले उठी। हम लोग नर्मदा के किनारे जाकर माँ के पास बैठ गये। एक वृद्ध साधु वहाँ अकेले बैठे थे। माँ वहीं जाकर बैठ गयी। मैं, शिशिर और शान्ति माँ के चारों तरफ बैठ गये। यह साधुजी दो दिन माँ से मुलाकात करने के लिये आये थे। दण्डी स्वामी हैं। यहाँ एक धर्मशाला है जहाँ दण्डी, परमहंस संन्यासियों के रहने के लिये अलग जगह है, ये भी वहीं रहते हैं। दण्डी साधु जितने दिन इच्छा हो, उतने दिनों तक नहीं रह सकते।

सुना है कि वे साधुजी काफी विद्वान् और साधक हैं। अत्यन्त शान्त आकृति है। माँ बैठने के साथ ही हिन्दी में बोली–''पिताजी, मन स्थिर करने के क्या उपाय हैं?''

उन्होंने कहा–'मैं कैसे बता सकता हूँ? आप तो पूर्ण होकर बैठी हैं।'' तब हम लोगों ने पूछा–''हम लोगों को बताइये।''

बारम्बार अभ्यास करने पर मन पर विजय प्राप्त की जा सकती है

वृद्ध संन्यासी ने उस समय जो कुछ कहा, उसका सारांश यह है कि सदाचार ही मुख्य साधना है, सिर्फ बाहरी नहीं, अन्तर में भी सदाचार का पालन करना चाहिए। नित्य नियमित आचार-विचारों को करते-करते मन की चंचलता कम हो जाती है। घोड़े पर मत चढ़ो, वर्ना गिर जाओगे, समझना

ठीक नहीं है। घोड़े पर चढ़ूँगा और उसकी लगाम पकड़कर उसे ठीक से चलाऊँगा। यह भावना मन में रहनी चाहिए। बारम्बार अभ्यास करते रहने पर मन पर विजय प्राप्त की जा सकती है, यह बात गीता में भगवान् बता चुके हैं।

एक साधु की दृष्टि में माँ की संगति दुर्लभ, अगम्य एवं अमोघ है

अभय के बारे में कौनसी बात माँ के कहने पर साधुजी ने कहा–''उन्हें किस बात की चिन्ता? उन्हें आपकी संगति प्राप्त हुई है। इस प्रकार की संगति दुर्लभ, अगम्य एवं अमोघ है, शास्त्रों ने ऐसा कहा है। दुर्लभ अर्थात् जिसे पाना मुश्किल है, बड़े भाग्य से प्राप्त होता है। अगम्य अर्थात् जिसे बुद्धि समझ नहीं पाती, इसलिए बार–बार सन्देह और संशय उत्पन्न होता है। और अमोघ का अर्थ यह है कि इस संगति का फल कभी भी व्यर्थ नहीं होता। मैं साधारणत: किसी के पास नहीं जाता, लेकिन आपकी मूर्ति देखते ही समझ गया कि आप आकर्षण के जरिये पास बुला लेती हैं। परसाल आप कर्णाली में आयी थी। मैं भी इसी क्षेत्र का चक्कर काटता हूँ। उन दिनों मैं कर्णाली में नहीं था। शायद उस समय मुझे दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं होने को था, इस बार हो गया। यह मेरे लिये बड़े भाग्य की बात है कि आपके साथ नर्मदा के किनारे बैठने का अवसर मिला। मैं हर किसी के सामने शास्त्र की चर्चा नहीं करता। चूँकि आपकी आज्ञा थी, इसलिए की। इन बातों में क्या रखा है? अन्तर में अनुभव चाहिए।'' इतना कहने के बाद वृद्ध संन्यासी चुप हो गये।

सन्ध्याकाल नर्मदा नदी के किनारे रेती पर हम लोग बैठे हुए थे। चारों तरफ का वातावरण निस्तब्ध था। हम लोग कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहे। धीरे–धीरे अंधेरा बढ़ता जा रहा है देखकर, हम लोग आहिस्ते–आहिस्ते आश्रम की ओर चल पड़े। नर्मदा के तट से काफी दूर तक रेतीले मैदान को पार कर आश्रम में आना पड़ता है।

आश्रम में आने के बाद कीर्तन प्रारम्भ हुआ। माँ नाम करवाती रही। रात दस बजे हम लोग आराम करने गये। माँ सो गयी। माँ में सोने का भाव इधर कुछ दिनों से काफी कम हो गया है। रात को लगभग एक प्रकार से वे सोती नहीं। चुपचाप उठकर बैठी रहती हैं। दिन में भी सोने का भाव नहीं रहता। लेकिन हम लोगों के कहने पर कुछ देर तक चुपचाप सोती रहती हैं।

28 पौष, शुक्रवार– आज शाम होने के कुछ पहले हम लोग माँ के साथ नर्मदा के किनारे जाकर बैठे। माँ ने कहा–"सब कोई कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहो।"

उस समय शाम हो रही थी। हम लोग स्थिर होकर बैठे रहे। एक शान्त आनन्द का भाव हमारे मन में उत्पन्न हो रहा था। अन्धकार बढ़ता जा रहा था। सर्दी अनुभव करते ही माँ बोली–"चलो, चला जाय।"

हम लोग माँ के पीछे-पीछे आश्रम वापस आ गये। आज कीर्तन के समय माँ दो-एक गीत गाने लगी। नाम भी भजती रही। हम लोग साथ देते रहे। आज से यह नियम लागू हुआ कि नित्य रात 3 बजे उठकर हम लोग माँ के कमरे में जायेंगे और चुपचाप 6 बजे तक मन ही मन जप-ध्यान जिसे जो अच्छा लगे, करता रहेगा। जिसका मन न लगे वह वहाँ न बैठे। यहाँ सूर्योदय 7 बजे होता है।

29 पौष, शनिवार– रात 3 बजे हम लोग जाग गये। 6 बजे से लेकर 7 बजे तक माँ के साथ बातचीत करते रहे। माँ और अभय नर्मदा के तीर पर टहलने गये। हम लोगों ने सन्ध्या-पूजा की।

8 बजे माँ वापस आयी। उनका मुँह धुलाकर उन्हें थोड़ा-सा फल का रस पिलाया। अभय माँ के साथ नाना प्रकार की बातें कर रहा है, हम लोग पास ही बैठे हैं।

अभय ने कहा–"ज्योतिष बाबू के साथ देहरादून में आप दो-तीन वर्ष रही, उन दिनों की कुछ बातें सुनाइये न।"

ज्योतिष बाबू के साथ देहरादून की बातें

माँ कुछ-कुछ बताने लगी। उन दिनों माँ को भीख में जो कुछ मिल जाता, वही खाती थी। एक दिन सिर्फ आटा प्राप्त हुआ था, उसे पानी में घोलकर पी गयी। भोलानाथजी वैशाख के महीने में कमलाकान्त को लेकर बद्रीनारायण चले गये, माँ और ज्योतिष दादा रह गये, मसूरी से पैदल टपकेश्वर शिवमन्दिर आकर वहीं रात्रि वास किया। बाद में हरिराम और हंस भाई आकर माँ को देहरादून ले गये। पहले एक मन्दिर में ले गये, वह स्थान ज्योतिष दादा को पसन्द नहीं आया। इसके बाद अन्यत्र ले चलने के लिये ज्यों ही मोटर पर बैठने लगे त्यों ही माँ ने कहा–"अब जहाँ जाऊँगी, वहीं

रहूँगी। जब जहाँ जो स्थान मिले, वहीं रहना ठीक है, जगह के लिये इधर-उधर कहाँ चक्कर काटते फिरेंगे?''

सचमुच इस बार मनोहर मन्दिर पहुँची। माँ वहीं रह गयी। बाद में ऋषिकेश स्थित लक्ष्मण झूला में एक संन्यासी के आश्रम में जाकर रहने योग्य स्थान के बारे में पूछने लगी तो उन्होंने कहा-''सब भूमि अपनी है, जहाँ जी चाहे रहिये।''

यह बात सुनकर माँ बच्चों की तरह खेल-खेल में महाराजजी से जाकर पूछा-''अगर आप कहें तो इस कमरे में डेरा डाल दूँगी?''

माँ हँस पड़ी। इस कमरे में साधुजी स्वयं रहते थे। वे निर्वाक् रह गये। उन्हें विश्वास नहीं था कि माँ सामने की इतनी कोठरियों को छोड़कर उनकी कोठरी को पसन्द करेंगी। इस तरह उन्हें हतप्रभ कर माँ वहाँ से चली आयी।

गंगा किनारे शनिबाई जिस धर्मशाला में रहती थी, उसी में माँ चली आयी। शनिबाई माँ के खाने-पीने का प्रबन्ध करती रही। एक बार वे टहलती हुई स्वर्गद्वार गयी जहाँ एक वृद्ध संन्यासी से उनकी मुलाकात हुई। वहाँ माँ पुराण के बारे में बातचीत करने लगी। माँ के मुँह से जानी हुई बातें पुनः सुनने में आनन्द मिलता है।

एकाएक अभय ने पूछा-''क्यों माँ, आपके निकट अनेक अशरीरी आते हैं। उनमें न जाने कितने महापुरुष भी रहते हैं। **विजय गोस्वामी, गंभीरानन्द** बाबाजी आये थे, क्या? **परमहंस देव** आये थे, यह तो आप बता चुकी हैं।''

माँ बोली-''हाँ, इस लड़की को दर्शन देने के लिये सभी आते हैं।''

अभय ने पूछा-''आपने उन लोगों को देखा है?''

माँ का सूक्ष्म द्वारा परमहंस देव के यहाँ जाना

माँ बोली-''हाँ, देखा है।'' इसके बाद माँ परमहंस देव से होने वाली मुलाकात के बारे में बताने लगी। वह घटना यों है कि उन दिनों माँ विद्याकूट में रहती थी। एक दिन उन्होंने देखा कि दक्षिणेश्वर के ठाकुर का घर है और उसी घर में ठाकुर के बिछौने पर माँ सोयी हुई हैं। ठाकुर गोद के पास सोये हुए हैं। बच्चों की तरह भाव है। यह भी माँ ने देखा था कि माँ भी बच्चे के रूप में थी और स्वयं ठाकुरजी बच्चे के रूप में थे। दोनों ही इसी भाव में विभोर होकर बिछावन पर सोये हुए हैं। गोकि उस समय ठाकुर

की मूँछ–दाढ़ी कुछ पक गयी थी, यह दृश्य भी माँ देख चुकी हैं। लेकिन भाव सुन्दर शिशु की तरह है।

कुछ देर बाद माँ की गोद के पास से उठकर वे खड़ाऊ पहने और खट–खट करते हुए कमरे में चक्कर काटने लगे। गर्म पानी, गमछा वगैरह सभी सामान उस कमरे में मौजूद थे। माँ ने इसके पहले दक्षिणेश्वर कभी नहीं देखा था। बाद में जब वे वहाँ गयी तो देखा कि विद्याकूट में जैसा दृश्य वे देख चुकी थी, ठीक वैसा ही था। इस तरह पहली बार उन्होंने देखा था। इसके बाद एक बार हरिद्वार में कल्याणवन देख पायी थी, वहाँ सभी को देख चुकी हैं। वहाँ सभी दर्शन देने के लिये आये थे।

"इस लड़की को दर्शन देने आते थे"–इस भाव की चर्चा काफी देर तक चलती रही। इसके बाद हम सब अपने–अपने काम से चले गये। अभय और माँ में बातचीत होती रही। भोजन के पश्चात् माँ सो गयी। शाम के पहले से ही माँ चुपचाप रही।

आज माँ टहलने के लिये बाहर नहीं निकली। शाम को कीर्तन करने के लिये सभी लोग बड़े कमरे में एकत्रित हुए। पता नहीं अभय को क्या हुआ कि वह आज नाम नहीं करेगा। मैंने माँ से कहा–"तुम नाम करो, हम लोग तुम्हारे साथ–साथ करें।"

माँ नाम लेने लगी–**"हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल।"** पहले हम लोग उनके साथ–साथ कहने लगे। एकाएक माँ बोली–"तुम लोग मन ही मन दुहराओ। मैं अकेली नाम करूँगी।"

इतना कहने के बाद वे झूम–झूमकर नाम लेने लगी। आँखों से सावन–भादों बरसने लगे। सारा शरीर हवा में मानो झूम रहा था। काफी देर बाद नाम बन्द करने के बाद माँ कुछ देर तक चुपचाप बैठी रही। इसके बाद उन्होंने अपनी आँखें खोली।

कुछ देर बाद मैंने दूध लाकर उन्हें पिलाया। माँ वहाँ से चलकर बरामदे में चहल–कदमी करने लगी। इसके बाद शिशिर को एकान्त में बुलाकर न जाने क्या कहने लगी। रात के 11 बजे सभी लोग सो गये। माँ भी सोयी हुई हैं, लेकिन उनका शरीर शान्त मालूम नहीं पड़ रहा है।

इसी तरह रात बीत गयी। रात तीन बजे हम जाग उठे।

30 पौष, शनिवार– लगभग साढ़े सात बजे सन्ध्या–पूजन करने के बाद मैं माँ से बोली–"माँ, आज जरा टहलने नहीं चलोगी?"

माँ बोली–"चलो।"

इतना कहकर वे खड़ी हो गयी। नर्मदा किनारे जरा अच्छा स्थान देखकर मैं बैठ गयी। हम बातचीत कर रहे थे कि अभय माँ को खोजता हुआ उधर आ निकला। धूप निकल आयी थी। हम तीनों आश्रम की ओर निकल पड़े। माँ का मुँह धुलाकर उन्हें फलों का रस पिलाया। माँ का भाव आज चुपचाप था। कभी वे सो रही हैं तो कभी बैठी हैं। अभय उनके पास बैठा रहा। माँ के आदेशानुसार शिशिर अपने कमरे में बैठकर 8 से 12 बजे तक जप–ध्यान करता है। केशव सन्ध्या–पूजन करने गया है। देवीजी और शान्ति मेरी सहायता कर रही हैं। साढ़े दस बजे तरकारी का जूस, बजड़े के आटे की दो रोटी और थोड़ा दूध माँ को दिया। खा–पीकर माँ चहल–कदमी करने लगी।

मैंने कहा–"माँ, अब जाकर जरा आराम करो।"

माँ बिछोने पर जाकर सो गयी।

शाम के समय कीर्तन हो रहा था। ठीक इसी समय नारायण स्वामी के साथ चालीस व्यक्ति आये। इससे पहले एक बार नारायण स्वामी आये थे। यहाँ से वापस जाकर इन्होंने बड़ौदा से पत्र लिखा था कि हम लोग माँ के दर्शन करने आना चाहते हैं और माँ के निकट कीर्तन करेंगे। आज आकर कीर्तन करने लगे। साथ में सभी प्रकार के वाद्य यंत्र लाये थे। रात 10 बजे तक कीर्तन होता रहा। व्यास दर्शन करने के लिये यहाँ लोग आते रहते हैं, परन्तु इतने आदमियों को कभी एक साथ नहीं देखा गया था। सारा जंगल मुखरित हो उठा। रात्रि–वास के लिये लोग डाक बँगला ठीक कर आये थे। माँ का दर्शन कर सभी आनन्दमग्न हो उठे। इनमें कुछ अहमदाबाद और बड़ौदा में माँ का दर्शन कर चुके हैं।

1 माघ, (1345 बंगला सन्) रविवार– आज नारायण स्वामीजी के शिष्य और भक्तों के खाने–पीने का प्रबन्ध योगानन्द स्वामीजी के आश्रम में ही किया गया। कीर्तन हुआ। काफी आनन्द मिला। अपराह्न के समय सभी लोग चले जायेंगे, इसलिए माँ को प्रणाम करने आये हैं।

माँ पाखाने जायेंगी, इसलिए पानी लेकर मैं उनके पीछे–पीछे चल पड़ी।

शरीफे के पेड़ की झाड़ी के पास पाखाना है। ज्यों ही माँ झाड़ी के भीतर प्रवेश करने लगी त्यों ही पीछे से आवाज आयी–''माँ!''

माँ ने पीछे की ओर मुड़कर देखा–एक प्रौढ़ा महिला, जो पहनावे से दक्षिणी प्रदेश की मालूम पड़ती थी, दौड़ी हुई आ रही हैं। ये नारायण स्वामी के साथ आयी हैं। कल रात को और आज भी एकतारा बजाकर माँ को गाना सुनाती रही। कृष्णवर्णा होने पर भी महिला की आँखों और मुँह पर कोमलता एवं उज्ज्वल भाव है। आँख में एक चमक है। आनन्द से आकृति खिली हुई है।

पुकार सुनने के बाद माँ वापस लौटी तो वह महिला माँ के चरणों पर गिरती हुई टूटी-फूटी हिन्दी भाषा में (अच्छी तरह हिन्दी भी नहीं बोल पाती थी) बोली–''मुझ पर कृपा दृष्टि बनाये रखना।''

इतना कहने के बाद उठकर खड़ी हो गयी और माँ के हाथ को अपने हाथ में लेकर कभी अपने सर पर तो कभी अपने सीने पर रखती रही। इस तरह इस जंगल में खड़ी होकर वे माँ के प्रति श्रद्धा-ज्ञापन करती रही। इन सबका वर्णन करना कठिन है, आँखें छलछला आयी थी।

माँ अपने दोनों हाथों को उसके हाथों में डाल चुकी थी। मैं यह दृश्य देखकर मुग्ध हो गयी। यहाँ काफी लोग आये हैं। यह महिला सिर्फ कल भर माँ को देख सकी थी, लेकिन आज उसके हाव-भाव से ज्ञात हो रहा था जैसे माँ को छोड़कर जाने में उसे अपार कष्ट हो रहा है। पूछने पर ज्ञात हुआ कि इनका नाम यमुनाबाई है।

माँ की यमुना बाई पर कृपा

माँ के दोनों हाथों को पकड़ती हुई वह उनसे अनुरोध करने लगी कि एक बार वे बड़ौदा जरूर आयें। ये बड़ौदा में रहती हैं। पति भी साथ आये हैं। अन्त में बोली–''माँ, जिस प्रकार गोपियाँ कृष्ण को छोड़कर जाते समय कातर ही उठी थी, ठीक वही स्थिति मेरी हो गयी। तुम्हें छोड़कर मेरा यह शरीर छोड़कर जरूर चला जाएगा, परन्तु प्राण यहीं रह जाएगा।''

इतना कहकर वे पुनः प्रणाम करने लगी। पास में और कोई नहीं था। कहीं उनके भाव में बाधा न पहुँचे, इसलिए मैं जरा दूर जाकर खड़ी हो गयी।

माँ कह रही हैं–''भजन सुनाकर तुम आनन्द देती रही।'' आगे बोली–

''बहरहाल, तुम 24 घण्टे के भीतर जब जी चाहे मन ही मन अथवा प्रकट रूप में उच्चारण के साथ जब भजन करोगी, उस समय मैं सोचूँगी कि मेरी माँ भजन कर रही हैं।''

उक्त महिला माँ के दोनों हाथों को अपने हाथ में लेकर पुनः गंभीर आवेग के साथ बोली–''तुम मुझे माँ मत कहो। तुम माँ हो। मैं तुम्हारी बेटी हूँ। घर पर मेरे छोटे–छोटे बच्चे हैं, उन्हें इसलिए छोड़ आयी कि कहीं तुम्हारा संग पाने में परेशान न होना पड़े।''

कुछ देर बाद पुनः वह महिला बोली–''अब मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहती। मुझे विदा दो। सभी लोग रवाना हो रहे हैं। इसी बीच में आपके पास दौड़ी हुई आयी।''

विदा लेते–लेते भी 10–15 मिनट से वह जा नहीं पा रही है।

रवाना होने के पहले एक बार उक्त महिला माँ के पास आयी। माँ उस समय सो रही थी। अब उन्होंने रोना शुरू किया। माँ हँसती हुई बोली–''जो हँस रहा हो, उसके लिये भला कोई रोता है?''

लेकिन महिला का रोना बन्द नहीं हुआ। जाते समय बार–बार देखती हुई चली गयी। नाव पर बैठने के पूर्व एक बार पुनः सभी लोग माँ के दर्शन करने आये। यमुनाबाई भी आयी थी। इस प्रकार बार–बार माँ को प्रणाम करने के बाद सभी लोग रवाना हुए।

नारायण स्वामी यहाँ कई दिन रहने वाले हैं। सभी लोगों को नाव पर चढ़ाकर उन्होंने चान्दोद तक जाने का निश्चय किया। रूमा देवी और नारायण स्वामी ने मिलकर कैलास के मार्ग पर 'खेला' नामक स्थान पर आश्रम बनाया था। वहीं से रुमा देवी माँ के साथ चली आयी।

माँ आज शाम को बैठी। काफी चिट्ठियाँ आयी हैं। मैं पढ़कर सुनाने लगी। माँ शाम तक बैठी सभी पत्रों को सुनती रही। बाहर चलकर बैठिये, कहने पर वे बोली–''पहले चिट्ठियों को समाप्त कर ले।''

मैं सोचने लगी–यह क्या? आज इतनी चिट्ठियाँ एक साथ क्यों सुन रही हैं? शाम होने को आयी, फिर भी कह रही हैं कि पहले चिट्ठियों को समाप्त कर ले। मेरे इस भाव को समझकर माँ बोली–''वाह, सब काम निपटाना चाहिए न? ऐसा दिन नहीं रहेगा।''

माँ का भाव देखकर और बात करने का ढंग देखकर मैं पसीने-पसीने हो गयी। मैं कातर भाव से बोली-''आप इस तरह क्यों बोल रही हैं?''

माँ बोली-''वाह, न जाने कितनी बातें कहती हूँ, पर कुछ मन में खयाल रखकर नहीं कहती।''

इससे अधिक कुछ नहीं जान सकी।

चिट्ठियों को समाप्त कर माँ इमली के पेड़ के नीचे जाकर बैठ गयी। नर्मदा का तट इस समय जन शून्य है। हम लोग काफी देर तक चुपचाप बैठे रहे। शाम के बाद चले आये। कीर्तन हुआ। आज माँ साढ़े नौ बजे रात को सोयी।

4 माघ, बुधवार- आज भी कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई।

इधर कई दिनों से माँ की बातचीत न जाने कैसी अस्पष्ट और क्रमहीन होती जा रही है। बातचीत करते समय बच्चों की तरह लटपटा जाती हैं और फिर हँस पड़ती हैं। कहती हैं-''न जाने कैसी होती जा रही हैं मेरी बातें। तुम सब सुन रहे हो न? कई दिनों से 'रण कर-रण कर' शब्द मुँह से निकल रहा है।''

न जाने क्यों बातचीत के भाव बन्द होते जा रहे हैं। काफी प्रयत्न करने पर भी शरीर ठीक से अच्छा नहीं हो रहा है। जरा अच्छा होने पर तुरन्त ही खराब होने लगता है। इसी तरह चल रहा है।

आज अपराह्न के समय फलाहारी माताजी के निकट जाकर कुछ दुलार कर आयी। व्यास मन्दिर की ओर रवाना होकर पुन: विपरीत दिशा की ओर मुड़ गयी। फलाहारी माताजी के घर आकर बातचीत के सिलसिले में नर्मदा का पानी छिड़कने के लिये माँ ने कहा।

वृद्धा ने कहा-''नर्मदा का पानी घर में नहीं है।''

माँ ने पूछा-''जरा-सा भी नहीं है?''

वृद्धा छकाने की गरज से बोली-''नहीं, जरा भी नहीं है।''

माँ बच्चों की तरह जिद्द करती हुई बोली-''मैं पानी पीना चाहती हूँ। मुझे पानी दो, मेरा मुँह सूख रहा है।''

फलाहारी माताजी से परिहास करना

वृद्धा के पास बैठकर करुण भाव से माँ पानी-पानी कहने लगी। इधर वृद्धा पानी न देने पर तुली बैठी थी, अन्त में माँ की हालत देखकर उससे रहा नहीं गया। पानी लायी। माँ आधा गिलास पानी पी गयी। बाद में हँसती हुई बोली-''अब पानी कहाँ से आया? इस तरह लड़की को झूठ सिखलाती हो? मैं भी अब इसी तरह कहा करूँगी।''

इन्हीं सब बातों पर परिहास करने के बाद माँ पुन: व्यास मन्दिर की ओर चल पड़ी। साथ में हम लोग भी थे। अहमदाबाद से कुछ दिनों की छुट्टी लेकर शुद्धप्रिया और कल्याणप्रिया (गुलबाई की दो बहनें) नामक दो पारसी लड़कियाँ माँ के पास आयी हैं। ये दोनों भी साथ-साथ चल रही हैं। शाम तक हम लोग वहीं रहे। बाद में आश्रम पर आकर कीर्तन शुरू किया गया। रात को लगभग 11 बजे माँ सो गयी।

शुद्धप्रिया और कल्याणप्रिया के निकट उसके जनेऊ की कहानी सुनी। 7 से 13 वर्ष की उम्र के लड़के-लड़कियों का जनेऊ होता है। जनेऊ कमर में लपेटे रहते हैं और वह इतना बड़ा होता है कि कमर में तीन बार लपेटा जा सके। कुल चार गाँठें होती हैं जिनका एक अलग अर्थ है।

5 माघ, गुरुवार- आज भी लिखने लायक विशेष कोई बात नहीं हुई। दोपहर के वक्त माँ के भाव में जरा परिवर्तन हुआ था। आकृति में अनेक परिवर्तन हुये थे। मैं और अभय पास बैठे थे। अन्त तक यह दृश्य हम दोनों ने देखा। बीच-बीच में अभय यह कहता रहा-''यह माँ की ही आकृति है, बिल्कुल पहचानी नहीं जा रही है।'' अभय ने माँ से कहा-''माँ एक बार फिर वैसा करिये।''

अन्त में माँ बोली-''यह भी एक प्रकार का खेल है। जैसे तुम लोगों के विचार से कोई खास काम कभी-कभी किया जा सकता है, ठीक उसी प्रकार ये सब क्रियाएँ कभी-कभी तुम लोगों के कथानानुसार हो जाती हैं और कभी-कभी नहीं होती।'' आज नियमित ढंग से शाम को कीर्तन आदि हुआ।

क्रियादि के अनुभव

6 माघ, शुक्रवार- आज क्रियादि के बारे में माँ कहने लगी-''जिस वक्त

शरीर में क्रियादि होती हैं, उस समय स्पष्ट रूप से समझ में आ जाता है कि सम्मुखस्थ स्थानों की शिराओं में भी कैसा प्रवाह चल रहा है। कारण, ग्रन्थियाँ खुलती हैं न। कभी-कभी कीर्तन आदि के समय किसी-किसी के भाव का आभास दिखाई दे जाता है और लगता है जैसे हाथ-पाँव पटक रहा है। उसके शरीर में चंचलता भयानक रूप से प्रकट हो रही है। उसका कारण यह है कि ग्रन्थियाँ खुली जो नहीं रहती। स्वभाव की गतियाँ खेल नहीं पाती, इसलिए एक भाव का आवेग भीतर ही भीतर जागृत होता है और यही बाहर निकलते समय बाधा पाता है। चूंकि ग्रन्थियाँ खुली नहीं रहती, इसीलिए वह उसी प्रकार छटपटाता है।''

7 माघ, शनिवार– आज अपराह्न में माँ इमली के पेड़ के नीचे जाकर बैठ गयी। हम लोग भी बैठ गये। तरह-तरह की बातें हुई। माँ का भाव इस वक्त पूर्णतः चुपचाप-सा था। सन्ध्या होने के कुछ पूर्व ही माँ वहाँ से आश्रम की ओर चल पड़ी।

शिव-मन्दिर के सामने **स्वामी योगानन्दजी** और दो-तीन अन्य साधु बैठे बातचीत कर रहे थे। माँ वहाँ जाकर जमीन पर बैठ गयी। योगानन्द स्वामी के प्रश्न पर माँ बोली-''मैं तो पिताजी के पास बैठी हूँ।''

स्वामीजी प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले-''बैठो बेटी, बैठो।''

मैं माँ का आसन लेकर खड़ी थी, लेकिन उसे दे नहीं सकी; क्योंकि सभी संन्यासी जमीन पर बैठे हुए हैं। मैं जानती हूँ कि माँ यहाँ आसन पर इस वक्त नहीं बैठेंगी। माँ जैसे कुछ नहीं जानती, बातचीत सुनने यहाँ बैठ गयी हैं। स्वामीजी वेदान्त सम्बन्धी बातें कह रहे थे। हम लोग भी बैठकर सुनने लगे।

शाम के बाद माँ खड़ी हो हाथ जोड़ती हुई बोली-''अच्छा पिताजी, अब मैं चलूँ।'' (माँ हिन्दी में बातचीत करती रही, पर मैं सर्वत्र बंगला में लिखती जा रही हूँ)।

स्वामीजी ने कहा-''अच्छी बात है।''

माँ घर वापस आ गयी।

माँ हर वक्त सभी का सम्मान इसी ढंग से करती हैं, फलस्वरूप किसी को विरोध करने का अवसर नहीं मिलता। दूसरे संन्यासियों के आने पर माँ

उन्हें आसन देने के लिये व्यस्त हो उठती हैं। अगर समय पर आसन कोई नहीं दे जाता तो वे स्वयं जमीन पर बैठ जाती हैं। विदा देते समय हाथ जोड़कर अनुमति की प्रार्थना करती हैं। यथायोग्य व्यवहार में माँ कहीं गलती नहीं करती। संध्या के बाद कीर्तनादि हुआ। आज भी बड़ौदा से कई व्यक्ति माँ के दर्शन करने के लिये आये हैं।

8 माघ, रविवार– आज भोर के समय शुद्धप्रिया, कल्याणप्रिया और शान्ति अहमदाबाद के लिये रवाना हो गयी। माँ मुझे बुलाकर बोली– ‘‘खुकुनी, चल हम लोग भी चान्दोद चलें।''

मैंने कहा–‘‘ठीक है, चलो। कब चलोगी?''

माँ ने कहा–‘‘नाव से चलेंगे।''

मैंने कहा–‘‘ठीक है, चलो।''

सारा सामान ठीक से रखकर लगभग नौ–साढ़े नौ बजे हम लोग रवाना हुए। हमारे जाने का समाचार पाकर लोग हमें नाव पर बैठाने के लिये नर्मदा के किनारे तक आये। दो–एक व्यक्तियों की आँखें गीली हो गयी। माँ अचानक चल दी, पता नहीं फिर लौटेंगी या नहीं; सभी इस चिन्ता के कारण उदास थे।

चान्दोद में हम लोग टीकमजी के मन्दिर में आकर ठहरे। माँ को देखकर महन्तजी बड़े प्रसन्न हुए और सारा प्रबन्ध करने लगे। खाने–पीने के बाद, लगभग ढ़ाई बजे माँ ने मुझे बुलाया। उनके निकट जाते ही वे बोली–‘‘चल, आज ही पाँच बजे वाली गाड़ी से बड़ौदा चलें।''

मैंने कहा–‘‘ठीक है, चलो।''

पता लगा कि अभय माँ से कह रहा था–‘‘आप चली जायें। मैं यहाँ अकेले साधन–भजन करूँगा।''

इस तरह की बातचीत होने के बाद माँ ने कहा–‘‘अच्छी बात है।''

हम लोग यात्रा की तैयारी करने लगे। थोड़ी देर बाद पता लगा कि अभय माँ को छोड़कर रहना नहीं चाहता। माँ ने पूछा–‘‘जब कह चुकी कि चलूँगी तब चलो चलें।''

हम लोग अपराह्न में साढ़े पाँच बजे की गाड़ी से बड़ौदा की ओर

रवाना हुए। एक इंजीनियर (मिस्टर मजूमदार) कल बड़ौदा से यहाँ माँ से मुलाकात करने आये थे, वे भी हमारे साथ चल रहे थे। इनकी पत्नी दिल्ली-शिमला में माँ के निकट कई बार आ चुकी हैं। इनसे कोई परिचय नहीं था। यह सज्जन सैलून में बड़ौदा जा रहे थे। माँ को स्टेशन पर देखते ही अपने कमरे में ले गये। मैं अभय के साथ उनके डिब्बे पर सवार हो गयी।

रात साढ़े सात बजे हम लोग बड़ौदा पहुँचे। यहाँ 'चिका लालबादशाह' नामक धर्मशाला में जाकर ठहरे। समाचार पाते ही गंगाचरण बाबू महिलाओं के साथ आये और सारा इन्तजाम करने लगे। माँ चुपचाप भाव में थी। कल शाम से यही क्रम चल रहा है। इधर-उधर हिलने-डुलने के कारण जरा चंचल भी हो रही हैं। कहाँ जाएँगी, कहाँ ठहरेंगी, कोई निश्चित नहीं है, इसी तरह की बातचीत करती रही हैं। मैं भीतर-ही-भीतर चिन्तित रहने लगी।

9 माघ, सोमवार– आज भी माँ का भाव चुपचाप था। कई दिनों से हमें बैठाने के लिये वे रात को 3 बजे के लगभग जाग जाती हैं। कल 3 बजे के बाद से उनमें सोने का भाव नहीं आया। बरामदे में चहल-कदमी करने के लिये बाहर आयी। इसके बाद मैं और माँ तरह-तरह की बातें करने लगी। बाकी लोग कमरे के भीतर थे। इसी तरह भोर हो गया। कुछ दिन चढ़ आने पर माँ सोने चली गयी। लेकिन नींद नहीं आ रही थी। मेरे साथ विभिन्न विषयों पर बातें करने लगी।

कमलेश बाबू की पत्नी गंगाचरण बाबू की लड़कियों को साथ लेकर आयी हैं। लगभग 12 बजे वे चली गयी। माँ सो गयी। उनका भोजन नहीं हुआ। लगभग ढ़ाई बजे वे उठी तब उन्हें भोग दिया गया। इसके बाद धीरे-धीरे दो-चार व्यक्ति आने लगे। माँ इन लोगों से किंचित् बातें करती रही। लेकिन एक प्रकार से उनमें चुपचाप भाव था।

गंगाचरण बाबू और एक सज्जन आये हैं। इन लोगों ने माँ से कहा– ''माँ, छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों का भाव शुद्ध रहे, इस सम्बन्ध में कुछ बताइये।''

माँ बोली–''तुम लोग इस बारे में शिक्षा देते रहते हो, इसे तुम लोग ही समझ सकते हो।''

इन लोगों के बार–बार अनुरोध करने पर माँ हिन्दी में कहने लगी–''तुम लोगे छोटे–छोटे बच्चों का जनेऊ करते हो, लेकिन आजकल के अनेक लड़के जनेऊ फेंक देते हैं। जब कोई इस बात की शिकायत करता है तब मैं कहती हूँ कि ठीक कर रहे हैं। तुम लोग छोटे–छोटे लड़के–लड़कियों की अर्थकरी विद्या के लिये न जाने कितना प्रयत्न करते हो, कितनी पद्धतियों से शिक्षा देते हो, फिर जनेऊ की क्या जरूरत? 'सन्ध्या वन्दना वे क्यों करें, न करने पर क्या नुकसान होगा?' इस बारे में तुम लोग इस पीढ़ी को कुछ नहीं बताते। यही वजह है कि बच्चे 'ये बेकार की बातें हैं'– समझकर लापरवाही करते हैं। फलत: इसके लिये दोषी वे नहीं हैं, बल्कि तुम लोग हो।''

लड़कियों को उपदेश देना

इन लोगों के साथ दो–तीन लड़कियाँ आयी थी। इन्हें कुछ उपदेश देने को कहने पर माँ कहने लगी–''तुम लोग पाँच काम बराबर करती रहना। 1. माता–पिता की आज्ञा मानना, 2. सुबह–शाम भगवान् के निकट प्रार्थना करना, 3. मन लगाकर पढ़ाई–लिखाई करना, 4. सत्य कहना, 5. कभी–कभी शैतानी करना। इतना कहकर वे बच्चों की तरह हँस पड़ी।

फिर बोली–''भाई, मैं क्या करूँ, बताओ। इन लोगों ने कहने को कहा है, इसलिए जो मुँह पर बात आयी वह कह दी। बच्चों के लिये पर्याप्त है।'' फिर लड़कियों की ओर देखते हुए पूछा–''क्या–क्या करोगी, जरा बताओ तो?''

लड़कियाँ दुहरायी, पर वे बताने में गलती करने लगी।

गंगाचरण बाबू के साथ आये सज्जन इसी शहर के निवासी हैं, इसीलिए माँ सारी बातचीत हिन्दी में कर रही थी। गंगाचरण बाबू ने पूछा–''माँ, अब तक तुम बच्चों के बारे में बताती रही, अब हमारे बारे में भी कुछ बताओ।''

उनके साथी ने इस कथन का अनुमोदन करते हुए पुन: प्रार्थना की।

हमेशा अखण्ड रूप से उनका नाम श्वास के साथ मिलाए रखने का प्रयत्न करो

माँ कहने लगी–''आप लोगों का पेंशन लेने का वक्त आ गया है। यह

पेंशन श्वास के साथ ही समाप्त हो जाएगी। तुम लोग अखण्ड आनन्द चाहते हो। पेंशन पाने की आशा में जिस प्रकार अखण्ड रूप से बड़ौदा में आकर काम कर रहे हो, इसी प्रकार हमेशा अखण्ड रूप से उनका नाम श्वास के साथ मिलाये रखने का प्रयत्न करते रहो। तभी सब लोग जैसी अखण्ड शान्ति चाहते हैं, वही अखण्ड शान्ति प्राप्त होगी। इसीलिए कहती हूँ कि इधर ध्यान दो। पूरे भाव से काम चलाओ तब पूरा दाम मिलेगा। पहले-पहल बच्चों की तरह कोशिश करनी चाहिए, इच्छा न रहने पर भी करनी चाहिए। इसके बाद जब धीरे-धीरे आदत पड़ जाती है तब छोड़ते नहीं बनता। इसी प्रकार अपने-अपने इष्ट मंत्र को श्वास के साथ मिलाकर अभ्यास करते रहिये।''

उक्त सज्जन ने कहा- ''अगर माँ की कृपा हुई तो ऐसा हो सकता है।''

माँ ने कहा-''कृपा बरसात की तरह बरस रही है। उसे ग्रहण करने के लिये साधन-भजन की आवश्यकता है। तुम्हारे पास जितनी शक्ति है, उसे लगाओ। इसके बाद जो कुछ करना है, वे करते जायेंगे। मुँह में रख देने से पेट नहीं भरता।''

एक ने पूछा-''अगर हममें साधन-भजन की शक्ति न रहे तो?''

माँ ने कहा-''मैं यह सुनना नहीं चाहती। यह जो शक्ति है जिसके बारे में कहा गया है कि न रहे तो, इसी में देखा गया है कि शक्ति है। तुम्हारे भीतर जितनी कर्मशक्ति है, अगर उसे काम में न लाओ तो इसके लिये तुम दोषी हो। 'वे ही सब कुछ करवाते हैं, मैं तो यंत्र मात्र हूँ', यह कहने के अधिकारी तुम नहीं हो। नियमित रूप से काम करते-करते जब बाहरी ओर से बहिर्मुखी कर्म-क्षय हो जाता है तब वह देखता है कि अरे, मैं अपनी इच्छानुसार कुछ नहीं कर पाता, वे ही मेरे द्वारा सब करवा रहे हैं, मैं तो यंत्र मात्र हूँ। यह अनुभव वह तभी करता है जब वह यह देखता है कि उसके द्वारा कोई काम नहीं हो सकता, वे यंत्री हैं तो वह सिर्फ यंत्र मात्र। फलस्वरूप इस समय उनकी कृपा से सब होता जा रहा है, यह कहने का अधिकार ही नहीं है। हर क्षण तुम्हें उस मार्ग पर जो सहायता करे, उसे पकड़े रहना चाहिए, जो सहायता नहीं करता, उसे छोड़ देना चाहिए।''

पुनः हँसती हुई माँ बोली-''पिताजी, हिन्दी अच्छी तरह नहीं बोल पाती। पक्षी जैसे सुन-सुनकर बोलते हैं, ठीक उसी प्रकार कहती हूँ। तुम लोग जैसे कहलवाते हो, उसी प्रकार कहती हूँ।''

बातचीत समाप्त होने के बाद लगभग 6 बजे गंगाचरण बाबू के साथ आये सज्जन माँ को मोटर पर बैठाकर घुमाने ले गये। माँ के साथ मैं और गंगाचरण बाबू भी गये। मोटर से माँ नगर दर्शन करने लगी। काफी साफ-सुथरा और सज्जित नगर है। इसके बाद वे अपने घर के दरवाजे के पास आकर रुक गये।

घर की औरतें आकर माँ को प्रणाम करने लगी। डॉक्टर साहब (उक्त सज्जन डॉक्टर हैं) ने कहा-''माँ, औरतों को कुछ उपदेश दीजिये।''

महिलाओं को उपदेश देना

माँ बोली-''क्या कहूँ? पति की सेवा करो। याद रखो उस परम पति को तुम लोग देख नहीं पाती। वह परम पति ही घर-घर पति के रूप में तुम्हारे निकट हैं। उसी तरह उनकी सेवा करती रहना। और संतान-संततियाँ, 'बाल गोपाल' कुमारी मूर्ति के रूप में तुम्हारे पास हैं। इसी भाव को लेकर उनकी सेवा-यत्न करती रहो। और पति कौन है? असल में वही परम पति ही सभी का पति है। यह जो पुरुष देख रही हो, ये लोग भी जब एक ही चाहते हैं, उस समय सभी स्त्री हैं। स्त्रियाँ जैसे पति को चाहती हैं, ये लोग भी (पुरुषों की ओर इशारा करती हुई) उसी प्रकार परम पति को चाहते हैं। इसीलिए सभी स्त्रियाँ हैं, सभी एक को चाहते हैं।'' इतना कहकर माँ हँसने लगी।

कुछ देर वहाँ रहने के बाद हम धर्मशाला में चले आये। रात में ज्योतिष दादा की पत्नी की चर्चा चल गई। वे माँ से काफी विरुद्ध हैं। इस बारे में थोड़ी-थोड़ी चर्चा पहले कर चुकी हूँ। उनके बारे में माँ कहने लगी-''देखो, एक बार एक व्यक्ति ने आकर कहा-माँ, ज्योतिष बाबू की पत्नी क्रोधवश कभी-कभी ऐसी बातें कहती हैं जिसे सुनकर आँखों में आँसू आ जाते हैं, कान बन्द कर लेने पड़ते हैं।''

मैंने पूछा-''तुमने क्या जवाब दिया?''

माँ हँसती हुई बोली-''मैं तो एक ही बात कहती हूँ, वह तू जानती है। इसमें उसकी कोई गलती नहीं है। वह तो इस शरीर के बारे में कुछ नहीं जानती, कुछ नहीं पहचानती। यही वजह है कि वह अपने भाव के अनुसार उस तरह की बातें जो मन में आती हैं, कहती है। मैंने उससे यह भी कहा

था कि तुम लोग इस शरीर की परीक्षा करके देख लो। किसी भी रूप में परीक्षा क्यों न करो, इस शरीर में जो भाव है, वही रहेगा। किसी भी बात पर भाव में कोई भी परिवर्तन नहीं होगा। माता-पिता की गोद में जैसे बच्चा रहता है, तुम लोगों की गोद में यह शरीर भी उसी तरह है।''

माँ आज रात 3 बजे जाग गयी। माँ बाहर गयी, पीछे-पीछे मैं भी चल पड़ी। माँ बरामदे में जाकर बैठ गयी। मैं भी माँ के पास बैठी। नाना प्रकार की बातें होने लगी। भोर हो जाने के बाद भी हम दोनों बैठी बातें करती रही।

यमुना बाई के यहाँ

10 माघ, मंगलवार– आज माँ को यमुना बाई पुली के घर लोग ले गये। हम लोग लगभग 5 बजे उनके यहाँ पहुँचे। माँ के बैठने के लिये बरामदे में जगह बनायी गयी है। माँ बरामदे में जाना नहीं चाहती थी, इसलिए रास्ते के किनारे बैठ गयी। यमुना बाई एक महीने के लिये मौन व्रत पालन कर रही है। वे इशारे से माँ को बरामदे की ओर चलने के लिये अनुरोध कर रही हैं।

माँ त्यों ही सब ओर से बचाव करने की गरज से उनका हाथ पकड़ती हुई बोली–''मैं माँ की गोद में बैठूँगी।''

बेचारी क्या करती। निरस्त हो गयी। सभी लोग रास्ते के किनारे बैठे। सभी गुजराती हैं, हिन्दी मामूली तौर पर समझ लेते हैं। माँ हिन्दी में बातचीत करने लगी। कीर्तन हुआ। शाम होने के पहले हम धर्मशाला में लौट आये। समाचार पाकर काफी लोग दर्शन करने आये हैं। सभी लोग रात 10 बजे तक बैठे रहे।

रात को 11 बजे के लगभग माँ मुझे साथ लेकर बरामदे की ओर बढ़ती हुई बोली–''सोने की इच्छा नहीं है।''

माँ के भाव से पूर्वाभास

माँ और मैं बरामदे में बैठकर बातें कर रहे हैं। माँ का भाव देखकर मुझे सन्देह हो रहा था कि वे जल्दी से मुझे भगाने वाली हैं। कुछ दिन पहले मुझे एक अर्से के लिये महिला आश्रम में जाकर, वहाँ का काम-धाम चलाने

के लिये इलाहाबाद से शिवप्रसाद बाबू और जितेन दादा लिख चुके हैं। इधर मैं माँ को छोड़कर जाने को राजी नहीं हो रही थी।

आज बरामदे में बैठते ही माँ में इस भाव का आभास पाकर (माँ कुछ दिनों से चुपचाप हैं) मैं बोली–''बात क्या है, माँ? तुम्हारा हाव–भाव ठीक नहीं लग रहा है।''

मैंने अपनी बातें इस ढंग से पेश की कि जैसे उनके भाव को समझ गयी हूँ। यह देखकर माँ हँस पड़ी और बोली–''क्या बकती है!''

मैंने कहा–''तुम्हारी हँसी देखकर मुझे डर लग रहा है।''

अन्त में वे बातचीत के सिलसिले में समझाने लगी कि मेरा जाना जरूरी है। बोली–''इस वक्त जब यह सब काम और कोई नहीं कर सकता तब तुझे ही करना होगा। महिला आश्रम आरम्भ कर उसे यों ही छोड़ आयी है। जब तूने आरम्भ किया है तो उसे अच्छी तरह कर। जिस काम को स्वेच्छा से हाथ में ले, उसे पूर्ण करने के लिये प्रयत्न करना चाहिए। वहाँ कुछ दिन रहकर कामकाज ठीक से आरम्भ करवाकर चली आना। इधर दिल्ली जाना है, दासू के बारे में बातचीत चल रही है। सभी के साथ सलाह कर जो हो, सब समाप्त कर दे। अखण्डानन्द स्वामीजी ढाका में कुछ दिनों के लिये जरूर जायें (क्योंकि वहाँ ब्रह्मचारियों से गृहस्थों का कुछ कच–कच चल रहा है।)। वही सबसे बुजुर्ग और संन्यासी हैं। इस समय उनका ढाका में रहना जरूरी है। इसके बाद अगर उनकी तबीयत ठीक रहे तो पास ले आना। तू भी जा और अपना काम–काज जल्दी से निपटा ले।''

मैं रोने लगी। माँ को छोड़कर कोई भी काम करने का जी नहीं चाहता। इस बारे में किंचित् बातचीत होने के बाद माँ बोली–''सब कुछ उनकी ही सेवा है। यह मत सोचना कि तुझे दूर भेज रही हूँ। जरूरत सब कुछ की है, फिर जब जरूरत हो तब चली आना।''–इत्यादि बातों से मुझे आश्वासन देने लगी।

रात के 3 बजे चुके हैं। मैं बोली–''तुम कहाँ रहोगी? तुम्हारे साथ कौन रहेगा? खाने–पीने का क्या प्रबन्ध होगा?''

माँ ने कहा–''जब खयाल आता है तब शरीर की ओर ध्यान ही नहीं दे पाती, तुझे भी भेज देती हूँ। खैर, किसी सूरत से काम चलता चलेगा।

रूमा देवी है। अभय को अन्यत्र जाने की बात पर भेजना चाहा, पर वह गया नहीं। देखूँ, क्या होता है। तुझे चिन्ता करने की जरूरत नहीं है, एक तरह से काम चल जाएगा। पानी में तरकारी उबालकर देने से ही मेरा काम चल जाएगा। नहीं तो दूध से ही हो जाएगा। यह सब एक तरह हो जाएगा। मैं भी किस ओर जाऊँगी, देखूँ। एक बार जब हिल-डुल गयी तब देखा जाय, किधर जाती हूँ। समाचार मिल जाएगा।''

मैंने पूछा-''मुझे कब जाना पड़ेगा?''

माँ ने कहा-''रात 3 बजे गाड़ी जाती है?''

मैंने कहा-''3 बज गया है। सवेरे एक गाड़ी जाती है।''

माँ ने कहा-''तब चल, घर के भीतर चलें। शिशिर वगैरह को जगाकर जाने की तैयारी कर।''

कुछ देर बरामदे में बैठने के बाद हम दोनों भीतर आये। तुरन्त इन्तजाम किया गया। माँ बैठी रही। भोर में 6 बजे मैं रवाना होऊँगी, यह तय हो गया।

11 माघ, बुधवार- आज भोर साढ़े पाँच बजे माँ को प्रणाम करने के पश्चात् मैं भीगी आँखें, अवसन्न मन और शरीर लिये स्टेशन आयी। माँ का भाव चंचल रहा, आते समय देख आयी थी। कहाँ जाएँगी, कुछ पता नहीं है, कहती रही। अब पुनः कब माँ को देख पाऊँगी, पता नहीं। अक्सर माँ कहती रहती हैं-''खुकुनी कहा करती है कि उसे मुक्ति-सुक्ति नहीं चाहिए। उसका कहना है कि उसे सेवा करने में ही अपार आनन्द मिलता है।''

लेकिन सेवा करने की शक्ति मुझमें कहाँ है? अक्सर माँ मुझे दूर भेजकर एकान्त में अधिक देर तक बैठने के लिए उपदेश देती रहती हैं। अधिक समय तक मौन रहना, साधना के लिये सहायक होता है-माँ कहती हैं। वे इस बात का उपदेश देती हैं कि मौन काल में लिखना या इशारा करना जितना कम हो सके, ठीक है। कहती हैं-उनके लिये मन, प्राण और शरीर तक लगा दो-समय गुजरता जा रहा है।

12 माघ, गुरुवार- आज सुबह दिल्ली पहुँचते ही मैं आश्रम में गयी। वहाँ से पंकज दादा के घर आकर पुनः आश्रम गयी। पंचू दादा को सारा समाचार सुनाया। लगभग 9 बजे पंचू दादा आये। वे मुझे अपने घर पर ले

गये। उनके यहाँ खा-पीकर पुनः आश्रम में लौट आयी। कल इलाहाबाद चली जाऊँगी, यह तय कर चुकी थी। लेकिन पंकज दादा ने इस पर घोर आपत्ति प्रकट की। देखूँ क्या होता है।

15 माघ, रविवार– अभय के पत्र से ज्ञात हुआ कि माँ 12 माघ को डाकुर रवाना हो गयी हैं। उनके साथ इस वक्त साधन, अभय और रूमा देवी हैं। वहाँ रामबाग धर्मशाला में ठहरी हैं। इलाहाबाद आने के बाद साधन के पत्र से भी यही समाचार मिला।

17 माघ, मंगलवार– आज सुबह दिल्ली से रवाना होकर शाम को इलाहाबाद पहुँच गयी। दिल्ली में 5 दिन रही। माँ के भक्तवृन्दों का आग्रह-अनुरोध टाल नहीं सकी। यही वजह है कि कई दिन वहाँ रुक जाना पड़ा। भाई-बहनों से पर्याप्त आदर-स्नेह प्राप्त हुआ। माँ को लोग प्राणों से भी अधिक चाहते हैं। यही वजह है कि इन लोगों ने मेरी खूब खातिर की। सच तो यह है कि यह आदर-यत्न पाने की पात्र मैं नहीं हूँ। लेकिन माँ की कृपा से किसी बात की त्रुटि नहीं होती।

दिल्ली में प्रत्येक रविवार को सुबह आश्रम की महिलाएँ एकत्रित होकर माँ का नाम-कीर्तन करती हैं। स्वयं ही मृदंग-करताल बजाती और जी खोलकर 'नाम' गाती हैं। कम उम्र की लड़कियाँ नृत्य करती हुई नाम गाती हैं। बड़ा आनन्द आया। किसी कारणवश जिस रविवार को मैं वहाँ मौजूद थी, उस दिन अपराह्न के समय भी महिलाओं ने नाम-कीर्तन किया। माँ को छोड़ आयी हूँ, फलस्वरूप ऐसे आनन्द में भी मेरा अन्तर हाहाकार कर रहा था।

19 माघ, गुरुवार– आज साधन का एक पत्र आया है जिसमें उसने लिखा है-''माँ कल पुनः बड़ौदा आकर, आज ही रतलाम की ओर रवाना हो गयी। मुझे चान्दोद में रहने का आदेश दे गयी। उनके साथ रूमा देवी और अभय गया है। माँ कह गयी हैं कि पिताजी को (अखण्डानन्द स्वामीजी) लिख दो कि मेरे लिये चिन्ता न करें। माँ अब कहाँ जाएँगी, कोई निश्चित नहीं है।''

माँ अब कहाँ जायेंगी, सोचने पर मन अस्थिर हो उठा, लेकिन कोई चारा नहीं है। इधर अभी तक आश्रम के लिये कोई अच्छा इन्तजाम नहीं

कर सकी। प्रयत्न कर रही हूँ। यहाँ भी प्रत्येक रविवार को आश्रम की महिलाओं से कीर्तन करवाने का प्रयत्न कर रही हूँ।

21 माघ, शनिवार– आज पता लगा कि माँ मथुरा में आ गयी हैं। यहाँ से कहाँ जाएँगी कोई निश्चित नहीं है।

22 माघ, रविवार– आज मथुरा से अभय का पत्र प्राप्त हुआ। माँ ने पिताजी के पास पत्र लिखवाकर सूचित किया है–''मेरे लिये चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ एक की चिन्ता करने का प्रयत्न करते रहो तब इस शरीर की गतिविधि जान सकोगे।''–इत्यादि बातें।

माँ का अज्ञात वास

27 माघ, शुक्रवार– आज कलकत्ता से अभय और यतीश गुहा महाशय के पत्र से ज्ञात हुआ कि माँ ने अभय को कलकत्ता रवाना कर दिया है। कई दिनों बाद वह पुन: माँ के पास वापस जाएगा। माँ कुछ दिनों तक गुप्त भाव से रहेंगी। माँ कहाँ हैं या उनके साथ इस वक्त कौन–कौन हैं, यह सब अभय बता नहीं रहा है। साधन का भी पत्र आया है। माँ का पता उसे बताया गया है, लेकिन उसे प्रकट करने की मनाही है, इसलिए बताया नहीं। माँ के नाम के सभी पत्र उनके पास भेजता रहता है।

3 फाल्गुन, बुधवार– पता चला है कि अभय 1 फाल्गुन को माँ के पास चला गया है।

4 फाल्गुन, गुरुवार– आज दोपहर को अभय का टेलीग्राम आया है– स्वामी अखण्डानन्दजी और मनोरंजन ब्रह्मचारी माँ के पास चले आयें। यह आदेश माँ ने दिया है। नवद्वीप से इस आशय का टेलीग्राम आया है। कल स्वामीजी रवाना होंगे, यह तय हो गया।

5 फाल्गुन, शुक्रवार– आज अखण्डानन्द स्वामीजी मनोरंजन को साथ लेकर माँ के यहाँ रवाना हो गये। सिर्फ मैं महिलाओं को लेकर यहाँ रह गयी। माँ की क्या इच्छा है, यह वही जानें। आज शिवरात्रि है। महिलाओं को साथ लेकर रात ढाई बजे तक पूजा–जप, कीर्तन आदि करती रही।

7 फाल्गुन, रविवार– नवद्वीप से अभय का पत्र आया है। माँ यहाँ कितने दिनों रहेंगी, कोई निश्चित नहीं है। अगर शरीर ठीक रहा तो शायद कुछ दिन यहाँ इसी तरह रहेंगी।

कल यतीश दादा के पत्र से ज्ञात हुआ है कि माँ के नवद्वीप में रहने का समाचार अभय ने कलकत्ता में टेलीग्राम द्वारा सूचित किया था।

8 फाल्गुन, सोमवार– आज शाम को बाबा का टेलीग्राम मिला। माँ आज पुरी पहुँच गयी हैं। शरीर ठीक नहीं है।

माँ का अज्ञात वास काल समाप्त हुआ

10 फाल्गुन, रविवार– आज स्वामी अखण्डानन्दजी और कलकत्ता से यतीश गुहा महाशय का पत्र प्राप्त हुआ जिससे पता चला कि माँ तेरह दिनों तक एक साधारण नाव पर डेरा डाले खेया घाट पर रही। दिन के समय बस्ती से दूर कहीं छिपी रहती थी। रात के वक्त खेया घाट पर आ जाती थी। माँझियों के पहरे में रहती थी। अभय माँ को वहीं रखकर कलकत्ता चला आया। उस समय माँ के साथ केवल रूमा देवी थी।

4 फाल्गुन, गुरुवार को माँ बाहर प्रकट हुई। उसी दिन अभय ने विभिन्न स्थानों पर टेलीग्राम भेजे थे। टेलीग्राम पाकर बहरमपुर, कलकत्ता, श्रीरामपुर आदि स्थानों से काफी लोग माँ के पास गये।

6 फाल्गुन, शनिवार को माँ सभी लोगों को साथ लेकर सखी माताजी के पास गयी। वहाँ काफी बातचीत हुई।

7 फाल्गुन, रविवार को माँ सभी को साथ लिये-लिये नवद्वीप से साढ़े सात बजे सियालदह आयी। यहाँ से हवडा स्टेशन पर आकर साढ़े आठ बजे गाड़ी से पुरी रवाना हो गयी। इनके साथ अभय, रूमा देवी, स्वामीजी और मनोरंजन ब्रह्मचारी गये। स्वामीजी शीघ्र ही ढाका वापस जायेंगे। माँ पुरी में कितने दिनों तक ठहरेंगी, कोई निश्चित नहीं है। सिर्फ यही नहीं वहाँ से पुनः कहाँ चल देंगी, यह भी नहीं मालूम। **पुरी** में माँ स्वर्गद्वार स्थित **आनन्दमयी आश्रम** में हैं।

12 फाल्गुन, शुक्रवार– आज पुरी से स्वामीजी द्वारा लिखित पत्र मिला। उन्होंने लिखा है कि आज माँ के आदेश पर वे ढाका रवाना हो रहे हैं। माँ की तबीयत ठीक नहीं है, दूध और उबाली हुई तरकारियाँ खाती हैं। अभी यहाँ कितने दिनों तक रहेंगी, पता नहीं।

17 फाल्गुन, बुधवार– चार-पाँच दिए हुए मैं विन्ध्याचल के आश्रम में

महिलाओं को लेकर आयी हूँ। संज्ञा देवी ने कलकत्ते से पत्र में लिखा है कि पुरी से माँ कलकत्ता आयी थी और यहाँ से देवधर चली गयी। यहाँ बिड़ला के मन्दिर में थी। कुमिल्ला की शोभा माँ के साथ माँ की मुलाकात हुई थी।

देवधर से भ्रमर और शाश्वतानन्द के पत्र मिले। माँ गत 14 फाल्गुन, रविवार को सवेरे कलकत्ता पहुँची और दोपहर की गाड़ी से देवधर रवाना हो गयी। देवधर में वे निर्वाण मठ में ठहरी हैं। कलकत्ता से उनके साथ भ्रमर, मझली दीदी वगैरह सात-आठ व्यक्ति आये हैं।

19 **फाल्गुन, शुक्रवार–** आज दोपहर को साढ़े बारह बजे एक तार मिला। देवधर से श्रीयुत् प्राणगोपाल बाबू ने सूचित किया है कि माँ कल काशी के लिये रवाना हो गयी हैं।

यह तार पाते ही मैं साढ़े ग्यारह बजे वाली गाड़ी से तुरन्त काशी के लिये रवाना हो गयी और हरिहर धर्मशाला में जाकर माँ को देख सकी। माँ काफी दुर्बल हो गयी हैं। चार-छः दिन से मुझे भी बुखार है। खड़ी होने पर सारा शरीर काँपता है। इस स्थिति में भी माँ की कृपा से पहाड़ से सीधे यहाँ तक अकेले चली आयी हूँ। अब ठीक हूँ।

20 **फाल्गुन, शनिवार–** आज एक सज्जन माँ से विभिन्न विषयों पर बातचीत कर रहे थे। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने पूछा–''मेरी हालत देखकर आप क्या अनुमान लगा रही हैं। क्या मैं गृहस्थी के चक्कर में न फँसकर त्याग का मार्ग अपना सकूँगा? किंवा विवाहादि करने पर मेरी उन्नति होगी?''

सभी के लिए एक मार्ग नहीं होता

माँ ने कहा–''सभी के लिये एक मार्ग नहीं होता। किसी-किसी को त्याग का मार्ग अपनाना जरूरी होता है और किसी को भोग का मार्ग अपनाना पड़ता है।''

इस तरह की बातचीत चलती रही। स्वामी शंकरानन्दजी पास ही बैठे थे। उन्होंने कहा–''माँ, इस बालक ने अभी तक विवाह नहीं किया है। साधन समर आश्रम के सत्यदेव ठाकुर के गुरु विजय चटर्जी के यहाँ 14 वर्ष तक रहा। इसके बाद जितेन ठाकुर महाशय के यहाँ चला गया।''

माँ मृदु मुस्कान के साथ बोली–''क्या विवाह करने की इच्छा नहीं है?''

तब मालूम हुआ कि इन दिनों उसके मन में विवाह करने की इच्छा है, लेकिन वह द्विधा में है। माँ से बार–बार इस बारे में प्रश्न करने पर वे बोली–''देखो, व्यक्तिगत रूप से हर समय इस तरह की बातें कहना सम्भव नहीं होता, लेकिन तुम्हें बता रही हूँ। तुम सत्संग करो और एक आश्रय लेकर रहो। गुरु के निकट आश्रय लेने पर तुम्हारा अपना निजी पथ तुम्हारे पास आ जाएगा।''

बातचीत में 10 बज गये। माँ कुछ देर पहले कह चुकी हैं कि आज दोपहर को विन्ध्याचल रवाना होना है। लेकिन तभी अचानक यह मालूम हुआ कि शहर में दंगा हो गया है। हम लोगों की धर्मशाला के पास भी दंगा हो गया। स्थिति नाजुक होते देख 12 बजे के बाद 24 घण्टे के लिये बाहर निकलने की मनाही हो गयी।

सभी कहने लगे–''माँ आज अब नहीं जा सकेंगी।''

माँ ने कहा–''12 बजे से पहले स्टेशन पहुँच जाएँ।''

लेकिन लोगों की राय नहीं हुई। तब माँ ने कहा–''ठीक है। अब तुम्हीं लोगों पर जिम्मेदारी सौंपती हूँ जो मन में आये करो।''

11 बजे के लगभग बाच्चु की माँ श्री श्री माँ को खिलाने बैठी। इसी बीच इलाहाबाद से जितेन दादा आ पहुँचे। माँ काशी से रवाना होंगी, यह समाचार इन्हें दिया गया था। सारा समाचार सुनकर जितेन दादा ने कहा–''अपने मित्र की दोनों मोटरों पर आप लोगों को स्टेशन पहुँचा सकता हूँ। अगर जाना है तो तुरन्त तैयार हो जाइये।''

हम लोग तुरन्त तैयार हो गये और शाम को विन्ध्याचल पहुँच गये।

माँ के आदेशानुसार प्रतिवर्ष पौष संक्रान्ति से लेकर होली तक दैनिक होम के अलावा और 10 हजार से अधिक होम होते हैं। इस बार श्रद्धेय निवारण बाबू ने इस मौके पर एक लाख आहुति करने का संकल्प किया है।

निवारण बाबू की लक्षाहुति में श्री श्री माँ का सहसा पहुँचना

कल होली है। निवारण बाबू और विराज दीदी प्रसन्न हैं, क्योंकि आहुति समाप्त होने के समय माँ आ गयी हैं।

माँ ने कहा–"देखो, जो होने को होता है, वह इसी प्रकार हो जाता है। अगर जितेन स्वयं जाकर हमें न ले आता तो हम शायद ही आ पाते। मैं देख चुकी थी कि जितेन आ रहा है, लेकिन यह सब प्राय: प्रकट नहीं होता।"

सम्प्रति स्वामी अखण्डानन्दजी ने एक नया मकान बनवाया है। उसी में माँ के लिये सोने का प्रबन्ध किया गया। पहाड़ पर से चारों ओर का दृश्य अत्यन्त मनोरम लगता है। डॉक्टर उपेन्द्र बाबू भी यहीं हैं। सभी लोग माँ को पाकर आनन्दित हैं। रात को लगभग 11 बजे माँ सो गयी।

21 फाल्गुन, रविवार– आज सुबह 8 बजे माँ जागी। उठकर शंकरानन्द स्वामीजी से बोली–"चलो पिताजी, कुछ दूर तक टहल आयें।"

आधे घण्टे बाद माँ वापस लौटी। बाद में मझली दीदी उन्हें खिलाने बैठी। भोजन करते समय विभिन्न विषयों पर बातें होने लगी। स्वामीजी और मैं पास ही बैठे थे। मुझे बुखार है, इसलिए मैं खाना नहीं खिला रही हूँ। ढाका से आये एक पत्र के सम्बन्ध में बात चल रही थी, उसमें लिखा था कि सभी माँ के कथानुसार चलने को राजी हैं, और किसी की बात सुनना प्रसन्द नहीं करते। यही वजह है कि काम-काज में अड़चनें पैदा हो रही हैं। माँ को इस बारे में बहुत-सी बातें बतायी जा चुकी हैं।

कुछ देर बाद उनसे पूछा गया कि इस बारे में तुम्हारी क्या राय है? माँ जैसे कहीं से वापस आयी हों, ऐसे बोली–"किस बात का क्या कहूँ?"

स्वामीजी ने कहा–"वाह, अब तक हम जो कुछ सुनाते रहे।"

माँ ने कहा–"सचमुच दिन-ब-दिन न जाने कैसा होता जा रहा है। लेकिन कैसा होता है, जानते हो? जैसे किसी भी एक जगह कुछ (मान लो पत्थर का टुकड़ा) लगने से एक आवाज हुई। आवाज होने के साथ-साथ देखो, पत्थर का टुकड़ा अपने स्थान पर ही पड़ा है। इसी तरह और क्या? शरीर है, इसलिए इतना हो रहा है। कभी-कभी शायद कितनी बातें कहती आ रही हूँ।" माँ हँस पड़ी।

मैंने कहा–"इधर तुम्हारी यह हालत है और उधर सभी माँ के मुँह से आज्ञा सुनना चाहते हैं, दूसरों की बात क्यों सुनेंगे? इतने आश्रमों का निर्माण हो रहा है। इनमें न जाने कितने काम होंगे। इस तरह कैसे क्या होगा? एक

शृंखला की जरूरत तो है ही।''

माँ ने कहा–''मेरी तो एक बात है। तुम सब आपस में मिलकर जिससे तुम्हारा आध्यात्मिक कल्याण हो, वही करो। और सुनो, जो कुछ होना है, वह होता जाएगा।''–इतना कहने के बाद वे हँसने लगी।

अब तक माँ तरु कुटीर में जहाँ उनके लिये सोने का प्रबन्ध किया गया है, बैठी थी। अचानक उठकर बाहर चली गयी और इधर-उधर घूमती हुई यज्ञ-मन्दिर में गयी। ठीक इसी समय निवारण दादा ने लक्ष आहुति समाप्त की।

ठीक समय पर माँ को वहाँ उपस्थित होते देख सभी आनन्दित हो उठे। जमीन पर लोटते हुए माँ को प्रणाम करने लगे। निवारण दादा बड़े अच्छे आदमी हैं। उनमें निर्भर रहने का भाव पर्याप्त मात्रा में है। माँ आयें, यह प्रार्थना उनमें नहीं है। जरूरत पड़ने पर माँ स्वयं ही आ जाएँगी। बस, यही भावना उनमें है।

माँ ने कहा–''लक्ष आहुति संपूर्ण हो गयी, आरती-सारती क्यों नहीं की? जरा आरती कर। हम लोग देखें।''

तुरन्त निवारण बाबू आरती का प्रबन्ध करने लगे। माँ यज्ञ-मन्दिर में बैठी हैं। पास ही निवारण दादा, विराज दीदी, स्वामीजी (शंकरानन्द), शान्तिप्रिया, अभय और मैं बैठी हूँ। माँ चारों तरफ निहारती हुई बोली–''आग की वजह से चारों तरफ की दीवारें, छत, यहाँ तक कि सभी बर्तन भी धुआँ के रंग के हो गये हैं। परन्तु ऐसा ही होता है। आग के रहने पर रंग बदल जाता है।''

इसके बाद माँ विराज दीदी की ओर देखती हुई बोली–'तुम इन बर्तनों को माँजती क्यों नहीं? पूजा के बर्तन चमचम चमकना चाहिए तभी न पूजा करते समय मन साफ रहता है। (शरीर दिखाती हुई) इस बर्तन को भी तुम लोग गन्दा रखती हो? बाहरी बर्तन भी वैसा ही है।''

विराज दीदी ने एकाएक पूछा–''बाहरी बर्तनों की सफाई तो कर सकती हूँ, परन्तु भीतर की सफाई कैसे करूँगी?''

माँ ने कहा–''शरीर भी पूजा का बर्तन है। यह बात तुम सब हमेशा याद रखना कि यह पूजा का बर्तन है और इसी के द्वारा पूजा करने का

प्रयत्न करते रहना। तभी देखोगी कि भीतर की भी सफाई होती जा रही है।''

इस प्रकार की बातचीत के पश्चात् माँ सोने वाले कमरे में जाकर सो गयी। विराज दीदी एवं अन्यान्य बहुत से लोग माँ के पैरों में अबीर लगाते रहे। माँ सभी के भाल पर टीका लगाती रही और कहती रही–''नारायण के भाल पर लगा रही हूँ।''

इसी तरह आनन्द करती हुई माँ सो गयी।

अपराह्न के समय मिरजापुर से काफी लोग आये। बातचीत चल रही है। बात-बात में एक सज्जन से माँ ने पूछा–''क्यों पिताजी, घर-गृहस्थी में अच्छा है या त्याग के मार्ग में जाना अच्छा है?''

सज्जन बोले–''मैं ठहरा गृहस्थ, इसलिए हम लोगों के लिये गृहस्थाश्रम ठीक है। लेकिन इसमें बहुत दुःख है, यह सच है।''

माँ ने कहा–''तब त्याग के मार्ग पर क्यों नहीं चलते?''

सज्जन ने कहा–''यही तो मोह है। मोह जाने नहीं देता। हम जानते हैं, लेकिन समर्थ नहीं हैं।''

एक ने पूछा–''माँ हमारा क्या कर्त्तव्य है?''

माँ बोली–''आप लोग खुदाई करते रहें, पानी को जब आना होगा, आ जाएगा। देखते नहीं कि नहरों के द्वारा गंगाजल कितनी जगह पहुँचकर शान्ति दे रहा है। मतलब लोग पानी पी रहे हैं, अनाज पैदा कर रहे हैं जिसे खाकर लोग जी रहे हैं। अमृत की तलाश में रहो।''

एक और सज्जन ने प्रश्न किया–''हमें रास्ता नहीं मालूम है। किस मार्ग पर हमें चलना चाहिये।''

माँ ने कहा–''अगर तुम लोग दरवाजा बन्द किये रहोगे तो रास्ता कैसे देख पाओगे? किसी भी सहायता से पहले दरवाजा खोलकर बाहर तो निकलो, फिर रास्ता अपने आप दिखाई देगा। उसी रास्ते से आगे बढ़ते जाओ फिर देखोगे कि यात्री लोग तुमसे पूछेंगे कि कहाँ जाओगे? यह रास्ता ठीक नहीं है, उस रास्ते में जाओ; इसी तरह होता है। तुम सिर्फ अपने लक्ष्य पथ पर बढ़ते रहो तब देखोगे कि कोई-न-कोई आकर तुम्हें रास्ता दिखा देगा। तुम लोग सिर्फ जाने का प्रयत्न करो। तुममें जितनी शक्ति है, करते जाओ, सहायता अवश्य प्राप्त होगी।''

शाम होने के पहले माँ को लेकर सभी लोग बाहर टहलने के लिये निकले। माँ कहने लगी–''देखो यह संसार कैसा है, जानते हो? जैसे काँटों के भीतर घुस गये हो। चारों तरफ से काँटे गड़ रहे हैं। एक ओर उसे छुड़ा रहे हो तो दूसरी ओर फँसते जा रहे हो। इसी तरह तुम अपना प्रयत्न कर रहे हो कि सहसा एक आदमी आता है और तुम्हारी सहायता करता है। इस प्रकार काँटों से बाहर निकाल देता है। इसी तरह होता है। तुम स्वयं प्रयत्न करते रहो, देखोगे कि सहायता मिल जाएगी।''

आज रात को हम 12 बजे सोने गये।

गृहस्थी छोड़ देने के प्रश्न पर माँ का विभिन्न लोगों से प्रश्न करना

22 फाल्गुन, सोमवार– आज सवेरे माँ टहलकर वापस आ गयी। कमरे में शंकरानन्द स्वामीजी, उपेन्द्र बाबू आदि लोग बैठे हैं। माँ उपेन्द्र बाबू से कह रही थी–''अच्छा पिताजी, कुछ लोग कहते हैं कि गृहस्थी छोड़ देने से परिवार के भोग में काँटा देने के समान होता है। यही सोचने के कारण मन में दुःख होता है और इसी दुःख के कारण पुनः वापस लौटना पड़ता है फिर इसी भय के कारण बाहर ही नहीं निकलते। इस बारे में तुम्हारा क्या खयाल है?''

उपेन्द्र बाबू ने कहा–''पत्नी को साथ ले जाना उचित है। उसे भी आश्रम में रखकर धर्म भाव में चलाने का प्रयत्न करना चाहिए तभी दोनों में धीरे-धीरे शान्ति आती है।''

शंकरानन्द से पूछने पर उन्होंने बताया–''बिल्कुल छोड़ देना चाहिए। लेकिन जब तक कर्त्तव्य बुद्धि रहे तब तक पूर्ण रूप से नहीं छोड़ना चाहिए। अगर जरा भी उधर दृष्टि चली जाती है तो उस समय कर्त्तव्य ज्ञान उस रूप में नहीं रहता।''

इस तरह की बातचीत होने के बाद माँ बोली–''यही कर्त्तव्य बुद्धि जब तक है तब तक माया भी है। तुम उसकी रक्षा करने वाले होते कौन हो? तुम्हें जो चला रहे हैं, तुम्हारे परिवार वर्ग को भी वही चला लेंगे–यही बुद्धि तो नहीं आती। तुम्हारे अन्दर जो वासना है, वही तुम्हारे निकट कर्त्तव्य रूप में दिखाई देती है।''

इतना कह कर माँ हँस पड़ी।

23 फाल्गुन, मंगलवार– आज दोपहर को मिरजापुर से कई महिलाएँ आयी हैं। श्रीश बाबू की पत्नी आयी हैं, उन्हें बाल–बच्चा नहीं हुआ। माँ बातचीत के सिलसिले में कहने लगी–''मैं सोच रही हूँ कि लड़का–लड़की दोनों ही मैं बन जाऊँ।''

इतना कहकर माँ हँसने लगी। फिर बोली–''इस संतान को अगर पालना पड़ा तो क्या करोगी? मेरा काम थोड़े में नहीं चलने का।''

मैं हँसती हुई बोली–''यहाँ सोलहों आना चाहिए।''

इसी बीच ब्रह्मचारिणी महिलाएँ आ गयी। मैंने कहा–''ये दोनों लड़कियाँ अपने माँ–बाप को छोड़कर आश्रम में आयी हैं।''

माँ तुरन्त हँसती हुई बोली–''माँ–बाप को छोड़कर कहाँ आयी हैं? माँ–बाप को पाने के लिये आयी हैं।''

यहाँ के रहने वाले एक वकील की पत्नी माँ से कहने लगी–''माँ, मन स्थिर क्यों नहीं होता? जब भगवान् का नाम लेने बैठती हूँ तब दुनिया भर की चिन्ताएँ सताने लगती हैं।''

कच्चा खाने के बदले पकाकर खाना चाहिए

माँ हँसकर बोली–''अगर सामने आईना रखकर मुँह इधर–उधर घुमाती रहो तो कैसे कुछ देख सकोगी? इसके विपरीत अगर आईने को सामने रखकर अपनी शक्ल को उसके सामने स्थिर रूप में रखो तो मुँह, आँख, नाक के भीतर का तथा अन्य सभी स्थानों का संपूर्ण चित्र देख सकोगी। आईने में सब कुछ झलक उठता है। और यह जो कहती हो कि शान्ति नहीं पाती? शान्ति पाओगी कैसे? कच्चा खाती हो, इसीलिए बीमार हो जाती हो। अगर उसे अच्छी तरह पकाकर खाओ तो तृप्ति अनुभव करोगी। पकाने के लिये पहले तरकारी काटने बैठी, पर इससे उबली नहीं, लेकिन छोटे–छोटे टुकड़े जरूर हो जाते हैं। जब तक अग्नि पर उसे नहीं चढ़ाओगी तब तक नहीं पकेगी। अगर उसमें पानी, मसाला छोड़कर, अग्नि पर रखकर ढाँक दो तो पक जाएगी। इसके बाद उबाली हुई वस्तु को उतारकर खाओ तब देखोगी तृप्ति मिल रही है। आग पर रखकर चल देने से काम नहीं बनेगा। बार–बार देखना पड़ेगा कि आग ठीक से जल रही है कि नहीं। अगर नहीं जल रही है तो लकड़ी दो!'' इतना कहकर माँ मधुर ढंग से हँसने लगी।

श्रीश बाबू की पत्नी को बाल-बच्चे नहीं हुए, इसीलिए जेठ के बच्चे उनके पास रहते हैं। एक बालक और एक बालिका आयी है। माँ इनके साथ आनन्द कर रही हैं। इन्हें मित्र कहकर बुला रही हैं। मित्र को क्या-क्या करना चाहिए। अर्थात् पाँच काम करने चाहिएँ। जैसे 1. सवेरे उठकर भगवान् को बुलाकर कहना-हे भगवान्, मैं अच्छा लड़का या अच्छी लड़की बनूँ, 2. सदा सत्य बोलना चाहिए, 3. बड़ों का आदेश मानना चाहिए, 4. मन लगाकर पढ़ना-लिखना चाहिए, 5. इसके बाद थोड़ी-सी शैतानी कर सकते हो।''-यही सब कहती हुई प्रसन्न हो रही हैं।

साधन-भजन के द्वारा वासना के बीजों को नष्ट करना चाहिए

इसी बीच दूसरे लोगों से उपदेशपूर्ण बातें भी करती जा रही हैं। बोली-''जैसे फल के भीतर बीज रहता है, उसी प्रकार वासना और कामना के भी बीज होते हैं। बीज युक्त फलों को काफी प्रयत्न से उबालने पर ही उसके भीतर का बीजत्व नष्ट होता है, ठीक इसी प्रकार साधन-भजन के द्वारा वासना के बीजों को नष्ट कर देना चाहिए।''

कुछ देर चुप रहने के बाद माँ बोली-''गठरी खोल, बहुत दूर जाना पड़ेगा। यह तो सब धर्मशाला में है, अपना घर ढूँढ़ो। देह से प्राण चले जाने पर शरीर पड़ा रहेगा, तब कौन किसका है? 'सब झूठ, झूठ तो फूट ही जाता है।''

24 फाल्गुन, बुधवार- आज दोपहर को बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी-''जब इस शरीर के भीतर पूजादि क्रियाएँ, उसी तरह से हो गयी थी, इसके बाद जब वे क्रियाएँ बन्द हो गयी तब भीतर ऐसा यंत्र चलता रहा जैसे अनवरत घड़ी के काँटे की तरह ठक-ठक-ठक सी आवाजें होती थी। अगर कोई सामने बैठकर ध्यान देता तो सुन सकता था, ऐसी आवाजें होती थी। भीतर की घंटी (छोटी जीभ) मानो यंत्र के चलने के कारण लगातार हिलती रहती थी। इसी स्थान पर शब्द होता था।''

आज भी काफी लोग आये हुए हैं। इनसे तरह-तरह की बातें होती रही।

25 फाल्गुन, गुरुवार- प्रतिदिन माँ सुबह-शाम पहाड़ पर टहलने जाती हैं। मैंने कहा था कि जरा पैदल चलने से शरीर ठीक रहेगा। दो-चार दिन से बराबर टहलती हैं। कितने दिनों तक यह क्रम रहेगा, कोई पता नहीं है।

रात के वक्त माँ और मैं नये टीन वाले कमरे में थी। रात के 12 बज चुके हैं। अचानक ऐसा लगा जैसे माँ ''खुकुनी-खुकुनी'' कहकर बुला रही हैं। मैं चौंककर जाग उठी। माँ अस्पष्ट स्वर में बोली-''खिड़कियाँ बन्द कर दे।''

स्वयं ही मार रही हूँ और स्वयं ही चोट महसूस कर रही हूँ

खिड़कियाँ बन्द कर दी। कुछ देर के बाद गरमी मालूम होने पर मैं हवा करने लगी। माँ आँखें बन्द किये अस्पष्ट स्वर में कहने लगी-''क्या देख रही हूँ जानती है, जैसे स्वयं ही मार रही हूँ और स्वयं ही चोट महसूस कर रही हूँ।'' इतना कहकर माँ चुप हो गयी।

26 फाल्गुन, शुक्रवार- आज भी माँ सुबह टहलकर वापस आ गयी। इसके बाद बातचीत चलने लगी। दोपहर को 11 बजे भोग पर उन्हें बैठा रही थी; ठीक इसी समय अचानक ऊपर छत से लकड़ी खुलकर शंकरानन्द के सिर को चोट पहुँचाती हुई हाथ पर गिर पड़ी। वे माँ की थाली के पास बैठे थे। लकड़ी मोटी और वजनी थी, इसलिए सर और हाथ से खून बहने लगा। सभी लोग जल्दी से पानी देने लगे।

माँ कुछ देर बाद मृदु ढंग से मुस्कराती हुई बोली-''खुकुनी, कल रात को मैंने क्या कहा था?''

पहले मुझे स्मरण नहीं आया कि माँ ने क्या कहा था। बाद में याद आया कि माँ ने कहा था-''स्वयं ही मार रही हूँ और इस शरीर पर चोट महसूस कर रही हूँ।''

माँ ने कहा-''पिताजी (स्वामीजी) की यह मूर्ति दिखाई दी थी। खयाल आने पर क्या होता है, जानती है? अक्सर बहुत ज्यादा हो जाता है, लेकिन बहुत कम में हो जाता है।''

ठीक यही बात हुई। स्वामीजी की चोट गहरी नहीं थी। दर्द भी अधिक नहीं हुआ।

आज बातचीत के सिलसिले में ''श्री श्री आनन्दमयी'' पुस्तक के दूसरे भाग में छपे एक फोटो के बारे में चर्चा चल गई। उस फोटो के नीचे छपी है-''माँ प्रश्न के उत्तर में कह रही हैं कि देखो, बैठे-बैठे कोई देह त्याग करता है?''

इस बात पर माँ कहने लगी–''इस शरीर का तुम लोगों की इच्छा की भाँति कुछ नहीं होता, बल्कि अपने आप हो जाता है।''

आज मिरजापुर से एक जज साहब और अन्य दो–चार लोग आये हुए हैं। सभी को माँ की बातों से आनन्द मिला है और माँ मधुर भाव से न जाने कितना अमूल्य उपदेश वितरण कर रही हैं।

27 फाल्गुन, शनिवार– आज काफी लोग आये हैं, बातचीत चल रही है। एक सज्जन अपने बीमार बच्चे को लेकर पहाड़ पर आये हैं। इधर कई दिनों से बराबर माँ के पास आते हैं। एक दिन माँ टहलती हुई इनके बँगले की ओर चली गयी थी। बाहर ही बाहर चक्कर काटकर चली आयी थी। आज वे आकर अनुरोध कर रहे हैं कि माँ एक बार चलकर उनके बच्चों को अपना दर्शन दे आयें।

रोग की मूर्ति उन्हीं की मूर्ति है

चलते वक्त माँ मुझसे कहने लगी–''कितने लोग न जाने कितने स्थानों पर, कितने मन्दिरों में मुझे ले जाते हैं। आज भी उसी प्रकार मुझे आप रोग की एक मूर्ति दिखाने ले जा रहे हैं। यह भी तो उन्हीं की एक मूर्ति है।''

शाम के वक्त गोविन्द पाण्डे और उनके साथी काशी से यहाँ आ पहुँचे। इनकी जबानी हिन्दू–मुसलमानों के दंगे का विवरण सुन रही हूँ। स्थिति काफी नाजुक है।

माँ बिछौने पर बैठी हुई हैं। हम लोग उनके पास बैठे हैं। माँ स्वयं रचना कर गीत सुनाने लगी–

'गोकुल बिहारी, दयामय हरि
वृन्दावन वनचारी।'

अत्यन्त मधुर स्वर में सिर्फ इन्हीं पंक्तियों को वे बार–बार घुमा–फिराकर गाने लगी। मैं हँसती हुई लोगों को बताने लगी कि यह गीत इन्हीं के द्वारा रचित है। माँ हँस पड़ी और उपस्थित सभी लोग साथ देने लगे।

मैं हँसकर बोली–''तुममें वैष्णव भाव अत्यन्त प्रबल है।''

माँ ने हँसकर कहा–''तुम लोग ऐसा क्यों कहती हो? वैष्णव–शाक्त है क्या? स्वयं ही स्वयं से खेलना। आत्माराम की सब लीला।'' आगे कहने

लगी-''सभी है आराम, कुछ नहीं बे आराम।'' यह कहकर वे हँस पड़ी।

कोई सज्जन बोल उठे-''छन्द-सन्द की जरूरत नहीं। जो जबान पर आ रहा है, तुम मिलाते जा रहे हो।''

तुरन्त ही माँ बोली-''छन्द से बन्द क्यों करना चाहते हो? छन्द-बन्द की मुझे जरूरत ही क्या है? तुम लोग बंध में हो, बंध करो। बंध से गंध मत करना। जिससे सुगंध हो, जिस बंध से बन्धन बन्द हो, उसी बन्धन को ले लो। अपने को बाँधो। उसे पाने का फन्दा, हो जाएगा चरणों का बन्दा।''

''एक सज्जन ने कहा था कि यह भी एक प्रकार की कविता है जैसे- ''अजी लक्षी (लक्ष्मी), पकड़ो देखूँ पक्षी'', इस शरीर की कविताएँ इसी ढंग की होती हैं। तुम लोगों के लिये हँसने का एक मसाला है, और क्या?''

माँ की इस बात पर सभी लोग हँस पड़े।

माँ भी हँसने लगी। लोग आते रहते हैं, प्रश्न उठने पर इसी प्रकार जवाब देती रहती हैं, और कभी-कभी इसी तरह परिहास करती हैं।

28 **फाल्गुन, रविवार-** आज सवेरे बात-बात में अभय ने प्रश्न किया- ''क्यों माँ, भोलानाथजी जब कभी नाराज हो जाते थे तब तुम्हारे अन्तर में चोट नहीं पहुँचती थी?''

माँ ने हँसकर जवाब दिया-''नहीं।''

अभय ने कहा-''अगर कोई एक मुक्का कसकर तुम्हें मारे तो क्या चोट नहीं लगेगी?''

माँ ने कहा-''कैसे समझाऊँ कि कुछ भी नहीं लगती। क्या कहूँ जिससे तू समझ ले।''

मैंने कहा-''इधर देखती हूँ कि आप कहती हैं-मच्छर काट रहे हैं, इसी तरह की बातें कहती हैं। यह सब तो शरीर पर होता है।''

माँ ने कहा-''शरीर है, इसलिए देख पाती है कि खाती हूँ, पेशाब-टट्टी होते हैं, इसी तरह और क्या?''

उस समय हम दोनों में बातचीत होने लगी-लगती है और नहीं भी लगती। यह दोनों ही युगपत् चलता है।

माँ ने कहा–''सब कुछ इसी तरह देखना।''

माँ को सर्दी महसूस होती है कि नहीं, अब यह प्रश्न चला तो वे बोली–''जब तुम सब मुझे कुर्ता, धोती, जूता पहनाते हो तब पहनती हूँ। इधर जिन दिनों श्रीपुर और नरुन्दी में भोलानाथजी के बड़े भाई के पास रहती थी तब उन लोगों ने कह रखा था कि स्नान करने के बाद ही भोजन बनाना। माघ के महीने में बासी पानी से नहाती थी। नहाना पड़ेगा तो नहाती थी। ठण्डा–गरम का कोई प्रश्न नहीं। बदन पर कुर्ता कभी पहनती नहीं थी। इसी तरह दिन बीतते गये।''

बात–बात में उपेन्द्र बाबू की चर्चा हुई। वे कभी माँ के पैर को माथे से लगाकर सोते थे। उस समय वे यह अनुभव करते थे कि जैसे कोई ठण्डी वस्तु सर से उतरकर सारे शरीर को ठण्डा और शान्त करती जा रही है। दो–तीन दिनों तक झनझनाहट–सी रहती। उपेन बाबू आजकल यहीं है। जब अभय ने उनसे यही प्रश्न किया तो उन्होंने वही जवाब दिया। अक्सर इस प्रकार का भाव उनमें होता है।

आज महारतन अपने बाल–बच्चों को लेकर इलाहाबाद से आ गया। दोपहर को माँ के कमरे में काफी देर तक कीर्तन होता रहा और बातचीत चलती रही। विन्ध्याचल में रहने वाली कई महिलाएँ आयी हैं।

उन्हें देखते ही अचानक माँ कह उठी–''तुम लोगों को कहीं मैंने देखा है।''

उन लोगों ने कहा–''नहीं माँ, हम लोग इसके पहले यहाँ कभी नहीं आयी थी। हम आपको पहले–पहल देख रही हैं।''

माँ अवाक् होकर बोली–''बात क्या है जानती हो? तुम लोग भूल चुकी हो। इस तरह भूलना नहीं चाहिए। भूल जाने पर तकलीफ होती है। कैसी होती है नहीं जानती? जैसे कोई सामान घर में हैं, पर तुम्हारे दिमाग में नहीं है। काम के वक्त नहीं मिलता। खोजते–खोजते परेशान हो जाती हो।''

अब जैसे वे लोग समझ गयी हों, ऐसे बोली–''हाँ माँ, हम अन्धे हैं, हमें कष्ट तो होगा ही।''

माँ बोली–''याद करो, तुम्हारे साथ क्या कभी मुलाकात नहीं हुई थी? तुम्हारी लड़की तुम्हारी ही गोद में हर वक्त मौजूद है।''

अब माँ इन्हीं लोगों की भाषा में प्रश्न पूछने लगी–"कहाँ मकान है तुम लोगों का? कौन–कौन है घर में?"

पहले वे समझ नहीं सकी। माँ बोली–"अमुक जगह है, घर पर आत्मीय–स्वजन हैं।"

बाद में वे समझ गयी तो फिर बताने लगी। माँ हँसती हुई बोली–"अगर मैं ही हूँ तो मुझे छोड़कर तुम लोग क्यों चली जा रही हो? याद रखो, बहुत दूर चले जाना पड़ेगा।" थोड़ा ठहरकर बोली–"तुम लोग कुछ करो। रास्ते पर चलो (अर्थात् उनका नाम लो)। इसके बाद मुझे हिस्सा देना। अगर मुझे भोजन नहीं दोगी तो यह शरीर कैसे बना रहेगा? रविवार को सरकार छुट्टी मनाती है। तुम लोग भी एक दिन के लिये गृहस्थी से छुट्टी क्यों नहीं ले लेती? छुट्टी में ही शान्ति है।"– इस तरह की बातों से सभी का मन बहला रही थी।

रामराज माँझी पर माँ की कृपा

नवतरु दादा का एक पत्र आया है जिसमें उन्होंने लिखा है–"रामराज (माँ नवद्वीप में जिस साधारण नाव पर रहती थी, उस नाव का माँझी) तुम्हारा दान पाकर बहुत प्रसन्न है। वह इसके लिये अपने को बड़ा भाग्यवान् समझ रहा है। उसने बताया है कि वह तुम्हें प्राय: स्मरण किया करता है। तुम्हारे चले आने के बाद से कई बार तुम्हें स्वप्न में देख चुका है। उसका खयाल था कि तुम एक साधारण महिला हो, बाद में लक्ष्य करने पर उसे ज्ञात हुआ कि यह साधारण नहीं है, कोई एक देवी है। विभिन्न समय पर वह तुममें विभिन्न भाव देख चुका है। माँ करुणामयी देवी हैं। पुलिस आकर पता लगा चुकी है। माँझी ने जो कुछ देखा था, वही सब बताया है। यह सब सुनकर पुलिस ने रामराज को बताया कि बड़े यत्न से उन्हें रखना।"

माँ पत्र का सारांश सुनकर हँस पड़ी और बोली–"मैं देखती थी कि माँझी अक्सर मुझे गौर से देखा करता था। ज्यों ही मैं उसकी ओर देखती थी त्यों ही वह अपना मुँह दूसरी ओर फेर लेता था।"

शाम के समय कीर्तन हुआ।

29 फाल्गुन, सोमवार– आज बातचीत में यह चर्चा चल गई कि जिसकी जो इच्छा होती है, उसे हम माँ से कहने का साहस कर पाते हैं।

कभी-कभी तो ऐसी बातें कही जाती हैं जिसे आत्मीय-स्वजन तक बर्दाश्त नहीं कर सकते अथवा उनसे नि:संकोच भाव से नहीं कहा जा सकता। कोई अपनी नाराजगी, कोई अपना अभिमान, जो कुछ मुँह पर बात आ गयी, माँ से बिना किसी संकोच के कह देता है। माँ इन बातों को नीरव रूप में इस तरह सह्य कर लेती हैं कि स्वयं को चोट पहुँचती है। हम अनुतप्त होते हैं। द्विधा-शून्य होकर माँ को जो मन में आया लोग गुस्से में कह जाते हैं। इस बात पर माँ अपने शरीर को दिखाती हुई बोली-"अगर इस शरीर में किसी प्रकार का संकोच रहता तो तुम लोगों को भी संकोच होता। तुम सब जीव-ज्ञान में कहते हो और स्वयं ही दु:ख पाते हो। छोड़कर कहीं जा नहीं पाते। तुम लोगों की आड़ टूटती जा रही है। तुम लोग जीव-बुद्धि में जरूर कह तो जाते हो, फिर सत्य तुम्हारे अन्तर में ही स्पष्ट हो उठता है। उस वक्त तुम लोग समझ पाते हो।"

इतना कहकर माँ हँसने लगी। वास्तव में किसी साधु के जीवन में ऐसा हुआ है, कभी सुनने में नहीं आया।

बातचीत के सिलसिले में माँ अक्सर कहा करती हैं-"अच्छा, तुम लोग इस शरीर में आखिर ऐसा कौनसा असाधारणत्व देख पाते हो? तुम लोगों की दृष्टि में बचपन में जैसा था, अब भी वैसा है। यही ठीक है। अक्सर हम साधु-महात्माओं को देखते हैं कि प्रथम स्थिति से परिवर्तित होकर वे एक धारा में आ जाते हैं और उसी धारा पर चलते रहते हैं। लेकिन यहाँ वह भी नहीं।"

वास्तव में यहाँ के चलने-फिरने या बातें करने से विशेष प्रकार का कोई असाधारणत्व माँ में नहीं है। बच्चों की तरह खाती-पीती हैं, टहलती हैं। बेकार की बात चलने पर भी उसमें दिलचस्पी लेती हैं और कभी-कभी उपदेश देती हैं। कभी-कभी इस तरह की चर्चा माँ के निकट होती रहती है या इन बातों पर हँसी-आनन्द होता है कि अगर सहसा कोई अपरिचित व्यक्ति वहाँ आ जाय तो वह चकित रह जाएगा। सोचेगा कि माँ इन बेकार की बातों में रस लेती है? इससे इन्हें आनन्द मिलता है?

इस बात पर एक दिन हँसती हुई माँ बोली- "घर में गन्दगी है, पर इस तरह झाड़ू लगायी गयी कि न जाने सारी गन्दगी कहाँ गायब हो गयी। यह सब खेल भी वैसे ही हैं। क्षण भर के लिये सबको साथ लेकर खेल हो

रहा है। बाहर इसी तरह प्रकाश हो रहा है, फिर सहसा सब साफ–सुथरा होकर न जाने कहाँ चला जाता है।''

आज शाम को माँ बरामदे में बैठी हुई थी। शंकरानन्द स्वामी कह रहे थे–''माँ, एक दिन आप गीता सुना रही थी। आज फिर सुनाइये।''

चाँदनी रात थी। पहाड़ी दृश्य बड़ा ही मनोरम था। माँ छोटी कोठरी के सामने बरामदे में बैठी हुई हैं। पास ही हम लोग बैठे हैं। कुछ देर बाद माँ के मुँह से सुन्दर स्वर में धीरे–धीरे स्तोत्र की तरह निकलने लगे। माँ झूमती हुई उसी स्वर में कहने लगी। एक घण्टे तक यह कार्यक्रम चलता रहा। इसके बाद अन्य चर्चा चल पड़ी।

एक बार इसी विन्ध्याचल में छत के ऊपर गीता के सम्बन्ध में चर्चा चली थी। बात–बात में माँ ने कहा–''गीता सुनोगे?''

इतना कहने के बाद माँ एक सुर में कुछ देर तक गीता सुनाती रही। वह भाषा समझ में न आने पर भी बड़ी मीठी मालूम हुई। उस दिन भी यह बात शाम को हुई थी। आज उस तरह नहीं हुई, भिन्न ढंग से हुई। रात 11 बजे माँ सोने चली गयी।

30 फाल्गुन, सोमवार– आज सुबह शंकरानन्द स्वामी, अभय, मैं तथा और भी कई व्यक्ति माँ के कमरे में बैठे हुए हैं। अनेक प्रकार की बातें हो रही हैं। बात–बात में माँ के शरीर में पूजा आदि कैसे हो जाती थी, इस विषय की चर्चा चल पड़ी।

क्रियाओं का प्रकाश अपने आप इस शरीर से हो जाता था

माँ कह रही हैं–''उसी भाव में क्रियादि होती रही, शरीर के भीतर ही सब प्रकट होते रहे। शायद इस प्रकार बैठी हूँ''–कहने के बाद मुद्रा दिखाने लगी। आसन उस तरह का है जैसे तस्वीरों में देवियाँ बैठी रहती हैं। माँ कहने लगी–''इस तरह बैठी हूँ। ऐसी स्थिति में कभी–कभी लघुशंका मालूम होने पर ही उठी हूँ। इस तरह उस समय पैर उठते थे (यह कहने के पश्चात् चलकर पैर उठाने का ढंग दिखाने लगी) अगर काली–मूर्ति पैदल चले तो शायद इसी ढंग से लगभग वे चलेंगी या यों कहो कि मैं इसे ठीक से समझा नहीं पा रही हूँ, देवी या देव भाव की तरह समझ लो। साधारण ढंग से पैर रखना नहीं।''

माँ आगे कहने लगी–''समस्त शरीर में इसी तरह के भाव में हो गया है (एक प्रकार से अंगन्यास की तरह), न जाने कितने तरह से हो गया है। दूसरी ओर समस्त शरीर में, यहाँ तक कि मल द्वार, मूत्र द्वार में भी पूजा की तरह हो जाते रहे। यह शरीर भी अन्य प्रकार का बन गया है। यह जो तुम लोग कहते हो न्यासादि, न्यासादि के बाद प्राण प्रतिष्ठा की भाँति होकर (अभी जो न्यास और प्राण प्रतिष्ठा के बारे में बताया, यह भी हमारी भाषा है। माँ सिर्फ अंगुलियाँ दिखा रही हैं। उसे देखने पर न्यास और प्राण प्रतिष्ठा समझ में आया।) जप आरम्भ हुआ। इसके बाद क्या हुआ, जानते हो? अपने शरीर के भीतर ही पूजा आदि होने के बाद पुन: इस तरह अपने शरीर के भीतर से ही देवता को बाहर निकालकर जैसे दोनों हाथों से बाहर बैठाते हुए पूजा की और फिर धीरे-धीरे उठाकर इस शरीर के भीतर मिला लिया। शरीर के प्रत्येक स्थान की पूजा करने के बाद बाहर पूजा हुई।''

हम लोग माँ की बातों में एक विशेष भाव पाते हैं। साधक गण पहले द्वैत से अद्वैत की ओर जाते हैं और माँ का क्या हुआ? अद्वैत में अवस्थित हैं, उनके अन्तर्गत द्वैत भाव लाकर बाह्य-पूजा की, दूसरी ओर फिर वही अद्वैत स्थिति में ही अवस्थित। अद्वैत भाव के अन्तर्गत मानो स्वयं ही द्वैत भाव उत्पन्न कर, अपने से द्वैत की सृष्टि करती हुई पूजा या लीला आदि की और फिर अद्वैत में ही अवस्थित हो गयी। हमारे साथ व्यवहार भी इसी ढंग से करती हैं, जरा गौर करने पर यह स्पष्ट हो जाता है।

त्राटक का लक्ष्य है बिन्दु को अन्तरबिन्दु में पाना

फिर त्राटक के सम्बन्ध में कहने लगी–''अभी देखते हो बहुत दूरी पर दृष्टि स्थिर हो गयी। क्रमश: पास आते-आते अपने आप धीरे-धीरे दृष्टि ऊपर की ओर उठती हुई; नाभि, कण्ठ, नासिका से होती हुई भौहों के मध्य जाकर लीन हो गयी। क्योंकि तृतीय नेत्र जो है, वही बिन्दु, उसी में, और क्या? फिर किसी समय आँखों की दृष्टि दोनों आँखों में। अर्थात् वही नेत्र बिन्दु, और क्या? उसी बिन्दु में सिन्धु। त्राटक का जो लक्ष्य बिन्दु है–उसे अन्तरबिन्दु में पाना। फिर गर्दन मुड़कर पीछे की ओर गई है, पैर भी उलटकर पीछे की ओर है, उसी पैर के अँगूठे के सिरे पर दृष्टि स्थिर हुई। ऐसा भी हो सकता है कि हाथ के अँगूठे या फिर कन्धों पर दृष्टि स्थिर हो गयी।''

यह सभी बातें वे साथ-साथ करके दिखा दे रही थी। फिर बोली-"यह सब देखकर साधारण व्यक्ति भूत-प्रेत की दृष्टि लग गयी है, क्यों नहीं कहेंगे।" इतना कहने के पश्चात् माँ हँस पड़ी।

1 चैत्र, बुधवार– आज भी बहुत से लोग आये हैं। मिरजापुर से अनेक नर-नारी आते रहते हैं, तरह-तरह की बातें होती हैं। लेकिन उन सभी बातों को सुन नहीं पाती, इसलिए उन्हें लिख नहीं पाती।

2 चैत्र, गुरुवार– आज शाम को काफी लोग आये हैं। माँ से गाने के लिये अनुरोध करने पर वे दो-एक भजन गाती रही, बहुत देर तक बातचीत करती रही।

3 चैत्र, शुक्रवार– माँ की बातें काफी लटपटा जा रही हैं। तेरा की जगह 'तेना' कह देती हैं। इसी प्रकार और भी अनेक शब्द गड़बड़ा जा रहे हैं। माँ स्वयं इस पर हँसते-हँसते बेहाल हुई जा रही हैं। एक दिन स्वयं ही बोली-"यह सब क्या है? यह कैसी भाषा बाहर हो रही है?" फिर अचानक बोली-"सब शरीर जैसे शिथिल हुआ जा रहा है, ठीक उसी प्रकार बातें भी शिथिल हुई जा रही हैं।"

4 चैत्र, शनिवार – आज माँ कुछ चंचल दिखाई दे रही हैं। यह बात ठीक है कि यह जो इनका बाहर से दिखाई देने वाला चंचल भाव है, उसके भीतर स्थिर भाव रहने के कारण ही यह चंचलता अच्छी लगती है। हम यह अनुमान कर रहे थे कि माँ शायद अब यहाँ अधिक दिनों तक नहीं ठहरेंगी। दोपहर भर उपद्रव करती रहती हैं। सभी उस महानन्द में विभोर होते जा रहे हैं। धोबिन कपड़े लेने के लिये आयी है। उसके पैरों में मोटे-मोटे कड़े हैं जो काफी वजनी हैं। माँ उससे माँगकर स्वयं पहन लेती हैं और हँस-हँसकर बेहाल हो रही हैं। धोबिन से माँ बोली-"तुम्हारे कड़े अब मेरे हो गये। अब तुम जा सकती हो।"

बच्चों की तरह कड़ों को पहनकर वे किलकारी मार रही हैं। सभी लोग इस आनन्द-रस में डूबे झूम रहे हैं।

शाम के वक्त मैंने माँ से कहा-"काफी चिट्ठियाँ आयी हैं, तुम्हें पढ़कर सुनानी हैं।"

माँ ताली पीट-पीटकर गुनगुनाती हुई गा रही हैं। बाद में बोली-"जो मन में आये, कर।"

मैं चिट्ठियों को पढ़कर सुनाने लगी। ढाका के आश्रम में ब्रह्मचारियों और गृहस्थ भक्तों में कुछ झगड़े चल रहे हैं, इसी समस्या की चिट्ठियाँ हैं। इधर माँ ताली बजाती हुई गीत गाती जा रही हैं। मैं इन पत्रों को पढ़कर सुना गयी, लगा जैसे उन्होंने इस पर ध्यान ही नहीं दिया।

शिकायत के स्वर में मैं बोली–"बड़े मजे में हो। सभी यह सोचते होंगे कि मैं माँ को सारा समाचार बता चुकी हूँ और माँ कोई न कोई प्रबन्ध करेंगी। इधर तुम अपने भाव में हो। इतनी बातें कह गयी और तुम ताली बजाती हुई गाती जा रही हो। लगता है जैसे ध्यान से कुछ सुना ही नहीं।"

माँ हँसती हुई बोली–"क्या करूँ, बता? तुम सब तो यह बात अच्छी तरह जानती हो कि माँ कितना इन्तजाम करती है? खाती-पीती रहती हूँ, घूमती हूँ, चलती हूँ। तुम लोगों की इच्छा हो तो खाना-पीना मत देना।"

मैंने कहा–"तुम्हारा भाव तो मैं बराबर से देखती चली आ रही हूँ। इतने आश्रम जब बन गये हैं तब उनके प्रबन्ध के लिये कोई आदमी होना चाहिए। न हो, इसके लिये किसी को तैयार कीजिये जो सारा प्रबन्ध करे, वर्ना काम कैसे चलेगा?"

तुरन्त माँ ने जवाब दिया–"तुम लोगों का आश्रम है, तुम लोग जानो। फिर ठीक कैसे करूँगी? ऐसे आदमी देख तो रहे हैं। अगर ठीक से चलोगी तो अच्छी तरह रहोगी और अगर विपथ अपनाओगी तो ठोकरें खाओगी। आग में हाथ डालने से जल नहीं जाएगा? वे सब देख रहे हैं, ठीक-ठीक ढंग से सब चल रहा है, कौन कहाँ जाएगा? उनकी निगाहों से बचकर कोई कहीं नहीं जा सकता। सब ठीक से चल रहा है और चलता रहेगा।"

माँ ने इस ढंग से बातें की कि हम सब निरुत्तर रह गये।

अपनी शक्ति का सदुपयोग करो

आज पुरस्कार और दैव की चर्चा चल गई। माँ कह रही हैं–"अगर इस स्रोत में एक बार बह चली हो तो देखोगी कि तब तुममें कुछ भी करने की शक्ति नहीं है। स्रोत तुम्हें बहाता ले जाएगा। लेकिन इस स्रोत में बहने के लिये तुममें जितनी शक्ति है, उसका उपयोग करो। जैसे जमीन पर चलकर नदी के किनारे आ सकते हो, इसके बाद जब तक तैर सको, तैरते रहो। इस मार्ग पर चलते हुए, तैरते हुए जब स्रोत तक पहुँच जाओगे तब तुम्हें कुछ करने

की जरूरत नहीं होगी और न करने योग्य शक्ति ही रहेगी। उस वक्त स्रोत का प्रबल वेग बहाता हुआ ले चलेगा। इसलिए कहती हूँ कि जितनी शक्ति तुम्हें प्राप्त हुई है, यह भी उन्हीं की शक्ति है, उसका सदुपयोग करते हुए उस स्रोत तक पहुँचने का प्रयत्न करो।''

5 चैत्र, रविवार– कल शाम के बाद से माँ जरा चुपचाप भाव में है। आज दोपहर को इलाहाबाद से बाँकेबिहारी, शंकर सहाय के अलावा तीन-चार वकील आये हैं। कुछ और लोग भी आ गये हैं। सभी मिलकर माँ के निकट कीर्तन कर रहे हैं। दोपहर को माँ जरा भी विश्राम नहीं कर पायी।

शाम के समय मिरजापुर से श्रद्धानन्द स्वामीजी अपने साथ कई व्यक्तियों को लेकर आये और माँ को कीर्तन सुनाते रहे। आज माँ की तबीयत काफी खराब है। बातचीत अधिक नहीं कर रही हैं। पूछने पर बोली–''शरीर के बारे में कुछ समझ नहीं पा रही हूँ, परन्तु चुप होने का भाव आ रहा है। खाने की भी इच्छा नहीं है।''

मुँह काला हो गया है। रात में भी सोने का भाव न रहने के कारण तबीयत और भी खराब हो गयी। मैं बैठी रही। इसी प्रकार रात बीत गयी।

6 चैत्र, सोमवार– आज सुबह उठते ही माँ बोली–''आज मैं काशी जाऊँगी।''

श्री श्री माँ काशी की ओर

साढ़े ग्यारह बजे वाली गाड़ी से माँ काशी के लिए काशी की ओर रवाना हो गयी। मैं कई दिन बाद वहाँ जाऊँगी, यही तय हुआ।

7 चैत्र, मंगलवार– आज शाम को तार पाकर मैं काशी रवाना हो गयी। रात 11 बजे काशी पहुँच गई।

8 चैत्र, बुधवार– कल सारी रात माँ में सोने का भाव नहीं था। रात ढाई बजे जब मैं सोने गई तब माँ ने मुझे जगाया। इसके बाद इधर-उधर की बातचीत के बाद निम्नलिखित बातें उन्होंने बतायी। मैं उसे तुरन्त लिखने बैठ गयी। वे बातें विन्ध्याचल में भी हुई थी।

माँ की बातें

''स्थूल शरीर में मन की वासना के अनुसार कोई काम करने के लिये

जैसे तुम्हारा शरीर दूसरी जगह चला जाता है, ठीक उसी प्रकार यह देहात्मज्ञान जब क्रमशः शुद्ध होकर अन्तर्मुखी चलता रहता है। इसके बाद शरीर में जब विशुद्ध भाव का स्थायित्व होता है तब वही समय सूक्ष्म शरीर के गतागति एवं क्रिया का समय है।

''जिस प्रकार कोई उबाली हुई वस्तु उड़ेलने पर संपूर्ण सामग्री पर से धुआँ उड़ता दिखाई देता है, उस धुएँ को हवा जहाँ आवश्यकता है, उधर ले जाती है। मुमकिन है कि वह हमारी स्थूल दृष्टि में वस्तु होने के कारण अनदेखी रह जाती है। किन्तु जिनका उस तरह से सूक्ष्म शरीर में आदान-प्रदान चलता है, उन्हें पुनः समयानुसार वही धुआँ जिस प्रकार बाहर निकल सकता है, उसी तरह भीतर प्रवेश करने पर भी अनदेखा रह सकता है। इसकी भी तीन अवस्थाएँ हैं। पहला यह कि स्वयं ही जा रहा है। दूसरा-स्वयं जा जरूर रहा है, उसके अन्तर्गत शुद्ध इच्छा-अनिच्छा सुप्त रहती है न, किन्तु उसकी मात्रा शिथिल है। तीसरा यह कि जिधर प्रयोजन है, उधर ही अपने आप चला जा रहा है, इच्छा-अनिच्छा का प्रकाश यहाँ नहीं है। यहाँ सिर्फ तीन अवस्थाओं के बारे में कहा तो गया है, परन्तु इसके भीतर और भी अनेक हैं।''

आगे कहने लगी-''देखो, लोग कहते हैं कि साधक जब साधना में पूर्ण हो जाता है तब उस पूर्ण का शरीर नहीं रहता। कर्म नहीं रहता, इसलिए शरीर नहीं रहता। यह भी कहा जाता है कि शरीर रह भी सकता है। रह जाने पर कर्म की जरा परतें भी रह जाती हैं, किन्तु यह परतें उसके बन्धन के कारण नहीं बनती। दूसरी ओर परतों का कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि वहाँ सभी संभव है। कहते हैं, जीवन्मुक्त प्रारब्ध भोगता है। फिर प्रारब्ध की कोई बात नहीं, क्योंकि जो ज्ञान की अग्नि में इतना जला सका है, वही अग्नि क्या इतना भी नहीं कर सकती? यह ठीक है कि सब कुछ स्थान-स्थान पर सत्य है। जो जिस दिशा को बताये, वे-वे स्थान ठीक हैं, परन्तु उसके निकट शरीर का रहना या न रहना सब समान हो सकता है।''

आगे ठहरकर कहने लगी-''दूसरी ओर देखो-उनका शरीर चाहे अनदेखा में हो या देखने के अन्तर्गत में हो, जो लोग दर्शन कर पाते हैं, वे एक जागतिक-दर्शन करते हैं, उसी संस्कार के अनुसार दूर से ही दर्शन पा सकते हैं। किन्तु यह सब जो दर्शन आदि हैं, जो लोग दर्शक बनेंगे, उनके प्रत्येक

स्तर की क्रमोन्नति में विशेषत्व रहता है। और होता है, सुन चुके होंगे, चाहे वह काफी दिन पहले हो या कुछ दिन पहले हो, उसमें भी वे दूर से दर्शन पा जाते हैं। एक और होता है-कभी देखा या सुना नहीं, किन्तु दर्शन पाते जाते हैं। यह कैसे है जानती हो? जैसे साधना की अवस्था में उपदेश प्राप्त करता है। फिर मूर्ति को सामने देख रहा है, मूर्ति के साथ बातों का आदान-प्रदान चल रहा है। एक ओर होता है, अपने भीतर ही अभेद भाव में सब कुछ प्राप्त कर रहा है। इन साधकों की एक अवस्था रहती है जिसमें वे सर्वांगीण पाकर पूर्ण में चले गये हैं; उनके बाहर की कोई-कोई मूर्ति किसी-किसी साधक के निकट प्रकट हो जाती है। किन्तु बाहरी से परिचित नहीं रहते। इसका कारण यह है कि जो लोग वैसे हो जाते हैं, उनके बाहर जिस रूप में प्रकाश हो रहा था, उन मूर्त्त भावों को, जब तक हम बाहरी भाव में रहेंगे, तब तक इन दर्शन आदि में स्वाभाविक रूप से साधक गण पाते रहेंगे। और जो मुक्त हो गये हैं, उन्हें आकर दर्शन देना पड़ता है, इस आने-जाने का कोई अर्थ नहीं होता। किन्तु उनके बाहर जो कुछ प्रकाश होता है, वही रूप-गुण या भाव आवश्यकतानुसार प्राप्त कर सकते हैं, इसलिए इस दर्शन से ही साधकों का कल्याण होता है।''

माँ थोड़ा हँसकर आगे कहने लगी-''देखो आज मुझे कुछ माला दी गई हैं। उन मालाओं को उतारकर घर में फेंक दी हैं, बाद में भी उन मालाओं से सुगन्ध पाती रही। दूसरी ओर एक व्यक्ति के बदन में सुगन्ध है, जब वह हमारे निकट से गुजरता है तब उसके जाने के बाद उक्त स्थान में सुगन्ध का आभास मिलता है। तब तक वह व्यक्ति न जाने कितनी दूर आगे बढ़ चुका है। साधकों का शरीर अनदेखा रहने पर भी शिष्य या अन्य कोई साधक प्रयोजनानुसार जिसका जो हो, उसके निकट रूप-गुण या भाव के द्वारा सब कुछ प्रकाश हो सकता है।''

''दूसरी ओर देखो-जो स्वाभाविक रूप से प्रकाश होता है, जैसे तुम लोगों के रूप, गुण और रस इत्यादि का प्रकाश है, ठीक उसी प्रकार जिस स्वभाव से ये सब प्रकाश होते हैं, यह प्रकाश भी स्वभाव है। स्वभावत: जो प्रकाश है, वह तो स्वाभाविक भाव में है ही। और अप्रकाश, जिसका प्रकाश नहीं हो सकता, अव्यक्त है, वह भी स्वाभाविक रूप में है। जैसे साधना करते-करते साधक के निकट, साधना के लक्षण स्पष्ट हो उठते हैं,

ठीक उसी प्रकार स्वभावत: जो स्वाभाविक रूप से प्रकाश हो सकते हैं, वह साधक के निकट वही रूप, गुण, संपूर्ण आकार में, जिसे जिस ढंग की मूर्ति की आवश्यकता है, उसी तरह वे लोग प्राप्त करते हैं। साधना की जैसे अनन्त गति है, उसी प्रकार साधकों की भी ऐसी अवस्था आ सकती है कि उपस्थित, अनजाना, अनदेखा, अनेक साधक, महापुरुष एवं जिनका पूर्ण प्रकाश मूर्त्त आकार में था, उनका भी बाहर का वही मूर्त्त रूप, किसी का भी दर्शन हो सकता है। वह भी तो अनन्त है। स्वयं आने की बात अगर हो तो साधक पूर्ण है, ऐसा नहीं करेंगे, क्योंकि साधक रूप-गुण और भावों में है न। साधक जब अखण्ड सत्त्व स्वरूप में उसे अर्थात् पूर्ण को प्राप्त कर लेंगे तब तो वे वही हो जायेंगे अर्थात् अभेद, फलस्वरूप उन्हें पाना हुआ। वे आते हैं, और नहीं भी आते, सब कुछ कहा जा सकता है। तुम लोग इसे युगपत्-टुगपत् जो चाहे कह सकते हो। इसके बाद जो कुछ है, उसे कैसे कहूँ?''

''इसलिए देखो, उस योगी का दर्शन साधना में पूर्ण होने पर भी तुम सब कर सकते हो। तुम लोगों की जो आवश्यकताएँ हैं, उसे पा सकते हो। उसका कारण यह है कि स्थूल कहो या सूक्ष्म कहो, क्रिया के अन्तर्गत जो कुछ है, वह रूप-गुण भाव के अन्तर्गत स्वगुण में रह गया। क्योंकि यह देखा-देखी में जो है-वही होता है।''

'लीला', 'एकात्मत्व', 'निर्वाण' पूर्ण सब कुछ सम्भव है। फलस्वरूप पूर्ण होकर भी शून्य है और शून्य होकर भी पूर्ण है, इसे पूर्ण कहने पर न कहने के बराबर हुआ। लेकिन याद रखना कि इन्हें दो हिस्से में अलग मत करना। ओत-प्रोत भाव से युगपत् सभी स्वाभाविक रूप से प्रकाश और अप्रकाश हो सकते हैं। जब सृष्टि, स्थिति, लय लीला के रूप में एक प्रकाश है, तब जैसे एक ही लीला एवं लीला में तरंगों का प्रकाश है, वह तो अतीन्द्रिय के अलावा नहीं हो सकता। एक हिसाब से कहा जा सकता है कि वही तरंगें अर्थात् लीला ही शेष। एक हिसाब से यह बात ठीक है। दूसरी ओर 'एकात्मत्व' अर्थात् लीला के भीतर भी तो शान्तत्व, स्थिरत्व मौजूद है। ऐसी हालत में कह सकते हो कि क्रिया शून्य जो क्रमवार स्थितित्व है, उस स्थान पर निर्वाण पूर्ण आदि जो कुछ कहना चाहो कह सकते हो। इसलिए देखो युगपत् सभी हैं, पूर्ण कहने पर भी किन्तु उसे पूर्ण कहा नहीं गया, इसे जान लेना।''

आगे कृपा के बारे में कहने लगी–''आग के समीप जाने पर उसका ताप स्वाभाविक है, अगर इस शरीर में कुछ कृपा देखनी हो तो वह भी स्वाभाविक है।''

इन्हीं सब बातों में भोर हो गयी।

भोर के समय माँ ने कहा–''आज ही रवाना होने का प्रबन्ध कर।''

यात्रा के लिये यह तय हुआ कि माँ दिल्ली होते हुए देहरादून जायेंगी। फ्रांस से एक सज्जन सपत्नीक आये हुए हैं। **रामकृष्ण मिशन** के एक संन्यासी उन्हें ले आये हैं। बंगालियों की भाँति धोती पहने हुए हैं। पता चला कि फ्रांसीसी दम्पति यहाँ प्रत्येक मन्दिर में दर्शन कर रहे हैं। कुछ दिन हुए कलकत्ता से प्राणकुमार बाबू ने इस दम्पति के बारे में चर्चा करते हुए माँ को लिखा था कि एक फ्रांसीसी दम्पति **श्री अरविन्द आश्रम** से आपके दर्शन करने के लिये यहाँ आकर ठहरे हुए हैं। विन्ध्याचल का पता इन्हें दिया जा रहा है।

पता चला कि काशी होकर ये लोग विन्ध्याचल आने वाले थे, इसी बीच माँ यहाँ आ गयी। ये लोग कल माँ के पास दो बार आये थे, काफी बातचीत हुई थी।

अपात्र पर कृपा करने का फल क्या होता है

कल एक साधु ने माँ से पूछा था–''माँ, अपात्र पर कृपा करने से क्या फल होता है? मुमकिन है कि ऐसा मूर्ख हो जो कृपा का अनुभव न कर सके।''

माँ ने कहा–''पहली बात तो यह है कि कुछ भी बेकार नहीं जाता और अगर उसका प्राप्य नहीं है तो उसे मिला कैसे? तुम लोग उसे बाहर से जैसे देखते हो, शायद हो सकता है कि वह कृपा पाने का उपयुक्त पात्र हो भी सकता है?'' इसी तरह की और बातें हुई थी।

साधु ने कहा–''माँ, हम लोगों को जरा धक्का दीजिये न।''

माँ ने कहा–''सत्संग करो। सत्संग ही धक्का है।''

साधु अन्य सम्प्रदाय का है, लेकिन उसमें साम्प्रदायिक भाव कम होने के कारण वह अक्सर माँ के पास आकर कृपा-प्रार्थना करता रहता है। बातचीत के सिलसिले में माँ उनसे कहने लगी–''अगर तुम लोग अपने-अपने

गुरुओं को एक सीमा के भीतर आबद्ध कर देखोगे तो ठीक से दर्शन नहीं कर पाओगे। जब गुरु को सर्वमय देख सकोगे तभी गुरु को प्रकृत रूप में देखोगे।''

इसी प्रकार की और भी बातें माँ कहती रही जिसे सुनकर साधुजी बड़े आनन्दित हुए। सिर्फ दो दिन हुए साधुजी माँ के पास आये हैं, इनमें काफी श्रद्धा भाव है।

आज भी उक्त फ्रांसीसी दम्पति के साथ माँ काफी देर तक बातचीत करती रही। मेम साहिबा ने माँ से स्मृति चिह्न की माँग की। माँ ने कहा– ''योगायोग तो श्वास–प्रश्वास में है। इसके अलावा बाहरी चीज चाहते हो तो यह सब है जो इच्छा हो, वह ले जाओ।''

फ्रांसीसी महिला ने कहा–''आप अपने हाथ से दें।''

पास ही एक कंघी रखी थी। महिला की इच्छा हुई कि माँ के सर का एक बाल रख लूँ। यह सोचकर वह माँ के बालों में कंघी करने लगी। माँ ने बाद में कहा कि तुम इस कंघी को ले जा सकती हो। वह माँ के इस कथन पर बहुत प्रसन्न हो उठी, बाद में माँ को सिन्दूर पहनाने लगी। उन्हें सिन्दूर की डिबिया दी गयी थी। काफी देर तक वे दोनों माँ के पास बैठे रहे, फिर चले गये।

चलते वक्त उन्होंने माँ से आशीर्वाद की भिक्षा माँगी। इसी बीच और भी बातें होती रही। पुनः स्मृति–चिह्न के माँगने पर माँ ने कहा–''सब रखा है, जो इच्छा हो, ले जाओ।''

तभी पुरुष ने कहा–''अगर आप हमें अपनी इच्छानुसार सामग्री ले जाने का आदेश दे रही हैं तो हम आपको ही ले जाना पसन्द करेंगे।''

इस तरह की मधुर बातें होती रही।

आज ही माँ रवाना हो जाएँगी, जानकर लोगों को कष्ट हो रहा है। दोपहर की गाड़ी से माँ दिल्ली जाएँगी। बातचीत में बाच्चू की माँ बोली– ''माँ, पहले–पहल जब तुम हमारे घर आती थी तब तो तुम अधिक दिनों तक रहती थी। सभी के बीच रह जाती थी। एक बार रामकृष्ण मिशन की कुछ आश्रित महिलाएँ तुम्हें देखने के लिये आयी थी, मैंने उनसे कहा था कि माँ इस वक्त समाधि अवस्था में हैं। वे सब दरवाजे के पास से ही देखकर

जाते-जाते उपहास भरे स्वर में बोली-''अरी माँ, हमारे ठाकुर **(श्री श्री परमहंस ठाकुर)**, क्या कहते हैं कि समाधि अवस्था में हैं। बड़े आराम से बिछावन पर लेटी हुई तो हैं, इसे क्या समाधि कहते हैं? उनकी इन बातों को सुनकर मेरा कलेजा जैसे फटने लगा। मैं तुम्हारे निकट प्रार्थना करने लगी-माँ, इन्हें समझने की शक्ति दो।''

माँ हँसती हुई बोली-''वाह! इसमें दुःखी होने की क्या बात है? तुम क्या हर समय सब कुछ समझ पाती हो? वे लोग जितना समझ पाये, उतना ही व्यक्त कर सके। यह भी उन्हीं की एक और रूप में वाणी है। जब वे समझेंगी तब वे स्वयं ही दुःखी होंगी। इसमें दुःखी होने की बात नहीं है। सब उन्हीं का रूप है, उन्हीं की वाणी है।''

हम लोग 11 बजे दिल्ली के लिये रवाना हो गये। गाड़ी में बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी-''कुछ लोग कहते हैं कि ध्यान में स्थित नहीं रह पाता, क्या करूँ? तब कहती हूँ कि ध्यान जब भंग हो गया तब तुम लोग ऊपर तैरने लगे। उस वक्त अवलम्बन को इस तरह रखना चाहिए कि गिरने पर वहीं गिरो। जिस सहायक से ध्यान जन्म लेता है, उसी सहायक को लेकर रहना चाहिए। बचपन में देखती थी कि शरीर छोटा है, फिर जब बैठना सीखी तब मकान के चारों तरफ घेरा लगा दिया गया ताकि शिशु बाहर गिर न जाय। अगर बाँस पकड़कर गिरने लगे तो वहीं बैठ जाएगी।''

9 चैत्र, शुक्रवार- आज प्रातः 7 बजे हम लोग दिल्ली पहुँच गये। स्टेशन पर काफी लोग आये थे। माँ को लोग आश्रम ले गये। यहाँ आश्रम बनने के बाद से कभी माँ नहीं आती थी। यही वजह है कि माँ के आगमन से भक्तगण काफी प्रसन्न हो उठे हैं। दोपहर को लड़कियाँ और शाम को लड़कों ने माँ को कीर्तन सुनाया। चूंकि माँ की तबीयत जरा भारी थी, इसलिए वे 10 बजे रात को विश्राम करने चली गयी।

इसके बाद ही बीरेन (दुर्गादास बाबू का लड़का) आया। वह माँ से नाराज होकर दिन भर नहीं आया था। लेकिन इस समय वह अपने को रोक नहीं सका, इसलिए चला आया। सरल भाव से माँ से सारी बातें कहता रहा। बोला-''मैं दिन भर अपने मन को समझाता रहा कि मैं माँ के पास नहीं जाऊँगा-लेकिन भीतर से कोई बार-बार कह रहा था- जा-जा। दिन भर मन में इन्हीं बातों का अन्तर्द्वन्द्व चलता रहा। रात को खाते समय मैं अपने छोटे

भाई-बहनों से पूछने लगा कि तुम लोगों ने माँ को कैसा देखा? सभी तुम्हें देख गये हैं। मैं नहीं आऊँगा, यह तय कर चुका था। लेकिन ज्यों-ज्यों रात बढ़ती गयी त्यों-त्यों मन कहने लगा, जा-जा। अन्त में मेरा सारा अभिमान दूर हो गया। कब मैं साइकिल लेकर चल पड़ा, याद नहीं। माँ तुम्हारा आकर्षण इतना भयानक है कि मुझे स्थिर नहीं रहने दिया।''

माँ और हम लोग उसके सरल ह्रदय की बातें सुन रहे थे और प्रसन्न हो रहे थे। एक घण्टा रहने के बाद वह चला गया।

10 चैत्र, शुक्रवार– आज भोर के समय पाँचू दादा मोटर लेकर आये और माँ को घुमाने ले गये। साढ़े आठ बजे के लगभग माँ वापस आयी। एक घटना का पाँचू दादा की जबानी पता चला। कुछ देर तक मोटर में माँ को इधर-उधर घुमाने के बाद पाँचू दादा अपने घर ले गये। घर जाने के पहले माँ को लेकर वे पहाड़ की ओर गये थे। वहाँ एक जगह माँ और अन्य लोग पैदल चलने के लिये उतर पड़े। एक साँप कुण्डली बनाकर राह में पड़ा था। आश्चर्य की बात यह रही कि सभी लोग उसे लाँघकर उधर जा रहे थे।

माँ हँसती हुई बोली-''देखो संयोग की बात। इधर-उधर कितनी जगहें हैं, पर सभी उसी जगह से गुजर रहे हैं। साँप भी सर झुकाकर मुर्दे की भाँति पड़ा है। सभी लोग उसके ऊपर से गुजर गये, पर वह ज्यों का त्यों पड़ा रहा।''

पाँचू दादा ने बताया-''जिधर माँ चली जा रही थी, उधर साँप फन उठाकर उनकी ओर देख रहा था। जब हम लोगों ने उसे देखा तब 'साँप-साँप' कहते हुए चिल्ला उठे। लेकिन साँप अपनी जगह से हिला नहीं।''

इन बातों को सुनने के पश्चात् सहसा मुझे याद आया कि माँ को विन्ध्याचल में साँपों का खयाल हुआ था और मुझसे कुछ कहा था।

11 चैत्र, शनिवार– आज भोर में देवेन्द्र बाबू सपत्नीक आये और माँ को टहलाने के लिये ले गये। माँ को अकेले में पाकर देवेन्द्र बाबू ने कहा-''माँ, उपनयन के बाद से मैं नित्य सन्ध्या करता हूँ। बराबर बैठता हूँ, पर ऐसा नहीं लगता कि इस दिशा में कुछ उन्नति कर सका हूँ। दफ्तर में पद वृद्धि होने पर अधिक काम करना पड़ रहा है। यह क्या हुआ माँ?''

माँ ने कहा–''यह बात ठीक है कि तुम लोग दवा पीते हो, पर उसके साथ कुपथ्य करने के कारण दवा ठीक से काम नहीं करती। दवा है नाम, पथ्य है संयमादि। कुपथ्य करने से कहीं रोग दूर होता है? चाहे जितनी दवा पीते रहो, पर कोई लाभ नहीं होगा। श्वास की ओर लक्ष्य रखते हुए नाम लेते जाओ। शरीर को पत्थर की भाँति स्थिर रखने की चेष्टा करो।''

इस तरह की बातें होती रही। लगभग 8 बजे हम लोग वापस आ गये। यहाँ आने पर माँ को न पाने के कारण काफी लोग नाराज हो बैठे हैं। बैठने के साथ ही माँ ने उपस्थित लोगों को ''पिताजी–माताजी'' सम्बोधनों के द्वारा उनकी नाराजगी दूर कर दी।

इसके बाद माँ कीर्तन पर बैठ गयी। मेरठ से सिधू बाबू, अनादि बाबू वगैरह आये हैं। आश्चर्य की बात है कि अनादि बाबू की पत्नी प्रसव–वेदना से पीड़ित है और इस हालत में वे यहाँ आ गए हैं। सिधू बाबू की पत्नी को मूर्च्छा की बीमारी है और वे उसे इस हालत में छोड़कर चले आये हैं। माँ का इतना तीव्र आकर्षण है कि गृहस्थ व्यक्ति भी इस तरह पागलों की तरह चले आते हैं।

सभी लोग बैठे हैं। माँ कह रही हैं–''गुरु के निकट गुह्य तत्त्व सुन लो।''

भक्तों द्वारा वासन्ती, अन्नपूर्णा और राम के रूप में माँ की पूजा

12 चैत्र, रविवार– आज सुबह साढ़े आठ से ग्यारह बजे तक महिलाएँ कीर्तन करती रही। दिन–प्रतिदिन लोगों की भीड़ बढ़ती जा रही है। कीर्तन का समय भी बढ़ता जा रहा है। शाम को दासू आरती करता है। अभय, बीरेन आदि सभी साथ–साथ कीर्तन करते हैं। आगामी कल वासन्ती पूजा की सप्तमी है, भक्तों की आन्तरिक इच्छा है कि इस दिन माँ की पूजा की जाय। दुर्गादास बाबू कह रहे हैं–''माँ, आपकी पूजा लगातार तीन दिनों तक होगी। प्रथम दिन वासन्ती के रूप में पूजा होगी, दूसरे दिन अन्नपूर्णा के रूप में होगी। तृतीय दिन रामनवमी है, उस दिन राम के रूप में हम आपकी पूजा कर धन्य होंगे।''

माँ हँसकर बोली–''पिताजी, इस पागल लड़की का कोई पता नहीं है। खयाल होने पर यह शरीर कहाँ–कहाँ रहता है, कोई पता नहीं है।''

भक्तगण पुनः-पुनः प्रार्थना कर रहे हैं कि माँ कम से कम तीन दिन और दिल्ली में रह जायँ। जो जिस ढंग से बात कर रहा है, माँ उसके साथ उसी तरह बातचीत कर रही हैं, इसलिए माँ सभी के निकट प्रिय हैं। माँ का शरीर दुर्बल है, इसलिए भक्तगण उनके आराम का इन्तजाम यथासाध्य कर रहे हैं।

बिड़ला ने 5-6 लाख रुपया व्यय कर दिल्ली में एक वृहत् सनातन धर्म मन्दिर बनवाया है। वहाँ माँ को कीर्तन में ले जाने के लिये बिड़ला के आदमी आये हैं। भक्तों को इस बात की प्रसन्नता है कि इस मन्दिर में प्रत्येक वर्ग का हिन्दू प्रवेश कर सकता है, माँ में भी यही भाव है। वहाँ सभी को साथ लेकर माँ कीर्तन करेंगी।

यह तय हुआ कि कल से माँ की पूजा आरम्भ होगी। इसके बाद शाम को आरती-कीर्तन आदि करने के पश्चात् रात 8 बजे सभी लोग माँ के साथ सनातन-मन्दिर जाएँगे।

माँ ने कहा-''देखो, मैं बच्ची हूँ। मुझे तुम लोग मत रोको। मैं माँ-बाप के पास खाऊँगी-खेलूँगी; तुम लोग अपना पूजा-पाठ कर सकते हो। मैं कब कहाँ जाऊँगी, कहाँ रहूँगी, कोई पता नहीं है।''

अन्त में यह बात मान ली गयी। रात में 10 बजे माँ को विश्राम करने देकर सभी लोग चले गये।

13 चैत्र, सोमवार- आज सवेरे पूजादि हो गया। भक्तों ने प्रसाद लिया। दो दिन से अपराह्न के समय चारू बाबू पाठ कर रहे हैं। आगामी कल 108 पद से माँ का भोग लगाया जाएगा। माँ ने कहा है-''तुम लोग इस शरीर की पूजा करना चाहते हो। सब उनका ही शरीर है। तुम लोगों में जिसकी जो इच्छा हो, वह कुमारी-पूजा, बाल-गोपाल पूजा कर सकते हो। इसकी व्यवस्था की जा रही है।''

14 चैत्र, मंगलवार- आज महाष्टमी है। भक्तों ने 108 पद से माँ का भोग लगाया। कीर्तन-आरती आदि हुए। माँ ने कहा था कि तुम लोग इस शरीर की पूजा करना चाहते हो। सब एक का ही शरीर है। अगर तुम लोगों की इच्छा हो तो कुमारियों की पूजा करो। वही हुआ। आज कुछ भक्तों ने कुमारी-पूजा की। कुमारियों को भोजन पर बैठाकर चारों तरफ फेरी लगाते हुए कीर्तन किया गया। कोई चँवर तो कोई धूप-शंख लेकर प्रदक्षिणा करता रहा।

आरती हुई। इसके बाद सभी लोग प्रसाद पाने बैठे। दिन-रात आनन्द चलता रहा।

एक भद्र महिला माँ की ओर गौर से देखती हुई बोली-"क्यों माँ, तुम्हारे लिये हमारे हृदय में कैसा अस्थिर भाव है, क्या इसे तुम नहीं समझती?"

यह बात कहते-कहते महिला की आँखें छलछला आयी। कुछ महिलाएँ घर-गृहस्थी का सारा काम-काज छोड़कर माँ के पास चली आती हैं। कुछ महिलाएँ अपने पति से यहाँ तक कह डालती हैं कि जिन्दगी भर तुम्हारी बातें सुनती आ रही हूँ। माँ यहाँ आजकल जितने दिनों तक रहेंगी, उतने दिनों तक हम वहाँ जाएँगी। किसी प्रकार की बाधा नहीं मानूँगी। इस तरह की बातें महिलाएँ कह रही हैं।

एक महिला कह रही है-"माँ, आज तो गोपिनियों के साथ श्रीकृष्ण की लीला होते देखे रही हूँ।"

कीर्तन के समय माँ के शरीर में क्रियाएँ होने लगी

इसी प्रकार का आनन्द हो रहा है। रह-रहकर माँ नाम गा रही हैं, लोग उनका साथ दे रहे हैं। शाम के बाद कीर्तन आरम्भ हुआ। रायबहादुर सतीश विश्वास माँ को कीर्तन सुनायेंगे। सभी मिलकर नाम गाने लगे। माँ बिछौने पर खड़ी हो गयी। चेहरे में परिवर्तन होने लगा। जमीन पर गिर पड़ी। इसके बाद शरीर में कुछ क्रियाएँ दिखाई दी। थोड़ी देर बाद वे सम्भलकर उठ बैठी। माँ की यह हालत देखकर, कहीं वे अस्वस्थ न हो जायें, इसलिये नाम लेना बन्द कर दिया गया। माँ का शरीर काँपने लगा।

कुछ देर बाद माँ जड़ित स्वर में बोली-"पिताजी, तुम लोग कीर्तन के अन्त में **"यादवाय नमः"** आदि न जाने क्या कहते हो; इस वक्त वह सब न कहकर कीर्तन क्यों समाप्त कर दिया? अगर शरीर जरा गड़बड़ा गया तो तुम लोग कीर्तन बन्द कर दोगे? पूजा करने बैठकर भला कोई आधी पूजा करता है?"

माँ की इन बातों को सुनने के बाद लोग पुनः नाम गाने लगे और **"हरिहराय नमः"** कहकर उसे समाप्त किया। रात 10 बजे अनिच्छा के साथ लोगों ने विदा ली।

15 चैत्र, बुधवार– आज भी दो–एक व्यक्तियों ने कुमारी पूजा की। सात–आठ महिलाओं ने बाल–गोपाल की पूजा की। माँ ने कहा था–"क्यों, बाल–गोपाल की पूजा नहीं होती! तुम लोगों के शास्त्र में कुछ है?"

पुरोहितों ने पोथी खोलकर गोपाल–पूजा का विवरण निकाला। आज पंक्तिवार गोपालों को गोपाल–पूजा के निमित्त बैठाया गया। माँ भी एक किनारे बैठ गयी। पूजा के पश्चात् कीर्तन प्रारम्भ हुआ –

गोविन्द बोलो, गोविन्द बोलो।
राधा रमण हरि गोविन्द बोलो।।

उधर मन्मथ दादा लगातार तीन दिनों से माँ की पूजा 'घट' में कर रहे हैं। दुर्गादास बाबू कह रहे हैं–"हमारी माँ सप्तमी में वासन्ती, अष्टमी में अन्नपूर्णा और नवमी में श्री रामचन्द्र हैं।"

भक्तों का दल सामूहिक रूप से माँ के चरणों में अंजलि दे रहे हैं। कोई चण्डी पाठ कर रहा है। आज आश्रम मुखरित है। शाम को भक्तगण माँ को कालीबाड़ी ले जायेंगे। वहाँ सभी लोग कीर्तन करेंगे।

सन्ध्या के समय लोग माँ को कालीबाड़ी ले गये। वहाँ कीर्तन हुआ। काफी लोग एकत्रित हुए थे। रात 10 बजे हम लोग माँ को लेकर वापस आये।

16 चैत्र, गुरुवार– आज भोर के समय डॉक्टर जे.के. सेन महाशय सपत्नीक आये और माँ को साथ लेकर टहलने चले गये। टहलकर आने के बाद वे मुझसे बोले–"दीदी, कल सवेरे फिर आऊँगा और माँ को घुमाने ले जाऊँगा।"

माँ ने तुरन्त कहा–"पहले कल तो आये। कल की बात कल होगी।"

डॉक्टर बाबू ने कहा–"आप ठीक कहती हैं। जब आप रहेंगी तभी तो घुमाने ले जा पाऊँगा, वर्ना कैसे होगा?"

उनकी पत्नी बोली–"क्यों माँ, कल क्या नहीं आयेगा?"

माँ ने कहा–"कल (काल) होगा क्यों नहीं। काल तो सभी के लिये है।" कहने के पश्चात् वे हँसती हुई मोटर से उतर आयी।

घर में प्रवेश करते ही बोली–"जरा पता लगा तो वृन्दावन की गाड़ी कितने बजे छूटती है?"

किसी ने बताया कि 12 बजे, तो किसी ने 10 बजे कहा। माँ ने कहा–''इस वक्त कोई गाड़ी नहीं है?''

टाइम टेबिल देखने पर ज्ञात हुआ कि एक घण्टे बाद एक गाड़ी छूटने वाली है। माँ तुरन्त रवाना हो गयी। उनके साथ काफी लोग चल पड़े। कोई माँ से मिलने आया था तो कोई स्टेशन पर दर्शन करने चला आया। इसी हालत में लोग माँ के साथ वृन्दावन की ओर चल पड़े। कुछ लोगों ने यह भी निश्चय किया कि 12 बजे वाली गाड़ी से रवाना होंगे।

वृन्दावन में माँ वर्धमान राजा के मन्दिर में जाकर ठहरी। शाम को अमल सेन सपत्नीक आये और माँ को सैर कराने के लिये ले गये। माँ यहाँ क्यों आयी, पता नहीं।

17 चैत्र, शुक्रवार– अपराह्न के समय हम लोग साधुओं के आश्रम की ओर गये। शाम को ज्यों ही माँ मन्दिर में वापस आयी त्यों ही पण्डों ने कहा–''माँ, मोटर से उतरिये नहीं। चलिये, आज गोविन्दजी का फूल–झूला देखा जाए।''

माँ ने कहा–''इस वक्त तो मोटर से उतरने दो। और लोग आ जाएँ तब देखा जाएगा।''

माँ बिछावन पर जाकर सो गई। रात में साढ़े नौ बजे पुनः एक व्यक्ति ने आकर कहा–''आज फूल–झुला है माँ।''

माँ ने कहा–''खुकुनी, चल जरा टहल आयें।''

इसके बाद सभी को साथ लेकर वे गोविन्ददेवजी मन्दिर की ओर चल पड़ी। वहाँ से वापस आने के बाद कल ही दिल्ली वापस चलने की बातें हुई।

18 चैत्र, शनिवार– आज प्रातःकाल माँ अमल बाबू की मोटर से दिल्ली रवाना हो गयी। हम लोग गाड़ी से वापस आये। दिल्ली के भक्त श्री श्री माँ के आगमन के उपलक्ष्य में आगामी कल नाम–यज्ञ का आयोजन कर रहे हैं। आज सन्ध्या को अधिवास है। आज अपराह्न में चारू दादा ने पाठ आरम्भ किया। माँ ने उनसे कहा–''जितने दिनों तक यह शरीर यहाँ रहे उतने दिनों तक नित्य पाठ करते रहना। सभी लोग बैठे रहते हो, यह ठीक नहीं है। कभी कीर्तन तो कभी पाठ या जप करते रहना चाहिए।''

वही हो रहा है।

दोपहर को माँ बात-बात में कहने लगी–"गोविन्दजी आकर बोले कि आप 'फूल-झूला' देखने नहीं जाएँगी? चलिये न। दो-तीन बार कहने के कारण वहाँ गयी।"

अभय के प्रश्न के ऊपर प्रश्न करने पर माँ ने जो कुछ कहा, उसका सार मर्म यों है कि दो-तीन व्यक्ति (एक बार पण्डा मोटर के पास और फिर मन्दिर में दो-तीन व्यक्ति) आकर बोले–"माँ, आज 'फूल-झूला' देखने चलिए। मैं स्पष्ट देख रही थी कि गोविन्दजी उनके मुँह से स्वयं बोल रहे थे। मैं देखने पर क्या कर सकती हूँ बताओ।"

माँ की दोनों आँखें किंचित् रक्ताभ हैं, जरा छलछला आयी हैं। इस भाव-भंगिमा में माँ कह रही थी और हम सब मुग्ध दृष्टि से सुन रहे थे।

इस बात पर अभय कहने लगा–"माँ ने पुरी में भी कहा था कि जगन्नाथ देव मुझे पान खिला गये हैं।"

बात सही है। एक दिन एक व्यक्ति दौड़ा हुआ आया और माँ के मुँह में एक पान डालकर चला गया। इस प्रकार कभी किसी ने नहीं किया था। माँ के अद्भुत प्रभाव में सभी लोग न जाने कैसा बनते जा रहे हैं। एक महिला माँ को आड़ में ले जाकर बोली–"माँ, मैं गोपाल को बहुत मानती हूँ। उसी मूर्ति का मैं चिन्तन करती हूँ। जिस दिन से तुम्हें शिमला में देखा है, उसके बाद से जब भी जप करने बैठती हूँ तब तुम्हारी यह आकृति मेरी आँखों के सामने तैरती रहती है। मैं शरीर नहीं देख पाती। गत 22 साल से मैं लगातार गोपालजी की सेवा-पूजा करती आ रही हूँ, अब ऐसा क्यों हो रहा है?"

माँ हँसती हुई बोली–"तुम जो कुछ कहती हो, मैं तो वही हूँ माँ।"

इतना कहना था कि उक्त महिला ने माँ को आलिंगनबद्ध करते हुए चूम लिया। आँखों से अश्रु बहने लगा।

एक और महिला धीरे से कहने लगी–"मेरे मन में कभी-कभी भगवान् के लिये आकुलता उत्पन्न होती है। जब से तुम यहाँ आयी हो तब से यह भावना दूर हो गयी है। तुम वृन्दावन चली गयी हो जानकर यह स्थिति दूर हो गयी।"

माँ ने कहा–“पागल हो गयी हो क्या?”

“क्या करूँ माँ?”

माँ ने कहा–“भगवान् के लिये आकुलता अच्छी बात है। तुम दीक्षा ले लो।”

“मेरे विचार से दीक्षा न लेने के कारण ही भावनाएँ दबी पड़ी हैं। मेरी इच्छा है कि दीक्षा ले लूँ।” इस तरह की अनेक बातें होती रही। माँ के प्रभाव को लोग न जाने कितने भावों और रूपों में ग्रहण करते हैं।

माँ मोटर से घूमने गयी। एक जगह मोड़ पर गाड़ी को घुमाने में परेशानी हो रही थी। माँ ने कहा–“मोड़ पर घुमाने में गोलमाल हो जाता है। अगर सावधानी से घुमाकर हम ठीक रास्ते पर चलें जैसा कि करते हैं तो अपने जीवन के हर मोड़ को पार कर सही मार्ग अपना सकते हैं।”

माँ वृन्दावन से वापस आ गयी हैं, समाचार पाकर दल–के–दल लोग दर्शन करने आ रहे हैं। माँ अचानक चली गयी थी, उसी दौरान अनेक लोग आकर वापस चले गये थे। लोग इसी बात की शिकायत कर रहे थे। माँ ने बताया कि आज दो–तीन दिन से मौनी माता (काशी की कृष्णा माताजी) पास आकर खड़ी होती हैं। इस बार जब मैं काशी गयी थी तब वे कुछ विशेष बातें कहने के लिये आयी थी। आजकल वे काशी में सिद्धि माँ के आश्रम में हैं। अक्सर मैं यह देखती हूँ कि सभी लोग माँ के निकट दिल खोलकर बातें करते हैं। कुछ तो यहाँ तक कहते हैं कि इस ढंग से बातें हम औरों के सामने नहीं कर पाते।

अपराह्न में माँ नाम गाने लगी–

“जय कृष्ण गोविन्द श्री मधुसूदन राम नारायण हरे।”

भक्त भी साथ देते रहे।

शाम के समय भक्तों ने कल के लिये नाम–यज्ञ का अधिवास विधिवत् किया। इसके बाद माँ को लोग रायबहादुर सतीश विश्वास महाशय के यहाँ कीर्तन में ले गये। वहाँ सभी भक्त एकत्रित हुए। सतीश बाबू श्रीयुत् हरनाथ ठाकुर के शिष्य हैं। इन लोगों ने ठाकुर के फोटो को सजा रखा है। प्रत्येक शनिवार को कीर्तन करते हैं। रात को 10 बजे माँ वापस आयी।

19 चैत्र, रविवार– आज सवेरे 6 बजे से –

श्रीकृष्ण चैतन्य प्रभु नित्यानन्द।
हरे कृष्ण हरे राम श्री राधे गोविन्द।।

नाम-संकीर्तन प्रारम्भ हुआ। चन्दन के फूलों की माला पहने पुरुष-स्त्री नाम-कीर्तन कर रहे हैं। उनके साथ माँ भी घूम रही हैं। जब माँ उनका साथ देने लगती हैं तब वे दूने उत्साह से नाम-कीर्तन करते हैं। इधर भोग का प्रबन्ध हो रहा है। बड़े आनन्द के साथ नाम-कीर्तन हो रहा है। संपूर्ण आश्रम भवन मुखरित होकर दसों दिशाओं का वातावरण नाम-ध्वनि से गूँज रहा है।

आज शाम को माँ में सामान्य भाव परिवर्तन हुआ। वे जरा करवटें लेती रही; इस अपूर्व आकृति को देखकर अनेक लोग मुग्ध हुए। गोकि थोड़ी देर तक यह स्थिति रही, पर जिन लोगों ने पहली बार यह दृश्य देखा वे आपस में कहने लगे कि ऐसा दृश्य जीवन में पहले कभी नहीं देखा था। इसे वे कभी भूल नहीं सकेंगे। वृन्दावन से एक वैष्णव कीर्तन करने आये थे। उन्होंने कहा-''मैं जरा कट्टरपंथी हूँ, परन्तु आज माँ के चरणों में सर झुकाये बिना रह नहीं सका।''

एक विशेष बात देख रही हूँ कि आजकल इस तरह की क्रिया होने के बाद वे तुरन्त सम्भल जाती हैं जैसे बिजली की तरह सब कुछ होता है। पहले जब क्रियाएँ होती थी तब माँ को प्रकृतिस्थ होने में काफी समय लग जाता था।

भक्तगण प्रतिदिन शाम को माँ की आरती उतारते हैं। आज भी आरती हुई। माँ की बातें लटपटा रही हैं, आँख-मुँह उज्ज्वल हैं, बड़ा सुन्दर है। रात 12 बजे के लगभग सभी विश्राम करने गये।

20 चैत्र, सोमवार- आज बेबी दीदी के सुपुत्र सुकुमार का वात्सरिक था, इसलिए बेबी दीदी की इच्छानुसार माँ के निकट उदयास्त तक कीर्तन हुआ। दोपहर को महिलाएँ प्रतिवार नाम-यज्ञ के पश्चात् 12 से 4 बजे तक कीर्तन करती हैं, आज भी उसी प्रकार करती रही। माँ भी इन लोगों का साथ कभी-कभी दे रही हैं।

कीर्तन समाप्त होने के बाद सभी लोग माँ से उपदेश सुनने के लिये उन्हें घेरकर बैठ गये। माँ कहने लगी-''मैं तो कुछ नहीं जानती। तुम लोग जैसा बजाओगे, वैसे ही आवाज होगी।''

फिर आगे बोली-"तुम लोग महीने में कम-से-कम एक दिन संयम व्रत रखने का प्रयत्न करो। अर्थात् उस दिन आहार-विहार सभी कामों में संयम व्रत रखो। यहाँ तक कि अपने बाल-बच्चों की भी बाल-गोपाल के रूप में सेवा करनी चाहिए। पति को परम पति के रूप में, लड़कियों को कुमारी और शक्ति रूप में देखना तथा सेवा करनी चाहिए। कम-से-कम इस दिन किसी पर नाराज नहीं होना चाहिए। किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि सब जमा करके दूसरे दिन सारा बुखार उतारा जाय। उस दिन जो कुछ हो, उन सब क्षमा को जमा नहीं रखना चाहिए। देखो, जब तक ज्वाला है तब तक घाव है, समझना चाहिए। घाव रहने से ही जलन महसूस होती है।"

शाम के बाद आरती और कीर्तन हुआ। इसके बाद अनेक लोगों से भरे कमरे में चारू बाबू का पाठ हुआ। माँ की किंचित् बातें बड़े आग्रह से लोग सुन रहे थे। सभी सतृष्ण नयनों से माँ को निहार रहे थे। एक सज्जन माँ के निकट स्तोत्र पाठ करने लगे।

रात 9 बजे के बाद माँ को मोटर में बैठाकर हम बाहर घूमने चल दिये। हम कुतुबमीनार की ओर गये। रात 10 बजे वापस आये।

ईश्वर है या नहीं

21 चैत्र, मंगलवार- आज सवेरे 7 बजे माँ को एक कविराजजी के यहाँ ले जाया गया। माँ को यहाँ डॉक्टर जे. के. सेन महाशय ले आये हैं। डॉक्टर बाबू ने कविराजजी से कहा-"माँ से जो कुछ पूछना हो, आप पूछ सकते हैं, पर माँ अपने से कोई जवाब नहीं देती हैं"। वे बोले-"मुझे तो कुछ नहीं पूछना है।"

माँ ने कहा-"पिताजी, जरूरत पर ही जिज्ञासा उत्पन्न होती है। काम करते-करते समझ में आता हैं कि कहाँ गलती हो गयी है तभी उस सम्बन्ध में जिज्ञासा उत्पन्न होती है।"

उन्होंने पूछा- ईश्वर है या नहीं? प्रश्न हुआ-"ईश्वर है, इसका क्या प्रमाण है?"

माँ ने कहा-"तुम हो, इसका क्या प्रमाण है?"

"वाह! मैं तो स्वयं को प्रत्यक्ष रूप में देख रहा हूँ।"

माँ ने कहा–''तुम कौन हो?''

इन्हीं बातों के अन्तर्गत कविराजजी ने कहा–''यह सब बातें रहने दीजिये। यह बताइये कि ईश्वर है या नहीं?''

माँ ने कहा–''जिस प्रकार तुम हो, उसी प्रकार ईश्वर भी है।''

8 बजे के लगभग हम आश्रम में वापस आये।

आज माँ हरिजनों के साथ वाल्मीकि मन्दिर में कीर्तन करेंगी। शाम को 7 बजे के बाद हम माँ को लेकर वाल्मीकि मन्दिर में गये। माँ के जाने के बाद वहाँ सभी भक्त आ गये। लगभग दो घण्टे तक माँ हरिजनों के साथ कीर्तन करती रही। इसके बाद खाना-पीना हुआ। भोजन आरम्भ होने के पहले ही हम माँ को लेकर आश्रम में लौट आये।

देहरादून गमन

22 चैत्र, बुधवार– आज रात 9 बजे वाली गाड़ी से हम देहरादून रवाना हुए। माँ चली जाएँगी यह सुनकर भक्तों में विषाद छा गया। लोग माँ को कुछ दिन और रहने के लिये बारम्बार अनुरोध करने लगे।

माँ हँसती हुई बोली–''मैं इस शरीर को बार-बार कहती हूँ कि ये लोग रहने को कह रहे हैं, रह जाओ, लेकिर यह शरीर कुछ भी नहीं सुन रहा है। अब क्या करूँ बताओ?'' यह कहकर वे पुनः हँस पड़ी।

इधर लगातार कीर्तन, सत्कथा पाठ, पूजा इत्यादि में सभी लोग जैसे डूब गये थे। आज चारों ओर सूना-सूना सा लग रहा था। सामान बाँधते देख कुछ लोग विरोध प्रकट करने लगे। माँ को ये जाने देना नहीं चाहते, पर माँ की इच्छा के विपरीत कुछ कहना सम्भव नहीं है, यह सभी जानते हैं।

23 चैत्र, गुरुवार– आज सुबह हम लोग देहरादून आ गये। रात को माँ के कमरे में सिर्फ मैं सोयी हुई थी। रात को 12 बजे के लगभग माँ ने कहा–''खुकुनी, जरा इधर तो आ।''

उनके पास आते ही ये बोली–''शरीर ठीक नहीं है। एक को पास रहना पड़ेगा।''

मैं माँ के पास बैठकर उनके हाथ पर हाथ फेरने लगी। रात ढाई बजे के लगभग वे बोली–''जा, सो जा।''

मैंने कहा–"तुमने तो कहा था कि एक को पास रहना पड़ेगा।"

माँ ने कहा–"अब जरूरत नहीं है। जा, सो जा। कल जब तक मैं स्वयं न उठ जाऊँ तब तक मुझे जगाना मत। अगर इस कमरे में आकर कोई जप-ध्यान करना चाहे तो उसे आने देना, वर्ना दरवाजा बन्द रखना।"

मैं जानती हूँ कि इस तरह का निर्देश अक्सर माँ देती रहती हैं। माँ के आदेशानुसार मैं जाकर सो गयी।

माँ की अशरीरियों से बातचीत

24 चैत्र, शुक्रवार– आज दिन के 11 बजे माँ उठी। कई पंजाबी महिलाएँ आयी थी। माँ उनसे हिन्दी में कह रही हैं–"तुम लोग जैसे बातचीत करती हो, उसी प्रकार मैं अन्यत्र बातें कर रही थी, इसीलिए कह रखा था कि मुझे जगाना नहीं। तुम में भी अक्सर कुछ लोग आते रहते हैं, तुम लोग उसे देख नहीं पाती। अगर उस ढंग की ध्यान-धारणा करने की शक्ति किसी में हो तो समझ सकता है कि वह कहाँ जा रहा है? कभी-कभी यहाँ बैठे-बैठे बातें हो जाती हैं।"

मैंने पूछा–"कल रात को तुमने कहा था कि एक को पास रहना चाहिए, उस वक्त क्या हुआ था?"

माँ ने कहा–"उस वक्त शरीर अन्यत्र चला गया था।"

मैंने गौर से देखा–माँ इस वक्त स्वस्थ दिखाई दे रही थी। माँ बोली–"मेरा सवेरा तो अब हुआ है। कभी-कभी रात को भोर हो जाता है और कभी भोर के वक्त रात हो जाती है।"

मुँह धुलाकर कुछ खिलाया। खाने-पीने के बाद वे चहल-कदमी करने लगी। इसी बीच हरिराम और उनके साथ एक अन्य सज्जन माँ से भेंट करने आ गये। माँ टहलती हुई मोटर पर जा बैठी और बोली–"कुछ दूर तक घूम आऊँ।"

माँ के वापस आने पर पता चला कि वे शारदा के यहाँ गयी थी। शाम के बाद लोगों का आना-जाना बढ़ गया। माँ बच्चे से लेकर बूढ़े तक सभी से बातें कर रही हैं। जिसे जिस बात में आनन्द मिलता है, उससे उसी ढंग से बातें कर रही हैं। इस वक्त रात के 8 बजे हैं। माँ मौन-मन्दिर में जाकर

भीतर से दरवाजे को बन्द कर लिया। रात 10 बजे बाहर निकली। नीचे उतरकर सीधे अपने कमरे में जाकर सो गयी।

सवेरे बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी-''तीन सूक्ष्म शरीरी आये थे, उनके साथ काफी देर तक बातचीत करती रही।''

25 चैत्र, शनिवार– आज सवेरे उठकर माँ सभी लोगों से बातचीत करने लगी। दिन के 11 बजे भोजन करने के बाद पुनः मौन-मन्दिर में चली गयी। कब कहाँ से आयेंगी, पता नहीं। शाम होने के कुछ देर पहले वे बाहर आयी और बरामदे में बैठ गयी।

उपस्थित सभी व्यक्ति माँ के चारों तरफ बैठ गये। कुछ लोग तो माँ का दर्शन करने के लिये 12 बजे से आकर इन्तजार कर रहे हैं। माँ बरामदे में एक जगह बैठी, रात 10 बजे तक सभी लोगों से बातचीत करती रही। इसके बाद नीचे आकर सो गयी।

सूक्ष्म शरीर वाले हालचाल जानने आते हैं

26 चैत्र, रविवार– आज सवेरे पुनः वही बात (24 चैत्र शुक्रवार की रात की) पूछने पर वे बोली-''मैं देख रही थी कि तीन व्यक्ति आये हैं। एक मानो इस शरीर को (अपने शरीर को दिखाती हुई) स्पर्श करने का साहस नहीं कर पा रहा है। जिस प्रकार छोटी जाति के लोग ब्राह्मणों के घर में प्रवेश करने का साहस नहीं कर पाते। संकोच के साथ दरवाजे के पास खड़े रहते हैं, ठीक वही भाव था। दूर खड़ा रहकर देख रहा था। दूसरा इस शरीर का पहरा देने की मुद्रा में खड़ा था और पहले वाले से कह रहा था- 'सावधान! छूना मत।' (अपने शरीर को दिखाती हुई) यह शरीर छूने नहीं देगा। वह भी हाथ हिलाते हुए कहने लगा-'नहीं-नहीं। मैं इस शरीर को छूने का अधिकारी नहीं हूँ। मैं स्पर्श नहीं करूँगा।' एक और भी आया था।''

मैंने पूछा-''क्यों आये थे?''

माँ ने कहा-''हालचाल जानने के लिये। उनसे काफी बातचीत हुई।''

आज 10 बजे माँ को भोग दिया गया। इसके बाद लगभग 2 बजे माँ ध्यान-मन्दिर में सो गयी। इसी बीच सेवा कुछ महिलाओं को साथ लेकर माँ के पास कीर्तन करने चली आयी। माँ उठकर आ गयी। कीर्तन, स्तोत्र पाठ

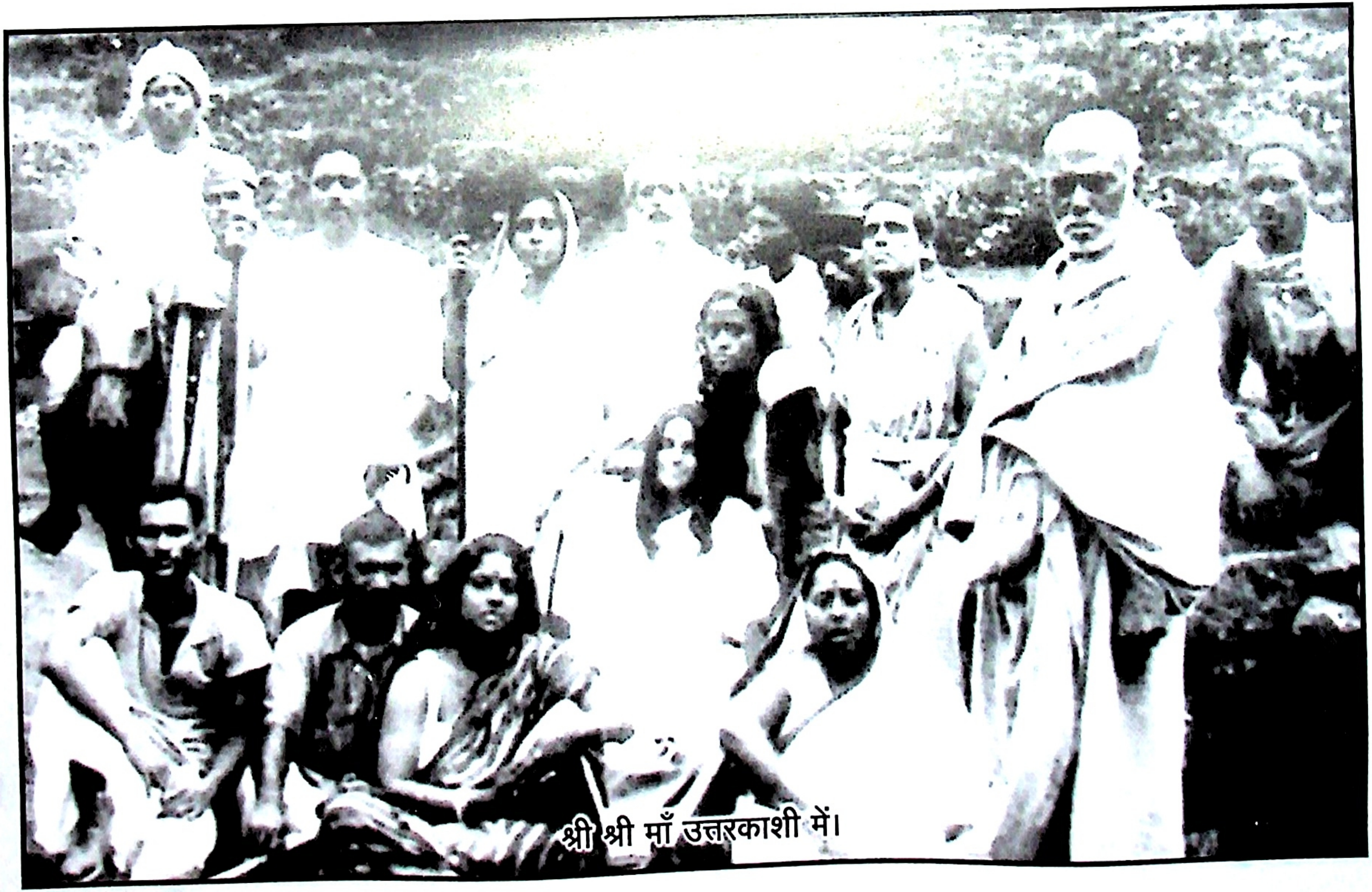

श्री श्री माँ उत्तरकाशी में।

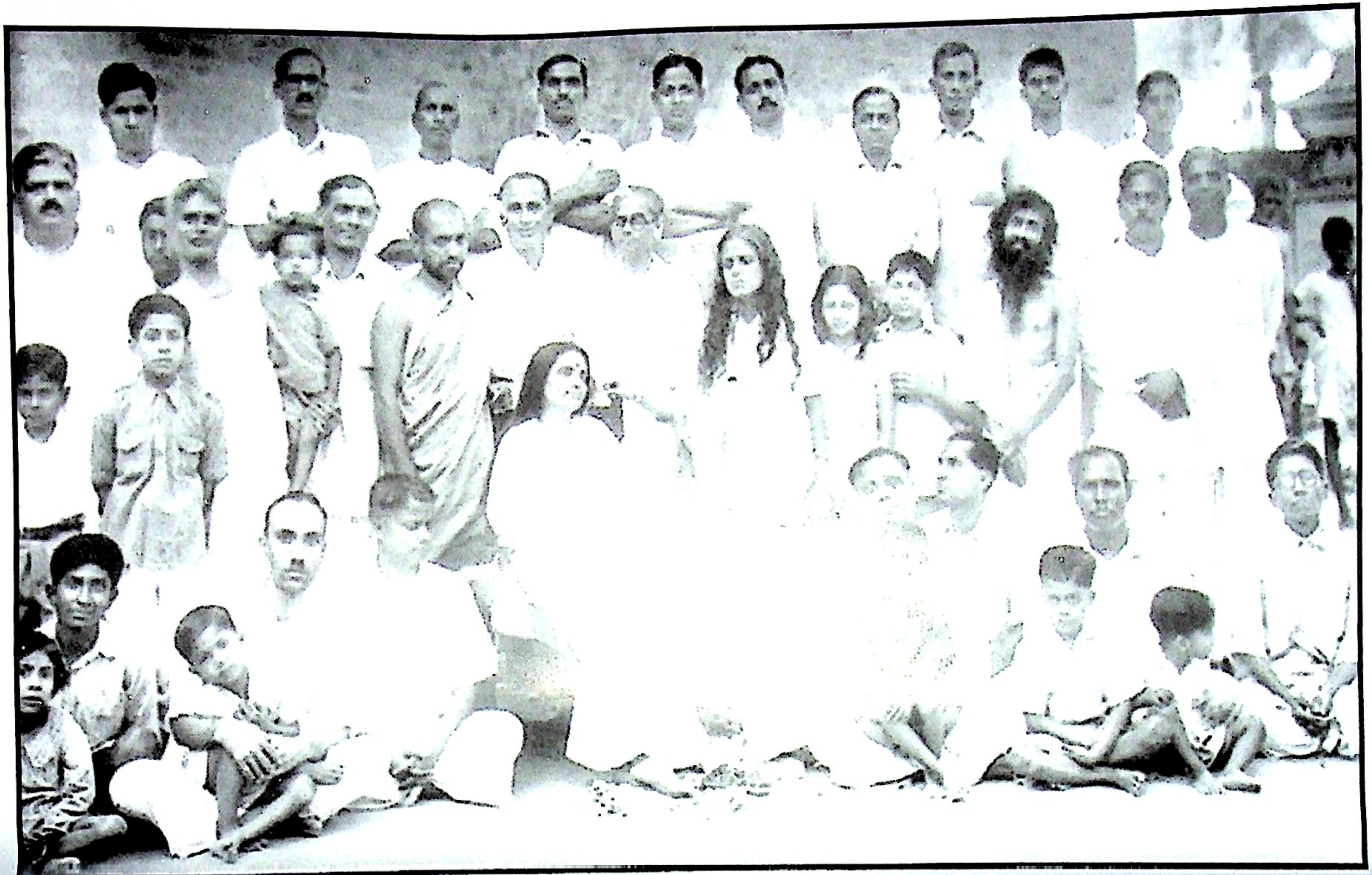

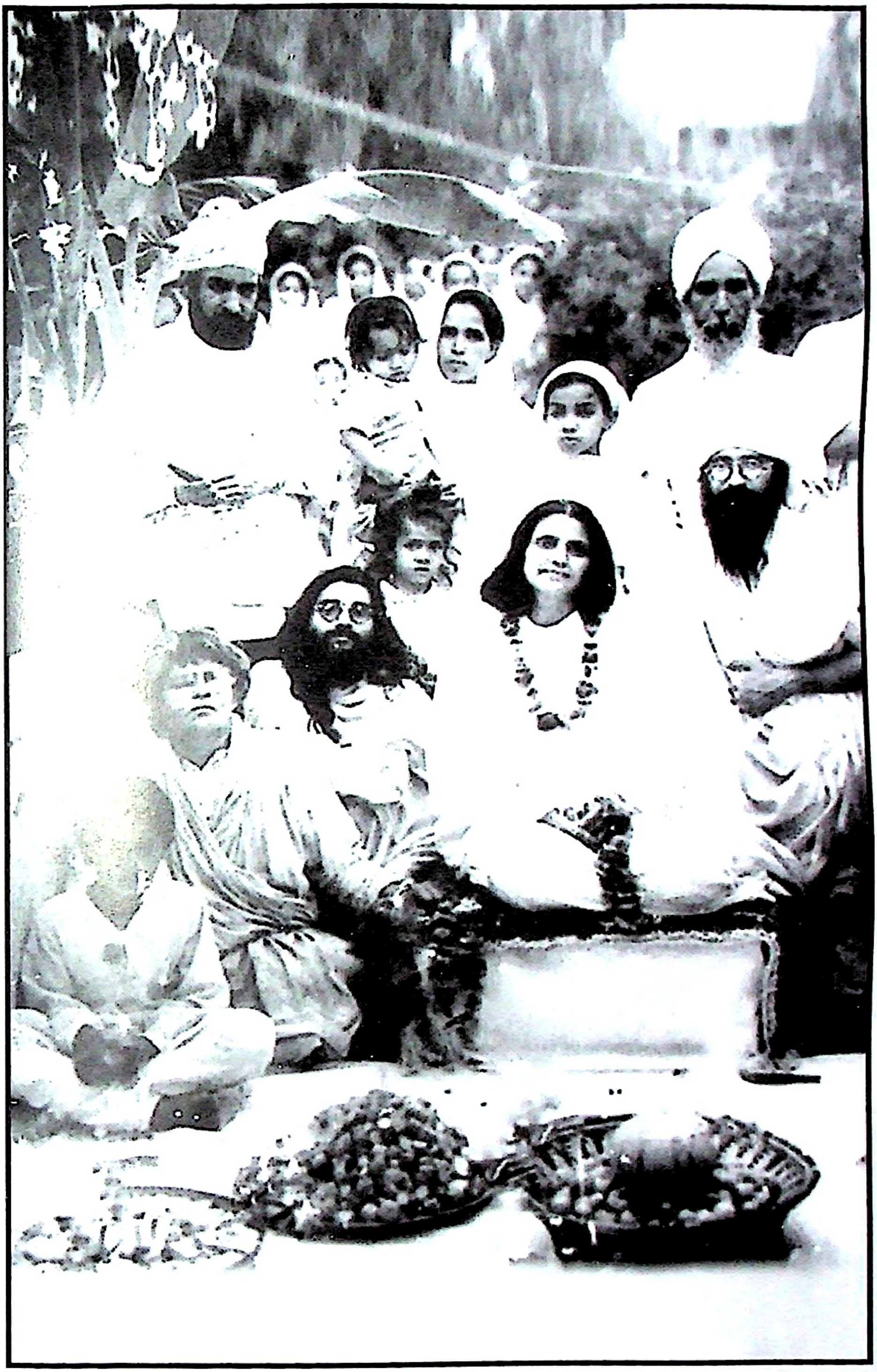

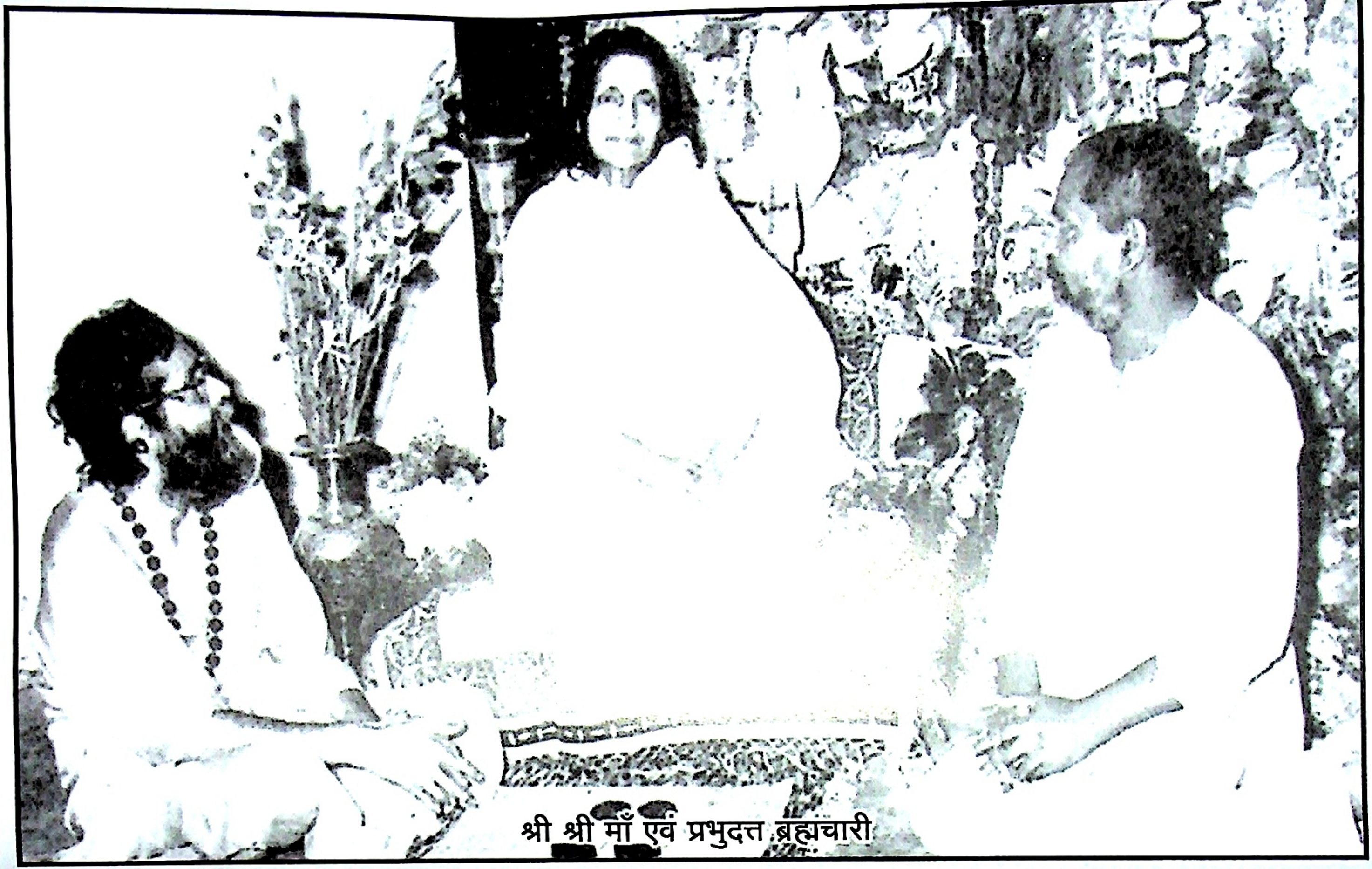

श्री श्री माँ एवं प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

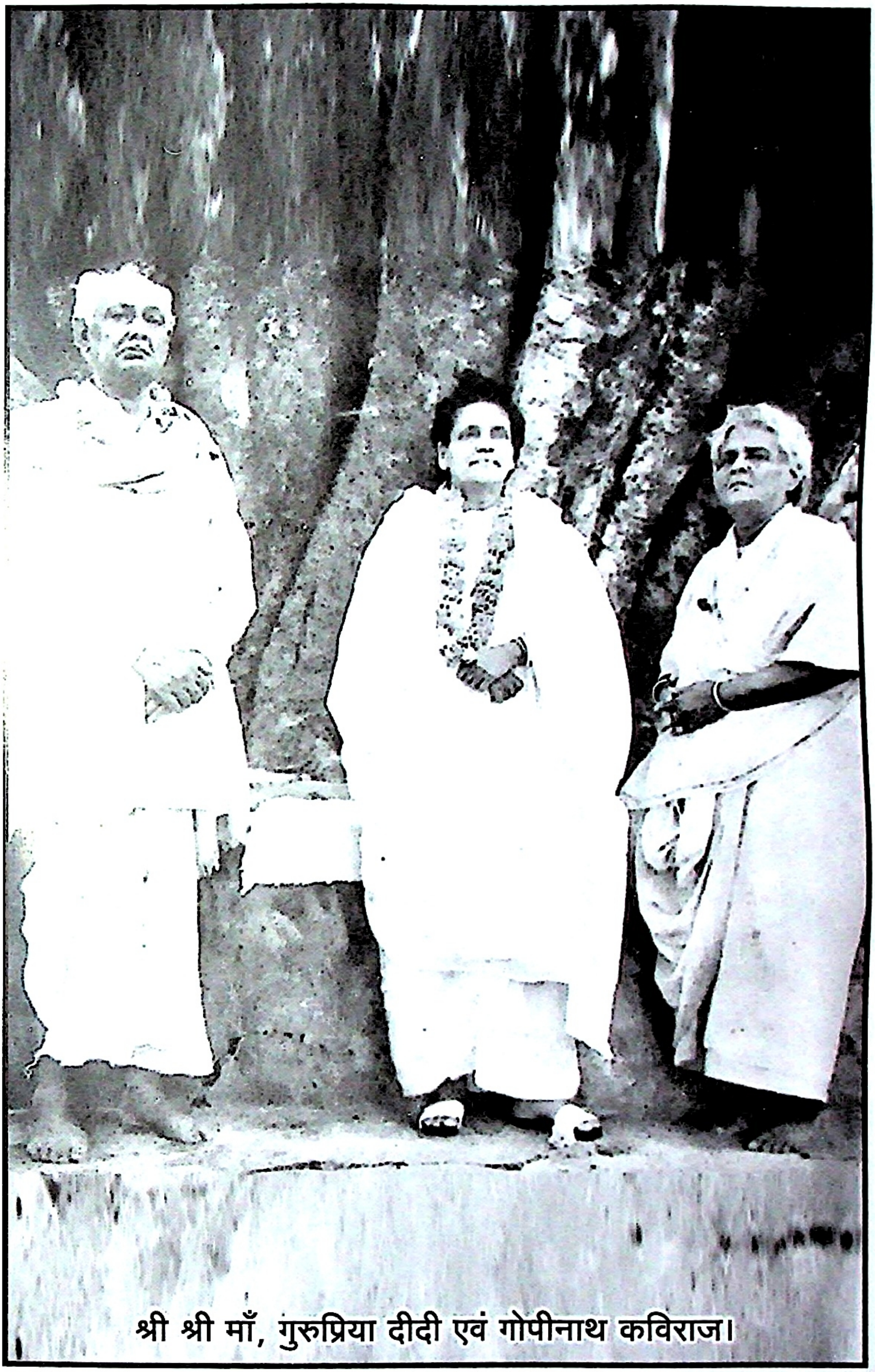

श्री श्री माँ, गुरुप्रिया दीदी एवं गोपीनाथ कविराज।

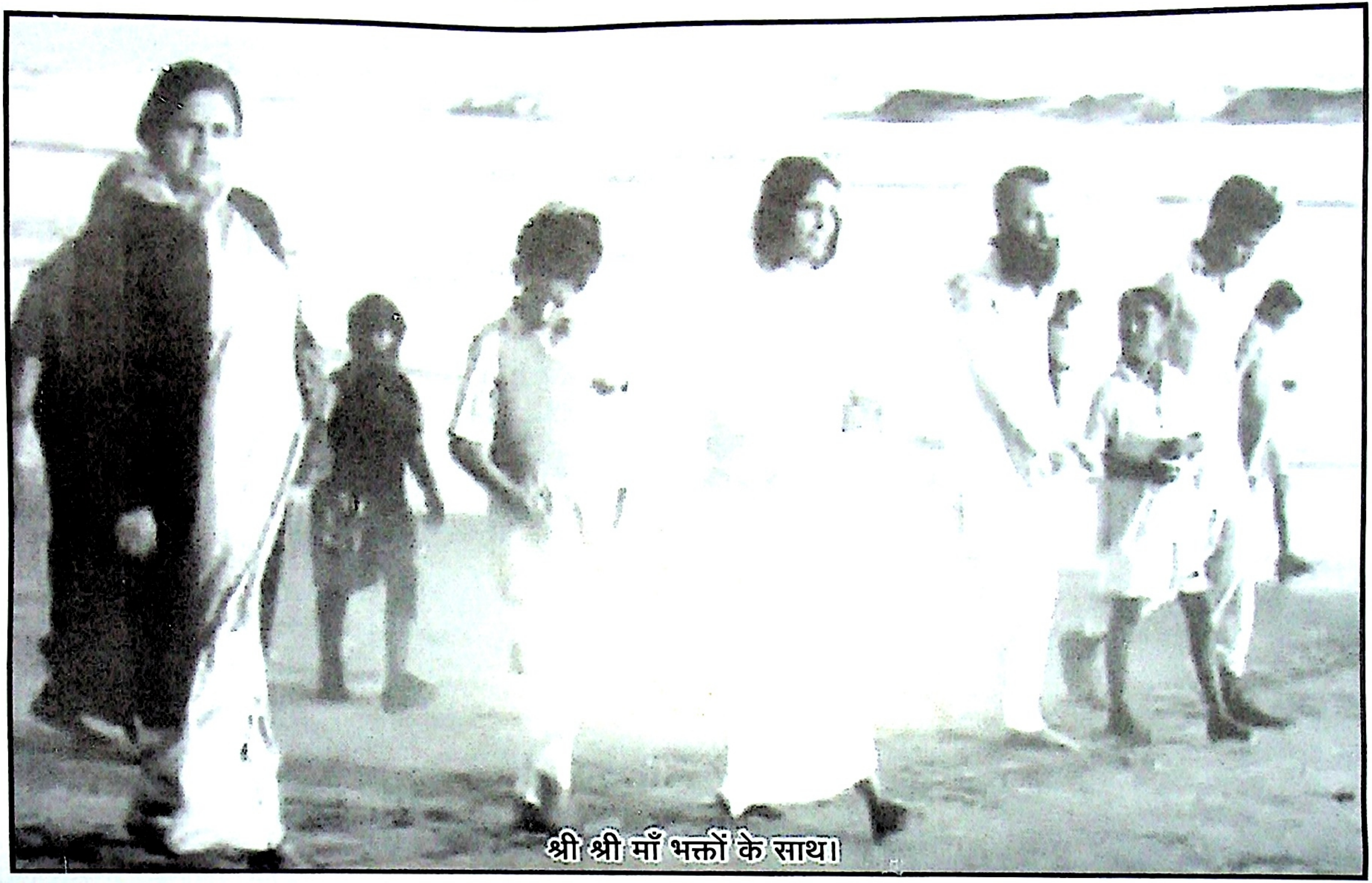

श्री श्री माँ भक्तों के साथ।

और आरती के पश्चात् माँ के पास फल आदि भोग की सामग्री रखने के बाद भोग का गायन हुआ। सभी आनन्दित हुए। शाम होने के पहले ही सब विदा लेकर चले गये।

एक महिला अपने साथ एक लड़की को लेकर आयी थी। लड़की का मस्तिष्क विकृत हो गया है। शायद घर में कुछ उपद्रव करती है। लेकिन माँ के पास आकर शान्ति के साथ बैठी है। उसकी माँ ने उसके सिर की ओर इशारा करते हुए बताया कि वह अपने बालों को खींच-खींचकर सब नोच चुकी है। लड़की के सर पर बाल नहीं के बराबर थे। चेहरे को नाखूनों से खुरचकर अजीब सूरत बना ली है। उसकी माँ यह सब दिखाने के बाद रोने लगी।

माँ उसे लक्ष्य करती हुई बोली-"देखो क्या हालत है, मिट्टी की वस्तु लेकर तुम लोग मौज में हो। माँ-टी (मिट्टी) के अलावा कुछ भी तो नहीं है। मिट्टी की लता, पत्ते, फल-मूल खाकर रहते हो और घास खाने वाली गाय के शरीर का रस यानी दूध, उसे भी पीते हो, यही है शरीर, फिर जब यह नष्ट हो जाता है तब मिट्टी से ही उत्पन्न पेड़ की लकड़ी से इसे जला दोगे, वह भी मिट्टी बन जाएगा। इसलिए सोचो-माँ-टी (मिट्टी) के अलावा और कुछ भी नहीं है। माँ-टी वही मिट्टी।" माँ पुन: कह रही हैं-"इसकी हालत देखो, बालों को नोचकर चेहरे को नाखून से कितने घाव पैदा कर लिए हैं, शरीर में दर्द महसूस नहीं करती। ऐसा ही होता है।"

माँ पुन: हँसती हुई बोली-"मेरी क्या राय है? आग को ओढ़कर बैठी थी। सचमुच इस प्रकार की एक अवस्था साधना करते-करते होती है। उस वक्त शरीर में बोध नहीं रहता। और कभी-कभी युगपत् दोनों ही होता है। बोध है भी और नहीं भी। साधना के स्तर में जो लोग हैं, वे एक धारा के सम्बन्ध में कहेंगे। जैसे वे भक्ति, ज्ञान, कर्म किसी एक को बड़ा बतायेंगे। लेकिन जो इनसे ऊपर हैं, वे देखेंगे कि इनमें कोई पार्थक्य नहीं है। छोटा-बड़ा नहीं है, सभी समान हैं।"

इस तरह की बातचीत में शाम हो गयी। माँ को लेकर टहलने चल पड़ी। वापस आने के बाद माँ सो गयी।

न जाने किस बात पर माँ कहने लगी-"देखो, जब तक भीतर फोड़ा है,

तब तक ज्वाला है। फोड़ा अर्थात् अभाव-बोध। इसके अलावा यह भी होता है कि कभी-कभी ज्वाला नहीं रहती, लेकिन फोड़ा बढ़ता चलता है, यह स्थिति और भी खराब है। जब तक ज्वाला है, तब तक ठीक है। ज्वाला रहने पर उसके शमन का प्रयत्न करोगी।''

इस तरह की अनेक बातें माँ कहती रही जिन्हें लिपिबद्ध करना साध्यातीत है। प्रत्येक बात ही अमूल्य और मधुर है।

27 चैत्र, सोमवार- पंजाब से साधुसिंह आये हैं। माँ भोजनादि करने के पश्चात् 11 बजे बरामदे में टहल रही थी। साधुसिंह ने कहा-''माँ, हरिद्वार में एक साधु ने बताया है कि पूजा-पाठ करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ मन को विषय से विमुख रखने पर ज्ञान स्वत: आ जाएगा। मुझे उनकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ, इसलिए मैंने निश्चय किया कि माताजी से पूछकर इस प्रश्न की मीमांसा करूँगा।''

मन को विषय से विमुख करने के लिए साधन-भजन करना चाहिए

माँ ने कहा-''जो जिस सीढ़ी पर खड़ा होकर जैसी बात कहता है, सब ठीक है, क्योंकि वह जितना देखता है, उतना ही कहता है। सभी के लिये एक बात समान नहीं होती। अधिकारी भेद पर बात न कहने पर नुकसान होता है। मन को विषय से विमुख करने के लिये ही तो साधन-भजन, पूजा-पाठ आदि करना पड़ता है। लेकिन किसी को अगर इन सबकी जरूरत न हो तो कहना पड़ेगा कि वह पहले ही सब कर चुका है। उछलकर कोई पेड़ पर नहीं चढ़ सकता।''

साधुसिंह ने कहा-''हरिद्वार के साधुजी ने यह भी बताया था कि सिर्फ शास्त्र के अध्ययन से भी ज्ञान की प्राप्ति होती है, गुरु की जरूरत नहीं है। यह भी बताया गया है कि ब्रह्मज्ञानी के निकट अगर साँप या बाघ आ जाए तो वह उसे मारेगा क्यों? उन्होंने कहा-न मारना तो मूर्खों का काम है। शरीर की रक्षा के लिये साँप या बाघ को मार डालना उचित है।''

माँ ने कहा-''शास्त्र के अध्ययन से जो ज्ञान की प्राप्ति होती है, मेरा कहना है कि यह भी एक प्रकार से गुरु के निकट आश्रय प्राप्त करना ही हुआ। शास्त्र भी गुरु है अर्थात् जिन्होंने शास्त्र लिखा है, वे गुरु हैं। और ब्रह्मज्ञानी अगर हुए तो वे सिर्फ अपने शरीर का ही ज्ञान लेकर ब्रह्मज्ञान प्राप्त

नहीं कर पायेंगे। सब कुछ ले-देकर एकमात्र वही है- सिर्फ यही ज्ञान प्राप्त होगा। फिर मारने पर मारने का सवाल कहाँ? जैसे अपने नाखून से अपने शरीर में घाव करते हैं, एक के अलावा उसके निकट दूसरा कहाँ है? हिंसा के वश होकर वह मारना चाहता है, ऐसी बात नहीं है। ब्रह्मज्ञानी की हिंसावृत्ति का प्रश्न ही नहीं है। कौन किससे हिंसा करेगा? फलस्वरूप यह बात नहीं हो सकती।

इन बातों के पश्चात् अखण्डानन्दजी को हरिद्वार जाने को कहकर माँ ध्यान-मन्दिर में जाकर सो गयी। आदेश पाने के साथ-साथ स्वामीजी रवाना हो गये। माँ ने कहा-''तीन बजे वाली गाड़ी से रवाना हो जाना।''

माँ का काम इसी प्रकार का होता है। वे इधर-उधर की बात नहीं सोचती। पहले से इन्तजाम करने से उनका काम नहीं चलता। जब जो जरूरत होती है, तुरन्त व्यवस्था करती हैं।

आज दोपहर को माँ में सोने का भाव नहीं था। यही वजह है कि वे ध्यान-मन्दिर से चली आयी। मैंने ऊपर वाले कमरे में सोने का इन्तजाम कर दिया। चूँकि सोने का भाव नहीं है, इसलिए मुझे अपने पास बुलाया। बोली-''सोने की इच्छा नहीं है।''

बातचीत चलने लगी। अचानक बच्चों के बदन पर जैसी गन्ध रहती है, वैसी गन्ध महसूस हुई। धीरे-धीरे उस गन्ध से कमरा भर गया। मैंने चौंककर पूछा-''यह क्या! बच्चों के बदन पर जैसी गन्ध रहती है, यह क्यों?''

''माँ मृदु मुस्कान के साथ बोली-''इसका एक कारण है।''

सूक्ष्म में शिशु के रूप में शिव-विष्णु का आगमन

मैंने बड़े आग्रह से कारण पूछा तो माँ कहने लगी-''24 चैत्र के दिन कई सूक्ष्म शरीरधारी आये थे, बता चुकी हूँ। इसके बाद उस दिन सवेरे काफी देर से उठी थी। काफी समय तक सोने का भाव बना नहीं रहा। उसी दिन (अर्थात् 25 चैत्र सवेरे के वक्त) देख रही हूँ कि अनेक आये हैं (सूक्ष्म शरीरधारी), उनमें दो सद्यः प्रसूत शिशु कुछ दूर सोये हुए थे। मैं भी सोयी हुई थी। जो लोग आये हुए थे, उनमें से एक के मन में यह भाव उत्पन्न हुआ कि इस शरीर से (अपने शरीर को दिखाती हुई) ये दोनों बच्चे प्रकाश हुए हैं। इसीलिए कह रहे थे। (इस शरीर को दिखाते हुए) इनके ये दोनों बच्चे

हैं। फिर दूसरा कोई बोला–क्या बक रहे हो? ये दोनों बच्चे क्या इनके हैं? जानते नहीं, इसीलिए ऐसा कह रहे हो। वे जो सर्वक्षण सृष्टि कर रहे हैं, सर्वत्र विश्व-व्यापक हैं, उन्हीं की संतानें हैं। इतना कहने के पश्चात् वह विशेष भाव से इस शरीर के निकट प्रार्थना करने लगा–माँ, क्यों नहीं इनके भय को दूर कर देती? इस प्रार्थना के साथ ही मैं खड़ी हो गयी और न जाने किधर चल पड़ी। मेरे चलने का ढंग देखकर पहला व्यक्ति जो बच्चों के बारे में चर्चा कर रहा था, उसका भ्रम दूर हो गया। वह कहने लगा–'सचमुच, साधारण व्यक्ति क्या इस तरह चल सकता है?' उसके भ्रम को दूर होते देख, प्रार्थना करने वाले अपर व्यक्ति ने कहा–'माँ का हम सब जिस ढंग से विश्वास करते हैं, अभय-सभय इस तरह विश्वास क्यों नहीं कर पाते?' तुरन्त तीसरे व्यक्ति ने जवाब दिया–'वे द्वेष के अन्तर्गत पल रहे हैं न, इसीलिए ऐसा नहीं कर पाते।''

''दोनों बच्चे जरा दूर सोये हुए थे। देखते-देखते वे दोनों हाथ-पैर हिलाने लगे और चाहने लगे कि इस शरीर के पास आयें। अशरीरियों में एक ने दोनों बच्चों को मेरे पास लाकर उनके सिर को मेरे ऊपर रखते हुए लिटा दिया। इसके बाद मेरे हाथ को खींचकर उनके सिर पर रख दिया लेकिन मेरे हाथ रखने का ढंग देखकर उनमें से एक ने कहा–'यह कैसा हुआ? बच्चों की ओर ध्यान क्यों नहीं है?''

''देखते-ही-देखते दोनों बच्चे बड़े हो गये और पैदल चलने लगे। जैसे देवताओं के पीछे से ज्योति निकलती है, ठीक उसी प्रकार की ज्योति उनके पीछे से निकल रही थी। एक शिशु की आकृति, रंग, चतुर्भुज विष्णु की तस्वीर की तरह थी और दूसरे शिशु का रंग शुभ्रवर्ण तथा उसमें महायोगी का भाव था। और भी वहाँ अनेक हैं। यहाँ के लोग जिस प्रकार प्रत्येक स्तर पर रहते हैं, ठीक उसी प्रकार वहाँ के लोग भी रहते हैं।''

''अभी-अभी मैंने कहा कि उनसे बातचीत हुई, किन्तु यह बातें मौखिक ढंग से नहीं हुई, क्योंकि मुँह एकदम से बन्द था। सांकेतिक ढंग से भीतर-ही-भीतर बातें होती रही। ये बातें इतनी स्पष्ट ढंग से हो रही थी कि सब समझ में आ जाती थी। कभी-कभी दो-एक मीठे स्वर सुनाई दे जाते थे, उसे कैसे समझाया जाये? वह अत्यन्त मीठे स्वर थे। हाँ तो मैं कह रही थी कि देखते-ही-देखते दोनों बच्चे काफी बड़े हो गये। किस तरह-जानती है? जैसे

हाथ पर साबुन रखकर बराबर घिसते रहने पर गाज से भर जाता है, ठीक उसी प्रकार बढ़ते गये।''

मैं अवाक् होकर सारी बातें सुनती रही। फिर बोली-''माँ, मैं तुम्हारी बातें ठीक से समझ नहीं पायी। वे दोनों बच्चे कहीं शिव-विष्णु तो नहीं थे?''

माँ ने आपत्ति नहीं की तो मैंने पुनः पूछा-''मेरा तन-बदन सिहर रहा है, तुम क्या हो माँ?''

माँ हँसती हुई बोली-''वाह! इस तरह तो कितना देखती हूँ। इसमें आश्चर्य करने की क्या बात है? यह तो साधारण बात है। तू बच्चे के शरीर जैसी गन्ध की बात कहती रही है न? इसीलिए इतनी बातें कह गयी। एक का भाव हुआ कि वे दोनों शिशु इन्हीं के हैं, वही शिशु जो प्रकाश हुए थे जिसे सुन चुकी है, इसीलिए उन शिशुओं के तन की, उस भाव की महक निकल रही थी जिसका आभास तू पा सकी।''

28 चैत्र, मंगलवार- आज खाने-पीने के पश्चात् माँ बोली-''चल, ऊपर के कमरे में या और कहीं-तेरे साथ कुछ बातें करनी है। सोने की इच्छा नहीं है, इच्छा होने पर सो जाऊँगी।''

माँ के आदेशानुसार मैं बिछावन लेकर ऊपर गयी और उनके साथ बातें करने लगी।

कल रात से कालाचाँद दादा को मोतीझरा हुआ है, इसीलिए माँ अन्य ब्रह्मचारियों को अन्यत्र जाकर रहने के लिये आदेश दे चुकी हैं। माँ बोली-''इस तरह की बीमारियों में लोग अपनी इच्छा से सेवा करने नहीं जाते, लिहाजा दूर रहना उचित है।''

माँ चारों तरफ खयाल रखती हैं। दोपहर के वक्त थोड़ी देर तक माँ से बातचीत होती रही। उसके बाद मुझे भी हरिद्वार जाने का आदेश दिया। बोली-''योगेश और कमलाकान्त यहीं रहेंगे।''

यही हुआ। हम लोग माँ के आदेशानुसार काम करते हैं। मैं चली आयी और माँ देहरादून में रह गयी।

29 चैत्र, बुधवार- हम लोग कनखल स्थित मंगलानन्द गिरि महाराज के आश्रम में हैं। नानीजी (दीदी माँ) को बुला लिया गया है। आगामी कल

नानीजी (दीदी माँ) गिरि महाराज से दीक्षा लेंगी। इनके साथ ही मनोरंजन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य लेंगे।

30 चैत्र, गुरुवार– आज सवेरे मनोरंजन नैष्ठिक ब्रह्मचर्य में दीक्षित हुए। उनका नाम हुआ–महानन्द। मंत्रादि से आहुति दी गयी। दारा–पुत्र, आशा-वासना, काम–क्रोधादि सब स्वाहा मंत्र द्वारा आहुति दे दी गयी। रात्रि के अन्तिम भाग में नानीजी (दीदी माँ) संन्यास–मंत्र में दीक्षित हुई। उनका मुण्डन हो चुका है। विशेष अनुरोध लेकर माँ के पास आदमी गया है। शाम होने के कुछ पूर्व माँ यहाँ आ गयी। माँ मोटर से और भक्तगण बस द्वारा आये हैं।

सोलन के राजा आजकल यहीं हैं। वे और डॉक्टर पन्त माँ के साथ आये हैं। मंगलानन्द गिरि महाराज अधिक भीड़–भाड़ पसन्द नहीं करते। वे अपनी मौज में रहते हैं, बाहर से कुछ रूखे दिखाई देते हैं, लेकिन उनका अन्तर वैसा नहीं है। बड़ी प्रसन्नता के साथ वे माँ को भीतर ले गये।

इतने लोगों को महाराजजी कहीं आश्रम में न रहने दें, इसलिए कुछ लोग धर्मशाला में चले जाना चाहते थे, लेकिन गिरि महाराज ने उन्हें जाने नहीं दिया। सभी लोग आश्रम में रह गये। यह निश्चय हुआ कि कल माँ देहरादून स्थित आश्रम में वापस चली जायेंगी। ब्रह्मचारियों का दल रायपुर में और हम लोग यहीं रहेंगी। माँ आश्रम में रहेंगी।

अधिक व्यक्तियों को अपने आश्रम में गिरि महाराज नहीं रखते, इसलिए वातावरण शान्त बना रहता है। लेकिन आज चारों तरफ कोलाहल से मुखरित है। गोकि माँ सभी को यह हिदायत दे चुकी हैं कि कोई भी शोरगुल न मचाये ताकि गिरि महाराज की शान्ति भंग न हो। माँ काफी देर तक कुछ लोगों के साथ गिरि महाराज के पास बैठी रही। बातचीत होती रही। माँ चुपचाप बैठी थी, सिर्फ गिरि महाराज बातें करते रहे। सभी को उनकी बातों में आनन्द मिल रहा था।

डर के कारण अधिकतर लोग गिरि महाराज के यहाँ नहीं आते। माँ स्वयं कभी–कभी काफी लोगों के साथ यहाँ आती हैं। गिरि महाराज कह रहे हैं–''मैं किसी को आश्रम में नहीं आने देता। नाराजगी प्रकट करता हूँ, डण्डे दिखाता हूँ। इसी भय से लोग यहाँ नहीं आते। मैं अकेले एकान्त में पड़ा रहता हूँ। मुझे एकान्त प्रिय है।''

हरिराम भाई ने कहा–"आपने जब पहले-पहल माँ को इस आश्रम में आते देखा था तो क्या उस वक्त डण्डा लेकर दौड़े थे?"

गिरि महाराज ने कहा–"यह सब जानती है, इसलिए डण्डे से डरती नहीं। इसे क्या डण्डा मारूँगा।"

माँ भोली-भाली बनकर बातें कर रही हैं। गिरि महाराज ने माँ को बैठने के लिये गलीचे के ऊपर आसन और तकिया दिया है। बड़े आनन्द से समय गुजर रहा है। आज रात को गंगा स्नान का योग है। रात 8 बजे से 12 बजे तक का योग है। इसी बीच काफी लोग स्नान कर वापस आ गये हैं।

रात 3 बजे बिरजा होम प्रारम्भ हुआ। एक पेड़ के नीचे एक झोंपड़ी है जिसके भीतर यह शुरू हुआ। हम माँ को वहाँ ले गये। सभी लोग बैठ गये। गिरि महाराज संन्यास-मंत्र की व्याख्या अच्छी तरह से समझा रहे थे।

दीदी माँ (नानीजी) को दीक्षा दी गई, उनका नाम मुक्तानन्द गिरि हुआ

सुन्दर समय, स्थान, काल, पात्र यानी सब कुछ सुन्दर था। गंगा किनारे स्थित आश्रम भी काफी मनोरम है और रात्रि के अन्तिम पहर में माँ यहाँ मौजूद हैं, गिरि महाराज संन्यास-मंत्र में नानीजी (दीदी माँ) को दीक्षा दे रहे हैं। यज्ञाग्नि और मंत्रार्थों से सभी में गंभीरता आ रही है। कार्य समाप्त होने के बाद चारों तरफ उजाला हो गया।

नानीजी (दीदी माँ) गेरुआ वस्त्र पहने थी। माँ कहने लगी–"तुम हमेशा मुझे कहती आयी हो कि तू सबको बहुत कुछ कहती है, पर मुझे कभी कुछ नहीं कहती। आखिर क्यों? यही अच्छा है, यह तो कहा। जो अच्छा है, वही कहा गया है। लोग दिन-प्रतिदिन गृहस्थी में फँसते जाते हैं। इस तरह कितने लोग उससे बाहर निकल पाते हैं? अब सिर्फ उसी एक के आत्म-चिन्तन में लगी रहो। ज्ञान और स्वरूप न प्राप्त करने पर कुछ भी नहीं होगा।"

नानीजी (दीदी माँ) का नया नाम हुआ–मुक्तानन्द गिरि।

31 चैत्र, शुक्रवार– माखन सवेरे-सवेरे आ गया। एकलौता बेटा है, अभी हाल ही में इसकी शादी हुई है। छोटी-सी दुल्हन है। बाप की मृत्यु हाल ही में हुई है। माँ की यह हालत देखकर उसका मन बहुत खराब हो गया।

लेकिन माँ ने अपनी बातों के माध्यम से उसके उस दर्द को काफी हद तक दूर कर दिया। आज भण्डारा है। आज दोपहर को अनेक साधु यहाँ भोजन ग्रहण करने आये।

हरिराम एक अमेरिकन को लेकर आया है। वे आज 5 वर्ष से योग क्रिया करते आ रहे हैं। उनकी इच्छा हुई कि वे माँ के कमरे में कुछ देर रहेंगे। उसके लिये प्रबन्ध कर दिया गया।

माँ के निकट एक विदेशी का मन शून्य हुआ

कमरे से बाहर निकलने के पश्चात् उक्त अमेरिकन ने कहा–"मैं काफी दिनों से प्रयत्न कर रहा हूँ, परन्तु अपने मन को किसी तरह शून्य नहीं कर पाया। लेकिन माँ के निकट बैठते ही न जाने कैसे मेरा मन शून्य हो गया। यहाँ तक कि घर, दरवाजा, शरीर आदि का खयाल उत्पन्न नहीं हुआ।"

इसके बाद वह माँ के पास बैठकर उनसे उपदेश प्राप्त करने लगा। शाम को रवाना होने के कुछ समय पूर्व माँ गिरि महाराज के पास आकर बैठी। सभी लोग बैठे हुए थे। माँ ने अभय की चर्चा की। अभय से उन्होंने कहा कि जाकर पास बैठो। अभय पास जाकर बैठ गया।

गिरि महाराज ने पहले–पहल पूछा कि क्यों गृह त्यागी हुए। बाद में धीरे–धीरे संसार की अनित्यता आदि के बारे में थोड़ी–बहुत बातें समझाते रहे। उन्होंने यह भी कहा कि माँ के साथ हो, यह अच्छी बात है। माँ की सेवा करते रहो, धीरे–धीरे सब हो जाएगा। मार्ग पर चलने से गन्तव्य स्थान तक पहुँच जाओगे।

5 बजे के लगभग सोलनराज दुर्गासिंह अपनी मोटर में माँ को बैठाकर रवाना हो गये। रास्ते में नानकी बाई की धर्मशाला में नानकी बाई को और आगे पीत कोठी में डॉक्टर पन्त को दर्शन देती हुई चली गयी।

राजा साहब जहाँ रहते हैं, वहाँ माँ को ले गये। रानी और राजमाता आदि ने माँ के दर्शन किये। वहाँ कुछ देर ठहरकर माँ देहरादून की ओर रवाना हो गयी। हम लोगों को कुछ दिन बाद आने को कह गयी हैं।

* * *

बारहवाँ अध्याय

(सन् 1346 बंगाब्द)

1 बैशाख, शनिवार– हम लोग गिरि महाराज के आश्रम में हैं। मुक्तानन्द गिरि (नानीजी) हम लोगों के साथ हैं।

6 बैशाख, गुरुवार– माँ के आदेशानुसार हम लोग आज रायपुर रवाना हो गये।

7 बैशाख, शुक्रवार– आज सवेरे किशनपुर के आश्रम में माँ के दर्शन करने गयी थी। माँ भी शाम होने के कुछ पहले रायपुर आ गयी।

9 बैशाख, रविवार– आज अपराह्न में माँ पुन: किशनपुर के आश्रम में चली गयी। हम लोगों को यहाँ रहने को कह गयी। उनका शरीर अत्यन्त अस्वस्थ है, फिर भी इस तरह उनका आना–जाना जारी है। सेवा की सुविधा–असुविधा की ओर उनका ध्यान नहीं है, बल्कि इस ओर खूब अनियम हो, यही वह कर रही हैं। कुछ कहने पर कहती हैं–'किसी तरह काम चल जाएगा। मैं तो एक जगह हूँ ही।'

किशनपुर रवाना होने के कुछ पूर्व यहाँ के और देहरादून से अनेक लोग माँ के दर्शन करने के लिये आये हैं। बात–बात में माँ अपने को दिखाती हुई कह रही हैं–''इस लड़की का खयाल रखा करो। देखते नहीं कि लड़के–लड़कियों को माँ–बाप कितने यत्न से पाल–पोसकर बड़ा बनाते हैं? बड़े होने पर बच्चों से कितने काम लिये जाते हैं। उस वक्त तो सब कुछ संतानें करती हैं, माँ–बाप को एक प्रकार से आराम मिलता है, इसलिए इस संतान के प्रति जरा ध्यान देकर इसे भी बड़ा बनाओ।'' इतना कहकर वे हँसने लगी।

सेवा आयी है। माँ को स्पर्श करने या उनकी दृष्टि से दृष्टि मिलाने पर अक्सर वह न जाने कैसी हो जाती है। किसी–किसी इन्द्रिय की क्रियाएँ बन्द हो जाती हैं। आज माँ उससे बोली–''मेरी नाड़ी देख।''

ज्यों ही उसने माँ की नाड़ी पकड़ी त्यों ही उसका शरीर और आँखें बन्द हो गयी। कुछ देर बाद तब कहीं बातचीत करने की स्थिति में आयी।

आँखों को खोलने में कुछ और समय लगा। इस स्थिति के बारे में अभय के साथ बातें होने लगी।

अभय ने कहा–''इनमें एक प्रकार का यह विश्वास उत्पन्न हो गया है कि माँ को स्पर्श करने पर ऐसा होगा ही। इसलिए ऐसा होता है। रहा बातचीत जो बन्द हो जाती है, आखिर यह क्यों होता है? अनेक महापुरुषों की अनेक उच्चावस्था की बातें सुन चुका हूँ, लेकिन उस स्थिति में पहुँचने पर भी उनमें ऐसा नहीं हुआ है।''

माँ ने कहा–''उन लोगों की प्राथमिक स्थिति कैसी हुई थी, यह तो तू नहीं जानता। इन्द्रियों की क्रियाएँ जरा बन्द हो जाती हैं, जरा संकुचित भाव भी उत्पन्न होते हैं, यही सब और क्या?''

सेवा कह रही है–''सुनो अभय, मेरी इच्छा अगर हो भी जाये तो ऐसा नहीं होगा। न जाने कितनी बार मैं इस तरह बनने के लिये माँ को स्पर्श कर चुकी हूँ, लेकिन कुछ भी नहीं हुआ। लेकिन कभी–कभी ऐसा अनुभव होता है कि शायद मेरे पूर्व के किये शुभ कर्म फलों के कारण ही माँ में यह भाव जाग्रत होता है, मुझे ऐसा हो, माँ की स्वयं कोई इच्छा–अनिच्छा नहीं है, मेरे कर्मों के फल से माँ में इस तरह का भाव जाग्रत होता है, उस वक्त मेरी स्थिति ऐसी हो जाती है। स्पर्श को क्या कहूँ, कभी–कभी माँ की दृष्टि से जब मेरी दृष्टि दूर से मिल जाती है तब भी ऐसा हो जाता है।''

जब उनसे पूछा गया कि कैसा हो जाता है तब वे बोली–''यही कि मन कितना चंचल है, कहाँ–कहाँ चला जाता है, लेकिन यही मन अचानक एकदम से स्थिर हो जाता है।''

आनन्द मिलता है कि नहीं, इस प्रश्न के जवाब में वे कहने लगी–''आनन्द किसे कहते हैं, यह मैं ठीक से नहीं जानती, लेकिन एक प्रकार का शान्त भाव अवश्य आता है। शरीर की क्रियादि सब बन्द हो जाती हैं।''

माँ ने कहा–''कभी भयानक रूप से हँसती है तो कभी भयानक रूप से रो पड़ती है।''

सेवा कहने लगी–''मैं जप करते–करते इस तरह हो जाती हूँ, ऐसी बात नहीं है। इस तरह की स्थिति में जप खूब चलता है। मैं देर तक कभी नहीं बैठती। पता नहीं, कौन मुझे जबरन बैठा देता है, और प्रत्येक श्वास में नाम चलता रहता है।''

माँ ने कहा–''इसके भीतर कुछ ऐसी चीजें हैं जो अनुकूल क्रिया न करने के कारण नष्ट होती जा रही हैं। सेवा यह नहीं जानती कि उसके भीतर क्या है? इस वस्तु के रहने के कारण ही स्पर्श और दृष्टि से यह इस तरह हो जाती है।''

सेवा बोली–''मैं स्वयं यह अनुभव करती हूँ कि माँ के भीतर से कुछ मेरे भीतर आ रहा है।''

शाम होने के पहले ही माँ किशनपुर रवाना हो गयी। मझली दीदी महिलाश्रम में रहने के लिये दिल्ली रवाना हो गयी। रायपुर अत्यन्त शान्त शहर है। माँ ढाका से चलकर सबसे पहले यहीं आयी थी। हम लोग माँ की स्मृतियों को लेकर यहीं रह गये।

10 बैशाख, सोमवार– पहाड़ के कुछ ऊपर कुटिया है जहाँ अभय रहता है। शाम को मैं उसकी कुटिया में गयी। उसके साथ बातचीत के दौरान वृन्दावन की चर्चा चल गई। माँ ने वृन्दावन में कहा था–''जब तुम अपना करणीय कार्य कर लेते हो तब स्वभावतः कृपा प्रत्यक्ष प्रकट हो जाती है, यह बात अपने में जितना सत्य है, उतनी ही अहेतुकी कृपा भी सत्य है। ऐसा क्यों होता है, यह बताया नहीं जा सकता। किसी हेतु का यहाँ प्रश्न ही नहीं है। उनका स्वभाव, उनकी लीला उसी रूप में वे करते आ रहे हैं, जब जैसी जरूरत होती है। वे द्रष्टा–रूप में भी तो हैं, पक्षपात का दोष उनमें नहीं हो सकता। सृष्टि भी अनादि है और कर्म भी अनादि है, सृष्टि का तारतम्य ऐसा क्यों हुआ? इस प्रश्न का कौन जवाब देगा? इसका एकमात्र उत्तर है– उनकी लीला।''

14 बैशाख, शुक्रवार, सन् 1346 बंगला (ई.सन् 1939) आज दोपहर को माँ एक साधु और अभय से बातें कर रही थी। कृपा के सम्बन्ध में कहने लगी–''इस शरीर से कृपा के रूप में अगर कुछ देखो तो समझ लेना कि वह भी होता जा रहा है। आग के पास जाने पर जिस प्रकार उसकी आँच लगना स्वाभाविक है, ठीक उसी प्रकार अगर इस शरीर की कोई कृपा देखो तो वह भी वैसा ही है, अन्यथा 'कृपा करूँगी' इस भाव की कोई बात इसमें नहीं है। इच्छा–अनिच्छा का भी कोई द्वन्द्व नहीं है।''

एक बार बातचीत के सिलसिले में माँ कह चुकी हैं–''अहैतुक कृपा भी

होती है। ऐसा क्यों होता है? इस 'क्यों' का कोई जवाब नहीं है। इस शरीर के द्वारा सब कुछ हो गया है।''

अभय ने कहा–''अच्छा, छोटे-मोटे कामों में भी आपकी इच्छा-अनिच्छा कुछ नहीं होती?''

माँ जवाब दे रही हैं–''एकदम से कुछ भी नहीं। यह जो आना-जाना हो रहा है, वह कैसा है, जानता है? अगर इसमें इच्छा का प्रकाश देखते हो तो वह भी स्वभावतः होता जा रहा है। यहाँ तुम लोगों की इच्छा नहीं है, इसे जान लेना। जैसे हवा कागज को उड़ाती हुई ले जाती है, जब जिसकी आवश्यकता होती है, वह हो जाती है।''

न जाने किस बात पर अभय कह उठा–''पूर्ण ब्रह्म नारायण यही बात तो आप कहती रही।'' कहकर वह हँसने लगा।

माँ तुरन्त साधुजी से कहने लगी–''देखिये पिताजी, मैं क्या करूँगी? जैसे कै (वमन) आने पर लोग कै करते हैं, यह भी ठीक उसी तरह का है। सर्वांश में उपमा नहीं होती। इच्छा-अनिच्छा, विचार, बुद्धि या लोग क्या कहेंगे आदि बातें इस भाव के निकट नहीं आती। जो होना है, वह हो जाता है।''

अभय कह रहा है–''अच्छा, माँ का पूर्वजन्म है कि नहीं?''

माँ हँसती हुई सबको दिखाती हुई कह रही हैं–''यही सब पूर्वजन्म हैं। अगर यह कहो कि इस जगत् में सब स्थूल और सूक्ष्म देख रहा हूँ तो सब वही हैं।''

इसके बाद पूजादि के समय देवियों की तरह किस तरह आसन हो जाते थे, यहाँ तक कि वाहन आदि देखती थी, इन सबके बारे में किंचित् चर्चा हुई। लगभग 4 बजे हम लोग मसूरी रवाना हो गये।

श्री श्री माँ उत्तरकाशी की ओर

16 बैशाख, रविवार– एक दिन मसूरी में ठहरकर माँ आज उत्तरकाशी की ओर चल पड़ी। साथ में अखण्डानन्दजी, रूमा देवी, अभय, कानू, शिशिर, कमलाकान्त, मैं, पूर्वोक्त पारसी भाई खेरेश* आदि लोग थे। माँ

---

* यह युवक आज से कई वर्ष पूर्व भोलानाथजी से दीक्षा लेकर कुछ दिनों से माँ के साथ घूम रहा है। जमशेदपुर में काम करता है।

अत्यन्त दुर्बल हो गयी हैं, परन्तु उनका घूमना–फिरना बन्द नहीं किया जा रहा है। अक्सर शरीर की ऐसी स्थिति हो जाती है कि हम लोग चिन्तित हो उठते हैं। सभी लोग कहते हैं कि ऐसी हालत में विश्राम आवश्यक है, पर इन बातों पर वे ध्यान नहीं देती। हमेशा अपने भाव में घूमती–फिरती रहती हैं। कभी–कभी लगता है, जैसे घूमने–फिरने के कारण ही वे जरा स्वस्थ–सी लगती हैं और कभी–कभी इसके विपरीत मालूम होती हैं।

माँ कहती हैं–''घर पर बैठाकर भी मुझे स्वस्थ कहाँ रख पा रही हो? दूसरी ओर घूमने–फिरने से शरीर की कोई विशेष हानि नहीं हो रही है। जो कुछ होना है, वह हो जाएगा।''

फलस्वरूप कोई बाधा देने का साहस नहीं कर पाता, इसलिए इसी तरह चल रहा है।

माँ उत्तरकाशी जा रही हैं जानकर हरिराम हंस, गोविन्द भाई आदि माँ के साथ मसूरी तक आये थे। रवाना होने के समय कुछ दूर तक डाण्डी के साथ वे लोग आये। सभी रो रहे हैं। माँ कितने दिनों बाद लौटेंगी, कौन जाने। माँ सभी को मुस्कुराती हुई प्रबोध देती जा रही थी।

17 **बैशाख, सोमवार–** हम चल रहे हैं। चलते–चलते शिशिर बुरी तरह थक गया, इसलिए माँ उसे अपनी डाण्डी पर बैठाकर स्वयं पैदल चलने लगी। शाम को बलडियाना पहुँचने पर माँ को बुखार आ गया। यह सोचा गया कि कल इस चट्टी पर आराम करेंगे। सभी श्रान्त और क्लान्त थे।

रात में अनेक तरह की बातें माँ से अभय पूछ रहा था। बात–बात में यह चर्चा चल पड़ी कि जो लोग देह त्याग कर चुके हैं, वे लोग जब तक दूसरा जन्म नहीं ले लेते तब तक उनमें इस जन्म की स्मृतियाँ रहती हैं या नहीं?

माँ ने कहा–''सभी की एक–सी स्थिति नहीं होती। स्मृति रहती है और स्मृति की कोई बात नहीं होती। दोनों तरह की स्थिति होती है।''

इस तरह की बातें होती रही। कुछ दिनों पूर्व की एक बात याद आ गयी, उसे लिख रही हूँ। एक बार माँ से किसी सज्जन ने पूछा था–''माँ, किसी रूप की चिन्ता अगर मन में उत्पन्न न हो तो मैं शून्य की चिन्ता कैसे कर सकता हूँ?''

माँ ने कहा था–"शून्य भी तो एक प्रकार का रूप ही है। अगर अच्छा लगे तो खूब अच्छी तरह बैठकर शून्य की चिन्ता करते रहना। इसके बाद देखोगे कि शून्य की चिन्ता नहीं रहेगी।"

माँ अक्सर कहा करती हैं–"अधिक देर तक स्थिर रूप से बैठे रहने का प्रयत्न करना, अच्छी बात है। सुधि हीन स्थिति में स्थिर होकर मन को शून्य करके बैठना अच्छा होता है। किम्वा मन को श्वास की ओर रखो और मंत्र को श्वास के साथ मिला दो तब देखोगे कि काम हो गया है। सिर्फ श्वास की ओर लक्ष्य रखते हुए अगर बैठे रहो तो मन को स्थिर रखने में सहायता मिलती है।

18 वैशाख, मंगलवार– आज हम बलडियाना में ठहर गये।

19 बैशाख, बुधवार– आज हम लोग 'धरासू' पहुँचे। आज 19 वैशाख है यानी **श्री श्री माँ का जन्म दिवस**। भक्तों की इच्छा हुई कि आज माँ की पूजा की जाए। यह चट्टी गंगा किनारे स्थित है, अत्यन्त मनोरम स्थान है। संयोग की बात है कि मैं अभी भूखी हूँ, इसलिए अभय और कमलाकान्त ने मुझे माँ की पूजा करने को कहा। वे लोग पहाड़ पर से बिल्वपत्र और फूल संग्रह कर ले आये। आज पूर्णिमा और चन्द्रग्रहण दोनों हैं। यह तय किया गया कि शाम के समय माँ की पूजा शुरू की जाएगी।

इधर रास्ते में आते समय अखण्डानन्द स्वामीजी का वहिर्वास यानी पहनने वाला कपड़ा फट गया था। यह देखकर माँ बोली–"जब यह फट गया है तो इसे गंगा में फेंक दो। अब कपड़ा पहनने की जरूरत नहीं है। लंगोटी तुम्हारे पास है ही, जरूरत पड़ने पर ऊपर से आलखाल्ला पहन लेना।"

उन्होंने इसे स्वीकार कर लिया। माँ हँसती हई बोली–"उत्तरकाशी तो संन्यासियों का गढ़ है। वहाँ पहुँचने के पहले ही पिताजी को वस्त्र त्याग करना पड़ा।"

शाम को माँ की पूजा करने बैठी। बच्चों ने कीर्तन करना प्रारम्भ किया। साढ़े दस बजे ग्रहण समाप्त होगा। ग्रहण समाप्त होने के बाद किसी सूरत से भोजन बनाकर माँ को भोग दिया। इतनी असुविधाओं के होते हुए भी किसी तरह से बड़े आनन्द के साथ माँ का जन्मोत्सव मनाया गया। रात दो बजे हम सोने गये।

20 बैशाख, गुरुवार– अब यहाँ से उत्तरकाशी 18 मील और रह गया है। हम लोग भोर के वक्त रवाना हुए। मार्ग में एक चट्टी पर भोजन करने के पश्चात् लगभग 5 बजे हम उत्तरकाशी पहुँच गये। यहाँ सतीश मुखोपाध्याय महाशय पूजादि कार्य तथा साधन-भजन के लिये नियुक्त हैं। माँ को देखते ही उन्होंने साष्टांग प्रणिपात किया। स्थानीय दो-चार व्यक्ति आकर माँ का दर्शन करने लगे।

माँ इतना अस्वस्थ हो गयी हैं कि एक तरह से कुछ भी हजम नहीं कर पा रही हैं। ऐसी हालत में पता चला है कि यहाँ आलू के सिवाय और किसी किस्म की तरकारी नहीं मिलती। गाय का दूध तो दुष्प्राप्य है। ऐसी जगह माँ क्यों चली आयी, यह वही जानें। यहाँ कितने दिनों तक रहेंगी, पता नहीं। मुझे आदेश दिया गया है कि एक माह तक शरीर को ठीक-ठाक रखते हुए यहाँ से चला जाना पड़ेगा। विंध्याचल जाकर कुछ दिन रहना पड़ेगा। अपने शरीर की ओर वे विशेष ध्यान नहीं दे रही हैं। जो कुछ करना है, बराबर करती जा रही हैं। उन्हें बाधा देने की क्षमता किसी में नहीं है।

21 बैशाख, शुक्रवार– आज माँ काफी देर से उठी। दोपहर को माँ को भोग लगा चुकी। अभय और मेरे साथ बातें कर रही हैं। बात-बात में अभय ने पूछा–''अच्छा, माँ को कभी झपकी में झूमते देखा है कि नहीं?''

मैंने जवाब दिया–''मैंने कभी नहीं देखा। यहाँ तक कि जब दिन-रात लोगों की भीड़ में बैठी रहती हैं तब भी उन्हें झपकी लेते नहीं देख पायी।''

इसके बाद झपकी लेने की चर्चा चल पड़ी। मैंने अभय से कहा–''अभय, मैं एक आश्चर्यजनक दृश्य देख चुकी हूँ। अक्सर मैं कीर्तन या अन्य किसी समय बैठे-बैठे झपकी लेने लगती हूँ। माँ काफी लोगों से घिरी हुई बैठी हैं और मैं दूर किनारे बैठी झपकी ले रही हूँ। ऐसी स्थिति में जब कभी मेरी नजर माँ की ओर गयी तब देखा कि वे मेरी ओर देख रही हैं। मुझे देखकर आश्चर्य होता है कि इस क्रिया में आज तक कभी व्यतिक्रम नहीं हुआ है। यही वजह है जब कभी मैं तन्द्रा अनुभव करती हूँ तब वही चिन्ता सताती है कि शायद माँ मुझे देख रही हैं तब मेरी तन्द्रा भंग हो जाती है और मेरा दिल धड़कने लगता है। उस वक्त मैं भयभीत-सी होकर माँ की ओर देखने लगती हूँ और तब देखती हूँ कि वे मेरी ओर देख रही हैं। न जाने कितने आदमी चारों तरफ बैठे हैं, गायन-वादन हो रहा है, पर ज्यों ही

मैं झपकी लेना शुरू करती हूँ त्यों ही माँ की दृष्टि अनायास ही मेरी ओर उठ जाती है। इसके बाद फिर तन्द्रा नहीं आती। जब जाग्रत स्थिति रहती है तब देखती हूँ कि माँ उस वक्त मुझे नहीं निहारती। उस वक्त मैं सोचा करती हूँ कि इस वक्त तो मैं जाग रही हूँ, पर माँ अब क्यों नहीं देख रही हैं?''

ये बातें सुनने के पश्चात् अभय कह उठा–''वाह! यह तो बड़े आश्चर्य की बात है।''

माँ हँसती हुई बोली–''सचमुच यही होता है। यह कैसे होता है, जानता है? मेरी आँखें ठीक उसी समय उधर घूम जाती हैं और यह (मेरी ओर इशारा करती हुई) चौंककर मेरी ओर देखने लगती है। ऐसा क्यों होता है? इसमें एक कारण है। सर्वदा इसका ध्यान मेरी ओर रहता है, भले ही यह बातचीत करती रहे, पर ध्यान इधर (अपने को दिखाती हुई) रहता है। लेकिन जब इसे तन्द्रा आ जाती है तब इधर ध्यान नहीं रहता और तभी मेरी दृष्टि इसकी ओर चली जाती है।''

इस तरह की बातें देर तक चलती रही।

दोपहर को माँ कुछ देर तक विश्राम करती रही, इसके बाद सभी पुनः माँ के पास जाकर बैठ गये।

अपराह्न में माँ को लेकर हम लोग घूमने के लिये चल पड़े। गंगा के किनारे टहलते हुए, हम लोग एक मैदान में आकर बैठ गये। वहाँ कई साधु माँ का दर्शन करने के लिये आए। बातचीत के सिलसिले में माँ ने एक साधु से पूछा–''कितने दिनों से यहाँ हैं?''

साधुजी–''लगभग तीन साल से।''

माँ ने कहा–''कैसा अनुभव कर रहे हैं?'' जमीन का क्षेत्रफल बढ़ रहा है न? अर्थात् अल्प में संतोष तो नहीं होता?'' इतना कहने के पश्चात् वे अपनी स्वाभाविक मधुर हँसी हँसने लगी।''

लड़के–लड़कियों का दल माँ के साथ चलने लगा। उनके साथ कोई बातें नहीं कर रहा था, पर वे बराबर माँ के साथ–साथ आगे बढ़ रहे थे। कुछ दूर आगे बढ़ने पर माँ ने उन लोगों से पूछा–''क्यों, तुम सब मेरे दोस्त बनोगे?''

यह बात सुनकर कुछ बच्चों ने शर्म से अपना मुँह छिपा लिया तो कुछ बच्चों ने सिर हिलाते हुए माँ की शर्त को स्वीकार किया। इनमें से कुछ को राजी होते देख एवं माँ के बार-बार पूछने पर दूसरों को भी भरोसा हुआ। वे माँ की बात पर राजी हो गये। इस तरह धीरे-धीरे दोस्तों की तायदाद बढ़ती गयी।

माँ हँसती हुई बोली-"भाई वाह! मेरे तो बहुत से दोस्त हैं, देख रही हूँ। अच्छा दोस्तो, तुम सब मेरी एक बात मानोगे?"

सभी बच्चों ने सिर हिलाते हुए स्वीकार किया। तब माँ बोली-"मेरी पाँच बातें हैं? 1. सवेरे उठकर भगवान् का नाम लोगे। इसके बाद उनके निकट प्रार्थना करते हुए कहोगे कि हे भगवान्, मैं अच्छा लड़का या लड़की बन सकूँ। 2. अपने माता-पिता की आज्ञा मानोगे। 3. सदा सच बोलोगे। 4. मन लगाकर पढ़ोगे-लिखोगे। 5. इतना करने के बाद थोड़ी-बहुत शैतानी कर सकते हो।"

इतना कहने के पश्चात् माँ हँस पड़ी। उनके साथ-साथ बच्चे भी हँसने लगे। सभी बच्चे यहीं रहते हैं। हम लोगों में से किसी ने पूछा-"ये बच्चे माँ का साथ क्यों नहीं छोड़ रहे हैं? शायद माँ का शिशु भाव इन्हें अपनी ओर आकर्षित कर रहा है।"

शाम को मन्दिर में वापस आकर हम सब कीर्तन करने लगे।

22 बैशाख, शनिवार- आज जन्म-तिथि है। माँ चुपचाप भाव में हैं। शाम से कीर्तन आरम्भ हुआ। अस्त से उदय काल तक कीर्तन होता रहेगा। सारी रात नाम होता रहा। रात के अन्त में कमलाकान्त ने माँ की पूजा की। यहाँ किसी तरह से हम लोगों ने उत्सव मनाया।

23 बैशाख, रविवार- जन्मतिथि के उपलक्ष्य में आज सभी लोगों को मिठाइयाँ बाँटी गयी। ग्यारह ब्राह्मणों द्वारा रुद्री का पाठ कराया गया।

आज माँ गंगोत्री जाने के बारे में चर्चा करने लगी। वहाँ तक जाने के लिये डाण्डी नहीं मिलती। लेकिन यह जानकर कि माँ वहाँ जाना चाहती हैं, सब लोग इसके लिये प्रबन्ध करने लगे। अगर पूरा इन्तजाम हो गया तो कल सभी लोग यहाँ से रवाना हो जायेंगे।

साधुओं का दल तथा अन्य तीर्थयात्री मन्दिर में आकर माँ के दर्शन कर रहे हैं।

24 बैशाख, सोमवार– घटनाचक्र के कारण आज हम गंगोत्री यात्रा के लिये रवाना नहीं हो सके। कल भोर में हम रवाना होंगे।

श्री श्री माँ दुर्गम गंगोत्री मार्ग की ओर

25 बैशाख, मंगलवार– आज भोर के वक्त माँ के साथ हम लोग गंगोत्री की ओर रवाना हो गये। माँ का शरीर अत्यन्त दुर्बल है, ऐसी स्थिति में वे क्यों इस दुर्गम यात्रा के लिये चल पड़ी हैं, यह वे ही जानें। तीर्थ करना उनका उद्देश्य नहीं हो सकता। तब क्या कारण है? कौन जाने। सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह है कि नीचे रहते समय जिस पेट में दूध या और कोई सामग्री हजम नहीं होती थी, सिर्फ परवल और कच्चे पपीतों का जूस पिलाया जाता था और अब इस पहाड़ पर सूखे पत्ते, पुराने आलू, जो कुछ अच्छा से अच्छा मिल रहा है, वही खिलाया जा रहा है, वे सब कुछ हजम कर रही हैं।

मैंने माँ से कहा–''माँ, मैं यह बराबर से देखती जा रही हूँ कि जब तुम अपने भाव में जो कुछ करती हो तब कोई गड़बड़ी नहीं होती। इन दिनों पहाड़ पर हो और यह सब खाद्य-सामग्री हजम कर रही हो। अब तक कोई शिकायत पैदा नहीं हुई।''

माँ हँसती हुई बोली–''मैं भी यही सोच रही हूँ कि कैसे सब हजम हो रहा है?''

दोपहर को एक चट्टी में भोजनादि करने के पश्चात् 4 बजे के लगभग हम पुनः यात्रा पर निकल पड़े। यहाँ से 9 मील दूर भाटियाली नामक चट्टी में रात गुजारने की इच्छा है। चलते-चलते रात हो गयी। कुछ देर पहले माँ डाण्डी से उतरकर हमारे साथ पैदल चलने लगी थी। तीन मील दूर पैदल चलने के पश्चात् हम भाटियाली पहुँचे। हम सब पैदल चलते रहे। मार्ग काफी खराब था। सीधे रास्ते पर पैदल चलने से जिनका दिल काँप उठता है, उन्हें कितनी सावधानी से स्वस्थ दशा में लाना पड़ा, फिर भी वे अस्वस्थ हो गयी। आज काफी दूर तक वे दुर्गम पथ पर पैदल चलती रही और भोजन भी उसी तरह का था।

26 बैशाख, बुधवार– रात भाटियाली में गुजारने के पश्चात् हम लोग आज दोपहर को आगे की ओर रवाना हो गये। शाम तक हम गंगानानी

पहुँचे। मार्ग में चलते-चलते मैं अपने दल से काफी आगे बढ़ आयी थी। एकदम अकेली, जन-मानव शून्य मार्ग, शाम हो चली थी, अत्यन्त भयानक वातावरण था। फलस्वरूप मैं तेज कदमों से आगे बढ़ने लगी। क्योंकि शाम के धुंधलके में फिर मार्ग दिखाई नहीं देगा। अन्य लोग कितने पीछे हैं, इसका अन्दाजा न होने के कारण मैं तेजी से आगे बढ़ती गयी। मन में किंचित् भय उत्पन्न हुआ, पर थोड़ी देर के लिये, क्योंकि मन में यह विश्वास था कि माँ पीछे-पीछे आ रही हैं। इस दुर्गम मार्ग पर अकेली चलने पर मुझे जरा आनन्द विशेष रूप में मिल रहा था। जिस प्रकार अकेले में कभी-कभी यह विश्वास होता है कि भगवान् हैं, ठीक उसी प्रकार मेरे मन में विश्वास था कि जब मेरे साथ माँ हैं तब डर किस बात का?

गंगानानी चट्टी से कुछ पहले गरम पानी का एक सोता दिखाई दिया, वहाँ हाथ-मुँह धोकर पुनः आगे बढ़ चली। कुछ दूर आगे बढ़ने पर (शाम हो गयी थी) देखा कि सामने से तीन पहाड़ी लोग उतरे चले आ रहे हैं। पास आकर बोले-''माताजी, ऋषिकुण्ड में स्नान नहीं करेंगी?''

मैंने कहा-''अभी नहीं। मेरे साथ काफी लोग हैं। उनके आने पर विचार किया जाएगा।''

वे पण्डा थे, मेरे साथ-साथ चट्टी में आये। चट्टी पर पहुँचते ही मैंने एक लालटेन के साथ एक आदमी को तुरन्त भिजवाया। अंधेरा हो गया है, डाण्डी वाले तथा अन्य लोगों को आने में कष्ट होगा। इसके अलावा मैं यहाँ तक अकेली चली आयी हूँ, सम्भव है कि लोगों को मेरे बारे में चिन्ता हो। यही वजह है कि यहाँ पहुँचते ही सबसे पहले मैंने यह करना उचित समझा। पहाड़ी लोग बड़े विश्वस्त होते हैं। इस इलाके में चोरी-डकैती नहीं होती। शाम होने के कुछ देर बाद ही माँ तथा अन्य लोग आ पहुँचे। आते वक्त गरम पानी के सोते में शिशिर और अभय नहाकर आये हैं। मेरे आने के कुछ देर बाद कानू आ गया। चारों तरफ ऊँचे-ऊँचे पर्वत हैं और पास ही गंगा तेज शोर मचाती हुई बह रही है। झरनों का यहाँ अभाव नहीं है। कोई छोटा है तो कोई बड़ा। हम माँ के साथ यात्रा पर निकल पड़े हैं, यह अत्यन्त आनन्द की बात है।

रात में माँ सो गयी। बाकी लोग भी सोने चले गये। कल भोर में पुनः यात्रा करनी होगी, इसलिए सारा सामान ठीक से रखने के पश्चात् मैं और

देवीजी माँ के पास जाकर कुछ देर के लिए बैठी।

थोड़ी देर बाद जब मैं सोने गयी तो माँ ने अस्पष्ट स्वर में पुकारा- ''खुकुनी।''

मैं घबराकर तुरन्त उठी और माँ के पास जाकर उनके बदन पर हाथ फेरने लगी। फिर धीरे से पूछा-''क्या बात है माँ? क्यों बुला रही थी?''

माँ ने स्पष्ट स्वर में कहा-''शरीर न जाने कैसा हो गया था।''

मैं चुपचाप उनके पैरों तथा हाथों पर हाथ फेरती रही। थोड़ी देर बाद माँ स्वयं बोली-''तू अभी तक सोने नहीं गयी?''

मैंने पूछा-''इस वक्त शरीर की स्थिति कैसी है?''

माँ ने कहा-''अभी तक ठीक नहीं हुआ है।''

मैंने कहा-''बाद में सो जाऊँगी। अभी थोड़ी देर बैठना चाहती हूँ।''

कुछ देर तक इन्तजार करने के बाद जब मैंने देखा कि अब माँ किसी प्रकार का शब्द नहीं कह रही हैं तब मैं सो गयी।

27 बैशाख, गुरुवार– आज भोर के वक्त हम लोग आगे की ओर रवाना हुए। आज की यात्रा का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। काफी दूर तक डाण्डी नहीं जा सकी। पैदल चलने में भी काफी दिक्कत हुई। अत्यन्त कठिनाई से डाण्डी वालों की मदद प्राप्त कर हम इस मार्ग को पार कर सके। हम कैसे मार्ग को पार कर सके, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती। हर क्षण हमें यही अनुभव होता था कि अब शायद गिर पड़ेंगे। कई जगह मार्ग ध्वस्त होकर नीचे गिर गया था। कहीं लताओं को पकड़कर तो कहीं पहाड़ी कुलियों की सहायता से हम पार होते रहे। सभी के चेहरे पर थकावट के लक्षण दिखाई दे रहे थे।

एक जगह काफी देर तक विश्राम करने के पश्चात् पुनः हम आगे की ओर बढ़े। सामने खड़ी चढ़ाई थी। मार्ग में हमने यह निश्चय किया कि आज 'शुकी' पहुँचकर आराम करेंगे। खाते-पीते शाम हो गयी।

एक बार माँ ने मुझसे पूछा-''कल तू कब तक बैठी रही?''

इस प्रश्न का मतलब अच्छी तरह न समझ पाने के कारण मैंने पूछा- ''कब?''

माँ ने कहा-''कल रात को मेरे पास तू कब तक बैठी रही?''

और तभी मुझे सभी बातें याद आ गयी। मैंने कहा–"हाँ काफी देर तक बैठी रही। तुम न जाने कैसी हो गयी थी।"

यह सुनकर माँ जरा हँसती हुई बोली–"कल अगर तू मेरे चेहरे की छाया देखती तो डर जाती।"

यह सुनकर मैंने पूछा–"क्यों?"

इस प्रश्न का उत्तर न देकर माँ बोली–"मैं सोच रही थी कि कोई मेरी शक्ल न देखे। मैंने अपना मुँह ढाँप रखा था।"

मैंने कहा–"कमरे में अंधेरा होने के कारण कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था।"

माँ ने इस बारे में पुन: कोई चर्चा नहीं की। मैं भी चुप रही। सभी लोग काफी थके हुए थे, इसलिए आज हम यहीं ठहर गये।

28 बैशाख, शुक्रवार– आज हमें रवाना होने में काफी विलम्ब हो गया। यहाँ से चलकर हमने धराली चट्टी पर भोजन किया। यहाँ से 6 मील की दूरी पर एक चट्टी है, वहाँ अपराह्न में पहुँच जाना था, परन्तु आगे का मार्ग काफी खतरनाक है यह जानकर हमने आज यहीं डेरा डाल दिया।

माँ को हल्का बुखार है। यहाँ एक संन्यासी हैं जिनका नाम है–कृष्णानन्द ब्रह्मचारी। माँ के बारे में समाचार सुनकर मुलाकात करने चले आये। एक तरह ये उलंग हैं। सिर्फ भोजपत्र की लंगोटी पहने हुए हैं। यहाँ के एक सेठ की जबानी पता चला कि गर्मी–जाड़ा हर मौसम में आप इसी तरह रहते हैं। इसके अलावा नित्य 3–4 घण्टे तक जहाँ इच्छा होती है, वहीं गंगा के ठण्डे पानी में खड़े रहते हैं। इस क्षेत्र में जब बर्फ गिरने लगती है तब भी आप अपना नियम भंग नहीं करते।

बंगाल के निवासी हैं। आज भी आप नियमानुसार गंगा में लगभग एक घण्टे तक खड़े रहे। पीछे दण्ड की तरह एक लकड़ी की टेक लगा लेते हैं। उस लकड़ी पर बैठने लायक स्थान को चिकना बना लिया है। एक पैर से खड़े रहते हैं। बीच–बीच में पैर बदल लेते हैं। घण्टा भर के बाद तीन बार प्रदक्षिणा करने के पश्चात् उन्होंने गंगा को प्रणाम किया। तत्पश्चात् ऊपर चले आये। माँ से इनकी विशेष बातचीत नहीं हुई। पता चला कि आप 18 वर्ष से यहाँ तपस्या कर रहे हैं। इनके बदन की त्वचा काफी मोटी हो गयी है।

गर्मी के मौसम में भी यहाँ ठंडक काफी है, पर ये जाड़े में भी उलंग रहते हैं। यह भी पता चला कि आप एक बार गंगोत्री गये थे। इन्हें गंगाजल में साधना करते देख कुछ अन्य संन्यासी भी यह साधना करने गये तो उनके पैर फूल गये।

माँ ने कहा–"साधना करने का भाव रहने पर सब कुछ बरदाश्त हो जाता है। केवल अभ्यास करने पर क्या होता है, देख ले।"

इस चर्चा पर माँ अपने बारे में पूर्व कथा कहने लगी–"जब मैं गृहस्थी में काम–काज करती थी तब ब्लाउज–समिज का व्यवहार नहीं करती थी। बरसात के मौसम में भीगते रहने के कारण बदन की त्वचा सफेद हो जाती थी, लेकिन उस वक्त उधर ध्यान नहीं दे पाती थी। जाड़ा–गर्मी जैसे प्रकट नहीं होती थी। इसके बाद देखो, जब कथरी या कपड़ा ओढ़ने लगी तब ओढ़ने के साथ–साथ सर्दी महसूस होने लगी। कितने चमत्कार की बात है।"

इन बातों के पश्चात् माँ लेट गयी। हम सब बैठे रहे। मैंने माँ से पूछा–"माँ, उस दिन रात को क्या बात हुई थी, कुछ बतायी नहीं। तुम्हारा मुँह अगर देखती तो क्यों डर जाती, क्या बात रही?"

बार–बार यही प्रश्न करने पर माँ बोली–"उस दिन कई साधु आये थे।"

नारायण दादा ने पूछा–"साधुओं की पोशाक कैसी थी?"

माँ जरा हँसकर बोली–"हिमालय के संन्यासी नंगे रहते हैं।" इसके बाद बातचीत के दौरान मेरे प्रश्न के उत्तर में कहने लगी–"उनके भाव में शरीर न जाने कैसा हो गया था। समझी कि नहीं?"

अभय ने प्रश्न किया–"उनका भाव कैसा होता है, माँ?"

माँ ने संकुचित भाव से कहा–"वही महादेव का भाव। उनके भाव के कारण यह शरीर भी जैसे बदल गया। इसीलिए कह रही थी कि अगर उस समय मेरा चेहरा देखती तो डर जाती।"

अभय–"क्या मतलब? क्या उस समय आपके सिर पर एक और आँख हो गयी थी?"

माँ इस बात पर हँस पड़ी। इस प्रश्न का जवाब न देकर माँ बोली–"इसके बाद कैसा हुआ? जैसे ऋषि–मुनि यातायात करते हैं, सुना जाता है, ठीक उसी तरह।"

मैंने पूछा–"क्या मतलब? शून्य मार्ग से क्या?"

माँ ने कहा–"उसी तरह, और क्या। शरीर न जाने कहाँ चला जा रहा है। इसके पश्चात् फिर कुछ देर बाद उसी तरह शरीर हल्का होता गया। ठीक उसी समय मैंने तुझे बुलाया।"

अभय ने पूछा–"शरीर कहाँ चला जा रहा है, क्या मतलब है? क्या यह वस्त्र पड़ा रह गया और आपका शरीर कहीं चला गया?"

माँ जरा हँसकर बोली–"तुम लोगों ने अक्सर यह देखा होगा कि यह शरीर मौजूद है, पर अन्य एक रूप में शरीर चला जा सकता है।" फिर मेरी ओर देखती हुई बोली–"कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अकेली घर में हूँ, उस वक्त अक्सर ऐसा महसूस होता है कि जिस प्रकार बन्द दरवाजे को खोलकर लोग आकर मिल जाते हैं, ठीक इसी तरह।"

इतना कहकर वे चुप हो गयी। अभी भी यहाँ काफी जाड़ा पड़ रहा है। यहाँ से गंगोत्री 13 मील है।

माँ गंगोत्री में

29 बैशाख, शनिवार– आज काफी पहले ही हम रवाना हुए। 6 मील दूर भैरवा में भोजनादि समाप्त कर आगे की ओर चल पड़े। शाम के समय हम गंगोत्री पहुँच गये। यहाँ का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोरम है। यहाँ ब्रह्मज्ञ माँ के शिष्य परमानन्द स्वामीजी रहते हैं। ये माँ को पहले देख चुके हैं। उत्तरकाशी के काली-मन्दिर में भी आप कुछ दिन रह चुके हैं। हमारे साथ ब्रह्मज्ञ माँ के आश्रम से नारायण दादा आये हुए हैं। आप माँ के आदेश से उत्तरकाशी के काली-मन्दिर में भी कुछ दिन रह चुके हैं। इस वक्त वे माँ के साथ आये हुए हैं।

गंगोत्री में **बाबा काली कम्बली** वाले की धर्मशाला है। यहाँ काफी आदर-सत्कार किया जाता है। कम्बलों का अभाव महसूस नहीं होता, वे लोग अपने यहाँ से यात्रियों को कम्बल देते हैं। परमानन्द स्वामी ने समस्त प्रबन्ध कर दिया। यहाँ गृहस्थ लोग नहीं रहते। पता चला कि टेहरी के राजा का आदेश है कि सपत्नीक यहाँ कोई नहीं रह सकता।

यहाँ कृष्णाश्रम नामक एक ख्याति प्राप्त साधु रहते हैं। अधिकांश लोग

इनके नाम से परिचित हैं। कहा जाता है कि आप कई साल तक बर्फ के भीतर तपस्या करते रहे। यहाँ एक कुटिया में रहते हैं। इनके साथ केवल एक शिष्या रहती है। जाड़े के मौसम में जब यहाँ कोई नहीं रहता, चारों तरफ हिमपात होता है, उन दिनों भी कृष्णाश्रम यहीं रहते हैं। बिल्कुल उलंगावस्था में रहते हैं। हम लोग कल उनका दर्शन करने जाने वाले हैं, इस सम्बन्ध में बातें हो रही हैं। गंगा के उस पार उनकी कुटिया है। गंगा के उस पार साधुओं के रहने योग्य और भी कुटिया हैं। गंगोत्री समुद्रतल से 10 हजार फुट ऊँचाई पर स्थित है। सर्दी भी काफी है। गंगा किनारे स्थित धर्मशाला में हम लोगों ने डेरा डाल दिया। यहाँ का पोस्ट ऑफिस उत्तरकाशी है। महीने में दो बार डाक आती है।

30 बैशाख, रविवार– आज संक्रान्ति है। हम लोग माँ के साथ कृष्णाश्रम स्वामीजी को देखने के लिए गये। वे उलंगावस्था में बैठे हुए हैं। एक छोटी-सी कोठरी जो कि चीड़ की लकड़ियों से बनायी गयी है, में रहते हैं। एक कोने में घास-पतवार का बिछौना है, उसी पर सोते हैं। एक स्थानीय सेविका भी है। पता चला कि यह लड़की स्वामीजी के यहाँ 8-9 वर्ष से है। अपनी गृहस्थी छोड़ आयी है। गेरुआ कपड़ा पहनती है, स्वामीजी से दीक्षा ले चुकी है, सिर पर पगड़ी बाँधती है। देखने में कम उम्र वाले ब्रह्मचारी-सा लगती है। स्वामीजी की कुटिया के अलावा दो अन्य कुटिया हैं जिनमें एक में सेविका रहती है और दूसरी में रसोई बनायी जाती है। यह भी पता चला कि इस लड़की के आने के बाद ये सब कुटिया बनायी गयी हैं। इसके पूर्व स्वामीजी बर्फीली पहाड़ियों में कहाँ रहते थे, किसी को पता नहीं। कभी-कभी पहाड़ी पुरुष इन्हें खोजकर भोजनादि दे आया करते थे। जब कोई भक्त कुछ दे जाता था तब उसे वे खा लेते थे, वर्ना यों ही रह जाते थे। हमेशा मौन रहते हैं। जब बर्फ गिरने लगती है तब यहाँ कोई रह नहीं पाता, पर स्वामीजी और उनकी यह शिष्या रहती हैं। चारों ओर बर्फ से ढक जाता है। इनकी त्वचाएँ काफी मोटी हो गयी हैं। स्वामीजी कभी-कभी जंगल से लकड़ी काटकर ले आते हैं। वक्त जरूरत पर अन्य काम भी करते हैं।

यह भी सुना है कि एक महिला शिष्या पास रहने के कारण कुछ लोग शिकायत करते रहते हैं, लेकिन स्वामीजी को एक बार देख लेने के बाद किसी के मन में यह शिकायत फिर बनी नहीं रहती।

हम लोग वहाँ एक घण्टा रहकर चले आये। स्थान, काल, पात्र सभी सुन्दर थे, इसलिए सब भला मालूम हुआ। मुझे विशेष रूप से यह स्थान पसन्द आया, क्योंकि गंगा किनारे कुटिया है, पास ही गंगा की अनवरत कलकल ध्वनि पवित्र भाव उत्पन्न कर रही थी।

1 ज्येष्ठ, सोमवार– आज लिखने लायक कोई विशेष बात नहीं है। हम लोग कल यहाँ से रवाना हो जाएँगे। परमानन्द स्वामीजी इस क्षेत्र में गत चार–छः वर्षों से निवास कर रहे हैं। जाड़े के मौसम में उत्तरकाशी चले जाते हैं। काफी कर्मठ व्यक्ति हैं। हम लोगों के लिये सारा प्रबन्ध वही कर रहे हैं। यहाँ से गोमुखी नामक स्थान 14 या 18 मील दूर है। अभय आदि लोगों की इच्छा वहाँ तक जाने की थी, परन्तु मार्ग दुर्गम होने के कारण परमानन्द स्वामी ने अपनी सहमति नहीं दी। गोमुखी से गंगा प्रकट हुई। सुना है कि वहाँ एक बर्फ की सुरंग है जो मीलों लम्बी है। अक्सर ऊपर से पत्थर खिसकते हैं जिसकी वजह से यात्रियों की मौत हो जाती है।

यहाँ एक स्थान पर मैंने देखा कि पहाड़ का एक अंश इस तरह गिरा है कि मकान, गंगा माता का मन्दिर का काफी भाग टूट गया है। यहाँ चीड़ की लकड़ी के 15–20 मकान हैं। गंगा माता का एक मन्दिर है। उस पार देवदारु के सुन्दर जंगल हैं।

2 ज्येष्ठ, मंगलवार– आज हम उत्तरकाशी की ओर रवाना हो गये।

माँ उत्तकाशी में

6 ज्येष्ठ, शनिवार– आज सुबह हम लोग उत्तरकाशी पहुँच गये। भयानक दुर्गम मार्ग पार करके आने के कारण सभी थके हुए हैं।

11 ज्येष्ठ, गुरुवार– माँ मुझे और स्वामी अखण्डानन्दजी को नीचे जाने का आदेश दे चुकी हैं। माँ स्वयं जाएँगी या नहीं, अभी तक निश्चय नहीं हुआ है। आज सुबह मैं माँ के निकट बैठी हुई थी। **महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज** महाशय का एक पत्र आया है। मेरी डायरी के किसी अंश को पढ़कर उन्होंने पत्र लिखा है। यह पत्र मुझे लिखा गया है। इस पत्र के कुछ अंश का उल्लेख करना आवश्यक समझकर उद्धृत कर रही हूँ–

''माँ के आविर्भूत स्वरूप के बारे में एक सवाल, इस सम्बन्ध में उठता है, परन्तु आपकी डायरी में उक्त प्रश्न का कोई समाधान नहीं है। मेरे विचार

से इसकी मीमांसा कर देना उचित होगा। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि मैं यह प्रश्न साधारण पाठकों की मानसिक स्थिति की ओर से कर रहा हूँ।

माँ का शरीर साधारण मनुष्यों के शरीर से भिन्न है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। साधारण मानव यहाँ तक कि देवता वर्ग भी गुणों के अधीन होते हैं। कर्म को आश्रय बनाकर इन शरीरों का विकास होता है। प्रारब्ध कर्मों के फल-भोग के कारण साधारण मानव भोगायतन शरीर ग्रहण करते हैं। शरीर ग्रहण करने के पश्चात् उन्हें कृत कर्मों का फल-भोग भोगना पड़ता है। जबकि देहात्मबोध और कर्त्तृत्वाभिमान नष्ट न होने के कारण उन लोगों को, उस देहाश्रय में अनेक अभिनव कार्यों का सम्पादन भी करना पड़ता है।

और वे देवता या सिद्ध पुरुषादि जो जगत् के कल्याण साधन के लिये करुणावश हो, मर्त्यलोक में अवतीर्ण होते हैं तथा नर देह धारण करते हैं, दुःख-क्लिष्ट जीवों के दुःखों को देखकर व्यथित होते हैं, वे स्वेच्छा से नर देह धारण करते हैं और उसी के द्वारा नरलोक की सेवा करते हैं। वे लोग आनन्द भाव के पुरुष होते हैं। उनका एकमात्र लक्ष्य होता है-जीव को दुःख राज्य से निकालकर आनन्द भाव में ले आना। करुणा की सार्थकता इसी मार्ग में प्राप्त होती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये सभी महापुरुष शुद्ध भावमय होने पर भी एकान्त रूप से सर्वभाव से अतीत नहीं हैं। साधारण मानव में तीन गुण समधिक रूप में कार्य करते हैं, लेकिन महापुरुषों में विशुद्ध सत्त्वगुण ही कार्य करता है।

माँ का शरीर गुणों से परे है। हमारा यह खयाल है, एक ओर उनमें कोई गुण कार्य नहीं करता और वहीं दूसरी ओर उनमें जीव की भावना के अनुरूप या प्रकृति के अनुसार कोई भी गुण या भाव बराबर काम करता रहता है।

गीता में श्रीभगवान् ने कहा है-**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** माँ के मुँह से इसी भावधारा की अनेक बातें सुन चुका हूँ। इसका क्या तात्पर्य है? स्वच्छ दर्पण के सम्मुख जो वर्ण उपस्थित होता है, दर्पण भी तदनुरूप वर्ण में अनुरंजित हो जाता है, ऐसा लगता है (गोकि दर्पण सर्वदा अपने शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है)। माँ किसी भी भाव में आबद्ध नहीं हैं, इसलिए उनमें द्रष्टा अपने रूप में देख पाता है। यही वजह है कि माँ को

जिस रूप में पाने या देखने की इच्छा होती है, वह व्यक्ति उसी रूप में पाता और देखता है। भावातीत होने पर अन्य सभी भावों के साथ अभिन्नता स्थापित होती है अथवा सर्व भावों की पूर्णता प्राप्त न करने पर भावराज्य अतिक्रम नहीं किया जा सकता।

लेकिन माँ भाव विशेष में प्रतिष्ठित हैं, अगर इसे मान लिया जाय तो यह कहना पड़ेगा कि सर्वातीत, सर्वमय मुक्त स्वभाव उनमें अप्रकाशित है। ऐसी स्थिति में जिस भाव में वे प्रतिष्ठित रहेंगी, उसी भाव में सर्व विजयी होकर उसमें विराजेंगी। अन्य भाव उनका संस्पर्श नहीं कर सकेगा। आलोक की सीमा में जिस प्रकार अन्धकार का कोई स्थान नहीं होता, ठीक उसी प्रकार एक शुद्ध भाव के क्षेत्र की सीमा में अन्य किसी भाव का आविर्भाव नहीं हो सकता। माँ अगर सचमुच विशुद्ध मातृभाव में विराजती रहें तो कोई भी व्यक्ति जब उनके संस्पर्श में आयेगा तब वह सर्वातिशायी भाव से मातृभाव का अनुभव करेगा। भले ही उसके मन में और कोई भाव क्यों न रहे, वह अभिभूत हो जाएगा। ज्यों ही वह माँ के निकट आयेगा त्यों ही चाहे ज्ञान में या अज्ञान में, वह माँ को 'माँ' समझकर धारणा बना लेने के लिये मजबूर हो जाएगा। अन्य कोई भाव उसके मन में नहीं आ सकता। प्रत्येक शुद्ध भाव का यही असीम प्रभाव होता है।

अगर माँ भावातीत हो जाती हैं तो कहना पड़ेगा कि वे किसी भी भाव में प्रतिष्ठित नहीं हैं, बल्कि सभी भावों में समरूप में प्रतिष्ठित रहती हुई वे अप्रतिष्ठित और निरालम्ब ब्रह्मभाव में, नित्य स्वरूप में, सर्वदा विराजमान हैं। इस क्षेत्र में भाव शुद्धि का प्रश्न नहीं उठता। जो जिस दृष्टि से उन्हें देखना चाहेगा, उसकी दृष्टि में वे उसी रूप में प्रतिभात होंगी। उनका अपना कोई निजी भाव नहीं है, इसलिए भावुकों के भाव में ही उनका भाव है। ऐसी स्थिति में भावुक का भाव नष्ट नहीं होता। कोई उन्हें मातृभाव में तो कोई पितृभाव या मित्रभाव में देख सकता है। इसके अलावा अन्य भाव में भी देख सकता है। वे किसी भी भाव के अधीन न होने पर भी सभी भावों में दृष्टि-गोचर हो सकती हैं। सात्त्विक सत्ता और गुणातीत सत्ता का पार्थक्य मेरे खयाल से इसी तरह परिस्फुट होगा।

अब यहाँ यह सवाल उठता है कि घनिष्ठ भाव से माँ के संस्पर्श में रहने पर भी भोलानाथजी के मन में क्षुद्र प्रवृत्ति क्यों उत्पन्न हुई थी? अगर

यह कहा जाए कि माँ गुणातीत हैं, गुणों के खेल में बाधा देना उनका स्वभाव नहीं है तो भोलानाथजी जो कुछ सोचते या करते रहे, वह अपने भूतपूर्व संस्कारों की प्रेरणा से करते रहे। माँ न तो उसका पृष्ठपोषण करती थी और न खण्डन ही। इससे यह समझ लेना चाहिए कि माँ गुणातीत हैं। जबकि लम्बे अर्से तक माँ के सम्पर्क में रहने के कारण भोलानाथजी के मन और जीवन में असाधारण उत्कर्ष हुआ था, इसमें रत्ती भर भी संदेह नहीं है। इससे यह मान लेना चाहिए कि माँ विशुद्ध सत्त्वमयी हैं। अगर हम इसे स्वीकार नहीं करते तो उनके संसर्ग के फलस्वरूप भोलानाथजी के जीवन का कोई परिवर्तन बोधगम्य नहीं होता। कारण, गुणातीत वस्तु के संस्पर्श से मनुष्य अपने आप पुष्टि लाभ करता है। अपना भाव परिहार कर भावान्तर ग्रहण नहीं कर सकता। जैसे सूर्य की किरणें कमरे में प्रवेश कर गृहस्थी की वस्तुओं को सिर्फ प्रकाशमान करती हैं, किसी नवीन विशिष्ट वस्तु की सृष्टि नहीं करती, ठीक उसी प्रकार निर्गुण चैतन्य सत्ता के प्रभाव से प्रत्येक आधार की बीजगत विशिष्टता को अभिव्यक्त करता है। जिस आधार में जो नहीं है, वह अभिव्यक्त नहीं हो पाता।

इसकी वास्तविक मीमांसा अत्यन्त सरल है। मेरे विचार से 'सात्त्विक-सत्ता' और गुणातीत 'मुक्त सत्ता' में यही पार्थक्य है कि सात्त्विक सत्ता के प्रभाव में मलिन भाव अभिभूत होकर सात्त्विक भाव का आविर्भाव होता है-मलिन भाव पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होता। जब उक्त प्रभावशाली 'सात्त्विक सत्ता' निष्क्रिय हो जाएगी तभी वे सभी अभिभूत मलिन भाव पुनः प्रबल होने का अवसर प्राप्त कर सकेंगे। सत्त्व गुण के प्रभाव से मात्र मन का सामयिक तिरोभाव होता है। लेकिन निर्गुण सत्ता के प्रभाव से मलिन भाव क्रमशः उत्तेजित होकर वर्द्धित होता रहता है, संस्कारगत मलिनता आदि वृत्ति रूप में प्रकट होती रहती हैं और धीरे-धीरे निवृत्त होती रहती है। चरम के क्षणों में ऐसी स्थिति आ जाती है जब मलिनता के संस्कार भी नहीं रहते। अतएव यह निर्मलता सामयिक नहीं, बल्कि चिरस्थायी है। बाद में जब सद्‌गुणों में भी निष्क्रियता आती है तब गुणमुक्त विशुद्ध चैतन्य का आविर्भाव होता है, उसी के प्रभाव से जीव मुक्ति लाभ करता है। सात्त्विक महापुरुषों के सत्त्वगुण के प्रभाव से सत्त्व वृद्धि होती है, साक्षात् रूप से चैतन्य लाभ नहीं होता। लेकिन गुणातीत पुरुष के प्रभाव से संस्कार दूर हो जाते हैं और क्रमशः जीव मुक्ति पद पर आरूढ़ हो जाता है।

भोलानाथजी के बारे में माँ की उपदेश वाणी और भोलानाथजी के जीवन परिवर्तन से ही इस गूढ़ रहस्य को अच्छी तरह समझा जा सकता है। आप इस तत्त्व के सम्बन्ध में माँ से जरा चर्चा करें और मुझे सूचित करें।''

श्रद्धेय गोपीनाथ कविराज महाशय के इस पत्र की बातों पर और भी बातें चल पड़ी। बात-बात में माँ ने कहा-''गोपीनाथ, 'नाथ' है न-इसीलिए गुप्त बातों को बाहर निकाल लेता है। सचमुच देखो कि पहले-पहल जब क्रियादि होती रही तब भोलानाथजी किसी भी रूप में बाधा वगैरह नहीं देते थे। इन बातों की चर्चा तुम लोगों के निकट अनेक बार कर चुकी हूँ। इन दिनों की एक बात याद आ गयी। प्रत्येक बात हर समय याद नहीं आती। यह तो तुम लोगों से बातें करते समय अचानक प्रकट हो जाती हैं। उन दिनों चकित भाव से भोलानाथजी अक्सर कह उठते थे-''मैं तो अच्छा हो गया।'' अपने परिवर्तन पर उन्हें स्वयं आश्चर्य होता था। इस तरह होता है। सत्त्व गुण का प्रभाव आने पर व्यक्ति के अन्य सभी भाव किस तरह आविर्भूत हो जाते हैं, शायद वह इसी समय प्रकट हो सका है।''

माँ कुछ देर के लिये चुप हो गयी। बाद में पुनः अन्य बातें चल पड़ी। माँ अपने बारे में कहने लगी-''असल में तुम लोगों के हिसाब से पहले जो भाव था, इस वक्त भी वही है। बीच में योग-क्रियादि जो कुछ खेल हो गया है, उसमें नाना प्रकार के होने वाले परिवर्तनों को बाहर से तुम सब देख चुके हो। तुम लोगों को इसकी जरूरत थी।''

कविराज महाशय के विचार अत्यन्त सुन्दर हैं। माँ कविराज महाशय के पत्र को सुनने के पश्चात् बोली-''इस शरीर के मुँह से इस तरह की बातें कोई अधिक नहीं निकली हैं। तुम लोग यह देख रहे हो कि इस शरीर की दूसरों के निकट शिक्षा-दीक्षा सम्बन्धित कोई बातें नहीं होती। स्वतः समयानुयायी जब जो स्वाभाविक रूप से निकल जाता है, वही निकलता जा रहा है। तुम लोग यह कर्म और भावों को देखते हुए जो हो, उसे अपने विचार से समझ सकते हो क्योंकि फल से ही परिचय है। सत्य का प्रकाश स्वाभाविक है। नाम, भाव और कर्मादि में योगायोग भी स्वाभाविक है। नाम गोपी है इसलिए गूढ़ तत्त्व का रहस्य उसके निकट स्पष्ट हो जाना स्वाभाविक है। इस शरीर का जिस प्रकार तारतम्य हीन भाव है, उसी तरह की बातें तुम सब सुनोगे।''

माँ बाहर विशेष नहीं जाती। एक प्रकार से एक कोठरी में रहती हैं। हम लोग वहीं बैठते हैं। शाम के समय कुछ देर के लिये अक्सर बाहर या मन्दिर के बरामदे में आकर बैठती हैं।

इधर दो-तीन दिन से माँ के कमरे में नारायण दादा योग वाशिष्ठ रामायण का पाठ कर रहे हैं, हम लोग बैठकर सुनते रहते हैं। पाठ समाप्त होने पर सभी लोग चले जाते हैं, पर मैं बैठी रहती हूँ।

उस दिन लोगों के जाने के बाद सहसा माँ बोली-''खुकुनी, शरीर न जाने कैसा हुआ जा रहा है।''

मैं उठकर उनके बदन पर हाथ फेरने लगी। हल्के स्वर में वे बातचीत भी करती रही। माँ ने कहा-''जब जिस ओर लक्ष्य चला जाए, वही होता है। जैसे बेलू की बात हुई कि वह चार साल के भीतर मर जाएगा। अचानक उधर खयाल गया कि ऐसा नहीं हो सकता। सचमुच उसका कुछ नहीं हुआ। इसी तरह की अन्य घटनाएँ भी हैं। कृष्णा माँ (मनोरमा दीदी) के बारे में बात थी कि वह तीन साल के भीतर मर जाएगी। उस ओर भी खयाल हुआ था, उसका कुछ नहीं हुआ। इसी तरह जब जिधर खयाल होता है, उसका फल होता है। लेकिन मेरे लिये मुश्किल की बात यह है कि मैं खयाल रख नहीं पाती। इसीलिए तुम सब देखती हो कि आँखों के सामने न जाने कितनी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। कभी-कभी कोई पूछता है कि ऐसा क्यों होता है? लेकिन यह सब विषय बाधा देने लायक है, ऐसा मेरे विचार में नहीं है। जो कुछ होना है, वह हो जाएगा-यही भाव मुझमें रहता है।''

मैंने कहा-''ठीक ही है माँ। तुम्हारी दृष्टि में अच्छा-बुरा दोनों ही होगा, क्योंकि तुम्हारे निकट इन दोनों में कोई भेद नहीं है या एक में बाधा पड़े, यह भाव भी नहीं है। भगवान् के निकट सब कुछ समान भाव से होता है और यही होगा ही। साधक के निकट भले ही खराब वाला भाग न हो, क्योंकि वे एक संस्कार में आबद्ध रहते हैं। यह अच्छा है-यह खराब है, यह भावना उनमें रहती है, इसीलिए उनके ऐश्वर्य के प्रभाव से उन्हीं के निकट खराब कार्य बन्द हो सकते हैं। लेकिन तुम्हारे पास यह बात नहीं हो सकती।''

इस तरह की बातें करते-करते काफी रात हो गयी। इसके बाद माँ और मैं चुप होकर सो गयी।

12 ज्येष्ठ, शुक्रवार– आज सवेरे हम सब माँ के निकट बैठे हुए थे। इधर–उधर की बातचीत के सिलसिले में माँ अचानक कहने लगी–''कल मैं देख रही थी कि ठीक इतने बड़े–बड़े (हाथ से ऊँचाई दिखाती हुई जितना कि 10–12 वर्ष के बच्चों की लम्बाई होती है) काले, हृष्ट–पुष्ट गोल गाल वाले बच्चों का झुण्ड भीतर प्रवेश कर रहा है। कृष्ण भगवान् की तरह उनके पहनावे थे। सभी के हाथ में पताका थी। न जाने क्या कहते हुए सब चले आ रहे थे। इस शरीर की ओर ही आ रहे थे। बच्चों का भाव था–चलो, हमारे साथ। इधर इस शरीर का भाव था–अभी रहने दो, इस वक्त नहीं जाना है। लेकिन इस भाव का जोर नहीं था। क्या होगा, कोई पता नहीं था। यहाँ तक कि शरीर उनके झुण्ड में मिल जाना चाहता था। इसी दशा में मैं ऊपर के एक कमरे में चली गयी, लेकिन लड़कों ने पीछा नहीं छोड़ा। यही स्थिति चल रही थी। उस समय यह शरीर उन लोगों के साथ चला जाना चाहता था। इस भाव के कारण न जाने कैसा हुआ जा रहा था। ठीक इसी समय खुकुनी को पुकारती हुई बोली–''शरीर न जाने कैसा हुआ जा रहा है।''

अपराह्न में माँ उठकर बैठी हैं। माँ के पास बैठकर मैं बातें करने लगी। माँ के पूर्व भाव की बातचीत चल गई। मैंने पूछा–''माँ, उन दिनों कभी–कभी तुम्हारे मुँह से लार चूता रहा और कभी आँखों से पानी गिरता था।''

माँ ने कहा–''हाँ, यह सब होता रहा और तब जब भाव दूर होकर भी दूर नहीं हो रहा था।''

मैं यह दृश्य देख चुकी हूँ। जब वे भाव में लोटपोट होती रही या सख्त होकर लेट जाती थी तब यह सब देखने में नहीं आया। घण्टे–पर–घण्टा समय गुजरता जा रहा है और भाव जारी है, पर वह दूर होते–होते हो नहीं रहा है। एक बार वे आँखें खोल रही हैं तो एक बार बन्द कर रही हैं, इसी समय आँखों से आँसू और मुँह से लार टपकते रहे। जिस समय शरीर की क्रियाएँ बन्द रहती हैं, उस वक्त आँखों में आँसू और मुँह से लार कैसे निकल सकता है?

इस प्रश्न पर माँ कहने लगी–''लार क्यों टपकता रहा उसे स्पष्ट किये दे रही हूँ। जब उस तरह के भाव दूर होते–होते भी दूर नहीं होते तब तुम सब यह दृश्य देखते रहे, उस वक्त उसके आगे की स्थिति में, आँख–मुँह में जब जहाँ जो पानी रहता है, वह भीतर से बाहर नहीं निकल सकता। उस स्थिति

में तुम लोग लार टपकते हुए देख चुके हो। चूंकि सर्वांग की शिथिलता की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, इसीलिए पानी बाहर टपक सकता है।''

इस तरह के दृश्य भी देख चुकी हूँ ज्यों ही मैं उनके मुँह में खाने को कुछ डाल दी त्यों ही शारीरिक क्रिया बन्द हो गयी। मुँह की सामग्री मुँह में रह गयी। कभी-कभी तो वही सामग्री दो-एक दिन तक मुँह में रखे रही, यह भी देख चुकी हूँ। न तो उसे वे बाहर उगल पा रही हैं और न निगल पा रही हैं।

पुनः बातचीत के सिलसिले में क्रियादि की चर्चा हुई। माँ के शरीर में जो योग-क्रियादि हो गयी हैं, इस बारे में बातें होने लगी।

माँ कह रही हैं-''इस शरीर की गति तुम लोगों की दृष्टि में बचपन में जैसी थी, इस वक्त भी वैसी ही है। बीच में जब योग-क्रियादि इस शरीर में हो गयी तब इसमें अनेक परिवर्तन हुए। इसका कारण यह है कि योग क्रियादि में शरीर किस तरह का होना चाहिये, उसे स्पष्ट करने के लिये शायद जरूरत नहीं, इसलिए होती रही। इन्हीं दिनों कुछ समय के लिये भोलानाथजी के भावों में काफी परिवर्तन हुए थे। यहाँ तक कि कभी-कभी वे आश्चर्य के साथ कहते-''देखो, मुझमें कितना परिवर्तन हो गया। मैं तो खूब मजे में हूँ।''

भोलानाथजी हम लोगों के निकट इस बारे में कई बार चर्चा कर चुके हैं-''मैं उनके (माँ के) किसी कार्य में बाधा नहीं देता।''

और माँ भी इस तथ्य को स्वीकार करती हुई कह चुकी हैं-''सचमुच वे किसी भी कार्य में बाधा नहीं देते थे। वे पूर्णरूप से मुझे छोड़ चुके थे, जैसे महापुरुष गण करते हैं। इन दिनों तुम लोग क्रोधादि जो कुछ भी देख रहे हो, उन दिनों जब इस शरीर में अपने आप क्रियादि हो जाते थे तब यह भाव बिल्कुल नहीं था।''

गोपीनाथ कविराज महाशय के पत्र का विशेष मर्म अब समझ सकी-जिस योग क्रियाओं में, साधकों के सत्त्वगुणों के प्रभाव से निकटवर्ती अन्य व्यक्तियों को भी उसी भाव में भावान्वित कर देता है, यह भी शायद वही है। माँ के उस सर्वविजयी सत्त्वगुण के प्रभाव के कारण भोलानाथजी का अन्य कोई भाव सिर नहीं उठा सका था। लेकिन मैंने यह भी देखा है कि वह चिरस्थायी नहीं होता। साथ ही यह भी समझा कि गुणातीत के संग गुणों से भावों का समूह क्रमशः गायब हो सकता है।

पहले के प्रसंग पर चर्चा करती हुई माँ बोली–''देखो, योग क्रिया में किस तरह होता है, वह कुछ समय के लिये इस शरीर में स्पष्ट हो चुका है। इस शरीर की प्राथमिक अवस्था में किस तरह होता था, जानती हो? जैसे छोटे शिशु को लेकर कोई प्यार करने जा रहा है। गोद में उठाकर उछाल रहा है, न जाने क्या-क्या कर रहा है, लेकिन इन बातों की ओर शिशु का ध्यान नहीं है। वह शायद अपने भाव में मग्न होकर खेल रहा है। शायद गोद से अपने भाव से फिसलकर दौड़ रहा है। जो शिशु को आदर कर रहे थे, उन्हें इसमें रस मिलता है। इस शरीर को लेकर कुछ दिनों तक इसी तरह के खेल होते रहे। इसके बाद जब इस शरीर में योग क्रियादि स्पष्ट होने लगे तब किसी प्रकार से नहीं–भोलानाथजी किसी भाँति से भी बाधा नहीं देते थे। उल्टे वे अपना भाव देखकर स्वयं ही आश्चर्य से चकित होकर सोचते–मैं कितना अच्छा हो गया हूँ। अब तो मुझमें कोई खराब भावना जन्म नहीं लेती। यही वजह है कि वे किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाते थे और न उनमें यह भावना उत्पन्न होती थी। यही है–योग–क्रियादि का फल। भोलानाथजी भी इस भाव में कुछ हद तक भावान्वित हो गये थे।''

आगे माँ ने कहा–''इसके बाद एक और अवस्था होती थी जैसे साधक के निकट जब कोई कुभावापन्न व्यक्ति चला आता है तब वे उसे अपने शरीर में उत्ताप अनुभव करते हैं। ठीक इसी प्रकार भोलानाथजी में जब कोई जागतिक भावना उत्पन्न होती थी तब यह शरीर ज्वाला अनुभव करता था। यहाँ तक कि पास बैठने पर शरीर में न जाने कैसा हो जाता था। मानो अवश, शक्तिहीन–सा होकर ढह पड़ता था।''

आगे पुनः माँ कहने लगी–''भोलानाथजी शायद पास ही सोये हुए हैं, उस भाव का आभास पाते ही शरीर अकड़कर श्वास–प्रश्वास की क्रियाएँ, विभिन्न प्रकार के आसनों में बैठना प्रारम्भ हो जाता था। यह सब स्थिति देखकर भोलानाथजी डर जाया करते थे। इसके बाद एक और स्थिति होने लगी। उस समय उस तरह के भावों का आभास पाते ही श्वासों की गति दूसरे प्रकार की हो जाती, लोटने–पोटने लगती, चित्त होकर शरीर गोल पिण्डाकार हो सिर के नीचे की ओर चला जाता था, फिर पद्मासन की तरह बनकर एक प्रकार का आसन बन जाता था। एक लम्बे अर्से तक यह शरीर ढीले रूप में पड़ा रहता था। खाना, बोलना, सब बन्द हो जाता था। शरीर में

क्रिया इस तरह आरम्भ होती थी कि मानो प्राण-वायु अब समाप्त हो जाएगी। इधर-उधर बारम्बार करवट बदलने के कारण नाखून आदि नीले हो जाते थे। इस तरह की स्थिति तुम सब भी एक दिन देख चुके हो। जब यह दशा हो जाती थी तब भोलानाथजी इस शरीर की रक्षा के लिये परेशान हो उठते थे और उनमें पहले के सभी भाव न जाने कैसे गायब हो जाते थे।''

इतना कहने के बाद वे आगे कहने लगी-''यह सब बातें तुम लोगों को नहीं बताती। तुम्हारी दृष्टि में शिशुकाल में जो दशा थी, वही भाव आजकल है। लगातार कई दिनों तक भीतर-ही-भीतर अस्वाभाविक क्रियाएँ हुई, इसके बाद फिर स्वाभाविक से भी स्वाभाविक रूप में शरीर का सारा कार्य चलने लगा। इस समय की स्थिति देख ही रही हो। योग-क्रियादि के भाव एवं अन्यान्य अवस्थाएँ फिर हो सकती हैं। तुम्हारे शब्दों में साधन की अवस्था पार हो जाती है, अगर उन सबकी तुम लोगों को जरूरत हो तो इस शरीर में कोई न कोई प्रकट हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। अब तुम लोग यह भी कह सकते हो कि जो अवस्था पार हो चुकी है, वह फिर क्यों आयेगी? लेकिन यह बात इस शरीर पर लागू नहीं हो सकती, यह शरीर साधन-भजन करते हुए उत्पन्न होना या इस भावना वाली बातों से सम्बन्धित नहीं है, इसलिए तुम लोगों की आवश्यकतानुसार जब जो होना है, होता जा रहा है और होता रहेगा।''

इन बातों के पश्चात् भोलानाथजी के अन्त समय की चर्चा चल पड़ी। माँ कहने लगी-''शरीर के पिताजी के साथ मृत्यु के पहले जब भेंट हुई थी तब मैं उस वक्त बाहर बैठी हुई थी। कमरे के भीतर शरीर के पिताजी बैठे हुए थे। उठकर आने के पहले 'माँ-माँ' तीन बार उन्होंने पुकारा, फिर एक प्रकार का भिन्न भाव लेकर इस शरीर की ओर विशेष रूप से देखा। इसके बाद मैं उठकर पास आयी। इस घटना के तीन-चार दिन बाद उनका देहावसान हो गया। भोलानाथजी भी देहावसान के तीन-चार दिन पूर्व 'माँ-माँ' कहते रहे। लेकिन मृत्यु के दिन सवेरे से ही उनके भावों में विशेष परिवर्तन हो गया था। जब सुबह उनकी आँखें खुली तब वे बोले-'कहाँ हो तुम? मैं देख नहीं पा रहा हूँ।' मैंने कहा-'यह तो मैं हूँ।' तब उन्होंने देखा। उसी दिन-प्रसाद खाऊँगा, तुम खिला दो, तुम्हें छूना चाहता हूँ-इत्यादि भाव उनमें जाग्रत हुए थे। अपराह्न के समय उनके शरीर पर वस्त्र नहीं थे। कह रहे थे-

'जाड़ा लग रहा है।' सभी कपड़े फाड़ डाले गये थे। लेकिन एक चद्दर पास ही पड़ी थी, वह साबूत थी। उस चद्दर से मैंने उन्हें ढाँक दिया। वे उस कपड़े को लपेटकर सो गये। इसके बाद मैंने अपनी इच्छा से कुछ नहीं किया। देखा–ये हाथ भोलानाथजी के सिर से पैर तक फेरा जा रहा है। मस्तिष्क के मध्य भाग में हाथ कुछ देर तक स्थिर रहा। इसके बाद पूछा गया–'दर्द हो रहा है क्या?' रोगी ने आनन्द पूर्ण भाव से उत्तर दिया–'नहीं, आनन्द।' हाथ फेरने के पूर्व जब पूछा गया था तब कहा था कि शरीर में बेचैनी है।''

माँ की बातें सुनकर मैंने कहा–''कृपा से क्या नहीं होता? तुमने समस्त शरीर पर हाथ फेर दिया तो फिर दर्द का प्रश्न ही कहाँ? अन्त में तुमने मस्तक पर हाथ रखकर उन्हें उद्ध्र्व गति कर दी।''

माँ ने कहा–''मैं तो तुम लोगों की इच्छा की तरह कुछ नहीं करती। देखा–हाथ जाकर सिर से लग गया है। इसके पूर्व एक बार पूछा गया था–'तुम तो नाम सुनना पसन्द करते हो, नाम सुनवाया जाये?' मेरी इस बात पर और लोगों ने यह सोचा–माँ यों ही शाम के समय नाम गाने के लिये कह रही हैं। बात भी देखो कि ठीक–ठीक रूप से एक के बाद एक करके कैसे सब होता जा रहा था। इस बात पर किसी के मन में सन्देह उत्पन्न नहीं हुआ कि अन्त समय जानकर नाम सुनाया जा रहा है। किसी ने यह भी नहीं सोचा कि वे अभी देह त्याग करने वाले हैं, क्योंकि तब तक अवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। अगर इसके बदले यह कहा जाता–'तुम्हें नाम सुनायेंगे' तो सभी के मन में भय उत्पन्न होता कि शायद वे अभी देह त्याग करने वाले हैं, इसीलिए माँ स्वाभाविक भाव से नाम सुनाने को कह रही हैं। सभी बातें ठीक–ठीक रूप से बाहर अपने आप हो जाती हैं। तुम लोगों की भाँति इच्छा करने पर ये बातें नहीं होती हैं। जब जैसी जरूरत है, वही होता जा रहा है।''

इसके बाद जब उनका देह त्याग हो गया तब मैंने शिवशंकर कविराज से पूछा–'आपकी राय में ठीक हो गया है न?' वे क्या जवाब देते? सकपकाकर भोलानाथजी की ओर देखते हुए उन्होंने कहा–'हाँ, माँ।'

शाम के समय हम लोग पुनः माँ को घेरकर बैठ गये। इस वक्त मैंने पूछा कि माँ के साथ मेरे मिलन में भोलानाथजी किस तरह बाधा देते थे। मैंने कहा–''कितनी तकलीफें हुई हैं।''

अभय से बातें हो रही थी। कमलाकान्त, नारायण आदि लोग वहाँ मौजूद थे। माँ भी बातें कर रही हैं।

माँ ने हँसकर कहा–"मैं खुकुनी से कहा करती थी–राधा की बाधा की कहानियाँ। एक गीत 'धुआँ के चलते मैं रोती हूँ।" इतना कहने के बाद माँ पुनः हँस पड़ी।

इसके बाद वे कृष्ण भी राधा के लिये किस कदर रोते रहे, इस आशय का एक गीत मधुर स्वर में गाने लगी। इसके बाद कहने लगी–"तुम लोगों ने राधा के दर्द की बातें सुनायी और मैंने कृष्ण की।" इतना कहने के बाद वे हँस पड़ी। गीत गाने पर माँ की दोनों आँखें लाल होकर छलछला उठती थी। आज भी वैसी हो गयी। इस दृश्य में उनका हास्य मिश्रित होकर अपरूप-सा हो गया है।

शाम के पहले माँ आँगन में चहल-कदमी कर रही थी। दूर पहाड़ी पर आग जलायी गयी है। देखते-ही-देखते आग धधक उठी। वह दृश्य अत्यन्त सुन्दर दिखाई दे रहा था। हम लोग उस आग की शोभा देखने में तल्लीन हो गये। मानो किसी महायज्ञ में वृक्षों की आहुति दी जा रही है। रात में वह आग उज्ज्वल चित्र की तरह दिखाई दे रही थी। स्वामी अखण्डानन्दजी ने माँ से कहा–"माँ, इन पहाड़ों की चोटी पर कभी बर्फ के ढेर दिखाई देते हैं और कभी अग्नि का नृत्य होता है। सभी सुन्दर हैं।"

काफी रात गये हम लोग सोने गये।

15 ज्येष्ठ, सोमवार– आज सुबह उठने के बाद माँ मन्दिर के बरामदे में जाकर बैठ गयी। कई पहाड़ी महिलाएँ आयी हैं। दो वृद्धाओं के साथ माँ परिहास करने लगी। इनमें एक वृद्धा केदारघाट में रहती है और साधन-भजन करती है। उसके एक हाथ में कमण्डल और गले में माला है। एक अन्य वृद्धा के हाथ में एक लोटा है।

माँ ने उनसे कहा–"इस लोटे में मेरे लिये चावल पक सकता है और इस कमण्डल से मैं पानी पी सकती हूँ। ये दोनों सामान मुझे दोगी?"

एक वृद्धा ने कहा–"इस कमण्डल से मैं मन्दिरों में पानी चढ़ाती हूँ।"

माँ अपने मुँह में पानी छोड़ने की नकल करती हुई बोली–"मैं भी तो इसी तरह पानी चढ़ाऊँगी। बोलो, दोगी मुझे?"

तब दोनों ने कहा–''अच्छा, जब तुम्हारी इच्छा हुई है तब ले लो। तुम्हें दे देने पर भगवान् मुझे दूसरा देंगे।''

माँ ने कहा–''माला भी दे दो।''

इस पर राजी होती हुई, माला–कमण्डल देने के साथ ही वृद्धा बोली–''बस, तुमने मुझसे माला और कमण्डल ले लिया। अब तुम मेरी शिष्या बन गयी।''

माँ ने कहा–''ठीक है।'' फिर 'गुरुजी–गुरुजी' कहकर बुलाने लगी।

उक्त वृद्धा हँसती हुई बोली–''अरी भई, मैं कुछ जानती–वानती नहीं। मैं तो तमाशा कर रही थी।''

माँ ने कहा–''यह क्या? अगर तुम कुछ जानती–वानती नहीं, तब मुझे कैसे चलाओगी?''

इसी प्रकार की बातों के दरम्यान वृद्धा को कमण्डल वापस करती हुई माँ बोली–''लो, माला और कमण्डल पकड़ो। हुआ न? अब तुम भी मेरी गुरु हुई और मैं भी तुम्हारी गुरु हुई। इस प्रकार हम दोनों मित्र हो गये।''

वृद्धा ने कहा–''माँ मैं तो भिक्षुणी हूँ। मैं ही तुम्हारी शिष्या हूँ। तुम मुझे खाना दोगी, कपड़ा दोगी। इतना कहकर उसने माँ के तन पर एक ऐसी थपकी दी कि जोर से आवाज सुनाई पड़ी।''

माँ हँसती हुई बोली–''गुरुजी, इतने जोर से मत मारिये, मेरे हाथ में दर्द है।''

इसके बाद बातचीत के सिलसिले में माँ मुझसे कहने लगी–''देखो, मैं भी भिक्षुक हूँ, देखो, जो मुझे जानता है, मैं और वह एक ही हैं। जो मुझे जानने का प्रयत्न करता है, मैं उसके नजदीक (निकट) और जो मुझे नहीं जानता, उसके निकट मैं भिक्षुक हूँ।'' इतना कहने के बाद वे चारों ओर देखती हुई हँसने लगी।

बाँकेबिहारी वकील इलाहाबाद से आये हुए हैं। वे यहाँ माँ के पास कुछ दिनों तक रहेंगे। उन्होंने कहा–''माँ, एक साहब कह रहे थे कि प्रत्येक महात्मा की एक खास बात होती है। माँ में खास बात यही है कि वे सिर्फ हँसती हैं। इसका क्या अर्थ है?''

माँ हँसती हुई बोली–''देखो, इस शरीर को खराब और अच्छे सभी प्यार करते हैं। उनके आनन्द के रूप में, प्यार के रूप में, यहाँ सिर्फ हँसी–आनन्द देख पाते हो। अपनी कोई खास बात या भाव रहे तब तुम अगर हँसों भी तो मैं हँस नहीं पाती।''

अभय ने कहा–''तब आपने यह क्यों कहा कि मेरा अपना कोई निजी भाव नहीं है?''

हम लोग समझ गये कि माँ का अपना कोई निजी भाव नहीं है, इसलिए सभी के आनन्द भाव में वे सहयोग देती रहती हैं। जैसे पानी का अपना कोई रंग नहीं है, इसलिए प्रत्येक रंग में रंगा जाता है।

माँ के आदेशानुसार कल या परसों हम नीचे की ओर रवाना हो जाएँगे। मसूरी से डाण्डी आ गयी है, शायद माँ अभी नहीं जाएँगी। वे अभी यहाँ और कितने दिनों तक रहेंगी, बताना मुश्किल है।

शाम के समय हम लोग मन्दिर के बरामदे में माँ के पास बैठे थे। बात–बात में माँ की दादी तथा ननिया सास ने सहमरण (सती) स्वीकार किया था, इस घटना की चर्चा चली।

माँ ने कहा–''दादी की चाची से यह कहानी सुन चुकी हूँ। पति का आखिरी वक्त है, अब अधिक देर नहीं है। इधर उनकी पत्नी पेट भर खाना खाकर लाल किनारे वाली साड़ी पहनी, पान खायी और माँग में सिन्दूर डाली। इसके बाद हाथ की एक अंगुली में घी लगाकर घी के दीये में जलाने लगी। अंगुली जल रही थी, लेकिन वे निर्विकार भाव से बैठी रही। पहले वह अंगुली जलाकर अपना अनुभव प्राप्त करती रही। मृत देह जब श्मशान जाएगा तब वह भी सहमरण में जाएँगी। इसके बाद पति की मृत देह की प्रदक्षिणा करने लगी। अपनी माँग से सिन्दूर निकालकर एक पत्ते में अन्य वधुओं के लिये रख दी। इसके बाद बोली–मेरे बायें पैर की अंगुली काँपेगी, क्योंकि एक दिन वे सोये हुए थे, मेरी असावधानी के कारण मेरे पैर की अंगुली उनके तकिये से छू गयी थी, इसलिए जलते समय यह जरा काँपेगी।' इतना कहने के पश्चात् वे बड़े उत्साह के साथ सहमरण में चली गयी। ये सारी बातें मैं बचपन में सुन चुकी हूँ।''

अभय ने पूछा–''माँ, क्या ये सभी बातें सच हैं?''

माँ ने कहा–"अगर सच न होती तो इस तरह नहीं कहा जा सकता था। जिसने कहा था, वह तो इस दृश्य को देख चुकी थी।"

शाम के समय दो–तीन जनी मिलकर माँ के निकट स्तोत्र पाठ और कीर्तन आदि करती रही।

16 ज्येष्ठ, मंगलवार– आज अपरान्ह में माँ उठकर बोली–"ज्ञानसु देखने की इच्छा हो तो चल।"

ज्ञानसु यहाँ से एक मील दूर है। वहाँ गंगा किनारे साधुओं की अनेक कुटिया हैं। आज तक उस स्थान पर हम लोग नहीं गये थे। मसूरी से हमें नीचे ले जाने के लिये डाण्डी आयी थी, उसी डाण्डी पर माँ के साथ ज्ञानसु देखने के लिये चल पड़ी।

एक पंजाबी महिला जिनका नाम बलवन्त माताजी है, माँ के साथ इनका परिचय ऋषिकेश में हुआ था; आजकल वे ज्ञानसु में रहती हैं। वहाँ आने के लिये वे माँ से अनुरोध कर गयी हैं।

ज्ञानसु पहुँचकर हम लोग गंगा किनारे टहलती हुई साधुओं की कुटियों का दर्शन करने लगी। निर्जन स्थान है। चारों ओर का दृश्य मनोरम है। यहाँ कुछ साधु हैं। अनेक कुटियों में ताला बन्द है। हम लोग बलवन्त माताजी की कुटिया में गये। वे माँ को अपने यहाँ रखना चाहती थी।

माँ ने कहा–"देखा जाए क्या होता है।"

शाम होने के पहले ही हम लोग वापस लौट आये। आज भी बाँके बिहारी ने माँ के निकट रामायण का पाठ किया, कीर्तनादि हुआ। आगामी कल हम लोग मसूरी रवाना हो जाएँगे।

17 ज्येष्ठ, बुधवार– आज सुबह हम लोग रवाना हुए। माँ के पैरों की धूलि लेते ही वे मेरे मस्तक पर हाथ फेरती हुई बोली–"जाकर अच्छी तरह साधन–भजन करती रहना।"

स्वामीजी के प्रणाम करते समय उनके सिर पर हाथ फेरती हुई माँ बोली–"नारायण को स्पर्श कर रही हूँ।"

हमें विभिन्न बातों के माध्यम से सान्त्वना और समयोपयोगी उपदेश देकर विदा दी। फिर मुझसे माँ बोली–"तू यहाँ रहती तो सभी सुविधा मिलती, फिर

भी अन्यत्र तुझे भेज रही हूँ। फिलहाल कुछ दिनों के लिये इसकी जरूरत आ गयी है। इससे कहीं बड़े कार्य के लिये तुझे भेज रही हूँ। भगवान् की सेवा करने पर इस गरीब की सेवा हो जाती है, इसे समझ लेना।''

फिर अपने भाव के अनुसार भगवान् का उपदेश देने लगी। सम्प्रति यहाँ से जाकर कुछ दिनों तक कलकत्ता रहूँगी। आँखों में आँसू भरकर माँ से विदा ले चल पड़ी। माँ दरवाजे के पास आकर खड़ी हो गयी। माँ को देखते-देखते हम डाण्डी पर सवार हुए।

शाम को 23 मील दूर नगुना चट्टी पहुँचे। यहाँ के एक प्राचीन शिव-मंदिर में रात गुजारने के लिये ठहर गये। जितना आगे बढ़ती रही, उतना ही हृदय हाहाकार करता हुआ अन्दर ही अन्दर रो रहा था। माँ को कहाँ छोड़ आयी? माँ कितनी दूर रह गयी। यहाँ उन्हें कितनी असुविधाएँ होंगी। नाना प्रकार की चिन्ताओं से आक्रान्त हो उठी। माँ के उपदेशानुसार नाम लेने लगी। ऐसा लगा जैसे नाम के साथ-साथ माँ मौजूद हैं।

18 ज्येष्ठ, गुरुवार– आज बलडियाना में दोपहर का भोजन करने के बाद शाम को बाण्डेल गाँव पहुँची जहाँ रात गुजारनी है।

19 ज्येष्ठ शुक्रवार– आज दोपहर का भोजन कानिताल में करने के बाद अपराह्न के समय आगे की ओर रवाना हुई। शाम को धनौरी पहुँचकर आराम करने लगी। यहाँ रात बिताकर कल मसूरी पहुँचेंगे। मसूरी यहाँ से 15 मील दूर है।

20 ज्येष्ठ, शनिवार– आज भोर में रवाना होकर हम लोग दोपहर तक मसूरी पहुँच गये।

22 ज्येष्ठ, सोमवार– आज शाम को अचानक अभय आकर हाजिर हो गया। कारण पूछने पर उसने बताया–''माँ ने मुझे कलकत्ता जाने का आदेश दिया है।''

माँ धीरे-धीरे सभी को दूर भेज रही है। माँ का यह भाव मेरे लिये दुश्चिन्ता का विषय बनता जा रहा है, लेकिन कोई उपाय भी तो नहीं है। बनाने या बिगाड़ने में माँ को देर नहीं लगती। इसी तरह सब होता रहता है।

अभय कह रहा था–''मैं तो माँ की बात मानता ही नहीं। अगर चाहता तो यह आज्ञा भी न मानता। लेकिन पता नहीं क्यों मुझमें एक उल्टा भाव

उत्पन्न हो गया और कह उठा–'ठीक है, देखिये न, मैं आपको छोड़कर जा सकता हूँ या नहीं?' इसके बाद न जाने क्यों वहाँ से चले आने की इच्छा हुई। कलकत्ता जाना है सोचकर हृदय आनन्द से नाच उठा। रास्ते में पहले ही दिन मन में सोचा कि आखिर मैं क्यों चला आया? अगर मैं न आना चाहता तो माँ मुझे जबरदस्ती थोड़े ही भेजती। मन बहुत खराब हो गया। एक बार इच्छा हुई कि वापस लौट चलूं। लेकिन आश्चर्य की बात यह हुई कि वापस लौटने की भावना थोड़ी देर बाद अपने आप दूर हो गयी।''

सबसे मजेदार बात यह रही कि अभय ने अपनी जबानी कलकत्ता जाने की चर्चा की थी। यह सुनते ही माँ उसके जाने की सारी व्यवस्था इतनी जल्दी करवाने लगी कि उसे पुनः कुछ कहने का अवसर ही नहीं मिल सका।

मैं इस बात को कई बार देख चुकी हूँ कि माँ को जो कुछ करना है, वे कुछ इस तरह करवा लेती हैं। अभय के भाव की जो अवस्था है, उसे देखते हुए आज तक माँ उसे कहीं जबरन नहीं हटा सकी हैं। दूसरी ओर अभय भी माँ को छोड़कर कहीं अधिक दिनों तक नहीं रह सका है। दो–चार बार उसे अपने से दूर रखने की चेष्टा कर चुकी हैं पर वह कहीं भी दो–चार दिन से अधिक समय तक रह नहीं पाता।

अभय चकित भाव से कहने लगा–''मुझमें अचानक यह भाव क्यों आया, समझ नहीं पा रहा हूँ। मैं अभी तक यही समझता आ रहा हूँ कि माँ के साथ रहना सबसे अच्छा है। फिर भी मेरे मन में यह भाव उत्पन्न हो गया। उधर माँ भी व्यस्त होकर मेरे लिये जाने की व्यवस्था कर तुरन्त भेज दिया।''

माँ को इस तरह करते अनेक बार देख चुकी हूँ। इस बार भी मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। लेकिन माँ के लिये चिन्तित जरूर हूँ। माँ के भाव में कब किस तरह परिवर्तन हो जाता है, कुछ समझ में नहीं आता, इसलिए हमेशा शंका बनी रहती है।

माँ के पास एक व्यक्ति को भेजा गया है। वह चार–पाँच दिन बाद लौट आयेगा। उसके द्वारा माँ का कोई खास संदेश प्राप्त हो सकेगा, इस आशा से हम यहाँ इन्तजार कर रहे हैं।

बरेली से आज एक सज्जन सपत्नीक आ गये। इन लोगों ने आज तक

माँ को नहीं देखा है। सिर्फ नाम सुना है। आज वे भी सपत्नीक माँ के यहाँ चले गये। अपने साथ उन्होंने कोई कुली भी नहीं लिया। पति-पत्नी दोनों आवश्यक सामग्री स्वयं ही लादकर यात्रा कर रहे हैं। माँ का दर्शन करने की आशा से दुर्गम पथ की यात्रा पर चल दिये। माँ किस रूप में आकर्षित कर रही हैं, कौन किस रूप में माँ की कृपा पाकर अपने को धन्य समझ रहा है, हम उसकी कल्पना करने में भी असमर्थ हैं।

5 आषाढ़, मंगलवार– आज कलकत्ता पहुँचने पर कमलाकान्त के पत्र से ज्ञात हुआ कि माँ रायपुर पहुँच गयी हैं। इसके बाद धीरे-धीरे पता लगा कि माँ रायपुर से किशनपुर के आश्रम में पहुँच गयी हैं। शरीर अत्यन्त अस्वस्थ है।

27 आषाढ़, बुधवार– कई दिन के लिये माँ पुरी गयी थी। माँ कभी रायपुर तो कभी किशनपुर आ-जा रही हैं, यही समाचार मिलता रहा। कल कमलाकान्त के पत्र से ज्ञात हुआ कि शिमला के भक्तों के अनुरोध पर वे अपने पूरे दल के साथ 'नाम-यज्ञ' के लिये, शिमला गयी है। 9 जुलाई को 'नाम-यज्ञ' हो गया है। इसके बाद पंकज बाबू के निवास स्थान पर कीर्तन चलता रहा। दो दिन वहाँ रहकर सोलन होते हुए माँ किशनपुर चली आयी।

31 आषाढ़, रविवार– माँ किशनपुर वापस आकर रायपुर चली गयी है।

14 श्रावण, रविवार– आज पता चला कि माँ विगत 10 श्रावण बुधवार को अभय और देवीजी के साथ देहरादून से हरिद्वार आ गयी और यहाँ नानकी बाई की धर्मशाला में ठहरी हैं। यहाँ से कुछ देर रहने के बाद हरिद्वार से मुरादाबाद चली आयी। यहाँ से कहाँ जाएँगी, कोई नहीं जानता।

18 श्रावण, गुरुवार– आज आठ-नौ दिन से यहाँ काफी पानी बरस रहा है। तीन बजे खाना पकाने बैठी तो देखा कि माँ अचानक आ गयी। उनके साथ अभय और रूमा देवी भी थी। सुना है कि माँ मुरादाबाद, बरेली, लखनऊ, फैजाबाद और वर्धमान होती हुई आ रही हैं। एक दिन माँ के लिये मन अत्यन्त चिन्तित हो उठा था। आज विशेष रूप से चंचल हो उठी थी। जब रसोई बनाने बैठी तो न जाने क्यों दर्द से दिल भर आया। इस स्थिति में मन ही मन प्रार्थना करने लगी–"माँ, अब और कितने दिन दूर रहोगी। अब सेवा के लिये पास बुला लो।"

इस प्रार्थना के आधे घण्टे बाद माँ स्वयं आकर हाजिर हो गयी। यह पहली घटना नहीं है। इसके पहले कई बार जब कभी मन में व्याकुलता तीव्र रूप से उत्पन्न हुई है तब माँ ने अपने श्रीचरणों में बुला लिया है। आज भी वैसा ही हुआ। बार-बार माँ मुझे अपने से अलग कर देती हैं, समझकर मन अभिमान से भर उठा था। आज उक्त अभिमान भाव दूर होकर ज्यों ही शरणागत भाव जाग उठा त्यों ही माँ आ गयी। इतनी करुणा करती हैं, फिर भी मैं कुछ समझ नहीं पाती। रसोई बनाकर भोग लगाते-लगाते शाम हो गयी।

शाम के बाद माँ मोटर पर घूमने निकली। सबसे पहले रायबहादुर सुरेन्द्र बनर्जी महाशय के मकान पर गयी। वहाँ दरवाजे पर ही गाने लगी-

"कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, कृष्ण केशव पाहि माम्।
राम राघव, राम राघव, राम राघव रक्ष माम्।।"

सभी लोग ऊपर से दौड़ते हुए नीचे आये और माँ को देखकर अवाक् रह गये। सभी लोग प्रसन्नता से मग्न हो उठे। माँ तुरन्त दूसरों के यहाँ जाने वाली थी, इसलिए रायबहादुर और ननी भी साथ हो लिये। माँ नृपेन्द्रपाल, मनीश गुहा, रेवती सेन, प्रियनाथ मुखर्जी, गंगाचरण बाबू आदि लोगों के दरवाजों पर इसी तरह की लीला करती हुई बिड़ला-मन्दिर आयी। उनके साथ प्रत्येक मकान से भक्तों का दल बिड़ला-मन्दिर आया था। कीर्तन आरम्भ हुआ। काफी रात गये माँ आराम करने गयी।

19 श्रावण, शुक्रवार- माँ के आने का समाचार पाकर काफी लोग आने लगे। बिड़ला-मन्दिर में आनन्दोत्सव चलता रहा। बातें होती रही। अचानक चर्चा चल पड़ी कि माँ का संग होने पर भी लोगों में विशेष परिवर्तन क्यों नहीं दिखाई देता है?

माँ ने कहा-"संग होता कहाँ है? पास आने पर क्या विशेष संग होता है या दो-चार बातें सुन लेने पर संग हो जाता है? इस तरह का संग तो मक्खी-मच्छर भी करते हैं।"

लोगों ने अनुरोध किया कि माँ कुछ उपदेश दीजिये। माँ ने कहा-"मैं तो तुम लोगों की लड़की हूँ। मैं क्या कहूँगी? एक बात जरूर है, तुम लोग जिस तरह घण्टा बजाओगे, उसी तरह घण्टा भी बजेगा। यही पूर्ण सत्य है।

तुम लोग जैसे कहलाओगे, उसी तरह मुँह से बातें निकलेंगी। मैं तो तुम लोगों की तरह इच्छानुसार बातें नहीं कर पाती। एक बात आजकल प्राय: होती रहती है और वह है–'संयम व्रत'। महीने में 15 या 7 दिन संयम व्रत करूँगा, यह संकल्प करते हुए, इन दिनों शुद्ध भाव से सत्य के आश्रय में रहना चाहिए। बच्चों को 'बालगोपाल', लड़कियों को कुमारी भाव से, पति को परमपति और स्त्री को देवी रूप में इन दिनों सेवा करनी चाहिए। यहाँ तक कि अपना या पराया बच्चा अगर उस दिन कोई गलत काम करे तो क्रोधित नहीं होना चाहिए। समस्त परिवार में एक पवित्र भाव जाग्रत करना चाहिए। इस प्रकार देखोगे कि अन्त में खराब भावना पुन: सर उठाने की हिम्मत नहीं करेगी। नित्य उसी रूप में रहने की चेष्टा अर्थात् ईश्वर के चिन्तन में हर वक्त मग्न रहने के लिये ही इन सबका आश्रय लिया जाना चाहिए। समस्त परिवार को लेकर ही संयम व्रत करना चाहिए। इन दिनों जितनी त्रुटियाँ होती हैं, अगर उन सभी बातों को लिख डालो और अपनी गलतियों पर अनुताप करते हुए कि अब आईन्दा कभी ऐसा नहीं होगा, इस ओर से सावधान हो जाओ, तो देखोगे कि धीरे–धीरे अन्तर का काफी दोष साफ होता जा रहा है।''

किसी ने कहा–''माँ, मैं तो आपका दर्शन करने आया हूँ।''

माँ तुरन्त हँसती हुई बोली–''ठीक है पिताजी, आपको दर्शन करा दूँ, यही तो चाहती हूँ। आपके लिये ही तो सभी साधन–भजन हैं।'' माँ ने अपनी बात को इस तरह मोड़ दी कि सभी लोग हँस पड़े।

आगे बात–बात में कहने लगी–''श्वास–श्वास में नाम करने की बात जो कही गयी है, श्वासों की ओर लक्ष्य रखने को कहा जाता है, इसका क्या मतलब है, जानते हो? श्वास है–वायु। वायु तो सर्वव्यापक है। उधर अगर लक्ष्य रहे तो उसी तरह भाव भी सर्वव्यापी हो सकता है। इन सभी सहायक कर्मों को लेना पड़ता है, इससे चित्त शुद्ध होता है। वायु की गति तो नाना भावों की तरंग है। यह सब क्या है, जानते हो? वासना–कामना इन्हीं गतियों को स्थिर करना चाहिए। कोई भी आश्रय क्यों न हो, विभिन्न अग्र से एक अग्र न होने पर–जो समग्र है, उसी एक का पता नहीं पा सकोगे।''

इसी प्रकार की अनेक बातें अनेक लोगों से करती जा रही हैं। दिन-रात यही सब एक ढंग से चलता जा रहा है।

दिलीप राय ने पूछा-''अच्छा माँ, किसी-किसी का कहना है कि साधना-भजन अर्थात् प्रयत्न करना पड़ता है तभी काम होता है, दूसरी ओर कुछ लोग कहते हैं कि समय न रहने पर कुछ भी नहीं होता। इन दोनों कथनों में कौनसा सत्य है?''

माँ ने कहा-''दोनों ही सत्य हैं। बात यह है कि जब चेष्टा के बीच हो तब चेष्टा करने की जरूरत है। कब वह वक्त आयेगा, कोई नहीं जानता। बाढ़ के पानी की भाँति आता है। बहा ले जाता है। तुम्हारा कर्त्तव्य है-प्रयत्न करते रहना। जब तक तुममें बुद्धि है तब तक प्रयत्न करना ही करणीय है। सभी समय ही वह समय हो सकता है। समय की अपेक्षा करना और उनके ध्यान में रहना दोनों ही ठीक हैं।''

एक ने कहा-''कृपा-सृपा कुछ नहीं है। अपना काम बिना स्वयं किये कोई उपाय नहीं है।''

दूसरे ने कहा-''यह जो काम करते जा रहे हैं, यह भी उन्हीं की कृपा है।''

माँ हँसती हुई दूसरे व्यक्ति से बोली-''पिताजी, बात क्या है जानते हैं? एक ऐसी अवस्था होती है जब कृपा का बोध होता है। जब तक वह अवस्था नहीं आती तब तक यही वे सोचते हैं कि मैं ही सब कर रहा हूँ-यही और क्या?असल में यही बात सच है कि बिना उनकी कृपा के कोई सोच नहीं सकता।''

इसी तरह की अनेक बातें हुईं।

20 श्रावण, शनिवार- आज दोपहर को श्री. ओ. एन. मुखर्जी के भवन में उनके लड़के यामिनी बाबू के विशेष आग्रह पर माँ का भोग हुआ। उनके मन्दिर में ही भोग हुआ। भोग के पश्चात् माँ बिड़ला-मन्दिर में वापस आ गयी।

रामतारण बाबू माँ को ''श्रीमन्त की मशान' कथा सुनाने का प्रबन्ध कर चुके हैं। उनके भाई गीत गाने वालों में हैं। यह बात तय हो गयी है कि शाम के बाद यामिनी बाबू के घर पर यह कथा प्रारम्भ होती। शाम को माँ

को वहाँ ले जाया गया। माँ को जरा आराम देने की गरज से यह कहा गया कि गायन वगैरह जरा संक्षेप में समाप्त किया जाए। यह जानकर गायकों को संताप हुआ।

उनमें से एक ने कहा–"माँ, बड़ी आशा लेकर आपको गीत-कथा सुनाने आया था। आपकी ओर से बाधा पाकर हमारा मन बड़ा खिन्न हो गया।"

माँ ने कहा–"तुम अपनी इच्छानुसार गायन-वादन करो। इसके लिये दुःखी होने की जरूरत नहीं है। ये इस शरीर को जरा विश्राम देने के लिये ऐसी बातें कह रहे थे।"

घटनाचक्र से वहाँ कुछ अशान्ति भी उत्पन्न हो गयी थी। लेकिन माँ ने इस ढंग से अपनी बातें कही कि सभी के मन से अशान्ति दूर हो गयी। माँ की बातों से चारों तरफ शान्ति छा गयी। फिर गायन-वादन प्रारम्भ हुआ। रात 3 बजे हम लोग मन्दिर में वापस आये। यहाँ आकर हमने देखा कि अनेक भक्त माँ की प्रतीक्षा में बैठे हुए हैं। सुबह 5 बजे माँ आराम करने गयी।

21 श्रावण, रविवार– माँ के उठने के पहले ही से लोगों की भीड़ इकट्ठी होने लगी। माँ उठी। आज माँ त्रिगुणा दादा के आह्वान पर **श्रीरामपुर** जा रही हैं। वहाँ से जहाँ इच्छा होगी वहाँ जायेंगी। केवल थोड़े समय के लिये माँ को अपने पास पाने के कारण किसी को भी तृप्ति नहीं हुई। लेकिन अप्रत्याशित रूप में पाने के कारण मानो सभी आनन्द के सागर में गोता खाने लगे थे।

साढ़े दस बजे के लगभग माँ बिड़ला-मन्दिर की ओर रवाना हो गयी। अनेक भक्त साथ हो लिये।

श्रीरामपुर स्थित महाप्रभु के मन्दिर में माँ रह गयी। त्रिगुणा दादा के भवन में माँ के लिये भोग का प्रबन्ध किया गया। त्रिगुणा दादा का पूरा परिवार सौम्य है। बाप, माँ, बच्चे, पत्नी, यहाँ तक कि अन्य लड़के-लड़कियाँ भी एक भाव में भावान्वित हैं। माँ के प्रति इस परिवार के सभी सदस्यों का सुन्दर भक्ति भाव है। इसके अलावा इनके मधुर स्वभाव से सभी मुग्ध हो उठते हैं। बड़े यत्न के साथ ये लोग माँ और भक्तों की सेवा कर रहे हैं।

शाम की गाड़ी से माँ अभय और रूमा देवी को साथ लेकर **नलहाटी**

रवाना हो गयी। हम लोगों को फिलहाल **विंध्याचल** जाने को कहती गयी। स्टेशन पर अनेक भक्त एकत्रित हुए थे। सभी लोग माँ की ओर देख रहे हैं। गाड़ी आने में कुछ देर है। माँ को एक बेंच पर बैठाया गया है। कलकत्ता से काफी लोग आये हैं। यामिनी मुखर्जी महाशय माँ के ऊपर सुगन्धित द्रव्य उड़ेल रहे हैं। माँ का किसी वस्तु के प्रति न तो आग्रह है और न विग्रह। हमेशा से यह देखती जा रही हूँ कि कोई पूजा कर रहा है तो कोई गाली दे रहा है। कोई जमीन पर बैठाता है तो कोई घाट किनारे। कोई गले मिलता है तो कोई दूर से प्रणाम कर रहा है। कोई मुग्ध होकर देख रहा है तो किसी के घाव का मवाद उनके पैर में लग जाता है, क्योंकि वे चाहते हैं कि उनका घाव अच्छा हो जाये। इन सब विपरीत व्यवहार में भी वे तनिक-सी भी विचलित नहीं हो रही हैं। सभी को समरूप में ग्रहण कर रही हैं।

माँ स्टेशन पर बैठी, आये हुए सभी लोगों को आश्वस्त करती हुई कह रही हैं-''तुम लोग काम करते जाओ, जरूर होगा।''

एक ने पूछा-''हम लोगों का सचमुच होगा, माँ?''

माँ ने कहा-''जरूर होगा। तुम लोग 'नहीं होगा-नहीं होगा-नहीं होगा' यह भावना मन में कभी न लाओ। देखते नहीं कि भगवान् को सोचते-सोचते तद्भावापन्न हो जाने में आता है। इसलिए 'नहीं होगा-नहीं होगा' सोचने की जरूरत नहीं। 'होगा-होगा' सोचते रहने पर हो जाता है। संशय करना पाप है। तुम लोग चिन्तित क्यों हो? सभी का ही होगा।''

इस आश्वस्त-उपदेश से भक्तों को शान्ति मिली। इधर तब तक गाड़ी आ गयी। भक्तों को विषाद भाव में छोड़कर माँ रवाना हो गयी। थोड़े दिनों के लिये लोगों को न जाने कौन-सी वस्तु प्राप्त हो गयी थी। अब उसे अचानक खो देने के कारण कुछ देर के लिये अभिभूत हो उठे। धीरे-धीरे लोग स्टेशन से बाहर आये। कोई मोटर से तो कोई रेल द्वारा कलकत्ता की ओर रवाना हो गया।

25 श्रावण, गुरुवार- आज सुबह अचानक अभय आकर हाजिर हो गया। सुना है कि वह कल रात को ही कलकत्ता आ गया था। माँ नलहाटी से अजीमगंज चली गयी हैं। वहाँ एक अच्छी धर्मशाला मिल गयी है। वहाँ वे अगले रविवार को जाएँगी। यही समाचार देने के लिये अभय यहाँ आया

है। हमें वहाँ बुलाया है। हम लोग अभय के साथ 3 बजे वाली गाड़ी से माँ के यहाँ चल पड़े। बाकी लोग धीरे-धीरे आते रहेंगे। बहरमपुर स्टेशन पर माँ ने आदमी भेजा था। हम लोग यहाँ उतरे तो पता चला कि माँ नसीपुर होते हुए 'विष्णुपुर' कालीबाड़ी (बहरमपुर) चली आयी हैं।

कालाबाड़ी में आकर हम लोगों ने माँ के श्रीचरणों के दर्शन किये। उस वक्त कीर्तन चल रहा था। रात 12 बजे तक लोगों का आना-जाना जारी रहा। इसके बाद माँ को विश्राम करने के लिये भेज दिया गया।

26 श्रावण, शुक्रवार– माँ सवेरे सोकर उठी। एक सज्जन आकर माँ के निकट गीता पाठ करते रहे। बाद में माँ का हाथ-मुँह धुलाकर थोड़े से फलों का भोग दिया गया। जलपान करने के बाद माँ मन्दिर में जाकर बैठ गयी।

एक सज्जन ने पूछा-''निवास स्थान को जाऊँ?''

माँ हँसती हुई बोली-''हाँ, निवास स्थान में जाने का प्रबन्ध करो। यही तो श्वास का निवास स्थान है। देखो, कितने चमत्कार की बात है, सभी अपने-अपने निवास स्थान को जाना चाहते हैं। सिर्फ इसी के लिये लोग परेशान हैं। जबकि उन्हें इस बात का पता नहीं है कि उनका कौनसा घर है?'' इतना कहने के पश्चात् वे उक्त सज्जन की ओर देखती हुई बोली- ''पिताजी, उसे धर्मशाला बना दो। बना सकोगे?''

सज्जन ने जवाब दिया-''अगर आपकी कृपा हुई तो जरूर बना दूँगा।''

इसी तरह की बातें उपस्थित सभी व्यक्तियों से वे कर रही हैं।

एक अन्य सज्जन ने प्रश्न किया-''माँ, अहंकार आदि उन्होंने हमारे भीतर क्यों भर दिये हैं?''

माँ हँसकर बोली-''किसने भर दिया है? वह भी तो उन्हीं का एक रूप है। तुम भी तो वही हो। बड़े मजे की बात है, तुम सोचते हो कि तुम उनसे अलग हो।'' इतना कहकर वे हँसने लगी।

अभय ने कहा-''अगर आप जीव होती तो अच्छा होता, तब आप जीव का दुःख समझ पाती। इस वक्त हमारी हालत देखकर हँस रही हैं। आपसे कहीं अधिक **चैतन्यदेव, रामकृष्णदेव** अच्छे थे। वे लोग जीव के दुःख पर रोते थे।''

माँ हँसती हुई बोली–''सभी कहीं अच्छे होते हैं? अनन्त प्रकार के प्रकाश होते हैं। सभी एक तरह के नहीं होते।''

अभय ने कहा–''जब हमें आपसे कुछ भी प्राप्त नहीं हो रहा है तब आप हमसे किस बात में ऊँची हैं?''

माँ हँसती हुई बोली–''कौन कहता है कि ऊँची हूँ? मैं भी तुम लोगों की तरह एक जीव हूँ। देख तो रहे हो? बिछौने पर बैठी हूँ, क्या इसलिए ऊँची हूँ? कहीं गठिया न पकड़ ले, इसलिये लोग मुझे ऊँचे स्थान पर बैठा देते हैं। मैं तो अगड़म–बगड़म बका करती हूँ। क्या करूँ जो मुँह से निकलता है, निकल जाता है।''

आगे बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी–''तुम लोगों के लिये डरने की कोई बात नहीं है। तुम लोगों में चेष्टा–शक्ति है, इसलिए कहती हूँ कि प्रयत्न करो। वर्ना अगर वे न करायें तो कुछ नहीं होगा।''

जब कुछ लोगों ने इस बात का समर्थन किया तो वे बोली–''लेकिन एक बात है जिस प्रकार सभी कार्य यों ही छोड़ नहीं देते, यथासाध्य करते रहते हो, इसे भी उसी तरह छोड़ो मत, करते रहो। इसके बाद जो कुछ करना है, वे करवायेंगे। जैसे नौकरी के लिये दरख्वास्त भेजकर पड़े रहते हो। किसे नौकरी मिलेगी, यह पता नहीं। लेकिन देखा गया है कि सिर्फ दरख्वास्त भेज देने पर भी नौकरी मिल जाती है। मनुष्य जन्म पाकर कुछ भी न करना क्या उचित है? हर कोई पशु–पक्षी की तरह अपना पेट भरता है। मान लो आज मजे में हो, पर कल हजार दुःख के पहाड़ नहीं टूट पड़ेंगे। इसकी निश्चयता कहाँ है? इसीलिए कहती हूँ कि इसके लिये पेंशन का प्रबन्ध करो। यह पेंशन जब तक श्वास है तब तक मिलती रहेगी और यह पेंशन कभी नष्ट नहीं होगी।''

एक सज्जन ने प्रश्न किया–''शरीर की रक्षा की जरूरत होती है। अगर शरीर ही नहीं रहेगा तो साधन–भजन कैसे करूँगा।''

माँ ने उत्तर दिया–''शरीर–रक्षा क्यों करोगे? उस ओर ध्यान देने की जरूरत है। अगर मन में यह रहे कि उन्हें बुलाऊँगा, इसके लिये शरीर रक्षा की जरूरत है तो उतना जरूर करोगे, पर भोग के लिये नहीं। भोग पशु–पक्षी भी करते रहते हैं। ड्यूटी पूरी करते चलो, उनकी ओर लक्ष्य बनाये रखो।''

एक अन्य सज्जन ने पूछा–''स्त्री–पुत्र का पालन, यह भी भला कोई ड्यूटी है? किसकी पत्नी; किसका पुत्र, कौन लालन–पालन करता है?''

माँ ने कहा–''अगर यह बुद्धि ठीक–ठीक रूप से जन्म ले ले तो फिर क्या बात है। चैतन्यदेव ने तो माता–स्त्री सभी को छोड़ दिया था। लेकिन सभी चैतन्यदेव नहीं हैं, इसलिए जो लोग पत्नी–पुत्रादि के साथ हैं, उनकी जरूरत सेवा–बुद्धि में है अर्थात् 'यह सब भी उनकी ही सेवा कर रहा हूँ' इस भावना को लेकर गृहस्थी चलानी चाहिए। और कहना यह है कि जितने दिनों तक संयम व्रत लिया जा सके, महीने में दो–चार दिन या जिनमें अधिक शक्ति है वे एक महीने तक लें। इन दिनों शुद्ध रूप में रहूँगा, यह संकल्प लेना चाहिए। भोजन, जितना शरीर–रक्षा के लिये आवश्यक है, करें। भोग के लिये भोजन न हो। सोना तब चाहिए जब तक नींद न सताये। सद्ग्रन्थ पाठ, नाम या अन्य कोई सत् चिन्तन में समय गुजारना चाहिए। तुम लोगों का दफ्तर–दुकान है, औरतों के लिये यह झमेला नहीं है। वे लोग हाथ से काम करती हैं, लेकिन उन दिनों विशेष रूप से लक्ष्य उनकी ओर रखना चाहिए। सत्य बात, सत्य व्यवहार की ओर लक्ष्य रखना चाहिए। मुमकिन है एक दिन ठीक से नहीं हुआ, परन्तु अभ्यास करते–करते बाद में यह कार्य कठिन मालूम नहीं होगा, बल्कि आनन्द मिलेगा। बच्चों को ही देखो, वे पहले–पहल पढ़ना–लिखना नहीं चाहते। खेल–कूद में मन लगाते हैं बाद में वे समझ जाते हैं कि न पढ़ने पर फेल हो जाने में आयेगा तब स्वयं ही पढ़ते–लिखते हैं। उस वक्त उन्हें फिर कुछ बताना नहीं पड़ता। इसी तरह पहले–पहल यह कार्य शायद अच्छा न लगे, क्योंकि हमारी वृत्तियाँ बहिर्मुखी हो गयी हैं न? बाद में अभ्यास हो जाने पर इसमें आनन्द पाओगे। इसीलिए कहती हूँ कि ताप सहा है न, यानी तपस्या। भगवान् के लिये तपस्या करो। अर्थात् ताप को सहन करो।''

आगे कहने लगी–''गुरु कौन है? न केवल माता–पिता, बल्कि जिनके निकट हम लोग गूढ़ विषय की जानकारी प्राप्त करते हैं, वे सभी गुरु हैं। जो मार्ग का जरा भी पता देते हैं, वे ही गुरु हैं। सब कोई ढोंग रचकर बैठ गये हैं। ढोंग रचने पर शान्ति कहाँ मिलती है?''

इन बातों के पश्चात् अवनी बाबू ने माँ की पूजा की। माँ के निकट

सभी लोग मिलकर समवेत रूप में आद्यास्तवन पाठ करेंगे। यह जानकर माँ बोली–''ठीक है, करो। तुम लोग सुनो और मैं भी सुनूँ।''

माँ बैठी हुई हैं। यह पहले ही बता चुकी हूँ कि माँ निन्दा, स्तुति, पूजा और अपमान सब कुछ समान रूप से स्वीकार करती हैं। इन सबके बारे में वे चंचलता नहीं दिखाती।

माँ बरामदे में बैठी हैं। कीर्तन आरम्भ हो गया। अपराह्न में माँ एक आश्रम में जाएँगी, वहाँ भी कीर्तन होगा।

अपराह्न में माँ को गंगा किनारे स्व. मोहबाबू के आश्रम में ले जाया गया। सर्वप्रथम भागवत पाठ हुआ, इसके बाद नाना प्रकार की बातें होने लगी। एक वृद्ध ने पूछा–''माँ, मैं दो-एक सवाल पूछना चाहता हूँ, क्या जवाब देंगी।''

माँ हँसती हुई बोली–''अगर तुम लोग जाँचना चाहते हो तो जरूर जवाब मिलेगा।''

कुछ देर बातें होती रही। बात-बात में माँ कहने लगी–''पिताजी, कहा जाता है कि जो बन्ध है, वही जीव है। देखते नहीं, बद्ध पानी में गन्ध होता है, बहते पानी में गन्ध नहीं होता।''

शाम को कीर्तन हुआ। काफी लोग आये हैं। माँ को विश्राम देने के लिये उन्हें लिटा दिया गया। लेकिन लोगों के आकुल आग्रह के कारण दरवाजा बन्द रखना नामुमकिन हो गया। रात 11 बजे **'निमाई संन्यास'** कीर्तन आरम्भ हुआ। रात साढ़े तीन बजे कीर्तन समाप्त होने के बाद माँ सोने गयी।

27 श्रावण, शनिवार– आज यहाँ के राजभवन में श्रीयुत् कमलारंजन राय माँ को ले गये। संपूर्ण परिवार ही भक्त है। राजा-रानी दोनों ही भक्त-प्राण हैं। कुछ देर वहाँ समय गुजारने के बाद हम चले आये।

चलते समय रानीजी कहने लगी–''यह क्या हुआ? इससे अच्छा था कि आपसे मुलाकात ही न होती। मैं न जाने कैसी हो गयी। माँ न जाने कैसा करके जा रही हैं।''

दोपहर को 12 बजे भोजनादि समाप्त कर माँ के साथ अजीमगंज की ओर रवाना हो गयी। चारों ओर से भक्तगण आये हुए हैं। स्थानीय लोग भी

हैं। रात में नाम प्रारम्भ किया गया। आगामी कल कीर्तन होगा।

28 श्रावण, रविवार– आज भोर में कीर्तन आरम्भ हुआ। नाम आरम्भ हुआ –

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे।
हरे राम हरे राम, राम–राम हरे।''

वातावरण मुखरित हो उठा। बड़े धूम के साथ कीर्तन चलता रहा। सभी लोग नाम गाते–गाते मस्त हो उठे। माँ रह–रहकर कीर्तन के मध्य घूम रही थी। कभी–कभी लोगों के बीच जाकर बैठ जाती हैं। दिन भर यही क्रम जारी रहा। पूरे 24 घण्टे तक नाम होता रहा।

29 श्रावण, सोमवार– आज औरतें 12 बजे से 6 बजे तक कीर्तन करेंगी। कीर्तन बन्द नहीं हो रहा है। अहरह चल रहा है।

नलक्ष के जमींदार सुरपतिसिंह के यहाँ लोग माँ को ले गये। अपराह्न में 5 बजे तक कीर्तन होता रहा। 5 बजे के बाद लोग **अजीमगंज** के राजभवन में माँ को ले गये। वहाँ से गंगा के उस पार जियागंज में रायबहादुर के भवन में ले जाया गया। घाट किनारे नाव लगते ही लोग कीर्तन करते हुए माँ को ले गये। वहाँ रात 8 बजे तक कीर्तन चलता रहा। इसके बाद हम धर्मशाला में वापस आ गये।

रात 11 बजे माँ के साथ हम लोग रवाना हुए।

30 श्रावण, मंगलवार– आज सवेरे माँ बैण्डल में उतर गयी। कहाँ जायेंगी, कोई निश्चित नहीं है। माँ के आदेशानुसार मैं कलकत्ता वापस चली आयी।

आज सुबह की डाक से अभय की एक चिट्ठी मिली जो कि नैहाटी से लिखी गयी थी, उससे पता चला कि माँ ढाका जायेंगी। मुझे वहाँ बुलाया है। रात की गाड़ी से मैं ढाका रवाना हो गयी।

31 श्रावण, बुधवार– अजीमगंज में विभिन्न प्रकार की बातें हुई थी–बद्ध पानी महकता है, स्रोत के पानी में गन्ध नहीं होता। यही बद्ध पानी अथवा भाव ही जीव है। गुरु के वाक्यों में अविचलित निष्ठा रखना ही, इस मार्ग में सहायता पहुँचाती है।

माँ ढाका में

32 श्रावण, गुरुवार– ढाका आने पर पता चला कि माँ किसी को कोई सूचना दिये बगैर अचानक ढाका आ गयी हैं। सबसे पहले वे सिद्धेश्वरी में गयी। इसके बाद रमना आश्रम में आयी। रात 10 बजे पुनः **सिद्धेश्वरी आश्रम** में चली गयी। दूसरे दिन पुनः **रमना आश्रम** में आयी। माँ से मेरी मुलाकात रमना आश्रम में हुई। सभी लोगों को माँ के आने की बात मालूम नहीं हुई है, इसीलिए भीड़ कम है। रात भर बच्चे कीर्तन करते रहे।

1 भाद्र, शुक्रवार– धीरे-धीरे माँ के आने का समाचार पाकर लोग आने लगे। आज सारी रात औरतें कीर्तन करती रही। बीच-बीच में माँ भी साथ देती रही।

2 भाद्र, शनिवार– आज सवेरे माँ सभी को साथ लेकर सिद्धेश्वरी आश्रम में आयी। यहाँ हम लोगों का स्नान हुआ। यहाँ से 10 बजे माँ नारायणगंज गयी। द्विजेन्द्र भौमिक के आह्वान पर गयी थी। वहाँ से स्व. गोपालचन्द्र चटर्जी महाशय के निवास स्थान पर गयी। यहाँ किरण दीदी औरतों के बीच कीर्तनादि का प्रचार करती हैं।

किरण दीदी के उद्योग से ही माँ वहाँ गयी, वहाँ लड़कियों का कीर्तन होता रहा। वहाँ से माँ अन्य लोगों के मकानों में भी गयी। बाद में ढाई बजे ढाका वापस लौट आयी। आज नाम-यज्ञ आरम्भ होने वाला है। समस्त प्रबन्ध हो चुका है। रात में अधिवासादि करने के पश्चात् नाम-यज्ञ आरम्भ हुआ।

3 भाद्र, रविवार– आज अष्ट प्रहर कीर्तन होता रहा।

4 भाद्र, सोमवार– आज सवेरे 8 बजे हम लोग मुंशीगंज रवाना हो गये। यहाँ दो दिन ठहरे। जगद्धात्री मंदिर में कीर्तन होता रहा। माँ ने एक रात जगद्धात्रीजी के मन्दिर में और दूसरी रात नाव पर बितायी। श्रीयुत् वीरेन्द्रचन्द्र मुखोपाध्याय महाशय के निवास स्थान पर कीर्तन हुआ। इसी तरह मुंशीगंज में आनन्द उत्सव करने के पश्चात् 6 भाद्र बुधवार को माँ 'खेओड़ा' की ओर चल पड़ी।

श्री श्री माँ अपने जन्म–स्थान खेओड़ा में

6 भाद्र, बुधवार– आज रात 10 बजे हम लोग कमलासागर पहुँचे। यहाँ से खेओड़ा रवाना हुए। खेओड़ा से कई सज्जन माँ की अगवानी के लिये कमलासागर आये हुए थे। हम लोग साढ़े दस बजे के लगभग खेओड़ा पहुँचे।

पानी बरस रहा था। आश्रम में काफी लोग हाजिर थे। सभी लोगों ने उलु ध्वनि करते हुए माँ को बैठाया। माँ की हमउम्र और हमनाम एक महिला वहाँ थी जो माँ के बचपन की सहेली थी। वे बचपन की दो–एक पुरानी बातों की चर्चा करने के पश्चात् अफसोस करने लगी।

मैंने पूछा–''आप अफसोस क्यों कर रही हैं? यह तो आपके लिये गौरव की बात है।''

उन्होंने कहा–''अपना आदमी अगर परदेशी बन जाये तो यह दुःख की बात है।''

माँ अक्सर यहाँ आकर स्थानीय लोगों से स्थानीय भाषा में बातचीत करती हैं और हँसती हैं। इसमें लोगों को आनन्द मिलता है। आज भी वैसा ही हुआ। इस तरह रात ढाई बजे हम लोग सोने गये।

7 भाद्र, गुरुवार– माँ के आगमन का समाचार सुनकर कुमिल्ला तथा निकटवर्ती गाँवों से काफी लोग आ गये हैं।

एक परिचित महिला पास आकर बोली–''तुम्हें देखने के पहले सोचती थी कि देखूँ अब कैसी हो गयी हो? सोचती थी कि तुम दिन–रात आँखें बन्द कर सोती रहती हो, किसी के साथ बातें नहीं करती। तुम्हारी क्या हालत है, देखने की बड़ी लालसा मन में थी। यहाँ आकर देख रही हूँ कि तुम तो हमारे साथ बातें कर रही हो, हँसी–ठट्ठा भी कर रही हो। यह देखकर मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है।''

बात सच भी है। यहाँ आने के बाद से माँ सभी के साथ इस तरह का व्यवहार कर रही हैं कि लोग यही सोच रहे हैं–'माँ हमारी ही हैं।'

एक व्यक्ति कहने लगा–''हमारे, हमारे, हमारे राजा।''

मैंने हँसकर कहा–''ठीक कहा आपने।''

इसी प्रकार के आनन्द में सभी आत्मविभोर हो गये हैं।

मन कैसे शुद्ध किया जाय, इस प्रश्न के उत्तर में माँ जवाब दे रही हैं। आजकल अधिकतर संयम व्रत की चर्चा करती रहती हैं। माँ बोली–"महीने में अधिक से अधिक जितने दिन हो सके इस बात का संकल्प लो कि उस दिन पति को परम पति के रूप में, स्त्री को देवी के रूप में, लड़कों को बाल–गोपाल के रूप में, लड़कियों को कुमारी के रूप में देखोगे। अगर उन दिनों कोई गलती करें तो उस पर नाराज नहीं होंगे। सोचना कि शायद भगवान् इसी रूप में धैर्य की परीक्षा ले रहे हैं। खाने, पीने और सोने में भी संयम रखना चाहिए। अगर तुम लोग इस भावना से काम लोगे तो बच्चों में भी सद्भावना जाग्रत होगी। भोजन उतना ही करोगे जितना बिना किये काम नहीं चलेगा। बातें उतनी ही करोगे जितनी बिना किये काम न हो। सभी बातें इसी तरह हों। देखते होंगे कि दूध पर मलाई जमाने के लिये कितने स्थिर रूप से दूध को रखना पड़ता है, हवा लगने से अच्छी मलाई नहीं बनती, टूट जाती है, उसी प्रकार मन को स्थिर रखना चाहिए। स्थिर भाव से बैठकर नाम करते रहने पर मन स्थिर होता है। यह देख चुके होंगे कि नित्य एक प्रकार की चीजें खाते–खाते अरुचि हो जाती है, इसलिए कभी–कभी विभिन्न वस्तुएँ खायी जाती हैं। ठीक इसी प्रकार मन को भी उसी ओर लगाये रखना चाहिए। इससे मन पुष्ट होता है। बाहरी भोजन से शरीर और इस भोजन से मन पुष्ट होता है।"

8 भाद्र, शुक्रवार– माँ को एक तालाब में नाव पर बैठाकर सैर करायी जा रही है। पूर्व परिचिता एक वृद्धा आकर पुरानी बातों की चर्चा करती हुई अफसोस प्रकट करने लगी।

इसी बीच एक सज्जन बोल उठे–"माँ को कलश भरकर तेल–सेल से नहला दिया जाए तो कैसा हो?"

माँ हँसती हुई बोली–"इस तरह तो विवाह के समय नहलाया जाता है। तुम लोगों के साथ विवाह होगा क्या?"

वृद्धा सम्भवत: रिश्ते में दादी लगती हैं। वृद्धा विधवा है। माँ हँसती हुई देशी भाषा में कह रही हैं–"जिनके पति इसी तरह चले गये हैं, मैं उनके साथ विवाह करूँगी, क्यों ठीक है।?"

इतना कहकर वे हँसने लगी। शाम के समय वृद्धा माँ से कहने लगी–"क्या आज वर–शय्या नहीं होगी?"

माँ पुनः हँसती हुई देशी भाषा में बोली–"देखो, जो लोग चले गये हैं, उन लोगों के साथ जिस ढंग से वर–शय्या हो चुकी है, इस शरीर के साथ उस तरह नहीं हो सकेगी। क्योंकि उस ढंग से इस शरीर के साथ विवाह नहीं हुआ है। इस पति के साथ मन–ही–मन वर–शय्या होगी। इसका नतीजा यह होगा कि एकदम से मिल जाना–लय हो जाना। कोई अन्तर नहीं रहेगा। **एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।** एकात्मा, और क्या?"

इतना कहने के पश्चात् वे बच्चों की तरह हँसने लगी। फिर अचानक न जाने किस बात पर माँ कहने लगी–"पिताजी।"

मैंने पूछा–"कौन से पिताजी? तुम्हारे तो अनेक पिताजी हैं।"

स्वामीजी ने हँसकर कहा–"यहाँ के (अर्थात् जन्मदाता पिताजी) बाप की तरह कोई नहीं।"

माँ हँसती हुई बोली–"पिताजी कौन? अगर इस दृष्टि से समझो तो मैं ही अपना पिताजी और मैं ही अपनी माँ हूँ। सृष्टि जो करता है, वही तो बाप है। मैं ही तो अपनी सृष्टि करती हूँ। ब्रह्म के भीतर से स्वाभाविक भाव से सृष्टि, स्थिति, लय होता जा रहा है। फलस्वरूप मैं ही अपना बाप हूँ।"

इतना कहने के पश्चात् माँ हँसती हुई बोली–"और क्या कहोगी, बोलो?"

9 भाद्र, शनिवार– काफी लोग एकत्रित हैं, बातें हो रही हैं। एक सज्जन कह रहे हैं–"माँ, हम लोग कुछ नहीं कर सकेंगे। तुम क्यों हमें कुछ करने को कहती हो? जो कुछ करना है, तुम कर दोगी। हमारे ऊपर जिम्मेदारी मत सौंपो। हमारे जिम्मे क्यों जिम्मेदारी लाद देती हो?"

माँ हँसती हुई बोली–"पिताजी, क्यों करने को कहा जाता है, जानते हो? तुम लोग सोचा करते हो कि मैं करता हूँ, मैं कर सकता हूँ, इसीलिए कहा जाता है।"

भगवान् के 'नाम' और 'बीज' में क्या अन्तर है? इस प्रश्न के उत्तर में माँ कहने लगी–"**बीज–मंत्र में गुरु शक्ति से शरीर में झंकार होती है और मंत्र चैतन्य होकर उसी लक्ष्य की ओर पहुँच जाता है।** साधारण नाम में भी वही भावना उत्पन्न होती है। अगर भाव के सहित किया जाए तो नाम शक्ति में भाग्यानुयायी गुरु

प्रकट होने पर सब कुछ हो जा सकता है। नाम और बीज में गुरु शक्ति रहने पर प्रत्येक में कार्य पूर्ण हो सकता है।''

10 भाद्र, रविवार– आज माँ को 'पाताई सार' के मुकुन्द चौधरी अपने यहाँ ले गये। गाँव के काफी लोग नित्य माँ की पूजा कर रहे हैं। अधिकांश लोग पूजा के पश्चात् फलों से माँ को भोग देकर, प्रसाद लेकर जा रहे हैं। आरती हो रही है, मानो दुर्गोत्सव चल रहा है। पाताई सार में भोगादि के पश्चात् माँ माखन बाबू के आह्वान पर उनकी कोठी पर गयी। तीन-चार नावों पर सभी लोग लद गये। धान के खेतों को चीरती हुई नाव चल रही थी। साथ ही कीर्तन हो रहा था। बीच-बीच में किसी-किसी घाट पर भक्तों की भीड़ एकत्रित हो रही है। माँ सभी पूर्व परिचितों से कुशल-मंगल पूछती चल रही हैं। वे लोग इतने से ही आनन्दित हो रहे हैं हम लोग रात 3 बजे वापस आये।

11 भाद्र, सोमवार– आज सवेरे नाव से माँ कहीं चली गयी। कुछ देर बाद आश्रम में वापस आ गयी। एक लड़की की इच्छा है कि वह इसी मार्ग का अवलम्बन करे, परन्तु बाहर से वह भाव उत्पन्न नहीं हो रहा है।

इस समस्या पर माँ कहने लगी–''वृत्ति की खुराक का प्रबन्ध न कर निवृत्ति की खुराक का प्रबन्ध करना जरूरी है, क्यों? तुम लोग ज़िन वृत्तियों को खुराक दे रही हो, एक दिन वह समय आयेगा। जब ये वृत्तियाँ इतनी परिपुष्ट हो उठेंगी कि इनसे मुकाबला नहीं कर सकोगी। वे स्वयं तुझे लाचार बना देंगी। इसीलिए कहती हूँ कि वृत्ति की खुराक का प्रबन्ध न कर निवृत्ति को पहले खुराक दे।''

आज रात अधिवास करने के बाद कल अष्ट प्रहर कीर्तन करने के लिये सभी लोग राजी हो गये। गाँव के लोग माँ की पूजा, आरती और नाम करते रहे। रात डेढ़ बजे ढाका से 30 भक्त स्त्री-पुरुष अचानक आ गये।

अधिवास के पश्चात् महिलाओं ने कीर्तन करना प्रारम्भ किया। फूल मिले नहीं। माँ महिलाओं को पत्ते और सनई की लकड़ी से कैसे माला बनायी जा सकती है, यह बताने लगी। इन दोनों सामग्रियों से सुन्दर मालाएँ तैयार हो गयी। माँ सामयिक व्यवस्था कर लेती हैं। उक्त माला और चन्दन लगाकर औरतें कीर्तन करने लगी। सारी रात कीर्तन होता रहा। गाँव के लोग

अपने बीच माँ को पाकर आनन्द से आत्मविभोर हो उठे थे। पूजा, आरती, कीर्तन आदि प्रत्येक कार्य में सभी लोग हाजिर हो रहे थे। समाचार पाकर **कुमिल्ला, चटग्राम** आदि शहरों से लोग आ गये। माँ कभी संयम व्रत तो कभी नाम-माहात्म्य के सम्बन्ध में उपदेश दे रही हैं।

12 भाद्र, मंगलवार – आज सवेरे औरतों के कीर्तन समाप्त करने के बाद आरती हुई। फिर चन्दन से सज्जित होकर लड़कों का दल कीर्तन करने लगा। माँ महिलाओं के साथ तालाब में स्नान करने गयी। बाल्य भोग देने के पश्चात् माँ सभी को लेकर नाव से अपनी जन्मभूमि दिखाने के लिये चल पड़ी।

किनारे पर अनेक मुसलमान स्त्री-पुरुष माँ को देखने के लिये बड़े आग्रह से प्रतीक्षा में खड़े हैं। माँ उन लोगों से बातें करती चल रही हैं। एक दौड़कर दूसरे को बुला रहा है। जन्मस्थान के मुसलमान निवासी माँ के बचपन की बातें बताते हुए हर्ष प्रकट कर रहे हैं। माँ भी उनके साथ पुरानी बातों की चर्चा करती हुई, प्रसन्नता प्रकट कर रही हैं।

भक्तों का दल माँ के जन्मस्थान पर पहुँचकर जमीन पर लोटने-पोटने लगा। बैकुण्ठदास के आग्रह पर लोग उनके निवास-स्थान पर गये। राह में माँ बताती जा रही थी-''इस तालाब में पानी भरने आती थी, इस पेड़ से न जाने कितने जामुन तोड़कर खा चुकी हूँ, इस पेड़ के आम 'खटमिठिया' हैं।''

बैकुण्ठदास के भवन में पहुँचकर महिमदास की पत्नी को दिखाती हुई कहने लगी-''इन्होंने मुझे कार्पेट की दस्तकारी सिखायी थी।''

इसी प्रकार माँ विभिन्न लोगों के बारे में तरह-तरह की बातें बताती हुई, पुरानी स्मृतियों की चर्चा करती हुई, लोगों को आनन्द दे रही हैं। यहाँ कुछ लोगों ने माँ के चरणों में पुष्पांजलि दी।

बैकुण्ठदास के यहाँ से माँ आश्रम वापस आने के लिये नाव पर आयी। माँ को विश्राम देने के लिये भेज दिया गया। दोपहर को भोज देने के निमित्त कुछ देर के लिये मैं आश्रम में आयी। माँ की पूजा, भोग, आरती हुई। कुछ देर यहाँ बैठने के बाद वे नाव पर जाकर आराम करने लगी। माँ नाम करने पर विशेष जोर दे रही हैं। श्वास-प्रश्वास का घर-द्वार है, इसे बार-बार समझा रही हैं।

आज अष्ट प्रहर का कीर्तन आरम्भ हुआ है। हजार से अधिक व्यक्तियों ने प्रसाद पाया। माँ जहाँ कहीं भी जा रही हैं, वहाँ लोगों की भीड़ उमड़ पड़ती है। अथक प्रयत्न करने पर भी भीड़ से माँ को दूर रखा नहीं जा पा रहा है। आज झूलन पूर्णिमा है, अष्ट प्रहर कीर्तन चलता रहा।

13 भाद्र, बुधवार– आज सवेरे कीर्तन करने वालों का दल पूरे गाँव का चक्कर काटता हुआ आश्रम के निकट आकर रुक गया और यहाँ उद्दाम नृत्य के साथ सभी कीर्तन करने लगे। स्थानीय परम्परा के अनुसार मंगल कलश सिर पर रखे, नृत्य करते हुए कीर्तन करते रहे। इसके बाद एक-दूसरे पर पानी उड़ेलते हुए आनन्द लेने लगे। बाद में पंकोत्सव प्रारम्भ हुआ।

माँ ने कहा–''कीर्तन के स्थान पर, यहाँ की मिट्टी में लोटना-पोटना अच्छा है।''

इतना सुनना था कि भक्तों का दल तुरन्त उसी स्थान पर लोटने लगा। पूरे उत्साह के साथ नृत्य-कीर्तन चलता रहा। माँ सब कुछ विचित्रताएँ स्वीकार कर लेती हैं। लोगों के लोटने का ढंग देखकर अन्य लोग डर गये। बहरहाल, माँ कुछ देर बाद पोखर में नहाने चल पड़ी। इनके साथ-साथ भक्तों का दल भी चला। काफी देर तक लोग स्नान क्रीड़ा करते रहे।

भोजनादि के पश्चात् माँ को विश्राम देने के लिये नाव पर ले जाया गया। शाम के पहले माँ आश्रम में वापस लौट आयी। कीर्तन और आरती के पश्चात् रात लगभग 12 बजे हम लोग माँ के साथ **सुलतानपुर** रवाना हो गये। चाँदनी रात, माँ के साथ यात्रा करने में आनन्द आ रहा था। रात के अन्तिम प्रहर में नाव को छोड़कर हम पैदल सुलतानपुर रवाना हो गये। मार्ग में मेहारी जाने की बात है।

14 भाद्र, गुरुवार– हम लोग भोर में मेहारी पहुँच गये। जो लोग माँ को लेने के लिये आये हुए थे, वे ही लोग समस्त प्रबन्ध कर रहे थे। वे लोग माँ को अपने घर ले गये।

माँ ने खेओड़ा में कहा था–''मेहारी में भोजन करने के बाद अगर हम सुलतानपुर चल दें तो कैसा रहे?''

हम लोगों ने देखा कि इस बार मेहारी से जो लोग हमें बुलाने के लिये आये थे, कुछ बोले नहीं; इसलिए हमने भी कोई चर्चा नहीं की और

निश्चय किया गया कि सुलतानपुर जाकर भोग का प्रबन्ध किया जाएगा। जो लोग हमें मेहारी ले गये, उनके अनुरोध पर नाव इन लोगों के पुरोहित स्व. महेशचन्द्र भट्टाचार्य के भवन की ओर चल पड़ी। उन लोगों ने कहा–''वहाँ जाने पर माँ का दर्शन सभी लोग कर सकेंगे, क्योंकि सभी लोगों को वहाँ आने के लिये कहा गया है।''

वहाँ पहुँचने पर पता चला कि यहाँ एक शिव–मन्दिर है। सभी के अनुरोध पर माँ वहाँ गयी। सुन्दर मन्दिर है। गृहस्वामी साधक व्यक्ति है। उन्होंने कहा–''माँ मैं स्वयं नहीं गया, पर मन–ही–मन प्रार्थना करता रहा कि तुम आ रही हो, माँ भोग बिना ग्रहण किये नहीं जाओगी।''

मैंने देखा–माँ राजी हो गयी। कल जब हम खेओड़ा से चलने की तैयारी कर रहे थे तब माँ ने कहा था–''मेहारी में अगर खाना–पीना कर लिया जाय तो कैसा हो?''

माँ की यह बात अचानक याद आ गयी। न जाने कितने लोग अक्सर कितनी बार अनुरोध करते रहते हैं, पर हर वक्त इस सम्बन्ध में माँ राजी नहीं होती। लेकिन इस बार किसी को कुछ कहने की जरूरत नहीं हुई और माँ अपने से स्वयं ही प्रबन्ध कर रही हैं।

श्री श्री माँ सुलतानपुर ननिहाल में

मेहारी में माँ को भोग दिया गया, कीर्तन हुआ। माँ मकान के चारों तरफ पैदल चक्कर काटती रही। ढाई बजे के लगभग हम लोग मेहारी से रवाना हुए। माँ जब नाव पर सवार हुई तब जिनके यहाँ वे ठहरी थी, वे सज्जन बच्चों की तरह रोने लगे। तट पर खड़े अन्य लोगों की आँखें भी भीग उठी। नाव चल पड़ी। शाम होने के कुछ देर बाद हम सुलतानपुर पहुँच गये।

सुलतानपुर माँ का नैहर है। पानी बरस रहा था। गाँव की कच्ची सड़क पर से कीर्तन करते हुए लोग माँ की अगवानी के लिये आये थे। माँ के मामा की स्थिति दयनीय है। एक जमाना था जब ये काफी सम्पन्न थे। टीन के छाजन की झोपड़ियाँ हैं। यथाशक्ति सभी का आदर–सत्कार किया जा रहा है। कुछ देर तक कीर्तन होता रहा। इसके बाद पुराने परिचित व्यक्तियों की भीड़ आने लगी और माँ इन लोगों से बातें करने लगी।

माँ प्रत्येक से कहती–''मुझे अच्छी तरह याद है''–फिर हँसती हुई, सभी से कुशल–मंगल पूछने लगती। वे लोग इस बात पर प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं कि माँ उन्हें अभी तक यदा–कदा स्मरण करती हैं। आगन्तुकों में कोई–कोई यह भी पूछता था कि आपको अपने बचपन की बातें अभी तक याद हैं?

इसी प्रकार की बातें काफी देर तक चलती रही। काफी रात हो गयी है देखकर, माँ के लिये सोने का प्रबन्ध किया गया।

15 **भाद्र, शुक्रवार–** हम लोग माँ के मामाजी के यहाँ ठहरे हुए हैं। ममेरे भाई निशिकान्त भट्टाचार्य और शशिकान्त भट्टाचार्य दोनों महाशय यथाशक्ति सभी लोगों की खातिर–तवज्जह कर रहे हैं। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति माँ का दर्शन करने के लिये आ रहा है। पड़ौस के गाँव से भी कुछ लोग आये हुए हैं। शाम तक खाना–पीना चलता रहा। काफी लोगों ने प्रसाद पाया। इसके बाद गाँव के लोग माँ को विभिन्न घरों में ले गये। यत्र–तत्र कीर्तन भी होता रहा। रास्ते में एक चौकी पर माँ को बैठाकर, लोग नीचे से कन्धा लगाकर लेकर चलने लगे। रात 10 बजे तक इसी प्रकार आनन्द–कीर्तन होता रहा। रात 2 बजे हम लोग कुमिल्ला की ओर रवाना हो गये।

श्री श्री माँ कुमिल्ला में

16 **भाद्र, शनिवार–** कुमिल्ला से स्व. महेशचन्द्र भट्टाचार्यजी के कर्मचारी सर्वश्री रोहिणी बाबू, श्रीश बाबू और परेश बाबू माँ को लेने आये हैं। इन लोगों ने बड़े आग्रह से माँ को स्व. भट्टाचार्यजी के भवन में ठहराया।

17 **भाद्र, रविवार–** आज चार पहर तक कीर्तन होता रहा। जटू ने आरती की। ढाका से अनेक भक्त आये हैं। धीरे–धीरे इतनी भीड़ बढ़ गयी कि माँ को अपना शरीर बचाना मुश्किल हो गया। माँ जहाँ कहीं जाकर बैठती थी, वहीं लोग मक्खी की तरह जाकर इकट्ठे हो जाते थे। काफी प्रयत्न करने के बाद कहीं माँ को इस मुसीबत से बचाया जा सका। माँ के श्रीचरणों के दर्शन करने के लिये प्रत्येक व्यक्ति उतावला था। अनेक प्रयत्न करने के बाद कहीं इस समस्या का हल किया गया। माँ को यहाँ से आराम करने के लिये निवेदिता स्कूल बोर्डिंग में ले जाया गया।

18 **भाद्र, सोमवार–** निवेदिता स्कूल बोर्डिंग की निवासिनियों के आग्रह पर ढाका से आयी हुई लड़कियाँ कीर्तन करने लगी। माँ वहीं ठहर गयी। यहाँ

से माँ को लड़कियों के स्कूल में ले जाया गया। लड़कियों ने समवेत स्वर में माँ का वन्दना-गीत गाया। इसके बाद स्कूल में छुट्टी हो गयी ताकि सभी अध्यापिकाएँ और छात्राएँ माँ का उपदेश सुन सकें। माँ सभी से भगवान् का नाम लेने और संयम व्रत रखने के लिये उपदेश दे रही हैं।

बरकन्ता से शोभा माताजी श्री श्री माँ से मुलाकात करने आयी हैं। सभी लोग आनन्द मना रहे हैं। आज चटगाँव जाने की बात है।

शाम के बाद लोगों की इतनी भीड़ एकत्रित हो गयी कि कमरा गर्म साँसों से गर्म हो उठा। इधर माँ बड़े आनन्द से सभी के साथ बातें करती रही। लेकिन यह हालत देखकर समय से कुछ पहले ही हम लोग माँ को स्टेशन ले आये। रास्ते में दो-एक घरों में वे गयी।

एक सज्जन हँसते हुए बोले-''माँ मुझे कुछ आशीर्वाद दीजिये।''

माँ हँसती हुई बोली-''मुझे ले चलो। अगर मैं पूजा के आशीर्वाद का फूल, बेल-पत्ती बन सकूँ तो जरूर ले चलो।''

श्वास-वायु की चर्चा चलने पर माँ कहने लगी-''श्वास के साथ नाम का योग रखते हुए नाम करते रहो। यह अभ्यास मन में स्थिरता उत्पन्न करता है। इसके अलावा हम लोगों में जो प्राणवायु है, वही तो समस्त विश्व को आच्छादित किये हुए है। उसी महान् भाव के अन्तर्गत आने पर अन्त में वही स्रोत ही एक दिन उनकी ओर ले जाएगा। एक बार अपने को उस स्रोत में डाल दो।

इसी तरह की अनेक बातें बताती रही।

श्री श्री माँ चटगाँव में

19 भाद्र, मंगलवार- आज सुबह हम चटगाँव पहुँचे और यहाँ राजेश्वरी के मकान में आकर ठहरे। कुमिल्ला में अधिकांश लोग एकत्रित होकर जब माँ के पास आकर यह कहने लगे कि हम इतनी तादाद में आपके दर्शन करने आये हैं, तब माँ ने कहा-''तुम लोग मुझे इतना दूर क्यों रखते हो? मैं तो यह कहूँगी कि तुम लोग दर्शन देने आये हो। इसके अलावा हम लोग तो एक ही मकान के निवासी हैं। यही वजह है कि तुम सब इस शरीर के प्रति स्नेह करते हो, शायद इसीलिए आये हो-इस लड़की को देखने।''

माँ ने इस ढंग से सारी बातें कही कि सभी का हृदय पसीज उठा।

20 भाद्र, बुधवार– चटगाँव में आनन्द–उत्सव चलता रहा। शाम के समय कीर्तन होता है, काफी तादाद में लोग आते हैं। बीच–बीच में जब कोई प्रश्न कर बैठता तब कुछ अमूल्य वाणी निकल पड़ती थी। जब कोई कुछ पूछ बैठता तब माँ कहती–"ठीक है जब तुम लोग जाँच रहे हो तो तुम लोग भी कुछ सुनोगे और मैं भी सुनूँगी।"

21 भाद्र, गुरुवार– आज शाम को श्रीयुत् सुरेन्द्र घोषाल माँ को दिगेन्द्र घोषाल महाशय के भवन में ले आये। यहाँ कीर्तन हुआ। माँ के लिये लोग जलपान ले आये हैं। इसी बीच माँ ने सभी लोगों की निगाह बचाकर थाली से अमावट उठाकर चादर में छिपा ली। बाद में जलपान के समय अमावट की तलाश होने लगी।

माँ ने मुझसे कहा–"यह चदरा माताजी (सुरेन्द्र बाबू की पत्नी) की गोद पर रख दे।"

वे इस रहस्य से अपरिचित थी। वे उक्त चदरा को गोद पर रखे बैठी रह गयी। इसके बाद माँ बोली–"आप लोग खड़े होकर अपने कपड़े झाड़िये।" इतना कहने के साथ ही वे सर्वप्रथम हँसती हुई उठ खड़ी हुई। नतीजा यह हुआ कि सुरेन्द्र बाबू की पत्नी के कपड़ों में से अमावट नीचे गिर पड़ी। माँ हँस पड़ी।

इस रहस्य को लेकर कुछ देर तक सभी लोग हँसते रहे। माँ के इस विनोद में सभी को आनन्द मिला। माँ हँसती हुई बोली–"देखो, तुम सब किस बात पर मग्न हो? साधु–संन्यासी बड़े गम्भीर होते हैं, न जाने कितना उपदेश देते हैं और तुम्हारी यह लड़की क्या करती है? सिर्फ खाती है और सोती है। तुम लोग क्या देखकर खो जाते हो? हाँ, लड़की से स्नेह करना माँ–बाप का स्वभाव है।"

22 भाद्र, शुक्रवार– आज भी माँ को दो–चार घरों में ले जाया गया, जहाँ कीर्तन हुआ।

23 भाद्र, शनिवार– काक्स–बाजार जाने के लिये कल रात 12 बजे तक सामानों को ठीक–ठाक करती रही। यह देखकर माँ ने कहा–"जो कुछ करना है, तुम लोग करो।"

श्री श्री माँ विद्याकूट की ओर

इसके बाद माँ काक्स-बाजार नहीं जा सकी। विद्याकूट ले जाने के लिये आदमी आये हुए थे। आज माँ विद्याकूट की ओर चल पड़ी। शाम तक हम विद्याकूट पहुँच गये।

यहाँ आते देर नहीं कि काफी लोग आ गये। आये हुए व्यक्तियों से माँ बातचीत करने लगी। किसी से पुराने दिनों की चर्चा कर रही हैं। वे चकित होकर पूछ रही हैं-''अरी माँ, इतनी पुरानी बातें आपको अभी तक याद हैं?''

गाँव की काली माता अत्यन्त जाग्रत देवी हैं। कुछ महिलाएँ कह रही हैं-''निर्मला तो इन दिनों 'मानव काली' बन गयी है।''

माँ हँसती हुई बोली-''अरी माँ, मैं काली कब से हो गयी? अगर मेरा रंग काला होता तो एक बात भी थी, क्यों?'',

दीदी, बुआ, काका, दादा सभी लोग आये हुए थे और उनसे माँ घिर गयी थी। रात काफी हो गयी। काफी कहने-सुनने के बाद लोग गये। रात 12 बजे माँ विश्राम करने गयी।

24 भाद्र, रविवार- सवेरे बिछौने से उठकर माँ आँगन में पेड़ के नीचे एक चौकी पर बैठ गयी। स्व. बिहारी भट्टाचार्य के भवन में माँ को ठहराया गया है। एक वृद्धा बुआ आकर बोली-''मुझे पहचान रही हो?''

माँ हँसती हुई बोली-''हाँ, पहचान गयी।''

बुआ ने कहा-''माँ, मेरी गर्भधारिणी माँ मर गयी हैं।''

माँ हँसती हुई बोली-''यह तो होगा ही। पेड़ का फल पक जाने पर गिर जाता है।''

माँ को चौकी पर बैठ जाने के लिये कहने पर माँ कहने लगी-''क्यों? क्या मैं जमीन पर नहीं बैठ सकती? अभी तो आप लोग कह रही थी- 'हमारी निर्मला'-फिर इतना दूर क्यों हटा रही हो? क्या मैं दादा या बुआ की गोद में नहीं बैठ सकती?''

एक वृद्ध ने कहा-''नहीं, तुम ऊपर ही बैठो ताकि हम लोग देखते रहें। और देखो, तुम्हें माँ नहीं कह सकता, क्योंकि तुम हमारी नतनी हो।''

एक व्यक्ति ने कहा–"जो जी में आये कहिये, उसी में आप राजी हैं।"

माँ हँसती हुई बोली–"जो जिसमें आनन्द पाता है, वही कहता है, मुझे किसी में आपत्ति नहीं है।"

कोई–कोई 'तू' कहकर अपनी बातें कह रहा था। कहीं हम लोग कुछ अन्यथा न समझ लें, इसलिए वे कहते–"हम लोग इसी तरह कहते हैं। हमारी वस्तु तुम लोग ले गये हो।"

मैंने हँसकर कहा–"ठीक है, आप लोग जो जी चाहे, कहिये। हमें इसी में आनन्द मिलेगा।"

महिलाएँ साथ में आयी थी। कीर्तन प्रारम्भ हुआ।

25 भाद्र, सोमवार– माँ को प्रत्येक घर में लोग ले जा रहे हैं इनके पीछे–पीछे काफी लोग चल रहे हैं। चौड़े लाल किनारे की साड़ी माँ को पहनायी गयी है। सिन्दूर से माँ का चेहरा लाल हो गया है। इधर यहाँ के निवासी बड़े असमंजस में पड़ गये हैं। पूर्व सम्बन्ध को भुलाकर 'माँ' कह नहीं पा रहे हैं। दूसरी ओर पुराने रिश्ते का सम्बोधन नहीं कर पा रहे हैं। माँ की भी यही हालत है। माँ कभी अपने भाइयों को 'पिताजी' तो कभी 'दादा' कहती हुई, बातें कह रही हैं। इन बातों में भी महान् आनन्द मिल रहा है।

माँ ने कहा–"तुम लोग चाहते हो पहले के रिश्ते का सम्बोधन, इसीलिए कभी–कभी सम्बन्धानुसार मुँह से निकले जा रहा है।"

उन लोगों ने कहा–"तुम्हारे निकट दादा भी 'पिताजी' बन गये हैं। हमसे ऐसा हो नहीं पा रहा है।"

मैं इस बात पर गौर कर रही हूँ कि इधर दो दिनों से माँ में काफी परिवर्तन हो गया है। पूर्व के सम्पर्क को यहाँ के लोग जबरन बनाये रखने में असमर्थ होते जा रहे हैं। लोग माँ के भाव से प्रभावित हो रहे हैं। माँ के मुँह से तरह–तरह की बातें निकल रही हैं।

गोकि इधर दो दिनों में यह स्थिति नहीं रही। गाँव का प्रत्येक व्यक्ति जिस प्रकार माँ को अपना समझ रहा है, ठीक उसी प्रकार माँ भी उनके सम्मान की रक्षा करती रही हैं। आज उनके भाव परिवर्तन के साथ–साथ माँ की धर्म भाव के सम्बन्ध में विभिन्न प्रकार की बातें होती रही। हर कोई माँ

को अपने यहाँ ले जाकर आनन्दमग्न हो रहा है। इसी तरह यहाँ की आनन्द-लीला चल रही है।

आज डॉक्टर हेम बाबू के घर पर माँ को भोग दिया गया। इन्होंने यहाँ एक काली-मन्दिर बनवाया है। उसी मन्दिर में वे माँ को ले गये। इनकी पत्नी साधन-भजन करती रहती हैं। फलस्वरूप इनकी स्थिति में काफी परिवर्तन हो गया है। रात को यहाँ कीर्तन हुआ। कीर्तन समाप्त होते-होते ढाई बज गये तब कहीं माँ सोने गयी।

26 भाद्र, मंगलवार– आज सवेरे ही माँ को 'मेरकुटी' गाँव में लोग ले गये। वहाँ प्रत्येक घर में पत्र, पुष्प, चन्दन और पट्टवस्त्र से माँ की पूजा की गयी। उलु ध्वनि और कीर्तन से वातावरण मुखरित हो उठा। अहीरों के घर भी माँ गयी जहाँ उन्हें पीने के लिये दूध दिया गया।

माँ हँसती हुई बोली–''माताजी, एक दिन गोपाल भी ग्वालों के यहाँ इसी प्रकार दूध पी चुके हैं और आज वह सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ जो इस तरह पी रही हूँ।''

गरीब-अमीर जो अपने यहाँ बुला रहा है, माँ उसके यहाँ निस्संकोच जा रही हैं। किसी-किसी के मकान के पास सफाई देखकर माँ हँसती हुई कह रही हैं–''यह सीमा रेखा ही तो सब अनर्थ की जड़ है। रुके हुए पानी में गन्दगी होती है, और कुछ नहीं। जीव वही है, रुका हुआ पानी गन्दा हो गया है।''

इस तरह सभी को आनन्दमग्न करती हुई माँ शाम को 5 बजे हम लोगों को लेकर रवाना हुई। गाँव के निवासियों ने अश्रुपूरित नेत्रों से हमें विदा दी। जब तक नाव दिखाई देती रही तब तक वे लोग तट पर खड़े रहे। हम लोग वहाँ से चलकर 'ब्राह्मण बाड़िया' आये और वहीं स्टेशन पर रात गुजारी।

27 भाद्र, रविवार– भोर में हम लोग ढाका की ओर रवाना हुए। लगभग साढ़े नौ बजे हम ढाका पहुँचे। अप्रत्याशित रूप में माँ को आया देख सभी आनन्दमग्न हो उठे। यहाँ आने पर यह तय हुआ कि कल कलकत्ता चलेंगे।

28 भाद्र, सोमवार– आज हम कलकत्ता रवाना हुए। आश्रम के बारे में कुछ गड़बड़ी चल रही थी। झगड़ा कुछ बढ़ गया था। माँ ने कहा–''तुम सब मिलकर जो उचित हो, वही करो।''

कोई कुछ नहीं कर सका। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि रवाना होने के पूर्व माँ ने केवल दो-चार बातें कही और सारा झगड़ा समाप्त हो गया। माँ ने जिस जागतिक विषय की चर्चा की, उस ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। जब माँ ने उस बात की चर्चा की तो लोग चकित रह गये। गोकि पहले-पहल माँ इस ओर से पूर्णतः चुप थी। सभी शिकायतें सुनती रही, बोली कुछ नहीं। जब झगड़ा आखिरी सीमा तक पहुँच गया तब माँ ने उन सभी बातों की चर्चा की।

मैंने हँसकर कहा-''अब तक हम सब लड़ते रहे और तुम शान्त भाव से सब देखती रही। जब यही कहना था तब पहले ही कह देती तो इतना झगड़ा तो नहीं होता। जब तुम यह देखती हो कि बच्चों से अब नहीं हो रहा है तब तुम जरा उन्हें धकेल देती हो और फिर अपने रास्ते चलने लगती हो।''

माँ हँसती हुई बोली-''खयाल में बातें नहीं आ रही थी तो क्या करूँ। जब जो कुछ होना होता है, इसी तरह हो जाता है।''

स्टीमर में माँ से भेंट करने के लिये काफी लोग आये हुए थे। एक सज्जन पास आकर प्रणाम करने के पश्चात् बोले-''मैं जेल में काम करता हूँ। आपसे एक सवाल पूछना चाहता हूँ। हम लोग जेल में रहने वाले कैदियों पर अत्याचार करते हैं तो क्या इससे पाप होता है?''

माँ ने कहा-''तुम लोग जब उसी कार्य के लिये नियुक्त किये गये हो तब अपनी ड्यूटी पूरी करते रहो, अधिक मत करना। अगर ड्यूटी से अधिक अत्याचार करोगे तो निश्चित रूप से पाप होगा। यह हुई एक ओर की बात। इसके अलावा दूसरी बात यह है कि जब ऐसे लोगों का साथ कर रहे हो तब कुछ-न-कुछ संक्रमण तुममें होगा ही। यह हुआ संग गुण। इसके अलावा प्रत्येक कर्म का अलग-अलग फल प्राप्त होता है। इसके लिये नित्य भगवान् का नाम लेते रहना और प्रार्थना करते रहना।''

न जाने कौन से प्रश्न पर प्रश्न उठा-''जाना नहीं जाता।'' माँ अपने आप कहने लगी-''अबोध्य।''

इसके बाद मेरी ओर देखती हुई कहने लगी-''अगर जान लिया जाय तब तो तत्स्वरूप हो जाता है। और जिसे जान लिया जाता है, वह तो

सीमा के भीतर आ जाता है। इसीलिए कहती हूँ–अबोध्य।''

मुझे स्मरण हो आया कि कुछ लोग कहते हैं–''माँ को किसी तरह समझा नहीं जा सका।'' सचमुच अगर माँ को हम समझ लेते तो उनकी तरह हम भी हो जाते। फिर असीम को समझ लेना मामूली भी नहीं है।

माँ कलकत्ता में

29 भाद्र, शुक्रवार– आज सवेरे हम कलकत्ता पहुँचे। इस बार माँ सिद्ध बाबा के आश्रम में ठहरी। रात की गाड़ी से मैं माँ के साथ जमदेशपुर रवाना हो गयी। मोटर में माँ से अभय ने पूछा–''माँ, आपने अपने को छिन्नमस्ता की मूर्ति में देखी थी, दो योगनियों को दोनों ओर देर तक देखा था, क्या वह आपके इस शरीर से भिन्न था?''

माँ ने कहा–''हाँ।''

बात यह है कि माँ विद्याकूट के एक मकान में स्थित पूजा गृह में जाकर बैठ गयी। उस कमरे में छिन्नमस्ता देवी की तस्वीर टंगी थी। उस ओर देखती हुई माँ बोली–''ठीक इसी प्रकार इस शरीर के भीतर हो गया है। ब़ाहरी दृष्टि से गोकि कटा हुआ सिर नहीं है, लेकिन करीब–करीब दृश्य यही रहा। प्रत्यक्ष रूप से कटा हुआ सिर था, ठीक इसी तरह हाथों में मुण्ड थे, रक्त की शिराएँ भी इसी तरह थी। रक्तचाप में वृद्धि होने पर जैसा होता है, ठीक उसी प्रकार जोर से रक्त की धाराएँ उठ रही थी। और इसी प्रक़ार दोनों ओर दो योगिनियाँ अर्थात् स्वयं ही इसी भाँति रक्तपान कर रही हूँ। अगर भाव से भावान्वित कोई हो जाए तो उस मूर्ति को स्पष्ट रूप से देख सकता है।''

मैंने पूछा–''प्रमथ बाबू ने उसी दिन देखा था, शायद?''

माँ ने कहा–''और भी हुआ था।''

मैंने पूछा–''उनका चपरासी दसमूर्ति देख सका था?''

माँ इसका समर्थन करती हुई बोली–''हाँ, क्या–क्या सब अनेक प्रकार का हो गया था।''

अभय ने पूछा–''चपरासी के संस्कार शायद उत्तम रहे।''

माँ ने सिर हिलाते हुए इस बात का भी समर्थन किया। बोली–''एक–एक मूर्ति के अनन्त ढंग होते हैं।''

इधर एक अर्से से माँ का भाव और शरीर जैसे चुपचाप-सा था। कुछ दिनों तक मुँह से सिर्फ "बन कर" शब्द निकलते रहे। आजकल वह बातें नहीं हैं। स्वयं भी कभी-कभी कहती हैं कि शरीर चुपचाप-सा हो गया है। बातचीत, टहलना जारी है, पर अचानक शरीर जैसे चुप-सा हो गया है। बाहर भी वही भाव देख रही हूँ। खाना-पीना भी न जाने कैसा हुआ जा रहा है। खाने का भाव उनमें नहीं है। मानों जबरदस्ती उन्हें खिलाया-पिलाया जा रहा है, बातचीत भी वैसी ही कर रही हैं। क्या होगा, यह तो माँ जाने। हम सब चिन्तित हैं।

माँ जमशेदपुर में

30 भाद्र, शनिवार– आज सवेरे हम लोग जमशेदपुर पहुँच गये। अनेक भक्त अगवानी के लिये स्टेशन पर मौजूद थे। माँ को सबसे पहले काली बाड़ी, उसके बाद एक नये मकान में लाया गया। एक अर्से के बाद अपने निकट पाने के कारण भक्तों का दल आनन्द से पागल हो उठा। कलकत्ता से काफी लोग माँ के साथ आये हैं। यहाँ के भक्तगण हम लोगों का अत्यन्त आदर-सत्कार कर रहे हैं। माँ की सेवा के लिये सुन्दर प्रबन्ध कर रहे हैं। साथ आये लोगों की सेवा बड़े सुन्दर ढंग से की जा रही है। कहीं कोई त्रुटि नहीं है।

31 भाद्र, रविवार– आज उदयास्त कीर्तन करने का प्रबन्ध किया जा रहा है। नाम हो रहा है–

'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण हरे-हरे।
हरे राम, हरे राम, राम-राम हरे-हरे।'

अपराह्न में माँ को खुले मैदान में घुमाने के लिये ले गयी। इसके बाद लोग मोटर पर बैठाकर घुमा ले आये। शाम के बाद कीर्तन बन्द कर दिया गया,पर थोड़ी देर बाद ही पुनः प्रारम्भ हुआ। मानो कीर्तन का नशा दूर नहीं हो रहा है।

कीर्तन के पश्चात् माँ को शामियाने के नीचे एक मैदान में बैठाया गया। लोगों की इच्छा है कि माँ से उपदेश सुना जाए। लगभग 3 घण्टे तक माँ उपदेश देती रही जिनमें अधिकतर संयम व्रत तथा अन्य बातें हुई। रात 11 बजे विश्राम के लिये माँ को बुला ले आयी।

1 आश्विन, सोमवार– आज रात को ही कलकत्ता जाने की बात है। भक्तों ने आपत्ति की। अन्त में माँ की बात पर वे लोग राजी हो गये। अगर कोई यह प्रश्न करता कि माँ, अब कब दर्शन दोगी तो माँ तुरन्त कहती हैं– ''पिताजी, इस लड़की को जब बुलाओगे तब चली आयेगी। अगर न आ सकी तो समझ लूँगी कि माँ–बाप इस लड़की को नहीं ले आये।''

इस ढंग की बातें हो रही हैं। डॉक्टर यतीन बाबू की पत्नी कल से रो रही है। जब उनकी आँखें भीग उठती हैं तब लोगों की निगाह बचाकर माँ की सेवा में जुट जाती थी। सभी भक्तों का दिल दर्द से भर उठा है। माँ यहाँ काफी दिनों बाद आयी हैं। न जाने कितने दिनों से इनके आने की प्रतीक्षा लोग करते रहे और अब कितने दिनों बाद श्रीचरणों का दर्शन हो सकेगा, कौन जाने।

फिर भी कोई माँ के समीप बैठा नहीं है। माँ और उनके संगियों की सेवा में जुटे हुए हैं। शाम को वे लोग माँ को एक कमरे में ले गये ताकि माँ के उपदेशों को वे हृदयंगम कर सकें। यही तो उनका सम्बल है। अधिकांश लोग नौकरी पेशे के हैं। छुट्टी नहीं मिलती। यही वजह है कि अन्यत्र जाकर माँ का साथ नहीं कर पाते। संभवत: इसीलिए माँ के आगमन पर ये लोग अपना प्राण भर लेते हैं, माँ के शरीर का संग न पाने पर भी भाव की ओर से माँ का संग खोना नहीं चाहते।

इधर माँ भी उठते–बैठते हर तरह की बातों से इन्हें आनन्दित करती हैं। संयम व्रत की चर्चा करते हुए माँ कहने लगी–''आजकल इस बारे में अनेक जगह तुम लोगों को कह चुकी हूँ। तुम लोग यत्न के साथ इस व्रत का पालन करते रहना। इससे क्या होगा, जानते हो? जिसे चित्त–दर्पण कहा गया है। वह साफ होगा। अगर दर्पण साफ नहीं हुआ तो उसमें अपनी शक्ल कैसे देख सकोगे? फिर कहा जाता है कि श्वास–श्वास में नाम करना।''

एक व्यक्ति ने पूछा–''श्वास–श्वास में कैसे नाम कर सकता हूँ? कृपया इसे अच्छी तरह समझा दीजिये।''

माँ ने कहा–''कभी–कभी प्रति श्वास के प्रति लक्ष्य रखते हुए श्वास के प्रत्येक ताल पर नाम लेते रहो। एक बार साँस लेने और एक बार फेंकते समय किसी–किसी का माथा गरम हो जाता है। अधिक देर तक इस तरह

नाम लेने में वे असमर्थ हो जाते हैं। इसका क्या कारण है, जानते हो? ब्रह्मचर्य का अभाव। सिर्फ एक इसी आश्रम के नष्ट हो जाने के कारण सभी आश्रम नष्ट हो जाते हैं। जो लोग यह अनुभव करेंगे कि उनका माथा गरम हो गया है, उन्हें इस तरह का नाम करने की जरूरत नहीं है। ऐसे लोग श्वास की ओर लक्ष्य रखते हुए, सुधिहीन स्थिति में बैठकर नाम भीतर ही रखें। श्वासों के साथ करने की जरूरत नहीं है। हर कोई सब कुछ सह्य नहीं कर पाता। इस तरह स्थिर बैठे रहने पर काम हो जाएगा।

दूसरी ओर यह कहा जाता है कि मन, मंत्र, श्वास को एक कर लो। हम जो श्वास वायु लेते हैं, अगर इसे गौर से देखो तो देखोगे कि इस श्वास वायु के साथ ही सभी के साथ सभी का योगायोग है। हम सब तो एक ही स्थान से श्वास वायु ले और फेंक रहे हैं। इस हिसाब से सभी के साथ सभी का योगायोग बना हुआ है। साधु या महात्मा चाहे जो भी कहो, सभी के साथ सभी प्राण-वायु रूप में युक्त हैं। यह चिंतन भी एक महान् भाव जगाता है। यह जो श्वास है, यह महान् भाव के मध्य में तरंग मात्र है। हमारा लक्ष्य होता है-तरंग को छोड़कर निस्तरंग की ओर जाना। तरंग भी पानी ही है। उस निस्तरंग में जाने के लिये यह प्रथम मार्ग है। तरंग के भीतर से रास्ता बना लेना पड़ेगा। जैसे समुद्र की उत्ताल तरंग में डुबकी लगाकर ऊपर उठना। तुम लोगों में जितनी शक्ति है, किये जाओ। इसके बाद बगैर उनकी कृपा के कुछ होता नहीं, यह अत्यन्त सत्य बात है।''

बातचीत के बाद माँ को थोड़ी देर के लिये हम लोग टहलाने ले गये। माँ के चरण-स्पर्श से उनका घर, द्वार, आँगन पवित्र होगा, इस आशा से लोग अपने-अपने घर में, मन्दिर में ले गये। वहाँ से वापस आने के बाद कीर्तन हुआ। यथासमय माँ सबको साथ लेकर स्टेशन की ओर रवाना हुईं। रात प्राय: 12 बजे जब गाड़ी छूटी तब लोग उदास मन से अपने-अपने घर की ओर लौट पड़े।

माँ कलकत्ता में

2 आश्विन, मंगलवार- आज सवेरे जब हम कलकत्ता पहुँचे तब भक्त वृन्द माँ को लेकर बिड़ला-मन्दिर गये। आज ही माँ देहरादून चली जाएँगी। यह समाचार सुनकर अधिकांश भक्त उदास हो गये, पर माँ तो अपना निश्चय

कर चुकी थी। रात 10 बजे माँ के साथ देहरादून चल पड़ी। चलते वक्त स्वामी अखण्डानन्दजी को कुछ दिनों के लिए ढाका के आश्रम में रहने का आदेश देती गयी।

3 आश्विन, बुधवार– दोपहर को ढाई बजे के लगभग हम बनारस में उतर गये। माँ हरि की धर्मशाला में आकर ठहरी। धीरे-धीरे समाचार पाकर लोग आने लगे। आगामी कल माँ पुनः देहरादून रवाना हो जाएँगी जानकर, सभी उदास हो गये। फिर भी जितनी देर के लिये उन्होंने माँ को अपने निकट पाया, उसी में उन्हें असीम आनन्द प्राप्त हुआ।

4 आश्विन, गुरुवार– आज सवेरे 10 बजे हम रवाना हुए। सैकेण्ड क्लास में रात के वक्त मैं माँ के पास बैठी थी। तरह-तरह की बातें हो रही थी। दुर्वासा मुनि भोजन करने के बाद भी कह रहे हैं कि भोजन अभी कहाँ किया? इस बात पर एक व्यक्ति ने पूछा–''मुनिजी ने झूठ क्यों कहा?''

इस प्रश्न के सिलसिले में माँ कहने लगी–''झूठ नहीं है। उनकी जो स्थिति थी, उसमें कौन क्या खाता? अपने मुँह का थूक अहरह घोंटते हैं, पर यह तो कोई नहीं कहता कि मैंने कुछ खाया है। तुम लोगों की भाँति उनका खाने-सोने का हिसाब नहीं है। यही वजह है कि तुम लोग उनकी भाषा पर विचार नहीं कर पाते। सचमुच, तुम लोग अक्सर जो कुछ देखते हो, सिर्फ उसे देखकर उसके बारे में तुम विचार नहीं कर सकते।''

पुनः प्रश्न उठा–क्या श्रीकृष्ण में वृत्तियाँ प्रकट हुई थी? उनके बच्चे हुए थे। इस प्रश्न पर माँ कहने लगी–''कौन किसको भोग करता है, स्वयं ही जब सर्वमयी हो, तुम लोगों की तरह दो होने पर ही तो भोग होगा। स्वयं अपने को अगर कहा जाए। यही जो द्रष्टा कहा जाता है, कौन किसे देखेगा और क्या देखेगा? जब तक दृष्टि है तब तक सृष्टि है। दोनों के रहने पर ही द्रष्टा होंगे।''

इन बातों के पश्चात् माँ हँसती हुई कहने लगी–''कुछ लोग इस शरीर के बारे में कहते हैं कि माँ-माँ कहते-कहते, भगवान्-भगवान् करते-करते, अवतार-अवतार कहते-कहते, सिर पर चढ़ाते-चढ़ाते, इनका दिमाग खराब हो गया है।''

इतना कहने के पश्चात् वे बेतहाशा हँसने लगी। माँ आगे कहने लगी–

''सचमुच ही मेरा दिमाग खराब है। क्योंकि जो कोई अपने से जो कुछ कहता है, वही मैं हूँ।''

माँ का यह भाव अति सुन्दर है। हमेशा भाव-भाषा में माँ का यह भाव प्रकट होता है-''जो कोई जो कुछ कहता है, उसके निकट मैं वही हूँ।''

काशी में कृष्णा माताजी (मौनी माताजी या मनोरमा दत्त) माँ से भेंट करती हुई, काफी देर तक अपनी साधना के बारे में बातें करती रही। आजकल इनकी अवस्था उन्नति की ओर है। आजकल ये काशी में सिद्धिमाता के निकट रहती हैं। वहाँ उनकी कृपा बराबर प्राप्त करती हैं।

कृष्णा माताजी कहलवायी हैं-''माँ, अब कब दर्शन दोगी?''

इस प्रश्न के उत्तर में माँ शशांक ब्रह्मचारीजी के रवाना होने के समय कह रही हैं-''कृष्णा माताजी से कह देना जब जो दर्शन पा ले। (इसका अनेक प्रकार से दर्शन होता है।) सब कुछ यही है।'' इतना कहने के पश्चात् वे अपना हृदयस्थल दिखाने लगी।

मैंने हँसकर कहा-''मैं यह बात सबसे कह दूँगी।''

माँ भी हँसती हुई बोली-''कह देना, मैं क्या करूँगी? मेरे मुँह से जो निकलेगा, वही करूँगी।'' कहने के पश्चात् वे बच्चों की तरह हँसने लगी।

माँ देहरादून में

5 आश्विन, शुक्रवार- आज सवेरे माँ देहरादून पहुँच गयी। दोपहर को माँ सोयी हुई थी। काफी देर बाद नींद में ही कई शब्द बोली-

1. पद्मावती बुद्धि,
2. विरोगानन्द,
3. वीर गतियानन्द,
4. विरजानन्द।

इसके अलावा दो-तीन शब्द और कह चुकी थी जिसे मैं समझ नहीं सकी। उन शब्दों के बारे में पूछते हुए मैंने कहा-''कोई आया था, क्या? उनके साथ बातें कर रही थी?''

बिना आँखें खोले ही माँ ने कहा-''हाँ। एक को कह रहा था कि यह

है पद्मावती बुद्धि। वह जो पद्मा थी न, उसको इसी तरह बुद्धि थी। और यह है–विरोगानन्द, अर्थात् रोग शून्य आनन्द। रोग शून्य का अर्थ है–भव रोग मुक्त। गतियानन्द का अर्थ है–वीरगति का आनन्द, और क्या। विरजानन्द का अर्थ वास्तव में है–रज:शून्य।

मैंने पूछा–''किसके साथ बातें कर रही थी?''

माँ ने कहा–''नहीं बताऊँगी।'' इसके बाद वे चुपचाप आँखें बन्द किये लेटी रही।

यह पहले ही बता चुकी हूँ कि माँ का शरीर, भाव, न जाने कैसा चुपचाप–सा होता जा रहा है, यह वे बता चुकी हैं। यही वजह है कि अक्सर उनकी बातें लटपटा जाती हैं। कभी–कभी जीभ दाँत से सट जाती है। अपराह्न के समय माँ उठकर टहलने लगी। रात को वे मौन–मन्दिर में जाकर सो गयी।

6 आश्विन, शनिवार– आज दोपहर को लिटा दिया। इधर कई दिन से माँ को खिलाते समय हम लोग मौन रहते हैं। आज भी मैं मौन रही। अचानक मेरी ओर देखती हुई माँ 'निर्वाक्'' यह शब्द कहने के पश्चात् कुछ देर बाद बोली–''मैं भी मौन हुए जा रही हूँ।''

इतना कहकर वे चुप हो गयी। हम लोग डर गये। क्योंकि माँ का मौन साधारण नहीं होता। कारण क्या है, कौन जाने। मुँह धुलाते समय मैं और बुनी दोनों मिलकर माँ से अनुरोध करने लगे। माँ ने एक साधारण शब्द किया।

मुझे संतोष हुआ कि माँ ने मौन धारण नहीं किया है। लेकिन बरामदे में आकर वे पुनः चुपचाप–सी हो गयी। आकृति का रंग–रूप बदलने लगा। अर्द्धशायित स्थिति में कुछ देर तक आँखें बन्द किये लेटी रही। हम लोग उनसे अच्छी तरह बातचीत करने के लिये अनुरोध करने लगे। माँ हँसने लगी। कुछ बोली भी, परन्तु उनके हँसने, बातें करने का ढंग और चेहरे का रंग देखकर हम भयभीत हो उठे। बुनी रोने लगी। उसे इस बात का भय सताने लगा कि कहीं माँ मौन न हो जायँ।

कुछ देर बाद माँ बोली–''सोने जाऊँ?''

मैं उस भाव को दूर करने के लिये बोली–''टहलने चलोगी?''

माँ अपने भाव में बोली–"कहाँ?"

मैंने महसूस किया कि जाने का कोई प्रबन्ध नहीं है, इसके अलावा माँ सुध–बुध हीन–सी कमरे में गयी। पुन: जब वे "सोने जाऊँ" बोली तब मैं उन्हें कमरे में ले गयी। कमरे में आकर उनसे मैंने टहलने के लिये कहा। माँ कमरे में टहलने लगी। बातें नहीं कर रही हैं। हँसने का ढंग विचित्र है। दृष्टि दूसरे प्रकार की है। माँ की इस दृष्टि से मैं बहुत घबराती हूँ। यद्यपि वे इस दृष्टि से हँसती हैं, पर भाव ऐसा दिखाती हैं, मानों किसी को पहचानती नहीं हैं। अगर मैं इस वक्त मर भी जाऊँ तो इधर वे ध्यान नहीं देंगी। इस प्रकार इसी तरह का भाव उनमें है। कुछ देर बाद माँ उठकर इस तरह खड़ी हुई कि उस दृश्य को देखकर मैं डर गयी। मुझे लगा कि कहीं गिर न जायें। मैं तुरन्त उन्हें सहारा देते हुई बिछावन पर ले आयी।

आवेश जड़ित स्वर में माँ बोली–"अब सो जाऊँ?" इतना कहकर वे आँखें मूँदकर सो गयी।

मैं और अभय मिलकर उन्हें बुलाने लगे, लेकिन माँ ने कोई जवाब नहीं दिया। न जाने वे कहाँ खो गयी हैं। एक घण्टे बाद उनमें कुछ परिवर्तन दिखाई दिया, लेकिन आँखें बन्द रही।

शाम को 5 बजे के लगभग वे उठकर बैठी। काफी लोग आये हैं, बातें हो रही हैं, कौतुक कर रही हैं, फिर भी वे अपने आप में सुस्त–सी थी। एक सज्जन टहलते हुए आश्रम की ओर आये। यहाँ उन्हें अच्छा लगा है, इसलिए ब्रह्मचारियों से परिचय प्राप्त कर अन्य जानकारी प्राप्त कर रहे हैं। माँ के साथ मुलाकात की। बाद में ज्ञात हुआ कि ये डॉक्टर हैं। इसके पूर्व इन्होंने कभी माँ को नहीं देखा है।

माँ ने पूछा–"तुम्हारे साथ कौन है? कहाँ रहते हो?"

उन्होंने कहा–"मैं देहरादून में रहता हूँ। मेरे साथ कोई नहीं है।"

माँ ने पूछा–"बिल्कुल अकेले हो?"

उन्होंने कहा–"हाँ।"

माँ ने कहा–"किसी से सहायता भी नहीं लेते?"

उन्होंने कहा–"नहीं।"

बातचीत हिन्दी में हो रही है। माँ ने कहा–"मैं तो देख रही हूँ कि तुम सहायता ले रहे हो और अकेले भी नहीं हो।"

तब वे समझ गये। बोले–"हाँ माँ। बात ठीक है। उनकी सहायता के बिना मेरा काम कैसे चल सकता है? फिर वे साथ तो हैं ही।"

बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी–"इस जागतिक मामले में हम बगैर सहायता के चल नहीं सकते। बिना गुरु के काम नहीं होता और यह मार्ग तो अत्यन्त कठिन है, इस मार्ग के लिये गुरु की आवश्यकता है ही।"

उक्त सज्जन ने कहा–"मैं इस बात का मतलब नहीं समझा। बच्चों की माँ को पाना, यह कौनसी कठिन बात है?"

माँ ने कहा–"पिताजी की बातें ठीक हैं; लेकिन सवाल यह है कि माँ को पाना चाहिए और मैं लड़का हूँ, यह विश्वास दृढ़ होना चाहिए। यह भावना तो सभी में नहीं होती, इसीलिए वे लोग इसे कठिन समझते हैं। मैं उन्हीं लोगों के बारे में कह रही हूँ।"

बातचीत के सिलसिले में यह ज्ञात हुआ कि इस ओर उनकी आस्था है। अपने जीवन से सम्बन्धित कई घटनाएँ उन्होंने सुनायी। इनका विश्वास है कि भगवान् बराबर इनकी मदद कर रहे हैं।

माँ हँसकर बोली–"इसीलिए तो मैंने पहले ही तुमसे पूछा था कि साथ में कौन है?"

उन्होंने कहा–"मैं समझ नहीं पाया था। मैंने सोचा कि शायद आप बाल-बच्चों के बारे में सवाल कर रही हैं।"

शाम के बाद हम थोड़ी देर के लिये मोटर द्वारा घूम आये। रात साढ़े ग्यारह बजे के बाद सोने के लिये ऊपर चली गयी। आज भी माँ मौन-मन्दिर में जाकर सो गयी।

7 आश्विन, रविवार– दोपहर को हरिदास मुखर्जी आये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने एक साधु के बारे में कहा–"क्रोध रहने से क्या होता है? मिट्टी बन जाना चाहिए।"

तुरन्त माँ ने जवाब दिया–"बिल्कुल ठीक। माटी (मिट्टी) न होने पर माटी (माँ) को नहीं पाया जा सकता।

आज पता चला कि हरिराम के भाई मदन की तबीयत बहुत खराब है। यह भी लोग बता गये हैं कि विगत 15 दिनों से उन्हें नींद नहीं आ रही है। माँ आज नीचे पूर्व दिशा वाले बरामदे में सोयी हुई हैं। रात में अनेक बार मदन के बारे में चर्चा करती रही। रात भर उनकी सोने की इच्छा नहीं हुई। उनकी तबीयत भी खराब हो गयी।

8 आश्विन, सोमवार– आज दोपहर को हरिराम ने आकर बताया कि कल सारी रात मदन सोया था, इस वक्त काफी स्वस्थ है।

आज अपराह्न के समय माँ की तबीयत तेजी से खराब होने लगी। सेवा ने नाड़ी देखने के बाद कहा–''नाड़ी की इस गति में इस तरह रहना असम्भव है। नाड़ी की गति इतनी मृदु है कि पकड़ में नहीं आ रही है।''

यतीश दादा ने भी यही बात दुहराई।

माँ मृदु ढंग से मुस्कुराती हुई बोली–''हाँ, इस शरीर की यही हालत है।''

इसके बाद हम माँ को मोटर पर बैठाकर घुमाने ले गये। माँ कह रही हैं–''अचानक यह स्थिति आ गयी है कि सारा शरीर हल्का हो गया। सिर तो बिल्कुल हल्का हो गया है।''

माँ को खड़ी रहने में तकलीफ होने लगी तो उन्हें सुला दिया गया। रात 8 बजे माँ बातचीत करने लगी। लेकिन अभी तक उनके शरीर की स्थिति ठीक नहीं हुई है। माँ बोली–''श्वास की गति कुछ अलग ढंग की हो गयी है, इसलिए टट्टी नहीं हो रही है। शरीर का कोई यंत्र विशेष क्रिया नहीं कर रहा है।''

9 आश्विन, मंगलवार– आज सवेरे माँ कहने लगी–''शरीर जैसे उठ नहीं रहा है।''

मैं कुछ देर तक उनके बदन पर हाथ रगड़ती रही। थोड़ी देर बाद वे उठी और फिर सो गयी। बहुत से लोग एकान्त में बातचीत करना चाहते हैं। माँ उनसे बातें कर रही हैं।

माँ ने आज ही सोलन चलने के लिये कहा। शाम के समय हम सोलन की ओर रवाना हो गये। शिमला में कीर्तन हो रहा है। भक्तों ने वहाँ आने के लिये तार भेजा है। माँ ने कहा–''कहीं कुछ समाचार मत देना। अगर खयाल हुआ तो चट से वहाँ हो आऊँगी।''

10 आश्विन, बुधवार– आज सवेरे माँ सोलन पहुँची। माँ ने शिमला से इस तरह फोन करवाया कि वे यहाँ आयी हैं, यह बात कोई जान न सके। जबकि शिमला में कब, कितनी देर तक कीर्तन आदि होगा, इन बातों की जानकारी प्राप्त करती रही।

माँ शिमला में

अपराह्न में 6 बजे राजा साहब की मोटर में माँ के साथ शिमला की ओर हम लोग रवाना हो गये। शाम होते-होते हम शिमला स्थित काली बाड़ी के दरवाजे पर पहुँचे गये। ऊपर के हॉल में कीर्तन हो रहा था। रहस्यमयी माँ सिर को चादर से ढाँककर, घूँघट निकालती हुई जाएँगी। सभी लोगों की यही राय हुई। हम लोग बाहर रहेंगे, सिर्फ माँ अकेली भीतर जायेंगी। भीतर जाने पर माँ ने सोचा-कोई नहीं देखेगा। सिर साधारण ढंग से ढका था। माँ भीड़ के भीतर से गुजरती हुई ऊपर गयी तो देखा-सामने एक खाली कुर्सी पड़ी है।

माँ उस पर बैठ गयी। माँ का चेहरा स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दे रहा था। माँ को इस तरह बैठते देख औरतों में कानाफूँसी चलने लगी-''यह कौन है? क्या कोई पुरुष घूँघट काढ़कर बैठ गया है?''

एक ओर झुक जाने के कारण बगल में बैठी महिला ने उन्हें धीरे से धकेल दिया। कुछ देर बाद माँ के सिर के बाल उड़ते और न जाने क्या-क्या देखकर परिचितों को संदेह हुआ। वे लोग पास आकर माँ को पहचानते ही आनन्द ध्वनि कर उठे। माँ ने रेलिंग से ज्यों ही नीचे की ओर दृष्टि दौड़ायी त्यों ही पुरुषों का दल आनन्द से चंचल हो उठा।

कहीं कीर्तन भंग न हो जाये, इसलिए माँ सभी लोगों को स्थिर भाव से रहने के लिये कहकर स्वयं नीचे उतरकर कीर्तनियों के बीच बैठ गयी। ''कलंक भंजन'' प्रसंग हो रहा था। हम लोग भी धीरे-धीरे भीतर गये।

बिना किसी प्रकार की सूचना पाये अचानक माँ को पाकर सभी प्रसन्न हो उठे। कीर्तनिया भूपेन बाबू भी अत्यन्त आनन्दित हो उठे। उन्होंने गद्गद् भाव से कहा-''माँ को एक बार और कीर्तन सुनाने की इच्छा थी। यह मेरे लिये बड़े सौभाग्य की बात है कि आज माँ अचानक आ गयी।''

कीर्तन समाप्त होने पर अधिकांश लोग अपने-अपने घर चले गये। कुछ लोग माँ की शय्या के पास आकर बैठे। चर्चा इस बात की चली कि अगर एक रात माँ की शय्या के पास सोया जा सके तो नया मानव बनने में आता है। इस बात पर माँ हँसती हुई बोली-"सोना होता कहाँ है?"

माँ चारु बाबू से कहने लगी-"सद्प्रसंग अच्छी बात है, अच्छी बातें कहना अच्छा है। कहते-कहते कभी शायद लग जाय। सोना अच्छा है, सोते-सोते शायद कभी सोना हो जाय। अर्थात् जिस सुफल के सम्बन्ध में चर्चा हुई।"

माँ को लेकर हम हॉल में ठहर गये। कल रास-पूर्णिमा है। कल भी कीर्तन होगा। कीर्तन के पश्चात् माँ सोलन रवाना हो जाएँगी। सभी लोग इस सम्बन्ध में आपत्ति प्रकट कर रहे हैं। लेकिन माँ में जाने का भाव देखकर आगे किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। रात 12 या 1 बजे माँ सोने गयी।

11 आश्विन, गुरुवार- आज सवेरे माँ का शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया। यह ठीक है कि देहरादून आने के बाद से माँ काफी कमजोर होती जा रही हैं जबकि और कोई बीमारी नहीं है। अत्यन्त दुर्बल, नाड़ी की गति मन्द जैसे हृत्कम्प-सा हो रहा है। इस स्थिति में माँ सोलन से शिमला आयी हैं। आज भी उनकी हालत काफी नाजुक हो गयी।

माँ हँसती हुई कह रही हैं-"कोई तकलीफ नहीं है, ठीक हूँ। सारा शरीर चुपचाप जैसा होता जा रहा है। हर वक्त तैयार हूँ।"

यह सुनकर हम लोग चिन्तित हो उठे। गौर करने पर ज्ञात हुआ कि ठीक ढंग से वे बातें भी नहीं कर पा रही हैं। माँ को चुपचाप लिटा दिया गया।

यहाँ माँ कुछ समय के लिये आयी हैं, इसलिए लोगों का आना-जाना बन्द नहीं किया जा सका। इस हालत में वे सभी से हँसती हुई कुशल-मंगल पूछ रही हैं। इधर हम माँ को बराबर बताते जा रहे हैं कि आपकी तबीयत खराब है, अधिक बातचीत करना ठीक नहीं है। तभी माँ उपस्थित लोगों की ओर देखती हुई कहती हैं-"ठीक है। ये लोग मुझे चुप रहने को कहते आ रहे हैं और मैं भूल गयी। अच्छा, अब मैं चुप हो रही हूँ।"

इतना कहने के बाद बच्चों की तरह वे अपना मुँह बन्द कर लेती हैं। फिर कब किसके आग्रह पर बातें करने लगती हैं, इस ओर किसी का ध्यान नहीं रहता। माँ हँसती हुई कहती हैं–"कोई गड़बड़ी तो नहीं है। जो होना है, होगा। तुम लोगों को जरूरत हो तो देख-सुन लो।"

शाम के समय माँ का शरीर कुछ स्वस्थ-सा प्रतीत हुआ। वे घूमने के लिये बाहर निकली। साथ में काफी लोग थे। काफी फोटो लिये गये। शाम के बाद हम लोग काली बाड़ी वापस आये। रात साढ़े सात बजे रासलीला प्रारम्भ हुई। चूंकि माँ शीघ्र ही चल देंगी, इसलिए साढ़े नौ बजे कीर्तन समाप्त कर दिया गया। ज्यों ही माँ उठकर खड़ी हुई त्यों ही लोगों में प्रणाम करने की होड़ लग गयी। माँ हँसती हुई, हाथ जोड़कर बोली–"अब आज्ञा दो।" इतना कहकर सभी लोगों से विदा माँग रही हैं।

माँ सोलन में

रात 12 बजे हम सोलन पहुँच गये। ज्यों ही मोटर आकर खड़ी हुई त्यों ही राजा साहब ने माँ की चरण रज ली। माँ ने पूछा–"इतनी रात तक जागते रहे?"

घर के भीतर आते ही रानी साहिबा ने भी माँ की चरण वन्दना की। माँ का शरीर अस्वस्थ हो गया है यह जानकर वे लोग चिन्तित हो उठे। कुछ देर रहने के बाद वे लोग माँ से आदेश लेकर चले गये। एक नया मकान बन रहा है। माँ को एकान्त में रखने के लिये कल वहाँ ले जायेंगे,यह निवेदन जाते-जाते कर गये।

12 आश्विन, शुक्रवार– आज सवेरे माँ को नये भवन में ले जाया गया। इस मकान में अभी तक कोई ठहरा नहीं है। माँ का शरीर आज भी उसी तरह है। माँ को एकान्त में रखने की पूरी व्यवस्था कर दी गयी।

आज सवेरे ही दिल्ली से अमल बाबू की पत्नी, मझली दीदी और शान्ति आयी हैं। माँ को देखने के लिए सभी व्याकुल हैं, इसीलिए माँ के आने का समाचार पाकर काफी लोग दर्शन करने आये हैं। शिमला के भक्त दिल्ली में उतरकर यहाँ माँ के दर्शन करने के बाद जा रहे हैं।

13 आश्विन, शनिवार– जीतेन सपरिवार दिल्ली जा रहा था, वह एक घण्टे के लिए आया है। वह माँ से अनुरोध कर रहा है कि शारदोत्सव के

समय दिल्ली अवश्य आयें। वह कह रहा है–"इस बार तुम जरूर आओ। अगर तुम नहीं आओगी तो पूजा नहीं होगी।"

माँ कह रही हैं–"तु–म तो हर वक्त हाजिर रहता है। अगर ऐसा न होता तो तुम सब पूजा कैसे करते?"

जीतेन कह रहा है–"यह सब बातें मैं समझ नहीं पाता। तुमको वहाँ मौजूद रहना है।"

माँ हँसती हुई बोली–"तुम मौजूद रहोगे।"

जीतेन इस बात का अर्थ बिना समझे बोला–"मेरे रहने से क्या होगा?"

माँ हँस पड़ी। बोली–"देखो पूजा के समय दिल्ली जाने की संभावना नहीं है। यह बात अलग है कि अगर दिमाग खराब हो जाये तो पहुँच जाऊँ, क्योंकि मेरा कोई पता नहीं रहता। इसके अलावा जाने की कोई बात नहीं है। ढाका के आश्रम में भी पूजा होगी। उन लोगों ने भी बुलाया है, मुमकिन है कि मैं वहाँ भी न जा सकूँ। बैजनाथ या सुकेत–टुकेत में, वे लोग मुझे ले जायेंगे, अगर शरीर ठीक रहा तो।"

सुकेत के राजा इधर तीन–चार वर्षों से माँ को अपने यहाँ ले जाने के लिये विशेष प्रयत्न कर रहे हैं, लेकिन फुर्सत नहीं मिल रही है। माँ ने कहा–"अगर संयोगवश पहुँच गयी तो इसके लिये प्रयत्न कर सकते हो।"

श्री श्री माँ सुकेतराज के यहाँ

सुकेत के राजा को समाचार भिजवा दिया गया है। माँ को ले आने के लिये वे अपना आदमी भेज चुके हैं। अमृतसर, बैजनाथ होकर सुकेत जाना पड़ता है। तारानन्द स्वामी ने नवरात्र के मौके पर बैजनाथ आने के लिये अनुरोध करते हुए पत्र लिखा है। क्योंकि वे तारा माँ की एक मूर्ति चाहते थे। स्व. ज्योतिष दादा ने बनारस में उसे बनवाया था। भोलानाथजी उसे बैजनाथ में प्रतिष्ठित करेंगे, यह बात तय हो चुकी थी। लेकिन मन्दिर पूर्ण होने के पहले ही वे शरीर छोड़ चुके थे। अब वही मूर्ति प्रतिष्ठित की जाएगी। उक्त अवसर पर माँ को वहाँ मौजूद रहने के लिये विशेष अनुरोध किया गया है। यहाँ के राजा भी उक्त स्वामीजी के भक्त हैं। अगर माँ वहाँ जायेंगी तो वे भी

रानी को साथ लेकर वहाँ जाएँगे। अगर माँ की इच्छा हुई और शरीर ठीक रहा तो बैजनाथ जाएँगी। इधर माँ का शरीर विशेष रूप से अस्वस्थ हो रहा है, इसलिए जाने में विलम्ब हो रहा है।

आज दोपहर को माँ सो गयी। लगभग 5 बजे उठी। माँ के जागने के दस मिनट पहले ही मैं उनके चरणों के पास कम्बल बिछाकर सो गयी। माँ उठकर पूछने लगी–"क्या तू सो गयी थी?"

मैंने कहा–"सो तो गयी हूँ, पर नींद नहीं आयी।"

माँ ने पूछा–"तन्द्रा भी नहीं आयी?"

मैंने कहा–"पता नहीं, ठीक से समझ नहीं पायी?"

उस वक्त और कुछ पूछने का मौका नहीं मिला। कुछ देर बाद एकान्त पाने पर मैंने पूछा–"तुमने यह प्रश्न क्यों पूछा था?"

माँ हँसती हुई बोली–"क्या देख रही थी, जानती है? जैसे पानी में तूने डुबकी लगायी, फिर ऊपर नहीं आयी। मैंने पूछा–तैरना नहीं जानती, कहीं पानी ज्यादा तो नहीं है? क्या उधर गड्ढे वगैरह हैं क्या? इतना कहने के बाद उधर पैर से टटोलने लगी। पैर डालते ही देखा कि तू अर्द्ध उन्मीलित नेत्रों से (अंगुली हिलाती हुई) इस तरह अंगुली को हिलाती हुई, जैसे जप करते वक्त तन्द्रा आती है, अर्थात् झपकी ले रही है, लेकिन स्मृति जाग्रत अवस्था में थी। होश में थी। ठीक इसी प्रकार कर रही थी।"

इतना कहने के बाद माँ हँसने लगी और मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि मैं मोह-सागर में डुबकी लगा रही थी। माँ अपने चरणों के द्वारा ऊपर खींच ले आयी।

दिल्ली के अमर बाबू की पत्नी माँ के लिये एक गरद की साड़ी खरीद लायी है। उनकी इच्छा है कि माँ एक बार इसे पहन लें। रात को जब सभी लोग चले गये तब माँ ने मुझसे कहा–"ला, उस साड़ी को पहन लूँ।"

साड़ी पहनने के बाद माँ बच्चों की तरह नकल करने लगी। एक बार सिर को ढाँक रही है तो दूसरी बार गाना गाने लगी। उस कमरे में कोई था नहीं। पता नहीं, किसने कृष्ण की चर्चा की थी। माँ सिर ढाँके चहल-कदमी करती हुई गाने लगी–

"कृष्ण अंग गन्ध पाय
स्वरित गोपिनी धाय"

इसी प्रकार का गीत गा रही हैं, हँस रही हैं। संपूर्ण कक्ष मानो माँ के रूप, प्रभा, भाव, गीतों के स्वर और नृत्य से मुखरित हो उठा। चारों दिशाएँ जैसे हँसने लगी। यह भवन अत्यन्त निर्जन है। चारों तरफ की पहाड़ियाँ अत्यन्त सुन्दर दिखाई देती हैं। रात 12 बजे माँ सोने गयी।

14 **आश्विन, रविवार–** आज रात को सोती हुई माँ न जाने कितने प्रकार की आवाजें निकाल रही हैं। अचानक वे "आल्ला हास्तीफाल" कह उठी। करवटें बदलते हुए मुस्करा रही हैं। स्वर में इतनी जड़ता है और कुछ स्पष्ट होते हुए भी इतनी तेजी से कह रही हैं कि मैं बार-बार प्रयत्न करने पर भी कुछ समझ नहीं पा रही हूँ। पता नहीं, मैं ठीक से लिख पा रही हूँ या नहीं।

इसके बाद माँ हँसती हुई कह रही है–"यह सब सुनकर शायद कोई कह सकता है कि मुसलमान आत्मा की सवारी हुई थी। जो लोग नहीं जानते, वे ही ऐसा कहेंगे।" आगे पुनः कहने लगी–"और नहीं कहूँगी, ना कह रहा है। अपने शरीर को ही तो 'ना' कहती हूँ, करता है–हाँ।" थोड़ा ठहरकर पुनः बोली–"स्वरूप मण्डित अर्थ क्या है?"

यह सवाल सबसे पूछ रही हैं। इसके बाद "बनकर" आदि न जाने कितने शब्दों का उच्चारण करने लगी। कुछ देर बाद ताली बजाती हुई कहने लगी–"**हाय गौरांग, हाय निताई, हाय गौरांग, हाय निताई।"**

गीत गाने के साथ-साथ वे झूमने लगी। इसके बाद शुरू हुआ–**'जय गौरांग, जय निताई।'** इसके बाद **'जय राधे गोविन्द'** कहने लगी। इस तरह काफी देर तक लीला करती रही, फिर सो गयी।

15 **आश्विन, सोमवार–** आज सवेरे अमल बाबू की पत्नी ने पूछा–"माँ, मालाओं का भी जीवन होता है? लोगों का कहना है कि माला को उपवासी नहीं रखना चाहिए।"

माँ ने कहा–"बिल्कुल नहीं, सभी में एक जाग्रत चेतना अवश्य रहती है।"

रात में बिछावन पर बैठी हुई माँ कह रही हैं–''देखो, तुम सब बातें करती हो। मैं आज तुम लोगों को एक बात बताना चाहती हूँ। मेरी जबान न जाने क्यों बन्द होती जा रही है।''

यह बात सुनते ही उपस्थित सभी लोग चौंक उठे। माँ की वाणी बन्द हो जायेगी, सुनते ही सब लोगों के हृदय में चोट पहुँची। तभी माँ कहने लगी–''जब हो सकेगा, बोलूँगी और जब नहीं हो सकेगा, नहीं बोलूँगी। कब बन्द हो जाएगी, यह बता नहीं सकती। जो हो जाय। क्यों ठीक है न?''

मेरी ओर देखती हुई माँ कहने लगी–''मुझे सारी बातें याद नहीं रहती। कल सवेरे तू मुझे याद दिला देना, जरूर से।''

मैंने सिर हिलाकर जताया–''ठीक है।''

16 आश्विन, मंगलवार– आज बैजनाथ–सुकेत की ओर चलने की चर्चा चल गई। राजा साहब आकर बैठे हैं। वे आपत्ति कर रहे हैं। माँ जवाब दे रही हैं–''क्या होगा? मेरे लिये सभी स्थान बराबर हैं। रहा शरीर अस्वस्थ रहने की बात; सो जब जो होना है, होगा। मैं हर वक्त तैयार रहती हूँ।''

माँ का शरीर ठीक नहीं है, फिर भी चलने की तैयारी करने की आज्ञा दी। राजा–रानी सभी जानते हैं कि माँ की इच्छा होने पर कोई बाधा नहीं दे पाता। माँ आकर अधिक दिनों तक नहीं रहती, इस बात पर सभी दुःख प्रकट करने लगे। लेकिन बाधा देने का साहस किसी में नहीं है। आज का दिन इसी तरह बीत गया।

18 आश्विन, बुधवार– आज सुबह माँ ने कहा–''आज चलने की तैयारी कर। इसके बाद जो होना है, होगा।''

रात की गाड़ी से माँ के साथ मैं, बुनी, देवीजी, अभय, यतीश दादा और हरिराम रवाना हुए। 19 को भोर के वक्त अमृतसर पहुँचे। यहाँ से 4 घण्टे के अन्दर पठानकोट पहुँच गए। सुकेत से माँ को लिवा जाने के लिये मोटर भेजी गयी थी। पठानकोट से सुकेत 150 मील दूर है।

माँ बैजनाथ में

रास्ते में बैजनाथ (84 मील) में माँ ठहर गयी। तारानन्द ब्रह्मचारी माँ

को देखकर आनन्द से विभोर हो उठे। **तारा देवी** का मन्दिर बन रहा था। माँ के रहने के लिये एक कमरा बनवाया जा रहा था। यह सब वे दिखाते रहे। नवरात्र में तारा मूर्ति की प्रतिष्ठा होगी। उस समय माँ को यहाँ मौजूद रहना होगा, इस प्रकार का अनुरोध वे करने लगे।

माँ ने कहा–"देखो, जो हो जाय।"

माँ जिस कमरे में रहेंगी, उसे जाकर देखने लगी। अत्यन्त एकान्त स्थान है। राजा के अनुचरों ने पहले से फोन कर दिया था। माँ को राजा के मन्दिर में ले जाया गया। मन्दिर का दरवाजा उस समय बन्द था। मन्दिर से सटा हुआ एक मकान है जो राजगुरु हरदत्त शास्त्री या अन्य किसी महापुरुष के रहने के लिये बनवाया गया है। यहीं माँ को ठहराने का प्रबन्ध किया गया। संपूर्ण व्यवस्था सुन्दर ढंग से की गयी है।

यह स्टेट काफी बड़ी है। सभी राजकर्मचारी माँ की सेवा में तत्पर हैं। कुछ देर बाद राजा साहब आये और पाद्य अर्घ देकर माँ की पूजा की। चाँदी की थाली में धूप, दीप, भोग आदि सब सजाकर ले आये हैं। सेवा का समस्त प्रबन्ध कर रखा है। खाट पर बिछावन, मसहरी आदि सब कुछ तैयार है। माँ के उपयोग वाले सभी बर्तन चाँदी के हैं। गुसलखाना भी साफ-सुथरा है। माँ के पास काफी देर तक बैठे बातचीत करने के बाद राजा साहब चले गये।

20 आश्विन, शुक्रवार– आज सवेरे माँ को मन्दिर दिखाने के लिये ले जाया गया। मन्दिर देखकर हम सब बड़े प्रसन्न हुए। जहाँ जिसकी आवश्यकता है, वहाँ वही है। एकान्त में साधन-भजन करने योग्य अलग-अलग कमरे बनवाये गये हैं। सभी लोग राजा की सुरुचि और सेवा की प्रशंसा करने लगे। मन्दिर के एक प्रकोष्ठ में अनन्त शय्या पर नारायण सोये हैं, लक्ष्मी पद-सेवा कर रही हैं। दरवाजे पर गरुड़ हाथ जोड़े बैठा है। अन्य स्थान पर काफी बड़ा शिवलिंग स्थापित है, बगल में पार्वती और दरवाजे पर वृष है। अन्तिम प्रकोष्ठ के एक मन्दिर में देवी की शय्या एवं साज-सज्जा की समस्त सामग्री है। साज-सज्जा की टेबिल पर चाँदी की बनी सिन्दूर की डिबिया, कंघी, मंजन, पानदान आदि सजाकर रखे हैं। बगल के कमरे में गुसलखाना है। यहाँ भी प्रत्येक आवश्यक सामग्री करीने से रखी है। जहाँ, जब जिस सामग्री की आवश्यकता हो सकती है, वे सब ठीक ढंग से रखी हैं। इस शय्या गृह में

अखण्ड दीप जल रहा है जिसे दीवार के एक ताखे पर ठीक से रखा गया है। शीशे की बनी दीवारों के एक मन्दिर में एक अखण्ड धूनी जला रखी है। इस मन्दिर के निर्माणकाल से ही यानी 8-9 वर्ष से यह धूनी बराबर जल रही है।

बगल वाले क्षेत्र में कई अन्य कमरे हैं। पता चला कि कभी-कभी राजा साहब यहाँ आकर रहते हैं। सामने एक बड़ा प्रांगण है। ऊपर एक कमरा है जिसमें राजा के पूर्व पुरुष लक्ष्मणसेन के काल की एक शिव-पार्वती की मूर्ति है। वृष के ऊपर शिव-पार्वती बैठे हैं। पता चला कि पहले यह मूर्ति एक पहाड़ पर थी। स्वप्नादेश पाकर, वहाँ से मूर्ति ले आकर पूजा का प्रबन्ध किया गया है।

9 बजे के लगभग राजा के बच्चे माँ को प्रणाम करने के लिये आये। तीन लड़के और दो लड़कियाँ हैं। बच्चे अंग्रेजी के अलावा अन्य कोई भाषा नहीं बोल पाते। कुछ देर बाद रानी और राजा की भ्रातृवधू आयी। साथ में राजा साहेब भी थे। इन लोगों से प्रदत्त मालाओं से माँ लद गयी। ये लोग विभिन्न प्रकार के सिल्क के कपड़े, फल-फूल माँ के चरणों पर रखते हुए पूजा और प्रदक्षिणा करते रहे। साथ में भोजन बनवा लाये हैं। रानी ने अपने हाथ से जरा-सा खाना खिलाया। सभी लोग एक घण्टे तक वहाँ रहे। विभिन्न प्रकार की बातें होती रही। बातचीत के जरिये पता चला कि इनके पूर्व पुरुष बंगाल के लक्ष्मणसेन थे।

मन्दिर के नीचे एक कमरे में एक बहुत बड़ा सिंह है। इस सिंह के बारे में राजा साहब ने जो कहानी सुनायी, वह काफी विचित्र है। इस सिंह को वे लाहौर से ले आये हैं, अफ्रीकी सिंह है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय ही इसे लाया गया है। एक बार न जाने कैसे यह सिंह पिंजरे से निकल गया। लोग बुरी तरह डर गये। लेकिन यह सिंह वहाँ से सीधे दुर्गा देवी के मन्दिर के दरवाजे पर आकर रुक गया और चारों ओर प्रदक्षिणा करने लगा। इसके बाद एक छलांग लगाकर अपने कमरे के पास आकर खड़ा हो गया।

सिंह के रक्षक ने सोचा कि मेरी गलती से यह बाहर गया है, इसलिए मुझे मौत की सजा दी जायेगी और अगर इस वक्त मैं सिंह को पकड़ने जाता हूँ तो मौत का सामना करना पड़ेगा। मतलब दोनों ओर से मौत है। यह सोचकर वह सीधे सिंह के पास जाकर खड़ा हो गया। सिंह अपने दोनों पंजों

को उसके हाथ पर रखते हुए रक्षक के बदन को सूँघने लगा। यह देखकर रक्षक सिंह के दोनों कानों को पकड़कर पिंजरे में ले आया। सिंह बिना कोई प्रतिवाद किये चुपचाप पिंजरे में आ गया। यह देखकर रक्षक को चक्कर-सा आने लगा और दरवाजा बन्द करने के बाद अचानक वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

हमें यह भी बताया गया है कि यह सिंह सप्ताह में एक दिन बुधवार को व्रत रखता है। उस दिन दूध के अलावा और कुछ नहीं खाता। एक घटना की चर्चा करते हुए कहा गया कि एक बार कोई सज्जन इस सिंह को देखने आये और इसे गालियाँ दी। फलस्वरूप यह बीमार पड़ गया। बाद में उक्त सज्जन पुनः आये और सिंह को प्रणाम करते हुए क्षमा याचना की। नतीजा यह हुआ कि बगैर किसी प्रकार की दवा के यह अच्छा हो गया।

पता चला है कि यही वह भूमि है जहाँ **शुकदेव मुनि** अनेक वर्ष तपस्या करते रहे। उन्हीं के नाम पर इस स्थान का नाम सुकेत रखा गया है। शुकदेवजी के तपस्या की गुफा की बड़े यत्न से रक्षा की जा रही है। कभी इस गुफा में पंच पाण्डव आकर रह चुके हैं। उन्हीं दिनों कुन्ती देवी के ऊपर एक प्रस्तर खण्ड गिर पड़ा था जिसे भीम ने अपने हाथों से नीचे गिरने से रोक लिया था। अभी तक भीम के हाथों के चिह्न उस पत्थर पर अंकित हैं।

दूसरे लोगों की जबानी पता चला कि राजा की प्रथम सन्तान कन्या हुई थी जिसकी मृत्यु हो गयी। इस लड़की के मर जाने के बाद से राजा ने अपने राज्य में शिकार और बलि प्रथा बन्द करने की आज्ञा दे दी। इसके बाद कोई सन्तान नहीं हुई। एक दिन रानी को देवी भगवती ने स्वप्न में आदेश दिया कि तू मेरी सेवा कर। इस स्वप्नादेश के बाद ही देवी-प्रतिष्ठा हुई और विशेष रूप से देवी-पूजा आरम्भ हुई। इस घटना के बाद से राजा को पुत्र-पुत्रियाँ हुई।

अपराह्न में माँ को मोटर द्वारा उक्त गुफा देखने के लिये ले जाया गया। साथ में रानियाँ भी थी। यह स्थान अत्यन्त सुन्दर है। गंगा-यमुना का कुण्ड है। पता चला कि गुफा के भीतर एक मार्ग है। इसी मार्ग से नित्य शुकदेव मुनि हरिद्वार जाकर गंगा में स्नान करते थे। एक दिन वहाँ से स्नान करने के बाद जब वापस आये तब यहाँ अपने कपड़े निचोड़ने लगे, तभी से यहाँ गंगा है। यहाँ कई साधुओं की समाधियाँ भी हैं। यह भी सुना है कि इन साधुओं

में एक साधु इस गुफा-मार्ग से 6-7 मील भीतर गया था। इसके बाद वे और आगे बढ़ नहीं सके। रास्ते में साँपों ने उनका मार्ग रोक लिया था। मार्ग में कहीं-कहीं लेटकर तो कहीं खड़े होकर जाना पड़ता है।

राजा ने इस स्थान को रहने योग्य बनवा दिया है। फल-फूल, तरकारी, शस्य से राजधानी सजी हुई है। मानो लक्ष्मी हाथ बाँधे खड़ी हैं। राजा की भ्रातृवधू ने हाथ जोड़ते हुए माँ से निवेदन किया कि राजा साहब के मकान में, एक बार आपको चरण-धूलि देने के लिये उन्होंने विशेष रूप से अनुरोध करने को कहा है। साथ ही यह भी कहा गया है कि राज्य के चारों तरफ हम आपको घुमा-फिराकर सब कुछ दिखा दें। ऐसा होने पर ही राज्य का मंगल होगा, राजा साहब को ऐसा विश्वास है।

इधर-उधर घूमने के बाद हम राज-भवन में आये। राजा और उनके परिवार के लोग बगीचे से फूल तोड़कर माँ के चरणों में डाल रहे हैं। माँ को राजा साहब स्वयं कुर्सी ले आकर बैठा रहे हैं। माँ भीतर नहीं जाएँगी, बाहर बैठ गयी हैं। चारों तरफ विभिन्न प्रकार के फल-फूल के वृक्ष लगे हैं। एक फल तोड़कर राजा ने माँ के हाथ में देते हुए कहा-"इस फल का पौधा मैं स्वयं जापान से लेकर आया हूँ और स्वयं अपने हाथों से इसे रोपा है।"

राजा साहब के एक बंगाली मित्र भी आजकल उनके अतिथि हैं। वे भी माँ के दर्शन करने के लिये आये हैं। वृद्ध पण्डित हैं। उन्हें माँ के सम्मुख लाकर राजा ने कहा-"माँ, आप एक पण्डित व्यक्ति हैं। इनकी उम्र इस समय 85 वर्ष है।"

पण्डितजी माँ के चरणों में प्रणाम करने के बाद हाथ जोड़ते हुए भगवती का स्तोत्र पाठ करने लगे। आरती होने के पहले ही हम मन्दिर में वापस आ गये।

शाम के समय माँ मन्दिर तक टहलने गयी। शिवलिंग के पास पार्वती को हाथ जोड़े बैठे देख हरिराम ने पूछा-"माँ, देवी किसे हाथ जोड़ रही हैं?"

माँ ने कहा-"देवी स्वयं अपने को ही हाथ जोड़ रही हैं। कभी-कभी कोई पूछता है कि शिव हरिनाम क्यों करते हैं? तुम लोगों के निकट भिन्न भाव है न, इसीलिए तुम लोग ऐसा सोचते हो। मैं तो कहती हूँ कि स्वयं ही अपना नाम भजती हैं।"

रात 9 बजे माँ अपने कमरे में आ गयी।

21 आश्विन, शनिवार– आज सवेरे राजा साहब 11 बजे तक रहने के बाद चले गये। राजा चतुर्मास सजा नहीं देते। लेकिन प्रजागण इन्हीं दिनों अधिक क्योंकि वे जानते हैं कि इस वक्त राजा सजा नहीं देंगे। में कह रहे हैं–"माँ, मैं इस मौके पर बड़े पेशोपेश में क्यों माँ, इस बन्धन में रख छोड़ी हैं।" वे माँ के लगे।

माँ की जबानी पता चला कि राजा नित्य तीन– आराधना करते हैं। रानी भी इसी तरह साधन–भजन अत्यन्त भक्ति और विश्वास है। राजा साहब आदर्शोचित सभी नियमों का पालन निष्ठापूर्वक करते हैं सेवा में राजा साहब बड़े तत्पर रहते हैं। नवरात्र के मेला लगता है। आसपास के इलाके से 10 हजार के दल अपनी–अपनी देवी के साथ नवरात्र के दिन इकट्ठे जुलूस निकालते हैं।

राजा–रानी ने कहा–"माँ, आप यहाँ आयी हैं, असीम कृपा हुई है। न जाने कितने दिनों से हम इस आ रहे हैं।"

माँ हँसती हुई बोली–"तुम लोग मुझे पराया क्यों सृपा तो पराये के बारे में कल्पना की जाती है। यह पिता के निकट आयी है। माता–पिता भी मैं ही हूँ, अलावा कुछ भी नहीं है। युद्ध–विग्रह जो होता है, एक तो यह कि किसके साथ युद्ध करना है? अपने होता है?"

राजा–रानी ने हाथ जोड़ते हुए कहा–"आप ठीक

आज अपराह्न में माँ पुनः शुकदेव आश्रम देखने साथ रानीजी थी, इसलिए साथ में कोई पुरुष नहीं साथ सभी चल पड़े। शुकदेव आश्रम देखने के बाद

भूमि को राजा साहब गुरुदेव को अर्पित कर चुके हैं। यह स्थान भी अत्यन्त मनोरम है। यहाँ प्रकृति देवी मानो हर क्षण मनोमुग्धकारी मूर्ति में विराज रही हैं। फल-फूलों से चारों ओर की दिशाएँ जैसे मुस्कुरा रही हैं। पास ही एक छोटा कुण्ड है जिसमें मछलियाँ नाच रही हैं। पानी इतना साफ है कि तल का बाल भी दिखाई दे रहा है। यहाँ एक नागा साधु रहते हैं।

माँ उनके पास जाकर बोली-''पिताजी, कुछ अच्छी बातें सुनाइये, इसलिए आपके पास आयी हूँ।'' इतना कहकर माँ वहीं बैठ गयी।

साधुजी उस वक्त गाँजा पीने की तैयारी कर रहे थे, माँ की आज्ञा सुनकर शास्त्र चर्चा करने लगे। माँ भी बच्चों की तरह गाल पर हाथ रखे, उनकी बातें सुनने लगी। हम लोग एक ओर खड़े रहे।

कुछ देर शास्त्र चर्चा करने के बाद साधुजी ने कहा-''तुम कौन हो, मैं नहीं जानता। कहीं मुझे छलने तो नहीं आयी हो? बहरहाल, माताजी आपका आना कहाँ से हुआ है? मतलब निवास स्थान कहाँ है?''

माँ ने हँसकर जवाब दिया-''यही तो पिताजी का मकान है, जो मेरा ही है।''

इसी ढंग की दो-चार बातें और हुई। विदा लेते समय साधुजी ने राजा साहब के कर्मचारियों से पूछा-''महाराजा के महामाया मन्दिर में सुना है कि कोई माताजी आयी हैं, क्या वे यही हैं?''

जब साधुजी को यह ज्ञात हुआ कि वे यही हैं तब उन्होंने पुनः कहा-''माताजी, एक दिन फिर आकर अपनी इस संतान को ज्ञान दे जाइयेगा।''

तब तक माँ कुछ दूर आगे बढ आयी थी। यह बात सुनते ही पलटकर वे बोली-''पिताजी, इस तरह की बात बेटी से नहीं कहनी चाहिए। जब पिताजी बुलायेंगे, बेटी तभी चली आयेगी।''

सारी बातचीत हिन्दी में हो रही थी। यह स्थान मन्दिर से काफी दूर है। जिस रास्ते से माँ की मोटर गुजर रही थी, उस ओर के दोनों पटरियों के दुकानदार हाथ जोड़कर माँ को प्रणाम कर रहे थे।

शाम के बाद हम लोग वापस आ गये। मन्दिर के आँगन में माँ काफी देर तक चहल-कदमी करती रही। हम लोग भी उनके साथ थे। तहर-तरह की बातें हो रही थी। राजा के प्राइवेट सेक्रेटरी ने आकर पूछा कि माँ को

किसी प्रकार की तकलीफ तो नहीं है। उन्होंने राज्य के बारे में अनेक बातें बतायी।

आज रात 10 बजे माँ अपने कमरे में आयी। अभय ने कीर्तन करना शुरू किया। लगभग 11 बजे हम लोग सोने गये।

22 आश्विन, रविवार– आज सवेरे राजा और रानियाँ आयी। वर्तमान राजा की रानी और भ्रातृवधू आकर माँ की पूजार्चना करने लगी। अपने साथ ही पूजन की सारी सामग्री ले आती हैं। लगभग 11 बजे वे लोग विदा लेकर चले गये।

अपराह्न में माँ को राजभवन में ले जाया गया। यहाँ बाग में माँ को बैठाया गया। इसके बाद रानी के बाग में माँ को ले जाया गया जहाँ अनेक दासियाँ रंगीन पोशाक पहने पंक्तिवार खड़ी थी। वहाँ जाते ही फल-फूल से माँ की पूजा की गयी। भगवती के स्तोत्र का पाठ हो रहा है, माँ के चरणों में फूल डालकर वे सब प्रणाम कर रही हैं। माँ एक जगह बैठ गयी। दासियाँ अपनी जगह खड़ी रहकर सारा दृश्य देख रही हैं। यहाँ लगभग 23-24 जनी हैं। माँ सभी को 'माताजी' कह रही हैं।

माँ कह रही है–''दुनिया भर में मेरी एक माँ है। मेरी माँ भी मैं ही हूँ। एक ही दुनिया में, एक मैं ही।''

रानियाँ माँ की इस अद्वैत वाणी को सुनकर आनन्दित हो रही हैं। माँ नाना प्रकार की बातों से वातावरण को आनन्दमय बना रही हैं। वे सब बार-बार हाथ जोड़कर माँ को प्रणाम कर रही हैं। चारों ओर का दृश्य भी मनोरम है। राजभवन चारों तरफ पहाड़ियों से घिरा हुआ है जैसे दुर्ग परिवेष्ठित है। वास्तव में राजधानी का प्राकृतिक दृश्य काफी सुन्दर है। राज्य की ओर से इसे मनोरम बनाने का प्रयत्न किया गया है। जितना मैं इन दृश्यों को देख रही हूँ, उतना ही राजा के सद्भाव, सौंदर्य-प्रेम और ज्ञान की प्रशंसा करने की इच्छा हो रही है।

शिक्षादि विषय के कानून-नियम उचित ढंग के हैं। राज्य में हाई स्कूल है। यहाँ अनिवार्य शिक्षा का नियम संपूर्ण राज्य में लागू है। प्रत्येक स्कूल में प्रार्थना होती है। राजा के 8 वर्ष वाले बड़े सुपुत्र को नित्य पूजा-पाठ इत्यादि करना पड़ता है। माता-पिता दोनों अपने साथ-साथ लड़के को भी पूजा-पाठ की शिक्षा देते रहते हैं।

शाम के पश्चात् हम लौट आये। राजा साहब नित्य रात 10 बजे माँ की सेवा में कुछ मिठाई और दूध भेज देते हैं। इसके साथ ही माँ का कुशल-मंगल पुछवाते हैं। राजा साहब रात को 12 बजे सोते हैं। इस बीच बराबर राजभवन से आदमी आता रहता है। राजा फोन पर पूछ रहे हैं कि माँ का शरीर कैसा है? अगर कुछ जरूरत हो तो कृपया आदेश दें। एक प्रकार से राजा में सेवा-भावना का अत्यन्त चमत्कार है।

23 आश्विन, सोमवार– आज एकादशी है। राजा अपने पूर्व पुरुषों का श्राद्ध-तर्पण करेंगे, इसलिए वे सवेरे नहीं आ सकेंगे। शाम को अवश्य आयेंगे, ऐसा कह गये हैं। दिन के 11 बजे के लगभग राजभवन की तीन रानियों के महल से माँ के लिये थालियों में भोजन और उनके साथ ही धूप-माला आदि सामग्री आयी। राजा साहब अपने पूजा स्थल में माँ का फोटो रखकर नित्य पूजा करते हैं। कल से शाम की आरती के बाद माँ की आरती उतारी जा रही है। आरती के पश्चात् वाद्ययंत्र बजाये जाते हैं। सारी सामग्री लेकर लोग माँ के कमरे में आते हैं, पूजा करते हैं, दोनों वक्त आरती उतारने के बाद चले जाते हैं।

राजा साहब ने माँ को केवल दो बार देखा है। एक बार हरिद्वार में और दूसरी बार देहरादून में। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह है कि राजा और अन्य सभी लोग माँ को साक्षात् भगवती के रूप में मानते हुए पूजा करते हैं।

राजमहल से रानियों ने खबर भिजवायी है कि आज वे लोग 4 बजे माँ को लेकर घूमने जाएँगी।

हम लोग रानीजी के साथ घूमने के लिये चल पड़ी। रानीजी के एक अन्य बगीचे में शिव-मन्दिर है। काफी सुन्दर स्थान है। बगीचे से सब्जियाँ ले आकर माँ के चरणों के पास रख दी गई हैं। यहाँ भी एक पुजारी है। नित्य पूजा होती है।

वर्तमान राजा का नाम लक्ष्मण सेन है। इनके बड़े भाई का नाम भीमसेन था। उनकी दो पत्नियाँ जीवित हैं। बड़े भाई राजा हुए थे। आज 20 वर्ष हुए उनकी मृत्यु हो गयी है। वे निस्संतान रहे। भीमसेन की दो रानियाँ और वर्तमान राजा की रानी माँ के साथ चल पड़ी।

लक्ष्मण सेन की रानी कहने लगी–"आँखें बन्द कर लेने पर मैं माँ को

देख पाती हूँ। कल रात को माँ के नाम पर एक गीत तैयार किया है।'' इतना कहने के पश्चात् वे उक्त गीत को गाकर सुनाने लगी।

रानी माँ की चरण सेवा करती हुई बोली–''ऐसा सौभाग्य फिर कब मिलेगा, कौन जाने?''

माँ ने कहा–''नहीं, अब जरूरत नहीं है। लड़की के लिये ऐसा नहीं करते।''

इस बात पर सभी प्रसन्न हो उठे। शाम के बाद हम वापस चल आये।

24 आश्विन, मंगलवार– दुर्गा पूजा के वक्त तक राजा साहब माँ को यहीं रोके रखना चाहते हैं। वे माँ की पूजा करना चाहते हैं। यह उनकी बहुत बड़ी कामना है।

माँ ने कहा–''मेरा कोई पता नहीं है। जब जाने की इच्छा होगी, चल दूँगी। तुम लोग इस शरीर के उपलक्ष्य से कुछ मत करो।''

उधर बैजनाथ में स्वामीजी की मन्दिर प्रतिष्ठा अष्टमी तिथि को होगी। पंचमी से कार्यारम्भ हो जाएगा। वे पंचमी के दिन से ही माँ को अपने आश्रम में रखने के लिये आग्रह कर रहे हैं। इधर जबकि माँ का कोई निश्चय नहीं है, जब जो हो जाए।

पूजा के मौके पर कहीं माँ यहाँ न रहें, इस आशंका से राजा साहब तृतीया के दिन ही माँ की पूजा की व्यवस्था कर रहे हैं। माँ से इस बारे में कुछ कहने का साहस नहीं हो रहा है। अपने आप आयोजन करते हुए कह रहे हैं–''अगर मेरे भाग्य में होगा तो माँ अवश्य कृपा करेंगी।''

आजकल माँ का शरीर कुछ अच्छा है। समुद्रतल से यह स्थान 3500 फुट ऊँचाई पर है। संभवतः इसीलिए यहाँ सर्दी कम है, पर स्थान काफी निर्जन है।

25 आश्विन, बुधवार– आज अपराह्न के समय हम लोग माँ के साथ शुकदेव आश्रम घूमने गये। राजा साहब और रानीजी माँ को लेकर बाग में बैठे। चार बजे राजा साहब ने मोटर भिजवायी। आज राजा साहब ने माँ के अनेक चित्र उतारे। एक चलचित्र खींचा गया। रानियाँ माँ की पूजा कर रही हैं। कोई पैर दबा रही है तो माँ आपत्ति कर रही हैं, पर कोई कुछ सुन नहीं रहा है। दूसरी ओर राजा साहब बच्चों की तरह आनन्दित होते हुए दनादन

फोटो खींचते जा रहे हैं। माँ हमेशा की तरह निर्विकार है, उन्हें प्रत्येक काम में आनन्द मिलता है। न तो उन्हें आनन्द है और न निरानन्द। राजा साहब के छोटे-छोटे बाल-गोपाल आये। उन्हें माँ के निकट खड़े होकर प्रणाम करने के लिये कहा गया।

बड़े राजकुमार से पूछा गया-''तुम सवेरे क्या करते हो, माँ को सारी बातें बताओ।''

बालकों ने स्तोत्रादि पाठ करने के बाद शिव-मंत्र माँ को सुनाया। माँ प्रत्येक बच्चे से मित्रता कर लेती हैं, इनके साथ भी मित्रता हो गयी। माँ बोली-''संसार का हर लड़की-लड़का मेरा मित्र है। इसलिए मेरे मित्र के माँ-बाप मेरे भी माँ-बाप हैं।''

इतना कहने के पश्चात् वे आनन्दमग्न हो उठी। रानीजी ने माँ के बारे में जिस कविता की रचना की थी, उसे वे हाथ जोड़कर मीठे स्वर में सुनाने लगी।

माँ कह रही हैं-''तुमने अपनी लड़की का नाम भवानी रखा है। कोई गौरी रखता है और कुछ माँ-बाप प्यार से अपने बच्चों के लिये न जाने कितने नाम रखते हैं, ठीक उसी प्रकार इस शरीर का नाम ''आनन्दमयी'' रखा गया है। मैं तो कुछ नहीं जानती। मैं तो खाती, पीती और सर्वदा घूमती रहती हूँ।''

सभी को इस बात पर आनन्द मिला। राजा साहब ने कहा-''हमारी माँ पद्मपत्र पर पानी के तरह हैं। सब कुछ भीतर है, पर शरीर पर कुछ भी नहीं है।''

इस तरह की बातें होती रही। शाम को हम लोग मन्दिर में लौट आये।

26 आश्विन, गुरुवार- आज महालया है। आज माँ को नहाने की इच्छा हुई। वे प्रेम से स्नान करती रही। दोपहर को एक बजे भोग लगाया गया। माँ अपराह्न में 4 बजे सोकर उठती हैं। आज उठने के पहले ही अनेक स्थानीय लोग दर्शन के लिये आकर बैठ गये। ज्यों ही माँ उठी त्यों ही लोग फल-फूल लेकर उनके चरणों में हाजिर हुए। माँ अक्सर औरतों से कहा करती हैं-''सिर्फ चुपचाप बैठे नहीं रहना चाहिए। भजन करो।''

वे सब भजन करने लगती हैं। आज दर्शनार्थियों में भी कुछ महिलाएँ गाँव से आयी थी। सभी घूँघट काढ़े थी, इसलिए उनकी शक्ल ठीक से दिखाई नहीं दे रही थी। ज्यों ही उन लोगों ने भजन करना शुरू किया त्यों ही माँ घूँघट काढ़कर उनके बीच जाकर बैठ गयी। हँसकर बोली–"मैं भी देहात से आ रही हूँ।"

इतना कहने के पश्चात् वे गीत गाने लगी। माँ को परिहास करते देख सभी हँस पड़ी। माँ आयी हुई महिलाओं के बच्चों के साथ मित्रता करने लगी। तरह-तरह की बातों से सभी को आनन्द प्रदान कर रही हैं। फिर इन सब खिलवाड़ों के मध्य स्थिर होकर गंभीर भाव से पूछ रही हैं–"अच्छा, तुम सब किसके साथ चक्कर काट रही हो? जो साधु होता है, वह खूब गंभीर होकर अपने आसन पर बैठा रहता है। अच्छी-अच्छी बातें सुनाता है। और यह (अपने शरीर को दिखाती हुई) सभी के साथ शैतानी परिहास करती है। खाती-पीती और घूमती है। न जप करती है और न तप। यह कैसी साधु माँ है, भाई।"

इतना कहने के पश्चात् माँ ने इस तरह मुँह बनाया कि उससे हास्य के अनेक रस छलक पड़े। भक्त इस दृश्य को देखकर मुग्ध हो उठे और आनन्द प्राप्त करने लगे।

दो-तीन दिन से माँ दोपहर को एक गीत की रचना कर रही है। उक्त गीत को मैंने लिख लिया है। वह यों है –

अरे जीवों के जीवन धन,

तुम बुद्ध, तुम शुद्ध,

तुम नित्य-निरंजन,

तुम मुक्त तुम शान्त,

तुम सत्यनारायण।।

(फिर) कर रहे कितने माया-खेल,

दिखाओ जितने भवज्वाल।

तोड़ो अब यह घेरा

अरे पागल प्राणधन।।

आज माँ शाम के बाद आँगन में टहल रही हैं। उनके साथ हम लोग हैं। टहलते-टहलते माँ नाम लेने लगी-

"हरि ओम, हरि ओम, हरि ओम्। हरि बोल, हरि बोल, हरि बोल।"

इसी प्रकार आधे घण्टे तक नाम चलता ही रहा। आरती का वक्त होने पर हम लोग घर के भीतर आ गये। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि यहाँ आरती के समय सींगा, घण्टा आदि अनेक प्रकार के वाद्य यंत्र बजाये जाते हैं। इसी तरह दोनों वक्त आरती होती है। माँ की भी आरती होती है।

नित्य आरती होती है। आरती के पश्चात् हरिराम माँ के निकट खड़ा होकर स्तोत्रादि पाठ करता है, अभय कीर्तन करता है और तब रात 11-12 बजे हम सोने जाते हैं।

27 आश्विन, शुक्रवार- आज सवेरे राजा साहब आये। कल वे कुछ घटनाएँ माँ और हरिराम को बता चुके हैं। अधिकांश सुन्दर हैं जिसे वे सभी के निकट प्रकट करना नहीं चाहते। यही वजह है कि माँ और हरिराम ने उन बातों का उल्लेख नहीं किया। राजा साहब के आने पर मैंने उन बातों की चर्चा की तो वे हँसते हुए सारी बातें सुनाने लगे।

शाम के पश्चात् जब हम लोग बैठे तब माँ और हरिराम ने जो कुछ कहा, वह यों है-नवरात्र के मौके पर एक बार राजा साहब सात दिन उपवास रहते हुए पूजा करते रहे। अधिक रात में जब एक दिन पूजा कर रहे थे तब उन्होंने अचानक देखा कि उनकी मृत प्रथम कन्या हाथ में खाद्य सामग्री लिये खड़ी है। अपने बाप को कुछ खिलाने के लिये वह तंग करने लगी। इधर राजा साहब खाना नहीं चाहते थे और उधर बार-बार वह लड़की तंग कर रही थी। राजा ने नाराज होकर कहा-'जो इस तरह अपने पिता का संकल्प तोड़े, वह पिशाच है।'

फिर भी लड़की नहीं मानी। राजा ने पूछा-'तुम तो एक अर्सा हुआ, मर गयी हो। फिर यहाँ कैसे आ गयी?'

उसने जवाब दिया-'मैं तुम्हें खिलाने आयी हूँ, तुम्हें खाना पड़ेगा।'

अन्त में लाचार होकर राजा को खाना पड़ा। कुछ देर बाद जब वे स्वाभाविक रूप में आये तो उन्होंने अनुभव किया कि उनके मुँह में बादाम चिपका है।

उसी नवरात्र के बीच एक दिन पेट खराब हो गया, बुखार आ गया, लेकिन राजा साहब पूजा करने से विमुख नहीं हुए। बार-बार पाखाना से वापस आकर पूजा के आसन पर बैठते रहे। एक बार पाखाने में जाकर राजा ने देखा-गरम पानी समाप्त हो गया है। यह देखकर उन्होंने नौकरों को नहीं बुलाया। भगवान् के श्रीचरणों के पास आकर कहने लगे-''माँ, तुम इस तरह मेरे कार्य में क्यों बाधा दे रही हो? अब मैं क्या करूँ?''

राजा का इतना कहना था कि उन्होंने आश्चर्य से देखा-कल से गरम पानी गिर रहा है। उस पानी से स्नान करने के बाद वे पुनः पूजा पर बैठ गये। कुछ देर बाद नींद लग गयी तो आसन पर ही सो गये। सोकर उठने के बाद उन्होंने अनुभव किया कि बुखार गायब हो गया है। पुनः वे पाखाना नहीं गये। अब काफी स्वस्थ हैं, ऐसा अनुभव करने लगे।

इस घटना को सुनने के पश्चात् हमें एक घटना याद आ गयी। आज से दो दिन पूर्व माँ यहाँ नहा रही थी। उस दिन भी एक घटना हो गयी थी। माँ के बाथरूम में कभी गर्म पानी नहीं आता था। ज्यों ही माँ नहाने गयी त्यों ही गरम पानी से स्नान-पात्र भर गया। बाद में गर्म पानी गिरना बन्द हो गया। दुबारा नहीं गिरा।

माँ हँसती हुई बोली-''कितने आदमी ऐसे कहते हैं। व्यास में पाखाना देख चुकी है। वहाँ एक व्यक्ति आकर पाखाना साफ कर जाता था।''

व्यास में पाखाना साफ हो जाने की कहानी शायद पहले लिख चुकी हूँ। पहले तीन-चार दिनों तक समझ नहीं सकी, आखिर पाखाना नित्य कैसे साफ हो जाता है। अन्त में माँ ने एक दिन दिखाया तब मुझे भी आश्चर्य हुआ कि पाखाना आखिर कैसे अपने आप साफ हो जाता है? ज्यों ही हमने इस पर गौर करना शुरू किया, उसके बाद से फिर सफाई होना बन्द हो गयी।

और एक घटना का विवरण सुनने में आया-प्रथम सन्तान की मृत्यु के पश्चात् काफी दिनों तक बच्चा नहीं हुआ। इसके बाद एक बार रानी जब गर्भवती हुई तब यह तय हुआ कि राजा साहब रानी को लेकर दिल्ली जाएँगे, वहीं प्रसव होगा। दिल्ली में तीन महीने रहने के बाद प्रसव काल आया। डॉक्टर, लेडी डॉक्टर आदि बैठे हैं। बड़े-बड़े लोग फोन पर पूछ रहे हैं कि क्या हुआ? डॉक्टरों के दल ने जाँच करने के बाद कहा-''अब देर नहीं, प्रसव होने ही वाला है।''

ठीक इसी समय रानी ने राजा को बुलाकर न जाने क्या कहा। कुछ देर बाद रानी ने कहा कि मैं पाखाने जाऊँगी। पेट दर्द कर रहा है। वे पाखाने चली गयी। लगभग 50 बार टट्टी हुई। बार-बार पाखाना जा रही हैं। कुछ देर बाद देखा गया कि गर्भ के समस्त लक्षण गायब हो गये हैं। पूर्ण रूप से वे स्वस्थ हैं। गर्भवती का एक भी लक्षण उनमें नहीं है।

इधर राजा साहब को बार-बार फोन किया जा रहा था। इस स्थिति में राजा साहब क्या कहते? "रानीजी अस्वस्थ है" जवाब देने के बाद वे उसी रात को ही रानी से बोले-"राजधानी में जरूरी काम आ गया है। मैं अभी जा रहा हूँ। तुम प्राइवेट सेक्रेटरी के साथ चली आना।"

इतना कहकर वे शर्म के कारण दिल्ली से भाग खड़े हुए। माँ हँसती हुई बोली-"इस घटना को सुनाने के बाद राजा बड़े मजे से दिखाते हुए कह रहा था कि माताजी, लोगों की नाक इस तरह कटती है (नाक कटने का ढंग दिखाते हुए) और मेरी नाक इस तरह कट गयी (उल्टे ढंग से काटने का भाव दिखाते हुए)।"

तीसरी घटना-एक बार राजा साहब ने नवरात्र के दिनों में कुमारी पूजा की। अचानक कुमारी लड़की तुरन्त मर गयी। डॉक्टर ने परीक्षा करने के बाद बताया कि हार्ट फेल हो गया है। राजा तो एक प्रकार से ज्ञान शून्य हो गये थे। कुमारी की माँ और बाप आकर बुरी तरह रोने लगे। राजा की शिकायत करने लगे। बात तुरन्त राज्य भर में फैल गयी। राजा किंकर्त्तव्य विमूढ़-सा होकर बैठे रहे। अचानक दरवाजे पर आहट हुई। बोले-"कौन है?"

जवाब आया-"मैं हूँ, दरवाजा खोलो।"

दरवाजा खोलने के पश्चात् राजा ने देखा कि रानी बड़ी विचित्र वेशभूषा में खड़ी है। राजा के पूजा वाले कमरे में रानीजी स्वभावतः नहीं आती। राजा का महल अलग है जहाँ रानियाँ कभी नहीं जाती। रानी को इस रूप में आया देखकर उन्होंने चकित भाव से पूछा-"तुम यहाँ कैसे चली आयी?"

रानी ने भयभीत स्वर में कहा-"जल्दी से उस कुमारी को मेरी गोद में डाल दो।"

रानी के बार-बार कहने पर राजा ने कुमारी को उठाकर रानी की गोद में डाल दिया। उन दिनों वह कुछ बीमार थी, पर उस कमजोरी की हालत में

भी वे कुमारी लड़की को सवेरे 10 बजे से लेकर 4 बजे तक गोद में लिये बैठी रही। बाद में देखा गया कि लड़की के हाथ-पैर धीरे-धीरे हिल रहे हैं, श्वास चलने लगी है।

राजा ने रानी से पूछा-''तुम कौन हो?''

जवाब मिला-''तारिणी देवी।''

कुछ दिन पहले से ही रानी में इस तरह आवेश के भाव प्रकट होते रहे। लेकिन राजा इस पर विश्वास नहीं करते थे। अब उन्हें इस पर किंचित् विश्वास होने लगा।

रानी को जहाँ तक समझ पायी हूँ, वे अत्यन्त शान्त, विनयी, निश्छल और धर्मप्राण हैं। माँ के उद्देश्य में उनके अन्तर से जो काव्य स्वतः प्रस्फुरित हो रहे हैं, उन्हें वे सुनाती जा रही हैं। अक्सर माँ के सामने हाथ जोड़कर स्तवन पाठ करती हैं। उस वक्त उनकी मूर्ति भक्तों जैसी लगती है।

28 आश्विन, शनिवार- आज राजा साहब अपराह्न के समय नित्य की भाँति मन्दिर में पूजा करने आये हैं। (नवरात्र के दिनों वे नित्य पूजा करते हैं)। जब वे माँ के चरणों में प्रणाम करने आये तब अपने साथ माँ को भी ले गये। वहाँ साथियों ने कीर्तन किया। राजा ने अपने हाथों से माँ को सजाकर आरती की। कहीं सर्दी न लग जाए, इसलिए एक बड़ी छतरी लगायी गयी। रानियाँ उस छतरी को पकड़कर खड़ी हो गयी। शाम के बाद माँ को वापस भेजकर राजा भोजन करने चले गये। राजा साहब दिन में एक प्याली चाय या दूध पीते हैं, रात को कई रोटियाँ खाते हैं।

मन्दिर वापस आकर माँ सो गयी। हम लोग उनके पास बैठ गये। बात-बात में माँ कहने लगी-''लोग शिव-पूजा करते हैं, आखिर शिव कौन है? नहीं-परम शिव ही है लक्ष्य। वास्तव में शक्ति-पूजा करते हैं। बिना शक्ति के संचार हुए कुछ नहीं होता, इसीलिए शक्ति-पूजा अर्थात् शक्ति-संचार करते हैं। गुरु-पूजा, बगैर गुरु के आश्रय गये शक्ति-संचार नहीं होता। गुरु का आश्रय आवश्यक है तभी ऊपर के दोनों प्राप्त होते हैं। स्तर-स्तर में सब कुछ है।''

इसके बाद इस बात की चर्चा चल पड़ी कि इस राज्य में एक गण (देवताओं को गण नहीं कहा जाता) का उपद्रव है। अक्सर कभी-कभी वह

दिखाई देता है, बातचीत करता है। औरतों पर अत्याचार करता है। एक बार एक सिपाही को उसने जान से मार डाला था। गण का नाम है-नरसिंह। पता चला है कि वह गण तरह-तरह का रूप धारण करता है। कभी बाघ तो कभी सिंह, यहाँ तक कि एक बार राजा की मूर्ति धारण कर जब रानी के पास गया तब रानी इस रहस्य को भाँपते ही चीत्कार कर उठी। इसी तरह की अनेक घटनाएँ सुनने में आयी हैं। पहाड़ के किनारे एक स्थान है जब वहाँ छोटे-छोटे बच्चे अचानक दोपहर को चले जाते हैं तब बेहोश हो जाते हैं।

इस घटना की चर्चा माँ से राजा भी कर चुके हैं और उन्होंने यह पूछा था कि इस बारे में क्या किया जाए। सभी लोगों की इच्छा है कि राज्य से यह उपद्रव दूर हो जाए।

माँ ने कहा-''मैं जिस दिन यहाँ आयी, उसी दिन उससे मुलाकात हुई थी। यहाँ एक कोई सचमुच है।''

अभी यह बातें हो रही थी कि सहसा यतीश दादा की सूरत देखने पर माँ बोल उठी-''तुमने कुछ देखा क्या?''

उन्होंने कहा-''हाँ, माँ। अभी-अभी इस खिड़की के पास एक मूर्ति को खड़ा देखा है। प्रकाण्ड मूर्ति थी माँ के पैरों की तरफ वाली खिड़की के पास खड़ा था।''

किसी-किसी ने राजा को सुझाव दिया था कि इसकी पूजा कीजिये। राजा ने प्रतिवाद करते हुए कहा था-''मैं उसकी की पूजा नहीं कर सकता। मैं जगन्माता की पूजा करता हूँ। मुझे किस बात का डर है? मैं ऐसे-वैसे की पूजा नहीं कर सकता।''

राजा ने रात को एक पत्र लिखते हुए जानना चाहा है कि इस बारे में माँ का आदेश क्या है?''

माँ हरिराम से जवाब लिखवा रही हैं-''पहली बात तो यह है कि यह भाव ग्रहण कर सकते हो कि मुझे अपना लक्ष्य ठीक रखना है। लक्ष्य-स्थान तक पहुँचने के लिये यह बाधा-स्वरूप है। यह बाधा दे रहा है, इसे सर्वदा स्मरण रखना। दूसरी बात यह है कि इच्छा करने और मन में संशय उत्पन्न होने पर, यह भाव ग्रहण कर सकते हो कि मैं जिसकी पूजा कर रहा हूँ, वे

ही इस मूर्ति में प्रकट हो रही हैं। अगर इस रूप में उनकी पूजा करना चाहो तो कर सकते हो, इससे कोई हानि नहीं होगी। सभी तो उस एक का ही रूप है। तुम्हारे पूर्व पुरुष जब पूजा कर गये हैं, तब एक ही बात है। तीसरा यह है कि मैं अपने इष्ट-देवी की पूजा करता रहूँगा, यह भाव ग्रहण कर सकते हो। इसके परिणाम स्वरूप खराब भी अच्छा हो जाता है। मैं किसी की परवाह नहीं करूँगा।''

''इन तीन भावों में जिसे चाहो उसे तुम ग्रहण कर सकते हो। लेकिन यह याद रखना कि इसकी पूजा के लिये भिन्न मूर्ति या मन्दिर की आवश्यकता नहीं है यह शिव और शक्ति के अनुचरों में कोई एक है।'' हम लोगों से माँ ने कहा-''यह एक और भाव है।''

हम उनका मतलब नहीं समझ सके। आगे माँ कहने लगी-''चूँकि देवी और शिव की पूजा तो मन्दिर में हो रही है, इसलिए उनके अनुचर साथ रहेंगे ही। लिहाजा अलग से मन्दिर या पूजा करने की जरूरत नहीं है।''

राजा ने इन भावों में अन्तिम को स्वीकार किया। माँ ने कहा-''मैं समझ गयी थी कि राजा अन्तिम भाव को ही ग्रहण करेगा, क्योंकि राजा का भाव बहुत अच्छा है।'' फिर प्रश्न उठा कि अगर यही शक्ति या शिव का अनुचर है तो वह औरतों पर अत्याचार क्यों करता है?

माँ ने कहा-''प्रत्येक में स्तर भेद होता है। कोई अच्छा होता है तो कोई खराब।'' आगे पुनः कहने लगी-''ऐसे जीव कभी-कभी मृत व्यक्ति की अतृप्त आत्मा के साथ मिलकर काम करते हैं। अतृप्त आत्मा भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होती है।''

माँ के निकट भक्तगण अक्सर पत्रादि लिखते हैं। उन पत्रों के जवाब में माँ जो कुछ कहती हैं, वह अमूल्य उपदेश होता है। एक व्यक्ति ने प्रश्न किया है-''गुरु कौन? दीक्षा क्या है?''

माँ से यह सवाल पूछने पर वे कहने लगी-''गुरु अर्थात् गुरुत्व अर्थात् भगवान् के साथ जो युक्त है, वे यह जता देत हैं। वे ही गुरु होते हैं। एकमात्र जो उनको जानते हैं। दीक्षा अर्थात् गुरु या इष्ट ही दीक्षा के रूप में प्रकट होते हैं; क्योंकि इष्ट, मंत्र और गुरु सब एक हैं।''

दूसरे सज्जन के पत्रोत्तर में लिखने को कहा गया-''उसी एक के ध्यान

में लगे रहो। समय गुजरता जा रहा है। जब तक जड़ में नहीं पहुँचोगे तब तक फल नहीं मिलेगा।''

29 आश्विन, रविवार– आज सवेरे 9 बजे राजा साहब ने मोटर भेजकर माँ को अपने यहाँ बुलाया, फिर उन्हें पूजा-मन्दिर में ले गये। यह बात पहले से ही तय थी कि आज तृतीया तिथि के दिन वे माँ की पूजा करेंगे। माँ के ठहरने का कोई निश्चय नहीं है। कहीं वे चल न दें, इसलिये आज पूजा का प्रबन्ध किया गया है। राजा साहब के अनुनय, अनुरोध के साथ-साथ हम लोग भी अनुरोध करते रहे, इसलिए माँ कृपा करके तृतीया के दिन तक रुक गयी।

राजा ने इच्छा प्रकट की कि वे एकान्त में माँ की पूजा करना चाहते हैं, उस वक्त अगर कोई मौजूद रहेगा तो भाव नष्ट हो जाने की आशंका है। हम लोग नीचे ठहर गये। राजा साहब एक पण्डित को पास रखकर पूजा करेंगे। माँ को हम लोगों ने पूजा वाले कमरे में पहुँचा दिया। वहाँ जाकर देखा-अपार ऐश्वर्य सजाया हुआ है। इन सबसे ऊपर राजा का भक्ति भाव उस स्थान को उज्ज्वल बना रखा था। वे शुद्ध वस्त्र पहने बैठे थे। ज्यों ही माँ भीतर गयी त्यों ही वे पुष्पांजलि देने के लिये खड़े हो गये। राजा की भीगी आँखों से शुद्ध भाव प्रस्फुटित होने लगा।

बाद में हम लोग नीचे आकर बैठ गये। राजा साहब की मंत्र-ध्वनि रह रहकर सुनायी दे रही थी। पूजा आरम्भ होने के साथ-साथ बिगुल ध्वनि हुई और बैण्ड बजने लगा। महाआडम्बर के साथ पूजा समाप्त करने के बाद राजा साहब ने हम लोगों को ऊपर बुलाया।

ऊपर जाकर मैंने देखा कि पूजा वाले कमरे में माँ राजा द्वारा प्रदत्त वस्त्रालंकार पहने राजराजेश्वरी बनी बैठी हैं। कारु कार्य खचित जरी की मख़मल वाली गद्दी पर माँ को बैठाया गया है। पूरे कमरे में पूजा के भिन्न-भिन्न सामान रखे हुए हैं। सिल्क की शय्या, वस्त्र, गरम कपड़े, रुपयों से भरी थालियाँ, अलंकार आदि रखे हैं। आरती के गन्ध से कमरा गमक रहा है। पास ही सोने की एक देवी मूर्ति रखी है। एक किनारे घट है जिसमें तलवार है। चाँदी से निर्मित सुन्दर पद्म में शिवलिंग, त्रिपुरा भैरवी और दो-एक महामूल्य रत्न निर्मित मूर्ति रखी हैं। ऊपर चाँदी का एक कलश है। जिसमें से शिवलिंग पर पानी गिर रहा है। यह पानी नीचे गोमुख के द्वारा बाहर गिर रहा है।

राजा साहब यह सब दिखाते हुए कहने लगे–"मैं जहाँ जाता हूँ, यह सामान नित्य पूजा के लिये ले जाता हूँ।"

सामने एक दीवार की ताखों पर काली–मूर्ति और माँ का चित्र है। दूसरी ओर राजा साहब के गुरु का चित्र टंगा है।

राजा साहब माँ के साथ बातें कर रहे थे। माँ भी वहीं जाकर बैठ गयी। राजा साहब कह रहे थे–"एक रात को देखा कि शय्या गृह में एक स्त्री मूर्ति जो शुभ्र वस्त्र पहने थी, खड़ी है। पहले मैं बुरी तरह डर गया। सारा शरीर काँपने लगा। सोचा–चीखकर नौकरों को आवाज दूँ, फिर सोचा–नहीं, ऐसा नहीं करना चाहिए। मन ही मन इष्ट मंत्र जपने लगा। धीरे–धीरे वह मूर्ति बाहर चली गयी। कुछ देर बाद यह महसूस हुआ कि बाहर कोई खड़ाऊँ पहने चहल–कदमी कर रहा है। चारों तरफ पहरा है, मेरे शय्या गृह के पास कोई आ नहीं सकता, फिर यह कौन है? समझते देर नहीं लगी कि यह अलौकिक रहस्य है। इस बार मैं भयभीत नहीं हुआ। इष्ट मंत्र का जप करता रहा। धीरे–धीरे सब बन्द हो गया।

इसके बाद नरसिंह गण की चर्चा चल पड़ी। कल रात को माँ ने तीन भावों के सम्बन्ध लिखवाकर भेजा था। राजा ने आखिरी भाव को स्वीकार किया है, जानकर माँ कहने लगी–"मैं जानती हूँ कि तुम इसी भाव को पसन्द करोगे। तुम्हारी इच्छा हो तो किसी स्थान पर इसके लिये अगर भोजन रख दिया जाए तो कैसा हो?"

राजा ने कहा–"माँ, मेरे लिये यह बड़ी भयानक बात होगी। मेरे दादाजी स्वयं इसके लिये समस्त प्रबन्ध कर गये हैं। यहाँ तक कि जब कभी वे एक चिलम तमाखू पीते थे तब उसके लिये अलग से एक चिलम ऊपर भिजवा देते थे। उस कमरे से तमाखू की महक आती थी। इतनी सेवा करने के बावजूद वह महल की महिलाओं पर अत्याचार करता रहा। यही वजह है कि मैंने सब बन्द कर दिया। अगर मैं उसकी सेवा के लिये समस्त प्रबन्ध कर भी दूँ तो वह महल के ऊपर जरूर धावा करेगा। मैं इसे पसन्द नहीं करता।"

आगे आपने कहा–"इसके पूर्व एक बार मैं पूजा करते वक्त उच्छिष्ट नैवेद्य को 'चण्डालिन्यै नमः' कहकर ज्यों ही पीछे की ओर फेंकना चाहा

त्यों ही मेरी अंगुलियों से किसी ने खींच लिया। फलस्वरूप भय से मेरा सारा शरीर काँप उठा, लेकिन मैं चुपचाप बैठा रहा। एक बात है माँ, यह नरसिंह इस राज्य में मेरे पितामह के जमाने से बराबर उपद्रव करता आ रहा है। मैं उसकी सेवा के लिये किसी प्रकार का प्रबन्ध करना नहीं चाहता।''

माँ ने कहा–''ठीक है। तुम्हें सेवा के लिये कुछ करने की जरूरत नहीं है। हो सके तो तुम एक ऐसा आदेश दे जाना ताकि तुम्हारे वंश का कोई भी व्यक्ति उस मूर्ति की पूजा कभी न कर सके। अब तुम्हें डरने की जरूरत नहीं है। जब कभी डर महसूस हो तो इष्ट मंत्र का जप शुरू कर देना। फलस्वरूप वह तुम्हें किसी प्रकार का नुकसान नहीं पहुँचा सकेगा। अब तुम्हें बिल्कुल डरना नहीं चाहिए।''

राजा छलछलाते हुए नेत्रों से हाथ जोड़ते हुए प्रार्थना करने लगे–''माँ सर्वदा कृपा दृष्टि बनाये रखना, यही मेरी प्रार्थना है। मैं राज–ऐश्वर्य कुछ भी नहीं चाहता। आज तक 27 वर्ष इस तरह का जीवन बिता चुका। अब यह सब बन्धन जैसा लग रहा है। मुझे ज्ञान–वैराग्य दो, माँ।''

बाद में पता चला कि राजा साहब राजपाट त्यागकर साधन–भजन करने के लिये एक गुफा का निर्माण करवा चुके हैं। राजा की प्रार्थना सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई। अब माँ उठने वाली हैं, क्योंकि 12 बज चुके हैं। माँ को पहनाये गये रत्नालंकारों को खोलने लगी। इसके बाद माँ चलने के लिये खड़ी हो गयी। राजा साहब माँ के साथ–साथ मोटर के पास आये।

ऐश्वर्य अनेक लोगों के पास है। लेकिन एक ओर ऐश्वर्य और दूसरी ओर भक्ति, इन दोनों का मिश्रण राजा साहब में देखकर मुझे प्रसन्नता हुई। इस तरह का मिश्रण बिरला ही देखने में आता है।

रात में राजा की चीजें कहाँ रखी जाएँ, यह सवाल उठा। माँ के भावानुयायी हम लोगों ने कहा–''माँ को जो चीजें जहाँ से मिलती है, उन्हीं के घर छोड़ आती हैं। किसी के मन में चोट न पहुँचे, इसलिए वे कहती हैं–मेरा अलग से सन्दूक या घर नहीं है। माता–पिता के मकान और सन्दूक ही मेरा घर–सन्दूक है। मैं उन सब सामग्रियों को अपने माता–पिता के पास रख आती हूँ। बच्ची हूँ, कहाँ रखूँगी? बच्चे जब कोई चीज पाते हैं तब उसे माँ–बाप के पास ही रख देते हैं। उसी प्रकार मैं रख देती हूँ।''

इन बातों से और माँ का भाव देखकर "वापस कर दिया" की भावना किसी के मन में उत्पन्न नहीं होती। माँ के भाव की बात पर मैंने यतीश दादा से कहा–"यह सब बहुमूल्य सामग्री हम लोग लेकर कहाँ जाएँगे? राजमहल के किसी कमरे में रहने दो।"

लेकिन राजा साहब राजी नहीं हुए। बोले–"गोकि मैं माँ के लिये घर बनवा सकता हूँ, ये सारे सामान सजाकर रख सकता हूँ, पर मैं इसे रख नहीं सकता।"

माँ हँसती हुई कहने लगी–"तुम लोगों की जो इच्छा हो करो। सब कुछ तो तुम्हीं लोग कर रहे हो।"

एक बार माँ ने कहा था कि राजा साहब के नौकर-चाकर जो कुछ सामग्री ले आये हैं, उसमें से एक-एक सामग्री उन लोगों को दे दो। लेकिन हरिराम ने कहा–"अगर ऐसा किया जाएगा तो राजा साहब सोचेंगे कि सारा सामान वापस कर दिया गया। राजा साहब को इससे कष्ट होगा।"

माँ फिर कुछ नहीं बोली। सारी सामग्री उसी तरह रह गयी।

शाम होने के कुछ पहले राजा और रानियाँ आयी। बुनी की इच्छा हुई कि वह माँ को वस्त्रालंकार से सजा दे ताकि रानियाँ देख लें, क्योंकि माँ को उस रूप में वे सब देख नहीं पायी थी। रानियों के निकट जब यह प्रस्ताव रखा गया तब वे महानन्द से समर्थन करती हुई स्वयं ही माँ को सजाने बैठ गयी। बुनी भी उनका साथ देने लगी। बिजली की रोशनी में माँ के वस्त्रालंकार झलमला उठे। सभी लोग माँ को प्रणाम करने लगे।

अचानक माँ छोटी बच्ची की तरह खड़ी होती हुई राजा साहब से कहने लगी–"पिताजी, पूजा के पश्चात् खुकुनी जब-जब फूलों की माला तुम्हारे गले में पहना रही थी तब मेरे मन में एक खयाल उत्पन्न हुआ था। अगर तुम दुःखी न हो तो बताऊँ?"

राजा ने हाथ जोड़ते हुए कहा–"नहीं माँ, आपका कोई भी खयाल मेरे लिये मंगलकारी जरूर होगा। आपके खयाल में बाधा देने की शक्ति मुझमें नहीं है और न यह इच्छा होती है। आपकी जो इच्छा हो, कह सकती हैं।"

माँ बच्चों की तरह खिलखिलाकर हँसती हुई राजा साहब के पास जाकर बहुमूल्य रत्नहार पहनाती हुई बोली–"मेरे गले से फूलों की माला

उतारकर तुम लोगों को दी जाती है। मेरे निकट फूलों के हार और इस हार में कोई अन्तर नहीं है।''

राजा हाथ जोड़ते हुए चुपचाप खड़े रहे। समस्त जेवर और कपड़ों को जितने लोग वहाँ मौजूद थे, उन सबमें बाँट दिया। ऐसे भाव में वे बातें कर रही हैं कि किसी को कुछ कहने का मौका ही नहीं मिला।

मैं राजा और रानियों से कहने लगी-''आप लोगों को कुछ कहने का अधिकार नहीं है। माँ की सामग्री है, जिसे जिस तरह इच्छा होगी, देंगी। इसमें अगर आप लोगों के मन में कोई भावना उत्पन्न होती है तो मान लेना पड़ेगा कि आपने माँ के श्रीचरणों में यह सब नहीं दिया है, बल्कि इन सामग्रियों में अभी तक निजस्व भावना रह गयी है।''

इन युक्तिपूर्ण बातों को सुनकर कोई कुछ नहीं बोला। सिर्फ प्रेमाश्रु बहाते हुए लोग सारा दृश्य देखते रहे। रानी के अनुरोध करने पर माँ की एक जोड़ा पादुका राजा को दे दी जिसे उन्होंने सिर से लगा लिया।

कल माँ सवेरे बैजनाथ रवाना होंगी। रानी एक ओर जाकर बच्चों की तरह रोने लगी। अन्य रानियाँ भी रोने लगी। सभी लोगों की निगाह बचाकर वर्तमान रानी ने माँ के मुँह में न जाने क्या देकर प्रसाद खाने लगी। शायद उक्त सामग्री को वे अधिक पसन्द करती हैं। मैं इन लोगों का भाव-व्यवहार देखकर मुग्ध हो उठी।

रानीजी माँ से अनुरोध करने लगी-''माँ, राजा साहब को जरा सान्त्वना दे दीजिये।''

माँ आगे बढ़कर राजा साहब के पास आकर बोली-''नारायण को स्पर्श कर रही हूँ।'' इतना कहने के पश्चात् उनके सिर पर हाथ फेरने लगी। राजा साहब और भी फफककर रो पड़े। माँ के चरणों में लोटने लगे।

रात बढ़ती जा रही है देखकर सभी लोग विदा लेकर चले गये।

30 आश्विन, सोमवार- आज सवेरे हम लोग रवाना हो गये। कल अपने सारे गहने और कपड़े माँ लोगों में बाँट चुकी हैं। जिस वक्त माँ को जेवर और साड़ी पहनायी जा रही थी, उस वक्त सामने एक थाली में कुछ नगद रुपये भी चढ़ाये गये थे। बाद में उसे दिखाई नहीं दिए, वर्ना साड़ी-जेवर की तरह वे उसे भी लुटा देती। रवाना होते समय अचानक खयाल हुआ कि

जिस तरह फल-फूल बाँट दिये जाते हैं, उसी तरह रुपयों को भी लुटा दिया जाए।

रवाना होने के समय राजा साहब आये। उनकी आँखें भीगी हुई थी। वे माँ को पीछे-पीछे मोटर पर चढ़ाने के लिये आये। जब माँ मोटर पर बैठ गयी तब अपने हाथ से नवरत्न की एक अंगूठी उतारकर हरिराम को देते हुए राजा साहब ने कहा-''माँ तो यहाँ सब लुटाकर जा रही हैं। यह अंगूठी मेरे पास एक अर्से से है। मैं इसे पहनकर पूजा करता हूँ। कम से कम इसे मेरे राज्य में किसी को न दिया जाए, यह मेरा विशेष अनुरोध है।''

माँ को यह अंगूठी स्वयं देने का साहस राजा साहब को नहीं हुआ। हरिराम भाई ने सारी बातें बताकर माँ को उक्त अंगूठी पहना दी।

माँ ने कहा-''मेरी सामग्री पिताजी के पास भी तो रह सकती है।''

लेकिन राजा साहब को कातर भाव से विनय करते देख, माँ को अंगूठी खोलने नहीं दी गयी। माँ ने कहा-''मेरे हाथ में कुछ रहेगा नहीं। कहाँ चला जाएगा, कोई पता नहीं है।''

इन्हीं बातों के दरम्यान मोटर रवाना होने लगी। राजा साहब ने कहा-''जो जी में आये आप कर सकती हैं।''

फिलहाल वह अंगूठी माँ के हाथ में रह गयी। माँ ने मुझसे कहा-''तुम देखोगी और रखोगी। जब तक रहे, रहेगी।''

हम लोग माँ के साथ चल पड़े। लोग माँ पर फूलों की वर्षा करने लगे। राजा की मोटर में हम चल रहे थे। माँ को पठानकोट में गाड़ी पर बैठाकर तब मोटर वाले वापस आयेंगी। राजा ने यही आदेश इन लोगों को दिया है।

राज्य के सीमान्त पर पहुँचते ही देखा-राजा साहब इन्तजार कर रहे हैं। वे हमसे कुछ पहले ही पहुँचकर माँ के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। माँ के पहुँचते ही प्रणाम करने के बाद अपने आँसुओं को पोंछने लगे। बोले-''फिर कभी कृपा जरूर कीजियेगा।''

माँ हँस पड़ी, फिर जिस तरह औरों को जवाब देती हैं, उसी तरह बोली-''जब इस लड़की को ले आओगे तभी यह चली आयेगी। मैं जाऊँगी भी कहाँ? मैं तो तुम लोगों के ही निकट हूँ। मैं तो कहीं नहीं जाती।''

हमारे पीछे वाली बस में हरिराम वगैरह थे। राजा को देखते ही बस रुक गयी। राजा ने एक गीत लिखकर हरिराम को देते हुए कहा कि इसे आप माँ को दे दीजियेगा। उक्त गीत की पंक्तियाँ यों हैं –

'मेरा बंधे न धीरज
माँ तुम्हें छोड़कर मैं
कैसे रहूँ यहाँ माँ।'

इसी बीच एक दिन हम लोग सवेरे शुकदेवजी के आश्रम में गये थे। दिन भर वहाँ रहने के बाद अपराह्ण में वापस आ गये थे। यतीश दादा, देवीजी, हरिराम आदि कुछ देर तक गुफा के भीतर बैठे रहे।

आज जब मोटर में शुकदेवजी की चर्चा चली तो अभय ने पूछा–"माँ, क्या आपने वहाँ शुकदेव को देखा था?"

माँ ने कहा–"हाँ।"

अभय–"अच्छा, क्या वे वहीं थे या अन्यत्र कहीं से आये थे?"

माँ–"वहीं प्रकट हुए थे।"

इसके बाद सवाल उठा कि हिमालय में घोड़ा मुँह का इन्सान हैं, क्या यह सच है? माँ ने कहा–"हाँ सच है। जब इस शरीर में योग क्रियाएँ होती रही तब उन सबसे मुलाकात हुई थी। और भी बहुत कुछ देख पाती थी, वह सब एक अजीब तमाशा था। खेल और क्या, सब तो खेल ही है।"

देखते–देखते हम लोग मण्डी और योगेन्द्र नगर पार कर गये। सुकेत से मण्डी स्टेट काफी बड़ा है। इधर का प्राकृतिक दृश्य अत्यन्त मनोरम है। समतल भूमि में जगह–जगह खेत के टुकड़े दिखाई दे रहे थे। खेतों के पीछे पहाड़ों का सिलसिला शुरू हो गया था। पर्वत के ऊँचे शिखर तुषार मुण्डित हो यात्रियों की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे।

माँ बैजनाथ में तारानन्द स्वामी के यहाँ

चार–पाँच घण्टे बाद हम लोग बैजनाथ पहुँच गये। स्वामीजी बड़े आग्रह के साथ आगे बढ़कर माँ को साथ ले गये। मन्दिर में तारा मूर्ति की प्रतिष्ठा का कार्यक्रम चल रहा था। कल मुख्य आयोजन होगा। यह भी निश्चय किया कि कल हम लोग ज्वालामुखी देखने जाएँगे। लेकिन रात में माँ

अस्वस्थ हो गयी।

माँ कुछ बोली नहीं, चुपचाप लेटी रही। यतीश दादा नाड़ी की गति देखकर भयभीत हो उठे। हम लोग रात भर बैठे ही रहे। माँ के मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। बिल्कुल चुप थी। जब कुछ पूछा जाता तब कहती-''कोई तकलीफ या असुविधा नहीं है, पर शरीर चुप होता जा रहा है।''

31 आश्विन, मंगलवार- माँ भोर के वक्त धीरे-धीरे कहने लगी-''सब ठीक-ठाक कर ले। चल चला जाए। मेरे लिये चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। गाड़ी में बैठी रहूँगी और यहाँ भी।''

हम लोगों की इच्छा नहीं है कि इस हालत में माँ कहीं जाएँ। यतीश दादा ने माँ के चरणों में प्रणाम करते हुए कहा-''माँ इस वक्त जाने की जरूरत नहीं है। हम लोगों के लिये ही तो जाना चाहती हो। हम लोग नहीं देखने जायेंगे। बाद में जो होना है, होगा। आज बन्द रखो।''

माँ ने कहा-''ठीक है, जैसी तुम लोगों की मर्जी।''

फलस्वरूप यात्रा स्थगित हो गयी।

सवेरे माँ उठकर तैयार हो गयी। कार्यारम्भ के समय स्वामीजी माँ को मन्दिर में ले गये। माँ के सामने समस्त कार्यक्रम हो, यही वह चाहते हैं। ब्राह्मण गण वेदध्वनि करने लगे। नियमानुसार पूजा कार्य होने लगा। अष्टमी तिथि के दिन तारा माता की मूर्ति स्थापित होगी।

अपराह्न के समय गाँव की अनेक महिलाएँ माँ के दर्शन करने के लिये आयी। आयी हुई महिलाओं में दो-एक की ओर इशारा करती हुई माँ बोली-''इसके पहले एक बार जब मैं ज्योतिष को लेकर यहाँ आयी थी तब यह मुझे रोटी खिलायी थी, यह मेरे बाल संवारती थी।''

महिलाएँ भी परिचितों की भाँति माँ के बदन को छूती हुई बातें करने लगी। उनकी सभी बातें मैं समझ नहीं पा रही थी, पर वे अधिकतर अपने गाँव के बारे में बातें कर रही थी। माँ बहुत दिनों बाद यहाँ आयी हैं, यही सब बातें हो रही हैं। माँ भी इन महिलाओं की तरह हाथ-मुँह नचाती, उनके बदन पर हाथ लगाती, हँसती हुई बातें करती जा रही हैं। एकदम उनकी तरह। जैसे उन्हीं की सहेली हो। हम लोग माँ का यह रहस्य देखकर हँसने लगे।

बातचीत के दौरान माँ सभी को कहती हैं–''एक की चिन्ता में, एक के लक्ष्य में जितना समय दे सकते हो, दो। दिन बेकार मत गंवाओ।''

1 कार्तिक, बुधवार– आज लोग माँ को दो-एक जगह घुमाने ले गये। माँ स्टेशन मास्टर के यहाँ गयी और बातचीत के सिलसिले में कहने लगी–''पिताजी, आपका घर कहाँ है? यह तो श्वासों का घर है। अक्सर कहा जाता है कि इस घर को धर्मशाला बना दो। जैसे कहीं यात्रा करते वक्त सारा सामान समेट लेते हो, ठीक उसी प्रकार इसे भी उस मकान में ले जाने लायक सम्बल बना लो।''

2 कार्तिक, गुरुवार– आज सप्तमी की पूजा हो रही है। हंस भाई के द्वारा माँ की पूजा करवायी गयी। हम लोगों ने अंजलि दी और स्तोत्रादि का पाठ हुआ। आज तारानन्द स्वामीजी को हमारे यहाँ से भिक्षा दी गयी। माँ उनके निकट ही भोग पर बैठी। स्वामीजी को सब कुछ श्रद्धा के साथ देने और हाथ में पानी छोड़ने को कहा गया। माँ की नजर सब ओर रहती है। माँ ने कहा–''जब जो कुछ करो, मन-प्राण से करना।''

आज सवेरे उठकर माँ कहने लगी–''देख रही थी कि एक प्रकाण्ड हॉल में कीर्तन हो रहा है। छोटी-छोटी देवबालाएँ हैं। काली-दुर्गा की पूजा हो रही है। तुम सब भी मौजूद हो। रात भर कीर्तन होता रहा।''

मैंने पूछा–''कीर्तन के अन्त में लोग तुम्हें प्रणाम जरूर करते रहे।''

माँ हँसती हुई बोली–''शिमला में भूपेन बाबू वगैरह ने कीर्तन के अन्त में प्रणाम किया कि नहीं, उन लोगों ने भी प्रणाम किया था। कौन किसे प्रणाम करता है बता दो? स्वयं अपने को प्रणाम करते हैं। यह शरीर तो प्रतीक मात्र है।''

आगे कहने लगी–''भोर के वक्त सभी विदा माँगने लगे। जिस प्रकार मुझे विभिन्न स्थानों पर ले जाते हैं, ठीक उसी तरह न जाने कौन वहाँ से मुझे लेने आया है। तू एक चीज लाने गयी तो वहीं सो गयी। इधर मैं सोच रही थी कि खुकुनी कहाँ चली गयी, मुझे जाना ही है, कौन तुझे बुला लायेगा? गोकि देवीजी पास है, पर वह तुझे बुलाने जाकर देर लगा देगी। फलस्वरूप मैं देवीजी को लेकर रवाना हो गयी। साथ में एक अन्य शिशु था।''

अभय के प्रश्न के जवाब में माँ ने कहा-''वह शिशु मरणी का भाई दासू था।''

आगे वे कहने लगी-''दासू और देवीजी को साथ लेकर मैं चल पड़ी। एक सीढ़ी पर बैठा अभय न जाने क्या कर रहा था। मैंने उसे इशारा करते हुए जताया कि मेरे साथ चल। अभय अपनी आदत के अनुसार जैसा कहा करता है कि कहाँ जाऊँगा, उसी प्रकार पूछा-'कहाँ चलना है?' मैं बिना रुके आगे बढ़ गयी। ज्यों ही गाड़ी पर सवार हुई त्यों ही देखा कि अभय धीरे-धीरे आ रहा है। मैं इन्तजार नहीं कर सकी। जो लोग मुझे लेने के लिये आये थे, वे लोग दूर से अभय को आते देख, इन्तजार करने लगे। इतना ही देख पायी।''

मैं बोली-''खूब रही। मेरा इन्तजार किये बगैर तुम चल दी।''

माँ बोली-''मैं तो कई बार सोचती रही कि खुकुनी को खबर कर दूँ। कहाँ चली गयी? चलते वक्त साथ में कौन जाएगा? लेकिन भेजूँ तो किसे भेजूँ? इसका अर्थ यह है कि तू बैठे-बैठे झपकी लेती रहती है, यह अच्छी आदत नहीं है।''

मैंने कहा-''जिसे सोने का कम अवसर मिलता है, अगर वह झपकियाँ न ले तो क्या करे? हर वक्त साथ रहना चाहती हूँ, इसीलिए सोती नहीं, फिर झपकियाँ लेती हूँ तो कौनसा कसूर करती हूँ?''

माँ सान्त्वना के स्वर में बोली-''यह तो ठीक है। लोग जिस तरह विभिन्न स्थानों पर ले जाते हैं, उसी प्रकार यह शरीर चला जाता है। लेकिन तू तो हर वक्त साथ-साथ रहती है, इसीलिये सोचती रही कि खुकुनी कहाँ गयी? अब देरी करना सम्भव नहीं है, यही सब और क्या?''

लेकिन मुझे इन बातों से सान्त्वना नहीं मिली। आज तारा माताजी की परिक्रमा है। कल प्रतिष्ठा होगी। काफी लोग आये हैं। परिक्रमा करने के बाद हम लोग चल पड़े। राजा साहब की मोटर माँ के लिये यहाँ आयी थी। उसी मोटर पर माँ, तारानन्द स्वामीजी और हम लोगों में से कुछ लोग परिक्रमा के साथ-साथ चल पड़े। रास्ते में एक जगह मोटर रोककर एक पण्डितजी तारानन्द स्वामीजी और माँ के बारे में वक्तृता देने लगे।

शाम के पहले ही हम लोग आश्रम में लौट आये। यहाँ के एक

धनाढ्य व्यक्ति कन्हैयालाल बाबू माँ के दर्शन करने आये हैं। ये एक बार इसके पहले माँ को अपने घर ले गये थे। अपने यहाँ अपने गुरुदेव के लिये एक कुटिया बनवायी है। आज भी अपने यहाँ माँ को ले चलने के लिये अनुरोध करने लगे। कल तारा माता की प्रतिष्ठा हो जाने के बाद हम लोग यहाँ से रवाना हो जायेंगे। अन्त में यह तय हुआ कि चलते वक्त कुछ देर के लिये माँ वहाँ जायेंगी।

वे हाथ जोड़ते हुए बोले-''माँ को कष्ट दे रहा हूँ।''

तुरन्त माँ ने कहा-''लड़की को पिताजी के पास जाने में कहीं तकलीफ होती है? तुम लोग इस शरीर को पराया क्यों समझते हो? अगर तुम लोग पराया समझोगे तो फिर भी मैं कहूँगी कि सब एक है।''

आगे माँ कहने लगी-''यह दुनिया है न, इसीलिए कष्ट है। दुनिया की ओर जाने पर कष्ट पाना अनिवार्य है। दुनिया की ओर जाने का क्या अर्थ है, जानते हो? जैसे चोट पहुँचाकर घाव को बढ़ाना। दूसरी ओर भगवान् की ओर जाने का अर्थ है-मरहम लगाना। जगत् का सम्बन्ध ही कष्टदायक है। जैसे कोई अच्छी वस्तु खाने के बाद उसके पिता, पुत्र और आत्मीय स्वजन को कहा जाता है कि इसे चखकर देखो कितना मीठा है। ठीक उसी प्रकार तुम लोग उनका नाम करो। उनके नाम के अलावा और कहीं शान्ति नहीं है।''

रात में काफी लोग आये थे, कीर्तन हुआ। स्वामीजी तथा अन्य लोग माँ के साथ देवी भगवती की तरह व्यवहार कर रहे हैं। जगह-जगह से लोग माँ के दर्शन करने आ रहे हैं।

3 कार्तिक, शुक्रवार- आज महाष्टमी है। तारा मूर्ति की स्थापना हो गयी। स्वयं स्वामीजी ने की। ब्राह्मणों का दल वेद ध्वनि करने लगा। माँ को मन्दिर में ले जाकर उनके सामने कार्यवाही प्रारम्भ की गयी। अभय ने आज माँ की पूजा और यज्ञादि किया। इसके बाद हम दोपहर को 2 बजे वहाँ से रवाना हो गये।

माँ काँगड़ा-ज्वालामुखी में

अपराह्न में काँगड़ा पहुँचे। वहाँ से बस द्वारा ज्वालामुखी की ओर रवाना हुए। शाम के बाद वहाँ पहुँचकर दर्शन किये। मन्दिर के भीतर जगह-जगह

पत्थर के भीतर से हर वक्त आग निकलती है। अगर एक लोटा पानी वहाँ रख दिया जाए तो थोड़ी देर के लिये आग की लहरें पानी में आ जाती हैं। मन्दिर में जगह-जगह कीर्तन-पूजा और पाठ हो रहे थे। रात हमने बस में बितायी।

4 कार्तिक, शनिवार– आज सवेरे ज्वालामुखी से काँगड़ा और वहाँ से पठानकोट चले आये। रेल से उसी दिन **अमृतसर** पहुँचने के बाद यह तय किया गया कि आज यहीं विश्राम किया जाये। स्टेशन मास्टर ने स्वयं धर्मशाला में ठहराने के लिये प्रबन्ध कर दिया। कल हम **सिक्खों का पावन प्रसिद्ध धर्म-मन्दिर** देखने जाएँगे।

रात को माँ भोग के पश्चात् सोयी हुई थी। मैं पास ही बैठी उनके बदन पर हाथ फेर रही थी। कुछ लोग सो गये थे। बुनी बैठी थी। माँ कहने लगी– ''खुकुनी, अभय उस दिन कह रहा था कि माँ स्वप्न देखकर यह सब कहती है क्या?''

बात यह है कि उस दिन माँ बैजनाथ में जिस घटना को सुना चुकी हैं, उसे सुनने के बाद अभय ने कहा था-''माँ शायद सपना देखती रही वर्ना इन सब स्थानों पर हम लोग गये थे, यह सब इन्होंने क्या देखा? हम लोग भला कहीं ऐसे स्थानों पर जा सकते हैं?''

माँ ने सिलसिला जारी रखते हुए आगे कहा-''इस वक्त तुझसे बातें कर रही हूँ, पर देख रही हूँ कि उत्तरकाशी की भाँति एक स्थान पर गंगा में एक पत्थर है। पत्थर के चारों ओर पानी है। उस पत्थर पर कई साधु बैठे साधना करते-करते बच्चों की तरह भावापन्न हो गये हैं। यही वजह है कि वे सात-आठ वर्ष के बच्चों की तरह दिखाई दे रहे हैं। यह शरीर भी वहीं खड़ा है। ठीक जिस तरह तुम लोगों के सामने है, उसी तरह वहाँ प्रकट रूप में है।''

मैंने पूछा-''माँ, कितने साधु हैं?''

गिन-गिनकर जैसे कहा जाता है, उसी तरह माँ बोली-''एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ। कुल नौ साधु हैं।'' आगे फिर कहने लगी-''और भी एक साधु को देख रही हूँ जो गंगोत्री के मार्ग पर है। इन्हें बाहरी भोजन की जरूरत नहीं है। उनके निकट भी यह शरीर प्रकट हो गया है, कोई भी पार्थक्य नहीं है। तुम सब सोच रही हो कि यह शरीर तो यहाँ

है। लेकिन वहाँ भी इसी तरह है। अगर यह स्वप्न है तो सब कुछ स्वप्न है। तुम लोग जो मेरे पास हो, यह भी स्वप्न है।''

5 **कार्तिक, रविवार–** आज सवेरे सुकेत के नरसिंह गण की चर्चा चल गई। माँ की बातों से पता चला कि गणों में भी पार्थक्य है। जैसे अच्छे-बुरे आदमी होते हैं, उसी प्रकार अच्छे-बुरे गण भी होते हैं। साधुसिंह पंजाबी से माँ कहने लगी–''जैसे पंजाबी, फिर बंगाली दोनों ही मानव हैं, लेकिन तुममें इस स्थान का संस्कार है, इसलिए तुम्हारा शरीर इस देश में प्रकट हुआ है।''

आज गुरुद्वारा अर्थात् सिखों का **स्वर्ण–मन्दिर** देखने गयी। मन्दिर अत्यन्त सुन्दर है। यहाँ हर वक्त कीर्तन होता रहता है। सिर्फ रात 12 से 3 बजे तक बन्द रहता है। हलुए का प्रसाद और माला दर्शनार्थियों को भेंट में दी जाती हैं। ऊपर एक बृहद् ग्रन्थ है जिसका पाठ अक्सर होता रहता है। अर्थात् खास–खास तिथि पर या किसी की मंगल कामना के अवसर पर पाठ होता है। माँ और हम लोग कुछ देर तक बैठकर पाठ सुनते रहे।

माँ हँसती हुई बोली–''मैं जहाँ–तहाँ बराबर चक्कर काटती हूँ, इस बात की शिकायत तुम सब करते हो। लेकिन क्या नुकसान होता है। सप्तमी में बैजनाथ दर्शन, अष्टमी में ज्वालामुखी दर्शन, नवमी में काँगड़ा मन्दिर दर्शन (काँगड़ा पीठ स्थान है), दशमी में गुरुद्वारा दर्शन कर चुके। फिर भी मुझे डाँटते हो।''

माँ की बातें सुनकर सभी लोग हँस पड़े। माँ भी हँसती रही।

श्री श्री माँ बरेली में

शाम को 7 बजे वाली गाड़ी से माँ अलमोड़ा की ओर चल पड़ी। रात 10 बजे बरेली पहुँच गयी।

6 **कार्तिक, सोमवार–** इस बार मिस्टर दीक्षित ने माँ को बगीचे के एक तम्बू में ठहराया। बरेली में ठहरने की योजना नहीं थी, लेकिन मिसेज दीक्षित और अन्य भक्तों के आग्रह के कारण बरेली में माँ उतर गई।

माँ की आकर्षणी–शक्ति के बारे में एक घटना लिख रही हूँ। पंजाबी भक्त साधुसिंहजी जो कि बैजनाथ में आकर हमारे दल में शामिल हो गये थे, इनका कहना है–''मैं एक बात पर बराबर गौर करता आ रहा हूँ कि माँ

अपनी ओर बराबर आकर्षण करती रहती हैं, अन्यत्र जाने नहीं देती। किसी भी विषय की बात भूल जाने में आती है। मानो माँ चारों ओर से खींचकर अपनी ओर बुला लेती हैं। सबसे बड़ी बात तो यह है कि सभी का इष्ट माँ में दिखाई देता है। इसका प्रमाण मैं पा चुका हूँ।''

मिसेज दीक्षित माँ से कह रही है-''माँ, आपने एक बार कहा था कि अगर बर्तन की सफाई अधिक दिनों तक न की जाये तो उसकी गन्दगी छुड़ाने में मुश्किल होती है, इसलिए मेरा कहना यह है कि अगर आप शीघ्र दर्शन न देंगी तो गन्दगी कैसे दूर होगी? इससे हमारी सफाई हो जाती है। इससे आपकी ही बदनामी होगी कि हमारा कुछ नहीं हुआ।''

इस बात का समर्थन सभी लोगों को आनन्द से करते देख माँ हँस पड़ी। बोली-''ठीक है। बर्तन हमेशा माँजती रहो। मुझे कष्ट मत दो। मुझे मत रुलाओ।''

मिसेज दीक्षित ने कहा-''आप भी हमें न रुलाएँ।''

माँ हँस पड़ी। मैं हँसती हुई बोली-''अब माँ शायद यह कहेगी कि जो निन्दा करता है, वह भी मैं ही हूँ। जिसकी निन्दा करोगी, वह भी मैं ही हूँ और निन्दा भी मैं हूँ।''

मेरी इस बात पर सभी हँस पड़े। एक बालक ने पूछा-''क्या हमारी उन्नति की आशा नहीं है?''

माँ ने कहा-''अधिक आशा नहीं करनी चाहिए। उनकी चिन्ता करो।''

बालक ने कहा-''एक तो मेरे पास काफी काम है। इसके ऊपर मुझे आपकी चिन्ता सताती है। फिर दूसरों की चिन्ता कहाँ से करूँ?''

माँ हँसती हुई बोली-''तुम अपनी चिन्ता तो कर सकते हो। सभी लोग अपनी-अपनी चिन्ता करें।''

मिसेज अम्बर प्रसाद आयी हैं। ये अधिकतर पूजा-पाठ करती हैं। काफी लोग इन्हें श्रद्धा करते हैं। ये कह रही हैं-''मैंने सपने में देखा है कि माँ मुझसे कह रही हैं-'मेरा भोजन मैं स्वयं ही बनाऊँगी।' इसके बाद पुनः बोली-'तुम लोग भगवानजी को ले आओ, मैं पूजा करूँगी।' और जब मैं भगवानजी को लाने गयी तब नहीं पा सकी। एक व्यक्ति ने कहा-'मेरे ठाकुरजी को ले जाओ। माँ इसकी पूजा करेंगी।' मैं उनकी देवी को उठा

लायी तो माँ बोली–'मैं देवी–पूजा नहीं करूँगी। देवता ले आओ।' वापस जाकर देवता ले आयी। माँ ने उस मूर्ति को जलती हुई आग में डाल दिया। मैं तुरन्त उसे उठाकर साफ करने के पश्चात् बोली–'मैं पूजा करूँगी।' अब सवाल यह है कि माँ ने उस देवता को आग में क्यों डाल दिया और इसका क्या अर्थ है?''

चूँकि मुझसे यह प्रश्न किया गया, इसलिए मैंने कहा–''इसका जवाब माँ देंगी, उन्हीं से पूछिये। मेरे विचार से माँ हमेशा कहती हैं कि एक के अलावा दूसरा कोई नहीं है। माँ यह भी कहा करती हैं कि मैं अपने से ही खाना खाती हूँ। और यह भी कहती हैं कि मैं अपना भोजन स्वयं बनाती हूँ।''

''इसके बाद देवी का अर्थ प्रकृति से लगाया जा सकता है, प्रकृति की पूजा नहीं करूँगी। पुरुष क्या है, परम पुरुष, अर्थात् क्या? आत्मा। उसकी पूजा ज्ञानी लोग करते हैं। इस दृष्टि से कह सकती हैं–''ठाकुर की पूजा करूँगी। इसके बाद हुआ क्या? उस ठाकुर को आग में डाला गया अर्थात् ज्ञानाग्नि में सब भस्मसात् किया गया। फिर आप में पूजा–संस्कार है, इसलिए आपने उस मूर्ति को तुरन्त निकाल लिया। ज्ञानाग्नि में सब भस्मसात् नहीं कर सकी।''

माँ रह–रहकर हँसती हुई मेरी बातों का समर्थन करती रही।

एक और महिला मिसेज द्वारकाप्रसाद कह रही हैं–''माँ मुझे दर्शन देती हैं और मंत्रादि ठीक करने को कहती हैं। पहले आधी दे चुकी थी, बाद में संपूर्ण।'' यह सब आप सपने में पा चुकी हैं।

प्रोफेसर दासगुप्त ने पूछा–''माँ जिसमें कुछ भी बुद्धि नहीं है, उसका उपाय क्या है?''

माँ ने कहा–''उसकी ओर 'माँ' का विशेष ध्यान रहता है।''

हम लोग अलमोड़ा की ओर रवाना हो गये। स्टेशन तक पहुँचाने के लिये काफी लोग आये हैं। माँ मिसेज दीक्षित से कहने लगी–''अब तुम लोग वापस चली जाओ। काफी रात हो गयी है। इस वक्त एक बज रहा है।''

मिसेज दीक्षित जरा अभिमान और दर्द भरे स्वर में बोली–''माँ, हमेशा हम लोगों को दूर भगा देना चाहती हैं। यही वजह है कि मैं एक किनारे मुँह छिपाये बैठी हूँ।''

उनकी आँखें छलछला आयी। आप काफी बुद्धिमती हैं, इनकी आँखों में आँसू कम देखने में आया है। इनकी बातें सुनकर माँ हँसती हुई, उनकी गोद में सो गयी। वहाँ से उठकर माँ सभी की गोद में थोड़ी देर के लिये सिर रखने लगी। सभी महिलाएँ माँ के सिर को कलेजे पर लगाने लगी। कितना आनन्द आ रहा था, उसका वर्णन मैं क्या करूँ? रात एक बजे गाड़ी चल पड़ी।

श्री श्री माँ अलमोड़ा में

8 कार्तिक, मंगलवार– आज सवेरे काठगोदाम पहुँची। यहाँ से मोटर द्वारा 80 मील सफर करना है। लगभग 5 घण्टा लगेगा। एक बजे के लगभग हम लोग अलमोड़ा पहुँच गये। हरिराम जोशी के भाई गिरिजा बाबू और उनके साथियों ने **नन्दा देवी** के मन्दिर में माँ के ठहरने के लिये तम्बू गड़वाया था। हम लोगों ने वहीं आश्रय लिया। रात को माँ की हालत काफी खराब हो गयी। हाथ-पैर ठण्डे और नाड़ी की गति काफी खराब हो गयी। वह देखकर हम लोग डर गये। यहाँ सर्दी भी अधिक है।

9 कार्तिक, बुधवार– आज भी माँ की हालत खराब है। गब्यांग में देवीजी ने एक आश्रम बनवाया है, वहीं से वे माँ के साथ आयी हैं। वहाँ माँ जाने वाली थी। लेकिन माँ की हालत खराब हो जाने के कारण लोग आपत्ति प्रकट करने लगे।

माँ कहने लगी–''मेरे लिये डाण्डी में और इस तम्बू में पड़े रहना, दोनों ही बराबर हैं।''

फिर भी कोई जाने देने के लिये राजी नहीं हुआ। माँ ने कहा–''मेरा खयाल नहीं हो रहा है। अगर खयाल होता तो किसी की आपत्ति कुछ न कर पाती। तुम लोगों को जो कुछ कहना है, कहो। जो कुछ होना है, अपने आप हो जाएगा।''

माँ इस हालत में क्या करेंगी, इस बात पर हम सब चिन्तित रहे, क्योंकि शरीर की हालत कभी-कभी ऐसी हो जाती है कि कब क्या हो जाए, कहा नहीं जा सकता। हो सकता है कि दो-एक घण्टे के भीतर अद्भुत परिवर्तन हो जाए। उठकर बातें करना शुरू कर दें। उस वक्त इन्हें देखकर कौन कह सकता है कि अभी थोड़ी देर पहले इनकी हालत काफी खराब थी।

हालत इतनी खराब हो जाती है कि बातें लटपटाने लगती हैं। सिर बिल्कुल खाली-खाली सा अनुभव करती हैं। इस हालत में भी जो कुछ करना है, करती जाती हैं। इन्हें बाधा देने का साहस किसी में नहीं है।

माँ आयी हैं यह जानकर अनेक लोग दर्शन करने आ रहे हैं। दोपहर को माँ विश्राम करेंगी। आहार तो नाममात्र करती हैं। इतने में औरतों का एक दल माँ के पास आकर बैठ गया। इनमें दो-एक विनोदी स्वभाव की थी। सभी मिलकर गाने लगी। माँ भी ताली बजा-बजाकर उनका साथ देने लगी। वे लोग जिस तरह सिर और तन हिलाती हुई गा रही थी, ठीक उसी तरह माँ भी कर रही थी। एक महिला अत्यधिक आनन्द से विभोर होकर नाचती हुई गाने लगी। गीत का भाव यों था-''सुदामाजी श्रीकृष्ण के द्वार पर फटे वस्त्र पहनकर गये हैं और प्रभु दौड़कर उनसे गले मिले। रुक्मिणी पूछ रही है-यह कौन है? प्रभु कह रहे हैं-यह मेरे बाल-बन्धु हैं।''

तम्बू के भीतर आनन्द का स्रोत बह रहा था। माँ को विश्राम करने के लिये कोई वहाँ से उन्हें उठा नहीं पा रहा था। इधर कोई माँ को छोड़ना नहीं चाहता था। पहाड़ी औरतों के हाव-भाव से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो माँ उनकी हैं, अत्यन्त परिचित, अपना प्रियजन। बड़ी मुश्किल से माँ को वहाँ से उठाकर विश्राम करने के लिये ले जाने का प्रयत्न करने लगी, पर माँ लगी हठ करने। दरअसल माँ में सोने का भाव नहीं था। लगभग साढ़े चार बजे काफी समझाने-बुझाने पर वे सोने गयी।

माँ शाम के पहले ही सोकर उठ गयी। मन्दिर में कीर्तन हुआ। इसके बाद वे तम्बू में वापस आ गयी। कुछ लोग माँ के साथ-साथ तम्बू में आये। आगन्तुकों का परिचय हरिराम बताने लगा-एक साहब वकील हैं, दूसरे मजिस्ट्रेट।

यह सुनकर माँ हँसती हुई बोली-''उस ओर का मजिस्ट्रेट होना चाहिए।''

यह सब बातें हिन्दी में हो रही थी। पुनः माँ बोली-''उधर पेंशन भी है।''

उक्त सज्जन बोले-''उधर की ही पेंशन खा रहा हूँ माँ।''

कुछ देर बाद माँ ने पूछा-''अच्छा, पिताजी! आपने अभी कहा कि

उधर की ही पेंशन खा रहा हूँ। उधर का रूप कैसा है?''

उक्त सज्जन सिर झुकाते हुए बोले–''यह तो नहीं जानता माँ। यही जानने के लिये आपके पास आया हूँ। मुझे इसका ज्ञान नहीं है।''

माँ ने कहा–''जानने के लिये प्रयत्न करना चाहिए। जिस प्रकार खाने की सामग्री कम पड़ने पर खोज-खोजकर खा लेते हो, ठीक उसी प्रकार खोजते रहोगे तो पा जाओगे।''

सज्जन बोले–''खोजने के लिये किन-किन सामग्रियों की जरूरत होती है? वे कौनसी सामग्रियाँ हैं? उसकी व्यवस्था क्या है। कृपया यह भी बता दीजिये।''

माँ हँसती हुई बोली–''अच्छा, मैं जो कुछ बताऊँगी, उसे मानोगे?''

सज्जन–''जरूर मानूँगा, लेकिन कर सकूँगा या नहीं, यह नहीं जानता।''

एक अन्य व्यक्ति ने कहा–''आप यह बताइये कि हमें क्या करना होगा?''

माँ हँसकर बोली–''बच्ची की मर्जी को याद रखोगे? अच्छा, यह बताओ कि 24 घण्टे में नित्य कितना समय दे सकोगे?''

किसी ने डेढ़ घण्टा तो किसी ने दो घण्टा बताया।

माँ ने कहा–''ठीक है, इतना समय ही देना।''

प्रथम व्यक्ति ने कहा–''काम में मन नहीं लगता।''

माँ ने कहा–''जिस प्रकार आग को हिलाने-डुलाने से उसकी ताप लगती है, ठीक उसी प्रकार इन सब चीजों को हिलाने-डुलाने से काम हो जाएगा। तुम सब करते रहो।''

एक सज्जन बोले–''माँ, जब भूख ही नहीं है तब रसोई बनाकर क्या करूँगा?''

माँ–''अब जाकर सही बात मुँह से निकली। ठीक है, जब भूख नहीं है तब दवा पीओ और सुपथ्य खाओ।''

सज्जन–''कैसी दवा?''

माँ–''दवा है उनका नाम। कुछ देर तक स्थिर भाव से बैठकर उनका

नाम लेते रहो। पथ्य का अर्थ है–संयम व्रत। दवा पथ्य करते रहने पर धीरे-धीरे भूख बढ़ जाएगी।''

सज्जन–''सुपथ्य का क्या अर्थ है माँ?''

माँ–''संयम व्रत करो।''

इसके बाद संयम व्रत क्या है, इसे स्पष्ट रूप से माँ समझाने लगी। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार और स्थानों पर कह चुकी हैं। उक्त सज्जन ने कहा–''माँ, जिस दिन यह निश्चय करता हूँ कि आज झूठ नहीं बोलूँगा, उस दिन ही अधिक झूठ बोलना पड़ता है।''

माँ–''अच्छा, एक काम करो। जिस दिन संयम व्रत करो, उस दिन इस बात पर गौर करो कि आज कितनी बार झूठ बोलना पड़ा। इसे डायरी में लिखकर रख दो। इसके बाद यह प्रयत्न करना कि आगामी बार इससे अधिक संख्या न हो। इस तरह करते-करते अभ्यास हो जाएगा।''

इसके बाद कीर्तन का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। कीर्तन समाप्त होने के बाद एक सज्जन ने पूछा–''क्यों माँ, कर्म को निष्काम और सकाम कहा गया है, मुक्ति भी कामना है, दर्शन की इच्छा भी कामना है, क्या इसे निष्काम कर्म कहा जा सकता है?''

माँ ने कहा–''**भगवान् के लिये जो किया जाता है, उसे निष्काम कर्म कहा जा सकता है।** विषय कर्म ही काम है और भगवत कर्म है–प्रेम।''

आगे ज्ञानयोग और भक्ति के सम्बन्ध में चर्चा करती हुई माँ बोली–''असल में ज्ञान-योग और भक्ति-योग में कोई प्रभेद नहीं है। कर्म, भक्ति और ज्ञान सब एक ही है। देखो, जैसे 'मैं स्वरूप देखूँगा' यह हुआ ज्ञान, भक्ति हुआ स्वरूप देखने का आकर्षण, इसके बाद यह कि साबुन लगाओ और ज्ञान-गंगा में धो डालो, यह सब है कर्म। सब कुछ एक में अन्तर्हित है।''

माँ काफी अस्वस्थ हो गयी हैं, इसलिए यह निश्चय किया जा रहा है कि अलमोड़ा से नीचे की ओर चला जाए। इसी बीच हर तरह की बातें होती रही। मसलन अमुक पास होगा या नहीं? अमुक की बीमारी दूर होगी या नहीं? इस तरह के प्रश्न पूछे जाते हैं और कभी-कभी यह भी देखने में आता है कि जवाब में जो कहा जाता है, वह ठीक नहीं उतरता। इसका

कारण यह है कि कभी-कभी देखा गया है कि श्वासों के साथ स्पष्ट उत्तर आ रहा है। जैसे पूछा गया-''पास होऊँगा कि नहीं?'' अगर इस प्रश्नोत्तर में अपनी इच्छा किंचित् मात्र रहे तब बाहर होगा-''होगा।'' 'ना' शब्द नहीं निकला, बन्द हो गया। इस अवस्था की प्रेरणा में हर समय बातें ठीक-ठीक नहीं होती। अगर इच्छाशक्ति जरा भी न रहे तो पूर्ण रूप से शब्द बाहर निकल जाते हैं। बगैर किसी प्रकार की बाधा पाये जो कुछ बाहर निकलता है, वे सब सच हो जाते हैं।

10 **कार्तिक, शुक्रवार-** आज दोपहर को लेटे-लेटे ही माँ कह रही हैं-''आज एक डेड बॉडी (मृत शरीर) देखा जिसे एक शिशु दवा पिला रहा है। उसका भी आखिरी समय है। दवा पिलाते समय सभी मुँह बनाते हुए कह रहे हैं-''अब किसे दवा दी जाए'-अर्थात् आखिरी वक्त है।''

आगे माँ कहने लगी-''कल शाम को देख रही थी एक परमसुन्दरी, त्रिनयना मूर्ति, देवी मूर्ति जैसी। कुछ देर बाद देखने लगी कि खल-खल कर रहा है श्यामल वर्ण की एक शिशु मूर्ति, चोटी है।''

मैंने पूछा-''कौन थे ये लोग?''

माँ ने कहा-''यह बता नहीं पा रही हूँ।''

मैंने पूछा-''तुम्हारे साथ कोई बातचीत हुई? वह क्यों आया था?''

माँ-''वाह रे, तुम सब जैसे आती हो, उसी तरह वह भी आया था।'' इसके आगे वे कुछ नहीं बतायी।

रात को माँ सोई हुई थी और हम लोग उनके पास बैठे हुए थे। माँ कह रही हैं-''देख रही हूँ कि एक साधक पानी के भीतर डूबकर साधना कर रहा है। मेरे साथ एक छोटी लड़की है। नंगी लड़की को मैं अपने साथ रखना चाह रही हूँ, पर वह लड़की लपककर साधु को छूना चाहती है। यही है विघ्नकारिणी। सामने जाकर साधक की इष्ट मूर्ति में प्रकट हो जाएगी। न जाने मुझे क्या हुआ कि साधु को छूने के पहले ही उसे अपनी ओर मैंने खींच लिया।''

अभय ने कहा-''साधुजी भाग्यवान रहे।''

माँ ने कहा-''हाँ, अच्छे साधक हैं।''

आगे माँ कहने लगी–''एक बार भोलानाथजी के कुल परम्परा की काली पूजा विद्याकूट में हुई थी। पूजा समाप्त हो गयी थी। उन दिनों माखन छः–सात वर्ष का था। इस शरीर की माँ उसे गोद में लेकर पूजा घर में न जाने किस काम से गयी। वहाँ से लौटकर आने के बाद माखन कहने लगा जैसे छोटे बच्चे कहा करते हैं–'काली माता इत्ता बड़ा जीभ बाहर निकाली थी, अब छोटी–सी बना ली।' माँ यह बात सुनकर कहीं बच्चा डर न जाये, इसलिए उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। मनुष्य का मन कितना दुर्बल होता है।'' इतना कहने के बाद माँ हँसने लगी।

मैंने पूछा–''क्या सचमुच माखन ने वह रूप देखा था?''

माँ–''बच्चा ठहरा। बच्चे भला कहीं झूठ बोल सकते हैं? सचमुच उसने वही रूप देखा था।''

11 कार्तिक, शनिवार– आगामी कल विन्ध्याचल रवाना होने की बातचीत हो रही है। यहाँ अत्यधिक सर्दी के कारण माँ का शरीर अस्वस्थ होता जा रहा है। वे कुछ भी हजम नहीं कर पा रही हैं। नाड़ी की गति भी काफी खराब है।

माँ बरेली में

12 कार्तिक, रविवार– आज सवेरे 9 बजे मोटर से रवाना होकर हम लोग 80 मील दूर हलद्वानी में आकर, रेल पर सवार हुए। रात साढ़े ग्यारह बजे बरेली पहुँचे। यहाँ भक्तों ने अनुनय–विनय करके हमें रोक लिया। मिसेज दीक्षित के मकान में अभी तक तम्बू उसी तरह गड़ा है। उनके आकुल आग्रह के कारण माँ फिर वहीं चली आयी।

माँ का शरीर काफी खराब है। ये लोग कुछ दिन अपने यहाँ ठहराने के लिये विशेष आग्रह कर रहे हैं। माँ का जब खयाल होता है तब वे किसी की बाधा नहीं मानती, यह सच है। लेकिन खयाल न होने पर वे अपना भार हमारी इच्छा पर कभी–कभी छोड़ देती हैं। यहाँ के भक्तों के अनुरोध पर माँ अभी कुछ नहीं बोली। रात को 12 बजे माँ सो गयी।

माँ को पाकर मिसेज दीक्षित को अपार प्रसन्नता हुई। बस पर आते वक्त माँ कह रही थी–''आज मनसा देवी आकर आलाप कर गयी।''

13 कार्तिक, सोमवार– आज अपराह्न में अनेक महिलाएँ आयी। इनमें से एक को बच्चे होते जरूर हैं, पर जीवित नहीं रहते। माँ के निकट वह खेद प्रकट रही है। माँ उसे माँ–माँ कहकर बुलाने लगी। इसके बाद उससे बोली– ''मैं तो तुम्हारी लड़की हूँ।''

लेकिन यह बात उसके मन लायक नहीं हुई। वह बोली–''आप तो माँ, देवी हैं।''

कुछ देर बाद जब प्रणाम करने के पश्चात् जाने लगी तब माँ ने कहा– ''दोनों वक्त भगवान् का नाम लेती रहो, बच्चा होने के लिये।''

वह महिला बड़े आग्रह के साथ बैठ गयी। बोली–''किस देवता का नाम और कितनी बार जपना होगा?''

माँ ने पूछा–''कौनसा देवता तुम्हें पसन्द है?''

वह–''सभी पसन्द हैं।''

माँ–''फिर भी कोई खास नाम है?''

वह–''कृष्ण।''

माँ–''तब यही नाम सुबह दो माला और शाम को एक माला जपना और हर वक्त इस नाम को मन में रखना। तभी सुन्दर–सुन्दर......'' इतना कहने के पश्चात् वे हाथ से मुद्रा बनाने लगी।

मैं निकट जाकर बोली–''सुन्दर क्या?''

माँ ने कहा–''बाल–गोपाल और क्या?''

महिला ने पूछा–''कितने दिनों तक करूँगी?''

माँ–''जब तक वे बालमूर्ति के रूप में दर्शन न दें।''

इतना कहकर माँ झट से बाहर चली गयी और जहाँ बैठने का स्थान है, वहीं बैठ गयी। अक्सर ऐसी घटना नहीं होती।

इसी बीच में माँ से मैंने पूछा–''माँ, साँप के रूप में आत्मानन्द नामक एक साधु तुमसे मिलने आया था, बता चुकी हो। जब कभी साँप देखती हो तभी क्या इसी रूप में साधुजी आते हैं या मनसा देवी या और कोई आता है?''

माँ ने कहा–"हाँ, मनसा देवी सर्प रूप में आती हैं।"

शाम के समय एक पहाड़ी लड़की माँ को नृत्य दिखाने आयी। काफी लोग माँ के दर्शन करने आये हैं। किसी ने कहा–"माँ, तुम्हारी इन दोनों आँखों में न जाने क्या है कि जब इन आँखों की याद आती है तब घर पर रहने की इच्छा नहीं होती।"

इसी तरह भिन्न–भिन्न व्यक्ति तरह–तरह के भावों की बातें कर रहे हैं। माँ हँसकर बोली–'क्यों? क्या तुम लोगों की तरह मेरा रक्त–माँस का शरीर नहीं है? और क्या मेरी आँखें परवल की फाँकी की तरह हैं जो ऐसी बातें कर रहे हो? जरा आईना ले आओ।"

मैं आईना ले आकर दिखाने लगी। अपने हाथ में आईना लेकर वे बच्चों की भाँति मुँह घुमा–फिराकर देखने के बाद बोली–"कहाँ? तुम लोगों की उपमा के अनुसार मेरी आँखें परवल की फाँकी जैसी कहाँ हैं?"

यह बात सुनते ही उपस्थित सभी लोग हँस पड़े। इसी तरह की भावपूर्ण बातों में लोग आनन्दित हो रहे थे।

रात को गर्ब्यांग की एक लड़की नृत्य दिखाने लगी। दो–तीन लड़कियाँ माँ की आरती और पूजा करने की मुद्रा में नृत्य–प्रदर्शन करने लगी। यह सब देखने के बाद माँ कहने लगी–"यह सब दृश्य मैंने कभी नहीं देखा। लेकिन यह सब कला विद्या, न जाने क्या–क्या कहती हो, जब पूजादि क्रियाएँ इस शरीर में होती रही तब इस शरीर में यह सब हो गया था।"

मैं गौर से देखती रही कि जिस प्रकार नृत्य की मुद्रा में लड़की ने माँ को नमस्कार किया, ऐसी क्रिया माँ के शरीर में होते देख चुकी हूँ।

हम लोगों के विशेष अनुरोध पर मिसेज दीक्षित मीरा के भाव पर नृत्य करने लगी। मानो माँ ही उनके प्राणों के देवता हैं। वे मीरा के भाव पर नृत्य करती गयी। मुझे यह भाव बहुत पसन्द आया। साथ–ही–साथ वे गाने लगी। नृत्य उच्च कोटि का था। मिसेज दीक्षित का चेहरा भी लावण्ययुक्त है, इसलिए अच्छी लगती रही।

नृत्य का भाव चल रहा था। रात को अभय गले में चन्द्रमाल्य और पैरों में घुंघरू पहनकर माँ के निकट अपने भाव में नृत्य करने लगा। आज के पहले कभी उसने नृत्य नहीं किया था, नाचना जानता भी नहीं, पर आज

लड़कियों को नाचते देख न जाने क्यों उसे नाचने की इच्छा हो गयी। वह जिस भाव से नृत्य कर रहा था, उससे मुझे प्रसन्नता हुई। सभी लोगों को आनन्द आया। नृत्य के पश्चात् माँ के पास आकर उसने प्रणाम किया।

माँ अस्वस्थ हैं, इसलिए ज्यादा बातचीत नहीं करती, फिर भी माँ का उपदेश सुनने के लिये तम्बू में भीड़ एकत्रित है। प्रश्न पूछे जा रहे हैं। लोगों के अनुरोध पर माँ पहले की बातें सुनाने लगी। लोग मंत्रमुग्ध भाव से सुनते रहे। माँ की अस्वस्थता पर विचार करते हुए उन्हें आराम करने के लिये भेजने को कहा। इधर रात के 12 बज चुके हैं, किसी को भी इस बात का खयाल नहीं है। बातें करते-करते माँ की दुर्बल आकृति उज्ज्वल होकर झलमला रही थी।

यह दृश्य देखकर मैं लोगों से कहने लगी-''आप लोग देख रहे हैं न, माँ कितनी अस्वस्थ हैं। क्षण में रोगी और क्षण भर बाद बदल जाती हैं।

माँ यह सुनकर बोली-''अरे! तो क्या मेरी बीमारी नकली है? और तुम सब भी देखो, खुकुनी मुझे पानी मिलाकर जरा-सा दूध (आजकल माँ यही पी रही हैं) पिलायेगी और रात 12 बजे तक बक-बक करवायेगी। तिस पर शिकायत करती है कि मैं बीमार नहीं हूँ।''

यह बात सुनकर सभी लोग हँस पड़े। माँ को कोई बंगला में बातचीत करने नहीं दे रहा है। सभी स्थानीय निवासी हैं। हास्य और आनन्द की अपूर्व रसधारा प्रवाहित हो रही है।

माँ ने कहा-''तुम सब इस विचित्र साधु के पास क्यों आती हो? तुम लोगों का पागलपन देखकर लोग यह सोच सकते हैं कि ये लोग नशा पीकर आये हैं, नशेबाज हैं। अगर बाहरी लोग ऐसा सोचें तो कोई आश्चर्य नहीं।'' इसके बाद तम्बू में बिखरे सामानों को दिखाती हुई बोली-''साधुओं के पास कहीं ऐसी सामग्री रहती है? कितना सामान है। तबला, डुगडुगी, वह भी एक जोड़ा नहीं, दो-दो जोड़ा है। हारमोनियम भी एक नहीं, दो हैं। आराम से खाट पर बैठी है।'' इतना कहकर वे हँसने लगी।

मैंने कहा-''शायद किसी के मन में इस तरह का प्रश्न उत्पन्न हुआ है, इसलिए माँ ऐसा कह रही हैं।''

माँ तुरन्त बोली-''वाह! मेरे मुँह से तो निकल रहा है।'' इतना कहने

के बाद उन्होंने अपना मुँह बन्द कर लिया ताकि कहीं किसी को दोषी न बना दूँ।

एक सज्जन बोले–"कोई क्यों ऐसा सोचेगा, भला?"

माँ–"जो जितना समझेगा, वह उतना ही कहेगा न? इसमें उसकी गलती कहाँ है?"

इन बातों के पश्चात् माँ का शाहबाग में लाल मिर्च की बुकनी खाने की चर्चा चल गई। माँ ने कहा–"प्राणगोपाल बाबू ने यह सुनकर लिखा था कि इस तरह गुरुमार विद्या कहाँ से सीख ली? उत्तर दिया गया–गुरु के निकट ही गुरुमार विद्या सीखी थी।"

रात को माँ लोगों से कहने लगी–"आज दोपहर को जब मैं आराम कर रही थी तब देख रही थी कि छोटे-छोटे बच्चे, जो काफी सुन्दर नहीं थे, पर उनकी मूर्ति उज्ज्वल थी, लंगोट पहने थे, काफी संख्या में आये थे। तुम लोग दोपहर को अकेली छोड़कर चले गये तब देखा–ये सब आये हैं।"

बच्चे कितने छोटे-छोटे थे और वे यहाँ आकर क्या-क्या कर रहे थे, यह सब वे बताने लगी। जब माँ यह सब बातें करती हैं तब वे दुर्बलता अनुभव नहीं करती। काफी उज्ज्वल मूर्ति-सी लगती हैं जबकि विगत आठ-दस दिन से उनकी हालत काफी खराब है। कुछ खाती-पीती नहीं हैं। फलों का थोड़ा रस पीने पर पेट में दर्द उत्पन्न होता है। अलमोड़ा में एक कविराज ने नाड़ी देखने के बाद बताया–"शरीर में अग्नि बिल्कुल नहीं है। माँ कैसे चल रही हैं? सिर्फ वायु से भर गयी हैं।" लेकिन इस स्थिति में भी वे काफी आनन्दित हैं।

माँ की जबानी इस तरह के शिशु और साधुओं की बातें सुनकर अभय ने पूछा–"माँ, देहरादून में आपके निकट जो तीन साधु आये थे, उनके बारे में कुछ बताओ।"

माँ–"उन दिनों मुझे कमरे में बन्द कर दिया गया था। मैं देख रही थी (स्मरण रहे कि सभी सूक्ष्म शरीरी थे) कि तीन साधु जिनका रंग काफी लाल था, अत्यन्त सौम्य मूर्ति थी। एक इस स्थान पर (सिर के पास) दूसरा इस जगह (शरीर के मध्य स्थान के निकट) तीसरा इस जगह (पैर के निकट) खड़े हैं। एक हाथ जोड़े अपने में विभोर है तो दूसरा आसन लगाये प्रणाम

मुद्रा में है, लेकिन आसन की ओर उसका ध्यान नहीं है। तीसरा न आसन लगाये है और न हाथ जोड़े। वह अपने भाव में विभोर है। हाथ जोड़ने या प्रणाम, बाहरी भाव का ज्ञान भी उसमें न था। एक तरह से कोई ज्ञान नहीं था, यह नहीं कहना चाहती, परन्तु साधारण भाव से परे था। बातचीत कुछ नहीं हुई। तीनों की उम्र बराबर थी।'' रात एक बजे हम सोने गये।

14 कार्तिक, मंगलवार– आज सवेरे काफी भीड़ आ गयी है। बातचीत हो रही है। कुछ देर बाद लोग माँ को 'रमेश भवन' में ले गये। आज यह निश्चय किया गया है कि दोपहर के वक्त कुमारी लड़कियाँ माँ के सामने पूजा के भाव में नृत्य करेंगी। यह पहले ही लिख चुकी हूँ कि इस दृष्टि से यहाँ की लड़कियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। दोपहर को माँ अपने बिछावन पर बैठ गयी। लड़कियों का नृत्य आरम्भ हुआ। कुमारी लड़कियाँ वासन्ती रंग की साड़ी पहनकर आयी हैं। प्रौढ़ महिलाएँ तबला, डुगडुगी और हारमोनियम लेकर बैठी हैं।

कुमारियों का एक दल वाद्य-यंत्र के ताल पर नृत्य करता हुआ बाहर से तम्बू के भीतर आया। इनमें किसी के हाथ में आरती का थाल, किसी के हाथ में फूलों की डलिया और किसी के हाथ में माला थी। वे नृत्य के ताल-ताल पर आयी और माँ के चरणों पर पुष्पांजलि देने लगी। कुछ लड़कियों ने आरती की। माँ की पूजा करने के बाद माँ के उद्देश्य से जिस गीत की रचना हुई थी, उसे वे सब गाती हुई नृत्य करने लगी। एक प्रकार से तम्बू के भीतर आनन्द का स्रोत प्रवाहित होने लगा। सभी के हृदय में एक अपूर्व भाव उत्पन्न हो गया था। लगभग दो बजे माँ आराम करने गयी।

अपराह्न में पुनः काफी लोग आये। एक अध्यक्षा स्कूल की छात्राओं को लेकर आयी थी। एक महिला ने कहा–''माँ, आप जगदम्बा हैं।''

यह बात सुनकर माँ इस तरह हँसी जैसे–''तुम सब यह क्या कह रही हो?'' प्रकट रूप से बोली–''माताजी, आपका क्या दिमाग खराब हो गया है? शायद इसीलिए आप ऐसा कह रही हैं। एक बात है, लोग कहते हैं कि जहाँ नारी तहाँ गौरी (महिलाओं की ओर इशारा करती हुई)। अगर इन सबके ऊपर तुम्हारी गौरी यानी जगदम्बा का भाव है तो यह अच्छी बात है। तब तो तुम्हारी आँखें खुल गयी हैं, कहा जा सकता है।''

उन्होंने पूछा–''आँखें कैसे खुलती हैं?''

माँ ने कहा–''देखो कभी-कभी कहा जाता है कि तुम्हारा घर कहाँ है? यह सब तो तुम्हारे श्वासों का घर है, श्वास से सम्बन्ध है। असली घर जब तक नहीं पहुँच सकोगी तब तक शान्ति नहीं मिलेगी। संसार दो को लेकर है, इसीलिए दुःखों का कारण है। दो है न? आना-जाना, गता-गति, इसीलिए दुःख होता है। इसीलिए कहा जाता है कि बीमारी को दूर करने के लिये डॉक्टर के पास जाओ। जैसे आँखें खराब होने पर डॉक्टर आँखों की जाँच कर चश्मा देता है और फिर ठीक से देखने लगती हो।''

मिसेज दीक्षित ने कहा–''कैसे वह चश्मा प्राप्त किया जा सकता है?''

माँ ने कहा–''सद्गुरु, सद्गुरु। हमेशा अच्छे व्यक्तियों का साथ नहीं होता। सद्भाव के साथ ही सत्संग होता है।''

बातचीत में शाम हो गयी। कीर्तन होने लगा। काफी लोग धीरे-धीरे चले गये। अभय आज माँ की पूजा करने लगा। सभी लोगों को आनन्द मिला।

मिसेज बनर्जी ने कहा–''माँ क्या करूँ, जरा बताइये। तुम्हें पाकर हर वक्त बकवास करने की इच्छा होती है।''

यह बात सुनकर उपस्थित सभी लोग हँस पड़े। दरअसल बात यह है कि इस हालत में माँ को छोड़कर जाना पड़ेगा, यह सोचकर कोई जाना नहीं चाह रहा है। मिसेज दीक्षित बार-बार अनुरोध कर रही हैं कि लोग भोजन करने के लिये चलें। लोगों को भोजन के लिये ले जाने में उन्हें परेशानी हो रही है।

पहाड़ी लड़की गंगोत्री कुछ बोली नहीं, माँ के चेहरे की ओर एकटक देखती हुई बैठी रही। वह भी भोजन करने जाना नहीं चाहती है। माँ यह सब देखकर हँस रही हैं और हम इस आकर्षण की परेशानी में तंग आ रहे हैं।

माँ विन्ध्याचल की ओर

15 कार्तिक, बुधवार– आज हम लोग विन्ध्याचल की ओर रवाना हुए। रास्ते में दिल्ली में ठहरने की योजना है, क्योंकि यहाँ के भक्त बड़े आकुल भाव से आह्वान कर रहे हैं।

16 कार्तिक, गुरुवार– माँ आज दिल्ली के आश्रम में पहुँची। सभी के अनुरोध की पूर्ति करने के बाद माँ शाम को विन्ध्याचल की ओर चल पड़ी।

17 कार्तिक, शुक्रवार– माँ आज विन्ध्याचल पहुँच गयी। माँ की हालत खराब है।

19 कार्तिक, रविवार– माँ अमृतसर में रात के वक्त जिस बात की चर्चा कर रही थी, आज पुन: उसकी चर्चा चल गई। बहुत-सी बातें और आलोचना भी हुई।

वह बात यह थी-माँ कह रही थी (उनकी आँखें बन्द थी)-''देख खुकुनी, अभय उस दिन कह रहा था कि मैं सपना देखती हूँ। इस वक्त क्या देख रही हूँ कि उत्तरकाशी की तरह एक जगह गंगा में एक पत्थर के चारों ओर पानी ही पानी है। उस पत्थर के ऊपर कई साधु साधना करते-करते पूर्ण रूप से शिशु बन गये हैं, इसलिए वे सात-आठ वर्ष के बच्चों की तरह दिखाई दे रहे हैं। (अपना शरीर दिखाती हुई) यह शरीर भी वहाँ है जैसे इस वक्त तुम लोगों के सामने मौजूद है, ठीक उसी प्रकार वहाँ भी प्रकट है।''

उपेन बाबू ने कहा-''माँ, सुना है कि उधर ही बालखिल्य ऋषियों का एक पहाड़ है।''

तभी मैंने माँ से पूछा-''माँ कितने साधु हैं वहाँ?''

माँ गिनती करती हुई बोली-''कुल नौ हैं।''

इसके बाद कहने लगी-''अब क्या देख रही हूँ, जानती है? देख रही हूँ कि गंगोत्री के मार्ग पर एक साधु है, उसे बाहरी आहार की जरूरत नहीं होती। उसके निकट भी यह शरीर उसी तरह प्रकट है जिस तरह यहाँ मौजूद है। तुम सब सोच रही हो कि तुम्हारे निकट हूँ। लेकिन उन सभी स्थानों पर भी ठीक-ठीक इसी रूप में प्रकट हूँ। अगर यह स्वप्न है तो कह सकते हो कि सब स्वप्न ही है।''

एक सज्जन ने पूछा-''योग, ज्ञान और भक्ति-साधन के बल पर आत्मा, ब्रह्म और भगवान् प्रकट होते हैं, क्या ये तीनों ही एक हैं?''

माँ ने कहा-''तीनों ही एक हैं।''

26 कार्तिक, रविवार– माँ विन्ध्याचल में ही ठहरी हुई हैं। अब पहले

की अपेक्षा स्वस्थ हैं। आज सवेरे आशुतोष कॉलेज के वाइस प्रिंसीपल श्रीयुत् कालीदास सेन आये हैं। हवा बदलने के लिये आप विन्ध्याचल आये हैं। आज के पहले वे दो–तीन बार माँ के पास आ चुके हैं। यहीं इनसे परिचय हुआ है।

आज आकर वे मुझसे बोले–''जब मैं पहले–पहल आया था तब माँ ऊपर के इस कमरे में लेटी हुई थी। मैंने देखा–माँ के आनन पर करोड़ों चन्द्रमा की ज्योति नाच रही है। मेरे पिताजी एक बार दस महाविद्या का एक चित्र लाये थे। मुझे स्मरण हो आया, मैं स्पष्ट रूप से देख रहा था–षोड़शी भुवनेश्वरी की मूर्ति। इतना साफ और स्पष्ट रूप से देखा कि उनका वर्णन क्या करूँ? उस वक्त यह स्मरण हो आया कि चरणों के दर्शन नहीं हुए। मैंने कुछ कहा नहीं था। माँ के साथ विशेष बातें भी नहीं हुई थी। कल माँ हमारी ओर घूमने गयी थी। वास्तव में वे घूमने नहीं, मुझे चरणों का दर्शन देने गयी थी। मैंने देखा–''चरणों में करोड़ों कमल हैं। मैं यह देखकर कृतार्थ हो गया।''

तभी माँ बोल उठी–''पिताजी, लड़की के बारे में ऐसा नहीं कहते।''

वे हाथ जोड़ते हुए बोले–''मैंने आपको पहचान लिया है। अगर आप शरारत करती हैं तो क्या हुआ?''

माँ खिलखिलाकर हँस पड़ी। बोली–''पिताजी, अपनी लड़की को भला नहीं पहचानोगे?''

वे हँसते हुए बोले–''इसे आप चाहे जितनी गालियाँ दें, पर मैंने आपको पहचान लिया है।''

माँ–''पिता के स्वभाव ने ही लड़की को खोज लिया है।''

बात–बात में माँ कहने लगी–''अभय ने एक बार पूछा था–भोलानाथजी को आपने दीक्षा दी थी, आप तो किसी को दीक्षा नहीं देती। यह कैसे हुआ, जानते हो? कैसे साधना की क्रियाएँ कुछ समय के लिये इस शरीर पर हो गयी हैं, वह घटना भी उसी तरह हो गयी थी।''

27 कार्तिक, सोमवार– आज दोपहर को शंकरानन्द स्वामीजी से बातें होने लगी। माँ कह रही हैं–''देखो, सब कुछ भोग है। यह फूल जो देखने में अच्छा लगता है, यह भी भोग है, पेड़ देखने में अच्छा लगता है, बच्चे को आलिंगन करना अच्छा लगता है। यह सब भोग है; यह भी नहीं

चाहती। यह शरीर कैसा था, शरीर की माँ के पास बचपन में सोती रही, लेकिन कभी उन्हें आलिंगन करना या पकड़कर सोयी नहीं। इन दिनों जिनकी जो इच्छा हो रही है, इस शरीर को लेकर कर रहा है या अपने भाव में शरीर देकर, कितना कुछ हो रहा है, लेकिन इसके पूर्व यह सब नहीं था।''

माँ आगे पुनः कहने लगी-''देखिये पिताजी, पहले जो योग क्रिया हो गयी हैं, उस वक्त कितना काण्ड हुआ था, उसे क्या बताऊँ? तुम सब अंगुलियों से मुद्रादि बनाते हो, इसी तरह आशीर्वाद आदि लेते समय जिस तरह संहार मुद्रा बनायी जाती है, इस तरह (मुद्रा बनाकर दिखाती हुई) पैरों में ठीक उसी तरह हो जाता था। अंगुलियाँ पहले तन जाती, फिर धीरे-धीरे जिस भाव में मुद्रा बनती है, हो जाती थी।

28 कार्तिक, मंगलवार- आज सवेरे पुनः शंकरानन्द स्वामीजी से बातें होने लगी। बातचीत में गायन के बारे में चर्चा चलने पर माँ कहने लगी- ''यह जो गायन है न, इस शरीर की ऐसी अवस्था हो गयी कि गायन भी भाव को बिगाड़ देता था। पूर्ण रूप से स्थिर शान्त भाव। यह जो सुर या गीतों के पद हैं, इससे भी उस अवस्था के भीतर वाली गंभीरता टूट जाएगी- ऐसा लगता है। इसलिए यह नहीं चल पाता। अक्सर पहाड़ों के बीच गुजरते समय पहाड़ों के स्थिर भावों के साथ ऐसे खो जाते हैं जैसे निर्वाक् हो जाये। दूसरी ओर सब हो सकता है। जैसे चंचलता में एक स्थिर भाव है और स्थिरता में भी चंचलता का आभास मिलता है।''

29 कार्तिक, बुधवार- आज सवेरे परमानन्द स्वामीजी से बातचीत हो रही थी। देहरादून के उन तीन सूक्ष्म शरीरधारी साधुओं के बारे में प्रश्न करने पर माँ स्वामीजी से कहने लगी-''क्या बताऊँ? तुम लोग जिस तरह इस शरीर के निकट बैठे रहते हो, हाथ-पैर सहलाते हो, वे लोग भी ठीक उसी प्रकार करते हैं। अनेक आते हैं, स्पर्श से समझ लेती हूँ। दूसरे ही क्षण वे गायब हो जाते हैं और तब तुम लोग आ जाते हो। बात क्या है, जानते हो? तुम लोग जब मौजूद रहते हो या वे लोग जब आते-जाते हैं, इसमें कोई प्रभेद है, ऐसी बात नहीं है। यही देखो-तुम लोग समय से खाना खिलाते हो, उनके साथ भी खाना पड़ता है, इसी में 6 घण्टे गुजर जाते हैं। वहाँ तो तुम लोगों की तरह समय की माप नहीं है। अगर यह सपना है तो तुम लोगों को जो देख रही हूँ, यह सब व्यवस्था दे रही हूँ-यह भी स्वप्न ही है।''

माँ हँसकर पुनः बोली–''कल देख रही थी कि तुम लोग जिस तरह मेरे निकट बैठे रहते हो। ठीक इसी प्रकार महावीर (हनुमानजी) आकर बैठे हैं।''

मैंने पूछा–''क्या किया?''

माँ–''तुम लोग जो करते हो, वही।''

माँ अभी तक अस्वस्थ हैं, पर दूसरी ओर आनन्द का खेल बराबर जारी रहा। इलाहाबाद, मिरजापुर, काशी, फैजाबाद आदि स्थानों से भक्तों की भीड़ बराबर आ रही है। यतीश दादा और बुनी कलकत्ता चले गये हैं।

माँ रात को लेटी हुई कह रही हैं–''उस दिन रात को यतीश गुहा मेरे इस कमरे में सोया रहा, मैं देख रही थी कि वह काफी दुबला है और शरीर पर कोई वस्त्र नहीं है। जिस प्रकार मैं अपने बारे में हरिद्वार में कह चुकी हूँ, उसी तरह और क्या? एक अशरीरी पूछ रहा था--कहाँ स्थान बनाना होगा? तभी मुझे खयाल हुआ कि अगली रात से उसे यहाँ नहीं रखूँगी। पहले यह निश्चित किया गया था कि वे सब और कुछ दिन रहेंगे। लेकिन उस दृश्य को देखने के बाद उसे रख नहीं सकी, कलकत्ता भिजवा दिया। फिर एक रात के लिये भी सोने की आज्ञा नहीं दी।''

बात वाकई में सच है। यतीश दादा कई दिन यहाँ ठहरेंगे, रात में ऐसी बातचीत हुई थी। सवेरे माँ ने कहा–''नहीं, आज ही तुम लोग कलकत्ता रवाना हो जाओ। मुझे खयाल हुआ है, इसलिए कह रही हूँ।''

माँ की आज्ञा पाकर वे दोनों उसी दिन कलकत्ता रवाना हो गये। यह बात उस समय न कहकर माँ आज कह रही हैं।

3 अगहन, रविवार– बच्चू की माँ के आह्वान पर माँ दो–तीन दिन के लिये काशी आयी हुई है। कीर्तन होने की बात है।

4 अगहन, सोमवार– आज एक सज्जन गुरु के बारे में प्रश्न पूछ बैठे। इनकी पत्नी की इच्छा है कि वे कुलगुरु के निकट मंत्र लें। लेकिन पतिदेव नहीं चाहते कि उनकी पत्नी कुलगुरु के निकट दीक्षा लें। गोकि कुलगुरु के प्रति यथा कर्त्तव्य करते रहने की इच्छा है। फिर माँ से उन्होंने पूछा–''अब आप जो आज्ञा देंगी, वही करूँगा। मुझे जो कुछ कहना था, कह चुका।''

माँ ने कहा–''जब मन में ऊहापोह है तब कुलगुरु से मंत्र लो। बाद में आवश्यकता पड़ने पर अनेक गुरु मिल जायेंगे। सद्गुरु क्या बला है? गुरु

सभी सत् होते हैं। और देखिये पिताजी, मंत्र पर आपका विश्वास है? इष्ट पर भी विश्वास है। सिर्फ गुरु के बाह्य व्यवहार पर श्रद्धा नहीं है। ये तीनों तो एक ही हैं। दो के ऊपर जब तुम्हारा विश्वास है, तब तीसरे पर भी हो जाएगा। तुम लोग पहले यही करो। गुरु के आदेशों का बिना विचारे पालन करना चाहिए। साधना-मार्ग की पहली सीढ़ी क्या है? वह यह है कि अस्पताल में भर्ती होना। इसीलिए कहती हूँ कि जब अस्पताल में भर्ती हो गये हो तब चिन्ता किस बात की?''

आगे माँ बोली-''जब तक रोगी तब तक त्यागी। इसके बाद जब रोग अच्छा होने लगा है तब दुर्बलता बढ़ती है। उस वक्त पौष्टिक भोजन की आवश्यकता होती है। उस समय भोगी बनने की जरूरत होती है। जब तक चलता है तब तक लोग अस्पताल में भर्ती नहीं होते। जब बिल्कुल रहते नहीं बनता, रोग बेकाबू हो जाता है तभी लोग अस्पताल में भर्ती होते हैं। कोई-कोई उसी हालत में (अर्थात् साधना आरम्भ करने पर) देह त्याग कर देते हैं और कुछ लोग रोग मुक्त होकर अस्पताल से वापस आ जाते हैं।''

आगे माँ पुन: कहने लगी-''सबल खाद्य अर्थात् साधना की जरूरत है।''

फिर मेरी ओर लक्ष्य करती हुई माँ बोली-''देखती नहीं, रोग जब धीरे-धीरे दूर होता है तब क्रमश: विभिन्न तरह के भोजन, जैसे छेने का पानी, फलों का रस आदि दिया जाता है और उस वक्त रोगी सब खा भी लेता है। धीरे-धीरे जब वह सबल हो उठता है तब उसे अपने मन के अनुसार चलने के लिये छोड़ देते हैं, फलस्वरूप वह पहले की तरह हो जाता है। (अपना शरीर दिखाती हुई) यह शरीर भी कुछ दिनों के लिये अस्पताल में भर्ती हुआ था जिन दिनों साधना की क्रियाएँ हो जाती थी।''

इतना कहने के पश्चात् माँ हँसने लगी।

5 अगहन, मंगलवार- आज बच्चू के घर कीर्तन हुआ। उदयास्त कीर्तन और भोगादि हुए। माँ कीर्तन में जाकर बैठ गयी। कुछ देर तक महिलाएँ कीर्तन करती रही। काफी आनन्द मिला। श्रीयुत् महेश्वर बाबू के आग्रह पर माँ उनकी धर्मशाला में गयी। मोटर पर आते समय मैंने गौर किया कि माँ न जाने कैसी हो रही हैं, साथ में गरम ग्लुकोज था, थोड़ी-सी पिला दी। महेश बाबू के यहाँ कुछ देर तक बातें होती रही।

इसके बाद माँ को लड़कियों के एक स्कूल में ले जाया गया। इस स्कूल की प्रतिष्ठात्री स्वयं आकर अनुरोध करके ले गयी। माँ अस्वस्थ हैं, पर किसी के मन में वे भरसक ठेस नहीं पहुँचाती, इसीलिए राजी हो गयी। यहाँ की सीढ़ियों पर चढ़ने-उतरने में परेशानी हुई। दयामयी माँ उनके आग्रह पर यह कष्ट सहन करती रही। धर्मशाला में रात को हम लोग वापस आये।

श्री श्री माँ विन्ध्याचल में

6 अगहन, बुधवार– आज अपराह्न में 5 बजे वाली गाड़ी से हम लोग विन्ध्याचल रवाना हो गये।

7 अगहन, गुरुवार– काशी में एक सज्जन ने प्रश्न किया था–''माँ, मन को कैसे स्थिर रखूँ? कैसे उन्हें पा सकूँगा?''

माँ ने कहा था–''एक कमरे को खूब साफ-सुथरा बना डालो, उसमें धूपबत्ती आदि जलाओ ताकि पवित्र भाव उत्पन्न हो, इस तरह उसे सजा डालो ताकि उस कमरे में प्रवेश करने पर उनकी (ऊपर की ओर हाथ उठाती हुई) बातें याद आ जायें। इस तरह उस कमरे में अधिक देर तक बैठे रहने का प्रयत्न करो। इसका फल अवश्य प्राप्त होगा।''

एक दूसरे सज्जन ने पूछा–''माँ, मुझे तो मार्ग नहीं मिलता। पता नहीं किस मार्ग पर चलना चाहिए।''

माँ–''एक मार्ग पर चलना आरम्भ कर दो। आगे बढ़ने पर देखोगे कि उस मार्ग पर और भी यात्री आगे बढ़ रहे हैं। उद्देश्य को ठीक रखते हुए किसी भी मार्ग पर आगे बढ़ने पर यात्रियों से मुलाकात हो जाती है। वे लोग सही मार्ग बता देते हैं। पहले चलना तो शुरू करो। बैठे मत रहो।''

10 अगहन, रविवार– कल **श्रीयुत् गोपीनाथ कविराज** यहाँ आये थे। रसोई बनाकर मैं माँ को खिलाने बैठी थी। अब तक माँ लोगों से बातचीत कर रही थी। अभी भी माँ कह रही हैं–''समाधि भी एक अवस्था है। रास्ते पर चलते-चलते जैसे तुम लोग जरा ठहरकर आराम करते हो, इसके बाद जब मंजिल तक पहुँच जाते हो या छत पर चढ़ जाते हो। उस वक्त आराम की जरूरत नहीं होती। इसके बाद विश्राम-अविश्राम का प्रश्न नहीं उठता।''

इतना कहने के बाद माँ ने एक बार चुटकी बजायी। इसके बाद हँसती

हुई बोली–''मैं तो तुम लोगों के शास्त्र के बारे में कुछ नहीं जानती। अगड़म–बगड़म बकती रहती हूँ।''

15 अगहन, शुक्रवार– एक सज्जन अपनी गृहस्थी छोड़कर कुछ दिनों के लिये आश्रम में आये थे। पत्नी, पुत्र के अनुरोध पर वे वापस चले गये। घर पर कुछ दिन रहने के बाद पुनः पत्नी को लेकर विन्ध्याचल में माँ के पास आये हैं। उनकी इच्छा है कि कुछ दिन यहाँ रहने के बाद वे घर वापस चले जाएँगे। गृहस्थी त्यागकर हमेशा के लिये आने का साहस उनमें नहीं है।

पत्नी कह रही है–''माँ, ये घर बैठे मजे में काम–काज कर लेते हैं। यहाँ इस उम्र में इन्हें कैसे छोड़ सकती हूँ?''

उक्त सज्जन कह रहे हैं–''क्यों माँ, वे तो प्रत्येक स्थान पर साथ–साथ रहते हैं। वे तो हमारे दिलों में बैठकर हमें जिस तरह चला रहे हैं, हम ठीक उसी तरह चल रहे हैं।''

माँ पहले कई दिनों तक ऐसे प्रश्नों का जवाब नहीं देती थी। आज पुनः इस तरह का प्रश्न पूछने पर वे बोली–''देखिये पिताजी, यह सब हवाई बातें हैं। हमारा मन जिधर जाना चाहता है, उस ओर की बातें कहना हम पसन्द करते हैं। भगवान् सब करा रहे हैं, वे प्रत्येक स्थान पर मौजूद हैं, हमारे साथ हैं, यह सब बातें कहने के अधिकारी तुम लोग नहीं हो। एक ऐसी स्थिति आती है जब लोग स्वयं अनुभव करते हैं कि वे सब करा रहे हैं, वे हमारे पास सर्वदा हैं। और तुम लोग जो यह सब कहते रहते हो, सिर्फ किताबी या सुनी हुई बातें हैं।''

माँ की इस स्पष्टोक्ति को सुनकर उक्त सज्जन चुप हो गये।

16 अगहन, शनिवार– आज माँ सवेरे सामने वाले बड़े वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गयी।

एक कश्मीरी महिला ने पूछा–''माँ, साकार उपासना अच्छी है या निराकार?''

माँ–''बिना साकार किये निराकार की ओर नहीं जा सकते। साकार के भीतर से ही निराकार की ओर जाया जाता है। जैसे गंगा की ओर जाना है, हम लोग मार्ग से अर्थात् साकार के बीच से चलते हैं। चलते–चलते नदी का किनारा आता है। नदी के किनारे–किनारे से नदी में जाते हैं। उस वक्त

साकार नहीं रहता, यहाँ तक कि नीचे की मिट्टी पैरों में नहीं लगती। फिर जब वहाँ से निकल आते हैं तब देखा–साकार और निराकार सब कुछ वही है।''

17 अगहन, रविवार– आज सवेरे माँ सोई हुई थी। उनके पास अभय, मैं और शंकरानन्द स्वामीजी बैठे हुए थे।

माँ कहने लगी–''उपनिषत् क्या है? ना उप जहाँ है, वहीं निषेध है।''

इसके बाद स्वामीजी ने प्रेम के बारे में चर्चा की तो माँ ने कहा–''परम जहाँ है, वही प्रेम है।''

21 अगहन, गुरुवार– डॉक्टर उपेन बाबू, शंकरानन्द स्वामीजी और हम दो–तीन जनी माँ के पास बैठी थी।

इधर–उधर की बातें हो रही थी। बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी–''देखो यह शरीर (अपना शरीर दिखाती हुई) आगे भी जो था, अब भी वही है। बीच में कुछ दिनों तक योग क्रियादि शरीर में हो गया है। शायद तुम लोगों के लिये ही हुआ है। पहले और अब भी एक ही है, उसका प्रमाण देखो–इस बार यह शरीर जब कुमिल्ला, विद्याकूट, खेओड़ा, सुलतानपुर आदि गाँवों में गया, तब गाँव के उन लोगों ने जिन्होंने बचपन में इस शरीर को देखा है, वे इस शरीर की ओर इशारा करते हुए कहते रहे– 'हमारी निर्मला पहले जैसी थी अब भी वैसी ही है। आज इसके साथ इतने बड़े–बड़े आदमी क्यों चल रहे हैं, पता नहीं।' इससे तुम लोग समझ सकते हो कि आगे जो था, अब भी वही है। बीच में सिर्फ कुछ दिनों के लिये क्रियाएँ हो गयी हैं।''

22 अगहन, शुक्रवार– आज विन्ध्याचल से रवाना होकर माँ, कुछ लोगों के विशेष अनुरोध पर इलाहाबाद की ओर चल पड़ी। यहाँ एक रात के लिये कालीबाड़ी में ठहरी।

माँ इलाहाबाद में

23 अगहन, शनिवार– इलाहाबाद से हम लोग नवद्वीप जायेंगे। माँ का दर्शन करने के लिये लोग यहाँ के बेसेण्ट हॉल में एकत्रित होंगे। कल प्रतिमा देवी और बाँकेबिहारी बाबू माँ को कुछ देर के लिये बेसेण्ट हॉल में ले गये

थे। वहाँ कीर्तन हुआ था। आज सवेरे भी वहाँ ले गये। कीर्तनादि हुए। काफी लोग एकत्रित हुए थे। माँ यहाँ 10 बजे के लगभग गयी और 11 बजे तक रहेंगी। माँ का उपदेश सुनने के लिये सभी उत्सुक हैं।

एक सज्जन ने प्रश्न किया–"माँ हमें कुछ सुनाइये।"

माँ मृदु मुस्कान के साथ बोली–"क्या सुनाऊँ? सुनाने लायक मेरे पास कुछ नहीं है।"

हॉल पूरा ठसाठस भरा था। कुछ पत्रकार भी आये थे जो माँ के उपदेशों को अपने पत्र में छापने के लिये तैयार थे। सभी का खयाल था कि माँ कुछ कहेंगी, पर माँ के श्रीमुख से कुछ भी नहीं निकला।

गोधूलि बेला में हम रवाना हुए। गाड़ी में इस बारे में माँ से बातचीत होने लगी। मैंने कहा–"इतने लोग तुमसे कुछ सुनने के लिये आये थे। सभी उत्सुक थे, पर तुमने कह दिया कि सुनाने लायक मेरे पास कुछ नहीं है।"

माँ–"मैं क्या करूँ, बता? कभी ऐसा होता है कि कोई सुने चाहे न सुने, पर यह शरीर कहता जाता है और कभी-कभी भीड़ भरे कमरे में लोग उपदेश सुनने के लिये व्याकुल हैं, परन्तु इधर जैसे जबान बन्द हो जाती है, कुछ भी नहीं कह पाती। मैं तो लेक्चर देने नहीं जाती। तुम सब जब कहलाओगी तब कहूँगी।"

माँ का यह रूप बराबर देखती आ रही हूँ। काफी लोग आकर इकट्ठे हुए हैं, अखबारों में समाचार प्रकाशित हो गया है, माँ यहाँ एक घण्टा रुकेंगी। माँ से उपदेश सुनने के लिये लोग उन्हें किसी स्थान पर ले गये हैं। लेकिन माँ वहाँ जाकर बिल्कुल चुप हो जाती हैं। कम से कम माँ ऐसे स्थानों पर–"तुम लोग भगवान् का नाम लेते रहो"–इतना कह सकती हैं, पर वे बिल्कुल कुछ नहीं कहती। अगर उनमें साधारण भाव जरा भी रहा तो वे उस हालत में भी कुछ बोलती जरूर हैं, लेकिन यह तो पूर्ण रूप से नियम-कानून के बाहर की बात है। संभवतः इसीलिए वे कुछ नहीं बोलती।

माँ की ओर देखती हुई मैं बोली–"तुम्हारे सब काम विचित्र होते हैं।"

24 अगहन, रविवार– आज सवेरे हम लोग बेण्डल पहुँचे। यहाँ चार-पाँच घण्टे ठहरना है। लगभग ढाई बजे यहाँ से नवद्वीप जाने वाली गाड़ी मिलेगी। मैं माँ के लिये दूध की तलाश में बाहर निकली। स्टेशन पर ही एक

रेल्वे कर्मचारी के पूछने पर मैंने उसे बताया कि दूध की तलाश में जा रही हूँ। इसी सूत्र के माध्यम से उक्त व्यक्ति से बातें होने लगी।

कम उम्र का युवक है। थोड़ी देर बाद वह माँ के पास आया। दोपहर के समय आकर माँ से बातें करने लगा। उसने कहा–''आपको देखने पर ऐसा अनुभव होता है जैसे आप अपने ही हैं। मेरे गुरुजी छोटी माँ के साथ रहते थे। वे मुझे बहुत मानते थे। लेकिन मैं जरा सनकी टाइप का हूँ, इसीलिए उनके लिये किंचित अपराध कर बैठा।''

माँ–''कैसा अपराध?''

युवक–''बात उन दिनों की है जब मैं मेस में रहता था। एक बार हमारे गुरुदेव मेस में आये। मैं अण्डा खाता हूँ। वहीं गुरुदेव को भी खाना खिलाया। सब साफ-सुथरा कर देना चाहिए, यह बात याद नहीं रही। इसी तरह अनेक घटनाएँ हैं। आज आपके लिये घर से दूध लाने गया था, लेकिन बिना जूता पहने ले आया। इस ओर मेरा ध्यान कभी नहीं गया था। आज आपके लिये दूध ले आते समय सबसे पहले यह विचार मन में आया और तब समझा कि गुरुदेव के निकट मैंने अपराध किया है।''

माँ इन बातों को सुनकर हँस पड़ी।

आगे उसने बातचीत के सिलसिले में कहा–''जनेऊ फेंक दिया है, गायत्री पाठ नहीं करता।''

माँ ने कहा–''जनेऊ पहनना चाहिए और गायत्री पाठ भी करना चाहिए।''

युवक–''यह एक बड़ा झमेला है।''

माँ–''कपड़े भी पहनते हो, वह भी एक झमेला है।''

युवक ने विचारते हुए कहा–''ठीक कह रही हैं आप।''

बातचीत के सिलसिले में बालक धीरे-धीरे अपनत्व दिखाने लगा। गुरु के प्रति उसका कितना विश्वास है, यह सब कहता रहा।

माँ ने मुझसे कहा–''देखो, दूध की भिक्षा करने जाकर भाव को पा गयी। दूध कितनी देर तक रहता? यह भाव तो बहुत बड़ा है।''

माँ नवदीप में

हम लोग ढाई बजे वाली गाड़ी से रवाना होकर शाम को नवद्वीप पहुँच गये। यतीश दादा को आने की सूचना पहले से दे दी गयी थी। वे और बुनी दोनों तार पाने के बाद नवद्वीप पहुँच गये थे। वहाँ माँ को न देख वे लोग वापस आ रहे थे कि बेण्डल में अचानक मुलाकात हो गयी। फिर हमारे साथ वे दोनों नवद्वीप की ओर चल पड़े। हम लोग नाव पर जा चढ़े और यह निश्चय किया गया कि अब हम इसी पर रहेंगे। रात में नाव पर भोजन बनाया और माँ को भोग देंकर प्रसाद खायी।

25 अगहन, सोमवार– आज सवेरे यतीश दादा, अभय और बुनी कलकत्ता गये। यहाँ मैं और माँ रह गयी। सवेरे नाव को खोल दिया गया। कुछ दूर आगे बढकर नाव लगाकर हाथ–मुँह धोती रही। इसके बाद नाव दूसरे किनारे लगाकर तीर पर भोजन बनाने बैठी।

भीतर माँ सोई हुई थी। उनके शरीर में अवसन्नता प्रकट हो रही है। मैं यह देखकर डर गयी कि अगर कहीं इनकी तबीयत ज्यादा खराब हुई तो इस हालत में मैं अकेली क्या कर सकूँगी? इसी बीच न जाने कैसे यह बात प्रचारित हो गयी कि माँ यहाँ आयी हैं।

झुण्ड–के–झुण्ड लोग नाव से माँ के दर्शन करने के लिये आने लगे। मैंने यह अनुभव किया कि इस हालत में माँ को यहाँ रखना खतरे से खाली नहीं है। मैं भला अकेली क्या करूँगी। जब मैंने माँ को कलकत्ता चलने के लिये कहा तो वे बोली–''जो अच्छा समझो करो।''

मैं चलने की तैयारी करने लगी। वहाँ से बस द्वारा रवाना होकर कृष्णा नगर में रेल पर सवार हुई।

रास्ते में एक सज्जन ने माँ से पूछा–''माँ, विश्वास, भक्ति, अनुराग यह सब क्या प्रार्थना से प्राप्त होता है या कर्म के द्वारा?''

माँ ने कहा–''प्रार्थना भी तो कर्म ही है, इससे भी होता है।''

माँ अस्वस्थ हालत में कलकत्ता और आगरपाड़ा में

रात साढ़े आठ बजे हम कलकत्ता पहुँचे। किसी को खबर न देने के कारण हम सीधे बिड़ला–मन्दिर में जाकर ठहरे। आराम करने के लिये माँ को लिटा दिया।

26 अगहन, मंगलवार– आज ज्यों ही यतीश दादा के यहाँ सूचना भिजवायी त्यों ही काफी लोग मन्दिर में चले आये। माँ के अवसन्न भाव में काफी कमी हुई है। माँ को अस्वस्थ देख सभी भक्त उदास हो गये, पर उन्हें अपने निकट पाकर आनन्द में मग्न हो रहे हैं।

आज माँ को एक नये भवन में ले जाने की तैयारी की जा रही है। हम लोगों की यह हार्दिक इच्छा है कि यहाँ माँ को कुछ दिनों के लिये रखकर उनकी चिकित्सा करवायी जाए। दवा दी नहीं जा सकती, इससे विपरीत फल होता है। इस शरीर पर दवा का प्रयोग नहीं होता। फिर क्या रोग है, यह जानने के लिये डॉक्टरों को दिखाना जरूरी है। यही वजह है कि यहाँ कुछ दिनों के लिये ठहरने का निश्चय किया गया, क्योंकि इस बात की आशंका है कि कहीं चले जाने की इच्छा मन में न उत्पन्न हो जाए। मन्दिर में अधिक दिनों तक रहने में असुविधा होगी, इसलिए नये भवन की तलाश होने लगी।

भक्तों से बातचीत करती हुई माँ प्रसन्नता प्रकट कर रही हैं। बात-बात में कह रही हैं–''बचपन की बात है, श्रावण के महीने में कोई व्रत किया जाता है जिसमें व्रत करते हुए सोते का पानी पीना चाहिए। शरीर की माँ ने जब यह बात कही (उन दिनों यह शरीर कम उम्र का था) तब पूछा गया–'सोते का पानी क्यों पीना चाहिए? तालाब का पानी पीने से काम नहीं चलेगा?'

''शरीर की माँ ने कहा–'नहीं, नियम है कि सोते का पानी पीना चाहिए।'

मैं कहती रही–''इस सोते के साथ क्या गंगा का सम्पर्क है क्या?''

''उन दिनों गंगा तो दूर की बात रही, कभी देखी भी नहीं थी। शरीर के मामा का घर मान्य पण्डित का घर था, इसलिए आचार-विचार का पालन करना पड़ता था। जब कभी मैं वहाँ गयी तब देखती रही कि ऊपर के कमरे में एक कमण्डल में गंगा जल रखा रहता था। अगर किसी को शुद्ध होना होता था तब कपड़े उतारकर अपने ऊपर वह पानी छिड़क लेता था। इससे वह शुद्ध हो गया, मान लिया जाता था। यह सब देखती-सुनती रही। इसके अलावा गंगा के सम्बन्ध में अन्य कोई जानकारी नहीं थी। मेरे प्रश्न पर माँ ने जवाब दिया–'अभी बकवास करने की जरूरत नहीं। जा, पहले जाकर सोते का पानी पीकर आ।''

''इस बात पर मेरे मन में यह विचार उत्पन्न हो रहा है कि बगैर गुरु बनाये काम नहीं बनता। पुस्तकों के अध्ययन से बहुत कुछ किया जा सकता है, बीज भी जाना जाता है, लेकिन यह जैसे तालाब का पानी पीने के बराबर है और गुरु की जबानी सुनना सोते का पानी पीने के बराबर है क्योंकि दोनों ही पानी हैं, पुस्तकों के अध्ययन से सत्य की जानकारी होती है, पर इन दोनों में प्रभेद है ही।''

दोपहर को माँ को आराम करने के लिये दरवाजा बन्द कर दिया गया, पर माँ में सोने का भाव नहीं था। वे हमारी बात सुनकर भीतर सो गयी। भक्तों को न जाने कैसे समाचार मिल गया। वे लोग दल-के-दल आने लगे। चूंकि माँ अस्वस्थ हैं इसलिये लोगों को सूचना नहीं दी गयी। यही वजह है कि बहुतों को माँ के आगमन का समाचार नहीं मिला। माँ का शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया है, थोड़ी देर बातचीत करने के बाद वे थक जाती हैं। हाथ-पैर ठण्डे हो जाते हैं। अक्सर माँ इस बारे में कहती हैं-''कोई तकलीफ नहीं है, सिर्फ बातें करना बन्द हो जाता है और शरीर जैसे चुप हो जाता है।''

इधर हम यह अनुभव कर रहे हैं कि माँ की हालत नाजुक होती जा रही है। नाड़ी की गति तो खराब है ही। गोकि माँ की हालत में परिवर्तन होने में देर नहीं लगती। लेकिन थोड़ी देर के लिये नाड़ी की गति में इतनी चंचलता बढ़ जाती है कि जिसकी वजह से हम सब भयभीत हो उठते हैं। माँ इस बात को स्वयं अनुभव करती हैं। नाड़ी की गति देखने के लिये अपना हाथ आगे की ओर बढ़ाती हुई कहती हैं-''इस वक्त ठीक है, देखोगे, इस वक्त हालत खराब है'' उनके कथनानुसार ही नाड़ी की गति देखने में आती है।

इन दिनों वे कुछ हजम नहीं कर पा रही हैं। इधर माँ के चेहरे का रंग देखकर वे वाकई में अधिक अस्वस्थ हैं, लोग यह अनुमान नहीं कर पा रहे हैं। उसका कारण यह है कि माँ का रूप-लावण्य कभी-कभी अत्यन्त उज्ज्वल हो उठता है। शारीरिक गठन के सौष्ठव में कमी नहीं हुई है।

अपने शरीर को दिखाती हुई वे कह रही हैं-''देख रही है इस शरीर को। इस शरीर में बीमारी कहाँ है? हर वक्त सुखी है।'' इतना कहने के बाद वे हँस पड़ती हैं।

10 बजे रात को सभी को हटाकर माँ लीला करने लगी। इसके बाद धीरे से दरवाजा खोलकर बाहर आते ही बच्चों की तरह हँसने लगी। उसी रूप में भयभीत-सी होती हुई कह रही हैं-'क्या करूँ बताओ? सोने का भाव नहीं है। आँखें बन्द कर कब तक पड़ी रहूँ? ठीक जैसे छिपकर बैठी हूँ। अच्छी बात है, कल से तुम लोगों के कथनानुसार जल्द सोने का प्रयत्न करूँगी।''

माँ बरामदे में बैठकर हम लोगों से काफी देर तक बातें करती रही, इसके बाद कमरे में जाकर सो गयी। जो लोग इस समय मौजूद थे, उन्हें आनन्द मिला। माँ की हालत पर गौर करते हुए सभी चाहते थे कि वे जाकर आराम करें गोकि सभी उनके दर्शन के लिये व्याकुल भाव से प्रतीक्षा भी करते रहते हैं। माँ जब जहाँ रहती हैं तब सभी के लिये उनका दरवाजा हमेशा खुला रहता है। भक्तगण उन्हें अपने निकट पाकर आनन्द से विभोर हो उठते हैं और इस वक्त उन्हें न पाकर, कोई नाराज हो रहा है तो कोई दुःखी। लेकिन सभी का ध्यान माँ के शरीर की ओर है, इसलिए मन में दुःख होने पर भी लोग माँ को विश्राम करने की सलाह दे रहे हैं। इस सलाह के अनुसार उन्हें विश्राम करने के लिये भेज दिया गया।

अक्सर माँ स्वयं ही इस नियम को तोड़ देती हैं। कोई दिल से यह नहीं चाहता कि माँ का संग छोड़कर चला जाए। जब तक हो सकता है तब तक लोग सतृष्ण भाव से उनकी ओर देखते रहते हैं, क्योंकि माँ उनके निकट आयी हैं। ऐसे लोगों को हटाकर माँ को आराम करने के लिये भेजना भी मुश्किल हो जाता है। सभी से अनुनय विनय किया जाता है और वे लोग 'हाँ' अब जा रहा हूँ-कहकर भी बैठे रहते हैं।

माँ को आराम की जरूरत है। माँ स्वस्थ रहे, यही हमारी कामना है। पर कोई चाह कर भी नहीं जा रहा है। चलूँ-चलूँ सोचते-सोचते घण्टों बैठे रहते हैं। ऐसी स्थिति में किसी को चले जाने को कहना भी एक मुसीबत है। दूसरी ओर माँ के लिये विश्राम की जरूरत है, यह भी सोचना पड़ रहा है। कितने मजे की बात है।

आज शाम को माँ एक अजब काण्ड कर बैठी। आये हुए दो-तीन भक्तों को उनके अपने दोषों को बताती हुई, वे इस फर्राटे से बातें कर रही थी कि लोग स्तब्ध हो गये। उनकी इस लीला से अधिकांश लोग मुग्ध हो उठे।

इतनी बातें कहने के पश्चात् तुरन्त वे बोली–"तुम लोग नाराज मत होना। अगर तुम सब नाराज हो जाओगे तो मैं कहाँ जाऊँगी?" इतना कहने के पश्चात् वे मधुर ढंग से हँसने लगी। इस हँसी के कारण लोगों में व्याप्त स्तब्धता का भाव दूर हो गया। लोग आनन्द–सागर में गोता खाने लगे।

"तुम लोग नाराज मत होना। अगर तुम सब नाराज हो जाओगे तो मैं कहाँ जाऊँगी?" माँ की इन बातों ने मानों सभी प्राणों को स्पर्श कर लिया। इस भाव में जब वे लोगों के दोषों के बारे में बातें कर रही थी तब माँ का कुछ और ही रूप था। इन भावभीनी बातों के प्रत्युत्तर में कोई कुछ नहीं बोल सका। माँ हँसने लगी।

आगे माँ कहने लगी–"अब सिर जरा हल्का हो गया है, इसलिए बड़े फर्राटे से बातें कर रही हूँ। तुम लोगों को कुछ नागवार लग रहा है क्या पिताजी?"

उपस्थित लोग जवाब दे रहे हैं–"माँ की बातें कभी सन्तान को चोट पहुँचाती हैं क्या?"

इसी तरह आनन्द के स्रोत बहते रहे। किसी को कह रही हैं–"तुम लोग सिर्फ घर और अपने बच्चों में ही मस्त रहते हो। लेकिन इस लड़की पर ध्यान नहीं देते, इसलिए बीमार पड़ती है, क्यों?"

27 अगहन, बुधवार– आज हम लोग लेक के पास एक नये मकान में गये। काफी लोगों की इच्छा है कि माँ डॉक्टर–वैद्य से इलाज करायें। यह जानकर माँ हँसती हुई बोली–"अच्छी बात है, अब डॉक्टर–वैद्य जैसे पिताजी के दर्शन होंगे।"

28 अगहन, गुरुवार– दोपहर को 12 बजे से 4 बजे तक माँ को आराम करने दिया जाता है। दोनों वक्त लेक के किनारे टहलाने ले जाती हूँ। शाम के समय छत पर लोग आकर बैठते हैं, माँ भी बैठती है, कीर्तन होता है।

अक्सर माँ कहती है–"तुम लोग मुँह में मिश्री रखा करो। मिश्री में एक बड़ा गुण यह है कि मुँह का पानी बाहर नहीं निकलता। मिश्री क्या है, उनका नाम।"

एक सज्जन जो वहाँ मौजूद थे और जिनके पास एक डिबिया में मिश्री थी, माँ की बातों का मर्म नहीं समझ सके। चट डिबिया से मिश्री की एक डली निकालकर उन्होंने मुँह में रख लिया।

यह दृश्य देखकर माँ हँसती हुई बोली–''यह क्या पिताजी?''

उन्होंने कहा–''माँ, आपने हमेशा मुँह में मिश्री रखने को कहा न, इसीलिए रख लिया।''

यह बात सुनते ही सभी लोग हँस पड़े। माँ ने कहा–''ठीक किया पिताजी। इस मिश्री को मुँह में रखते-रखते उस मिश्री की भी याद आयेगी। आज पिताजी मिश्री की डिबिया लेकर आये हैं, यह बात और लोगों को अच्छी तरह याद रहेगी। सब कुछ अच्छा है।''

उपस्थित लोगों में कुछ उक्त सज्जन से मिश्री माँगकर मुँह में देने लगे।

माँ अचानक गंभीर भाव से ''यह मिश्री मुँह में डालना''–''अस्पताल में भर्ती होना''–धर्मशाला बनाओ'' इस तरह कहती हैं कि लोग उसका वास्तविक अर्थ न समझ पाने के कारण अण्ट-सण्ट उत्तर दे देते हैं। उन उत्तरों को सुनकर माँ हँस पड़ती हैं और तब अपनी बातों की वास्तविक व्याख्या कर देती हैं।

3 पौष, मंगलवार– आज भक्तों के किसी प्रश्न के उत्तर में माँ कहने लगी–''गुरु की कृपा से सब कुछ हो जाता है, यह बात हमेशा याद रखना।''

9 पौष, सोमवार– कलकत्ता में माँ को लेकर लोग आनन्द मंगल मना रहे थे। आज शाम को कीर्तन के समय अवनी दादा ने माँ से पूछा–''माँ, कीर्तन के पूर्व जिस ध्वनि को किया जाता है, उसका क्या मतलब है?''

माँ ने कहा–''मतलब? उसका मतलब यह कि अन्य सभी भावों की ओर से मन को कीर्तन की ओर लगाना। बाकी सभी को अपने से दूर कर देना। यही और क्या?''

12 पौष, गुरुवार– श्रीयुत् सी. आर. दास महाशय की पत्नी, कन्या और कई लोगों को साथ लेकर माँ के दर्शन करने आई हैं। माँ सोई हुई थी। वे लोग एकान्त में दर्शन करने लगे।

बासन्ती देवी के किसी प्रश्न पर माँ कहने लगी–"गुरु की कृपा से सब होता है। गुरु-मंत्र भीतर ही भीतर स्पन्दित होने पर उससे अंकुर और फिर वृक्ष जन्म लेता है। इसके बाद फूल-फल से लद जाता है। ध्यान, जप, कीर्तन, पाठ और सत्संग, इन पाँचों में किसी एक को लेकर रहो।"

इतना कहने के बाद माँ हँसने लगी–"पाँच किस्म की तरकारी से भोजन करना, और क्या? नित्य एक किस्म की तरकारी से अरुचि हो सकती है।"

यह बात सुनकर सभी लोग हँसने लगे। आज एक कविराज महोदय माँ को देखने आये हैं। उन्होंने कहा–"मैं जरा नाड़ी का ज्ञान रखता हूँ।"

तुरन्त माँ ने अपना हाथ उनकी ओर बढ़ाया। काफी देर तक आँखें बन्द किये कविराज महोदय नाड़ी देखने के बाद सहसा बोले–"अरे यह क्या? आप क्या नाड़ी की गति बन्द भी कर सकती हैं? यह तो बड़ी आश्चर्यजनक नाड़ी है। आपने मेरे घमण्ड को चूर-चूर कर दिया।" इसके बाद पुनः उन्होंने कहा–"एक वायु और एक तेज के अलावा और कुछ भी नहीं मिल रहा है। तेज क्या है, उसे समझ नहीं पा रहा हूँ। उसे पित्त भी नहीं समझा जा सकता। बीमारी तो आप में कुछ भी नहीं है। आपकी नाड़ी अचानक टप से कहाँ चली जाती है, पता भी नहीं चलता।"

एक सज्जन ने कहा–"आपने तो पहले कहा था कि आप नाड़ी-ज्ञान रखते हैं, अब वह अहंकार चूर-चूर हो गया।"

माँ भोले-भाले बच्चों की तरह चुपचाप बैठी हैं और हँस रही हैं।

कविराज महाशय ने कहा–"मेरी समझ से रोग-शोक देखने नहीं, बल्कि दर्शन करने आया हूँ।"

माँ ने कहा–"लड़की को इस तरह भला कहीं कहते हैं, पिताजी? अब डॉक्टर-कविराज प्रत्येक रूप में दर्शन होगा, पिताजी। आप लोग दर्शन देने आये हैं।"

13 पौष, शुक्रवार– आज अपराह्न में आगरपाड़ा स्थित गिरिबाला देवी के राधा-गोविन्दजी के मन्दिर में जाने की बात है। वहाँ माँ के रहने के लिये प्रबन्ध किया गया है। शाम के पहले हम लोग आगरपाड़ा आये। काफी बड़ा मन्दिर है, राधा-गोविन्दजी की मूर्ति बहुत सुन्दर है। यह मन्दिर गंगा के

किनारे है। गंगा के किनारे वाले एक कमरे में माँ के सोने के लिये बिछावन बिछाया गया। एक-एक कर भक्त आने लगे। उन सभी लोगों के साथ माँ छोटी-सी कोठरी में बैठी हैं।

आगरपाड़ा में पहले काफी मलेरिया होता था, इसलिए माँ को लोग आज भी ठहराना पसन्द नहीं कर रहे हैं।

माँ ने हँसकर कहा-''क्या करूँ बताओ? मुझे तो राधा-गोविन्दजी ले आये हैं।''

रात 10 बजे तक बातें होती रही। इसके बाद माँ को आराम करने के लिये दरवाजा बन्द कर दिया गया।

14 पौष, शनिवार- आज सवेरे कलकत्ता से एक सज्जन माँ के दर्शन करने आये और कुछ देर बाद कहा-''चलिये, आपको कुछ दूर टहला लाऊँ।''

इधर के क्षेत्र के सभी रास्ते काफी खराब हैं। इसके अलावा जब कभी माँ मोटर से घूमने जाती हैं तब उनका शरीर अस्वस्थ हो जाता है। मोटर आहिस्ता-आहिस्ता चलानी पड़ती है। यही वजह है कि उक्त सज्जन के प्रस्ताव पर कुछ लोगों ने आपत्ति की।

लेकिन माँ ने कहा-''यहाँ कहीं महाप्रभु का एक स्थान है। वह जगह यहाँ से कितनी दूर है?''

भक्तों ने कहा-''पास ही, पानीहाटी में।''

माँ ने मेरी ओर देखते हुए कहा-''चल, वहाँ तक घूम आऊँ। क्यों ठीक है?''

मैं-''ठीक है, चलिये।''

माँ चलने के लिये तैयार हो गयी। उठती हुई बोली-''तब चल।''

भक्तों का दल माँ को लेकर रवाना हो गया। माँ का भोजन बनाने में कहीं देर न हो जाये, इसलिये मैं साथ नहीं गयी।

माँ घूम-घामकर जब वापस आयी तब बोली-''कल रात को जब मैं सोई हुई थी तब देख रही थी कि एक ऐसी जगह गयी हूँ, जहाँ यह शरीर रोमांचित हो रहा है। मैं यह बात दिखाती रही। आज जब राघव पण्डित के

आँगन में गयी तब सारा शरीर रोमांचित हो उठा। रात की घटना याद आने के कारण अभी तक रोमांच हो रहा है।''

यह बात सुनकर एक भक्त ने पूछा-''महाप्रभु का एक पद है जिसे भक्तगण कहते हैं-

''शची के रन्धन में और निताई के कीर्तन में
श्रीवास आँगन में और राघव भवन में
वे नित्य विराजमान करते हैं।''

बाद में भक्तगण माँ को बरगद के उस वृक्ष के नीचे ले गये जहाँ दन्तोत्सव हुआ था।

16 पौष, सोमवार- आज माँ पुनः हम लोगों को साथ लेकर नाव द्वारा राघव पण्डित के घर ले गयी। हम लोग यहाँ से सवेरे रवाना हुए। भक्तों ने नाव पर कीर्तन करना प्रारम्भ किया। काफी आनन्द मिलने लगा। घाट पर नाव लगी। माँ का शरीर अस्वस्थ रहा, इसलिए वे नाव से नीचे नहीं उतरी। हम लोग नीचे उतरकर बरगद के पेड़ के नीचे गये, जहाँ कई शिलालेख थे-

''श्री पाट पानीहाटी,

1- श्री श्री गौरांग देव,
921 कार्तिक, कृष्णा द्वादशी।

2- श्री श्री नित्यानन्द प्रभु,
923 सन् को इस वृक्ष के नीचे आये थे।

3- प्रेम के अवतार, दया के सागर

श्री श्री नित्यानन्द प्रभु द्वारा फसली संवत् 1438 ज्येष्ठ शुक्ल त्रयोदशी के दिन इस स्थान पर **श्रील रघुनाथदास गोस्वामी** का कृपा दन्त महोत्सव लीला हुई थी।

इसके बाद हम राघव भवन में गये। समाधि स्थल की प्रदक्षिणा की। चूंकि नाव से आयी थी, इसलिए यथा शीघ्र वापस आ गयी। नाव पर पुनः कीर्तन आरम्भ हुआ। हम लोग वापस चल पड़े। दोनों किनारे खड़े लोग यह दृश्य देखते रहे। शायद अनेक लोगों के मन में महाप्रभु की लीला की भावना उत्पन्न हुई।

18 पौष, बुधवार– डॉक्टरों का कहना है कि माँ को आराम की जरूरत है, वर्ना इनके शरीर की रक्षा में मुश्किल हो जाएगा। यह सुनकर भक्तों के मन में भयानक आशंका उत्पन्न हो गयी। सभी मिलकर इस बात पर विचार-विमर्श करने लगे कि कैसे बढ़ती हुई भीड़ में कमी की जाए ताकि माँ पूर्ण विश्राम कर सकें।

यह भी अनुभव किया जा रहा था कि माँ जब मोटर पर सवार होती हैं तब वे अवसन्न हो जाती हैं। इसलिए उन्हें मोटर से ले जाने पर रोक लगाने की बातें हुई। यहाँ कुछ दिन इन्हें ठहराने की बात हुई।

माँ हँसती हुई बोली–डॉक्टरों के आदेश से भला कहीं मोटर–रेल यात्रा रुकती है? देख रही हूँ कि यह शरीर थकान अनुभव कर रहा है, मोटर पर सवार होने पर न जाने कैसा हो जाता है। इस शरीर में सब कुछ अपने आप हो जाता है और हो रहा है। अब शायद यह शरीर एक स्थान पर कुछ दिन रहेगा इसलिए हिलने–डुलने का भाव भी बन्द होता जा रहा है। मैं इन लोगों को एक अर्से से कह रही हूँ कि देखो, मेरी जबान अटक रही है, यह शरीर अपने भाव में रहना चाहता है। रोग के कारण ऐसा हो रहा है, सो बात नहीं है। मैं तो यह बात काफी दिनों से इन लोगों को बताती जा रही हूँ।''

बात सच है। माँ यह बातें एक अर्से से हम लोगों को कहती आ रही हैं। बातचीत करते समय उनकी बातें उलट–पुलट जाती हैं, अटक जाती हैं। इसी तरह की शिकायतें पैदा हो गयी हैं।

आज दोपहर को माँ सोई हुई थी और मैं उनके पास बैठी थी। अचानक माँ कहने लगी–''देखो, यह शरीर अपने भाव में रहना चाहता है। तुम लोग यह मत समझना कि बीमार होने की वजह से ऐसा हो रहा है। बीमारी की वजह से नहीं, बल्कि इसी तरह रहेगा ही। यहीं तक कहने का भाव आया, इसलिए कह दिया। किस तरह रहेगा या नहीं रहेगा आदि बातें कही नहीं जा रही हैं, बता नहीं पा रही हूँ।''

रात में त्रिगुणा दादा और कई व्यक्ति बैठे हुए हैं। माँ आज दिन भर सोई रही। सवेरे के समय गंगा किनारे वाले बरामदे में कुछ देर तक बैठी थी। हाथ–पैर ठण्डे हो गये थे, उधर उनका ध्यान नहीं था। जब हालत काफी खराब हो गयी तब वे वहाँ से चलकर कमरे में आकर लेट गयी।

मैं भोजन बना रही थी। मेरे पास आकर मृदु भाव से यह सब बातें कहने लगी। उस वक्त नाड़ी की गति नाजुक थी। शरीर ठण्डा था। काफी देर तक हाथ-पैर रगड़ने पर बदन में गर्मी आयी। तब कहीं जाकर वे आराम अनुभव करने लगी।

एक व्यक्ति ने पूछा-''इस वक्त कुछ आराम अनुभव कर रही हैं, माँ?''

माँ मृदु मुस्कान के साथ बोली-''मैं तो हर वक्त ही आराम अनुभव कर रही हूँ, बीमार कहाँ हूँ? लेकिन शरीर कभी-कभी न जाने कैसा हो जाता है, यह तो देखते ही हो।''

नाड़ी की गति खराब होने पर भी माँ के मुँह पर मुस्कान थिरकती रहती है। मुँह देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि वे रह-रहकर ठण्डा हो जाती हैं। डॉक्टर माँ की नाड़ी देखकर चौंक उठते हैं, पर माँ उस वक्त भी मुस्कुराती रहती हैं।

दिन भर इसी तरह बीत गया। लोगों की भीड़ बढ़ने नहीं दी गयी। लोगों को इस कमरे की ओर आने से रोक दिया गया।

शाम के समय माँ त्रिगुणा दादा से कहने लगी-''मुझमें यह जो परिवर्तन हो रहा है, इसे रोग मत समझना। मैं कुछ दिनों से यह बात खुकुनी को बराबर कहती आ रही हूँ। यह शरीर अपने भाव में इसी तरह रहेगा। किस तरह रहेगा, यह बता नहीं पा रही हूँ, अगर जागतिक क्रिया बन्द रहे तब जागतिक आहार आदि के द्वारा इस शरीर को कैसे ठीक कर सकोगे? बीच-बीच में सब कुछ बन्द हो जाता है। श्वासों की गति अलग-अलग किस्म की हो जाती है, उस वक्त बाहरी भोजन हजम नहीं होता।''

19 पौष, गुरुवार- आज गंगाचरण बाबू अपने साथ डॉक्टर देवेन्द्र मुखर्जी को लेकर आये। सुना है कि आप **श्री श्री 108 भोलागिरि महाराज** के शिष्य हैं। साधना में उन्नति प्राप्त कर चुके हैं। तीन-चार दिन पहले आकर माँ को एक बार देख गये हैं। उस दिन उन्होंने बताया था-''लीवर में कुछ शिकायत है।''

लेकिन आज कह रहे हैं कि वह शिकायत आज नहीं देख रहा हूँ। डॉक्टर साहब जाँच करें, उसके पहले ही माँ कहने लगी-''पिताजी, आज रोग का कुछ पता नहीं चल रहा है।''

डॉक्टर और कविराजों की राय है कि आजकल माँ को घी खिलाना चाहिए, इसलिए पूड़ी और घी से भुनी तरकारी बना रही हूँ। इसके पहले माँ इस तरह कभी नहीं खायी है। प्राय: पानी से उबली तरकारियाँ या साधारण मात्रा में घी खाती रही हैं। अपने भोजन की यह व्यवस्था देखकर माँ हँसती हुई बोली–''तुम लोग यह सब क्या रहे हो? डॉक्टर के कहने पर ही तुम लोगों ने उबाली हुई तरकारी, मक्खन निकाला दूध, घी–तेल हीन तरकारी खिलाती रही और आज उन्हीं डॉक्टरों की सलाह के अनुसार पूड़ी, तरकारी, खीर आदि खिलाने लगी। अगर मैं स्वयं इसके लिये आमादा हो जाती तो तुम लोग कहते कि माँ उबाली हुई चीजें त्याग–बुद्धि के कारण खाती है। दूसरी ओर खीर–घी खाती तो कहते कि उबाली हुई चीजें खाते–खाते अब पूड़ी–खीर खाने की इच्छा हुई है।''

इतना कहने के पश्चात् माँ खिलखिला कर हँस पड़ी। उपस्थित लोग भी अट्टहास कर उठे।

माँ ने कहाँ–''देखो, जब जिस बात की आवश्यकता होती है, मुँह से निकल जाती है। इस शरीर के निकट पानी में उबाली हुई तरकारी और पूड़ी–खीर बराबर है, कोई फर्क नहीं इन दोनों में।''

डॉक्टर ने कहा–''आप में बीमारी का एक भी लक्षण नहीं है।''

माँ–''कल रात को मैंने खुकुनी से कहा था कि रोग कुछ भी नहीं है। पहले भी इसी तरह शरीर ठण्डा होकर अपने भाव में पड़ा रहता था। जबान बन्द हो जाती थी। समस्त जागतिक क्रियाएँ भी बन्द हो जाती थी और अब भी ऐसा हो रहा है। ऐसा रोग के कारण नहीं होता, इस शरीर में रोग नहीं पा सकोगे। बात क्या है पिताजी, जानते हैं? जागतिक क्रिया बन्द हो जाने पर बाहरी भोजन से भला कहीं शरीर पुष्ट हो सकता है? इस वक्त श्वासों की गति भिन्न प्रकार की हो जाती है। इसलिए जहाँ जरा अधिक भोजन हुआ, हजम नहीं होता। यही वजह है कि तुम लोग कभी–कभी लीवर या स्टमाक को खराब समझ लेते हो। तुम्हें भ्रम हो जाता है कि बदहजमी हुई है। दूसरी ओर जब सब ठीक से चलने लगा तब कल जो कुछ देख गये, आज देखा तो कोई शिकायत नहीं मिली। यहाँ तक कि कुछ देर पहले जिन रोगों के लक्षण दिखाई देते हैं, उन्हीं को कुछ देर बाद देखोगे तो गायब पाओगे।''

डॉक्टर नाड़ी की गति खराब अनुभव कर रहे हैं। माँ ने कहा–''देखो, यह शरीर ठीक से समझ लेता है कि इस वक्त नाड़ी की गति खराब है और कैसे–कैसे क्या हो रहा है, सब समझ में आ जाता है। अब इस वक्त नाड़ी की गति देखो।''

इतना कहने के पश्चात् माँ ने अपना हाथ डॉक्टर साहब की ओर बढ़ाया। नाड़ी की गति देखते हुए डॉक्टर साहब ने कहा–''अद्भुत है आपकी नाड़ी। इतने कम समय में काफी परिवर्तन हो गया है। माँ जैसे घुड़–दौड़ कर रही हैं। हम लोगों के सामने माँ लीला दिखा रही हैं।''

मैंने कहा–''पहले माँ का शरीर न जाने कितने प्रकार का हो जाता था। नाड़ी की गति बन्द हो जाती थी, उस वक्त हम भयभीत नहीं होते थे, लेकिन आजकल भय अनुभव होता है।''

माँ ने कहा–''जो लोग मेरे पास रहते हैं, उनमें भय की भावना भी तो एक के ही निकट से आती है, अनुकूल हवा बहती है। यही सब तो खेल है, यह होते–होते बस।''

इतना कहने के पश्चात् माँ ने चुटकी बजायी। हम बुरी तरह डर गये। डॉक्टर साहब ने कहा–''इस प्रकार की अनुकूल हवा अब बहने नहीं दी जाएगी। सभी के मन में अन्य प्रकार की भावना का आना जरूरी है। सभी लोग इस आशंका से डरते हैं कि शायद अब माँ शरीर त्याग करने वाली हैं, यह भावना उत्पन्न होना ठीक नहीं है।''

माँ हँसती हुई बोली–''यह भावना आती क्यों है? जो लीला करते हैं, वही तो यह भावना भी उत्पन्न करते हैं। अनुकूल हवा बहने लगती है। और देखो, इतने दिनों तक किसी प्रकार की बाधा न मानते हुए यह शरीर बराबर इधर–उधर आता–जाता रहा। चाहे गाड़ी में हो या मोटर में, पैदल भी काफी चलती हूँ; पर आजकल मोटर पर बैठते ही यह शरीर न जाने कैसा हो जाता है, थोड़ी दूर पैदल चलने पर भी वही स्थिति हो जाती है। सब अपने आप बन्द हो जाता है।''

20 पौष, शुक्रवार– आज देवेन्द्र बाबू और वाणेश्वर कविराज माँ को देखने आये हैं। वाणेश्वर कविराज ने पहले माँ की परीक्षा की। नाड़ी की गति देर तक देखते रहे। इसके बाद अवाक् होते हुए बोले–''माँ, हमारे साथ भी

आपकी लीला चल रही है क्या? आपकी नाड़ी तो जैसे घोड़े की तरह दौड़ रही है। रह-रहकर बिल्कुल बन्द हो जाती है। अगर आपकी जगह और किसी में यह बात होती तो हम समझ लेते कि मरीज की स्थिति काफी खराब है।''

माँ ने कहा-''अब देखो, पहले की अपेक्षा काफी ठीक मालूम होगी।'' थोड़ी देर बाद पुनः माँ बोली-''अब देखो, अत्यन्त चिन्ताजनक स्थिति है।''

डॉक्टर यह बात देख रहे हैं और इस तथ्य को स्वीकार कर रहे हैं। इधर डॉक्टर की बातों से भक्तों को भय हो रहा है और उधर ज्यों ही माँ हँसती हुई दूसरी बातें कहने लगती हैं त्यों ही इस समस्या को लोग भूल जाते हैं। इस तरह क्रम चल रहा है।

रात के समय वृद्ध माताओं का संतान के लिये व्याकुलता की बात चल गई। नानीजी, यतीश दादा की माँ, अनु की माँ और अन्य लोग हैं। न जाने किस बात पर संतान के लिये व्याकुलता का प्रश्न छिड़ गया।

माँ हँसती हुई बोली-''यह सब माताल (बावला) हैं। माताल का अर्थ नहीं समझते? माताओं का ताल। सभी माताओं का इसी तरह ताल होता है।'' इतना कहने के पश्चात् माँ हँसने लगी।

एक विधवा (मन्दिर प्रतिष्ठात्री की रिश्तेदारिन) यहाँ रहती हैं, वे नित्य रात को माँ के पास आती हैं। आज भी आयी हैं। न जाने किस बात पर वे कहने लगी-''मेरा अपना कोई घर-द्वार नहीं है, यह सब गोविन्दजी का है।''

माँ तुरन्त हँसती हुई बोली-''माताजी, हम लोग स्वयं ही गोविन्दजी के हैं, इसलिए गोविन्दजी का घर-द्वार भी आपका घर-द्वार है। हम लोगों को चिन्ता किस बात की? हम लोग उनके हैं और वे हमारे हैं।''

इतना कहने के बाद माँ मधुर हँसी हँसने लगी।

यह पहले ही लिख चुकी हूँ कि माँ काफी कमजोर हैं, यह हर वक्त मालूम नहीं होता। बीच-बीच में ऐसा अनुभव होने पर भी चेहरे पर स्वाभाविक उज्ज्वलता दिखाई देती है। चेहरा गौर से देखने पर हर वक्त स्वस्थ-सी दिखाई देती हैं। जब वे हँसने लगती हैं तब उक्त स्वाभाविक उज्ज्वलता मानो और भी अपूर्व श्री धारण कर लेती है।

माँ एक अर्से से जो बात कहती जा रही हैं, आज भी उन्हीं बातों को कह रही हैं–"शरीर चुप होता जा रहा है। ज्यादा बातचीत करना नहीं चाहता।"

21 पौष, शनिवार– माँ की पूर्ववत् स्थिति चल रही है। रोग कुछ भी नहीं है, पर नाड़ी की गति उसी तरह चंचल रूप में चल रही है। शाम के वक्त नाट-मन्दिर में कीर्तन हो रहा है। माँ के लिये वहाँ बिस्तर बिछा दिया गया, क्योंकि विगत तीन-चार दिनों से माँ अधिकतर सोई रहती हैं। जरा-सा हिलने-डुलने पर हालत नाजुक हो जाती है।

आज माँ कुछ चंगी दिखाई दी तो उन्हें नाट-मन्दिर में ले जाया गया। यहाँ आने के बाद से कुछ दिनों तक माँ गंगा किनारे सीढ़ी पर जाकर बैठती थी और स्थानीय लोग दर्शन करने आते थे। कलकत्ता से अपराह्न के समय काफी लोग आते हैं। लेकिन इधर तीन-चार दिन से वे बाहर बिल्कुल नहीं निकलती।

आज कीर्तन के समय माँ सोई थी। मैं गौर से देख रही थी कि उनके भाव में परिवर्तन हो रहा है। अचानक माँ उठ बैठी। आँखें बन्द हैं, सिर एक ओर झुक गया है। माँ दीवार के सहारे बैठी थी। अचानक फिर सीधा होकर बैठ गयी। रात 8 बजे माँ को वहाँ से हम ले आये।

आज तीन-चार दिन से जो स्थिति चल रही है, उस हालत में इतनी देर तक इन्हें बाहर रखना उचित नहीं हुआ जानकर हम सब चिन्तित हो उठे। लेकिन सहसा मैंने यह देखा कि इधर कई दिनों तक उनकी आकृति जैसी थी, इस समय वैसी नहीं है। चेहरे पर काफी परिवर्तन दिखाई दे रहा है। फर्राटे से बातें करने लगी जैसे पूर्व भाव वापस आ गया हो।

जरा-सा पानी पिलाने के बाद माँ को रोज बिस्तर पर लिटाकर दरवाजा बन्द कर दिया जाता है। आज माँ स्वयं ही नरेश दादा को बुलाकर बातें करने लगी। माँ की बातचीत सुनकर उपस्थित लोगों में से किसी को भी चले जाने की इच्छा नहीं हो रही है। इधर हम बाधा देने का साहस नहीं कर पा रहे हैं। माँ जब स्वयं ही अपने स्वाभाविक भाव में बातें कर रही हैं तब क्या किया जाए।

बात-बात में माँ कहने लगी–"कीर्तन के समय अनुभव किया कि सिर

एक ओर झुक गया है, ठीक उसी समय हृदय के बायीं ओर खिंचाव-सा अनुभव हुआ जैसे बिजली का झटका लगता है। इस घटना के बाद से दिल की स्थिति ठीक चल रही है।''

हम लोग यह बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हो उठे। अभय ने कहा-''कीर्तन में गुण है।''

आज रात 10 बजे तक माँ बराबर बातें करती रही। बहुत दिनों के बाद इस तरह बातें करने का भाव उदय हुआ है।

कभी-कभी कहती हैं-''मुझे खयाल नहीं रहता। जब ज्यादा बातचीत करने लगती हूँ तब तुम लोग मना भी कर सकते हो।''

अब तक हम लोगों में किसी ने कुछ नहीं कहा। इधर रात गहरी होती जा रही है और माँ बराबर बातें करती जा रही हैं, देखकर इस बारे में ज्यों ही माँ से निवेदन किया गया त्यों ही वे बच्चों की तरह मुस्कुराती हुई, अपने मुँह पर हाथ रख लिया। इसके बाद कुछ नहीं बोली। धीरे-धीरे एक-एक लोग विदा लेकर चले गये।

हममें से कुछ लोग कमरे में थे। माँ ने हमारे से कहा कि हृदय की हालत काफी ठीक है। अपना मुँह जिस ढंग से बनाती हुई, यह बात उन्होंने बतायी कि उसके प्रति मजाक करते हुए मैंने कहा-''बड़ी मुश्किल की बात है। अब काफी अच्छी हो, अब क्या करोगी?''

फिर भी माँ बोली नहीं। हँसकर रह गयी। यह देखकर मुझे भय अनुभव हुआ कि कहीं फिर जबान बन्द न हो गयी हो। जब मैंने इस सन्देह को मिटाने के लिये पूछा तो माँ इशारे से समझाती हुई बोली कि अब कल बोलेंगी।

यह जानकर हम लोग निश्चिन्त हुए।

आज बातचीत के सिलसिले में माँ नरेश दादा से कहने लगी-''तुम अपनी लड़की को माँ कहकर बुलाना।''

नरेश दादा-''यही कहकर बुलाता हूँ।''

माँ-''ठीक है। नित्य उसे माँ कहकर बुलाना और नित्य प्रणाम करने के भाव से उसके आगे सिर झुकाना। बाहर से अगर ऐसा न कर सको तो कम-से-कम अन्तर से हाथ जोड़ते हुए, मन-ही-मन प्रणाम करना।''

22 पौष, रविवार– आज सवेरे 10 बजे माँ को नाट-मन्दिर में ले जाकर धूप में बैठाया गया। भक्तों का दल पास आकर बैठ गया। अभय की किसी गलत बात पर नरेन दादा बुरी तरह बिगड़ गए। यहाँ तक कि उसे वे मारने के लिये दौड़े तो वह माँ के पीछे जाकर छिप गया।

माँ अभय को पास बैठाती हुई नरेन दादा से बोली–''क्यों नरेन, अभय को मार तो देखूँ?''

उस समय उनमें मारने का भाव नहीं था। खासकर माँ की शान्त भाव से पूर्ण बातें सुनकर वे बिल्कुल शान्त हो गये। माँ के आदेश पर उन्होंने हल्के हाथ से मारा।

इसके बाद कीर्तन प्रारम्भ हुआ। कीर्तन समाप्त होने के बाद दोनों को अपने निकट बैठाती हुई माँ बोली–''देखो, कोई अगर कुछ करे तो डाँट-डपट से काम चलाओ, मारपीट मत करो। और तुम लोग यह निश्चित रूप से जान लो कि किसी भी रूप में अगर दूसरे को चोट पहुँचाओगे तो वह चोट इस शरीर को अनुभव करना पड़ता है। अभय ने जो गलत बात कही है, इस शरीर को ही कही है और तुम जो मारने के लिये दौड़े, वह भी इस शरीर को ही। यहाँ रहने पर अनेक ठोकर-काँटों का दर्द सह्य करना पड़ेगा। इस मार्ग का प्रधान सहायक है-सह्य गुण।''

फिर अपना हाथ नरेन दादा की ओर बढ़ाती हुई माँ बोली–''मारने की तबीयत हुई थी? ले, इस शरीर को मार।''

नरेन दादा ने माँ के दोनों हाथों को अपने हाथ में ले धीरे से उनके हाथों पर, आज्ञा पालन करने के निमित्त मारा। इसके बाद उसी भाव में काफी देर तक बातें होती रही। भक्त वृन्द स्तब्ध भाव से बैठे सब देख-सुन रहे थे।

कुछ देर बाद माँ बोली–''मारपीट अच्छी बात नहीं है। वायदा करो कि अब आगे किसी को नहीं मारोगे।''

नरेन दादा ने कहा–''तुम्हारे आगे कैसे इतनी बड़ी प्रतिज्ञा करूँ?''

माँ–''प्रयत्न करके करो।''

अन्त में नरेन दादा ने स्वीकार किया–''करता हूँ।''

माँ हँसती हुई खड़ी हो गयी। नरेन दादा ने आगे बढ़कर अभय को गोद में ले लिया। माँ के आदेश पर अभय ने नरेन दादा को प्रणाम किया।

माँ की इस लीला को देखकर लोग मुग्ध हो उठे। माँ के इस वक्त की बातचीत और व्यवहार पर चेहरे की उज्ज्वलता को देखकर भक्तगण आपस में कहने लगे-''माँ ने आज इस घटना को लेकर एक लीला दिखाई है।''

23 पौष, सोमवार- आज दोपहर के वक्त माँ आँखें बन्द कर बिस्तर पर सोई थी। पास ही बैठकर मैं उनके पैरों को सहला रही थी। माँ धीरे से बोली-''एक मूर्ति देख रही हूँ।'' इसके आगे वे कुछ नहीं बोली।

अपराह्न में अनेक भक्त आये। सभी लोग इस छोटे से कमरे में बैठे हैं। माँ कहने लगी-''आज दोपहर को देख रही थी कि तुम लोग जिसे छद्मवेष कहते हो-उसी वेष में एक विधवा महिला इसी स्थान पर आकर खड़ी है। इस कमरे में दीवार मानो है नहीं। महिला का आनन विषण्ण था, आँखों में पानी। इसके बाद जैसे तुम लोग कहते हो-''तुम कौन हो, कैसे आयी?''-ठीक उसी प्रकार कहा गया-''तुम कौन हो?'' उन्होंने तुरन्त मुस्कुरा दिया। इसके बाद आहिस्ते से उस मन्दिर (राधा-गोविन्द मन्दिर दिखाती हुई) की ओर चल पड़ी। चलते-चलते राधा की मूर्ति के पास पहुँची। उस वक्त वहाँ राधा की मूर्ति नहीं थी। वह महिला वेदी पर जाकर स्वयं पैर लटकाकर बैठ गयी। कुछ देर बाद वह राधा की मूर्ति के रूप में परिणत हो गयी।''

इतना कहने के पश्चात् माँ हँसने लगी। भक्तों ने आपस में कहना शुरू किया-''आज माँ के निकट राधा आयी थी।''

इसके बाद माँ पुनः कहने लगी-''इसके बाद देखने लगी कि राधा-कृष्ण मूर्ति जैसी दो मूर्तियाँ, ठीक खिलौने की तरह, उसी साइज की राधा-कृष्ण की दोनों मूर्तियाँ इस शरीर पर लोट-पोट रही हैं और इस तरह करते-करते सब एक हो गया।''

यहाँ आने के बाद माँ एक दिन गंगा तट पर बैठी थी। पास ही कुछ भक्तगण भी थे। बात-बात पर माँ जब यह कहने लगी कि राधा-गोविन्दजी इस शरीर को यहाँ ले आये हैं, तब अमूल्य दादा चकित भाव से पूछ बैठे-''राधा-गोविन्द ले आये हैं, इस बात का मतलब मैं समझ नहीं सका।''

प्रत्युत्तर में माँ ने बहुत-सी बातें कही जिसका मुख्य मतलब यह था-''ठीक कहा है, जैसे तुम लोग ले आते हो, ठीक उसी प्रकार वे भी ले आये हैं। एक हिसाब से आना-जाना नहीं है और अगर आना-जाना कहो तो राधा-गोविन्द ले आये हैं।''

24 पौष, मंगलवार– आज सवेरे मुँह धोने के बाद माँ ने कहा–"तू विन्ध्याचल कब जाएगी?"

इधर दो–तीन दिन से मुझे जाने के लिए माँ कहती आ रही हैं। शरीर खराब है, इसलिए इस बारे में अधिक बातें नहीं हुई। इस वक्त इतना कहने के बाद कहने लगी–"मेरा खयाल हुआ है, तू कुछ दिन वहाँ जाकर यज्ञ में आहुति दे आ। एक बार और भेजी थी, पर उसके बाद यह शरीर अपने साथ ले गया, वहाँ जाना नहीं हुआ। पास रहती है तो साधन–भजन नहीं हो पाता।"

माँ का साथ छोड़ना होगा सुनकर मेरी आँखें भर आयी। इसके बाद मेरी त्रुटियों को बताती हुई जितना बक रही हैं, मैं उनका जवाब देती जा रही हूँ और रो रही हूँ। कुछ भक्त वहाँ मौजूद थे।

माँ हँसती हुई तरह–तरह की बातें करने लगी। चले जाने की बात सुनकर मेरा मन खराब हो गया। कुछ देर बाद बरामदे में जाकर बैठ गयी।

मुझे रोते देख माँ का स्वर बदल गया। बोली–"आँखों से आँसू का बहना एक प्रकार से अच्छा है। आँखों का सारा मैल दूर हो जाता है। कितने मजे की बात है। खुकुनी यह जानती है कि यह शरीर कभी–कभी ऐसा करता है। वह चाहती तो जवाब न देती, तब तो सब बन्द हो जाता। कभी–कभी वह ऐसा करती है, चली जाती है, पर आज मुँह पर जवाब देने लगी, इसीलिए यह शरीर तरह–तरह की बातें कहने लगा। जिन बातों से मन को कष्ट होता है, वही बातें कही गयी।"

इस भाव की कितनी बातें माँ कहती गयी–"क्यों, इस शरीर को कुछ खिलायेगी–पिलायेगी या नहीं। चल, जल्दी उठ।"

अपराह्न के समय माँ लेटी हुई थी। आँखें बन्द किये कहती रही–"कोई शाक्त है तो कोई वैष्णव। वह भाव जो जहाँ देखता है, वहीं वह चला आता है। कोई माँ को प्यार करता है, किसी के निकट यह भाव अच्छा लगता है। उसी लालच में वह आता है। इसी तरह नाना भाव में लोग आते हैं। इससे समझ लें कि किसकी सेवा उसने की? अगर तुम्हारे लिये तुम्हीं से प्यार किया जाए तो यह अलग बात है।"

त्रिगुणा दादा ने कहा–"कृष्ण की रानियों और वृन्दावन से प्यार करने में यही पार्थक्य है"

25 पौष, बुधवार– आज सुकेत के राजा साहब एक अंग्रेज डॉक्टर को लेकर आये। राजा साहब इधर कई दिनों से कलकत्ता में हैं। उनकी इच्छा है कि डॉक्टर साहब माँ को एक बार देख लें। यह उनके निजी चिकित्सक हैं। इस डॉक्टर पर राजा साहब का अगाध विश्वास है। जिसकी जो इच्छा हो रही है, कर रहा है। माँ किसी कार्य में आपत्ति नहीं कर रही है।

जाँच करने के बाद डॉक्टर ने कहा–''कोई बीमारी नहीं है।''

माँ बीच-बीच में दो-चार शब्द अंग्रेजी के कहकर हँसने लगी। उपस्थित सभी व्यक्ति माँ की बातें सुनकर हँसने लगे।

माँ ने कहा–''तुम लोगों को आनन्द मिले, हँसो, इसीलिए मैंने यह बातें कही हैं।''

भक्तों ने कहा–''माँ, आप अंग्रेजी ठीक-ठीक कह रही थी और आपका उच्चारण भी काफी सुन्दर था।''

माँ हँसती हुई बोली–''हाँ, जरा तारीफ करो, वर्ना मैं रो पड़ूँगी। छोटे-छोटे बच्चे जो चाहें कहें, पर माता-पिता इसी तरह कहते हैं।''

डॉक्टर साहब हाथ जोड़ते हुए प्रणाम करने के बाद चले गये। माँ ने कहा–''अंग्रेज डॉक्टर से जाँच कराना बाकी क्यों रहे। देखो, डॉक्टर-साक्टर को दिखाकर तुम लोगों ने एक काम पूरा किया। कोई-कोई यह सोच सकता है कि माँ को कौनसी बीमारी है, पता नहीं। भक्तों का कहना है कि माँ बीमार हैं नहीं, पर दरवाजा बन्द करके सोई रहती हैं। पता नहीं, इन्हें कौनसी बीमारी है? भक्त छिपा सकते हैं। अब तो बड़े-बड़े डॉक्टर देख गये और कह गये कि कोई बीमारी नहीं है। अब तुम लोगों की बातों का सभी विश्वास करेंगे। क्यों ठीक है न?''

अपनी बातें माँ विशेष भाव-भंगिमा में कहती रही। उपस्थित भक्तों ने इस बात का समर्थन करते हुए कहा–''यह तो होगा ही।''

माँ हँसती हुई बोली–''किसी के मन में यह बात बिना उत्पन्न हुए कैसे यह बात मुँह से निकल सकती है!''

अब जाकर हम माँ की बातों का मर्म समझ सके। आगे माँ कहने लगी–''देखो पहले रोग आता है। इसके बाद खराब होते-होते नाड़ी की गति

खराब हो जाती है। और इस शरीर का क्या हुआ कि पहले नाड़ी की गति खराब हुई, बाहरी क्रियाएँ बन्द हुई; इसके बाद इस हालत में बाहरी भोजन और रोग के लक्षण प्रकट हुए। पहले नाड़ी की गति खराब तब रोग आया।''

आज माँ अपेक्षाकृत अच्छी हैं। विगत दो दिन से वे बिस्तर पर पड़ी रही। आज गंगा किनारे टहलने जाकर एक जगह बैठ गयी। कुछ देर बाद वहाँ से वापस आकर सो गयी। भीतर से कुछ अस्वस्थ-सा अनुभव कर रही हैं। कीर्तन वगैरह हुआ।

कुछ देर बाद स्वस्थ व्यक्ति की तरह उठ बैठी। फिर पहले की तरह बातें करने लगी। स्वयं हँसती हुई माँ बोली-''अच्छा, कभी तुम लोगों ने ऐसा देखा है? अभी अस्वस्थ हूँ, बिस्तर पर मल-मूत्र त्याग रही हूँ और कुछ देर बाद गंगा किनारे टहलने जा रही हूँ। बात क्या है, जानते हो? तुम लोगों की भाँति अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर पाती। जो कुछ होना होता है, वह हो जाता है। दूसरी ओर ठीक से ध्यान देकर कुछ कर नहीं पाती। यही वजह है कि सब गड़बड़ हो जाता है। यह शरीर कैसा है, इस ओर ध्यान नहीं रहा। कब अस्वस्थ था, यह भी याद नहीं रहता। हर वक्त स्वस्थ लगती हूँ।''

आज सवेरे एक घटना हो गयी। कल रात 4 बजे के लगभग माँ कहने लगी-''कौन आवाज करता है?''

इधर माँ कई दिनों से कमरे में अकेली सोती हैं। हम लोग दरवाजे के बाहर सोते हैं। ज्यों ही माँ ने ये बातें कही त्यों ही कमरे के भीतर जाकर उनसे पूछने पर, वे गंगा किनारे वाले बरामदे की ओर इशारा करती हुई बोली-''उस ओर न जाने कौन हा-हा-हि-हि शब्द करता रहा।''

मैंने तुरन्त दरवाजा खोलकर देखा-उस ओर के बरामदे में परमानन्द स्वामी बैठे हैं। वे इसी बरामदे में सोते हैं। मैं पहले यह सोचने लगी कि शायद नींद की झोंक में वे इस तरह की आवाज करते रहे होंगे। पूछने पर उन्होंने बताया कि लगभग एक घण्टा हुआ मैं सोकर उठा हूँ। इसके बाद अन्य कोई बातचीत नहीं हुई।

सवेरे जब माँ सोकर उठी तब इस बात की चर्चा चलने पर अभय ने पूछा-''कौन आवाज कर रहा था, माँ? कोई आया था क्या?''

माँ–''हाँ, आया था।''

अभय जैसे पीछे पड़ गया। पूछा–''अच्छा या बुरा?''

माँ–''तुम लोग जिसे भूत–प्रेत कहते हो, वही। उसी तरह का।''

इसके बाद वह प्रत्येक को बताने लगा–''माँ कह रही हैं कि कल भूत आया था।''

26 पौष, गुरुवार– आज सवेरे माँ के बदन पर तेल मालिश कर रही थी। ठीक इसी समय यहाँ रहनेवाली एक विधवा आयी। ये अक्सर माँ को देखने चली आती हैं।

आज आते ही वे बोली–''मैं घर पर फरुई भून रही थी, लेकिन माँ की याद आते ही मन न जाने कैसा हो गया। माँ मुझे घर पर रहने नहीं दी। सब काम–काज छोड़कर थोड़ी–सी फरुई लेकर चली आयी। जिस दिन से मैंने अपने घर में माँ की फोटो टाँगी है, उसी दिन से बराबर यहाँ दौड़ी आती हूँ। घर पर रह नहीं पाती। यहाँ दौड़ी चली आती हूँ। यह तो बड़ी परेशानी की बात है।''

इतना कहने के पश्चात् उसने एक मुट्ठी फरुही माँ के मुँह में डाल दी। माँ कहने लगी–''लड़की के लिये माँ का दिल ऐसा ही बन जाता है।''

काफी देर बैठी रहने के बाद जब उसकी इच्छा जाने की हुई तब वह अनुमति माँगती हुई बोली–''माँ, अब मुझे आज्ञा दो। कब तक बैठी रहूँगी, बताओ। आखिर मेरे भी तो घर–द्वार, बाल–बच्चे हैं। फिर भी माँ तुम्हारे लिये दौड़ी हुई आती हूँ।''

माँ हँसती हुई बोली–''जाइये माताजी, मेरा घर–द्वार सब ठीक–ठाक करके रखिये। सबकी देखभाल ठीक से करो। भीतर–बाहर चारों तरफ सफाई करना। यह शरीर भी तो तुम्हारा ही है, इसलिए तुम्हारा घर–द्वार भी इस शरीर का घर–द्वार है। चारों ओर सफाई रखना। और एक बात सुनो, तुम्हारी यह लड़की उस मकान में दूसरे किसी शरीक को रहने नहीं देगी। पूर्ण रूप से, सोलह आना चाहिए।''

इतना कहने के बाद माँ हँस पड़ी।

एक अन्य महिला आयी हैं। चलते वक्त उन्होंने कहा–''अब चल रही हूँ माँ! घर जाना है।''

माँ हँसती हुई बोली–''चलूँ माँ, चलना ही चाहिए, नीचे मत उतरना। और घर जाना ही चाहिए। घर जाने पर शान्ति मिलती है। चूँकि धर्मशाला में हो, इसलिए इतनी अशान्ति है। अपना घर कहाँ है, उसकी तलाश करो, माताजी। यह घर तो श्वास–प्रश्वास का है, यहाँ श्वास–प्रश्वासों से ही सम्बन्ध है। अगर गृहस्थी बसाना तो धर्म की गृहस्थी बसाना। धर्म को अलग कर देने पर अशान्ति मिलती है।''

मुझे आदेश दिया गया है कि आगामी 29 पौष यानी संक्रान्ति के दिन से विन्ध्याचल के कुण्ड में आहुति देने का कार्य प्रारम्भ करना पड़ेगा। लिहाजा कल ही मुझे यहाँ से रवाना हो जाना होगा।

एक भक्त का पत्र आया है जिसका उल्लेख यहाँ कर रही हूँ। भक्त संन्यासी है। उन्होंने लिखा है–''कल रात को स्वप्न देखता रहा। पहले मैंने अपनी गुरु माँ को देखा। अत्यन्त उज्ज्वल मुँह, स्पष्ट भाषा में तत्त्व ज्ञान की व्याख्या कर रही हैं। मैं उनके सामने उन्मुख भाव से बैठा सारी बातें सुन रहा था। माँ की आकृति की ओर लक्ष्य कर अग्रसर होते–होते मैंने देखा कि श्री श्री गुरु माँ का शरीर अब वहाँ नहीं है, अब उस स्थान पर श्री श्री आनन्दमयी माँ बैठी हैं। आपको एकदम स्पष्ट रूप से मैंने देखा। इसके बाद नींद खुल गयी। जागने पर एक अपूर्व आनन्द की उपलब्धि की। उस समय रात के दो बजे थे। आसन पर बैठते हुए उस आनन्द की स्मृति में रात बितायी।''

''श्री श्री गुरु माता की महासमाधि के पश्चात् जब मैं अपने को निराश्रय और मातृहीन अनुभव कर रहा था, ठीक इसी समय आप अप्रत्याशित रूप से आयी और अपना कृपा–स्नेह दान देकर मुझे शान्ति तथा आश्रय दिया। तब से मैं आपका कृपाकांक्षी अनुभव करता हूँ। गुरु माता के शरीर त्याग करने के बाद एक परम गुरु आप में समाहित होकर मुझे अपनी स्नेह–कृपा प्रदान कर रही हैं। मैं इसी धारणा को अपने हृदय में पोषण करता हूँ। इसीलिए आज के स्वप्न में भी वही दृश्य देखता रहा। यह बात पूर्ण रूप से सत्य है, इसे तब और भी अनुभव करता हूँ जब श्री श्री गुरु माता की अन्य सभी संतानें आपसे कृपा और स्नेह प्राप्त कर रही हैं।''

एक बार एक ब्रह्मचारी बालक के पत्रोत्तर में जिन बातों को लिखने का आदेश माँ ने दिया था, उसका कुछ अंश यहाँ उद्धृत कर रही हूँ। उक्त

बालक ने लिखा था–"आप पर मेरी जो श्रद्धा–भावना रही, उसमें कुछ कमी आ रही है...........प्रेम किसे कहते हैं?.........निस्संशय कब हो सकता है।

माँ जवाब में लिखाने लगी–"एकमात्र भगवत् प्रेम ही प्रेम है। उनकी दुहाई देकर साधारण जन में कोई विशेष भाव प्रकट होता है। असल में एक ही है, पर यह भी अच्छा है, वास्तव–भाव की आशा। शुद्ध–ज्ञान, शुद्ध–भक्ति से प्रेम का प्रकाश होता है और फिर प्रेम स्वयं ही प्रकाश है। निस्संशय कब हो सकता है? क्या यह चिंतन करने योग्य विषय नहीं है?......जोंक जिस तरह एक ओर पकड़कर दूसरी ओर छोड़ देता है......। आकर्षण में कमी होने का मतलब है–किसी और की ओर आकर्षण बढ़ना। अगर यह भगवत् भाव की ओर, निस्संशय होने योग्य सहायक आकर्षण न हो तो पतन हो सकता है। वास्तविक पक्ष की ओर से आकर्षण में कमी नहीं होती।"

"तुम तो गृहस्थ के घर रहने वाले थे न? अगर किसी के यहाँ एकान्त में कमरा मिले तो रह सकते हो? क्या तुम्हें ऐसी सुविधा प्राप्त हो गयी है? कहाँ जाते हो? कहाँ रहते हो? अपना अधिकतर समय कहाँ व्यतीत करते हो? क्या करते हो? क्यों, क्या बात है? अध्यात्म की बातों में आनन्द लेने के अलावा अन्य किसी बात पर हँसी या आनन्द लेना और उसमें समय गुजारना, ब्रह्मचारियों के लिये अत्यन्त प्रतिकूल बात है। जिस संग को असहायक समझना उसी क्षण उस संग का साथ छोड़ देना। कब, किस सूत्र से किसकी दुहाई देकर वह मानव को किस ओर ले जाए, यह बात स्वयं वह भी नहीं समझ पाता जिसे ले जाया जाता है। हर वक्त उचित सत्संग और उसी के साथ नित्य आत्म–कर्म का प्रबन्ध करो। वर्ना चोरी करके भोजन करने की आदत बन जाती है। धीरे–धीरे यह आदत अगर अभ्यास में परिणत हो जाए तो उसे अत्यन्त विवेकवान के अलावा स्वयं कोई समझ नहीं पाता।"

"अतएव यह समझना चाहिए कि क्या चाहिए? किसलिए कहाँ जाता हूँ? यह बात हर वक्त ध्यान में रखो। जैसे मास्टर के पास जब लड़के पढ़ने जाते हैं तब गलती होने पर तुरन्त वे उसका संशोधन कर देते हैं, उसी प्रकार गलती हो जाना लड़के के लिये स्वाभाविक है। छात्र जब मास्टर के पास

नहीं रहता और अपने मन से पढ़ता रहता है तब वह गलत चीज को शुद्ध समझकर अपनी पढ़ाई में मशगूल रहता है। कहने का मतलब यह है कि जिससे अच्छा हो, शुद्ध भाव लेकर हर वक्त रह सको, इसके लिये प्रयत्न करते रहना।''

माँ किसी को पत्र नहीं लिखती। जो लोग पत्र भेजते हैं, उसे माँ के निकट पढ़कर सुनाया जाता है। माँ कभी-कभी किसी को जवाब में क्या लिखना चाहिए, दो-चार बातें बता देती हैं जिनमें न जाने कितनी अमूल्य बातें रहती हैं।

27 **पौष, शुक्रवार–** माँ के आदेशानुसार मैं अश्रु पूरित नयन लेकर रात की गाड़ी से विन्ध्याचल रवाना हो गयी। नानीजी मेरे साथ चल पड़ी। चलते वक्त वे माँ के निकट जाकर खड़ी हो गयी। माँ हँसती हुई बोली-''क्यों, क्या प्रणाम पाने की इच्छा है?''

नानीजी-''रहने दो।''

माँ हँसती हुई बोली-''इच्छा है?''

उपस्थित भक्त वृन्द अट्टहास कर उठे। माँ बिछौने से उतरकर माताजी के चरणों पर माथा रखने के बाद ''नारायण-नारायण'' कहती हुई, हाथ जोड़कर खड़ी हो गयी।

28 **पौष, शनिवार–** आज शाम को मैं विन्ध्याचल पहुँच गयी। यहाँ केशव यज्ञ की जिम्मेदारी लेकर मौजूद है।

29 **पौष, रविवार–** आज पौष संक्रान्ति है। माँ के आदेशानुसार आज से आहुति आरम्भ कर दी।

5 माघ, शुक्रवार– आज अखण्डानन्द स्वामीजी का पत्र हस्तगत हुआ। माँ के निकट भीड़ कम हो, इस सम्बन्ध में विशेष रूप से बातचीत हुई है। कलकत्ता के निवासी सिर्फ शनिवार-रविवार को ही माँ का दर्शन करने आयेंगे। स्थानीय व्यक्ति जो लोग शाम को आकर कुछ देर के लिये दर्शन कर चले जाते हैं, वे आ सकते हैं। माँ के निकट अधिक लोग नहीं रहेंगे। माँ का शरीर अभी तक दुर्बल है, अधिकतर वे सोई रहती हैं।

17 माघ, बुधवार– माँ का समाचार प्राप्त हुआ, वे उसी रूप में हैं। आजकल मन्दिर के चारों तरफ टहलती है। स्वामीजी, साधन, बेबी दीदी,

कमलाकान्त वगैरह जो लोग उनके निकट है, सभी अन्यत्र जाने की बात सोच रहे हैं। मैं एक काम से दिल्ली जा रही हूँ।

18 माघ, गुरुवार– आज मैं दिल्ली पहुँच गयी। कलकत्ता से नरेन दादा के पास जो पत्र आया है, उसमें माँ का समाचार है। माँ पुरी जाने वाली थी, पर नहीं गयी। पता चला कि किसी ने माँ को एक नीलाम्बर साड़ी भेंट की थी, जिसे पहनकर वे घूँघट काढ़कर अनेक लीलाएँ करती रही। इससे भक्तों को बहुत आनन्द आया था।

24 माघ, बुधवार– कलकत्ता की चिट्ठी से माँ के बारे में विस्तृत समाचार प्राप्त हुआ। माँ गत 18 माघ गुरुवार को आगरपाड़ा से कलकत्ता आयी और वहाँ से 20 माघ शनिवार को पुरी रवाना हो गयी। आगरपाड़ा से रवाना होने के पूर्व यानी 17 माघ को माँ के श्वासों की गति दूसरे प्रकार की हो गयी थी। माँ के शरीर में क्रिया के सामान्य लक्षण प्रकट हुए थे। उसी दिन शाम से लेकर रात 9 बजे तक क्रियाओं के लक्षण सामान्य रूप में प्रकट होते रहे। 18 माघ, गुरुवार की शाम के बाद से रात साढ़े दस बजे तक फिर रात 2 बजे तक अत्यन्त साधारण ढंग से लक्षण प्रकट हुए थे। 19 माघ शुक्रवार को माँ ने कहा था–''अभी तक भीतर–ही–भीतर उसी तरह चल रहा है।''

गत 17 माघ और 18 माघ को हाथ–पैर किंचित् ठण्डे हो गये थे। माँ के साथ काफी लोग पुरी गये हैं। आज मैं शाम को विन्ध्याचल की ओर चल पड़ी।

28 माघ, रविवार– परमानन्द स्वामी के पत्र से ज्ञात हुआ कि माँ के शरीर में क्रियादि लक्षण प्रकट होने के बाद से अब काफी स्वस्थ हो चली हैं। माँ **पुरी** में तुरीयानन्द स्वामीजी के समुद्र तीर पर बने घर में ठहरी हैं। उसी के बगल में माँ का नया आश्रम बन रहा है। अभी कुछ दिन हुए नर्मदा का आश्रम बनकर तैयार हुआ है।

माँ ने विशु ब्रह्मचारी को वहाँ भेजा है। माँ परमानन्द स्वामीजी के द्वारा मुझे साधन–भजन के सम्बन्ध में कई हिदायतें लिखवायी हैं। उस पत्र में यह भी लिखा है–''तेरे मंगल के लिये ही तुझे इस तरह रखा गया है, इसे याद रखना।''

11 फाल्गुन, शनिवार– कल इलाहाबाद से महारतन नानीजी के दर्शन करने आयी है। उसके मुँह पर और कोई बात नहीं है। वह माँ के लिये जैसे पागल हो उठी है। उसकी जबानी माँ के बारे में अन्य कोई बातों के अलावा कई घटनाएँ ज्ञात हुई जिनमें कुछ का जिक्र कर रही हूँ–

महारतन कह रही है–''दीदी, बड़े आश्चर्य की बात है। आज दो दिनों से लगातार मैं यह स्वप्न देख रही हूँ कि माताजी जैसे हमारे सिख **गुरु गोविन्दसिंह** की मूर्ति धारण किये दरवाजे के पास खड़ी हैं। **गुरु नानक** को केश नहीं था, लेकिन गुरु गोविन्दजी को था। ठीक उसी प्रकार पंजाबी पोशाक, फूलों का साज पहने, उसी वेश में माँ खड़ी रही।''

एक अन्य घटना की चर्चा करते हुए उसने बताया–''आज से कई वर्ष पूर्व मेरा भाई देहरादून में मेरे डेरे पर आया था। मेरे अन्य कई रिश्तेदार भी आये थे। मैं इन सभी लोगों को लेकर रायपुर में जहाँ माताजी ठहरी थी, गयी थी। मेरा उद्देश्य था कि माताजी के सभी स्थानों का दर्शन इन्हें करा दूँगी। इसके साथ ही हमारी पिकनिक भी हो जाएगी। वहाँ जाकर मैंने इन लोगों को माँ के बारे में बहुत–सी बातें बतायी। मेरी यह आदत है कि जब कोई मेरे पास आता है तब माँ के बारे में अनेक बातें उसे बताने लगती हूँ। आज इन लोगों को बताने लगी।

''माँ की बातें सुनने के बाद मेरे भाई ने कहा–''दीदीजी, चाहे जो भी कहो, पर गुरु नानक की तरह कोई नहीं हो सकता। भले ही माँ कितनी बड़ी क्यों न हो।'' यह बात सुनकर मैं बोली–''ठीक कहा तुमने। तुम्हारे निकट यही सत्य है, लेकिन मेरे लिये माँ ही सब कुछ हैं।'' इस घटना के कुछ दिनों बाद मेरा यही भाई बीमार होकर मेरे यहाँ आया। उन दिनों मैं बरेली में थी। मैंने अपने भाई को सद्‌वाणी (अंग्रेजी) पढ़ने के लिये दी। माँ के उपदेशों को पढ़कर वह मुझे सुनाता रहा। उस समय देखती थी कि उसकी आँखें आँसुओं से भीग उठती थी। यह पुस्तक पढ़ते–पढ़ते माँ के प्रति उसके मन में भक्ति–भाव उत्पन्न हुआ।

उसका अन्तर अत्यन्त निर्मल था। जाते वक्त उसने मुझसे माँ के एक चित्र की माँग की। मैंने कहा–''देखो चित्र तो मैं दे रही हूँ, लेकिन इसकी इज्जत करना जरूरी है। जिस कमरे में **गुरु ग्रन्थ साहिब** की पूजा होती है,

उसी में इस चित्र को रखकर पूजा करना।'' वह राजी हो गया। उसे अपनी नौकरी से काफी तकलीफ हो रही थी। आश्चर्य की बात यह रही कि चित्र ले जाने के बाद उसकी तबीयत ठीक हो गयी और नौकरी का सारा झंझट दूर हो गया। यहाँ तक कि उसे नौकरी में भी तरक्की मिली। कुछ दिनों बाद उसने मुझे लिखा–'मैं माताजी के चित्र की काफी इज्जत कर रहा हूँ। सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि मैं उनमें 'अकाल पुरुष' की मूर्ति देख पाता हूँ।

''हम लोगों में अकाल पुरुष उसे कहते हैं जिसका काल नहीं होता अर्थात् जो मरता नहीं। इस पत्र को पढ़ने के बाद मेरे पति ने कहा था– 'तुम्हारे भाई और तुम्हें माँ जितने रूपों में दर्शन देती हैं, उतना मुझे तो नहीं देती।''

और एक घटना है। एक बार मैं माँ की वह फोटो जिसमें उनके दोनों हाथ ऊपर की ओर उठे हैं, लेकर अपने जीजाजी के घर गयी। मेरी बहन की मृत्यु हो गयी थी, जीजाजी ने पुनर्विवाह किया है। यह पत्नी अत्यन्त नम्र स्वभाव की थी। एक दिन रात के वक्त जब एक ही कमरे में मैं, जीजाजी सपत्नीक और मेरी एक छोटी बहन सोयी रही तब अचानक जीजाजी की नयी पत्नी इस तरह चौंककर उठ बैठी जैसे उसने कुछ देखा हो।

''इसके बाद वह मुझसे बोली–'दीदीजी, तुम अपने साथ दोनों हाथ ऊपर उठाये माँ की जो फोटो लायी हो, वही माँ आकर मुझे न जाने क्या-क्या कहती रही। उस मूर्ति को देखकर मेरा मन न जाने कैसा हो गया है।' इस घटना के दूसरे दिन वह रसोईघर में बैठी थी। उस समय भी वह कहने लगी कि माँ उसके सामने खड़ी होकर न जाने क्या कह रही हैं। वह उन्हें प्रत्यक्ष रूप से देख रही है।''

कई दिनों तक उसके हाव-भाव में बराबर परिवर्तन होते रहे। वह जैसे नशेबाज की तरह लगती थी। जब मैं वहाँ से वापस लौटने लगी तब वह माँ की फोटो कॉपी रखने के लिये अपने लड़के को वह फोटो देकर फोटोग्राफर के यहाँ कॉपी करने के लिये भिजवायी। उस लड़के का एक कश्मीरी मित्र उसकी जेब में उक्त फोटो देखकर प्रसन्नतापूर्वक अपने घर ले गया। उनकी माताजी माँ की भक्त थी। माँ की फोटो देखते ही वह पहचान गयी और अपना आनन्द प्रकट करने लगी।

''देखो दीदी, माँ कब, कहाँ, किस रूप में, किस पर कृपा करती हैं, यह हम नहीं जान पाते। जीजाजी की नयी पत्नी की जबानी यह भी सुना कि विवाह के बाद ही वह स्वप्न में माँ का दर्शन कर चुकी है। यही वजह है कि उक्त फोटो देखते ही वह पहचान गयी थी। देखो दीदी, मेरा भाई और जीजाजी की नयी पत्नी अब तक प्रत्यक्ष रूप से माँ को नहीं देख सके हैं, फिर भी उनकी कृपा पा रहे हैं। इस तरह की अनेक घटनाएँ हैं, जिसे कहाँ तक बताऊँ?''

ये सभी बातें उस दिन महारतन सुनाती रही।

13 फाल्गुन, सोमवार– इसी बीच एक घटना और हो गयी है। गत 4 फाल्गुन शनिवार को पुरी से पिताजी ने एक तार भेजा। उसमें लिखा था–''तुम कैसी हो, तार भेजो। पत्र जा रहा है।''

गत 2 फाल्गुन, गुरुवार को सवेरे मुँह धोते समय अचानक मेरी पीठ और छाती में दर्द उत्पन्न हुआ था। पिताजी यह बात नहीं जानते थे। आज अचानक उनका तार पाकर मैं चौंक उठी। बात क्या है?

दो–तीन दिन बाद पिताजी का पत्र प्राप्त हुआ। यह 4 फाल्गुन को लिखा गया है–

''तुम्हें तार भेजने का कारण यह है कि कल माँ मुझे बुलाकर कहने लगी कि माँ ने देखा है जैसे तुम मुझे दवा लगा रही थी और उसका परिणाम बुरा हुआ। दर्द, जलन बढ़कर दिल की धड़कन बढ़ गयी। माँ ने बीमार मूर्ति को देखा–एक बन्दर की तरह, सिर और तन पर बाल नहीं हैं। वह मूर्ति पहले माँ की ओर लपकी, लेकिन माँ ने उसे वापस भेज दिया तब वह तुम्हें लेकर चली गयी। इसके बाद जब मैं आया तब माँ ने सारी घटना सुनायी। मैं तुरन्त तुम्हें छुड़ाकर लाने के लिये दौड़ गया। माँ ने मेरा भाव देखा कि मुझमें छुड़ाकर लाने की शक्ति है, लेकिन मैं तुम्हें छुड़ाकर वापस ले आ सका या नहीं–इसे वे देख नहीं सकी। आज जब माँ से पूछने लगा तो उन्होंने पत्र लिखने की आज्ञा दी। लेकिन पत्र आने–जाने में देरी होगी जानकर तार से समाचार प्राप्त करने के लिये आज्ञा प्राप्त हुई।''

आज अभय और परमानन्द स्वामीजी के पत्र प्राप्त हुए। माँ 11 फाल्गुन शनिवार को, दोपहर 11 बजे भुवनेश्वर में निम्बार्क आश्रम में गयी थी। उनके

साथ अभय, परमानन्द स्वामीजी, देवीजी, योगेश दादा और केशव थे। बाकी लोग पुरी में ही रहे। पुरी में माँ का शरीर काफी अच्छा है। एक दिन किसी घटना के बाद उनका शरीर खराब हो गया था। इसके बाद से उनमें सोने का भाव नहीं है या पुरी में रहने का जो भाव था, वह भी नहीं है। भुवनेश्वर में कब तक रहेंगी, पता नहीं।

अभय ने लिखा है–''माँ को सूक्ष्म और अलक्ष्य में बीच-बीच में अलौकिक घटनाएँ हो जाती हैं जिनमें आपकी बीमारी भी है।''

25 फाल्गुन, शनिवार– परमानन्दजी का पत्र प्राप्त हुआ। माँ 22 फाल्गुन को पुरी वापस आ गयी।

28 फाल्गुन, मंगलवार– आज पिताजी का एक तार इस आशय का प्राप्त हुआ कि कल मुगलसराय में माँ से मुलाकात करूँ।

4 चैत्र, रविवार– आज काफी सवेरे माँ मिरजापुर स्टेशन से देहरादून जाने वाली गाड़ी में सवार हुई। इधर दो-तीन दिन विन्ध्याचल में जैसे आनन्द का बाजार लगा था। अब पुनः अन्धकार छा गया। सभी का हृदय हाहाकार कर रहा है।

माँ मुझसे बोली–''मेरा खयाल हुआ है कि तेरा यहाँ एकान्त में कुछ दिन साधन-भजन करते रहना आवश्यक है। इसलिए तू यहाँ रहकर सर्वदा उनके भाव में मग्न रह और नित्य नियमित काम करती जाना।''

मझली दीदी और शची दादा आये हैं। ये लोग यहाँ माँ के पास दो-तीन दिन रहेंगे। मझली दीदी की जबानी पता चला है कि इस बार पुरी में माँ के लिये एक दिन सभी लोग परेशान हो उठे थे। उन दिनों माँ भुवनेश्वर में थी। ठीक इन्हीं दिनों एक दिन जगन्नाथजी दर्शन करने जाकर मझली दीदी ने बिल्कुल साफ-साफ देखा कि जगन्नाथजी के स्थान पर माँ खड़ी हैं। कहीं आँखों को भ्रम न हो गया हो, इसलिए एक बार आँखें मींचकर उन्होंने पुनः देखा तो ठीक वही दृश्य देखने लगी। साथ में जितने लोग थे, वे भी कहने लगे–''अरे यह क्या? यह तो माँ की मूर्ति है।''

देखते-देखते माँ की मूर्ति राज-वेष में, फिर माँ की मूर्ति के स्थान पर काली-मूर्ति, फिर जगन्नाथजी की मूर्ति बन गयी। मझली दीदी ने यह भी बताया कि वे जप करते वक्त या गुरु को स्मरण कर प्रणाम करते वक्त देखती हैं कि माँ की मूर्ति गुरु के स्थान पर आकर खड़ी हो जाती है।

मैं यह बात पहले ही लिख चुकी हूँ कि अनेक व्यक्ति इस तरह अपने-अपने इष्ट या गुरु मूर्ति में माँ को देखते हैं।

5 चैत्र, सोमवार– महिलाश्रम के किसी कार्य के लिये शची दादा मुझे दिल्ली ले जाना चाहते हैं। उधर माँ का भी आदेश आया है कि जाना पड़ेगा, इसलिए आज दिल्ली रवाना हो गयी।

इस बार माँ की जबानी अपनी बीमारी के बारे में सारी बातें सुन पायी जिसके लिये तार भिजवाया था। माँ ने जो कुछ कहा, उसका मुख्य सारांश यों है कि पिताजी पहले रोग के बारे में जैसी व्यवस्था करते थे, उसी के अनुसार मैं माँ को दवा देने गयी तो उसका परिणाम विपरीत हुआ। बाद में माँ ने देखा-मुझे माँ के पास रोग मूर्ति पकड़कर ले गयी, अर्थात् रोग हो या किसी प्रकार की यंत्रणा हो, मैं माँ को भूल गयी। इसी वजह से माँ ने पिताजी को बुलाकर उन्हें छुड़ा लेने के लिये भेजा।

माँ ने कहा-''पिताजी को तुझे छुड़ा लेने के लिये ही भेजी थी।''

7 चैत्र, बुधवार– हम लोग दिल्ली पहुँचकर जब अमल दादा के घर गये तब पता चला कि वे किसी काम से देहरादून गये हैं। उन्होंने पत्र लिखा है कि वे अपनी मोटर से माँ को वापस ला रहे हैं।

8 चैत्र, गुरुवार– आज शाम को माँ दिल्ली पहुँच गयी। भक्तों का हृदय आनन्द से नृत्य करने लगा। लोगों ने कीर्तन किया। माँ से लोग उपदेश सुन रहे हैं। माँ पुनः अस्वस्थ हो गयी, इसलिए लोगों की इच्छा के विरुद्ध उन्हें आराम करने के लिये भेजकर सभी चले गये।

9 चैत्र, शुक्रवार– आज माँ के दर्शन करने के लिये अनेक भक्त आये हैं। देहरादून में ठण्डक लगने के कारण माँ अस्वस्थ हो गयी हैं। डॉक्टर साहब दवा सूँघने को कह रहे हैं और दूसरी ओर डर रहे हैं कि विपरीत परिणाम न हो।

माँ हँसती हुई कह रही हैं-''पिताजी, मुझे 'नेचर' (प्रकृति) के ऊपर रहने दो। क्यों ठीक है न? जो होना है, होगा।''

उपस्थित लोग माँ के श्रीमुख से अंग्रेजी के शब्द सुनकर प्रसन्न हो उठे। माँ अक्सर सभी को प्रसन्न करने के लिये अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग करती हैं। चारु दादा से बोली-''पिताजी, तुम पाठ नहीं सुनाओगे।''

उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से अपनी स्वीकृति दी। अपराह्न में पाठ होने लगा। कल होली है। सभी को आशा है कि माँ के निकट कीर्तन किया जाएगा।

10 चैत्र, शनिवार– आज होली है। भक्तों का दल आश्रम में माँ के इर्द-गिर्द इकट्ठा हो गया। सवेरे 9 बजे से कीर्तन प्रारम्भ हुआ। भक्तों ने फूलों की माला, चन्दन और अबीर से माँ को सजाया। सभी लोग आनन्द से विभोर होकर अपने दोनों हाथ ऊपर की ओर उठाते हुए, चक्कर काट रहे हैं, कीर्तन हो रहा है, माँ भी इन लोगों का साथ देने के लिये चक्कर काट रही हैं। भक्तों को उत्साह देने के लिये माँ बरामदे में खड़ी होकर, मुस्कुराती हुई बायें हाथ से धीरे-धीरे जब ताल देने लगी तब भक्तों का दल दूने उत्साह से नाम गाने लगा।

आज माँ वृन्दावन जाने वाली थी, पर नहीं गयी। देहरादून जाने पर अचानक ठण्डक लग जाने से सर्दी, खाँसी और बुखार आ गया है। इस हालत में वे 150 मील मोटर से सफर कर चुकी हैं। गरम इलाके में आने पर किंचित् स्वस्थ हुई हैं। छाती पर कफ काफी है।

आज शाम को डॉ. जे. के. सेन महाशय ने जाँच करने के बाद कहा– ''बुखार है, ब्रांकाइटिस हो गया है।''

माँ को यात्रा करने के लिये लोग मना करने लगे। माँ ने कहा–''अगर यह शरीर बिल्कुल अचल हो जाए तभी यात्रा रुक सकती है, फिर यह तो अनवरत चल ही रहा है।''

हर तरह की बातें चल पड़ी। सामान बाँधकर तैयार कर लिया गया था। माँ का शरीर अस्वस्थ होने से यात्रा स्थगित हो गयी, यह जानकर सभी को हर्ष हुआ।

शाम को 6 बजे तक कीर्तन होता रहा। इसके बाद कुछ देर तक चारु दादा पाठ करते रहे। रात 9 बजे माँ को आराम करने के लिये दरवाजा बंद कर दिया गया।

11 चैत्र, रविवार– आज लड़कियों का दल 12 से 2 बजे तक कीर्तन करेगा। माँ आज रवाना होने वाली हैं। सवेरे कह रही थी–''आज, डॉक्टर को बीमारी का एक भी लक्षण नहीं मिलेगा।''

डॉक्टर साहब के आते ही माँ ने उनसे कहा–''पिताजी, आज जरा

अच्छी तरह देखिये। आपको बीमारी का एक भी लक्षण नहीं मिलेगा।''

डॉक्टर–''माँ, यह सब तो तुम्हारी लीला है।''

सचमुच आज जाँच करने के बाद डॉक्टर ने कहा–''आज माँ स्वस्थ हैं, विशेष कुछ नहीं है।''

जब माँ ने अपनी यात्रा की बात की तो डॉक्टर ने कहा–''माँ, हमारी इच्छा नहीं है कि आप अभी जाएँ, पर हम इस पर विश्वास करते हैं कि तुम हम लोगों की इच्छा की तरह कुछ नहीं करती, इसलिए तुम्हें बाधा देने लायक शक्ति हममें नहीं है।''

माँ ने मुझे एकान्त में सुझाया कि यात्रा करने की तैयारी कर ले।

दोपहर को स्व. हाराण बाबू की पत्नी आकर बोली–''मेरे पिताजी कल घर पर बैठे कह रहे थे कि माँ अगर सचमुच माँ हैं तो आज वे किसी भी हालत में नहीं जाएँगी। आज मैं अपने घर में बैठे यहीं से माँ को बुलाता रहूँगा। देखूँ, क्या होता है? कल तुम रवाना नहीं हो सकी, यह जानकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ।''

यह बात सुनकर माँ हँसती हुई बोली–''खुकुनी, ले सुन। कल अचानक क्यों अस्वस्थ हो गयी और यात्रा स्थगित कर देनी पड़ी। मैं तो तुम लोगों की इच्छा की तरह कुछ करती नहीं। तुम लोग न जाने कहाँ क्या करते हो और इधर शरीर की गति बन्द हो जाती है। यह शरीर तो पेड़ से गिरे हुए सूखे पत्ते की तरह है। हवा इसे जिधर ले जाए।'' माँ हँसने लगी।

लड़के, लड़कियों से कहने लगे–''कल हमारे कीर्तन में माँ रुक गयी, आज लड़कियाँ इन्हें रोक पाती हैं या नहीं–देखना है।''

माँ तुरन्त बोल उठी–''देखो बाबा, औरतों का हृदय बड़ा कोमल होता है। मेरी माताएँ, अपनी इस लड़की को बाधा नहीं देंगी। तुम लोग 12 घण्टे तक कीर्तन करते रहे और औरतें चार घण्टे तक। इस बार तुम लोग 9 घण्टे तक करते रहे और माताएँ अब तीन घण्टा करेंगी। तीन बजे तक कीर्तन करने के बाद यह लड़की जो करना चाहे, उस पर माताएँ राजी हो जाएँगी। क्यों ठीक है न?''

इतना कहने के बाद माँ महिलाओं की ओर देखने लगी। माँ पुनः बोली–''माताओं का स्वभाव इस लड़की में भी है। मेरे दिमाग का कोई पता

नहीं। जाऊँगी कहकर रवाना हो जाती हूँ। इस लड़की पर माता-पिता सभी लोग कृपा करते हैं, स्नेह देते हैं, इसीलिए बाधा नहीं देते। यह तो जानते ही हो कि यह लड़की तुम लोगों की इच्छा की तरह कुछ नहीं करती। तीन बजे तक कीर्तन करने के बाद फिर किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न होगी। ठीक है न?''

इतना कहने के बाद माँ महिलाओं की ओर इस भंगिमा से देखने लगी कि सभी महिलाएँ तुरन्त राजी हो गई।

तुरन्त माँ हँसती हुई बोली-''देखो मेरी माताएँ कितनी अच्छी हैं। मुझे वे बाधा नहीं देना चाहती। ये लोग जानती हैं कि इस शरीर का साधारण रूप में इच्छा करने पर कुछ नहीं होता, जो होना है, हो जाता है। क्यों ठीक है न?''

काफी वाद-विवाद के पश्चात् अनिच्छा रहने पर भी वे सब राजी हो गयी। मानो माँ ने बात के कौशल से सभी को राजी करने के लिये मजबूर कर दिया हो।

अपराह्न में हम पाँच बजे रवाना होंगे। महिलाओं का कीर्तन प्रारम्भ हुआ। भक्तों में कुछ लोग औरतों को बुलाकर चुपचाप कीर्तन बन्द करने को कह रहे हैं। वह इस आशा से कि शायद माँ इस कारण रुक जाएँ। इधर महिलाएँ कह रही हैं-''क्या करूँ? ये लोग इस शर्त पर राजी हो गयी हैं।''

माँ ठीक समय पर आकर महिलाओं को उत्साह देने के लिये उनके कीर्तन में भाग लेने लगी। महिलाएँ बड़े उत्साह के साथ नाम गा रही हैं। समय हो गया है यह जानकर माँ ने **'हरि हरये नमः'** कहकर कीर्तन समाप्त किया। यथासमय कीर्तन समाप्त हो गया।

किसी की कोई चाल नहीं चल पायी। माँ ठीक समय से रवाना हो गयी। वीरेन **'निमाई संन्यास'** कथा सुनाने को था। उसे अपने पास बुलाकर उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई माँ कहने लगी-''एक बात कहूँ सुनोगे? तुम्हें कुछ कहने में जरा कैसा अनुभव होता है। लेकिन तुम जिद्द मत करना। मुझ पर नाराज मत होना। अगर इस बार 'निमाई संन्यास' न सुन सकी तो तुम रिहर्सल देते रहो, जब सुनने का अवसर आयेगा, सुन लूँगी। बाबा, अगर आज वृन्दावन जाना हुआ और लौटते वक्त यहाँ न ठहर सकी तो अपनी

जिद्द पर अड़े मत रहना। जो होना है होगा। क्यों ठीक है न?''

माँ अपनी बातों को इस ढंग से कह रही थी कि उसे बिना देखे उनके भाव को समझाना मुश्किल है।

वीरेन बालक है। कीर्तन करता है। कीर्तन में उसे अपार आनन्द मिलता है। वह 'निमाई संन्यास' कथा गाना चाहता था और इसलिए वह माँ को रुक जाने के लिये बार-बार अनुरोध कर रहा था। उसे इस तरह वे समझाने लगी कि वह भी राजी हो गया। इससे माँ अत्यन्त प्रसन्न हो उठी।

माँ बोली-''बस, वीरेन ने भी मंजूर कर लिया।'' इतना कहने के पश्चात् जिसे जिस रूप में खुश करना चाहिए करने लगी।

माँ आगे पुनः कहने लगी-''यह शरीर तुम लोगों की इच्छा की तरह कुछ नहीं करता। तुम सब यह देखते होंगे और सोचते होंगे कि जरूर कोई चाल चलकर यह सब करती हूँ, वर्ना इतनी बातें कैसे कह डालती है। लेकिन बात यह नहीं है। तुम लोग बुद्धि-शुद्धि के भीतर हो न, इसीलिए ऐसी बातें सोचना तुम्हारे लिये अन्याय नहीं है। लेकिन इस शरीर की बातें समझना तुम लोगों के लिये मुश्किल है। कभी समझ लेते हो और कभी अपनी तरह समझकर गलती करते हो। जहाँ जिसकी जरूरत है, अपने आप होता जा रहा है, इस बात को समझना साधारण व्यक्तियों के बूते की बात नहीं है।''

रवाना होने के पूर्व भक्तों के किसी प्रश्न पर माँ कहने लगी-''तुममें जितनी शक्ति है, करते जाओ। उनकी कृपा तो है ही। शक्ति के अनुसार नहर बनाओ, उसी नहर के द्वारा उनकी कृपा तुम्हारे पास आ जाएगी। चिन्ता किस बात की? तुम लोगों का काम है, भरसक प्रयत्न करते हुए पूरा करते रहो।''

श्री श्री माँ वृन्दावन में

अपराह्न के समय पंकज दादा माँ को मोटर में बैठाकर वृन्दावन की ओर रवाना हुए। हरि सभा में कीर्तन हो रहा था, रास्ते में वहाँ कुछ देर के लिये माँ को रोका गया।

हम लोग हर बार वर्धमान राजा के मन्दिर में जाकर ठहरते हैं। इस बार एक सज्जन ने किसी दूसरी धर्मशाला के लिये पत्र भेजा था। वहाँ जाने पर

ज्ञात हुआ कि इस समय यहाँ स्थान पाना मुश्किल है। इसके बाद एक अन्य मन्दिर में गये तो वहाँ भी जगह की कमी रही। फिर हमें पूना की धर्मशाला में जगह मिली।

रात 9 बजे वर्धमान राजा के मन्दिर के मैंनेजर श्री योगेन्द्रनाथ काव्यतीर्थ महाशय को खबर दी गयी। समाचार पाते ही वे तुरन्त आये। उनकी इच्छा थी कि अभी तुरन्त माँ को अपने मन्दिर में ले चलें, परन्तु अधिक रात हो जाने की वजह से हम लोग आज वहाँ नहीं गये।

माँ शची दादा और परमानन्द स्वामीजी आदि की ओर इशारा करती हुई बोली–‘‘पिताजी, इस बार इन लोगों के ऊपर जिम्मेदारी है। अब ये लोग जहाँ इच्छा हो, प्रबन्ध करें।’’

जो कुछ करना है, अब कल होगा। यह बात उनसे कह दी गयी। फलस्वरूप काव्यतीर्थ महाशय रात 12 बजे विदा लेकर चले गये।

यह पहले ही बता चुकी हूँ कि ‘‘सन्तदास बाबाजी’’ महाशय के शिष्य शिशिर राहा इस बार माँ के साथ आये हैं। उन्होंने कहा–‘‘मैं यह देखकर चकित रह गया कि दिल्ली के भक्तगण माँ के लिये कितने व्याकुल थे। वे माँ को जाने देने के लिये तैयार नहीं थे। लेकिन रवाना होने के पूर्व माँ ने उन सबको ऐसा बहलाया कि लोग माँ से बिछुड़ने की व्यथा तत्काल अनुभव नहीं कर सके। माँ अभी थोड़ी देर बाद रवाना हो जाएँगी, यह बात भी लोग भूल गये थे। एक विचित्र आनन्द में सभी मग्न हो गये थे। बाद में वे समझ पायेंगे।’’

माँ हँसती हुई बोली–‘‘सचमुच! सभी आनन्द में मग्न हो जाते हैं। इस शरीर से सभी स्नेह जो करते हैं।’’

12 चैत्र, सोमवार– आज सवेरे उठकर माँ नीचे चली गयी। काव्यतीर्थ महाशय और साथ के अन्य लोग जगह की तलाश में बाहर चले गये। इन दिनों विभिन्न शहरों से अनेक यात्री आये हुए हैं, इसलिये अच्छी जगह कहीं नहीं मिली। काव्यतीर्थ महाशय की मनोकामना पूरी हुई। सभी लोगों ने उनके यहाँ जाना पसन्द किया। तुरन्त माँ को वहाँ ले चलने की तैयारी शुरू हो गयी।

इधर माँ टहलती हुई इस धर्मशाला के दूसरी ओर जहाँ एक मन्दिर था,

उसके भीतर प्रवेश करने के बाद बोली–''वाह! यह तो सुन्दर स्थान है। यहाँ बरामदा है। अगर यहाँ रहा जाये तो कैसा हो?''

इतना कहने के बाद वे वहाँ चहल–कदमी करने लगी। हम लोग भी वहाँ गये। वहाँ जाकर देखा–एक सफेद बछड़ा मन्दिर के सामने उछल–कूद मचा रहा है। बछड़ा अतिशय सुलक्षण युक्त है। इतना सुन्दर बछड़ा कम ही दिखाई देता है। माँ और हम लोग इस बारे में आपस में बातचीत करने लगे।

माँ मन्दिर के आँगन के सामने वाले बरामदे में बैठ गयी। हमारे साथ शची दादा, परमानन्द स्वामीजी भी थे। माँ ने बताया कि जब हममें से कोई भी माँ के साथ नहीं था तब यह बछड़ा दौड़कर माँ के पास आया था। माँ उसकी पीठ और सिर पर हाथ फेरती रही। फलस्वरूप उसे अत्यन्त आनन्द मिला था। इस बछड़े की आकृति में असाधारणत्व है।

कुछ देर बाद जब हम वर्धमान राजा के मन्दिर में आये तो देखा–काव्यतीर्थ महाशय चारों तरफ तेजी से सफाई करवा चुके हैं। सभी चीजों का प्रबन्ध किया जा चुका है। इनके हृदय में अत्यन्त आग्रह था, इसलिए हमें अन्यत्र कहीं स्थान नहीं मिला।

शिशिर राहा ने अपने आश्रम में खबर की तो वहाँ से अनेक ब्रह्मचारी माँ के दर्शन करने के लिये आये। वे लोग भी माँ को अपने आश्रम में ले जाने के लिये आग्रह दिखाने लगे। लेकिन माँ ने पहले ही कह रखा था कि चाहे जहाँ ले चलो, चली जाऊँगी। पर जहाँ जाऊँगी, वहाँ से फिर हिलने पर वृन्दावन छोड़ देना पड़ेगा।''

इस भाव की बातें सुनने के बाद फिर वहाँ से अन्यत्र चलने की बात दब गयी। ब्रह्मचारियों से माँ ने कहा–''शिशिर पहले तुम लोगों के यहाँ क्यों नहीं ले गया?''

ब्रह्मचारियों का दल शिशिर दादा के प्रति अपनी नाराजगी प्रकट करने लगा। बेचारे की हालत नाजुक हो गयी। इधर–उधर की बातें सोचने के बाद ही वे उक्त आश्रम में जाने को तैयार नहीं हुए थे। वहाँ पर्याप्त स्थान है या नहीं, इसका पता उन्हें नहीं था। यह सब सुनकर माँ प्रसन्न हो उठी। अन्त में निश्चय हुआ कि वृन्दावन से रवाना होते वक्त माँ एक बार उक्त आश्रम में अवश्य जाएँगी।

साधुओं के साथ माँ की बातें होने लगी। एक साथ इतने अधिक संन्यासियों को जो एक भाव के ही थे, देखकर हमें भी प्रसन्नता हुई। माँ भी आनन्दित हो उठी। वे लोग भी माँ को अपने निकट पाकर आनन्द मग्न हो गए।

माँ हँसती हुई बोली–''हम लोगों को सभी साधुओं की हवा लग गयी। ये लोग इस लड़की को दर्शन देने आये हैं।''

साधुओं ने कहा–''माँ, आपका दर्शन पाकर हम आपका बतास पा रहे हैं।''

माँ–''यह ठीक है। सब सत्य है। लेन–देन तो सर्वदा चलता रहता है।''

एक साधु कहने लगा–''आप कुछ कृपा कीजिये।''

माँ ऊपर की ओर हाथ दिखाती हुई बोली–''आपकी कृपा जरूरी है। एक उनके अलावा और कुछ नहीं है।''

वृन्दावन आने पर एक घटना के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। काव्यतीर्थ महाशय की पत्नी माँ के निकट आकर बोली कि कुछ दिन पूर्व वे सख्त बीमार हो गयी थी। सात दिनों तक बेहोश रही। आखिरी दिन उन्होंने देखा कि माँ उनके निकट बैठी अभय दान दे रही हैं। इसके बाद वे होश में आ गयी। होश में आने पर उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि मानो एक अर्से बाद उनकी नींद टूटी है।

इस घटना के बाद से उन्हें माँ को देखने की तीव्र लालसा मन में उत्पन्न हुई। माँ कई बार वृन्दावन आ चुकी हैं, पर वे किसी बार भी उनका दर्शन नहीं कर पाई। इस बार वे खेद प्रकट करती रही।

इसी बीच आगरा से एक परिचित महिला उनके यहाँ आयी। इनकी जबानी सारी बातें सुनने के बाद वे बोली–''माँ तो अन्तर्यामी हैं। वे जरूर तुम्हारे मन की बात जान गयी होंगी। संभव है, अचानक किसी दिन आकर माँ तुम्हें दर्शन दें।''

माँ कहाँ है, यह पता नहीं। अचानक जब कभी माँ पहुँच जाती हैं तब दो–चार दिन उनके दर्शन हो जाते हैं। बहरहाल यह सब बातचीत होने के बाद माँ वृन्दावन हाजिर हो गयी। उक्त महिला यह बातें बड़े आग्रह से सुनाने

के पश्चात् अपने अन्तर की कृतज्ञता प्रकट करने लगी। माँ हँसती हुई दो-चार बातें कहती रही।

माँ ने अन्त में कहा-"कल ही तुम लोगों के बारे में बातें हुई थी। मेरा सामान कल बँध चुका था।"

यह सब सुनने के पश्चात् शची दादा और हम लोग आपस में कहने लगे कि यहाँ आने का क्या कारण है, समझ में आ गया। पूना की धर्मशाला में रात गुजारने का क्या कारण था, इसकी जानकारी अभी नहीं मालूम हुई है। माँ अचानक वहाँ क्यों गयी। अभी हम यह सब आपस में कह ही रहे थे कि अचानक माँ कह उठी-"वह बछड़ा अनेक सुलक्षणों से युक्त था। जब मेरे आस-पास कोई नहीं था तब वह दौड़-दौड़कर पास आता था। जब उसकी पीठ और सिर पर हाथ फेरती रही तो वह बड़ा प्रसन्न होता था।"

हम लोग कह उठे-"ओह! उस बछड़े के लिये माँ वहाँ गयी थी।"

माँ कुछ नहीं बोली। पता नहीं वह बछड़ा कौन था? सन्तदास बाबाजी महाशय के शिष्यों का दल आया है। तरह-तरह की बातें हो रही हैं। शिशिर राहा कह रहे हैं-"कुछ भी नहीं हुआ। सिर्फ जलन हासिल हो रही है, न जाने कितने साधु-सन्तों के पास गया।"

माँ हँसती हुई बोली-"तुम तो राजा के लड़के हो पर जब तक बालिग नहीं हो जाओगे तब तक राजपाट कैसे प्राप्त करोगे। इन्तजार करना ही पड़ेगा।

इतना कहकर माँ हँस पड़ी। पुनः आगे बोली-"कितने वर्ष में बालिग होते हैं?"

शची दादा तथा अन्य लोगों ने कहा-"बालिग के दो कानून हैं। पहला 18 वर्ष में और दूसरा 21 में हुआ जाता है। अच्छा माँ, 21 वर्ष कब होगा?"

माँ मृदु मुस्कान के साथ कह उठी-"तुम लोग एकादश इन्द्रियाँ या ऐसा ही कुछ कहते हो, जब उन एकादश इन्द्रियों पर संयम हो जाता है।"

एक सज्जन पाद पूरण करते हुए बोले-"तब 21 वर्ष पूर्ण होगा।"

माँ हँसती हुई बोली–''इसके बाद देखा जाएगा।''

पुनः बातचीत के सिलसिले में माँ कहने लगी–''बात क्या है, जानते हो? तुम लोगों में जितनी शक्ति है, प्रयत्न करते हो, वे तो हैं ही। जो कुछ करना है, वे करेंगे।''

13 चैत्र, मंगलवार– प्रतिमा देवी वगैरह आयी हैं। उनके साथ अलमोड़ा की परिचित मेम साहिबा भी आयी हैं। मेम साहिबा की इच्छा है कि यहाँ किसी महापुरुष को अपना गुरु बनायें।

उन्होंने कहा–''मेरी इच्छा है कि मैं माँ को अपना गुरु बनाऊँ, पर ऐसा हो नहीं सकता। माँ दीक्षा नहीं देंगी, इसलिए अगर माँ अनुमति दें तो इन महात्मा से दीक्षा ले लूँ।''

माँ ने कहा–''देखो, गुरु किसी को बनाने से पहले खूब विचार करके बनाना चाहिए। क्योंकि एक बार किसी को गुरु बना लेने के बाद कहीं उनके ऊपर अविश्वास उत्पन्न हो गया तो बड़ा अपराध होता है। एक यह होता है कि मेरा प्राण उन्हें गुरु बनाना चाहता है, अब मेरा हृदय किसी प्रकार का अन्य विचार नहीं करना चाहता–यह अलग बात है। लेकिन इस तरह का भाव उत्पन्न हो जाता तो कर लेती, मन में जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होती। जब जिज्ञासा उत्पन्न हुई है तब अच्छी तरह मन में विचार कर लेना चाहिए।''

मेम साहिबा कह रही हैं–''देवी के ऊपर विशेष आकर्षण है। अब अगर मेरे मन में कृष्ण मंत्र की भावना रहे तो क्या करना चाहिए? फिर कृष्ण मंत्र का जप करते-करते अगर देवी आ जाएँ तो क्या मुझे देवी मंत्र का जप करना चाहिए?''

पता चला कि मेम साहिबा की उस रूप में दीक्षा नहीं हुई है। स्पेन स्थित एक साधु को ये अपना गुरु मानती थी और उक्त स्पेनीश गुरु के गुरु एक भारतीय तांत्रिक साधु रहे हैं। यही वजह है कि मेम साहिबा नित्य चण्डी पाठ करती हैं। उन्होंने स्तोत्र की आवृत्ति की, चण्डी के कुछ अंशों की आवृत्ति की। यह भी पता चला कि कामाख्या पर्वत पर साधना करने गयी थी।

माँ ने उनके प्रश्नों के उत्तर में कहा–''देखो, बात यह है कि तुम लोग अपना गुरु-मंत्र, बाद में चाहे जो मूर्ति आये। मूर्ति भली भी आ सकती है

और बुरी भी। जैसे कभी तुम पैण्ट पहनकर आती हो और कभी साड़ी। इसके अलावा तुम्हारे कई नाम हैं, पर हो तुम एक ही। यह भी देखो कि वे एक ही हैं। कहा जाता है कि **कात्यायनी** ने पूजा करके कृष्ण को प्राप्त किया था। इसलिए कृष्ण नाम-जप करते-करते अगर देवी आयें या देवी नाम-जप करते-करते अगर कृष्ण आयें तो भी तुम अपना इष्ट मंत्र लेकर रहना। कभी देखोगी कि कोई ऋषि आकर कुछ कह जाएगा। कभी कोई खराब मूर्ति, जैसे शराब की बोतल लेकर कोई आ सकता है। यह देखकर तुम्हारे मन में खराब भावना उत्पन्न हो सकती है। उस समय भी तुम्हें यह सोचना पड़ेगा कि इष्ट का ही यह सब है। तुम अपने मंत्र पर जोर देकर बैठी यह सब देखती रहोगी।''

आगे माँ ने कहा-''इसीलिए कहती हूँ कि अगर तुममें दो भाव हों तो खूब भली भाँति सोच-विचार करके देख लो कि तुममें इन दोनों में किसके प्रति प्रबल भाव है। निश्चित रूप से एक प्रबल होगा। जैसे तुम घर से जब बाहर निकलती हो तब दो-तीन सड़कें देखती हो, पर तुम्हें एक ही सड़क से आगे बढ़ना है। बात क्या है, जानती हो? मानव में एक संस्कार रहता है, वह तुममें जड़ पकड़कर बैठा है। इसके अलावा कुछ अन्य संस्कार हैं-बाहरी लोगों को देखने या बड़े आदमियों का नाम सुनकर, उनकी पूजा करने की तुम्हारी इच्छा होती है। यह उस तरह तुममें जड़ जमाये नहीं है। अगर जरा गौर करो तो सब समझ जाओगी।''

14 चैत्र, बुधवार- आज सवेरे उठकर माँ टहल रही थी। मैं और मँझली दीदी रसोईघर में काम कर रही थी। अचानक माँ दरवाजे के पास आकर गाने लगी-

''हाथ से काम करना
मन से नाम चलाना
मुँह से नाम चलाना।''

इसी पद को वे बार-बार दुहरा रही थी। हमारी ओर देखती हुई मुस्कुराने लगी।

आज माँ देहरादून जाने वाली थी। अपराह्न में मथुरा में गाड़ी पर सवार होंगी। अचानक दोपहर को शरीर अस्वस्थ हो जाने के कारण यात्रा स्थगित कर देनी पड़ी। सारा सामान बंध चुका था।

माँ बोली–"सारा सामान बंधकर तैयार है और इस बीच दो बार यात्रा नहीं कर सकी। मेरा कहना है कि ऐसा खयाल हो जाने पर बात अलग है, उस वक्त कुछ नहीं होता। लेकिन जब शरीर चलना नहीं चाहता तब आना-जाना बन्द हो जाएगा। इस तरह बन्द होते-होते शरीर कहाँ जाकर अटक जाएगा?"

जैसे यह बातें वे मन-ही-मन कह रही थी। यह सुनकर शची दादा ने कहा–"ऐसा भला कहीं हो सकता है माँ?"

माँ अपने भाव में मृदु स्वर में कह उठी–"लम्बे अर्से तक के लिये।"

यात्रा स्थगित हो गयी। कल देहरादून के डॉक्टर सोम की माँ तीर्थ-यात्रा के उद्देश्य से वृन्दावन आयी थी; माँ यहाँ हैं यह सुनकर वे दर्शन करने आयी।

शाम के समय वे कहने लगी–"माँ, आपके अस्वस्थ हो जाने का कारण मैं हूँ। क्योंकि कल रात से मन-ही-मन मैं कहती आ रही हूँ कि माँ मैं इधर आयी और उधर तुम चली जा रही हो। सिर्फ एक दिन रह जाओ। देखूँ, माँ मेरी पुकार सुनती हैं या नहीं?"

माँ हँसती हुई बोली–"तुम लोग कहाँ से क्या करके मेरा आना-जाना रोक देती हो। यह तो जानते ही हो कि जब तक यह शरीर अचल नहीं हो जाएगा तब तक आना-जाना नहीं रुक सकता।"

इतना कहने के पश्चात् माँ हँसने लगी।

माँ के हार्ट (हृदय) की हालत ठीक नहीं है। वे अधिक बातचीत न करें, इसके लिये हम बराबर अनुरोध करते आ रहे हैं। हमारी राय को मानती हुई वे कुछ देर के लिये चुप रह जाती हैं। कभी-कभी लोगों से कहती हैं–"ये लोग बातचीत करने के लिये मना कर चुके हैं।"

फिर थोड़ी देर बाद सब भूलकर बच्चों की तरह हँसने और बातें करने लगती हैं। उस वक्त ऐसा अनुभव नहीं होता कि उनकी नाड़ी की गति खराब है। उनके सामने जो लोग बैठे हैं, उनके हाथ में खेल-खेल में चिकोटी काट लेती हैं और फिर कहती हैं–"देखो, अधिक बकवास करना या इस तरह चिकोटी काटना, यह सब दुर्बलता के लक्षण हैं। देखा होगा कि जब रोगी की हालत खराब होने लगती है तब वह जरा फुर्तीला बन जाता है। उसी

तरह का विकार उत्पन्न होने पर रोगी चिकोटी काटता है। यह सब अच्छे लक्षण नहीं हैं। लेकिन इस शरीर के सभी लक्षणों को तुम लोग समझ नहीं पाते। अगर इस शरीर के श्वासों की गति और अन्य अवस्थाएँ साधारण मानव की तरह होती तो जितनी कठिन बीमारियाँ और दिल के धड़कन की जो स्थिति हो गयी है और होती आ रही है, न जाने कब यह चोला छूट जाता। फिर भी इस हालत में हँस रही हूँ, बोल रही हूँ, इसलिए लोग चट से समझ नहीं पाते।''

माँ के इस कथन को हम स्तंभित भाव से सुन रहे थे। नाड़ी की गति और हृदय परीक्षा करने के बाद प्रत्येक डॉक्टर ने यही राय जाहिर की है। लेकिन माँ के उज्ज्वल मुख पर थिरकती हुई मुस्कान और उनकी वाणी सुनकर भक्तों को माँ की शारीरिक स्थिति का ज्ञान नहीं हो पाता।

शाम के समय सन्तदास बाबाजी के आश्रम से कुछ साधु-सन्त आये हैं। कल से ही माँ शाम के समय लोगों को अपने साथ ले जाकर ऊपर बैठती हैं।

आज माँ बोली-''मैं देखती हूँ कि हम लोग कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहते हैं। उस समय उनका नाम या ध्यान जो इच्छा हो कर सकते हो।''

आज भी लोग आये और बैठे। साधुओं से माँ ने पूछा-''अगर आप लोगों को कुछ देर हो जाए तो आश्रम का कोई नुकसान तो नहीं होगा?''

उन लोगों ने बताया कि कोई नुकसान नहीं होगा। घण्टे भर बैठे रहने के बाद सभी लोग माँ को प्रणाम करने के पश्चात् चले गये।

शिशिर राहा को भी वे लोग इधर दो-तीन दिन से आश्रम में ले जा रहे हैं। इस बाबत में न जाने किसने पूछा-''शिशिर दादा ने आजकल हम लोगों का साथ छोड़ रखा है।''

माँ तुरन्त बोली-''तुम लोग आखिर ऐसा क्यों सोचते हो? क्या वह स्थान हम लोगों का नहीं है? क्यों दो भाव प्रकट करते हो? सब एक का ही आश्रम है। कोई इस कमरे में रहता है और कोई उस कमरे में। इससे होता क्या है?''

माँ के इस ढंग से यह बात कहने पर सभी प्रसन्न हो उठे। बात ठीक भी है। वह इसलिए कि यह तो माँ के मुँह की बात नहीं है। माँ के जीवन

के प्रत्येक कार्य में, प्रत्येक बात में, यह भावना स्पष्ट हो जाती है। यही वजह है कि माँ की जबानी इन बातों को सुनकर सभी को आनन्द मिलता है।

15 चैत्र, गुरुवार– आज सवेरे से माँ का खयाल यहाँ से चलने के लिये हो रहा है। शची दादा से उन्होंने पूछा–"कहो, क्या राय है? आज हम लोग चल दें?"

यही तय हुआ। काव्यतीर्थ महाशय हम लोगों के रवाना होने की तैयारी में जुट गये हैं। वे यथासाध्य हमें आदर–सत्कार कर रहे हैं। कैसे क्या करें कि हम सब प्रसन्न रहें, इस बात का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। माँ तो दूर की बात उनके साथ आने वाले प्रत्येक व्यक्ति की सुख–सुविधा की चिन्ता उन्हें सताती रही। प्रत्येक का आदेश पालन करने के लिये हाथ बाँधे खड़े रहते थे। इस तरह की भावना वाले व्यक्ति कम ही दिखाई देते हैं।

आज वे और विनोद नामक एक बालक मथुरा तक साथ आये और माँ को गाड़ी में बैठाया। आते समय हम श्री श्री सन्तदास बाबाजी के आश्रम होते हुए आये।

दो घण्टे बाद हमारी गाड़ी दिल्ली पहुँच गयी। स्टेशन पर काफी भक्त आये हैं। सभी लोग माँ को दिल्ली में उतरने के लिये अनुरोध कर रहे हैं, पर माँ यहाँ रुकना नहीं चाहती।

बोली–"अगर सब ठीक–ठाक रहे तो जब देहरादून से वापस आऊँगी तब यहाँ तुम लोग रोक लेना।"

यह बात सुनकर मनोज दादा ने कहा–"माँ, क्या हम लोग तुम्हें रोक लेने के अधिकारी हैं? हमारे पास इतनी शक्ति कहाँ है कि तुम्हें रोक लें?"

माँ हँसकर बोली–"वाह! खूब कहा पिताजी, अपना सामान तुम सब नहीं उतारोगे तो कौन उतारेगा? जिसका सामान होता है, वही तो उतारता है।"

एक ने कहा–"क्या आप हमारे हैं?"

माँ ने कहा–"मैं सभी की हूँ।"

दिल्ली स्टेशन पर एक घण्टे का समय मिला। सभी लोग सतृष्ण भाव से माँ की ओर देख रहे हैं। जितेन ने अधैर्य होकर माँ के लिये रोना–

चिल्लाना शुरू किया। माँ उसे विभिन्न तरह की बातों से बहला कर शान्त कर रही हैं।

गाड़ी के छूटने का वक्त हो गया। डॉ. जे. के. सेन महाशय माँ से हाथ जोड़ते हुए बोले-''हम लोगों का उचित विचार करना माँ।''

माँ हँसती हुई बोली-''क्या कर सकती हूँ पिताजी? आप लोगों की यह लड़की आपकी ही तरह स्वभाव पाई है। किसे दोष दूँ, बताओ?''

यह बात सुनकर सभी लोग हँस पड़े। देहरादून जाने वाली गाड़ी चल पड़ी। मैंने देखा कि सभी की आकृति पर उदासी की गहरी रेखा नाचने लगी है। सभी की निगाहें माँ की ओर हुई थी। माँ खिड़की से बाहर मुँह निकाले लोगों को देखती रही।

मुझे विंध्याचल जाना है। दिल्ली में दो-चार दिन रहने के बाद विंध्याचल चली जाऊँगी।

27 **चैत्र, मंगलवार-** आज माँ देहरादून से वापस आ गयी हैं। परमानन्दजी के पत्र से ज्ञात हुआ कि माँ ठण्ड बर्दाश्त नहीं कर पा रही हैं। हल्का-सा बुखार भी है। दिल्ली से 17-18 भक्त वहाँ पहुँच गये हैं। 25 चैत्र को रविवार अमावस थी, इसलिए वहाँ नाम-यज्ञ हो रहा है। इसके बाद माँ गरम जगह वापस आ जाएँगी।

30 **चैत्र, शुक्रवार-** देहरादून से प्राप्त एक पत्र से ज्ञात हुआ कि 25 चैत्र रविवार को वहाँ नाम-यज्ञ हुआ था। 26 चैत्र सोमवार को अपराह्न में 4 बजे से लेकर रात 8 बजे तक महिलाएँ कीर्तन करती रही। महिलाओं ने माँ को गेरुआ रंग की धोती पहनाकर सिर पर मुकुट पहनाया था। माँ महिलाओं के कीर्तन में खूब आनन्द प्रकट करती रही।

27 चैत्र मंगलवार को माँ सवेरे 7 बजे 30-35 भक्तों को लेकर मोटर द्वारा पहले **देहरादून** स्टेशन आयी। भक्त मार्ग में कीर्तन करते हुए गुजर रहे थे। वहाँ से रायपुर गयी। वहाँ दो घण्टे रहने के बाद वे **किशनपुर के आश्रम** में वापस चली आयी। उधर ठण्डक कुछ कम है, इसलिए माँ वहाँ शायद कुछ दिनों तक रहना पसन्द करें। इधर कई दिनों तक कीर्तन में माँ जरा भी आराम नहीं कर पाई, इसलिए काफी कमजोर हो गयी हैं। हल्हा-हल्का बुखार भी आ रहा है।

माँ अपने शरीर की ओर विशेष ध्यान नहीं देती। अस्वस्थ और कमजोर शरीर को लेकर वे अनेक अनियम (असावधानी) बरतती हैं। फलस्वरूप दिन-प्रतिदिन शरीर खराब होता जा रहा है। कभी-कभी ऐसा अनुभव होता है कि वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं, दुर्बलता या रोग का कोई भी चिह्न दिखाई नहीं देता। थोड़ी देर बाद ही इस भाव में परिवर्तन हो जाता है।

अक्सर वे कहती हैं-''इस शरीर की जो हालत है, इस हालत में जो इतना चल फिर रही हूँ, अन्य कोई होता तो वह जीवित नहीं बचता।''

कभी-कभी उनके हार्ट की हालत देखकर सभी लोग डर जाते हैं। तब ऐसा लगता है कि यह शरीर अब शायद चल नहीं पाएगा। लेकिन कुछ घण्टे बाद ही पुनः इस भाव में परिवर्तन हो जाता है और वे हँसी-खुशी भाव में बातचीत करने लगती हैं। इस स्थिति को देखकर कौन कह सकता है कि अभी कुछ देर पहले इनकी चिन्ताजनक स्थिति थी। बहरहाल इसमें सन्देह नहीं है कि शरीर दिन-प्रतिदिन अस्वस्थ होता जा रहा है। हम लोग भयभीत और चिन्तित होकर रह जाते हैं। हम केवल सोच ही सकते हैं कुछ करने की क्षमता तो नहीं है।

* * *

श्री श्री माँ दीदी माँ के साथ

श्री श्री माँ दीदी माँ के साथ